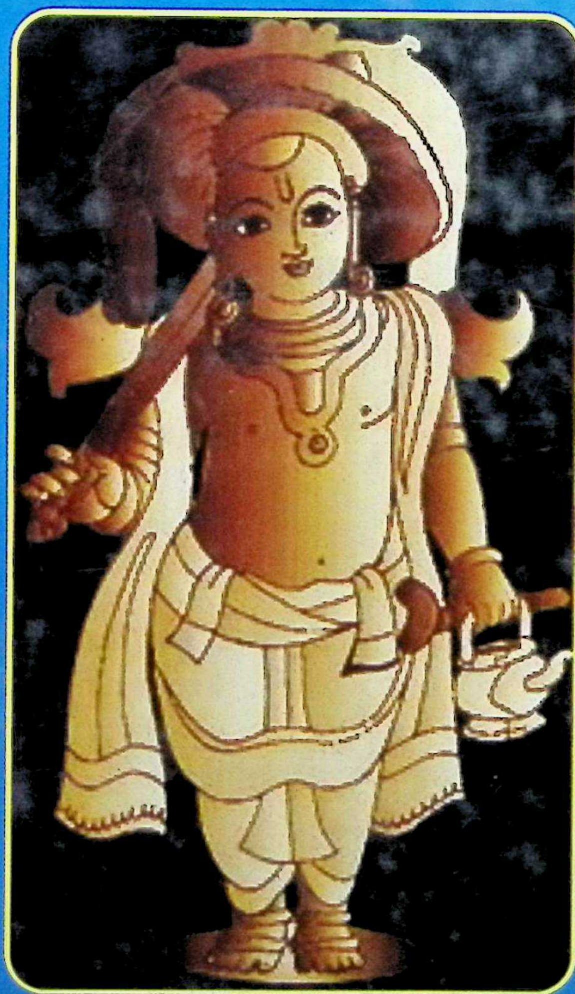
वामन-महापुराणम्

(विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकानुक्रमणी सहित)



सम्पादक एवं व्याख्याकार
ओमनाथ बिमली
कन्हैयालाल जोशी

प्राचीन काल में वेदों के अनन्तर भारतवर्ष में पौराणिक युग का अत्यधिक महत्त्व रहा है। मध्ययुगीन समय में वैदिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा पौराणिक कर्म अधिक श्रेष्ठ माने जाने लगे। पौराणिक कृत्यों द्वारा किए गए अनुष्ठान ही अधिक श्रेयस्कर और भावना-प्रधान रूप में लोक प्रचलित हुए। पुराणों में वेद, स्मृति तथा पुराण के परस्पर संबंध के विषय में गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लौकिक जीवन में गृहस्थों के लिए स्मृति ही वेदतुल्य है। देवी भागवत में इससे भी अधिक पुराणों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। श्रुति और स्मृति का स्थान नेत्र है, परंतु पुराण तो धर्मरूपी पुरुप का हृदय है। इस प्रकार लौकिक जीवन की व्यावहारिकता का सम्पूर्ण भाव पुराणों में निहित है। भारतीय जनों में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने का श्रेय पुराणों को ही है। पुराणों की महत्ता को अभिगम करने के लिए पुराण के अर्थ एवं उसकी प्राचीनता पर अपेक्षित है।

अष्टादश महापुराणों की गणना में वामन पुराण का स्थान १४वाँ है। इस पुराण में भगवान के वामन अवतार का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का भी समावेश हुआ है। यद्यपि यह पुराण आकार में लघु है, तथापि इसमें पुराणों के सभी अंगों का यथोचित वर्णन किया गया है। इसकी प्रतिपादन शैली दूसरे पुराणों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और विवेचनापूर्ण है। इसमें भुवनकोश, शिव और विष्णु की भक्ति, पूजाविधि, स्कन्दोत्पत्ति, देवासुरसंग्राम तथा विभिन्न तीर्थों का विवरण एवं अनेक प्रकार के व्रत तथा उपवासों का वर्णन यथास्थान किया गया है।

प्रस्तुत संस्करण में वामन पुराण के श्लोकों का भावार्थ सरल हिन्दी भाषा में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। विस्तृत भूमिका के अतिरिक्त अंत में शीघ्र संदर्भ के लिए श्लोकानुक्रमणी भी दी गई है। यथास्थान संस्कृत के मूल-शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं।

मूल्य : ३५०.००

परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला—62

रामेश्वर-शर्मा भट्टराई

वामनमहापुराणम्

VĀMANA-MAHĀPURĀṆAM

(विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकानुक्रमणी सहित)

संपादक एवं व्याख्याकार

ओमनाथ बिमली

कन्हैयालाल जोशी



परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

प्रकाशक
परिमल पब्लिकेशन्स
२७/२८, शक्ति नगर
दिल्ली - ११०००७
फोन - २७४४५४५६, ५५४४१५१६
E-mail : parimal@ndf.vsnl.net.in
Website: www.parimalpublication.com

प्रथम संस्करण 2005
आईएसबीएन : 81-7110-264-6

मूल्य - ३५० रुपये

मुद्रक :
हिमांशु प्रिन्टर्स
मेन यमुना विहार रोड़
मौजपुर, दिल्ली-९२

भूमिका

प्राचीन काल में वेदों के अनन्तर भारतवर्ष में पौराणिक युग का अत्यधिक महत्व रहा है। मध्ययुगीन समय में वैदिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा पौराणिक कर्म अधिक श्रेष्ठ माने जाने लगे। पौराणिक कृत्यों द्वारा किए गए अनुष्ठान ही अधिक श्रेयस्कर और भावना-प्रधान रूप में लोक प्रचलित हुए। पद्मपुराण और नारदीय पुराण में इस कथन की पुष्टि के लिए स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। पुराणों में वेद, स्मृति तथा पुराण के परस्पर संबंध के विषय में गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लौकिक जीवन में गृहस्थों के लिए स्मृति ही वेदतुल्य है। देवी भागवत में इससे भी अधिक पुराणों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। श्रुति और स्मृति का स्थान नेत्र है, परंतु पुराण तो धर्मरूपी पुरुष का हृदय है।[१] इस प्रकार लौकिक जीवन की व्यावहारिकता का सम्पूर्ण भाव पुराणों में निहित है। भारतीय जनों में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने का श्रेय पुराणों को ही है। पुराणों की महत्ता को अभिगम करने के लिए पुराण के अर्थ एवं उसकी प्राचीनता पर अपेक्षित है।

पुराण शब्द का अर्थ

पुराण शब्द का शाब्दिक अर्थ पुराना या प्राचीन है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार जो प्राचीन होकर भी नवीन होता है, उसे पुराण कहा गया है।[२] पुराणों में भी इस शब्द की बड़ी सुन्दर व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। वायु पुराण के अनुसार 'पुरा अस्ति' अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था।[३] पद्मपुराण के अनुसार जो प्राचीनता की अर्थात् परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है।[४] ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार 'प्राचीन काल में ऐसा हुआ' यह व्युत्पत्ति प्राप्त होती है।[५] इस प्रकार उपर्युक्त सभी व्युत्पत्तियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि पुराण का वर्ण्य-विषय प्राचीन काल से सम्बद्ध था।

साहित्य में पुराण शब्द किसी ग्रन्थ विशेष का परिचायक न होकर सम्पूर्ण विषय का द्योतक है। वस्तुतः जिस प्रकार वेद के सम्पूर्ण मंत्र अपनी मूल अवस्था में अविभक्त रूप से मिले हुए हैं, उसी प्रकार पुराण भी एक बृहत्संहिता के रूप में सम्मिलित थे। वेदों के चतुर्धा वर्गीकरण के समान पुराणों का भी पञ्चम वेद के रूप में अलग अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि यह उनकी रचना के बहुत बाद में प्रणीत हुआ। वेदों

१. श्रुति-स्मृति उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्। (देवीभागवत- ११.१.२१)
२. 'पुरां नवं भवति' - निरुक्त ३.१९
३. 'यस्मात् पुरा ह्यस्तीदं पुराण तेन तत्स्मृतम्' -वायु पुराण १.२०३
४. 'पुरा परम्परा वष्टि पुराणं तेन तत्स्मृतम्' -पद्म पुराण ५.२.५३
५. 'यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतद् पुराणं तेन तत्स्मृतम्' -ब्रह्म पुराण १.१.१७३

के चतुर्धा वर्गीकरण के कर्ता व्यास नाम के उपाधिधारी ऋषि ही पुराणों के विभाजन कर्ता थे।[६] वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्प आदि के साथ-साथ पुराण संहिता की भी रचना की थी। उसका अध्यापन उन्होंने सूतजातीय लोमहर्षण नामक शिष्य को कराया था। इन तीनों मूल संहिताओं के आधार पर शिष्य-परम्परा द्वारा अष्टादश पुराण और अनेक उपपुराणों की रचना की गई। शिवपुराण का कथन है[७] कि प्रत्येक द्वापर के अन्त में भगवान् व्यासदेव पुराणों की रचना करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुराणों का विषय प्राचीनतम, अनादि, अपौरुषेय भी है। परंतु व्यास द्वारा प्रणीत होने के कारण लौकिक जीवन के लिए महान् उपादेय है।

प्राचीन काल से ही पुराणों को एक विद्या के रूप में माना गया है। षड्वर्ग और उपनिषदों के सहित चारों वेदों का अध्ययन करने के उपरान्त भी पुराणों के ज्ञान से रहित ब्राह्मण विचक्षण नहीं हो सकता। याज्ञवल्क्यस्मृति में चौदह विद्याओं का उल्लेख है जिनका आधार धर्म है और धर्म को स्वाधार बनाने में पुराण अन्यतम विद्या है। इसीलिए स्मृति का कथन है कि इस सर्वश्रेष्ठ विद्या को किसी अज्ञात कुलशील तथा अपरीक्षित शिष्य को नहीं देना चाहिए।[८]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी पुराणों को वेद का पूरक माना है। वेद और पुराण परस्पर एक-दूसरे के पूरक है। पुराण भारतीय साहित्य के अङ्ग और परवर्ती भारतीय अङ्ग है। वैदिक क्रियाओं में पुराणों का स्वाध्याय आवश्यक बताया गया है। अध्वर्यु यज्ञ में प्रेरणा देता है कि पुराण वेद है।[९] छान्दोग्योपनिषद् चारों वेदों के समान ही स्थान प्रदान करता है।[१०] इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय आरण्यक, बृहदारण्यक उपनिषद्, आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, वाल्मीकि रामायण एवं महाभारतादि ग्रन्थों में पुराण शब्द के दर्शन होते हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार पुराणों में भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों की प्रमुख घटनाओं का वर्पान रहता है।[११] सूत सुमन्त ने महाराज दशरथ को पहले से ही बता दिया था कि किस प्रकार उन्हें पुत्र प्राप्ति होगी। इस बात का ज्ञान सुमन्त को पुराणों की कथा के श्रवणोपरान्त ही होता है। महाभारत के अनुसार पुराणरूपी पूर्णचन्द्र से वेदरूपी चांदनी के छिटकने का उल्लेख मिलता है।[१२] मनुस्मृति में भी पुराणश्रवण का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार वैदिककाल से लेकर स्मृतिकाल तक पुराणशब्द का प्रयोग किंसी न किसी रूप में मिलता है।

---

६. स्कन्द पु० रेवा० १.२३.३०

७. शिवपुराण १.२३.३०

८. वेदं धर्मं पुराणं च तथा तत्त्वानि नित्यशः।
संवत्सरोविते शिष्ये गुरुर्ज्ञानं विनिर्दिशेत्। - उशन स्मृति ३.३४

९. अध्वर्युताक्ष्यों वै पश्यतो राजेत्याह......तानुपदिशति पुराणं वेदः। -शत० ब्रा० १३.४.३.१३

१०. छान्दोग्योपनिषद् ७.१.१

११. वाल्मीकि रामायण (बाल कांड ९.१)

१२. महाभारत आदिपर्व १.८६

पुराणों की दिव्यता एवं अनादिता

पुराणों में सभी प्रकार की अलौकिक सिद्धियों का उल्लेख है। पुराण वेदों के समान प्राचीन है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् वैदिक साहित्य के सभी अंग सूत्र, प्रातिशाख्य, आदि पुराणों को वेद के समकक्षी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

अथर्ववेद यज्ञ के यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए मानता है।[१३] व्रात्यस्तौम[१४] के प्रसंग में इतिहास पुराण, गाथा नाराशंसी के ज्ञान का वर्णन है।

वैदिक सा॥हित्य में पुराणों का उल्लेख होना पुराणों को वेदों के समकालीन सिद्ध कर देता है। प्राचीनता के कारण ही शतपथ ब्राह्मण में पुराण को वेद तक कहा गया है।[१५] यज्ञानुष्ठाता उन्हें उपदेश करे कि पुराण ही वेद हैं। पुराण वेद के समान ही ब्रह्मा के निश्वास से नि:सृत हुए हैं। गीले काष्ठ में उत्पन्न अग्नि से जिस प्रकार धुआं निकलता है, उसी प्रकार ये ऋग्वेद, यजुष, साम, अथर्वांगिरस, इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद्, सूत्र, मन्त्र विवरण और अर्थवाद है। वे सब महान परमात्मा के ही निश्वास है।[१६] अर्थात् बिना ही प्रयत्न के परमात्मा से नि:सृत हुए हैं। ब्राह्मण युग में भी पुराण[१७] के गाढ़ अनुशीलन एवं आलोडन का तथ्य दृष्टिगोचर हो जाता है। उपनिषद्—ग्रन्थों[१८] में भी स्थान-स्थान पर पुराण विद्या का निर्देश है। नारद सनत्कुमार जी से कहते हैं— ''मैं ऋग्वेद, यजुष्, साम, अथर्व और पांचवे वेद इतिहास पुराण को जानता हूँ। मत्स्य पुराण[१९] में पुराण की प्राचीनता बताते हुए कहते हैं— पुराण सर्वशास्त्रों में पुराना है। ब्रह्मा जी ने सबसे पहले पुराणों का स्मरण किया, तत्पश्चात् उनके मुखों से वेद प्रकट हुए।

---

१३. ऋच: सामानि छन्दासि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाजशिरे सर्वे दिवि दिविश्रिता॥ (अथर्व० ११।७।२४)

१४. इतिहासस्य च स वै पुराणस्य च गाथानां च।
नाराशंसीना च प्रियं धाम भवसि य एवं वेद॥ (वही १५।१।६)

१५. तानुपदिशति पुराणं वेद:। सोऽयमितिहासपुराणमावक्षीतैवमेव अध्वर्यु: संम्प्रैष्यति। (शतपथ ब्रा० १३।४।३।१३)

१६. स यथार्द्रै घाग्नेरभ्यहितात्पृथग्घूना विनिश्चरन्त्येव वा अरेऽसय महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृवेदो यजुर्वेद: अथार्वांगिरस इतिहास—पुराण— विद्या-उपनिषद: श्लोका: सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि। (बृहदा० उप० २।४।१० शतपथ ब्रा० १२।२।४।१०)

१७. इतिहासपुराणानि पंचमं वेदमीश्वर:।
सर्वेभ्य: वक्त्रेभ्य: ससृजे सर्वदर्शन:। भाग० ३।१२

१८. स हो वाच ऋग्वेद भगव: अध्यीत्य यजुर्वेद सामवेदार्थवणं चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्।
छान्दोग्योपनिषद् ७।१

१९. पुराणं सर्वशास्त्राणं प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वकोम्यो वेदास्तस्य विनिर्मिता:॥ (मत्स्यपुराण ५३।३)

इन सब बातों को देखते हुए पुराणों के विषय में विद्वानों का यह मत है कि वेदों में जो बात संक्षेप में कही गई है, पुराणों में उसी को विशुद्ध एवं व्याख्यानात्मक ढङ्ग से कहा गया है। पुराणों की यह एक अपनी विशेषता है, या निजी असामान्य शैली है जिसमें कुछ स्वतन्त्र बातों को आलंकारिक सारणी से अतिरञ्जनापूर्ण कह देने की क्षमता है। अथवा अर्थवाद-समन्वित भूतार्थवाद को पुष्ट करने की कुशलता है। पुराणों के पुरागाथाओं के चरम सिद्धान्त को देखने से प्रतीत होता है कि ये भी वेदों की तरह ही सनातन व पुरातन होने से इनकी वेदमूलकता तथा वेदानुगामिता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। महामहोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने भी अपने शोधपूर्ण ''पुराणों की अनादिता'' नामक लेख में लिखा है कि-''पुराण विद्या का अस्तित्व वेदों जितना पुराना होने के कारण उनकी सत्ता भी वेदवत् अनादि है।''

सूत्र-साहित्य[२०] में पुराणों का बार-बार उल्लेख किया गया है। इसमें पुराण का विशिष्ट महत्त्व प्रतिपादित है। साधारण जन के लिये ही नहीं, प्रत्युत शासक वर्ग के लिये भी[२१]। वेदवित् के लिये पुराणों की जानकारी नितान्त आवश्यक है। बहुश्रुत[२२] वही है, जो पुराण में कुशल होता है। पुराणों में सभी अलौकिक सिद्धियों का उल्लेख है, साथ ही उनके प्राप्ति-साधनों तन्त्र मन्त्रों का भी सांगोपांग वर्णन है।

पूर्वोक्त मत-मतान्तरों से यही सिद्ध होता है कि पुराण विद्या का आविर्भाव भी वैदिक युग में ही हो चुका था और जिस प्रकार प्राचीन महर्षियों ने वेद एवं वैदिक साहित्य का व्यवस्थापन-सम्पादन किया, उसी प्रकार उन्होंने ही पुराणों का भी वर्गीकरण एवं सम्पादन किया।

पुराण संख्या

जिस प्रकार पुराणों के निर्माण, आविर्भाव व समय के विषय में विभिन्न इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं, उसी प्रकार पुराणों की संख्या के विषय में भी विभिन्न इतिहासकारों का या विद्वानों का एक मत नहीं है।

वेदों के मन्त्रद्रष्टा या वेदार्थ का परिशीलन करने वाले महर्षियों का उपनिषद्-ज्ञान जितना गम्भीर, कठिन व गरिष्ठ है, पुराणों में पहुंच कर वही ज्ञान सहसा सरल-प्राञ्जल व कवित्वपूर्ण हो जाता है। पुराणों का यह बदलता हुआ रूप सर्वत्र उपलब्ध होता है।

इस प्रकार के परिवर्तन को परिलक्षित करते हुए हमें ज्ञात होता है कि वेदों की ही तरह पहिले पुराण भी एक बृहत्संहिता में विद्यमान थे, बाद में जिस प्रकार शिष्यों व पाठकों की सुविधा के वेदव्यास भगवान् ने इनका ऋक्, यजु, साम, तीन संहिता में तथा इनके परिशिष्ट भाग का संकलन चौथे अथर्ववेद में कर चतुर्धा एक ही वृहत्-वेद संहिता का विभाजन किया, इसी विभाजन के कारण पराशर मुनि के पुत्र कृष्ण द्वैपायन मुनि को वेदव्यास पदवी मिली। ठीक इसी प्रकार पुराणों की एक वृहत् संहिता को भी युग सुविधा का विचार करते हुए उन्हीं कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अष्टादश-अठारह भागों में विभक्त किया होगा।

---

२०. गौतम धर्मसूत्र ११। २१ तथा याज्ञवल्क्य स्मृति १। ४५

२१. व्यास स्मृति ४। ४५

२२. गौतम धर्मसूत्र ८। ४-६।

पुराण संख्या अष्टादश स्वीकार की गयी है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार उनके नाम क्रमशः ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्माण्ड पुराण हैं। यह नामक्रम यथावत् विष्णु, भागवत आदि में भी समुपलब्ध होता है। नामोल्लेख के अतिरिक्त पुराणों की श्लोक संख्या भी पुराणों में प्राप्त होती है, परन्तु इस संख्या का सर्वत्र मेल नहीं खाती है। उदाहरण स्वरूप ब्रह्मपुराण को ही लिया जा सकता है। 'ब्रह्मवैवर्त' के अनुसार इसमें दस हजार श्लोक कथित है। भागवत तथा देवी भागवत इस श्लोक संख्या से साम्य रखते हैं किन्तु अग्नि तथा मत्स्य पुराणानुसार यह संख्या क्रमशः पच्चीस सहस्र तथा तेरह सहस्र वर्णित है।

कृष्णद्वैपायन व्यास जी ने जिस संहिता का अठारह भागों में विभाग किया, वे ही ''महापुराण'' इस संज्ञा से विभूषित हुए जिनका निर्देश देवीभागवत में इस प्रकार किया है-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्

अ ना प लिङ्गकूस्कानि पुराणानि विदुर्बुधाः॥ [२३]

इस श्लोक में अठारह महापुराणों की गणना इस प्रकार की गई है।

मकारादि दो पुराण-१. मत्स्य २. मार्कण्डेय

भकारादि दो पुराण' ३. भविष्य ४. भागवत,

ब्र युक्त तीन पुराण-५. ब्रह्माण्ड ६. ब्रह्मवैवर्त ७. ब्राह्म,

वकारादि चार पुराण-८. वराह ९. वामन १०. वायु (शिव) ११. विष्णु

तदनन्तर अ से-१२. अग्नि, ना से-१३. नारद और प से १४.-पद्म, लि से-१५. लिङ्ग और ग से-१६. गरुड़, कू से-१७. कूर्म, स्क से १८.-स्कन्द पुराण। ये ही अठारह महापुराण हैं।

विष्णु पुराण तथा श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में भी इन महापुराणों की सूची इसी प्रकार दी है।[२४]

अष्टादश महापुराणों की गणना में वामन पुराण का स्थान १४वाँ है। इस पुराण में भगवान के वामन अवतार का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का भी समावेश हुआ है। यद्यपि यह पुराण आकार में लघु है, तथापि इसमें पुराणों के सभी अंगों का यथोचित वर्णन किया गया है। इसकी प्रतिपादन शैली दूसरे पुराणों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और विवेचनापूर्ण है। इसमें भुवनकोश, शिव और विष्णु की भक्ति, पूजाविधि, स्कन्दोत्पत्ति, देवासुरसंग्राम तथा विभिन्न तीर्थों का विवरण एवं अनेक प्रकार के व्रत तथा उपवासों का वर्णन यथास्थान किया गया है।

इस पुराण के नाम से स्पष्ट है कि यह पुराण प्रधान रूप से भागवत वैष्णव धर्म से सम्बन्ध रखता है। इसका उपक्रम और उपसंहार भी यही सूचित करता है। इस पुराण के आरम्भ में 'नारायणं नमस्कृत्य' आदि श्लोक से मंगलाचरण प्रारम्भ होता है। तदनन्तर आरम्भिक श्लोकों में विष्णु और वैष्णव का उल्लेख

---

२३. देवीभागवत १.३.४

२४. विष्णु पु० ३.६.२०, भागवत १२.१३.३-८

है। इसके उपसंहार में भी विष्णु और विष्णु-भक्तों की प्रशंसा की गयी है। अनेक तिथियों में भिन्न-भिन्न रूप से विष्णु-पूजा का विधान बताया गया है तथा उनका फल भी दर्शाया गया है। यह पुराण प्रधानतः वैष्णव पुराण होते हुए भी शैव धर्म से विशेष तादात्म्य रखता है। यह बिना किसी पक्षपाक्ष के शिव और विष्णु के प्रति समान रूप से आदर्श प्रकट करता है। इस पुराण में संकुचित साम्प्रदायिक भावना का अभाव है, इसमें तांत्रिक पूजा-विधियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। वामन पुराण प्रधान रूप से वैष्णव पुराण होने पर भी यह राजस पुराणों की कोटि में आता है। पद्म पुराण और भविष्य पुराण में पुराणों के सात्विक राजस और तामस भेद बताए गए है, जो निम्न प्रकार है—

पद्म-पुराण

(१) सात्त्विक-पुराण

१. वैष्णव
२. नारदीय
३. भागवत
४. गारुड
५. पाद्म
६. वाराह

(२) राजस-पुराण

१. ब्रह्माण्ड
२. ब्रह्मवैवर्त्त
३. मार्कण्डेय
४. भविष्य
५. वामन
६. ब्राह्म

(३) तामस-पुराण

१. मात्स्य
२. कौर्म
३. लैङ्ग
४. शैव
५. स्कान्द
६. आग्नेय

भविष्य-पुराण

(१) सात्त्विक-पुराण

१. ब्रह्मवैवर्त्त
२. स्कान्द
३. पाद्म
४. भागवत
५. ब्राह्म
६. गारुड

(२) राजस-पुराण

१. मत्स्य
२. कूर्म
३. नृसिंह
४. वामन
५. शिव
६. वायु

(३) तामस-पुराण

१. मार्कण्डेय
२. वाराह
३. आग्नेय
४. लिङ्ग
५. ब्रह्माण्ड
६. भविष्य

मत्स्य पुराण के अनुसार राजस़ पुराण उन्हें कहा गया है जिनमें ब्रह्मा का महात्म्य अधिक होता है। सात्विक पुराणों में हरि का और तामस पुराणों में अग्नि और शिव का महात्म्य अधिक मिलता है।[२५]

वामन पुराण में कुरुक्षेत्र तथा उसके तीर्थों का महात्म्य प्रदर्शित करने में विशेष जोर दिया गया है। इसके सरोमहात्म्य प्रकरण में सूत और ऋषियों का संवाद स्थान भी कुरुजाङ्गल ही बताया गया है। बलि का यज्ञ भी कुरुक्षेत्र में ही दिखाया गया है। पद्म पुराण[२६] में यह स्थान पुष्कर दिखाया गया है। और अग्नि पुराण[२७] में इस यज्ञ को गंगा-द्वार पर निर्दिष्ट किया गया है।

यद्यपि यह पुराण महापुराणों की सूची में ही आता है, परन्तु कुछ सूचियों में इसका उल्लेख उप-पुराण के रूप में किया गया है। वामन पुराण के महत्त्व तथा विषय की दृष्टि से यह विचारणीय है कि जो वर्तमान वामन पुराण उपलब्ध है, यह महापुराण है अथवा उप-पुराण। सर्वभारतीय काशिराजन्यास, दुर्ग रामनगर, वाराणसी से प्रकाशित वामन पुराण के संस्करण में भूमिका के अन्तर्गत प्राचीन महापुराण सूचियों को चार भागों में विभाजित किया गया है जो द्रष्टव्य है।[२८]

पुराणों का लक्षण

भारतीय संस्कृति व धर्म के विकास में पुराण का कार्य बहुत महत्वपूर्ण रहा है। पुराण का गौरव अनेक दृष्टियों से मननीय और मान्य है जिसमें धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि प्रमुख है। पुराणों की वाणी में वेद का ही अनुकरण है। इसीलिए पुराण का धार्मिक महत्त्व हमारे लौकिक जीवन में अतिविशिष्ट है। वेद ने ईश्वर की कल्पना को प्रतिष्ठित किंया। परंतु पुराण के द्वारा उस ईश्वर को समाज के हृदय तक पहुँचाने का कार्य पुराणों ने किया। मत्स्यपुराण के अनुसार पुराणों के मुख्य चार विषय है—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे भगवान् बादरायणः।। [२९]

अपने काल में दृष्ट इतिवृत्त 'आख्यान' है। परोक्ष में अचिरकाल में वृत्त इतिवृत 'उपाख्यान' है। परम्परा से श्रुत किन्तु जिनके कर्ताका पता नहीं, ऐसी इतिवृत्त वाणियाँ 'गाथा' कहलाती हैं। ऐतिहासिक विषय से सम्बद्ध पौराणिक इतिहास विभाग में अनूदित धर्मशास्त्र आदि शास्त्रों में प्रतिपादित ज्ञान एवं

---

२५ सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।
(मत्स्य पु० - ५३.६७-६८)

२६ पद्म पुराण - सृष्टिखण्ड २५, १५-१६

२७ अग्नि पुराण - ४.७

२८ वामन पुराण भूमिका पृ० ^१

२९. मत्स्य पु० ५३.६४

कर्त्तव्यविषयक वचन 'कल्पशुद्धि' है। श्रौत-स्मार्त्त, समयाचार, धर्म के भेद, नाना उपासना भेद, नीति एवं दर्शन भेद भी कल्पशुद्धि के अन्तर्गत ही हैं।

उग्रश्रवा सौति के मत से यद्यपि उक्त चार विषयों का ही समावेश भगवान् बादरायण ने किया, किन्तु लोमहर्षण के मत से 'पुराणं पंचलक्षणम्' समन्वित है उनके अनुसार—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।। [३०]

पुराण-लक्षण विषयक यह पद्य प्रायः प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होता है। पंचलक्षण शब्द को इतना अनिवार्य द्योतक माना जाता है कि अमरकोश में यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त किया गया है। व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौमिक लोकप्रियता का संकेतक माना जाता है। इस शब्द के विषय में भी यह तथ्य सर्वतोभावेन क्रियाशील माना जाना चाहिए।

इस पंचलक्षणों का अभियुक्तों ने अर्थानुक्रम इस प्रकार से किया है— **पाठक्रमादर्थानुक्रमो बलीयान्** (मीमांसा)

(क) सृष्टि (ख) प्रति सृष्टि (ग) वंश (घ) मन्वन्तर (ङ) वंशानुचरित विज्ञान।

पुराण के लक्षणरूप प्रस्तुत ५ विषय भी पांच-पांच प्रकार से भिन्न है।

(क) सृष्टि— सृष्टि क्रम सृष्टि के विषय में भिन्न-भिन्न मत अवतार आयति और ब्रह्माण्ड भेद से सृष्टि अंश भी ५ प्रकार का है।

(ख) प्रतिसृष्टि— शास्त्रावतरण, कल्प शुद्धि, सृष्टि संहार, ज्योति चक्र, भूगोल।

(ग) वंश— ऋषिवंश, पितृवंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश और अग्निवंश।

(घ) मन्वन्तर— युग, दिव्ययुगं, नित्य कल्प, सप्त कल्प और त्रिंशत् कल्प।

(ङ) वंशानुचरित— ऋषि चरित, देव योनि चरित, सूर्यादि वंश आदि देव वंश चरित और असुर वंश चरित।

(क) सर्ग— जगत् तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति अथवा सृष्टि 'सर्ग' नाम से अभिहित है। यह पंच लक्षणों में से मुख्य तथा आद्य लक्षण है। इस सृष्टि विद्या का अपना वैशिष्टय है। स्वातन्त्र्य है, अपना व्यक्तित्व है। इस पर वैदिक सृष्टि तत्त्व का भी प्रभाव है—

अव्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रिवृतोऽहम्।

भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।। [३१]

---

३०. यह लक्षण कुछ पाठभेद से अथवा ऐक्यरूप से अनेक पुराणों में उपलब्ध होता है। जैसे- विष्णु पुराण-३.६.२४; मार्कण्डेय-१३४.१३; अग्नि पु० १.१४; भविष्य पु० २.२५; ब्रह्मवैवर्त १३३.६; कूर्म पु० १.१२; वाराह पु०- २.४; शिव पु० वायवीय सं० १/४१

३१. भागवत ६.२.२४तथा १२.७.११।

जब मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध हो जाते हैं तब महत्-तत्त्व की उत्पत्ति होती है। महत् तत्त्व से तीन प्रकार राजस, तामस तथा सात्विक के अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकार से ही पंचतन्मात्रा (भूत मात्र) इन्द्रिय तथा पंचभूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है।

(ख) विसर्ग या प्रतिसर्ग— सर्ग से विपरीत वस्तु अर्थात् प्रलय प्रतिसर्ग है। विष्णु पुराण में प्रतिसर्ग के स्थान पर प्रति संचक का प्रयोग मिलता है। श्रीमद्भागवत में इस शब्द के स्थान पर संस्था शब्द प्रयुक्त हुआ है।

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ताः चतुर्धाऽस्य स्वभावतः॥[३२]

इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार का है— नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक।

यही 'संस्था' शब्द अन्य पुराणों में भिन्न नाम से अभिहित है। ब्रह्मपुराण इसी को अन्तरप्रलय, अन्तरात्मा उपसंहृति नाम से अभिहित करता है।[३३] विष्णु पुराण में इसे- अभूत संप्लव, उदाप्लुत कहा है।[३४] भागवत पुराण में— निरोध, संस्था, तथा वायु पुराण में — उपसंहृति, एकार्णवावस्था, तत्त्वप्रतिसंयम आदि नामों से अलंकृत किया है।[३५]

(ग) वंश— ब्रह्मा से उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओं की भूत, भविष्य वर्तमान काल की सन्तान को वंश कहते हैं—

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोन्वयः।[३६]

भागवत के द्वारा व्याख्यात इस शब्द के भीतर राजाओं की ही सन्तान परम्परा का उल्लेख प्राधान्य किया है। परन्तु राजवंश तक ही सीमित करना उपयुक्त नहीं है। इस शब्द के भीतर ऋषियों के वंश का ग्रहण अन्य पुराणों में किया गया है।

(घ) मन्वन्तर— पौराणिक काल गणना का यह एक मान द्योतक शब्द है। पौराणिक काल गणना में इसका महत्त्व अत्यधिक है। मन्वन्तर १४ होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है, जिसके सहयोगी ५ पदार्थ और भी होते हैं। वे ये हैं—

मनु देवता, मनु पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि, भगवान् के वंशावतार— इन ५ विशेषताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं। १४ मन्वन्तर की सीमा में एक हजार चतुर्युगी का काल निर्धारित है। एक मन्वन्तर की

---

३२. वही, १२.७.१७

३३. ब्रह्म पु० २३२.११

३४. विष्णु पु० १.२. २५

३५. भागवत पु० ३.८.१०; वायु पु० १०२.३७

३६. भागवत पु० १२.७.१६

काल गणना बतलाते समय पुराण का एक बहुचर्चित वाक्य है— **मन्वन्तरं चतुर्युगानां साधिकाह्येकसप्ततिः।** अनेक पुराणों में ७१ चतुर्युगी का काल वर्षों में गिनाया गया है।[३७]

(ङ) **वंशानुचरित**— राजा, ऋषि, मुनियों के वंशों में उत्पन्न हुए वंश धरों का तथा मूल पुरुष राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें वर्णित होता है, वह 'वंशानुचरित' कहलाता है। महर्षियों के चरित्र की अपेक्षा राजाओं के चरित्र का ही विशेष विवरण पुराणों में उपलब्ध होता है। **वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधाराश्चये।** श्रीमद्भागवत में मन्वन्तराणिसद्धर्मः कहकर धर्म को मन्वन्तर के अन्तर्गत ही माना है। इसी से मिलता-जुलता राजनीति शास्त्र में पुराणों के पंचलक्षण माने हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र की जयमंगला टीका में प्राचीन ग्रन्थ से यह श्लोक उद्धृत किया गया है—

सृष्टि-प्रवृत्ति-संहार-धर्ममोक्षप्रयोजनम्।
ब्रह्माभिः विविधैः प्रोक्तं पुराणं पंचलक्षणम्।।[३८]

इसमें 'पंचलक्षण' की एक नितान्त नूतन व्याख्या दी गई है। यहाँ धर्म पुराण का एक अविभाज्य लक्षण स्वीकार किया गया है। अर्थात् मूलरूप से ही पुराण में धार्मिक विषयों का सन्निवेश किया गया है, यही अभीष्ट है। धर्म का सम्बन्ध पुराण के साथ अवान्तर शताब्दियों की घटना है। जबकि यह विकसित होकर अन्य विषयों को भी अपने में सम्मिलित करने लगा था। परन्तु यह कहना यथार्थ प्रतीत नहीं होता, क्योंकि भागवत में मन्वन्तराणि सद्धर्मः से मन्वन्तर में सन्निवेश है।

पुराणों के १० लक्षण— सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंश्यानुचरित ये ५ लक्षण पुराण के बताये ही हैं कुछ विद्वज्जन १० लक्षणों से युक्त पुराणों को महापुराण मानते हैं। श्रीमद्भावगत में दो स्थान पर १० लक्षणों को ही बताया है-

सर्गश्च विसर्गश्च वृत्तौ रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपात्रयः।।[३९]
अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेषानु कथा निरोधो मुक्तिरात्रयः।।[४०]

दोनों स्थानों पर दिये गये इन दस लक्षणों में नाम-भेद होते हुए भी साम्यता है। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त भी महापुराण के १० लक्षण मानता है।[४१]

---

३७. द्रष्टव्य- भागवत १२.७.१५

३८. कौटिल्य अर्थशास्त्र जयमंगला- १.५

३९. भागवत १२.७.६

४०. भागवत २.१०.१

४१. ब्रह्मवैवर्त अ० १३० खं० ४

पौराणिक भूगोल— भूगोल एवं खगोल वर्णन करने में एक ही पद्धति पुराणों में अपनायी गयी है। कूर्मपुराण में जम्बू द्वीप, शाक, कुश, कौंचि, शाल्मल, गोमेय एवं पुष्कर द्वीपों की विचित्र ढंग से वर्णन किया गया है। इस भौगोलिक कल्पना में प्रत्येक द्वीप के चारों ओर कोई न कोई रसात्मक समुद्र है। पृथ्वी के मध्यभाग में लोकालोक नामक पर्वत है। सूर्य उसी पर उदित होता है। मेरु पर्वत की महत्ता प्राय: सभी पुराणों में है। पुराणों के अनुसार प्रत्येक द्वीप एक-एक समुद्र से घिरा हुआ है। इन समुद्रों में से कोई घृत का समुद्र है, कोई दूध का, इस प्रकार विविध द्रव्यों के समुद्र हैं। जम्बू द्वीप के आसपास क्षार समुद्र हैं। इसी जम्बू द्वीप का अधिक भाग भरत की सन्तान होने से भारतवर्ष कहलाता है। इसके पूर्व और किरात रहते थे। पश्चिम तथा मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र। हिमालय और सप्त पर्वतों से निकलने वाली नदियां आदि की नामावली है। यह महाभारत से बहुत कुछ मिलती है। पुराणों में अवन, शक और पलवों का वर्णन है जो ईसा पूर्व की प्रथम एवं दूसरी शती में भारत में थे। हूणों का वर्णन है, जिन्होंने ईसा की छठी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य का ध्वंश किया। इन द्वीपों, पर्वतों, समुद्रों का विस्तार लाखों करोड़ों योजनों में दिया गया है। योजन के जो प्रमाण पुराणों में दिये गये हैं, उनका कुछ विचित्र परिमाण मालूम पड़ता है। आधुनिक योजन (चार कोस का योजन) माना जाये तो सामतिक भूगोल (भू-परिधि) बहुत ही छोटा पड़ जायेगा। पुराणों के अनुसार सुमेरु पर्वत के निम्न प्रदेश में भारतवर्ष की अवस्थिति वर्णित है। परन्तु उस सुमेरु का आजकल कोई नामोनिशान नहीं है। पुराणकारों ने भूमि खण्ड का विवरण बड़ी यथार्थता से किया है। आजकल के वैज्ञानिक उसको ज्ञात नहीं कर पा रहे हैं। पुराणों में वर्णित सप्तद्वीप पौराणिक भूगोल की अपनी निजी विशेषता है। तीन द्वीपों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन यथार्थत: हो चुका है।

पुराणों में भुवनकोश एक महत्त्वपूर्ण विषय है। जिसमें समग्र भुवनों का विशद वर्णन उपस्थित किया गया है। समग्र पृथ्वी को कमल का रूप स्वीकार किया गया है। जिसकी वर्णिका में मेरु पर्वत की स्थिति मानी जाती है।

इस भौगोलिक वर्णन के साथ अधिकतर पुराणों में भारतवर्ष में जन्म लेने वाले को विशेष पुण्यवान माना है। यह कर्म भूमि है यहाँ सत्त्व की प्रधानता है। यहाँ रहकर ही मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है। कलियुग में भारत में रहने वाले ही ईश्वर के नाम-मात्र से तर सकते हैं। सभी भू-खण्डों में भारतवर्ष अधिक श्रेष्ठ एवं पवित्र है।

पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन इतने सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे मनुष्य एकचित्त होकर उन असाधारण घटनाओं को विभिन्न कथानकों के माध्यम से सुनता है और उन ऋषिवाक्यों को भक्तियुक्त होकर श्रद्धा से ग्रहण करने लगता है। मनुष्य सामान्य और असामान्य दोनों प्रकार के कर्तव्यों को धार्मिक आदेशों की रक्षा के निमित्त करने लगता है। ये प्रसंग इतने रोचक होते हैं कि अनपढ़ व्यक्ति भी उन्हें अपने जीवन में यथावत् ग्रहण करने लगता है। यही कारण है कि आज भी पौराणिक कथाओं को कथावाचक से सुनने की प्रथा विकसित ही होती जा रही है, उसमें लोगों की अपूर्व श्रद्धा है। प्रत्येक पुराण अपने अपने प्रधान देव के स्तुति-गान में परिनिष्ठ है। उनकी

महिमा को मंडित करने के लिए तदनुरूप आख्यानों सहित इतिवृत्त को सरस रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रसंगवश इसमें ज्ञान, कर्म, उपासना, योग, व्रत, तीर्थ, भूगोल तथा खगोल आदि का विवेचन है।

वामन पुराण के प्रसिद्ध कथानक

दक्ष का यज्ञ और सती की कथा–

वामन पुराण में यह कथा अत्यधिक रोचक है। शिव पुराण, रामायण आदि ग्रन्थों में सती की कथा का वर्णन हमें प्राप्त होता है और शिव द्वारा दक्ष के यज्ञ-विध्वंस की कथा जिस रूप में हमें मिलती है, उससे अधिक रोचक ढंग से यहाँ प्रस्तुत की गई है। दक्ष के यज्ञ में जब सती ने शिव का भाग नहीं देखा तो वह वहाँ उपस्थित सभी देवों को अभिशाप देकर जलकर भस्म हो गई। तब शिव ने वीरभद्र को भेजा जिसने दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर दिया।

वामनपुराण में यह कथानक दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दक्ष यज्ञ में शिवजी की उपेक्षा की गई है, ऐसा ज्ञात होते ही सती का देहान्त हो जाता है। दक्ष के यज्ञ का पता भी सती को तब चलता है जब गौतमनन्दिनी जया सती देवी के दर्शन के लिए मन्दराचल पर जाती है। उसे अकेली देखकर सती ने पूछा कि उसकी दोनों बहनें कहाँ हैं? जया ने उत्तर दिया कि वे मातामह (नाना) के यज्ञ में गई है और मैं भी जा रही हूँ। केवल आपके दर्शन करने यहाँ आई हूँ। अपने पति की इस प्रकार अवमानना देखकर सती को इतना क्रोध हुआ कि वह उसी समय भूमि पर गिरकर प्राणहीन हो गई। तब भगवान शिव ने तत्काल गणों का एक दल बनाकर वीरभद्र की अगवानी में यक्ष के यज्ञ को ध्वंस करने के लिए भेज दिया।

कामदहन कथा–

यह कथा भी कुछ नवीनता लिए हुए यहाँ प्रस्तुत की गई है। जिस समय शिव दक्ष यज्ञ का नाश कर रहे थे तब कामदेव ने उन पर 'उन्मान' 'संताप' और 'विजृम्भण' नामक बाणों को उन पर छोड़ा, जिससे उनकी दशा विक्षिप्तों की तरह हो गई और वे निरंतर कामाग्नि में जलते हुए सती के लिए विलाप करने लगे। जब कामदेव ने पुनः उन पर प्रहार किया तो वे भागकर दारु वन में प्रवेश कर गये। इसके बाद भगवान शङ्कर जब चित्रवन में विचरण कर रहे थे, तब कामदेव ने पुनः प्रहार किया। तब उन्होंने उसे क्रोध भरी दृष्टि से उपर से नीचे तक देखा। वह कामदेव तत्काल भस्म हो गया। तभी से वह कामदेव अनंग नाम से विख्यात हुआ।

भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन–

वामन पुराण में भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों, पर्वतों तथा नदियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें अनेक नामों की गणना आज के समय हमें काल्पनिक लगती है, परन्तु प्राचीन काल के इतिहास पर शोध करने वालों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है।

पर्वतों के नाम जैसे— महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य, परियात्र (सात कुलाचल) का वर्णन इसमें मिलता हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पर्वत श्रेणियाँ जैसे— कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, मैनाक आदि का वर्णन प्राप्त होता हैं।

नदियों का वर्णन जैसे— सरस्वती, कालिन्दी, हिरण्वती, चन्द्रिका, नीला, इरावती, मधुरा, उशीरा, धातकी, रक्षा, कौशिकी, पर्णासा, नन्दिनी, शरा, विदिशा, चित्रा, ओघवती, नर्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, तमसा, देविक, चक्रिणी, त्रिदिया, विपाशा आदि नदियाँ भी वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त अनेक महानदियों और लघुनदियों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है।

आगे चलकर भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेश जैसे— किल, कुण्डल, पञ्चालत, शक, वृक, कौरव, कलिंग, अंग आदि अनेक प्रदेशों का वर्णन मिलता है और भिन्न-भिन्न स्थोनां पर रहने वाली अनेक जातियाँ जैसे— शूद्र, पल्लव, अपरान्य, गान्धार, क़ाम्बोज, दरद, वेण, तुषार, भद्रक, सिन्धु, दशन, वैश्य आदि का भी वर्णन मिलता हैं। साथ ही उस समय में पाये जाने वालेराज्य, जनपदों तथा प्रशासनों की लम्बी सूची दी गयी है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भौगोलिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का पूर्ण लेखाजोखा यहाँ प्राप्त हो जाता है।

समाज और धर्म की रूपरेखा

वामन पुराण में सभी जातियों के सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों की ओर प्रकाश डाला गया है। सदाचार की महिमा का विशेषरूप से उल्लेख मिलता है। सदाचार ही धर्म का मूल है। सदाचार से हीन व्यक्ति का न तो इस लोक में स्थान है और नहीं परलोक में। स्थान स्थान पर ऋषियों द्वारा प्रातःकालीन स्तोत्रों का पाठ कराया गया है। यह विश्व की विराट् सत्ता के प्रति अपना दर्शन प्रस्तुत करता है। स्तोत्रों के अन्तर्गत संपूर्ण पांचभौतिक संसार की विवेचना की गयी है जिससे पूरे ब्रह्माण्ड की रचना का चित्र हमारे सामने आ जाता है। स्तोत्रों के ही अन्तर्गत संगीत के स्वरों, छन्दोज्ञान एवं नक्षत्रविज्ञान का भी समावेश किया गया है, जिससे यह लगता है कि ये स्तोत्र भगवाव् की कोरी स्तुति न होकर पंचमहाभूतों से लेकर ब्रह्मपर्यन्त पूरे ब्रह्माण्ड की रचना का तन्त्र उपस्थित करते हैं।

इस संसार में प्राप्त होने वाले अनेक पदार्थों में किसकी महत्ता है अथवा कौन सी वस्तुएँ श्रेष्ठ हैं, उनका परिगणन भी किया गया है, जैसे — समस्त देवों में जनार्दन विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पर्वतों में शीशिराद्रि, आयुधों में सुदर्शन चक्र, पक्षियों में गरुड़, नागों में शेषनाग, नदियों में गंगा, तीर्थों में कुरुक्षेत्र इत्यादि।

उसी प्रकार समस्त आगमों में वेद, श्रुतियों में मनुस्मृति, तिथियों में अमावास्या, नक्षत्रों में चन्द्रमा आदि को क्षेष्ठ बताया गया है। उसी तरह समस्त धर्मों में सदाचार ही सबसे अधिक श्रेष्ठ है। सदाचारविहीन व्यक्ति समस्त पापों से दूषित रहता है। कृतघ्नता सबसे महान् पाप बताया गया है। यह मनुष्य के अन्दर रहने वाला सबसे बड़ा दोष है जिससे समाज की प्रगति अवरुद्ध होती है। जिसने हमारा उपकार किया हो उसका उपकार मानना सबसे बड़ा मानवीय धर्म है। इसलिए इस पुराण में स्थान-स्थान पर परोपकार और उदारता के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। पाप-कर्म करने वाले व्यक्तियों के लिए अनेक प्रकार के नरक बताये गये है जो मनुष्य को भीषण यातनाओं से भय उत्पन्न कराते हैं। वस्तुतः इन सबकी गणना मनुष्यों के लिए एक चेतावनी है जिससे मनुष्य स्वभाव से ही अच्छे कर्मों में प्रवृत्त हो क्योंकि जैसा कर्म व्यक्ति करता है, उसका फल उसे उसी रूप में प्राप्त होता है यह शाश्वत नियम है।

पुराणों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि वर्तमान समय में प्राप्त पुराण एक समय में एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गए है। अपितु उनमें कथावाचक अनेक व्यास लोगों द्वारा समय-समय पर नये-नये उपाख्यानों का समावेश किया गया हैं। इन सब-सब उपाख्यानों में मूल-आधार प्राचीन जनश्रुतियाँ और वैदिक साहित्य में प्राप्त होने वाले गूढ ज्ञान का परिणाम है।

बलि और वामन का कथानक ऋग्वेद तथा अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। यह समस्त विश्व विष्णु के तीन चरणों के अंतर्गत है। इसी की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ आख्यान जोड़े गये हैं। पुराणों में ऐसे ही आख्यानों को रोचक ढंग से एक कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। बलि के कथानक की एक विशेषता यह भी है कि वह दानव होते हुए भी धर्मात्मा, दानी और जितेन्द्रिय है। इस कथानक का रोचक प्रसंग यह है कि बलि के द्वारा धर्मपूर्ण राज्य करने के कारण कलि का अपना प्रभाव अथवा स्वभाव नष्ट होता दिखाई पड़ रहा है। तब कलियुग स्वयं ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे अपने स्वभाव के अपहरण के विषय में निवेदन करता है। संसार की स्थिरता के हेतु भगवान् वामन का रूप धारण करते हैं। इस कथानक से राजा बलि की अपार दानशीलता का भी वर्णन मिलता है। अपने गुरु शुक्राचार्यजी के द्वारा सावधान कर दिए जाने पर भी राजा बलि शरणागत को दान न देने के लिए विरोध प्रकट करता है। वह हरि का अनन्य भक्त है, इसलिए वे जो कुछ भी याचना करेंगे, उसे देने के लिए वह प्रतिबद्ध है। राजा बलि भगवान् को दान देने के लिए अत्यधिक उत्सुक है। वह जानता है यह मेरा दान अत्यन्त विशिष्ट दान है जिससे सभी देवगण सन्तुष्ट होंगे और मेरा यज्ञ भी पूर्ण होगा। हरि एक विराट पुरुष हैं जिन्होंने वामनरूप धारण किया है, जैसे ही राजा बलि अपने हाथ से दान के संकल्प का जल गिराता है, वैसे ही वामनरूपधारी भगवान् विराट् रूप में बदल जाते हैं। इस विराट् रूप के वर्णन में सृष्टि के समस्त जीवों को उसके भीतर दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। यही एक परम तत्त्व है।

इसके अनन्तर दैत्यवंश का भी विस्ताररूप से वर्णन इस पुराण में मिलता है। देवासुर-संग्राम की प्रचलित कथा को मुख्य आधार बनाकर पुराणों में रोचक उपाख्यान प्रस्तुत किये गए हैं। यहाँ जो दैत्यों का वर्णन प्राप्त होता है वे राक्षस अथवा रक्त-पिपासु नहीं जान पड़ते। उनका जो निवास स्थान है, वह उच्चवर्गीय जान पड़ता है। वे अच्छे शासक और कलाप्रेमी प्रतीत होते हैं। सभी प्रकार के शास्त्रों में उनकी गति है और वे अनेक प्रकार की शक्तियों को धारण करने वाले हैं। यही कारण है कि उनमें सत्ता का अहंकार बहुत शीघ्र हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह लघुकाय वामनपुराण विषयवस्तु की दृष्टि से कम नहीं है। इसमें पुराणों के लक्षणानुसार सभी विषयों को प्रतिपादित किया गया है। वामनपुराण का यह संस्करण सरल हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यथास्थान गंभीर विषय को स्पष्ट किया गया है। इस पुराण में मूल ग्रन्थ का आधार काशिराजन्यास से प्रकाशित संस्करण से लिया गया है, तथापि अध्यायों की गणना प्राचीन ही रखी गयी है। इस पर विद्वज्जनों का परामर्श या सम्मति प्राप्त होती है, तो हम उनके आभारी होंगे।

विषयानुक्रमणिका

॥ॐ श्रीगणेशाय नमः॥

वामनमहापुराणम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

(शिव-सती संवाद)

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य, नारायण, देवी सरस्वती तथा व्यासजी को नमस्कार करके जय (पुराण, रामायण महाभारतादि) का अध्ययन करना चाहिए।

त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य बलेरिन्द्राय यो ददौ।
नमस्तस्मै सुरेशाय छद्मवामनरूपिणे॥ १॥

जिसने बलि के त्रिलोक (स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल) के राज्य को अतिक्रमित करके इन्द्र को दे दिया, ऐसे वामनरूपधारी सुरेश्वर विष्णु को नमस्कार है।

पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम्॥ २॥

एक समय वाणी के रहस्य को जानने वाले विद्वानों में श्रेष्ठतम ऋषिवर पुलस्त्य जब अपने आश्रम में विराजमान थे तब नारद ने उनसे वामनावतार से संबन्धित पुराण कथा के बारे में पूछा।

कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्मामाचक्ष्व पृच्छतः॥ ३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! प्राचीन काल में सर्वव्यापक भगवान् विष्णु ने वामन का रूप किसलिए धारण किया था, कृपया मुझ जिज्ञासु को आप वह कथा सुनाएँ!

कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
त्रिदशैर्युयुधे सार्द्धमत्र मे संशयो महान्॥ ४॥

राक्षसश्रेष्ठ प्रह्लाद ने वैष्णव होते हुए भी देवताओं के साथ क्यों युद्ध किया— इस विषय में मुझे महान् संशय है।

श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती।
शङ्करस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी॥ ५॥

हे द्विजश्रेष्ठ! श्रेष्ठ वर का वरण करने वाली दक्षपुत्री सती भगवान् शङ्कर की प्रिय पत्नी थीं— ऐसा सुना जाता है।

किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना।
जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः॥ ६॥
पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा।
एतं मे संशयं छिन्धि सर्ववित्त्वं मतोऽसि मे॥ ७॥

उस सुमुखी सती ने किसलिए अपने शरीर का परित्याग करके पर्वतराज महात्मा हिमालय के घर में जन्म ग्रहण किया? और फिर वह कल्याणशीला किसलिए देवाधिदेव शङ्कर की पत्नी बनीं? मैं आपको सर्वज्ञ समझता हूँ। कृपया मेरे इस संशय को दूर करें!

तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज॥ ८॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इसके साथ ही तीर्थों एवं दानों का माहात्म्य तथा विविध व्रतों की विधि भी आप मुझे कहें।

एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम्॥ ९॥

नारद के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ मुनिवर पुलस्त्य ने तपोनिधि नारद से कहा—

पुलस्त्य उवाच

पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम॥ १०॥

पुलस्त्य बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वामनपुराण को आपके समक्ष प्रस्तुत करूँगा। आप सावधान तथा स्थिरचित्त होकर सुनिए।

पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम्।
उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम्॥ ११॥

प्राचीन समय में ग्रीष्मकाल को उपस्थित देखकर मन्दराचल पर स्थित महेश्वर से हैमवती देवी (सती) ने कहा—

ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च मे विद्यते गृहम्।
यत्र वातातपौ ग्रीष्मे स्थितयोर्नौ गमिष्यतः॥ १२॥

हे देवेश! ग्रीष्म ऋतु आ गयी है और हमारे पास कोई अपना घर नहीं है जहाँ स्थित होकर हम दोनों गरम हवा एवं धूप से बच सकें।

एवमुक्तो भवान्या तु शङ्करो वाक्यमब्रवीत्।
निराश्रयोऽहं सुदति सदाऽरण्यचरः शुभे॥ १३॥

भवानी के इस प्रकार कहने पर शङ्कर ने कहा— हे सुन्दर दाँतों वाली! हे कल्याणी! मैं आश्रयहीन होकर सदा वनों में विचरण करता हूँ।

इत्युक्ता शङ्करेणाथ वृक्षच्छायासु नारद।
निदाघकालमनयत्समं शर्वेण सा सती॥ १४॥

हे नारद! शङ्कर के द्वारा इस प्रकार कहने पर सती ने उनके साथ वृक्षों की छाया में ही ग्रीष्मकाल (निदाघ=प्रचण्ड धूप) बिताया।

निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुतः।
घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान्॥ १५॥

ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने पर वर्षाऋतु का अद्भुत समय आ गया। वह समय प्रबल राग (कामवासना) को उत्पन्न करने वाला, बादलों से दिशाओं को अन्धकार युक्त कर देने वाला तथा लोगों के आवागमन को कम कर देने वाला था।

तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम्।
प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणयं तदा॥ १६॥

उस वर्षाऋतु को उपस्थित देखकर दक्षपुत्री सती ने उस समय देवेश्वर शिव से प्रेमपूर्वक ये वचन कहे—

सत्युवाच–

विवान्ति वाता हृदयावदारणा
गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश्वर।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युतो
वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः॥ १७॥

सती ने कहा— हे देवेश! हृदय को विदीर्ण कर देने वाली हवा चल रही है। ये जल से भरे बादल गरज रहे हैं। नीले बादलों के समूह में बिजलियाँ स्फुरित हो रही हैं। मयूर निरन्तर केकाध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं।

पतन्ति धारा गगनात्परिच्युता
वका वलाकाश्च सरन्ति तोयदान्।
कदम्वसर्जार्ज्जुनकेतकीद्रुमाः
पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुमारुताहताः॥ १८॥

जलधाराएँ आकाश से च्युत होकर गिर रही हैं। बगुले और सारसगण मेघों का अनुसरण कर रहे है। वायु से आहत होकर कदम्ब, सर्ज,[१] अर्जुन[२] तथा केतकी[३] के वृक्ष पुष्पों को गिरा रहे हैं।

श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं
त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात्।
यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
प्रवृद्धमूलानपि संत्यजन्ति॥ १९॥

जिस प्रकार योगिजन अपने पूर्ण समृद्ध एवं सम्पन्न घर को भी त्याग देते हैं उसी प्रकार मेघ के गम्भीर गर्जन को सुनते ही हंसगण सरोवर को तत्क्षण छोड़ रहे हैं।

इमानि यूथानि वने मृगाणां
चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो।
तथाऽचिराभाः सुतरां स्फुरन्ति
पश्येह नीलेषु घनेषु देव।
नूनं समृद्धिं मलिनस्य दृष्ट्वा
चरन्ति शूरास्तरुणीद्रुमेषु॥ २०॥
उद्वृत्तवेगाः सहसैव निम्नगाः
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौले।
किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
निषेव्य योषिद् भवति त्वशीला॥ २१॥
नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नभः
पुष्पैश्च सर्ज्जा मुकुलैश्च नीपाः।
फलैश्च बिल्वाः पयसा तथापगाः
पत्रैः सपद्मैश्च महासरांसि॥ २२॥

हे शंभो! वनस्थलियों में मृगों के ये समूह दौड़ते हुए चर रहे हैं और आनन्दित हो रहे हैं तथा हे देव! देखिए; नीले बादलों के मध्य विद्युत् अच्छी तरह स्फुरित हो रही है। शीघ्र ही सलिल (जल) की समृद्धि को देखकर शूरगण तरुण वृक्षों के मध्य विचरण कर रहे हैं। नदियाँ सहसा ही वेग से प्रवाहित होने लगी हैं। हे शशाङ्कशेखर! इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं कि भ्रष्ट मनुष्य को प्राप्त होकर

1. Vatica Robusta
2. Tree Terminalia Arjuna
3. Pandanus Odoratissimus

स्त्रियाँ भी चरित्रहीन हो जाती हैं। नीले बादलों से आकाश, पुष्पों से सर्ज, मुकुलों से कदम्ब, फलों से बिल्व का वृक्ष, जल से नदियाँ तथा कमलपत्रों से महासरोवर आवृत्त हो गया है।

इतीदृशे शङ्कर दुःसहेऽद्भुते
काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि।
गृहं कुरुष्वात्र महाचलोत्तमे
सुनिर्वृता येन भवामि शंभो।।२३।।

हे शङ्कर! इस प्रकार दुःसह, अद्भुत एवं भयंकर काल में मैं आपसे कहती हूँ कि इस उत्तम एवं महान् पर्वत पर घर बनाइए जिससे मैं निश्चिन्त हो सकूँ।

इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे।
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थे
मृगारिचर्मावृतदेहिनः प्रिये।। २४।।
ममोपवीतं भुजगेश्वरः शुभे
कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः।
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहि-
र्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः।। २५।।

इस प्रकार के मनमोहक वचन को सुनकर शङ्करजी ने यह वाक्य कहा— हे प्रिये! व्याघ्रचर्म धारण करने वाले मेरे पास गृह-निर्माण के लिए धन नहीं है। हे शुभे! सर्पराज वासुकि मेरे यज्ञोपवीत हैं; कान में पद्म तथा पिङ्गल नामक सर्प हैं और कम्बल तथा धनञ्जय नामक सर्प मेरी दोनों भुजाओं के बाजूबन्द हैं।

नागस्तथैवाश्वतरो हि कङ्कणं
सव्येतरे तक्षक उत्तरे तथा।
नीलोऽपि नीलाञ्जनतुल्यवर्णः
श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः।। २६।।

मेरे दाहिने हाथ में अश्वतर नाग तथा बाएँ हाथ में तक्षक कंगन रूप में हैं; मेरी कमर में नीले काजल के समान रंग वाला नील सर्प सम्यक् रूप से स्थित होकर शोभित हो रहा है।

पुलस्त्य उवाच–

इति वचनमथोग्रं शङ्करात्सा मृडानी
ऋतमपि तदसत्यं श्रीमदाकर्ण्य भीता।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रात्
परिवदति सरोषं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णम्।। २७

पुलस्त्य ने कहा— सत्य होने पर भी असत्य जैसे प्रतीत होने वाले इस प्रकार के उग्र वचन को शङ्कर से सुनकर सती भयभीत हो गयीं। स्वामी (पति) के निवास-दुःख के कारण क्रोध तथा लज्जा से गरम श्वास (उच्छ्वास) लेते हुए पृथ्वीतल की ओर देखकर सती ने दुःख से कहा।

देव्युवाच–

कथं हि देवदेवेश प्रावृट्कालो गमिष्यति।
वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः।। २८।।

देवी ने कहा— हे देवदेवेश! वृक्ष के नीचे मैं पूरे वर्षाकाल को कैसे बिताऊँगी? इसलिए अत्यधिक दुःख के कारण मैं गृहनिर्माण के लिए निवेदन कर रही हूँ।

शङ्कर उवाच–

घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति।
यथाऽम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे।। २९।।

शङ्कर बोले— आप इस प्रकार जब अपने शरीर को बादलों के ऊपर स्थापित कर लोगी तो निश्चित है कि जलधाराएँ आपके शरीर पर नहीं पड़ेगीं। इस तरह वर्षाऋतु का समय सरलता के साथ व्यतीत कर सकोगी।

पुलस्त्य उवाच–

ततो हरस्तद्घनखण्डमुन्नत-
मारुह्य तस्थौ सह दक्षकन्यया।
ततोऽभवन्नाम तदेश्वरस्य
जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि।। ३०।।

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर भगवान् शिव दक्षपुत्री सती के साथ बादल के उस उन्नत खण्ड पर आरोहित होकर बैठ गए। इसी समय से स्वर्ग में भगवान् शिव का एक नाम 'जीमूतकेतु' प्रसिद्ध हुआ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे हरललिते
प्रथमोऽध्यायः।। १।।

अथ द्वितीयोऽध्याय:

(नर की उत्पत्ति)

पुलस्त्य उवाच-

ततस्त्रिनेत्रस्य गत: प्रावृट्कालो घनोपरि।
लोकानन्दकरी रम्या शरत्समभवन्मुने॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुने! इस प्रकार बादलों के ऊपर ही भगवान् शङ्कर का वर्षाकाल व्यतीत हुआ। वर्षाकाल के पश्चात् लोक को आनन्दित कर देने वाली रमणीय शरद् ऋतु का आगमन हुआ।

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं
वृक्षांश्च कङ्का: सरितस्तटानि।
पद्मा: सुगन्धं निलयानि वायसा
रुरुर्विषाणं कलुषं जलाशया:॥ २॥

तब नीले मेघों ने आकाश को, बगुलों ने वृक्षों को और नदियों ने तटों को त्याग दिया। कमल सुगन्धित हो गए और कौओं ने अपने घोसलों का त्याग कर दिया। रुरु मृगों ने अपने सींग का तथा जलाशयों ने मलिनता का परित्याग कर दिया।

विकासमायान्ति च पङ्कजानि
चन्द्रांशवो भान्ति लता: सुपुष्पा:।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि
सन्तश्च सन्तोषमनुव्रजन्ति॥ ३॥

कमल खिलने लगे। चाँदनी सुन्दर लगने लगी। लताएँ पुष्पों से युक्त हो उठीं। पशुगण हृष्ट-पुष्ट होकर आनन्दित हो उठे तथा सज्जनों को संतोष प्राप्त होने लगा।

सरस्सु पद्मा गगने च तारका
जलाशयेष्वेव तथा पयांसि।
सतां च चित्तं हि दिशां मुखै: समं
वैमल्यमायान्ति शशाङ्ककान्तय:॥ ४॥

सरोवर में कमल, आकाश में तारागण, जलाशयों में जल, स्वच्छ दिशाओं के मुखों के साथ सज्जनों का चित्त तथा चन्द्रमा की किरणें—सब एक साथ निर्मल हो उठीं।

एतादृशे हर: काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम्।
सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ॥ ५॥

ऐसे समय में मेघ के पृष्ठ पर अधिरूढ सती को लेकर भगवान् शङ्कर पर्वतराज मन्दराचल पर पहुँचे।

ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थित: समशिलातले।
रराम शंभुर्भगवान्सत्या सह महाद्युति:॥ ६॥

महातेजस्वी भगवान् शंभु ने उस मन्दराचल के समान शिलातल वाले पृष्ठभाग पर सती के साथ रमण करते हुए समय व्यतीत किया।

ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे।
दक्ष: प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम्॥ ७॥

शरद् ऋतु के बीत जाने पर और भगवान् विष्णु के जग जाने पर प्रजापतिश्रेष्ठ दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया।

द्वादशैव स चादित्याञ्छक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
सकश्यपान्समामन्त्र्य सदस्यान्समचीकरत्॥ ८॥

द्वादश आदित्यों, कश्यपादि ऋषियों सहित देवश्रेष्ठ इन्द्रादि को आमंत्रित करके दक्ष ने उन सबको यज्ञ का सदस्य बनाया।

अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम्।
सहाऽनुसूययाऽत्रिं च सह धृत्या च कौशिकम्॥ ९॥
अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया।
चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा॥ १०॥
आमन्त्र्य कृतवान्दक्ष: सदस्यान्यज्ञकर्मणि।
सदस्यान्गुणसंपन्नान्वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ११॥

हे ब्रह्मन्! दक्ष ने अरुन्धतीसहित श्रेष्ठव्रतधारी वसिष्ठ को, अनसूयासहित अत्रि को, धृति सहित कौशिक को, अहिल्यासहित गौतम को, अमायासहित भरद्वाज को तथा चन्द्रमासहित अङ्गिरस को भी यज्ञ का सदस्य बनाया। विद्वान् दक्ष ने उन वेद-वेदांग के पारंगत एवं गुणसम्पन्न ऋषियों को आमंत्रित किया और यज्ञकर्म का सदस्य बनाया।

धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह।
निमन्त्र्य यज्ञवाटस्य द्वारपालात्वमादिशत्॥ १२॥

दक्ष ने धर्म को उनकी पत्नी अहिंसा के साथ निमंत्रित किया और उन्हें यज्ञमण्डप का द्वारपाल नियुक्त किया।

अरिष्टनेमिनं चक्रे इध्माहरणकारिणम्।
भृगुं च सत्रसंस्कारे सम्यग्दक्ष: प्रयुक्तवान्॥ १४॥

तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम्।
धनानामाधिपत्ये स युक्तवान्हि प्रजापतिः॥ १५॥

दक्ष ने अरिष्टनेमि को यज्ञ में समिधा की व्यवस्था के लिए नियुक्त किया तथा भृगु को मंत्रों के सम्यक् संस्कार के लिए प्रयुक्त किया। वैसे ही रोहिणी के सहित पवित्र चन्द्रदेव को प्रजापति ने यज्ञ का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया।

जामातृन्दुहितृंश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः।
सशङ्करां सतीं मुक्त्वा मखे सर्वान्न्यमन्त्रयत्॥ १६॥

प्रजापति ने शङ्कर के साथ सती को छोड़कर अपने सभी दामादों, बेटियों तथा पौत्रों को यज्ञ में निमंत्रित किया।

नारद उवाच–

किमर्थं लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रितः॥ १७॥

नारद बोले— लोकपति दक्ष ने किस कारण से आद्य, सबके लिए वरणीय, ज्येष्ठ एवं धनाधिपति होते हुये भी (यज्ञ में) महेश्वर को निमंत्रित नहीं किया?

पुलस्त्य उवाच–

ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाञ्छिवः।
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १८॥

पुलस्त्य ने कहा— दक्ष ने भगवान् शङ्कर को आद्य, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ एवं सबके द्वारा वरणीय होने पर भी कपाली (नरमुण्ड को भिक्षापात्र के रूप में प्रयोग करने वाला) समझकर यज्ञ में निमंत्रित नहीं किया।

नारद उवाच–

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
कपाली भगवाञ्जातः कर्मणा केन शङ्करः॥ १९॥

नारद ने कहा— देवताओं में श्रेष्ठ; शूलधारी एवं त्रिलोचन भगवान् शङ्कर को किस कर्म के कारण कपाली होना पड़ा था?

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
प्रोक्तामादिपुराणेषु ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्तिना॥ २०॥

पुलस्त्य ने कहा— अव्यक्तमूर्ति ब्रह्मा के द्वारा आदि पुराण में कहे गये इस प्राचीन वृत्तान्त को आप सावधान होकर सुनिए।

पुरा त्वेकार्णवं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमे।
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रनष्टपवनानलम्॥ २१॥

प्राचीन काल में यह सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक जगत् चन्द्र, सूर्य, तारा, वायु एवं अग्नि से रहित था। यह मात्र जलमय था।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावविवर्जितम्।
निमग्नपर्वततरु तमोभूतं सुदुर्दशम्॥ २२॥

उस रूप जगत् की दशा तर्क द्वारा अगम्य, दुर्विज्ञेय तथा भाव एवं अभाव से रहित थी। पर्वत एवं वृक्ष सब जल में निमग्न थे। इस तरह यह जगत् तमप्रधान एवं दुर्दशा से युक्त था।

तस्मिन्स शेते भगवान्निद्रां वर्षसहस्रिकीम्।
रात्र्यन्ते सृजते लोकान्राजसं रूपमास्थितः॥ २३॥

उस काल में भगवान् सहस्र वर्ष की समयावधि वाली रात्रि में सोया करते हैं। रात्रि के अन्त में वह ईश्वर राजस रूप में स्थित होकर लोकों (चतुर्दश) की रचना करते हैं।

राजसः पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः।
स्रष्टा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः॥ २४॥

वे पंचमुख भगवान् वेद एवं वेदांग में पारङ्गत और अद्‌भुत दर्शन वाले हैं। वे ही इस चराचर जगत् के स्रष्टा हैं।

तमोमयस्तथैवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः।
शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन्॥ २५॥

इसी तरह तीन नेत्रों से युक्त, हाथ में त्रिशूल धारण किए हुए, जटाजूट से युक्त तथा रुद्राक्ष माला लिए हुए एक अन्य तमोमय स्वरूप भी प्रकट हुआ।

ततो महात्मा ह्यसृजदहंकारं सुदारुणम्।
येनाक्रान्तावुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ॥ २६॥

तदनन्तर परमात्मा ने प्रचण्ड अहंकार की सृष्टि की जिससे ये दोनों देव प्रभावित हुए। इन्हीं दो देवों का नाम ब्रह्मा एवं शङ्कर है।

अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम्।
को भवानिह संप्राप्तः केन सृष्टोऽसि मां वद॥ २७॥

अहंकार से आवृत रुद्र ने ब्रह्मा से कहा— आप कौन है? यहाँ कहाँ से आए हैं? और आपकी रचना किसने की है! यह सब मुझे बताइए।

पितामहोऽप्यहंकारी प्रत्युवाचाथ को भवान्।
भवतो जनकः कोऽत्र जननी वा तदुच्यताम्॥ २८॥

पितामह ने भी अहङ्कार से आवृत होकर प्रत्युत्तर में कहा— आप कौन हैं? आपके माता-पिता कौन हैं? मुझे बताइए।

इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मेशाभ्यां कलि प्रिय।
परिवादोऽभवत्तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत्॥ २९॥

हे कलिप्रिय नारद! ब्रह्मा एवं शङ्कर के मध्य इस प्रकार पारस्परिक विवाद हुआ वहीं आपकी उत्पत्ति हुई।

भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पतत्।
धारयन्नतुलां वीणां कुर्वन्किलकिलाध्वनिम्॥ ३०॥

आप भी उत्पन्न होते ही अतुलनीय वीणा को धारण करके उससे किलकिल ध्वनि करते हुए अन्तरिक्ष में चले गए।

ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना पद्मयोनिना।
तस्थावधोमुखो दीनो ग्रहक्रान्तो यथा शशी॥ ३१॥

तदनन्तर अहंकारयुक्त ब्रह्मा से पराभूत शङ्कर ग्रहों से घिरे हुए चन्द्रमा की तरह अधोमुख एवं दीन हो गए।

पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना।
क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चमं मुखमब्रवीत्॥ ३२॥

जब ब्रह्मदेव के द्वारा शङ्कर पराजित हो गये तो उन क्रोधान्धकारित रुद्र से ब्रह्मा के पाँचवे मुख ने कहा।

अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्त्ते त्रिलोचन।
दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान्॥ ३३॥

हे तपोमूर्ति हे त्रिलोचन! मैं आपको जानता हूँ आप दिगम्बर (वस्त्रविहीन=नग्न), वृषभ पर आरूढ़ होने वाले एवं संसार का क्षय करने वाले हैं।

इत्युक्तः शङ्करः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा।
निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानजः॥ ३४॥

ब्रह्मा के मुख द्वारा इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर शिव क्रोधित हो गए। अजन्मा भगवान् शङ्कर ने कुपित नेत्र से जला डालने की इच्छा के साथ ब्रह्मा के मुख को निरन्तर देखा।

ततस्त्रिनेत्रस्य समुद्भवन्ति
वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि।
श्वेतं च रक्तं कनकावदातं
नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभ्रम्॥ ३५॥

परिणामतः त्रिनेत्र शङ्कर के श्वेत, रक्त, स्वर्णिम, नील तथा शुभ्र पिंगल वर्ण के पाँच सुन्दर मुख उत्पन्न हुए।

वक्त्राणि दृष्ट्वाऽर्कसमानि सद्यः
पैतामहं वक्त्रमुवाच वाक्यम्।
समाहतस्याथ जलस्य बुद्बुदा
भवन्ति किं तेषु पराक्रमोऽस्ति॥ ३६॥

उन सूर्य के समान मुखों को देखकर पितामह ब्रह्मा के मुख ने तत्काल कहा-आलोडित जल में बुद्बुद तो उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु क्या उनमें पराक्रम भी होता है?

तच्छुत्वा क्रोधयुक्तेन शङ्करेण महात्मना।
नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम्॥ ३७॥

इस वाक्य को सुनकर क्रोध से भर आये महात्मा शङ्कर ने अपने नख के अग्रभाग से कठोर वचन बोलने वाले ब्रह्मा के शिर को काट डाला।

तच्छिन्नं शङ्करस्यैव सव्ये करतलेऽपतत्।
पतते न कदाचिच्च तच्छङ्करकराच्छिरः॥ ३८॥

फिर ब्रह्मा का वह कटा हुआ शिर शङ्कर के बाएँ हाथ में आ गिरा और फिर शङ्कर के हाथ से वह शिर कभी नहीं गिरा।

अथ क्रोधावृतेनापि ब्रह्मणाऽद्भुतकर्मणा।
सृष्टस्तु पुरुषो धीमान्कवची कुण्डली शरी॥ ३९॥

तब अद्भुत कर्म करने वाले क्रोधित ब्रह्मा ने कवच, कुण्डल व बाण धारण करने वाला एक बुद्धिमान् पुरुष उत्पन्न किया।

धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः।
चतुर्भुजो महातूणी आदित्यसमदर्शनः॥ ४०॥

वह पुरुष हाथ में धनुष धारण किये हुये था। वह महाबाहु, बाणशक्तिधर, अव्यय, महातूणीर से युक्त, चार भुजाओं वाला तथा सूर्य के सदृश तेजस्वी था।

स प्रा गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन्निपातये।
भवान्पापसमायुक्तः पापिष्ठं को जिघांसति॥४१॥

उसने कहा— हे दुर्बुद्धि शङ्कर! तुम चले जाओ! मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता। तुम पापी हो; पापी को कौन मारना चाहता है?

इत्युक्तः शङ्करस्तेन पुरुषेण महात्मना।
त्रपायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम्॥४२॥

उस महात्मा पुरुष ने जब ऐसा कहा तो रुद्र शङ्कर लज्जित होकर बदरिकाश्रम की ओर चले गए।

नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा॥४३॥

बदरिकाश्रम हिमालय पर्वत पर नर एवं नारायण का स्थान है, जहाँ नदियों में श्रेष्ठ पुण्यशीला सरस्वती वहती है।

तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह।
भिक्षां प्रयच्छ भगवन्महाकापालिकोऽसि भोः॥४४॥

वहाँ जाकर शिव ने नारायण के दर्शन किये। तदनन्तर शिव ने नारायण से कहा— भगवन्! मैं महाकापालिक हूँ, मुझे भिक्षा प्रदान कीजिए।

इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्रं वचनमब्रवीत्।
सव्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर॥४५॥

ऐसा कहे जाने पर धर्मपुत्र नारायण ने रुद्र से कहा— हे महेश्वर! तुम त्रिशूल से मेरी बाँयी भुजा को प्रताडित करो।

नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः।
सव्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान्॥४६॥

नारायण की बात को सुनकर त्रिलोचन ने त्रिशूल से वेगपूर्वक नारायण की बाँयी भुजा को प्रताडित किया।

त्रिशूलाभिहतान्मार्गात्तिस्रो धारा विनिर्ययुः।
एका गगनमाक्रम्य स्थिता ताराभिमण्डिता॥४७॥

त्रिशूल से अभिहत मार्ग से तीन धाराएँ निकलीं। उनमें से एक धारा आकाश को आक्रान्त करके ताराओं के रूप में स्थित है।

द्वितीया न्यपतद्भूमौ तां जग्राह तपोधनः।
अत्रिस्तस्मात्समुद्भूतो दुर्वासाः शङ्करांशतः॥४८॥

दूसरी धारा भूमि पर गिरी। उसे तपोधन अत्रि ने गृहीत किया, उसी से शङ्कर के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए।

तृतीया न्यपतद्धारा कपाले रौद्रदर्शने।
तस्माच्छिशुः समभवत्संनद्धकवचो युवा॥४९॥

तीसरी धारा भयंकर दिखायी पड़ने वाले कपाल पर आ गिरी। उससे एक शिशु उत्पन्न हुआ। तत्काल वह शिशु कवच से युक्त होकर युवा हो गया।

श्यामावदातः शरचापपाणि-
गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ।
इत्थं ब्रुवन्कस्य विनाशयामि
स्कन्धाच्छिरस्तालफलं यथैव॥५०॥

शर एवं चाप हाथ में लिए हुए श्याम वर्ण का वह युवक वर्षाकालीन मेघ के समान गर्जन करता हुआ ''वृक्ष से तालफल के समान किसके स्कन्ध से शिर को अलग कर दूँ'' — इस प्रकार कह रहा था।

तं शङ्करोऽवेत्य वचो बभाषे
नरं हि नारायणबाहुजातम्।
निपातयैनं नर दुष्टवाक्यं
ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम्॥५१॥

नारायण के बाहु से उत्पन्न उस नर के समीप जाकर शङ्कर बोले— हे नर! दुष्ट वचन बोलने वाले एवं सैकड़ों सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशमान इस ब्रह्मपुत्र को आप मार दीजिए!

इत्येवमुक्तः स तु शङ्करेण
आद्यं धनुस्त्वाजगवं प्रसिद्धम्।
जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि
युद्धाय वीरः स मतिं चकार॥५२॥

शङ्कर के ऐसा कहने पर उसने आद्य एवं प्रसिद्ध आजगव नामक धनुष तथा अक्षय तूणीर को उठा लिया और उससे युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

ततः प्रयुद्धौ सुभृशं महाबलौ
ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्च शार्वः।
दिव्यं सहस्रं परिवत्सराणां
ततो हरोऽभ्येत्य विरिञ्चिमूचे॥ ५३॥

तदनन्तर ब्रह्मा के पुत्र एवं बाहु से उत्पन्न शङ्कर दोनों महाबलियों ने हजारों दिव्य वर्षों तक प्रबल युद्ध किया। फिर शङ्कर ब्रह्मा के पास पहुँचकर बोले।

जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामह
नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली।
महापृषत्कैरभिपत्य ताडित-
स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव॥ ५४॥

हे पितामह! दिव्य व अद्भुत कर्म करने वाले नर ने आपके बलवान् पुरुष को जीत लिया। उन्होंने इन दशों दिशाओं में व्याप्त होने वाले महान् बाणों से इस अद्भुत पुरुष को ताडित किया।

ब्रह्मा तमीशं वचनं बभाषे
नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो।
पराजितः चैष्यतेऽसौ त्वदीयो
नरो मदीयः पुरुषो महात्मा॥ ५५॥

ब्रह्मा ने तब उस ईश से कहा— हे शंभो! इसका जन्म किसी से पराजित होने के लिए नहीं हुआ है। आपके ही नर पराजित हो सकते हैं। मेरा पुरुष महान् व अपराजेय है।

इत्येवमुक्तो वचनं त्रिनेत्रः
चिक्षेप सूर्ये पुरुषं विरिञ्चेः।
नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे
चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः॥ ५६॥

ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर शङ्कर ने ब्रह्मा के पुरुष को सूर्यमण्डल में फेंक दिया। नर को उस देव ने धर्मपुत्र के शरीर में फेंक दिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे हरललिते
नरोत्पत्तिप्रलयो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(शिव को ब्रह्महत्या का दोष तथा उससे मोक्ष)

पुलस्त्य उवाच–

ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते।
संतापमगमद्ब्रह्मंश्चिंतयाऽऽकुलितेन्द्रियः॥ १॥

पुलस्त्य बोले— हे ब्रह्मन्! अपने करतल में उस भयंकर कपाल के स्थित रहने से रुद्र चिन्ता से व्याकुल इन्द्रिय वाले होकर संतप्त होने लगे।

ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा।
संरक्तमूर्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम्॥ २॥

तब शङ्कर के पास ब्रह्महत्या आ गयी। वह रौद्र, नीलाञ्जन के समूह के समान कान्तियुक्त लाल केशों से युक्त तथा भयंकर थी।

तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम्।
कासि त्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद॥ ३॥

उस विकराल ब्रह्महत्या को पास आयी देखकर शिव ने उससे पूछा— हे रौद्रे! आप कौन हैं? आप किस प्रयोजन से आयी हैं? कृपया बताइए!

कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा।
ब्रह्महत्याऽस्मि संप्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोचन॥ ४॥

उस दारुण ब्रह्महत्या ने शङ्कर से कहा— हे त्रिलोचन! मैं ब्रह्महत्या हूँ। आपके पास आयी हूँ। कृपया आप मुझे स्वीकार करें।

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश तम्।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं संप्रतापितविग्रहम्॥ ५॥

ऐसा कहने के पश्चात् वह ब्रह्महत्या हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले तथा संताप युक्त शरीर वाले रुद्र में प्रवेश कर गई।

ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम्।
आगच्छन्नो ददर्शाथ नरनारायणावृषी॥ ६॥

ब्रह्महत्या से अभिभूत होने के कारण बदरिकाश्रम आए हुए रुद्र ने नर एवं नारायण दोनों ऋषियों का दर्शन प्राप्त नहीं किया।

अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः।
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत्॥ ७॥

धर्मपुत्रों (नर व नारायण) का दर्शन न कर पाने के कारण शङ्कर चिन्ता व शोक से युक्त यमुना में स्नान करने के उद्देश्य से गए किन्तु यमुना भी तुरन्त सूखे जल वाली हो गयी।

कालिन्दीं शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः।
प्लक्षजां स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता॥८॥

वृषकेतन शङ्कर यमुना को शुष्क देखकर सरस्वती नदी में स्नान करने के लिये गए किन्तु वह भी अपने स्थान से अदृष्ट हो गयी।

ततोऽनुपुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च।
सैन्धवारण्यमेवासौ गत्वा स्नातो यथेच्छया॥९॥

तब उन्होंने पुष्करारण्य, मागधारण्य तथा सैन्धवारण्य में जाकर वहाँ इच्छानुसार स्नान किया।

तथैव निमिषारण्यं धर्मारण्यं तथेश्वरः।
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत॥१०॥

भगवान् शङ्कर ने नैमिषारण्य व धर्मारण्य में भी स्नान किया। किन्तु फिर भी वे उस रौद्र ब्रह्महत्या से मुक्त नहीं हो पाए।

सरित्सु तीर्थेषु तथाऽऽश्रमेषु
पुण्येषु देवायतनेषु शर्वः।
समायुतो योगयुतोऽपि पापा-
न्नावाप मोक्षं जलदध्वजोऽसौ॥११॥

अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों तथा पुण्य देवालयों में स्नान करने तथा योग से सम्पन्न होने पर भी वृषभध्वज शङ्कर पाप से मुक्त नहीं हो सके।

ततो जगाम निर्विण्णः शङ्करः कुरुजाङ्गलम्।
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगस्थितम्॥१२॥

तब खिन्न होकर शङ्कर कुरुजांगल चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने हाथ में चक्र धारण करने वाले और गरुड़ को ध्वजा-पताका के रूप में धारण करने वाले भगवान् विष्णु का दर्शन किया।

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदैरयत्॥१३॥

शङ्ख, चक्र व गदा धारण करने वाले उन कमलनयन विष्णु को देखकर शिव ने दोनों हाथ जोड़कर स्तुतिपूर्वक कहा।

हर उवाच–

नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज।
शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते॥१४॥

शङ्कर बोले– हे देवतानाथ! हे गरुडध्वज! हाथ में शङ्ख-चक्र व गदा धारण करने वाले हे वासुदेव! आपको मेरा नमस्कार है।

नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे।
ज्ञानाज्ञाननिरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते॥१५॥

हे निर्गुण, अनन्त और तर्कातीत विधाता! आपको नमस्कार है। हे ज्ञान व हे अज्ञानस्वरूप, हे निरालम्ब! हे सर्वालम्ब! आपको नमस्कार है।

रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्त्ते सनातन।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम्॥१६॥

हे सनातन! हे ब्रह्ममूर्ति! हे रजःसम्पन्न! आपको नमस्कार है। हे नाथ! आपसे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का सृजन हुआ है।

सत्त्वाधिष्ठितलोकेश विष्णुमूर्त्ते अधोक्षज।
प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते॥१७॥

हे सत्त्व में प्रतिष्ठित लोकेश! हे अधोक्षज! हे विष्णुमूर्ति! हे प्रजापालक! हे महाबाहु! हे जनार्दन! आपको नमस्कार है।

तमोमूर्त्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसंभवः।
गुणाभियुक्तो देवेश सर्वव्यापिन्नमोऽस्तु ते॥१८॥

हे तमोमूर्ति! मैं आपके अंश क्रोध से उत्पन्न हूँ। हे गुणनिधान! हे सर्वव्यापी देवेश! आपको नमस्कार है।

भूरियं त्वं जगन्नाथ जलाम्बरहुताशनः।
वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते॥१९॥

हे जगन्नाथ! आप ही पृथ्वी, जल, आकाश तथा यज्ञ के अधिष्ठाता हैं। आप ही वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं। आपको नमस्कार है।

धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचमार्जवम्।
क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर॥२०॥

हे ईश्वर! आप ही धर्म, यज्ञ, तप, सत्य, अहिंसा, शौच, ऋजुता, क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी तथा ब्रह्मचर्य हैं।

त्वं साङ्गाश्च चतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः।
उपवेदो भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते॥ २१॥

हे ईश! आप ही व्याकरण, ज्योतिषादि षडंग सहित चारों वेद हैं। आप ही वेदों के मर्मज्ञ, आप ही जानने योग्य हैं। आप ही सभी उपवेद हैं। आप सब कुछ हैं। आपको नमस्कार है।

नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे
नमोऽस्तु ते माधव मीनमूर्त्ते।
लोके भवान्कारुणिको मतो मे
त्रायस्व मां केशव पापबन्धात्॥ २२॥

हे चक्रपाणि! हे अच्युत! आपको नमस्कार है। हे वामनमूर्ति! हे मीनमूर्ति! आपको नमस्कार है। इस लोक में आप ही परम दयावान् माने गए हैं। इसलिए हे केशव! इस पापबन्धन (ब्रह्महत्या) से आप मेरी रक्षा करें।

ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं
यद्ब्रह्महत्याभिभवं बभूव।
दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी
पुनीहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते॥ २३॥

ब्रह्महत्या से व्याप्त मेरे शरीर में विद्यमान इस पाप का नाश कीजिए! उचित व अनुचित का विवेक न रखने के कारण मैं दग्ध एवं विनष्ट हो गया हूँ। आप तीर्थ हैं मुझे पवित्र कीजिए! आपको नमस्कार है।

पुलस्त्य उवाच–

इत्थं स्तुतश्चक्रधरः शङ्करेण महात्मना।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि॥ २४॥

पुलस्त्य बोले– महात्मा शङ्कर के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् विष्णु ब्रह्महत्या के विनाश के लिए निम्न वचन बोले।

हरिरुवाच–

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाचं कलस्वनाम्।
ब्रह्महत्याक्षयकरीं शुभदां पुण्यवर्द्धनीम्॥ २५॥

विष्णु बोले– हे महेश्वर! मेरी इस ब्रह्महत्या को विनष्ट करने वाली, श्रुतिसुखद, कल्याणकारी तथा पुण्य का वर्धन करने वाली वाणी को सुनो।

योऽसौ पाङ्गण्डले पुण्ये मदंशप्रभवोऽव्ययः।
प्रयागे वसते नित्यं योगशायीति विश्रुतः॥ २६॥

पुण्यमय प्राङ्गण्डल प्रयाग में योगशायी के रूप में विश्रुत अव्यय पुरुष नित्य निवास करते हैं। वे मेरे अंश से उत्पन्न हुए हैं।

चरणाद्दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्वरा।
विश्रुता वरणेत्येवं सर्वपापहरा शुभा॥ २७॥

इनके दक्षिण चरण से सभी पापों का विनाश करने वाली, वरणा नाम से विश्रुत एक श्रेष्ठ तथा कल्याणकारिणी नदी निकली है।

सच्यादन्या द्वितीयाच असीरित्येव विश्रुता।
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः॥ २८॥

इसी तरह इनके वाम चरण से असि नाम से प्रसिद्ध दूसरी नदी निकली है। ये दोनों श्रेष्ठ नदियाँ लोक में पूज्य मानी जाती हैं।

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिनः।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्॥ २९॥

इन दोनों के मध्य जो देश है, वह योगशायी का क्षेत्र है। वह तीनों लोकों के श्रेष्ठतम एवं सभी पापों को नष्ट करने वाला तीर्थ है।

न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले।
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा।
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम्॥ ३०॥

हे ईश! आकाश, भूमि एवं रसातल में उसके सदृश अन्य कोई तीर्थ नहीं है। यहीं कल्याणकारिणी पुण्यशीला, तथा वाराणसी नगरी है। जहाँ जाकर भोगी लोग भी आपके पास पहुँच जाते हैं।

विलासिनीनां रशनास्वनेन
श्रुतिस्वरैर्ब्राह्मणपुङ्गवानाम्।
शुचिस्वरत्वं गुरवो निशम्य
हास्यान्विताः सन्ति मुहुर्मुहुस्ताः॥ ३१॥

जहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के वेद-पाठ एवं विलासिनी स्त्रियों की रशनाध्वनि से पवित्र स्वर को सुनकर गुरुजन बारम्बार उनमें मनोरंजन किया करते हैं।

व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु
पदान्यलक्तारुणितानि दृष्ट्वा।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्यां
किंस्वित्प्रयाता स्थलपद्मिनीयम्॥ ३२॥

जहाँ चौराहे पर निकलने वाली युवतियों के अलक्तक से रक्त पैरों को देखकर चन्द्रमा को आश्चर्य होता है कि कहीं इस स्थान से स्थलपद्मिनी तो नहीं गुजरी है।

तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि
रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु।
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभि-
र्दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः॥ ३३॥

जहाँ देवताओं के अत्युच्च शिखर वाले मंदिर रात्रि होने पर चन्द्रमा का अवरोधन किया करते हैं तथा दिन में सुन्दर पताकाओं से युक्त, पवन से आन्दोलित दीर्घाएँ सूर्य का अवरोधन किया करती हैं।

भृङ्गाश्च यस्यां शशिकान्तभित्तौ
प्रलोभ्यमानाः प्रतिबिम्बितेषु।
आलक्ष्य योषिद्विमलाननाब्जे-
ष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम्॥ ३४॥

जहाँ चन्द्रकान्तमणि की भित्ति पर प्रतिबिम्बित युवतियों के विमल मुखपंकज को देखकर लोभयुक्त भौंरे भ्रमवश दूसरे पुष्पों की ओर नहीं जाते।

परिश्रमश्चापि पराजितेषु
नरेषु संमोहनखेलनेन।
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु
न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु॥ ३५॥

हे शंभु! जहाँ संमोहन खेल से पराजित पुरुष एवं गृहबावली में जलक्रीडा के लिए एकत्रित स्त्रियों में ही परिश्रम होता है— अन्य किसी कार्य के लिए परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती।

न चैव कश्चित्परमन्दिराणि
रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽक्षान्।
न चाबलानां तरसा पराक्रमं
करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा॥ ३६॥

हे शंभो! वहाँ पासों के अतिरिक्त कोई भी दूसरे के गृह को अवरोध नहीं पहुँचाता। इसी तरह सुरत को छोड़कर अबलाओं के साथ भी कोई आवेशयुक्त पराक्रम का व्यवहार नहीं करता।

पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदच्युतौ।
यस्यां मानमदौ पुंसां करिणां यौवनागमे॥ ३७॥

जहाँ गजेन्द्रों के बंधन में पाशग्रन्थि, मदच्युति में दानच्छेद एवं पुरुष-हाथियों के यौवनागम में ही मान व मद होते हैं।

प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः।
तारागणेऽकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो॥ ३८॥

हे विभो! जहाँ उलूक पक्षी ही सदा रात्रिप्रिय होते हैं— दूसरे जन नहीं। तारासमूह में ही अकुलीनता (कु = पृथ्वी, अकु = पृथ्वी से भिन्न, अकुलीनता = पृथ्वी के भिन्न स्थल में रहना) तथा रचना में ही छन्दोभङ्ग दिखायी देता है।

भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुंजगपरिवारिताः।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शङ्कर॥ ३९॥

हे शङ्कर! जहाँ विलासिनियाँ आपकी तरह भूतिलब्धा, (शङ्कर=भूमि अर्थात् भस्मलुब्ध हैं तो विलासनियां= भूति=धन वैभवलुब्ध हैं) भुजंगपरिवारित (शङ्कर = भुजंग अर्थात् सर्पों से घिर हुये हैं तो विलासिनियाँ = भुजंग अर्थात् जारपुरुषों से घिरी रहती हैं) तथा चन्द्रभूषित देह (दोनों के देह चन्द्र से शोभित हैं) हैं।

ईदृशायां सुरेशान वाराणस्यां महाश्रमे।
वसते भगवाँल्लोलः सर्वपापहरो रविः॥ ४०॥

हे सुरेशान! इस तरह वाराणसी नगरी स्वयं में एक महाश्रम है। सभी पापों को हरने वाले चञ्चल भगवान् रवि निवास करते हैं।

दशाश्वमेधं यत्रोक्तं मदंशो यत्र केशवः।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि॥ ४१॥

हे सुरश्रेष्ठ! दशाश्वमेध नाम से विश्रुत उस स्थान पर मेरे अंश केशव वास करते हैं। वहाँ जाकर आप पाप से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे।

इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन
वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य।
जगाम वेगाद्गरुडो यथाऽसौ
वाराणसीं पापविमोचनाय॥४२॥

गरुडध्वज विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वृषध्वज शङ्कर ने उन्हें प्रणाम किया और पापविमोचन के लिए गरुड के समान वेग से वाराणसी की ओर चल दिये।

गत्वा सुपुण्यां नगरीं सुतीर्थां
दृष्ट्वा च लोलं स दशाश्वमेधम्।
स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः
स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम॥४३॥

पुण्यशीला तीर्थ नगरी में जाकर शङ्कर ने लोल तथा दशाश्वमेध का दर्शन किया। तदनन्तर तीर्थ स्नान के द्वारा पापमुक्त होकर वे केशव के दर्शनार्थ गए।

केशवं शङ्करो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता॥४४॥

केशव का दर्शन करके शङ्कर उनके चरणों में बैठ गये और बोले— हे हृषीकेश! आपकी कृपा से ब्रह्महत्या विनष्ट हो गयी।

नेदं कपालं देवेश मद्धस्तं परिमुञ्चति।
कारणं वेद्मि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि॥४५॥

हे देवेश! यह कपाल मेरे हाथ को नहीं छोड़ रहा है। मैं इसका कारण नहीं जान पा रहा हूँ। कृपया आप मुझे इसका कारण बताइएँ।

पुलस्त्य उवाच–

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत्।
विद्यते कारणं रुद्र तत्सर्वं कथयामि ते॥४६॥

पुलस्त्य बोले— महादेव के वचन सुनकर केशव ने कहा— हे रुद्र! इसका कारण है। मैं आपको वह सब बताता हूँ।

योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो ह्रदः पद्मोत्पलैर्युतः।
एष तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः॥४७॥

यह जो मेरे सामने पद्म तथा उत्पल से युक्त दिव्य सरोवर है, वह एक पुण्यशाली तीर्थ है, देव एवं गन्धर्व इसकी पूजा करते हैं।

एतस्मिन्प्रवरे तीर्थे स्नानं शम्भो समाचर।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति॥४८॥

हे शंभु! आप इस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान कीजिए। इसमें स्नान करने मात्र से कपाल आपको आज ही छोड़ देगा।

ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यसि।
कपालमोचनेत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति॥४९॥

हे रुद्र! इसके पश्चात् आप लोक में कपाली रूप से विख्यात होंगे और यह तीर्थ कपालमोचन के रूप में प्रसिद्ध होगा।

पुलस्त्य उवाच–

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः।
कपालमोचने सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने॥५०॥

पुलस्त्य बोले— हे मुनि! सुरेश केशव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महेश्वर ने वेदोक्त विधि से कपालमोचन के लिए स्नान किया।

स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य
परिच्युतं हस्ततलात्कपालम्।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं
तत्तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात्॥५१॥

उसके तीर्थ में स्नान करने के पश्चात् शङ्कर के हस्ततल से वह कपाल गिर पड़ा। भगवान् की कृपा से वह तीर्थश्रेष्ठ तब से कपालमोचन नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे हरललितो नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(विष्णु और वीरभद्र का युद्ध)

पुलस्त्य उवाच–

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान्हरः।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे देवर्षि! इस तरह भगवान् शिव कपाली हो गये थे और इसी कारण दक्ष ने उन्हें अपने यज्ञ में निमंत्रित नहीं किया था।

एतस्मिन्नतरे देवीं द्रष्टुं गोतमनन्दनी।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम्॥ २॥

इसी बीच गौतमपुत्री जया देवीदर्शन के लिए सुन्दर गुफाओं वाले मन्दराचल पर्वत पर गयी।

तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह।
किमर्थं विजया नागाज्जयन्ती चापराजिता॥ ३॥

जया को अकेली आयी हुई देखकर सती ने जया से पूछा कि विजया, जयन्ती तथा अपराजिता क्यों नहीं आयीं?

सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वम्।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मखे मातामहस्य ताः॥ ४॥

देवी के वचन को सुनकर वह परमेश्वरी बोली— वे सभी नानाजी के यज्ञ में निमंत्रित होने के कारण वहाँ गयी हैं।

समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका॥ ५॥

पिता गौतम तथा माता अहिल्या सहित हम वहाँ जाते समय आप को देखने चले आए।

किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः।
नामन्त्रिताऽसि तातेन उताहोस्विद्व्रजिष्यसि॥ ६॥

क्या आप एवं देव महेश्वर वहाँ नहीं जाएंगे? पिताजी ने आपको आमंत्रित नहीं किया? या फिर आप लोग वहाँ जा रहे हैं?

गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यसुरास्तथा।
मातृष्वसः शशाङ्कश्च सपत्नीको गतः क्रतुम्॥ ७॥

हे मौसी! सभी ऋषि, ऋषिपत्नियाँ एवं देवतागण वहाँ पहुँच गए हैं। चन्द्रमा भी सपत्नीक वहाँ पहुँच गए हैं।

चतुर्दशसु लोकेषु जन्तवो ये चराचराः।
निमन्त्रिताः क्रतौ सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता॥ ८॥

चतुर्दश लोक में जितने भी चराचर जन्तु हैं, सभी यज्ञ में आमंत्रित हैं, क्या तुम निमंत्रित नहीं हो?

पुलस्त्य उवाच

जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातसमं सती।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन्पञ्चत्वमगमत्ततः॥ ९॥

पुलस्त्य बोले— हे ब्रह्मन्! जया के वज्रपात के समान वचन को सुनकर क्रोध से व्याप्त सती ने अपने प्राण त्याग दिये।

जया मृतां सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता।
मुञ्चती वारि नेत्राभ्यां सस्वरं विललाप ह॥ १०॥

सती को मृत देखकर जया क्रोध व शोक से भर गई। और नेत्रों से अश्रुपात करते हुए सस्वर विलाप करने लगी।

आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
आः किमेतदितीत्युक्त्वा जयाभ्याशमुपागतः॥ ११॥

जया की आक्रन्दनध्वनि को सुनकर शूलपाणि भगवान् शङ्कर 'अरे!' यह क्या हो गया— ऐसा कहते हुए जया के समीप पहुँचे।

आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः।
कृत्तां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम्॥ १२॥

शङ्कर वहाँ पहुँचे तो उन्होंने भूमि पर पतित परशु से छिन्न वनस्पति की लता के समान शिथिल अङ्गों वाली सती को देखा।

देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां पप्रच्छ शङ्करः।
किमियं पतिता भूमौ निकृत्तेव लता सती॥ १३॥

शङ्कर ने देवी सती को इस तरह पड़ी हुई देखकर जया से पूछा— यह सती छिन्न लता की तरह भूमि पर क्यों पड़ी है?

सा शङ्करवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत्।
श्रुत्वा मखस्था दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह॥ १४॥
आदित्यास्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः।
मातृष्वसा विपन्नेयमन्तर्दुःखेन दह्यती॥ १५॥

शङ्कर की बात सुनकर जया ने कहा— हे त्रिलोकेश! मौसी ने यह सुनकर कि दक्ष ने अपने यज्ञ में पतियों सहित अपनी बहनों को तथा इन्द्रादियों के सहित आदित्यादि सभी देवताओं को आमन्त्रित किया है (स्वयं को अनामन्त्रित व उपेक्षित जानकर) अन्त:दुख से जलते हुए अपने प्राण त्याग दिये।

पुलस्त्य उवाच

तच्छ्रुत्वाऽथ वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभौ।
क्रुद्धस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेरुः सहसार्चिषः॥ १६॥

पुलस्त्य बोले— इस प्रकार के रौद्र वचन को सुनकर रुद्र क्रोध से परिप्लुत हो उठे। क्रुद्ध शङ्कर के सम्पूर्ण शरीर से सहसा ज्वालाएँ निकल पड़ीं।

ततः क्रोधात्त्रिनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने।
गणाः सिंहमुखा जाता वीरभद्रपुरोगमाः॥ १७॥

हे मुने! तदनन्तर क्रोध के कारण शङ्कर के शरीर के रोमों से सिंह के समान मुख वाले अनेक गण उत्पन्न हुए— जिनमें वीरभद्र प्रमुख थे।

गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्धिमसाह्वयम्।
गतः कनखलं तस्माद्यत्र दक्षोऽयजत्क्रतुम्॥ १८॥

उन गणों से परिवृत होकर शङ्कर फिर मन्दराचल से हिमालय गए। वहाँ से वे कनखल पहुँचे, जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे।

ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महाबलः।
दिशि प्रतीच्युत्तरायां तस्थौ शूलधरो मुने॥ १९॥

हे मुने! तब गणों के प्रमुख महाबलशाली तथा शूलधारी वीरभद्र पश्चिम व उत्तर दिशा में स्थित हो गये।

जया क्रोधाद्गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता।
मध्ये त्रिशूलधृक्शर्वस्तस्थौ क्रोधान्महामुने॥ २०॥

हे महामुनि! जया ने क्रोध से गदा लेकर पूर्व तथा दक्षिण दिशा में स्थान लिया। मध्य में क्रुद्ध त्रिशूलधारी शङ्कर स्थित हुए।

मृगारिवदनं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ऋषयो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन्॥ २१॥

सिंहमुख वाले वीरभद्र को देखकर इन्द्र आदि देवगण, ऋषिगण तथा यक्ष व गन्धर्व — सभी सोचने लगे कि यह क्या हो रहा है?

ततस्तु धनुरादाय शरानाशीविषोपमान्।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवत्॥ २२॥

तदनन्तर द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्पविष के समान बाणों को लेकर वीरभद्र की ओर दौड़े।

तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वज्रसन्निभम्॥ २३॥

धर्म को सहसा आक्रमण करते हुये देखकर गणेश्वर वीरभद्र ने एक हाथ से अग्निसदृश त्रिशूल उठाया।

कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान्।
चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद्गणः॥ २४॥

दूसरे हाथ में धनुष, तीसरे हाथ में बाण तथा चौथे हाथ में गदा को लेकर वीरभद्र धर्म की ओर दौड़े।

ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम्।
तस्थावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽव्ययः॥ २५॥
खड्गचर्म्मगदाप्रासपरश्वधवराङ्कुशैः।
चापमार्गणभृत्तस्थौ हन्तुकामो गणेश्वरम्॥ २६॥

अव्यय धर्मराज भी गणेश्वर को चतुर्भुज देखकर अष्ट भुजाओं से संपन्न हो गये और नाना प्रकार के आयुध स्वयं भी खड्ग, चर्म, गदा, प्रास (माला) परश्वध (परशु) श्रेष्ठ अंकुश से युक्त होकर बाण एवं धनुष धारण करके गणेश्वर को मारने के लिए प्रवृत्त हो गए।

गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्म्मं सनातनम्।
ववर्ष मार्गणांस्तीक्ष्णान्यथा प्रावृषि तोयदः॥ २७॥

गणेश्वर ने भी क्रुद्ध होकर उस सनातन धर्म को मारने के उद्देश्य से वर्षाऋतु में मेघवृष्टि के समान धनुष से तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि की।

तावन्योन्यं महात्मानौ शरचापधरौ मुने।
रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविव रेजतुः॥ २८॥

हे मुने! शर व चाप धारण करने वाले वे दोनों महापुरुष रक्त से लाल व सिक्त अङ्गों के कारण किंशुक पुष्प की तरह शोभित हो रहे थे।

ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन
जितः स धर्मस्तरसा प्रसह्य।
पराङ्मुखोऽभूद्विमना मुनीन्द्र
स वीरभद्रः प्रविवेश यज्ञम्॥२९॥

हे मुनीन्द्र! तदनन्तर गणनायक ने अपने श्रेष्ठ अस्त्रों से धर्म को बलपूर्वक जीत लिया और धर्म खिन्न मन वाले होकर पीछे हट गए। इस प्रकार वीरभद्र ने यज्ञ में प्रवेश कर लिया।

यज्ञवाटं प्रविष्टं तु वीरभद्रं गणेश्वरम्।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने॥३०॥

हे मुने! गणेश्वर वीरभद्र को यज्ञमण्डप में प्रविष्ट देखकर देवगण शस्त्रास्त्र संपन्न होकर सहसा उठ खड़े हो गए।

वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः।
इन्द्राद्या द्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि॥३१॥
विश्वे देवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः।
यक्षाः किंपुरुषा भूताः खगाश्चक्रधरास्तथा॥३२॥
राजा वैवस्वताद्वंशाद् धर्मकार्त्तिस्तु विश्रुताः।
सोमवंशोद्भवोश्चोग्रो भोजकीर्तिमहीभुजः॥३३॥
दितिजा दानवाश्चान्ये येऽन्ये तत्र समागताः।
ते सर्वेऽप्यद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदायुधाः॥३४॥

आठों श्रेष्ठ वसु, प्रचण्ड नवग्रह, इन्द्रादि द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, सिद्ध, गन्धर्व व पन्नग, यक्ष, किन्नर, विहंगम, चक्रधर, वैवस्वत वंश के प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति चन्द्रवंश के उग्र एवं महाबलशाली भोजकीर्ति, दैत्य, दानव तथा अन्य जो भी यज्ञ में आए थे, वे सभी शस्त्रास्त्र को उठाकर रौद्र वीरभद्र की ओर दौड़ पड़े।

तानापतत एवाशु बाणचापधरो गणः।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः॥३५॥

धनुष तथा बाणधारी उस गण ने शीघ्र ही बाणों से उन सम्मुख आने वालों पर वेगपूर्वक प्रहार किया।

ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन्।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तांश्चिच्छेद च बिभेद च॥३६॥

उन सब ने गणेश्वर पर अतुलनीय शस्त्रों की वर्षा की। वीरभद्र गणेश ने भी उत्कृष्ट अस्त्रों से उन लोगों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

शरैः शस्त्रैश्च सततं वध्यमाना महात्मना।
वीरभद्रेण देवाद्यास्त्वव्यवहारमरोचयन्॥३७॥

महात्मा वीरभद्र द्वारा अनेक बाणों तथा शस्त्रों से सतत आहत होने पर देवादिगण युद्ध से पराङ्मुख हो गए।

ततो विवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम्।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रत्यबन्धत॥३८॥

तदनन्तर गणाधिपति वीरभद्र यज्ञमण्डप के सुविस्तृत मध्य स्थान में पहुँचे, जहाँ हवन करने वाले ऋषिगण आहुति डाल रहे थे।

ततो महर्षयो दृष्ट्वा मृगेन्द्रवदनं गणम्।
भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम्॥३९॥

महर्षिगण सिंहवदन गणेश्वर को देखकर भयभीत हो गए और यज्ञ को छोड़ करके अच्युत की शरण में चले गए।

तानार्तांश्चक्रभृद्दृष्ट्वा महर्षींस्त्रस्तमानसान्।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थौ वरायुधः॥४०॥

भयभीत व आर्त मन वाले उन महर्षियों को देखकर श्रेष्ठ आयुध वाले चक्रधर (अच्युत) 'डरिए नहीं' कहकर खड़े हो गए।

समानम्य ततः शार्ङ्गं शरानाशीविषोपमान्।
मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान्॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने शार्ङ्गधनुष को झुकाकर अग्निशिखा के समान एवं शरीर के आवरण को विदीर्ण कर देने वाले बाण वीरभद्र पर छोड़े।

ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः।
निपेतुर्भुवि भग्नाशा नास्तिकादिव याचकाः॥४२॥

श्रीहरि के वे अमोघ बाण वीरभद्र के शरीर को प्राप्त होकर नास्तिक के पास से निराश होने वाले याचक की तरह जमीन पर गिर पड़े।

शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्य केशवः।
दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः॥४३॥

अमोघ बाणों को व्यर्थ होते देख केशव वीरभद्र को दिव्यास्त्रों से प्रच्छादित करने को उद्यत हुए।

तानस्त्रान्वासुदेवेन प्रक्षिप्तान्गणनायकः।
वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा॥ ४४॥

वासुदेव द्वारा प्रक्षिप्त उन अस्त्रों को गणनायक ने त्रिशूल, गदा तथा बाणों से निवारित कर दिया।

दृष्ट्वा विपन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः।
त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतले॥ ४५॥

अस्त्रों को व्यर्थ होते देख माधव ने गणनायक पर गदा फेंका; किन्तु उसे भी वीरभद्र ने त्रिशूल से आहत करके भूतल पर गिरा दिया।

मुसलं वीरभद्राय संचिक्षेप हलायुधः।
लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत्॥ ४७॥

उस गदा को विफल देखकर हरि ने उन पर लाङ्गल से प्रहार किया। परन्तु गणेश ने उस लाङ्गल को भी गदा से निवारित कर दिया। हलायुध ने वीरभद्र पर मूसल फेंका परन्तु वीरभद्र ने उस मूसल को भी अपने मूसल के आघात से निवारित कर दिया।

मुसलं संहतं दृष्ट्वा लाङ्गलं च निवारितम्।
वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात्खगध्वजः॥ ४८॥

गदासहित मुसल एवं लाङ्गल को व्यर्थ देखकर खगध्वज माधव ने वीरभद्र पर क्रोध से चक्र फेंका।

तमापतन्तं शतसूर्यकल्पं
सुदर्शनं वीक्ष्य गणेश्वरस्तु।
शूलं परित्यज्य जगार चक्रं
यथा मधुं मीनवपुः सुरेन्द्रः॥ ४९॥

सैकड़ों सूर्य के समान उस तेजोवान् सुदर्शन चक्र को आते हुए देखकर गणेश्वर ने त्रिशूल छोड़कर चक्र को इस प्रकार निगल लिया जैसे मीन शरीर वाले सुरेन्द्र मधुपान करते हैं।

चक्रे निगीर्णे गणनायकेन
क्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः।
मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्र-
मुत्क्षिप्य वेगाद्भुवि निष्पिपेष॥ ५०॥

गणनायक के द्वारा चक्र के निगल लिए जाने पर सुन्दर नेत्रों वाले माधव क्रोध से अत्यन्त लाल हो गए। तब मुरारि गणेश्वर के समीप पहुँचे और उन्हें उठाकर जमीन पर पीसने लगे।

हरिबाहूरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले।
सहितं रुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रं विनिर्गतम्॥ ५१॥

विष्णु ने बाहु एवं जंघा के वेग से जमीन पर उसका मर्दन किए जाने पर वीरभद्र के मुख से रुधिरोद्गार के साथ चक्र निकल आया।

ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः।
समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह॥ ५२॥

कैटभनामक दैत्य को मारने वाले हृषीकेश विष्णु ने चक्र को निकला हुआ देखकर उसे ले लिया और तब वीरभद्र को छोड़ दिया।

हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम्।
गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम्॥ ५३॥

हृषीकेश से मुक्त होकर वीरभद्र जटाधर शङ्कर के पास गये और उनसे अपने वासुदेव से पराजित होने की बात कही।

ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम्।
निश्वसन्तं यथा नागं क्रोधं चक्रे तदाऽव्ययः॥ ५४॥

गणेश्वर को रक्त से व्याप्त तथा नाग के सदृश श्वास लेते हुये देखकर अव्यय शङ्कर को क्रोध आ गया।

ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना।
पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः॥ ५५॥

क्रोधाभिभूत शंभु ने वीरभद्र को उसी पूर्व निर्दिष्ट स्थान पर आयुध से सम्पन्न करके पुनः नियुक्त कर दिया।

वीरभद्रमथादिश्य भद्रकालीं च शङ्करः।
विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञवाटं त्रिशूलभृत्॥ ५६॥

वीरभद्र तथा भद्रकाली को आदेश देकर क्रोध से रक्त नेत्र वाले त्रिशूलधारी शङ्कर यज्ञमण्डप में प्रवेश कर गये।

ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे
त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि।
दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
जातो मुनीनां प्रवरो हि साध्वसः॥ ५७॥

देवश्रेष्ठ, त्रिशूलधारी, त्रिपुरान्तक एवं संहारकर्त्ता शङ्कर के दक्ष के यज्ञ में प्रवेश करने पर श्रेष्ठ ऋषिगण अत्यन्त भयभीत हो गये।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे हरललितो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(कालस्वरूप-वर्णन)

पुलस्त्य उवाच–

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम्।
तस्मात्स्थानादपाक्रम्य कुब्जाम्रेऽन्तर्हितः स्थितः॥ १॥

क्रोध से रक्त नेत्र वाले शङ्कर को देखकर विष्णु उस स्थान से दूर हटकर कुब्जाम्र में छिपकर बैठ गए।

वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सस्रुपुर्वेगतो मुने।
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती॥ २॥

हे मुनि! शङ्कर की उपस्थिति के कारण आठ वसु अतिशीघ्र पिघल गये। उससे सीता नामक श्रेष्ठ नदी उत्पन्न हुई।

एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतनाः।
कान्दिशीका लयं जग्मुः समभ्येत्याथ शङ्करम्॥ ३॥

वृषकेतन व त्रिनेत्र एकादश रुद्र भागते हुए शङ्कर के पास पहुँचकर उन्हीं में लीन हो गए।

विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः।
समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने॥ ४॥

हे महामुनि! विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, साध्यगण, वायु, अग्नि, सूर्य— सब पुरोडाश खाते हुए दूर हो गए।

चन्द्रः सम मृक्षगणैर्निशां समुपदर्शयन्।
उत्पत्यारुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः॥ ५॥

तारागण के साथ चन्द्रमा रात्रि का समय उपस्थित करते हुए उठकर आकाश में आरोहित हो गया और अपने स्थान में पहुँच गया।

कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम्।
पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने॥ ६॥

हे मुने! कश्यपादि ऋषि शतरुद्रिय मंत्र का जप करते हुए हाथ में पुष्प लेकर उन्हें प्रणाम करने लगे।

असकृद्दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं बलाधिकम्।
शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह॥ ७॥

इन्द्रादि देवताओं से रुद्र को अधिक बलशाली देखकर दक्षपत्नी दीनतापूर्वक बार-बार विलाप करने लगी।

ततः क्रोधाभिभूतेन शङ्करेण महात्मना।
तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः॥ ८॥

तदनन्तर क्रोधाभिभूत महात्मा शङ्कर ने तलवे के प्रहार से बहुत से देवों को धराशायी कर दिया।

पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मुने।
दृष्ट्वाऽग्निना तथैवान्ये देवाद्याः प्रलयं गताः॥ ९॥

हे मुने! शङ्कर ने कुछ को पैरों के प्रहार से, कुछ को त्रिशूल के प्रहार से और अन्य देवताओं को नेत्र की अग्नि से प्रलय में पहुँचा दिया।

ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान्।
क्रोधाद्बाहू प्रसार्याथ प्रदुद्राव महेश्वरम्॥ १०॥

सुर व असुरों का संहार करते हुए शङ्कर को देखकर पूषा क्रोध से बाहुओं को फैलाकर महेश्वर की ओर दौड़ पड़े।

तमापतन्तं भगवान्संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः।
बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शङ्करः॥ ११॥

पूषा को आते देख त्रिलोचन भगवान् शङ्कर ने एक ही हाथ से उनके दोनों भुजाओं को पकड़ लिया।

कराभ्यां प्रगृहीतस्य शंभुनांऽशुमतोऽपि हि।
कराङ्गुलिभ्यो निश्चेरुरसृग्धाराः समन्ततः॥ १२॥

शंभु के द्वारा हाथों से पकडने के कारण अंशुमाली सूर्य के हाथ की अङ्गुलियों से चारों ओर से रक्त की धारा निकल पड़ी।

ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम्।
भ्रामयामास सततं सिंहो मृगशिशुं यथा॥ १३॥

तदनन्तर शङ्कर ने अंशुमान् दिवाकर को अत्यन्त वेग के साथ बहुत देर तक निरन्तर घुमाया जैसे कोई सिंह मृग के बच्चे को घुमा रहा हो।

भ्रामितस्यातिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि।
भुजौ ह्रस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुबन्धनौ॥ १४॥

हे नारद! अतिवेग से घुमाये गये सूर्य की भुजाएँ स्नायु-बन्धन के टूट जाने के कारण छोटी हो गयीं।

रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः।
सन्निरीक्ष्योत्ससर्जैनमन्यतोऽभिजगाम ह॥ १५॥

सूर्य को रुधिर से व्याप्त सभी अङ्गों वाला देखकर महेश्वर ने उन्हें छोड़ दिया और अन्य की ओर अभिमुख हुए।

ततस्तु पूषा विहसन्दशनानि विदर्शयन्।
प्रोवाचैह्येहि कापालिन्पुनः पुनरथेश्वरम्॥ १६॥

तब सूर्य हँसते हुए एवं दाँतों को दिखाते हुए शङ्कर से बोले— हे कापालिन्! आओ फिर से आ जाओ।

ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्णो वेगेन शंभुना।
मुष्टिनाऽऽहत्य दशनाः पातिता धरणीतले॥ १७॥

तदनन्तर क्रोधित हुए शिव ने मुष्टिकाप्रहार से सूर्य के दाँतों को जमीन पर गिरा दिया।

भग्नदन्तस्तथा पूषा शोणिताभिप्लुताननः।
पपात भुवि निःसंज्ञो वज्राहत इवाचलः॥ १८॥

टूटे हुए दाँतों वाले सूर्य रुधिर से व्याप्त मुख वाले होकर अचेत होकर वज्र से आहत पर्वत की तरह जमीन पर गिर पड़े।

भगोऽभि वीक्ष्य पूषणं पतितं रुधिरोक्षितम्।
नेत्राभ्यां घोररूपाभ्यां वृषभध्वजमैक्षत॥ १९॥

रक्त से ओत-प्रोत सूर्य को गिरे. हुए देखकर भग भयंकर रूप वाले नेत्रों से वृषभध्वज शङ्कर को देखने लगे।

त्रिपुरघ्नस्ततः क्रुद्धस्तलेनाहत्य चक्षुषी।
निपातयामास भुवि क्षोभयन्सर्वदेवताः॥ २०॥

तब त्रिपुर का नाश करने वाले क्रोधित शङ्कर ने सभी देवों को क्षुब्ध करते हुए तलवे के प्रहार से भग की आँखों को जमीन पर गिरा दिया।

ततो दिवाकराः सर्वे पुरस्कृत्य शतक्रतुम्।
मरुद्भिश्च हुताशैश्च भयाज्जग्मुर्दिशो दश॥ २१॥

फिर इन्द्र को आगे करके सभी आदित्य (एकादश) मरुद्गण तथा अग्नि के साथ भय से दशों दिशाओं में भाग गए।

प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः।
नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने॥ २२॥

हे मुने! देवों के चले जाने पर प्रह्लादादि सभी दैत्येश्वर शङ्कर को नमस्कार करते हुये हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

ततस्तं यज्ञवाटं तु शङ्करो घोरचक्षुषा।
ददर्श दग्धुं कोपेन सर्वांश्चैव सुरासुरान्॥ २३॥

शङ्कर क्रोधयुक्त घोर नेत्रों से सभी सुर एवं असुरों को जलाने के उद्देश्य से उस यज्ञमण्डप को देखने लगे।

ततो निलिल्यिरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा।
भयादन्ये हरं दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम्॥ २४॥

ऐसे कुछ वीर छिप गए। कुछ प्रणाम करने लगे। कुछ भाग गए तो और कुछ वैवस्वत का विनाश करने वाले उस शिव को देखकर मर गये।

ततोऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसहं समवैक्षत।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन्क्षणात्॥ २५॥

फिर उन्होंने तीनों नेत्रों से तीनों अग्नियों को देखा। त्रिनेत्र के देखने मात्र से वे क्षणभर में ही भस्मीभूत हो गए।

अग्नौ प्रनष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः।
दुद्राव विक्लवगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरे॥ २६॥

अग्नि के विनष्ट हो जाने पर यज्ञ दिव्य शरीर वाला मृग बनकर दक्षिणा के साथ तीव्र गति से आकाश की ओर भाग गया।

तमेवानुससारेशश्चापमानस्य वेगवान्।
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः॥ २७॥

कालरूप महेश्वर ने अति वेग से पाशुपत बाण को चढ़ाया और अत्यन्त वेग के साथ उस का अनुसण किया।

अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते॥ २८॥

अपने अर्द्धांश से यज्ञमण्डप में उपस्थित शङ्कर जटाधर नाम से जाने गये जबकि अपने अर्द्धांश से आकाश में स्थित वे कालरूपी नाम से भविष्य में विश्रुत हुए।

नारद उवाच–

कालरूपी त्वयाऽऽख्यातः शंभुर्गगनगोचरः।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि॥ २९॥

नारद बोले— आकाश में स्थित शङ्कर को आपने कालरूपी कहा है। कृपया आप उनके समस्त लक्षण एवं स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

पुलस्त्य उवाच–

स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिणः।
येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना॥ ३०॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुनिश्रेष्ठ! जिन्होंने लोक का हित करने की इच्छा से आकाश को व्याप्त किया है, उन त्रिपुरान्तक कालरूपी के स्वरूप के विषय में मैं बताता हूँ।

यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांऽशकः।
मेषो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः॥ ३१॥

अश्विनी, भरणी तथा कृत्तिका के एक पाद से युक्त मंगल का क्षेत्र मेष राशि कालरूपी का शिरः प्रदेश है।

आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन्प्राजापत्यं कवेर्गृहम्।
सौम्यार्द्धं वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम्॥ ३२॥

हे ब्रह्मन्! कृत्तिका के तीन अंश, रोहिणी और मृगशिरा के दो पूर्व बाद वाला शुक्र-क्षेत्र 'वृषराशि' उनका मुख है।

मृगार्धमार्द्राऽदित्यांशास्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम्।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः॥ ३३॥

आकाश में स्थित शूली (शङ्कर) के मृगशिरा के शेष दो पाद आर्द्रा तथा पुनर्वसु के तीन पाद वाला बुध का क्षेत्र मिथुन राशि दोनों भुजाएँ हैं।

आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम्।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिनः॥ ३४॥

पुनर्वसु का एक पाद, पुष्य तथा आश्लेषा नक्षत्र के चन्द्रमा का क्षेत्र कर्कट राशि यज्ञ विध्वंसक शङ्कर के दोनों पार्श्व हैं।

पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन्हृदयं परिगीयते॥ ३५॥

हे ब्रह्मन्! मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी के एक पाद से युक्त सूर्य का क्षेत्र 'सिंहराशि' शङ्कर का हृदय है।

उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्विदम्।
सोमपुत्रस्य सद्मैतद्द्वितीयं जठरं विभोः॥ ३६॥

उत्तरा फाल्गुनी के तीन पाद, हस्त व चित्रा के दो पादों से युक्त बुध का दूसरा क्षेत्र कन्या राशि विभु (शङ्कर) का जठर प्रदेश है।

चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकत्रयम्।
द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता॥ ३७॥

चित्रा के शेष दो पाद, स्वाति एवं विशाखा के तीन पादों से युक्त शुक्र का द्वितीय क्षेत्र तुलाराशि नाभि है।

विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भौमगृहं त्विदम्।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिणः॥ ३८॥

विशाखा का एक पाद, अनुराधा व ज्येष्ठा नक्षत्रों से युक्त मंगल का द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूप का लिङ्ग है।

मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः।
ऊरुयुगलमीशस्य अमरर्षे प्रगीयते॥ ३९॥

मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा के एक पाद से युक्त बृहस्पति का क्षेत्र धनुराशि शङ्कर की दोनों उरु है।

उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने।
धनिष्ठार्द्धं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः॥ ४०॥

हे मुने! उत्तराषाढ़ा के शेष तीन पाद, श्रवण तथा धनिष्ठा के दो पूर्व पादों से युक्त शनि का क्षेत्र मकर राशि परमेष्ठी शङ्कर के दो जानु प्रदेश हैं।

धनिष्ठार्धं शतभिषा प्रौष्ठपद्याशकत्रयम्।
सौरेः सद्मापरमिदं कुम्भो जङ्घे च विश्रुते॥ ४१॥

धनिष्ठा का अपरार्द्ध, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद के तीन पादों से युक्त शनि का द्वितीय क्षेत्र 'कुम्भ राशि' उनकी दोनों जंघाएँ हैं।

प्रौष्ठपद्याशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ॥ ४२॥

पूर्वभाद्रपद का एक पाद, उत्तरभाद्रपद और रेवती नक्षत्र से युक्त बृहस्पति का द्वितीय क्षेत्र मीनराशि उनके दोनों चरण हैं।

एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजघान।
विद्धश्चासौ वेदनाबुद्धिमुक्तः
खे संतस्थौ तारकाभिश्चिताङ्गः॥४३॥

इस तरह त्रिनेत्र ने कालरूप धारण करके क्रोध से यज्ञ को बाणों से मारा। फिर वेदना के अनुभव से रहित घायल हुआ वह यज्ञ ताराओं से आवृत्त होकर आकाश में स्थित हो गया।

नारद उवाच–

राशयः कथिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम।
तेषां विशेषतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः॥४४॥

नारद बोले— हे ब्रह्मन्! आपने मुझे बारह राशियों के विषय में बता दिया, अब उनके स्वरूपतः विशेष लक्षणों को बताइए।

पुलस्त्य उवाच–

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां श्रृणु नारद।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन्स्थाने वसन्ति च॥४५॥

पुलस्त्य ने कहा— हे नारद! आपको राशियों का स्वरूप मैं बताता हूँ। वे किस प्रकार की हैं, कहाँ संचरणशील हैं तथा कहाँ निवास करती हैं— यह सब सुनिए।

संचरस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु।
मेषः समानमूर्त्तिश्च अजाविकधनादिषु ॥४६॥
नवशाद्वलसंछन्नवसुधायां च सर्वशः
नित्यं चरति फुल्लेषु सरसां पुलिनेषु च॥४७॥

मेष के समान मूर्ति वाला मेष राशि है। इसका संचार स्थान बकरी, भेड़, धन, धान्य तथा रत्नाकरादि हैं। यह नित्यरूप से नई दूब से आच्छन्न पृथ्वी तथा पुष्पित वनस्पति से युक्त सरोवर के तटप्रदेश में संचार करता है।

वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु।
तस्याधिवासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः॥४८॥

वृष बैल के समान रूप वाला गोकुलादि में संचरणशील है। कृषकों की भूमि इसका अधिवास है।

स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहः।
वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्त्तकशिल्पिषु॥४९॥

मिथुन स्त्री व पुरुष के समान रूप वाला, शय्याको आसन बनाने वाला तथा वीणा और वाद्यों को धारण करने वाला गीत, नर्तक व शिल्पियों के मध्य संचरणशील रहता है।

स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारावनिरस्य तु।
मिथुनं नाम विख्यातं राशिर्द्वेधाऽऽत्मकः शिवः॥५०॥

द्वेधात्मक रूप से स्थित मिथुन राशि के नाम से विख्यात यह क्रीडा (काम) रति से युक्त विहार भूमि में स्थित रहता है।

कर्किः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्त्तितः।
केदारवापीपुलिनविविक्तावनिरेव च॥५१॥

कर्क को भी केकड़े के समान ही जल में स्थित कहा गया है। यह पानी से भरे क्यारी में वापी, तटप्रदेश तथा एकान्त भूमि में रहता है।

सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु।
वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च॥५२॥

सिंहराशि वाला पर्वत, वन, दुर्ग, गह्वर भूमि तथा शिकारियों के स्थान में रहता है।

व्रीहिप्रदीपिककरा नावारूढा च कन्यका।
चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेपु च॥५३॥

कन्या राशि वाले व्रीहि और दीपक को हाथ में लेकर नाव पर अधिरूढ रहते हैं। स्त्री की योनि और उनके स्तनाग्र भाग में इसका वास होता है।

तुलापाणिश्च पुरुषो वीथ्यापणविचारकः।
नगराध्वनशालासु वसते तत्र नारद॥५४॥

तुलाराशि वाले पुरुष गलियों व बाजारों में रहते हैं। वे नगरों, मार्गों और भवनों में वास करते हैं।

श्वभ्रवल्मीकसंचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः।
विषगोमयकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः॥५५॥

वृश्चिक राशि बिच्छु के समान रूप वाला है। यह गढ्ढे व वल्मीक में विचरण करता है। विष, गोमय, कीटादि तथा पाषाण इसके वासस्थान हैं।

धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः।
वाजिशूरास्त्रविद्वीरः स्थायी गजरथादिषु॥५६॥

धनु राशि धनुष धारण करने वाला, अश्व के समान जघन प्रदेश वाला तथा प्रकाशमान है। अश्व एवं शूरों के अस्त्र का परिज्ञाता यह वीर गज व रथ आदि में रहता है।

मृगास्यो मकरो नाम वृषस्कन्धेक्षणो गजः।
मकरोऽसौ नदीचारी वसते च महोदधौ॥५७॥

हे ब्रह्मन्! मकर मृग के समान मुख वाला है। इसके स्कन्ध वृष के समान और नेत्र गज के समान हैं। यह मकर नदी में संचरण करता है तथा समुद्र में निवास करता है।

रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धचारी जलाप्लुतः।
द्यूतशालाचरः कुम्भः स्थायी शौण्डिकसद्मसु॥५८॥

कुम्भ राशि जल से परिप्लुत रिक्त कुम्भ को स्कन्ध पर धारण करने वाले पुरुष की भाँति है। यह द्यूतशाला में विचरण करता है तथा मद्यपान वाले स्थान में निवास करता है।

मीनद्वयमथासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु॥५९॥

मीन राशि दो परस्पर संयुक्त मछलियों के समान है। यह तीर्थ व समुद्र में विचरण करता है। इसका निवास पुण्य प्रदेश, देव व ब्राह्मण का गृह है।

लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेषादीनां महामुने।
न कस्यचित्त्वयाऽऽख्येयं गुह्यमेतत्पुरातनम्॥६०॥

हे महामुने! मैंने सभी मेषादि राशियों के लक्षण व स्वरूप आपको बता दिये हैं। यह प्राचीन परम्परा से अत्यन्त गोपनीय है। अतः इसको किसी को नहीं बताना।

एतन्मया ते कथितं सुरर्षे
यथा त्रिनेत्रः प्रममाथ यज्ञम्।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्र-
माख्यातवान्पापहरं शिवं च॥६१॥

हे देवर्षि! शङ्कर ने किस प्रकार यज्ञ का विध्वंस किया था— यह मैंने आपको बता दिया। यह कथा पुण्यशालिनी, पुरातन, परम पवित्र, पापों को नष्ट करने वाली तथा कल्याणकारिणी है।

॥इति वामनपुराणे कालस्वरूपवर्णने पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(कामदेव का भस्म होना)

पुलस्त्य उवाच–

हृद्भवो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुर्मुने।
दाक्षायणी तस्य भार्या तस्यामजनयत्सुतान्॥१॥
हरिं कृष्णं च देवर्षे नरनारायणौ तथा।
योगाभ्यासरतौ नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः॥२॥
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया।
तप्येतां च तपः सौम्यौ पुराणावृषिसत्तमौ॥३॥
प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थे बदरिकाश्रमे।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे॥४॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुने! ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न जो यह दिव्यशरीरधारी धर्म है उसने अपनी दाक्षायणी नामक पत्नी से हरि, कृष्ण, नर एवं नारायण पुत्रों को उत्पन्न किया। इनमें से हरि एवं कृष्ण नित्य योगाभ्यास में रत रहते थे एवं सौम्य पुरातन ऋषिश्रेष्ठ एवं नर एवं नारायण लोकहित की इच्छा से तपश्चर्या में निरत रहते थे। इन दोनों ने हिमालय पर पहुँचकर बदरिकाश्रम तीर्थ में गंगा के विस्तृत तट पर ब्रह्म का स्तवन किया।

नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम्।
तापितं तपसा ब्रह्मन् शक्रः क्षोभं तदा ययौ॥५॥
संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतुः।
रम्भामप्सरसः श्रेष्ठाः प्रैषयत्स महाश्रमम्॥६॥

हे ब्रह्मन्! जब नर एवं नारायण की तपस्या से यह चराचर जगत् तप्त हो उठा तो इन्द्र के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उन दोनों की तपस्या से संक्षुब्ध इन्द्र ने उनको क्षुब्ध करने के लिए आश्रम में रम्भादि श्रेष्ठ अप्सराओं को भेजा।

कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं षंगतः॥७॥

ततो माधवकन्दर्पौ सा चैवाप्सरसो वराः।
वदर्याश्रममागम्य विचिक्रीडुर्यथेच्छया॥ ८॥

आम्रमञ्जरी को महान् आयुध बनाने वाला दुर्धर्ष काम अपने सहचर वसन्त के साथ आश्रम में पहुँचा। फिर वसन्त, कामदेव एवं श्रेष्ठ अप्सराएँ बदरिकाश्रम में आकर स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करने लगीं।

ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम्॥ ९॥

वसन्त के उपस्थित होने पर अग्नि के समान कान्ति वाले किंशुक के पुष्प पत्रहीन धरातल की शोभा बढ़ाते हुए निरन्तर शोभित होने लगे।

शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्य नखरैरिव।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने॥ १०॥

हे मुने! वसन्त रूपी सिंह पलाशपुष्प रूपी नखों से शिशिर रूपी गजराज को विदीर्ण करके प्रकट हुआ।

मया तुषारौघकरी निर्जितः स्वेन तेजसा।
तमेव हसतेत्युच्चैः वसन्तः कुन्दकुड्मलैः॥ ११॥

मैंने अपने तेज से तुषार-समूह रूपी गज को जीत लिया है— मानों ऐसा सोचते हुए वसन्त ने कुन्द की कलियों से उस तुषारोधरूपी (गज) की बहुत हँसी उड़ायी।

वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे।
यथा नरेन्द्रपुत्राणि कनकाभरणानि हि॥ १२॥

स्वर्णाभूषण धारण करने वाले राजपुत्रों की तरह पुष्पित कर्णिकाओं के वन सुशोभित होने लगे।

तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे।
स्वामिसंलब्धसंमाना भृत्या राजसुतानिव॥ १३॥

राजपुत्रों के पीछे सम्मान पाने वाले सेवकों की तरह उनके पीछे कदम्ब के वृक्ष सेवकों की भाँति शोभित हो रहे थे।

रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्जवलाः।
भृत्या वसन्तनृपतेः संग्रामेऽसृक्प्लुता इव॥ १४॥

रक्ताशोक के वन सहसा उज्ज्वल एवं पुष्पित होकर इस प्रकार शोभित हुए जैसे नरेश वसन्त के संग्राम में उनके सेवकगण रक्त से परिव्याप्त होकर शोभित होते हैं।

भृङ्गवृन्दाः पिञ्जरिता राजन्ते गहने वने।
पुलकाभिवृता यद्वत्सज्जनाः सुहृदागमे॥ १५॥

गहन वन में पिञ्जरित मृगसमूह इस प्रकार सुन्दर दिखायी पड़ने लगे जैसे सुहृद के आगमन पर सज्जन लोग आनन्द से भर जाते हैं।

मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः।
वक्तुकामा इवाङ्गुल्या कोऽस्माकं सदृशो नगः॥ १६

नदीतट पर वेतस मञ्जरी के साथ शोभित हो रहे थे। मानों वे अङ्गुलियों से कह रहे हों कि 'हमारे समान अन्य कौन वृक्ष हैं'!

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना॥ १७॥
नीलेन्दीवरनेत्रा च ब्रह्मन्बिल्वफलस्तनी।
प्रफुल्लकुन्ददशना मञ्जरीकरशोभिता॥ १८॥
बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्दुवारनखाद्भुता।
पुंस्कोकिलस्वना दिव्या कङ्कोलवसना शुभा॥ १९॥
बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वरनूपुरा।
प्राग्वंशरसना ब्रह्मन्मत्तहंसगतिस्तथा॥ २०॥
पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमराजिविराजिता।
वसन्तलक्ष्मीः संप्राप्ता बह्मन्बदरिकाश्रमे॥ २१॥

हे देवर्षि ब्रह्मन्! रक्ताशोकरूप हाथ, किंशुकरूप चरण, नीलाशोकरूपी केश, विकसित कमलरूपी मुख, नीलकमलरूपी नेत्र, बिल्वफलरूपी स्तन, प्रफुल्ल कुन्दरूपी दाँत, मञ्जरीरूपी हाथ, बन्धुजीवरूपी अधर, सिन्धुवाररूपी अद्भुत नख, पुंस्कोकिल के कूँजरूपी स्वर, अंकोलरूपी दिव्य व शुभ वस्त्र, बर्हि (मयूर) समूह रूपी आभूषण, सारसों के स्वररूपी नूपुर, प्राग्वंशरूपी करधनी, मत्तहंसरूपी चाल, पुत्रजीवरूपी वस्त्र और मकररूपी रोम से विराजित युवती श्यामा वसन्त लक्ष्मी ने बदरिकाश्रम में प्रवेश किया।

ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्यानवद्यताम्।
समीक्ष्य स दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत॥ २२॥

तदनन्तर आश्रम की पवित्रता को देखकर सभी दिशाओं की ओर देखने के पश्चात् नारायण ने कामदेव को देखा।

नारद उवाच–

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मर्षे तस्मिन्बदरिकाश्रमे।
यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः॥ २३॥

नारद बोले– हे ब्रह्मर्षि! अनश्वर देव जगन्नाथ ने जिसे बदरिकाश्रम में देखा वह अनंग कौन हैं?

पुलस्त्य उवाच–

कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते।
स शङ्करेण संदग्धो ह्यनङ्गत्त्वमुपागतः॥ २४॥

पुलस्त्य ने कहा– जिसे काम कहा जाता है, वह कन्दर्प ही शङ्कर के द्वारा दग्ध किये जाने के पश्चात् अनङ्ग हो गया।

नारद उवाच–

किमर्थं कामदेवोऽसौ देवदेवेन शंभुना।
दग्धश्च कारणे कस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि॥ २५॥

नारद ने कहा– देवों के देव शंभु के द्वारा यह कामदेव क्यों और किस कारण से दग्ध किया गया, कृपया इसे बताने का कष्ट करें।

पुलस्त्य उवाच–

यदा दक्षसुता ब्रह्मन्सती याता यमक्षयम्।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः॥ २६॥

पुलस्त्य बोले– हे ब्रह्मन्! जब दक्षपुत्री सती मृत्यु को प्राप्त हो गयीं तब उस दक्ष के यज्ञ का विनाश करके त्रिलोचन घूमने लगे।

ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः।
अपत्नीकं तदाऽस्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत्॥ २७॥

कुसुमायुध काम ने शङ्कर को पत्नीरहित देखकर उन्माद अस्त्र से प्रताडित किया।

ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाशु ताडितः।
विचचार तदोन्मत्तः काननानि सरांसि च॥ २८॥

तत्पश्चात् शङ्कर उन्माद बाण से पीड़ित होकर जंगल एवं सरोवरों में घूमने लगे।

स्मरन्सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः।
न शर्म लेभे देवर्षे बाणविद्ध इव द्विपः॥ २९॥

हे देवर्षि! उन्माद से ताडित होने के कारण शङ्कर, सती का स्मरण करते हुए बाणविद्ध गज की तरह शान्त नहीं हो पा रहे थे।

ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं मुने।
निमग्ने शङ्करे चापो दग्धाः कृष्णत्वमागताः॥ ३०॥

हे मुने! तब महादेव कालिन्दी नदी में कूद पड़े। शङ्कर के कालिन्दी में गिरने पर उसका जल भी दग्ध होकर काला हो गया।

तदा प्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम्।
आस्यन्दत्पुण्यतीर्था सा केशपाशमिवावने॥ ३१॥

तभी से कालिन्दी का पानी भौंरे एवं अञ्जन के समान काला हो गया तथा अवनि के केशपाश की तरह वह पुण्यतीर्था नदी प्रवाहित होने लगी।

ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च नदेषु च।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च॥ ३२॥
पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु।
विचरन्स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः॥ ३३॥

तब से लेकर शङ्कर पुण्य नदी, सरोवर, बड़े सरोवर, रम्य नदी के तट–प्रदेश वापी, कमलवन, रम्य पर्वत, जंगल तथा शिखरों पर स्वेच्छापूर्वक विचरण करते रहे; परन्तु उन्हें कहीं भी शांति नहीं मिली।

क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शङ्करः।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमाम्॥ ३४॥

हे देवर्षि! शङ्कर क्षण में गाने लगते तो क्षण में रोने लग जाते थे। और क्षणभर में वे मनोरमा, कृशाङ्गी दक्षकन्या का ध्यान करने लगते थे।

ध्यात्वा क्षणं प्रस्वपिति क्षणं स्वप्नायते हरः।
स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम्॥ ३५॥
निर्घृणे तिष्ठ किं मूढे त्यजसे मामनिन्दिते।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनाग्निना॥ ३६॥

ध्यान करके वे क्षण में सो जाते। फिर क्षण में शङ्कर स्वप्न लेने लगते और स्वप्न में दक्षकन्या को देखकर कहते– निर्दये! रुको! मूढे! मुझ को क्यों छोड़ रही हो? हे अनिन्दिते! मुग्धे! तुमसे विरहित होकर मैं कामाग्नि से जल रहा हूँ।

सति सत्यं प्रकुपिता मा कोपं कुरु सुन्दरि।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि॥ ३७॥

हे सती! क्या तुम वास्तव में क्रुद्ध हो? हे सुन्दरि! क्रोध मत करो! मैं चरणों में प्रणाम करने के लिए अवनत हूँ; मुझसे बात करो।

श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यसे प्रिये।
आलिङ्गयसे च सततं किमर्थं नाभिभाषसे॥ ३८॥

हे प्रिये! मैं नित्य तुम्हारी बात सुनता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ और तुम्हारी वन्दना करता हूँ। मैं तुम्हारा सतत आलिङ्गन करता हूँ। फिर तुम मुझसे किसलिए नहीं बोल रही हो?।

विलपन्तं जनं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा॥ ३९॥

हे बाले! विलाप करते हुए व्यक्ति को देखकर किसे दया नहीं आती? विशेष रूप से वह आपका पति होता हो तो! तुम निश्चय ही बहुत निर्दयी हो।

त्वयोक्तानि वचांस्येवं पूर्वं मम कृशोदरि।
त्वया विना न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम्॥ ४०॥

हे कृशोदरि! पहले तुमने मुझसे कहा था कि "आपके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी"। अपने उस कथन को तुमने असत्य कर दिया है।

एह्येहि कामसंतप्तं परिष्वज सुलोचने।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये॥ ४१॥

हे सुलोचने! आओ! आओ! मैं काम से संतप्त हूँ। मेरा आलिङ्गन करो। हे प्रिये! मैं सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ— मेरा यह ताप अन्य किसी प्रकार से दूर नहीं हो रहा है।

इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात्।
उत्कूजति तथाऽरण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः॥ ४२॥

शङ्कर इस प्रकार स्वप्न में विलाप करते और स्वप्न के समाप्त होने पर उठकर जंगल में तत्क्षण बार-बार मुक्तकण्ठ से रोने लगते।

तं कूजमानं विलपन्तमारात्
समीक्ष्य कामो वृषकेतनं हि।
विव्याध चापं तरसा विनाम्य
संतापनाम्ना तु शरेण भूयः॥ ४३॥

तरह शङ्कर को इस तरह विलाप करते हुए एवं अशान्त देखकर काम ने धनुष झुकाकर संताप नामक बाण से वेग के साथ पुनः उन्हें घायल कर डाला।

संतापनास्त्रेण तदा स विद्धो
भूयः स संतप्ततरो बभूव।
संतापयंश्चापि जगत्समग्रं
फूत्कृत्य फूत्कृत्य विवाशते स्म॥ ४४॥

संतापन अस्त्र से विद्ध होने के कारण शङ्कर पहले से भी अधिक संतप्त हो गए। अपने बार-बार के फूत्कार से वे समस्त जगत् को तप्त करते हुए निवास करने लगे।

तं चापि भूयो मदनो जघान
विजृंभणास्त्रेण ततो विजृम्भे।
ततो भृशं कामशरैर्वितुन्नो
विजृम्भमाणः परितो भ्रमंश्च॥ ४५॥
ददर्श यक्षाधिपतेस्तनूजं
पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम्।
दृष्ट्वा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं
पार्श्वं समभ्येत्य वचो बभाषे।
भ्रातृव्य वक्ष्यामि वचो यदद्य
तत्त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि॥ ४६॥

काम ने उन्हें पुनः विजृम्भण अस्त्र से आहत कर दिया जिससे उन्हें जम्हाई आने लगी। काम के बाणों से पूरी तरह पीडित होकर शङ्कर जम्हाई लेते हुए जब चारों ओर घूम रहे थे तब उन्होंने यक्षाधिपति के पुत्र, जगत् में प्रधान पाञ्चालिक को देखा। यक्षाधिपति के पुत्र को देखकर शङ्कर उनके पास गये और कहने लगे हे भ्रातृव्य! आप अत्यन्त पराक्रमी हो। मैं आपसे आज जो बात कहता हूँ— उसे यथार्थ कर डालो!

पाञ्चालिक उवाच–

यन्नाथ मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये
सुदुष्करं यद्यपि देवसंघैः।

आज्ञापयस्वातुलवीर्य शंभो
दासोऽस्मि ते भक्तियुतस्तथेश॥४७॥

पाञ्चालिक ने कहा— हे नाथ! आप देवसमूह के लिये भी दुष्कर कार्य को मुझे कहें, उसे मैं अवश्य करूँगा। हे अतुल बलवाले ईश! हे शंभु! मैं आपका भक्ति से युक्त दास हूँ। आप आज्ञा करे।

ईश्वर उवाच-

नाशं गतायां वरदाम्बिकायां
कामाग्निना प्लुष्टसुविग्रहोऽस्मि।
विजृम्भणोन्मादशरैर्विभिन्नो
धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं वा॥४८॥

ईश्वर ने कहा— वरदायिनी अम्बिका के सती हो जाने पर कामाग्नि के कारण मैं परितापयुक्त शरीर वाला हो गया हूँ। विजृम्भण तथा उन्मादशरों से विदीर्ण होने के कारण मैं न धैर्य धारण कर पा रहा हूँ, न रति, न ही सुख।

विजृम्भणं पुत्र तथैव ताप-
मुन्मादमग्रं मदनप्रणुन्नम्।
नान्यः पुमान्धारयितुं हि शक्तो
मुक्त्वा भवन्तं हि ततः प्रतीच्छ॥४९॥

हे पुत्र! मदन से प्रेरित उग्र विजृम्भण, संतापन एवं उन्माद बाणों को तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई भी पुरुष धारण करने में समर्थ नहीं है। अतः इन्हें आप ले लो।

पुलस्त्य उवाच-

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
यक्षः प्रतीच्छन्स विजृम्भणादीन्।
तोषं जगामाशु ततस्त्रिशूली
तुष्टस्तदैवं वचनं बभाषे॥५०॥

वृषमध्वज के द्वारा ऐसा कहे जाने पर यक्ष ने उन विजृम्भणादि बाणों को ले लिया। तब त्रिशूली सन्तुष्ट हुये। संतुष्ट होकर उन्होंने यक्ष से कहा।

हर उवाच-

यस्मात्त्वया पुत्र सुदुर्धराणि
विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि।
तस्माद्वरं त्वां प्रति पूजनाय
दास्यामि लोकस्य च हास्यकारी॥५१॥

शिव बोले— हे पुत्र! तुमने दुर्धर विजृम्भणादि अस्त्रों को हमसे वापस ले लिया है, अतः मैं तुम्हें लोक में सम्मान और आनन्द देने वाला वर प्रदान करूँगा।

यस्त्वां यदा पश्यति चैत्रमासे
स्पृशेन्नरो वाऽर्चयते च भक्त्या।
वृद्धोऽथ बालोऽथ युवाऽथ योषित्
सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति॥५२॥

वृद्ध, बाल, युवक व युवती जो भी चैत्रमास में भक्ति से तुम्हारा दर्शन, स्पर्शन एवं पूजन करेंगे, वे सभी उन्माद से युक्त होंगे।

गायन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष
वाद्यानि यत्नादपि वादयन्ति।
तवाग्रतो हास्यवचोऽभिरक्ता
भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः॥५३॥

हे यक्ष! वे सभी तुम्हारे सामने हंसते हुए गायेंगे, नाचेंगे, आनन्दित होंगे और यत्नपूर्वक वाद्यों का वादन करेंगे।

ममैव नाम्ना भवितासि पूज्यः
पाञ्चालिकेशः प्रथितः पृथिव्याम्।
मम प्रसादाद्वरदो नराणां
भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ॥५४॥

जाओ! मेरे नाम से तुम पूज्य बनोगे। पाञ्चालिकेश नाम से तुम पृथिवी पर प्रसिद्ध होगे। मेरी कृपा से तुम मनुष्यों के लिए वरदायी एवं पूज्यतम होगे।

इत्येवमुक्तो विभुना स यक्षो
जगाम देशान्सहसैव सर्वान्।
कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यो देशो
हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः॥५५॥
तस्मिन्सुपुण्ये विषये निविष्टो
रुद्रप्रसादादभिपूज्यतेऽसौ।
तस्मिन्प्रयाते भगवांस्त्रिनेत्रो
देवोऽपि विन्ध्यं गिरिमभ्यगच्छत्॥५६॥

शङ्कर के इस प्रकार कहने पर वह यक्ष सहसा अपने देश चला गया। वह कालञ्जी के उत्तर एवं हिमालय के दक्षिण में स्थित सुपुण्य देश में स्थित हो गया। वह रुद्र की कृपा से पूजा जाने लगा। उसके चले जाने पर भगवान् त्रिनेत्र देव भी विन्ध्य पर्वत की ओर चले गए।

तत्रापि मदनो गत्वा ददर्श वृषकेतनम्।
दृष्ट्वा प्रहर्तुकामं च ततः प्रादुद्रवद्धरः॥५७॥

कामदेव वहाँ जाकर भी वृषकेतन के समीप पहुँचा। काम को प्रहार करने की इच्छा से युक्त देखकर शङ्कर वहाँ से भागने लगे।

ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसृतो हरः।
विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः॥५८॥

तदनन्तर काम के द्वारा अनुगत शिव घोर दारुवन में गए जहाँ ऋषिगण अपनी पत्नियों के साथ रहते थे।

ते चापि ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा मूर्ध्ना नताभवन्।
ततस्तान्प्राह भगवान्भिक्षा मे प्रतिदीयताम्॥५९॥

वे सभी ऋषिगण शिव को देखकर शिर से नत हो गए। तब भगवान् ने उन सब से कहा— मुझे भिक्षा दीजिए।

ततस्ते मौनिनस्तस्थुः सर्व एव महर्षयः।
तदाऽऽश्रमाणि पुण्यानि परिचक्राम नारद॥६०॥

तब वे सभी ऋषिगण मौन हो गए। हे नारद! शिव तब पुण्य आश्रमों में घूमने लगे।

तं प्रविष्टं तदा दृष्ट्वा भार्गवात्रेययोषितः।
प्रक्षोभमगन्सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः॥६१॥

उनको आश्रम में प्रविष्ट देखकर भार्गव एवं आत्रेय की पत्नियाँ सभी चारों ओर से हीनसत्त्व होकर क्षुब्ध हो उठीं।

ऋते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भामिनीम्।
एतयोर्भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थितं मनः॥६२॥

अरुन्धती एवं सुन्दरी अनुसूया का मन पति की पूजा एवं चिन्ता में लगा था। अतः इन दोनों को छोड़कर सभी व्यग्र हो उठीं।

ततः संक्षोभिताः सर्वा यत्रायाति महेश्वरः।
तत्र प्रयान्ति कामार्त्ता मदविह्वलितेन्द्रियाः॥६३॥

फिर तो महेश्वर जहाँ भी जाते, वे सभी काम से विकल इन्द्रिय वाली स्त्रियाँ संक्षुभित एवं कामार्त्त होकर उन्हीं के पीछे जाने लगीं।

त्यक्त्वाऽऽश्रमाणि शून्यानि स्वानि ता मुनियोषितः।
अनुजग्मुर्यथा मत्तं करिण्य इव कुञ्जरम्॥६४॥

अपने-अपने आश्रमों को शून्य छोड़कर वे सभी ऋषिपत्नियाँ हाथी का पीछा करने वाली मदमत्त हथिनि की तरह उनके पीछे-पीछे जाने लगीं।

ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरसो मुने।
क्रोधान्विताब्रुवन्सर्वे लिङ्गोऽस्यपततां भुवि॥६५॥

हे मुने! तब भार्गव एवं अङ्गिरस आदि सभी ऋषि यह देखकर क्रोधित होकर बोल उठे— इसका लिङ्ग जमीन पर गिर पड़े।

ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयत्।
अन्तर्द्धानं जगामाथ त्रिशूली नीललोहितः॥६६॥

उनके ऐसा कहते ही शिव का लिङ्ग पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ गिर पड़ा। फिर नीललोहित त्रिशूली अन्तर्धान हो गए।

ततःस पतितो लिङ्गगो विभिद्य वसुधातलम्।
रसातलं विवेशाशु ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत्॥६७॥

गिरा हुआ वह लिङ्ग वसुधातल को भेदित करके रसातल में प्रवेश कर गया जबकि उसने ऊर्ध्वभाग से ब्रह्माण्ड का भेदन किया।

ततश्चचाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः।
पातालभुवनाः सर्वे जङ्गमाजङ्गमाश्रिताः॥६८॥

इससे पृथ्वी, पर्वत, नदी, वृक्ष तथा चराचर से आवृत पाताल लोक सभी काँप उठे।

संक्षुब्धान्भुवनान्दृष्ट्वा भूर्लोकादीन्पितामहः।
जगाम माधवं द्रष्टुं क्षीरोदं नाम सागरम्॥६९॥

भूर्लोकादि लोकों को संक्षुब्ध देखकर पितामह ब्रह्मा माधव के दर्शन के लिए क्षीरसागर पहुँचे।

तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः।
उवाच देव भुवनाः किमर्थं क्षुभिता विभो॥७०॥

वहाँ हृषीकेश को देखकर भक्ति से प्रणाम करके वे

बोले— हे देव! हे विभु! सभी लोक क्षुभित क्यों हो उठे हैं?

अथोवाच हरिर्ब्रह्मञ्छार्वो लिङ्गो महर्षिभिः।

पातितस्तस्य भारार्ता संचचाल वसुंधरा॥७१॥

हरि ने कहा— हे ब्रह्मन्! शिव के लिङ्ग को महर्षियों ने पृथ्वी पर गिरा दिया है। उसके भार से पीड़ित होकर पृथ्वी काँप रही है।

ततस्तदद्भुततमं श्रुत्वा देवः पितामहः।

तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः॥७२॥

उस अद्भुत वृत्त को सुनकर देव पितामह ने बार-बार कहा— हे देवेश! चलिए! वहाँ चलते हैं।

ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः।

आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र लिङ्गं भवस्य तत्॥७३॥

तदनन्तर देव पितामह तथा जगत्पति केशव उस स्थल पर पहुँचे जहाँ शिव का लिङ्ग गिरा था।

ततोऽनन्तं हरिर्लिङ्गं दृष्ट्वाऽऽरुह्य खगेश्वरम्।

पातालं प्रविवेशाथ विस्मयान्तरितो विभुः॥७४॥

उस अनन्तलिङ्ग को देखकर विस्मय से भरे सर्वव्यापक हरि ने गरुड़ पर सवार होकर पाताल में प्रवेश किया।

ब्रह्मा हंसविमानेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः।

नैवान्तमलभद्ब्रह्मा विस्मितः पुनरागतः॥७५॥

हे ब्रह्मन्! पद्मविमान द्वारा ऊर्ध्व से सभी देशों को आक्रान्त करने पर भी ब्रह्मा उस लिङ्ग का अन्त नहीं पा सके। तब विस्मित होकर वे वापस चले आए।

विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान्सप्त लोकपरायणः।

चक्रपाणिर्विनिष्क्रान्तो लेभेऽन्तं न महामुने॥७६॥

हे महामुने! चक्रपाणि व लोकपरायण विष्णु सातों लोकों में जाकर वापस भी हो गए; किन्तु उसका अन्त नहीं पा सके।

विष्णुः पितामहश्चोभौ हरलिङ्गं समेत्य ह।

कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा स्तोत्रं देवौ प्रचक्रतुः॥७७॥

विष्णु तथा पितामह ब्रह्मा दोनों हाथ जोड़ हर के लिङ्ग के समीप पहुँचकर उस देव की स्तुति करने लगे।

हरिब्रह्माणावूचतुः

नमोऽस्तु ते शूलपाणे नमोऽस्तु वृषभध्वज।

जीमूतवाहन कवे शर्व त्र्यम्बक शङ्कर॥७८॥

हरि एवं ब्रह्मा बोले— हे शूलपाणि! आपको नमस्कार! हे वृषभध्वज! आपको नमस्कार! हे जीमूतवाहन! हे कवि! हे सर्व! हे त्र्यम्बक! हे शङ्कर! आपको नमस्कार है।

महेश्वर महेशान सुवर्णाक्ष वृषाकपे।

दक्षयज्ञक्षयकर कालरूप नमोऽस्तुते॥७९॥

हे महेश्वर! हे महेशान! हे सुवर्णाक्ष! हे वृषाकपि! दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले! हे कालरूप! आपको नमस्कार है।

त्वमादिरस्य जगतस्त्वं मध्यं परमेश्वर।

भवानन्तश्च भगवान्सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते॥८०॥

हे परमेश्वर! आप ही इस संसार के आदि एवं मध्य हैं। आप ही सर्वव्यापक भगवान् है। आप ही इसके अन्त हैं। आपको नमस्कार है।

पुलस्त्य उवाच–

एवं संस्तूयमानस्तु तस्मिन्दारुवने हरः।

स्वरूपी ताविदं वाक्यमुवाच वदतां वरः॥८१॥

पुलस्त्य बोले— इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर विद्वान् शिव उसी दारुवन में अपने स्वरूप में स्थित हुये और उन दोनों से कहा।

हर उवाच–

किमर्थं देवतानाथौ परिभूतक्रमं त्विह।

मां स्तुवाते भृशास्वस्थं कामतापितविग्रहम्॥८२॥

शिव बोले— हे. देवतानाथ! थके हुए, पूरी तरह अस्वस्थ एवं कामसंतप्त शरीर वाले मेरी स्तुति आप लोग क्यों कर रहे हैं?

देवावूचतुः

भवतः पातितं लिङ्गं यदेतद्भुवि शङ्कर।

एतत्प्रगृह्यतां भूयः अतो देव स्तुवावहे॥८३॥

दोनों देव बोले— हे शङ्कर! आप ने अपना यह जो लिङ्ग पृथ्वी पर गिराया गया है, उसे आप वापस ग्रहण

कर लीजिए— इसीलिए हम दोनों आप की स्तुति कर रहे हैं।

हर उवाच–

यद्यर्चयन्ति त्रिदशा मम लिङ्गं सुरोत्तमौ।
तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथंचन॥८४॥

शिव ने कहा— हे देवश्रेष्ठ! यदि सभी देव मेरे लिङ्ग की पूजा करें तभी मैं इसे ग्रहण करूँगा— अन्यथा नहीं।

ततः प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः।
ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिङ्गं कनकपिङ्गलम्॥८५॥

तब भगवान् केशव ने कहा— ऐसा ही होगा। ब्रह्मा ने तब स्वयं उस स्वर्ण के समान पिङ्गल वर्ण वाले लिङ्ग को ग्रहण किया।

ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने।
शास्त्राणि चैषां मुख्यानि नानोक्तिविदितानि च॥८६॥

फिर भगवान् ने चारों वर्णों को शिवलिङ्ग की पूजा का अधिकार दिया। इनके मुख्य शास्त्र नाना उक्तियों से विदित हैं।

आद्यं शैवं परिख्यातमन्यत्पाशुपतं मुने।
तृतीयं कालवदनं चतुर्थं च कपालिकम्॥८७॥

हे मुने! शिव भक्तों का आद्य सम्प्रदाय शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा कालवदन तथा चतुर्थ कापालिक नाम से विख्यात है।

शिवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुतः।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुतः॥८८॥

वसिष्ठ के प्रिय पुत्र शक्ति स्वयं शैव थे। उनके गोपायन नाम से विश्रुत शिष्य हुए।

महापाशुपतश्चासीद्भरद्वाजस्तपोधनः।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा ऋषभः सोमकेश्वरः॥८९॥

तपोधन भारद्वाज महापाशुपत थे। सोमकेश्वर राजा ऋषभ उनके शिष्य हुए।

कालास्यो भगवानासीदापस्तम्बस्तपोधनः।
तस्य शिष्यो बभूवाथ नाम्ना क्राथेश्वरो मुने॥९०॥

हे मुने! तपोधन भगवान् आपस्तम्भ कालवदन संप्रदाय के थे। क्राथेश्वर नामक वैश्य उनका शिष्य हुआ।

महाव्रती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान्।
कर्णोदर इति ख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः॥९१॥

धनद महाव्रती थे। उनका शिष्य कर्णोदर नाम से विख्यात है। वह वीर्यवान् तथा महातपस्वी था। जाति से वह शूद्र था।

एवं स भगवान्ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य तत्।
कृत्वा तु चातुराश्रम्यं स्वमेव भवनं गतः॥९२॥

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा चारों वर्णों का विधान करके शिव-पूजन के लिए अपने भवन में चले गए।

गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसंहृत्य तत्तदा।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाप्य चचार ह॥९३॥

ब्रह्मा के चले जाने पर शिव ने उस लिङ्ग को संक्षिप्त करके चित्रवन में स्थापित कर दिया और स्वयं इधर-उधर विचरण करने लगे।

विचरन्तं तदा भूयो महेशं कुसुमायुधः।
आरात्स्थित्वाऽग्रतो धन्वी संतापयितुमुद्यतः॥९४॥

महेश जब विचरण कर रहे थे तब उन के समीप उपस्थित होकर धनुषधारी काम पुनः उन्हें संताप देने के लिए उद्यत हुआ।

ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाध्मातदृशा हरः।
स्मरमालोकयामास शिखाग्राच्चरणान्तिकम्॥९५॥

काम को अपने समक्ष उपस्थित देखकर शिव ने क्रोधयुक्त नेत्र से उस को शिखा से चरण पर्यन्त देखा।

आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि।
प्रादह्यत तदा ब्रह्मन्पादादारभ्य कक्षवत्॥९६॥

हे ब्रह्मन्! शङ्कर के द्वारा आलोकित होने पर द्युतिमान् होते हुए भी कामदेव पैर से लेकर कक्ष पर्यन्त जल उठा।

प्रदह्यमानौ चरणौ दृष्ट्वाऽसौ कुसुमायुधः।
उत्ससर्ज धनुः श्रेष्ठं तज्जगामाथ पञ्चधा॥९७॥

अपने चरणों को जलते देखकर काम ने अपने श्रेष्ठ धनुष को छोड़ दिया। वह धनुष पाँच टुकड़ों में विभक्त हो गया।

यदासीन्मुष्टिबन्धे तद्रुक्मपृष्ठं महाप्रभम्।
स चम्पकतरुर्जातः सुगन्धाढ्यो महाद्युतिः॥९८॥

जो इस धनुष का कान्तिशाली रुक्मपृष्ठ मुष्टिबन्ध था वह अत्यन्त सुन्दर एवं सुगंध से भरे चम्पक वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गया।

नाहस्थानं शुभाकारं यदासीद्वज्रभूषितम्।
तज्जातं केसरारण्यं बकुलं नामतो मुने॥ ९९॥

हे मुने! इसका वज्रभूषित एवं शुभ जो नाभिस्थान था वह केसरारण्य बकुल वृक्ष बन गया।

या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता।
जाता सा पाटला रम्या भृङ्गराजिविभूषिता॥ १००॥

इसकी जो इन्द्रनील से विभूषित शुभ कोटि थी वह भृङ्ग-पंक्तियों से सुन्दर एवं रम्य पाटल पुष्प (गुलाब) बन गयी।

नाहोपरि तथा मुष्टौ स्थानं शशिमणिप्रभम्।
पञ्चगुल्माऽभवज्जाती शशाङ्ककिरणोज्ज्वला॥ १०१॥

नाह के ऊपर चन्द्रकान्तमणि के समान कान्ति वाला मुष्टि का स्थान चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल पञ्चगुल्मा जूही बन गया।

ऊर्ध्वं मुष्ट्या अधः कोट्योः स्थानं विद्रुमभूषितम्।
तस्माद्बहुपुटा मल्ली संजाता विविधा मुने॥ १०२॥

हे मुने! मुष्टि के ऊपर तथा कोटि के नीचे विद्रुम से विभूषित जो स्थान था, वह विविध रूप से अनेक पुटों वाली मल्लिका हो गया।

पुष्पोत्तमानि रम्याणि सुरभीणि च नारद।
जातियुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च॥ १०३॥

हे नारद! देव ने जाति से युक्त रम्य, सुगन्धित व उत्तम पुष्प सृजित किये हैं।

मुमोच मार्गणान् भूम्यांछरीरे दह्यति स्मरः।
फलोपगानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्रशः॥ १०४॥

शरीर के जलने पर काम ने बाणों को भूमि पर छोड़ दिया, उससे हजारों की संख्या में फलयुक्त वृक्ष उत्पन्न हो गये।

चूतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च।
हरप्रसादाज्जातानि भोज्यान्यपि सुरोत्तमैः॥ १०५॥

शिव की कृपा से देवों के द्वारा भोज्य विविध प्रकार के सुस्वादु एवं सुगन्धित आम्रादि फल उत्पन्न हुए।

एवं दग्ध्वा स्मरं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विभुः।
पुण्यार्थी शिशिराद्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः॥ १०६॥

इस प्रकार सर्वव्यापक एवं अव्यय रुद्र कामदेव को जलाकर तथा अपने शरीर को संयमित करके एवं पुण्य प्राप्ति के प्रयोजन से तपस्या के लिए शिशिराद्रि चले गए।

एवं पुरा देववरेण शंभुना
कामस्तु दग्धः सशरः सचापः।
ततस्त्वनङ्गेति महाधनुर्द्धरो
देवैः स्तुतो देववरैस्तु पूजितः॥ १०७॥

इस तरह प्राचीन काल में देवश्रेष्ठ शङ्कर के द्वारा शर एवं चाप धारण करने वाले कामदेव दग्ध हुए थे। उसी समय से लेकर देवगण अनङ्ग कहकर उस महाधनुर्धर कामदेव की स्तुति और पूजा करने लगे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे कामदाहो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(प्रह्लाद का युद्ध)

पुलस्त्य उवाच-

ततोऽनङ्गं विभुर्दृष्ट्वा ब्रह्मन्नारायणो मुनिः।
विहस्यैवं वचः प्राह कन्दर्प इह आस्यताम्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्रह्मन्! इसके बाद सर्वव्यापक नारायण मुनि अनङ्ग को देखकर हँसते हुए बोले— कन्दर्प! यहाँ बैठ जाइए।

तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः।
वसन्तोऽपि महाचिन्तां जगामाशु महामुने॥ २॥

हे महामुने! इनके क्रोध्र को देखकर काम आश्चर्य में पड़ गया और वसन्त भी इससे बहुत चिन्तित हुआ।

ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च।
वसन्तमाह भगवानेह्येहि स्थीयतामिति॥ ३॥

इसके अनन्तर अप्सराओं को देखकर, स्वागत से उनकी पूजा करके भगवान् ने वसन्त से कहा— आइए! आइए! बैठिए!

ततो विहस्य भगवान्मञ्जरीं कुसुमावृताम्।
आदाय प्राक्सुवर्णाङ्गीमूर्वोर्बालां विनिर्ममे॥ ४॥

फिर हँसकर भगवान् ने कुसुमावृत मञ्जरी को लिया और अपनी जङ्घा पर सुवर्ण के समान अङ्गों वाली बाला (उर्वशी) का निर्माण किया।

ऊरूद्भवां सकन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः॥५॥

जङ्घा से उत्पन्न उस सर्वाङ्गसुन्दरी को देखकर कन्दर्प ने सोचा कि क्या यह प्रिया 'रति' है?

तदेव वदनं चारु स्वक्षिभ्रूकुटिलालकम्।
सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम्॥६॥

(क्योंकि) इसका मुख वैसे ही सुन्दर आँखों और भौहों से युक्त है, वैसे ही कुटिल केशों से युक्त है, वैसे ही सुन्दर नाक है, वैसे ही अधरों से युक्त और अत्यन्त आकर्षण से युक्त है।

तावेव चाप्यविरलौ पीवरौ मग्नचूचुकौ।
राजेतेऽस्याः कुचौ पीनौ सज्जनाविव संहतौ॥७॥

उसी तरह इसके भी सज्जनों की तरह परस्पर संहत सुमनोहर स्थूल मग्नचचुक वाले कुच हैं (स्तन युग्म)।

तदेव तनु चार्वङ्ग्या वलित्रयविभूषितम्।
उदरं राजते श्लक्ष्णं रोमावलिविभूषितम्॥८॥

इस सुन्दरी का चिकनी रोमावलि एवं त्रिवली से युक्त उदर वाला शरीर उसी तरह शोभित हो रहा है।

रोमावली च जघनाद्याति स्तनतटद्वयम्।
राजते भृङ्गमालेव पुलिनात्कमलाकरम्॥९॥

जघनप्रदेश से स्तनतट की ओर जाती हुई रोमावलि पुलिन (सैकत बालुकामय तटप्रदेश) से कमलसमूह की ओर जाती हुई भृङ्गमाला की तरह शोभित हो रही है।

जघनं त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रसनावृतम्।
क्षीरोदमथने नद्धं भुजंगेनेव मन्दरम्॥१०॥

इसका करधनी (रशना) से घिरा अतिविस्तृत जघन समुद्रमंथन के समय सर्पराज से सन्नद्ध मन्दराचल की भाँति सुन्दर लग रहा है।

कदलीस्तम्भसदृशैरूर्ध्वमूलैरथोरुभिः।
विभाति सा सुचार्वङ्गी पद्मकिञ्जल्कसन्निभा॥११॥

वह सुन्दरा कदली (केले) के स्तम्भ के सदृश ऊर्ध्वमूल वाली जङ्घाओं से पद्मराग के समान (गौर वर्णवाली) शोभा पा रही थी।

जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्घे त्वरोमशे।
विभात्यस्यास्तथा पादावलक्तकसमत्विषौ॥१२॥

इसके दोनों जानु, स्थूल गुल्फ, दोनों रोमहीन जङ्घाएँ तथा आलक्तक के समान कान्ति वाले दोनों पैर सुन्दर लग रहे हैं।

इति संचिन्तयन्कामस्तामनिन्दितलोचनाम्।
कामातुरोऽसौ संजातः किमुतान्यो जनो मुने॥१३॥

हे मुने! इस प्रकार सुन्दर नेत्रों वाली उर्वशी के विषय में सोचते हुए जब यह कामदेव ही कामातुर हो गए तब अन्य के विषय में क्या कहना?

माधवोऽप्युर्वशीं दृष्ट्वा संचिन्तयति नारद।
किंस्वित्कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता॥१४॥
आयाता शशिनो नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये।
रविरश्मिप्रतापार्तिभीता शरणमागता॥१५॥

हे नारद! उर्वशी को देखकर वसन्त ने भी सोचा कि क्या यह कामनरेन्द्र की स्वयं राजधानी रूप से स्थित हैं? या फिर रात्रि के क्षीण होने पर चन्द्रमा की निश्चित रूप से कान्ति रवि रश्मि के प्रताप से भयभीत होकर शरणागत हुई है।

इत्थं संचिन्तयन्नेव अवष्टभ्याप्सरोगणम्।
तस्थौ मुनिरिव ध्यानमास्थितः स तु माधवः॥१६॥

इस प्रकार सोचते हुए उसने वसन्त अप्सराओं को रोका और फिर मुनि के समान ध्यानस्थ होकर बैठ गया।

ततः स विस्मितान्सर्वान्कन्दर्पादीन्महामुने।
दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभव्रतः॥१७॥
इयं ममोरुसंभूता कामाप्सरी माधवी।
नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च॥१८॥

हे महामुने! तदनन्तर शुभव्रत वाले श्रीनारायण ने मुस्कराकर सभी कन्दर्पादिकों को विस्मित देखा और कहा– हे काम! हे अप्सराओं! हे वसन्त! यह मेरी जघांओं से उत्पन्न हुई है। इसे देवलोक ले जाइए और वसुओं को दे दीजिए।

इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जग्मुर्गृह्योर्वशीं दिवम्।
सहस्राक्षाय तां प्रादात् रूपयौवनशालिनीम्॥ १९॥

इस प्रकार कहे जाने पर वे सभी कांपते हुए उर्वशी को लेकर स्वर्गलोक गए और उस रूप-यौवन सम्पन्न सुन्दर बाला को इन्द्र को दे दिया।

आचख्युश्चरितं ताभ्यां धर्मजाभ्यां महामुने।
देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद्विस्मयः परम्॥ २०॥

हे महामुने! कामादि ने देवराज से उन धर्मजों (नर व नारायण) का चरित कहा जिससे वे अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये।

एतादृशं हि चरितं ख्यातिमग्र्यां जगाम ह।
पातालेषु तथा मर्त्ये दिक्ष्वष्टासु जगाम च॥ २१॥

इस प्रकार का चरित ख्यातिप्राप्त हो गया और पाताल, मर्त्य तथा आठों दिशाओं में व्याप्त हो गया।

एकदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपौ मुने।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः॥ २२॥

हे मुने! एक बार हिरण्यकशिपु नामक अत्यन्त भयङ्कर राक्षस के मारे जाने पर प्रह्लाद नामक दानव का राज्याभिषेक हुआ।

तस्मिञ्छासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके।
मखान्भूवि राजानो यजन्ते विधिवत्तदा॥ २३॥

देव तथा ब्राह्मणों की पूजा करने वाले उस दैत्येन्द्र के शासन करते रहने पर राजा लोग पृथ्वी पर विधिवत् यज्ञ करते रहते थे।

ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्रां च कुर्वते।
वैश्याश्च पशुवृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः॥ २४॥

ब्राह्मण तपस्या, धर्म तथा तीर्थ यात्रा करते थे। वैश्य पशुपालन तथा शूद्र सेवाकार्य में रत थे।

चातुर्वर्ण्यं ततः स्वे स्वे आश्रमे धर्मकर्मणि।
आवर्त्तत ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन्मुने॥ २५॥

चारों वर्ण (ब्राह्मणादि) अपने-अपने आश्रम में अपने-अपने धर्मकार्यों में लगे थे जिससे देवता भी वृत्ति से युक्त हो गए थे।

ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं चैवाकुलीश्वरम्॥ २६॥

एक बार महातपस्वी भार्गवेन्द्र च्यवन ऋषि नर्मदा में स्नान करने के लिए अकुलीश्वर नामक तीर्थ में गये।

तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदीं स्नातुमवातरत्।
अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः॥ २७॥

वहाँ महादेव का दर्शन करने के पश्चात् वे नदी में स्नान करने के लिए उतरे। नदी उतरे हुए उन च्यवन ऋषि को केकरलोहित नाग ने पकड़ लिया।

गृहीतस्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम्।
संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः॥ २८॥

उस नाग से पकड़े जाने पर च्यवन ऋषि ने मन से हरि का स्मरण किया। पुण्डरीकाक्ष (नारायण) का स्मरण करने पर वह महान् सर्प विषरहित हो गया।

नीतस्तेनातिरौद्रेण पन्नगेन रसातलम्।
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं भुजगोत्तमः॥ २९॥

उस भयङ्कर सर्प के द्वारा भार्गवोत्तम रसातल में पहुँचा दिए गए। विषरहित होकर उसने च्यवन ऋषि को छोड़ दिया।

संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः।
चचार नागकन्याभिः पूज्यमानः समन्ततः॥ ३०॥

नाग के द्वारा छोड़ दिये जाने पर भार्गवोत्तम च्यवन ऋषि चारों ओर से नागकन्याओं से पूजित होते हुए विचरण करने लगे।

विचरन्नविवेशाथ दानवानां महत्पुरम्।
संपूज्यमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽथ ददर्श तम्॥ ३१॥

विचरण करते हुए उन्होंने दानवों के विशाल नगर में प्रवेश किया। वहाँ दैत्येन्द्रों से सम्पूज्यमान प्रह्लाद ने उन्हें देखा।

भृगुपुत्रो महातेजाः पूजां चक्रे यथार्हतः।
संपूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चागमयं प्रति॥ ३२॥

उस महान् तेजस्वी प्रह्लाद ने भृगुपुत्र (च्यवन) का यथायोग्य पूजन किया। संपूजित होकर उनके बैठने पर प्रह्लाद ने उनसे उनके आगमन के कारण विषय में पूछा।

स चोवाच महाराज महातीर्थं महाफलम्।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुं चै वाकुलेश्वरम्॥ ३३॥

च्यवन ऋषि ने कहा— महाराज! आज मैं महान् फल वाले महातीर्थ अकुलीश्वर का दर्शन करने तथा उसमें स्नान करने के लिए आया था।

नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चाहिना बलात्।
समानीतोऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि॥ ३४॥

नदी में अवतीर्ण होते ही नाग ने बलपूर्वक मुझे पकड़ लिया। पुनः मुझे पाताल लोक में लाया गया जहाँ आपका दर्शन हुआ।

एतच्छ्रुत्वा च वचनं च्यवनस्य दितीश्वरः।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोविदः॥ ३५॥

च्यवन की यह बात सुनकर बोलने में निपुण दैत्यराज प्रह्लाद ने निम्न धर्मयुक्त वाक्य कहे।

प्रह्लाद उवाच–

भगवन्कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे।
रसातले च कानि स्युरेतद्वक्तुं त्वमार्हसि॥ ३६॥

प्रह्लाद ने कहा— हे भगवन्! पृथिवी, आकाश एवं रसातल में कौन-कौन से तीर्थ हैं, यह सब मुझे बताइए।

च्यवन उवाच–

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलतले विदुः॥ ३७॥

च्यवन ऋषि बोले— हे महाबाहो! पृथिवी में नैमिष, अन्तरिक्ष में पुष्कर एवं रसातल में चक्र नामक तीर्थ है।

पुलस्त्य उवाच–

श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महामुने।
नैमिषं गन्तुकामोऽभूद्दानवानिदमब्रवीत्॥ ३८॥

पुलस्त्य बोले— हे महामुने! भार्गव (च्यवन) की वाणी को सुनकर दैत्यराज के मन में नैमिष तीर्थ जाने की इच्छा हुई। तब दैत्यराज ने दानवों से कहा।

प्रह्लाद उवाच–

उत्तिष्ठध्वं गमिष्यामः स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम्।
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्॥ ३९॥

प्रह्लाद ने कहा— उठो। हम लोग नैमिष तीर्थ में स्नान करने जायेंगे और वहाँ पीताम्बर पुण्डरीकाक्ष अच्युत (हरि) का दर्शन करेंगे।

पुलस्त्य उवाच–

इत्युक्ता दानवेन्द्रेण सर्वेते दैत्यदानवाः।
चक्रुरुद्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात्॥ ४०॥

पुलस्त्य ने कहा— दानवेन्द्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उन सभी दैत्य-दानवों ने अतुलनीय उद्योग किया और वे सब रसातल से निकल पड़े।

ते समभ्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः।
नैमिषारण्यमागम्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः॥ ४१॥

उन सभी महापराक्रमी दैत्य-दानवों ने प्रसन्नतापूर्वक नैमिषारण्य में आकर स्नान किया।

ततो दितीश्वरः श्रीमान्मृगव्यां स चचार ह।
चरन्सरस्वतीं पुण्यां ददर्श विमलोदकाम्॥ ४२॥

तदनन्तर श्रीमान् दितीश्वर (प्रह्लाद) शिकार के लिए विचरण करने लगे। विचरण करते हुए उन्होंने स्वच्छ जल वाली पुण्यमयी नदी सरस्वती को देखा।

तस्यादूरे महाशाखं सालवृक्षं शरैश्चितम्।
ददर्श बाणानपरान्मुखे लग्नान्परस्परम्॥ ४३॥

उसके समीप ही उन्होंने महान् शाखाओं वाले, बाणों से युक्त एक शालवृक्ष को देखा जिसमें एक नाम एक दूसरे के मुख से परस्पर संलग्न थे।

ततस्तानद्भुताकारान्बाणान्नागोपवीतकान्।
दृष्ट्वाऽतुलं तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल॥ ४४॥

नागोपवीत अद्भुत आकार वाले उन बाणों को देखकर दैत्येश्वर को अत्यधिक क्रोध आया।

स ददर्श ततोऽदूरात्कृष्णाजिनधरौ मुनी।
समुन्नतजटाभारौ तपस्यासक्तमानसौ॥ ४५॥

तब उन्होंने समीप ही कृपणाजिन धारण करने वाले, बढ़े हुए जटाभार वाले एवं तपस्या में मन लगाए हुए दो मुनियों को देखा।

तयोश्च पार्श्वयोर्दिव्ये धनुषी लक्षणान्विते।
शार्ङ्गमाजगवं चैव अक्षय्यौ च महेषुधी॥ ४६॥

उन दोनों के पार्श्व में दिव्य लक्षणों से युक्त दो धनुष शार्ङ्ग व आजगव थे जिनके तरकस अक्षय्य थे।

तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाम्भिकाविति दानवः।
ततः प्रोवाच वचनं तावुभौ पुरुषोत्तमौ॥४७॥

उन दोनों को देखकर दानवेन्द्र ने उन्हें दम्भी समझा और उन पुरुषोत्तमों से कहा—

किं भवद्भ्यां समारब्धं दम्भं धर्मविनाशनम्।
क्व तपः क्व जटाभारः क्व चेमौ प्रवरायुधौ॥४८॥

क्या आप लोग धर्म को नष्ट करने वाले दम्भ का प्रारम्भ कर रहे हैं क्योंकि कहाँ तप; कहाँ जटाभार और कहाँ ये दोनों श्रेष्ठ आयुध?

अथोवाच नरो दैत्यं का ते चिन्ता दितीश्वर।
सामर्थ्ये सति यः कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि॥४९॥

फिर नर ने दैत्य से कहा— हे दितीश्वर! आपको क्या चिन्ता है? सामर्थ्य रहने पर जो कुछ किया जाता है, वह उसके लिए उचित ही होता है।

अथोवाच दितीशस्तौ का शक्तिर्युवयोरिह।
मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्त्तके॥५०॥

दैत्येन्द्र ने कहा— मुझ जैसे धर्मसेतु के प्रवर्तक दैत्येन्द्र के रहते आप लोगों में क्या सामर्थ्य है?

नरस्तं प्रत्युवाचाथ आवाभ्यां शक्तिरूर्जिता।
न कश्चिच्छक्नुयाज्जेतुं नरनारायणौ युधि॥५१॥

नर ने उस दैत्येन्द्र को उत्तर दिया— हम लोगों की शक्ति अत्यन्त वेग से युक्त है। नर व नारायण से युद्ध में कोई भी नहीं जीत सकता।

दैत्येश्वरस्ततः क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च।
यथाकथंचिज्जेष्यामि नरनारायणौ रणे॥५२॥

क्रुद्ध होकर दैत्येश्वर ने फिर प्रतिज्ञा की कि इन नर व नारायण को मैं किसी भी तरह से युद्ध में जीतूँगा।

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
दितीश्वरः स्थाप्य बलं वनान्ते।
वितत्य चापं गुणमाविकृष्य
तलध्वनिं घोरतरं चकार॥५३॥

ऐसा कहकर वनान्त में सेना को स्थित करके उस महात्मा दितीश्वर ने धनुष फैलाया और प्रत्यञ्चा को खींचकर घोर तलध्वनि की।

ततो नरस्त्वाजगवं हि चाप-
मानम्य बाणान्सुबहूञ्छिताग्रान्।
मुमोच तानप्रतिमैः पृषत्कै-
श्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः॥५४॥

तब नर ने आजगव धनुष को झुकाकर बहुत से सुतीक्ष्ण बाणों को छोड़ा। किन्तु दैत्य ने अतुलनीय स्वर्ण पुंख वाले अनेकों बाणों से उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

छिन्नान्समीक्ष्याथ नरः पृषत्कान्
दैत्येश्वरेणाप्रतिमेन संख्ये।
क्रुद्धः समानम्य महाधनुस्ततो
मुमोच चान्यान्विविधान्पृषत्कान्॥५५॥

युद्ध में अतुलनीय दैत्येश्वर के द्वारा बाणों को छिन्न-भिन्न होता देखकर क्रुद्ध होकर नर ने फिर महाधनुष को झुकाया और अन्य बहुविध बाणों को छोड़ा।

एकं नरो द्वौ दितिजेश्वरश्च
त्रीन्धर्मसूनुश्चतुरो दितीशः।
नरस्तु बाणान्प्रमुमोच पञ्च
षड् दैत्यनाथो निशितान्पृषत्कान्॥५६॥

जब नर एक बाण छोड़ता तो दितीश्वर प्रह्लाद दो बाण छोड़ता तथा नर के तीन बाणों पर दितीश चार बाण छोड़ता। नर ने जब पाँच बाण छोड़े तब दैत्यनाथ ने छह बाण छोड़े।

सप्तर्षिमुख्यो द्विचतुश्च दैत्यो
नरस्तु षट् त्रीणि च दैत्यमुख्ये।
षट्त्रीणि चैकं च दितीश्वरेण
मुक्तानि बाणानि नराय विप्र॥५७॥

हे विप्र! जब ऋषिप्रमुख नर ने सात बाण छोड़े तब दैत्य ने आठ बाण छोड़े। नर ने जब दैत्य पर नौ बाण छोड़े तब दैत्य ने नर पर दस बाण छोड़े।

एकं च षट् पञ्च नरेण मुक्ता
स्त्वष्टौ शराः सप्त च दानवेन।

षट् सप्त चाष्टौ नव षण्नरेण
द्विसप्ततिं दैत्यपतिः ससर्ज्ज॥५८॥

इसी तरह नर के बारह बाण छोड़ने पर दैत्यपति ने पन्द्रह बाण तथा नर के छत्तीस बाणों पर दैत्यराज ने बहत्तर बाण छोड़े।

शतं नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः
षड् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः।
ततोऽप्यसंख्येयतरान् हि बाणान्
मुमोचतुस्तौ सुभृशं हि कोपात्॥५९॥

नर के सौ बाण छोड़ने पर दैत्यराज ने तीन सौ और धर्मपुत्र (नर) के छह सौ बाण पर दैत्य ने एक हजार बाण छोड़े। फिर अत्यधिक क्रोध से उन दोनों ने असंख्य बाण छोड़े।

ततो नरो बाणगणैरसंख्यै-
रवास्तरद्भूमिमथो दिशः खम्।
स चापि दैत्यप्रवरः पृषत्कै-
श्चिच्छेद वेगात्तपनीयपुङ्खैः॥५९॥

नर ने असंख्य बाणों से पृथिवी, दिशा एवं आकाश को व्याप्त कर दिया। उस दैत्यप्रवर ने भी स्वर्णपुंख बाणों से अत्यधिक वेगपूर्वक उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

ततः पतत्रिभिर्वीरौ सुभृशं नरदानवौ।
तदा वरास्त्रैर्युध्येतां घोररूपैः परस्परम्॥६०॥

तदनन्तर हाथ में श्रेष्ठ अस्त्र धारण करने वाले दैत्य ने ब्रह्मास्त्र को बाण पर चढ़ाया। नर ने भी अपने परम आयुध में उग्र नारायणास्त्र को चढ़ाया।

ततस्तु दैत्येन वरास्त्रपाणिना
चापे नियुक्तं तु पितामहास्त्रम्।
महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन
समं समाहत्य निपेततुस्तौ॥६२॥

दैत्यराज ने तब उस युद्ध में महान् आग्नेयास्त्र का और पुरुषोत्तम ने महेश्वरास्त्र का एक साथ प्रयोग किया, जिसके फलस्वरूप दोनों ही अस्त्र एक-दूसरे से टकराकर गिर गये।

ब्रह्मास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः क्रोधमूर्च्छितः।
गदां प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात्॥६३॥

ब्रह्मास्त्र के शान्त होने पर प्रह्लाद क्रोध से मूर्च्छित हो गए एवं गदा लेकर उत्तम रथ से बड़े वेग के साथ कूद पड़े।

गदापाणिं समायान्तं दैत्यं नारायणस्तदा।
दृष्ट्वाऽथ पृष्ठतश्चक्रे नरं योद्धुमनाः स्वयम्॥६४॥

गदा लिये हुए दैत्य को आते देखकर नारायण ने फिर स्वयं युद्ध करने की इच्छा से नर को पीछे कर दिया।

ततो दितीशः सगदः समाद्रवत्
सशार्ङ्गबाणं तपसां निधानम्।
ख्यातं पुराणर्षिमुदारविक्रमं
नारायणं नारद लोकपालम्॥६५॥

हे नारद! फिर गदा को हाथ में लिये हुए दैत्यराज शार्ङ्गधारी, तपोनिधि, अत्यन्त पराक्रमी, लोकपालक, पुरातन ऋषि नारायण की ओर दौड़े।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे प्रह्लादयुद्धं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

(प्रह्लाद को वर-प्राप्ति का वर्णन)

पुलस्त्य उवाच–

शार्ङ्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाऽग्रे दानवेश्वरः।
परिभ्राम्य गदां वेगान्मूर्ध्नि साध्यमताडयत्॥१॥

पुलस्त्य बोले— शार्ङ्गपाणि साध्य (नारायण) को आगे आते देखकर दानवेश्वर ने वेगपूर्वक गदा घुमाकर उनके शिर पर प्रहार किया।

ताडितस्याथ गदया धर्मपुत्रस्य नारद।
नेत्राभ्यामपतद्वारि वह्निवर्षनिभं भुवि॥२॥

हे नारद! गदा से ताडित धर्मपुत्र के नेत्रों से अग्नि के सदृश अश्रुधारा भूमि पर गिरने लगी।

मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दानवार्पिता।
जगाम शतधा ब्रह्मञ्छैलशृङ्गे यथाऽशनिः॥३॥

हे ब्रह्मन्! नारायण के भी सिर पर चलायी गयी गदा शैल शिखर पर होने वाले वज्रपात की तरह सैंकड़ों टुकड़े हो गयी।

ततो निवृत्त्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं द्रुतम्।
आदाय कार्मुकं वीरस्तूणाद्बाणं समाददे॥ ४॥

फिर लौटकर वीर दैत्यराज ने शीघ्रता से रथ पर चढ़कर धनुष लेकर तरकस से बाण को निकाला।

आनम्य चापं वेगेन गार्द्धपत्राञ्छिलीमुखान्।
मुमोच साध्याय तदा क्रोधान्धकारितमानसः॥ ५॥

तव वेग से धनुष को झुकाकर क्रोध से अन्धकारित मुख वाले दैत्य ने गीध के पंखों के समान बाणों को साध्य नारायण पर छोड़ा।

तानापतत एवाशु बाणांश्चन्द्रार्द्धसन्निभान्।
चिच्छेद बाणैरपरैर्निर्बिभेद च दानवम्॥ ६॥

शीघ्रता से आने वाले अर्धचन्द्र के समान उन बाणों को नारायण ने काट डाला और अन्य बाणों से दानव को भेदा।

ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणं शरैः।
आविध्येतां तदाऽन्योन्यं मर्मभिद्भिरजिह्मगैः॥ ७॥

फिर नारायण को दैत्य ने और दैत्य को नारायण ने परस्पर मर्मभेदी एवं सीधे चलने वाले बाणों से वेधा।

ततोऽम्बरे संनिपातो देवानामभवन्मुने।
दिदृक्षूणां तदा युद्धं लघु चित्रं च सुष्ठु च॥ ८॥

हे मुने! तब इस लघु एवं विचित्र युद्ध को भली-भाँति देखने की इच्छा वाले देवताओं का समूह आकाश में उमड़ पड़ा।

ततः सुराणां दुन्दुभ्यस्त्व खेऽवाद्यन्त महास्वनाः।
पुष्पवर्षमनौपम्यं मुमुचुः साध्यदैत्ययोः॥ ९॥

तदनन्तर देवताओं के महान् शब्दकारी दुन्दुभियों से नारायण व दैत्य के ऊपर अनुपम पुष्पवर्षा हुई।

ततः पश्यत्सु दैत्येषु गगनस्थेषु तावुभौ।
अयुध्येतां महेष्वासौ प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम्॥ १०॥

फिर उन दोनों महाधनुर्धारी वीरों के बीच प्रेक्षकों की उत्सुकता को बढ़ाने वाला युद्ध हुआ। उनके इस युद्ध को गगन में स्थित देवतागण देख रहे थे।

ववन्धतुस्तदाऽऽकाशं तावुभौ शरवृष्टिभिः।
दिशश्च विदिशश्चैव छादयेतां शरोत्करैः॥ ११॥

तब उन दोनों ने बाणों की वर्षा से आकाश को बाँध दिया और अपने बाणसमूह से दिशाओं व विदिशाओं (उपदिशाओं) को आच्छादित कर दिया।

ततो नारायणश्चापं समाकृष्य महामुने।
बिभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु॥ १२॥

हे महामुने! नारायण ने फिर चाप खींचकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से प्रह्लाद के कवच को भेद दिया।

तदा दैत्येश्वरः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान्।
बिभेद हृदये बाह्वोर्वदने च नरोत्तमम्॥ १३॥

उसी तरह वेगवान् क्रुद्ध दैत्येश्वर ने चाप खींचकर नरोत्तम के हृदय, बाहु एवं मुख को भेद दिया।

ततोऽस्यतो दैत्यपतेः कार्मुकं मुष्टिबन्धनात्।
चिच्छेदैकेन बाणेन चन्द्रार्धाकरवर्चसा॥ १४॥

फिर नारायण ने बाण चलाने वाले दैत्यपति के धनुष को अर्धचन्द्रकार तेजस्वी एक बाण से मुष्टिबन्ध से काट दिया।

अपास्यत धनुश्छिन्नं चापमादाय चापरम्।
अधिज्यं लाघवात्कृत्वा ववर्ष निशिताञ्छरान्॥ १५॥

छिन्न धनुष को छोड़कर और दूसरे धनुष को लेकर जल्दी से प्रत्यञ्चा चढ़ाकर दैत्यराज ने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की।

तानप्यस्य शरान्साध्यश्छित्त्वा बाणैरवारयत्।
कार्मुकं च क्षुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः॥ १६॥

साध्य (पुरुषोत्तम) ने उसके उन बाणों को भी छिन्न करके निवारित कर दिया और पुरुषोत्तम ने तेज बाण से उसके धनुष को काट डाला।

छिन्नं छिन्नं धनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे।
समादत्तं तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवात्॥ १७॥

हे मुने! छिन्न-भिन्न धनुष को छोड़कर दैत्यराज ने अन्य धनुष लिया। नारायण ने फिर लघुता से उन लिए गए धनुषों को भी काट दिया।

संछिन्नेष्वथ चापेषु जग्राह दितिजेश्वरः।
परिघं दारुणं दीर्घं सर्वलोहमयं दृढम्॥ १८॥

धनुष के छिन्न होने पर दैत्यराज ने मजबूत लोहे से निर्मित दीर्घ एवं भयङ्कर परिघ को ग्रहण किया।

परिगृह्याथ परिघं भ्रामयामास दानवः।
भ्राम्यमाणं स चिच्छेद नाराचेन महामुनिः॥ १९॥

परिघ लेकर दानव ने उसे घुमाया। महामुनि नारायण ने उस घुमाए जाने वाले परिघ को नाराच (लोहे के बाण) से काट दिया।

छिन्ने तु परिघे श्रीमान्प्रह्लादो दानवेश्वरः।
मुद्गरं भ्राम्य वेगेन प्रचिक्षेप नराग्रजे॥ २०॥

परिघ के छिन्न होने पर दानवेश्वर श्रीमान् प्रह्लाद ने मुद्गर को वेग से घुमाकर नारायण के ऊपर छोड़ा।

तमापतन्तं बलवान्मार्गणैर्दशभिर्मुने।
चिच्छेद दशधा साध्यः स च्छिन्नो न्यपतद्भुवि॥ २१॥

हे मुने! उस आते हुए मुद्गर को बलवान् नारायण ने दश बाणों से दश टुकड़ों में काट डाला और वह छिन्न होकर जमीन पर गिर पड़ा।

मुद्गरे वितथे जाते प्रासमाविध्य वेगवान्।
प्रचिक्षेप नराग्र्याय तं च चिच्छेद धर्मजः॥ २२॥
प्रासे छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिक्षिपे।
तां च चिच्छेद बलवान्क्षुरप्रेण महातपाः॥ २३॥

मुद्गर के व्यर्थ होने पर वेगवान् दानव ने नारायण के ऊपर पाश फेंका। धर्मराज ने उसे भी काट दिया। पाश के छिन्न होने पर दैत्य ने नारायण के ऊपर शक्ति फेंकी। महातपस्वी, बलवान् नारायण ने तेज बाणों से उसे भी छिन्न-भिन्न कर दिया।

छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्धनुः।
समादाय ततो बाणैरवतस्तार नारद॥ २४॥

हे नारद! उन शस्त्रों के छिन्न होने पर दानव ने एक अन्य महाधनुष लेकर बाणों की वर्षा की।

ततो नारायणो देवो दैत्यनाथं जगद्गुरुः।
नाराचेनाजघानाथ हृदयेऽसुरतापसः॥ २५॥

फिर जगद्गुरु सुरतापस देव नारायण ने दैत्यनाथ के हृदय पर नाराच से प्रहार किया।

स भिन्नहृदयो ब्रह्मन्देवेनाद्भुतकर्मणा।
निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः॥ २६॥

हे ब्रह्मन्! नारायण के इस अद्भुत कर्म से विदीर्ण हृदय वाला दैत्य रथ के मध्यभाग में गिर पड़ा जिसे सारथि ने वहाँ से हटाया।

स संज्ञां सुचिरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः।
सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः॥ २७॥

बहुत देर के पश्चात् चेतना प्राप्त करके वह दैत्य मजबूत धनुष लेकर पुनः युद्ध के लिए आ गया।

तमागतं संनिरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः।
गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्यामः प्रातस्त्वाह्निकमाचर॥ २८॥

उसे पुनः आया हुआ देखकर नराग्रज (नारायण) ने कहा— दैत्येन्द्र! प्रातः युद्ध करेंगे। जाओ, इस समय आह्निक कर्म करो।

एवमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्भुतकर्मणा।
जगाम नैमिषारण्यं क्रिया चक्रे तदाऽऽह्निकीम्॥ २९॥

अद्भुत कर्म करने वाले नारायण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर दैत्य नैमिषारण्य चला गया और उसने वहाँ आह्निक (नित्य) कर्म किया।

एवं युध्यति देवे च प्रह्लादो हयसुरो मुनि।
रात्रौ चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामि दाम्भिकम्॥ ३०॥

हे मुने! देव (नारायण) के साथ इस प्रकार युद्ध करने पर असुर प्रह्लाद ने रात्रि में सोचा कि युद्ध में इस दाम्भिक को किस तरह जीतूँगा।

एवं नारायणेनासौ सहायुध्यत नारद।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्यो देवं न चाजयत्॥ ३१॥

हे नारद! इस तरह दैत्य ने नारायण के साथ दिव्य एक सहस्रवर्ष पर्यन्त युद्ध किया। किन्तु वह दैत्य देव को नहीं जीत सका।

ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे।
पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत्॥ ३२॥

तदनन्तर एक हजार वर्ष तक पुरुषोत्तम के अपराजित रहने पर पीताम्बर धारण करने वाले श्रीविष्णु के पास जाकर दानव ने कहा—

किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम्।
विजेतुं नाऽद्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद॥ ३३॥

हे देवदेवेश! वह दैत्य साध्य नारायण हरि को आज तक किस कारण से जीत नहीं पाया, इसका कारण आप मुझे कहें।

पीतवासा उवाच-

दुर्जयोऽसौ महाबाहुस्त्वया प्रह्लाद धर्मजः।
साध्यो विप्रवरो धीमान्मृधे देवासुरैरपि॥ ३४॥

पीतवस्त्रधारी विष्णु ने कहा— हे प्रह्लाद! यह महाबाहु धर्मनन्दन दुर्जय है। यह धीमान् विप्रवर साध्य (नारायण) देवता एवं असुरों से भी दुर्जय है।

प्रह्लाद उवाच-

यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे।
तत्कथं यत्प्रतिज्ञातं तदसत्यं भविष्यति॥ ३५॥

प्रह्लाद ने कहा— हे देव! यदि ये साध्य (नारायण) युद्ध में मुझसे दुर्जय हैं तब मेरी प्रतिज्ञा असत्य हो जाएगी।

हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः।
तस्मात्तवाग्रतो विष्णो करिष्ये कायशोषणम्॥ ३६॥

हे देवेश! मुझ जैसा व्यक्ति हीनप्रतिज्ञ होकर कैसे जीवित रह पायेगा? हे विष्णो! अतएव मैं आपके सामने अपना कायशोषण करूँगा।

पुलस्त्य उवाच-

इत्येवमुक्त्वा वचनं देवाग्रे दानवेश्वरः।
शिरः स्नातस्तदा तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम्॥ ३७॥

पुलस्त्य बोले— विष्णु के सामने इस प्रकार कहकर दानवेश्वर शिरःस्नात होकर सनातन ब्रह्मा की स्तुति करते हुए बैठ गए।

ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽब्रवीद्वचः।
गच्छ जेष्यसि भक्त्या तं न युद्धेन कथंचन॥ ३८॥

तदनन्तर पीतवस्त्र धारण करने वाले श्रीहरि विष्णु ने दैत्यराज से कहा— जाइए, आप उनको भक्ति से जीत सकोगे; युद्ध से किसी प्रकार भी नहीं।

प्रह्लाद उवाच-

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत।
न स्थातुं त्वत्प्रसादेन शक्यं किमुत रोषतः॥ ३९॥

प्रह्लाद बोले— हे सुव्रत! हे देवदेव! मैंने त्रैलोक्य को जीत लिया, आपकी कृपा से इन्द्र को जीत लिया तब धर्मनन्दन की क्या बात है?

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत।
जितोऽयं त्वत्प्रसादेन शक्रः किमुत धर्मजः॥ ४०॥

हे देव! हे देव! हे अजन्मा! यदि यह सुव्रत त्रैलोक्य से भी अजेय है, आपकी कृपा से भी मैं इसके सामने खड़ा नहीं हो सकता तो मैं क्या करूँ?

पीतवासा उवाच-

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया।
धर्मं प्रवर्त्तापयितुं तपश्चर्यां समास्थितः॥ ४१॥

विष्णु बोले— हे दानवसिंह! लोककल्याण के लिए तथा धर्म के प्रवर्तन के लिए तपस्या में लीन वह मैं ही हूँ।

तस्माद्यदिच्छसि जयं तमाराधय दानव।
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम्॥ ४२॥

अतएव हे दानव! यदि जय चाहते हो तो उनकी आराधना करो। भक्ति से ही वे पराजित हो सकेंगे। उन धर्मनन्दन की सेवा करो।

पुलस्त्य उवाच-

इत्युक्तः पीतवासेन दानवेन्द्रो महात्मना।
अब्रवीद्वचनं हृष्टः समाहूयाऽन्धकं मुने॥ ४३॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुने! पीताम्बरधारी महात्मा विष्णु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर दानवराज ने हर्षित होकर अन्धक को बुलाकर यह वचन कहा।

प्रह्लाद उवाच-

दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्त्वयान्धक।
मयोत्सृष्टमिदं राज्यं प्रतीच्छ त्वं महाभुज॥ ४४॥

प्रह्लाद ने कहा— हे अन्धक! तुम इन दैत्य एवं दानवों का पालन करो। हे महाभुज! मेरे द्वारा परित्यक्त इस साम्राज्य को तुम ग्रहण करो।

इत्येवमुक्तो जग्राह राज्यं हैरण्यलोचनिः।
प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत्पुण्यं बदरिकाश्रमम्॥ ४५॥

इस प्रकार कहे जाने पर हैरण्यलोचन (अन्धक) ने साम्राज्य की बागडोर सँभाली और तब प्रह्लाद पुण्य क्षेत्र बदरिकाश्रम चले गए।

दृष्ट्वा नारायणं देवं नरं च दितिजेश्वरः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणौ तयोः॥४६॥

दानवराज ने देव नारायण एवं नर को देखकर हाथ जोड़कर उनके चरणों की वन्दना की।

तमुवाच महातेजा वाक्यं नारायणोऽव्ययः।
किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर॥४७॥

महातेजस्वी, अव्यय नारायण ने उससे कहा— हे महासुर! मुझे जीते बिना ही तुम क्यों प्रणाम कर रहे हो?

प्रह्लाद उवाच–

कस्त्वां जेतुं प्रभो शक्तः कस्त्वत्तः पुरुषोऽधिकः।
त्वं हि नारायणोऽनन्तः पीतवासा जनार्दनः॥४८॥

प्रह्लाद बोले— हे प्रभो! आपको जीतने में कौन समर्थ है? और आपसे अधिक कौन पुरुष है? आप ही पीताम्बरधारी, जनार्दन, अनन्त नारायण हैं।

त्वं देवः पुण्डरीकाक्षस्त्वं विष्णुः शार्ङ्गचापधृक्।
त्वमव्ययो महेशानः शाश्वतः पुरुषोत्तमः॥४९॥

आप ही देव पुण्डरीकाक्ष हैं; आप ही शार्ङ्गधनुषधारण करने वाले श्रीविष्णु हैं; आप ही अव्यय महेश्वर हैं; आप ही सनातन पुरुषोत्तम हैं।

त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति मनीषिणः।
जपन्ति स्नातकास्त्वां च यजन्ति त्वां च याज्ञिकाः॥५०

आप का ही योगी लोग चिन्तन करते हैं; मनीषी आपका ही अर्चन करते हैं; आपका ही ब्रह्मचारी लोग जप करते हैं और याज्ञिक लोग आपका ही यजन करते हैं।

त्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः।
महामीनो हयशिरास्त्वमेव वरकच्छपः॥५१॥

आप ही अच्युत हृषीकेश, चक्रपाठी, धराधर, (मत्स्यावतारधारी) महामीन, हयग्रीव, और (कूर्मावतारधारी) महाकूर्म (कच्छप) हैं।

हिरण्याक्षरिपुः श्रीमान्भगवानथ सूकरः।
मत्पितुर्नाशकरोर्भवानपि नृकेसरी॥५२॥

आप ही हिरण्याक्ष के शत्रु श्रीमान् भगवान् सूकर हैं। मेरे पिता का नाश करने वाले नृसिंह आप ही हैं।

ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽमरराड्हुताशः
प्रेताधिपो नीरपतिः समीरः।
सूर्यो मृगाङ्कोऽचलजङ्गमाद्यो
भवान्विभो नाथ खगेन्द्रकेतो॥५३॥

हे विभो! हे गरुड़ध्वज! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं सम्पूर्ण अचल तथा चल (जङ्गम) के आदि हैं।

त्वं पृथ्वी ज्योतिराकाशं जलं भूत्वा सहस्रशः।
त्वया व्याप्तं जगत्सर्वं कस्त्वां जेष्यति माधव॥५४॥

आप पृथ्वी, ज्योति, आकाश, जल हैं। हजारों प्रकार से आप के द्वारा यह जगत् व्याप्त है। हे माधव! आप को कौन जीतेगा?

भक्त्या यदि हृषीकेश तोषमेषि जगद्गुरो।
नान्यथा त्वं प्रशक्योऽसि जेतुं सर्वगताऽव्ययः॥५५॥

हे जगद्गुरो! हे हृषीकेश! सर्वगत अव्यय आप भक्ति से ही संतुष्ट होते हैं। अन्य प्रकार से आप को जीत पाने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

भगवानुवाच–

परितुष्टोऽस्मि ते दैत्य स्तवेनानेन सुव्रत।
भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः॥५६॥

भगवान् ने कहा— हे सुव्रत दैत्य! तुम्हारे इस स्तुति से मैं संतुष्ट हूँ। हे दैत्य! अनन्य भक्ति से तुम्हारे द्वारा मैं पराजित हो गया।

पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति।
दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं वृणु यमिच्छसि॥५७॥

हे दैत्य! पराजित व्यक्ति दण्ड देता हैं, दण्ड के बदले मैं तुम्हें वरदान दूँगा। माँगो जो तुम चाहते हो।

प्रह्लाद उवाच–

नारायणं वरं याचे यं त्वं मे दातुमर्हसि।
तन्मे पापं लयं यातु शारीरं मानसं तथा॥५८॥
वाचिकं च जगन्नाथ यत्त्वया सह युध्यतः।
नरेण यद्यऽप्यभवद्वरमेनं प्रयच्छ मे॥५९॥

प्रह्लाद बोले— हे नारायण! मैं वरदान माँग रहा हूँ जिसे आप देने में सक्षम हैं। हे जगन्नाथ! आप के तथा

नर के साथ युद्ध करते समय हमारे द्वारा जो शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक पाप हुए हैं— वह सब नष्ट हो जाएँ। मुझे यही वरदान दीजिए।

नारायण उवाच–

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम्।
द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि तवासुर॥ ६०॥

नारायण ने कहा— दैत्येन्द्र! ऐसा ही हो। तुम्हारा पाप समाप्त हो जाय! हे असुर! दूसरा वर मांगो। उसे भी मैं तुमको दूँगा।

प्रह्लाद उवाच–

या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाश्रिता।
देवार्चने च निरता त्वच्चिता त्वत्परायणा॥ ६१॥

प्रह्लाद जी बोले— हे विष्णो! मुझ में जो भी बुद्धि उत्पन्न हो वह सब आपको आश्रय बनाने वाली हो। मेरी बुद्धि देवाराधन में रत एवं आपके चिन्तन में लगी रहे और आपके ही अधीन रहे।

नारायण उवाच–

एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि।
तं वृणीष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन्॥ ६२॥

नारायण ने कहा— असुर! ऐसा ही हो। हे महाबाहो! दूसरा कोई वर जो तुम चाहते हो, उसे ले लो। मैं बिना विचारे वह वह तुम्हें प्रदान कर दूँगा।

प्रह्लाद उवाच–

सर्वमेव मया लब्धं त्वत्प्रासादादधोक्षज।
त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम॥ ६३॥

प्रह्लाद ने कहा— हे अधोक्षज! आपकी कृपा से मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। आपके चरणकमल से ही मेरी सदा ख्याति रहेगी।

नारायण उवाच–

एवमस्त्वपरं चास्तु नित्यमेवाक्षयोऽव्ययः।
अजरश्चामरश्चापि मत्प्रासादाद्भविष्यसि॥ ६४॥

नारायण ने कहा— ऐसा ही हो! और मेरे आशीर्वाद से तुम शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अजर और अमर हो जाओगे।

गच्छस्व दैत्यशार्दूल स्वमावासं क्रियारतः।
न कर्मबन्धो भवतो मच्चित्तस्य भविष्यति॥ ६५॥

हे दैत्यशार्दूल! अपने घर जाओ! मुझ में चित्त लगाकर क्रियारत होने से तुम्हारी कर्म में आसक्ति नहीं होगी।

प्रशासयदमून्दैत्यान्राज्यं पालय शाश्वतम्।
स्वजातिसदृशं दैत्य कुरु धर्ममनुत्तमम्॥ ६६॥

हे दैत्य! इन दैत्यों पर शासन करते हुए राज्य का शाश्वत पालन करो! अपनी जाति के सदृश श्रेष्ठ धर्म का पालन करो।

पुलस्त्य उवाच–

इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमब्रवीत्।
कथं राज्यं समादास्ये परित्यक्तं जगद्गुरो॥ ६७॥

पुलस्त्य ने कहा— लोकनाथ के द्वारा ऐसा कहे जाने पर प्रह्लाद ने देव (विष्णु) से कहा— हे जगद्गुरो! परित्यक्त राज्य को मैं पुनः कैसे ग्रहण करूँगा।

तमुवाच जगत्स्वामी गच्छ त्वं निजमाश्रमम्।
हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवानां तथा भव॥ ६८॥

जगत्स्वामी विष्णु ने प्रह्लाद से कहा— तुम अपने घर जाओ और दैत्य तथा दानवों के हितोपदेष्टा बनो।

नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्यनायकः।
प्रणिपत्य विभुं तुष्टो जगाम नगरं निजम्॥ ६९॥

नारायण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह दैत्यनायक प्रह्लाद संतुष्ट मन से विभु को प्रणाम करके अपने नगर चला गया।

दृष्टः सभाजितश्चापि दानवैरन्धकेन च।
निमन्त्रितश्च राज्याय न प्रत्यैच्छत्स नारद॥ ७०॥

हे नारद! अन्धक सहित अन्य दानवों ने सभाजित (प्रह्लाद) को देखकर राज्य के लिए पुनः निमंत्रित किया किन्तु उन्होंने पुनः उसे स्वीकार नहीं किया।

राज्यं परित्यज्य महासुरेन्द्रो
न्ययोजयन् सत्पथि दानवेन्द्रान्।
ध्यायन्स्मरन्केशवमप्रमेयं
तस्थौ तदा योगविशुद्धदेहः॥ ७१॥

महासुरेन्द्र राज्य का परित्याग करके तथा अन्य दानवेन्द्रों को सन्मार्ग में नियुक्त करके अप्रमेय श्रीकेशव का ध्यान व स्मरण करते हुए योग से विशुद्ध देह (शरीरवाले) होकर स्थित हुए।

एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो
नारायणेनोत्तमपूरुषेण।
पराजितश्चापि विमुच्य राज्यं
तस्थौ मनो धातरि सन्निवेश्य॥७२॥

इस प्रकार हे नारद! प्राचीन काल में दानवेन्द्र प्रह्लाद उत्तम पुरुष नारायण के द्वारा पराजित हुआ और राज्य का त्याग करके विधाता में मन को सन्निविष्ट करके रहने लगा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे प्रह्लादवरप्रदानो नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

(देव और दानव का युद्ध)

नारद उवाच

नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने।
अभिषिक्तो जानताऽपि राजधर्मं सनातनम्॥१॥

नारद बोले— हे मुने! सनातन राजधर्म जानते हुए भी प्रह्लाद ने नेत्रहीन अन्धक को राजसिंहासन पर कैसे नियुक्त किया?

पुलस्त्य उवाच–

लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति।
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— हिरण्याक्ष के जीवित रहने पर ही अन्धक को पुनः नेत्र प्राप्त हो गया था। तदनन्तर दैत्य प्रह्लाद ने उसको अपने पद पर अभिषिक्त किया।

नारद उवाच–

राज्येऽन्धकोऽभिषिक्तस्तु किमाचरत सुव्रत।
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद्वदस्व मे॥३॥

नारद बोले— हे सुव्रत! राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए अन्धक ने कैसे आचरण किया? देवादि के साथ वह किस तरह रहा? यह सब बताइए।

पुलस्त्य उवाच–

राज्येऽभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षस्तदाऽन्धकः।
तपसाऽऽराध्य देवेशं शूलपाणिं त्रिलोचनम्॥४॥
अजेयत्वमवध्यत्वं सुरसिद्धर्षिपन्नगैः।
अदाह्यत्वं हुताशेन अक्लेद्यत्वं जलेन च॥५॥
एवं स वरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत्।
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः॥६॥

पुलस्त्य बोले— हिरण्याक्षसुत दैत्येन्द्र ने अन्धक राज्य में अभिषिक्त होकर शूलपाणि, त्रिलोचन, देवेश (शिव) की तपस्या से आराधना करके सुर (देवता) सिद्धर्षि एवं पन्नगों से अजेयत्व तथा अवध्यत्व, अग्नि से अदाह्यत्व, जल से अक्लेद्यत्वरूप वरदान प्राप्त किया। इस प्रकार वर प्राप्त करने वाले दैत्य अन्धक ने शुक्र को पुरोहित नियुक्त करके राज्य का पालन किया।

ततश्चक्रे समुद्योगं देवानामन्धकोऽसुरः।
आक्रम्य वसुधां सर्वान्मनुजेन्द्रान्पराजयत्॥७॥

तदनन्तर अन्धकासुर ने देवों को जीतने का समुद्योग किया। सम्पूर्ण पृथ्वी पर आक्रमण करके उसने सभी राजाओं को पराजित किया।

पराजित्य महीपालान्सहायार्थे नियोज्य च।
तैः समं मेरुशिखरं जगामाद्भुतदर्शनम्॥८॥

राजाओं को पराजित करके और उन्हें अपनी सहायता के लिए नियुक्त करके अन्धकासुर उन लोगों के साथ अद्भुत दिखाई पड़ने वाले मेरुपर्वत के शिखर पर गया।

शक्रोऽपि सुरसैन्यानि समुद्योज्य महागजम्।
समारुह्यामरावत्यां गुप्तिं कृत्वा विनिर्ययौ॥९॥

देवसेना को सुसज्जित करके तथा ऐरावत पर आरूढ़ होकर अमरावती में छिपने का स्थान बनाकर इन्द्र भी निकल पड़े।

शक्रस्यानु तथैवान्ये लोकपाला महौजसः।
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं सायुधा निर्ययुर्बहिः॥१०॥

इसी प्रकार महापराक्रमी अन्य लोकपाल भी आयुध से सम्पन्न होकर तथा अपने-अपने वाहन पर सवार होकर इन्द्र के पीछे बाहर निकल पड़े।

देवसेनाऽपि च समं शक्रेणाद्भुतकर्मणा।
निर्जगामातिवेगेन गजवाजिरथादिभिः॥ ११॥

हाथी, घोड़े व रथादि से युक्त देवसेना भी अद्भुत कर्म करने वाले इन्द्र के साथ अतिवेग से निकल पड़ी।

अग्रतो द्वादशादित्याः पृष्ठतश्च त्रिलोचनः।
मध्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याश्विमरुतां गणाः।
यक्षविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥ १२॥

अग्रभाग में द्वादश आदित्य, पृष्ठभाग में त्रिलोचन, मध्य में आठ वसु तथा चारों तरफ अश्विनीगण, मरुद्गण, यक्षगण, विद्याधर आदि अपने-अपने वाहन पर सवार होकर चल पड़े।

नारद उवाच-

रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः।
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतूहलं मम॥ १३॥

नारद बोले— हे धर्मज्ञ! रुद्रादि के सभी वाहनों का एक-एक करके वर्णन कीजिए। इस विषय में मुझे बहुत जिज्ञासा है।

पुलस्त्य उवाच-

शृणुष्व कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद।
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः॥ १४॥

पुलस्त्य ने कहा— हे नारद! मैं सभी के वाहनों का एक-एक करके संक्षिप्त रूप से क्रमशः वर्णन करूँगा।

रुद्रहस्ततलोत्पन्नो महावीर्यो महाजवः।
श्वेतवर्णो गजपति र्देवराजस्य वाहनम्॥ १५॥

रुद्र की हथेली से उत्पन्न महाबलशाली, महावेगवान्, श्वेतवर्ण वाला गजराज (ऐरावत) देवराज इन्द्र का वाहन है।

रुद्रोरुसम्भवो भीमं कृष्णवर्णो मनोजवः।
पौण्ड्रको नाम महिषो धर्मराजस्य नारद॥ १६॥

हे नारद! रुद्र की जंघा से उत्पन्न, भयंकर, कृष्णवर्ण वाला मन के समान वेगवान् पौण्ड्र नामक महिष धर्मराज का वाहन है।

रुद्रकर्णमलोद्भूतः श्यामो जलधिसंज्ञकमः।
शिशुमारो दिव्यगतिः वाहनं वरुणस्य च॥ १७॥

रुद्र के कानों के मैल से उत्पन्न, श्यामवर्ण वाला, जलधिसंज्ञक तथा दिव्यगति से युक्त शिशुमार वरुण का वाहन है।

रौद्रः शकटचक्राक्षः शैलाकारो नरोत्तमम्।
अम्बिकापादसंभृतो वाहनं धनदस्य तु॥ १८॥

अम्बिका के पैर से उत्पन्न, रौद्र, गाड़ी के चक्र के समान आँख वाला, शैलाकार नरोत्तम कुबेर का वाहन है।

एकादशानां रुद्राणां वाहनानि महामुने।
गन्धर्वाश्च महावीर्या भुजगेन्द्राश्चः दारुणाः।
श्वेतानि सौरभेयाणि वृषाण्यग्रजवानि च॥ १९॥

हे महामुने! एकादश रुद्रों के वाहन महाबलशाली गन्धर्व, भीषण भुजगेन्द्र गाय से उत्पन्न, उग्र वेग वाले श्वेत वृषभ हैं।

रथं चन्द्रमसश्चार्द्धसहस्रं हंसवाहनम्।
हरयो रथवाहाश्च आदित्या मुनिसत्तम॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पाँच सौ हंस चन्द्ररथ के वाहक हैं जबकि आदित्य के रथवाहक घोड़े हैं।

कुञ्जरस्थाश्च वसवो यक्षाश्च नरवाहनाः।
किन्नरा भुजगारूढा हयारूढौ तथाश्विनौ॥ २१॥

वसुओं के रथवाहक कुञ्जर, यक्षों के नर, किन्नरों के सर्प तथा अश्विनीकुमारों के वाहन अश्व हैं।

सारङ्गाधिष्ठिता ब्रह्मन्मरुतो घोरदर्शनाः।
शुकारूढाश्च कवयो गन्धर्वाश्च पदातिनः॥ २२॥

हे ब्रह्मन्! मरुद्गणों के वाहन घोर दिखायी पड़ने वाले सारङ्ग कवियों (मृगु) के शुक तथा गन्धर्व पैदल चलने वाले हैं।

आरुह्य वाहनान्येवं स्वानि स्वान्यमरोत्तमाः।
संनह्य निर्ययुर्हृष्टा युद्धाय सुमहौजसः॥ २३॥

इस प्रकार महातेजस्वी देवगण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ तथा सन्नद्ध होकर प्रसन्नता से युद्ध के लिए निकले।

नारद उवाच-

गदितानि सुरादीनां वाहनानि त्वया मुने।
दैत्यानां वाहनान्येवं यथावद्वक्तुमर्हसि॥ २४॥

नारद ने कहा— हे मुने! देवताओं के वाहनों के बारे में आपने बता दिया। कृपा करके इसी तरह दैत्यों के वाहनों के बारे में हमें यथावत् बतायें।

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्व दानवादीनां वाहनानि द्विजोत्तम।
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि॥ २५॥

पुलस्त्य ने कहा— हे द्विजोत्तम! दानवों के वाहनों के बारे में सुनिए। मैं उनके बारे में भली प्रकार कहूँगा जिसे आप सुनने की इच्छा रखते हैं।

अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः।
कृष्णवर्णैः सहस्रारस्त्रिनल्वपरिमाणवान्॥ २६॥

कृष्णवर्ण के उत्तम घोड़ों से युक्त, हजारों धुरियों वाला तथा बारह सौ हाथ परिमाण वाला अन्धक का दिव्य रथ है।

प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णैर्हयोत्तमैः।
उह्यमानस्तथाऽष्टाभिः श्वेतरुक्ममयः शुभः॥ २७॥

चन्द्रवर्ण के आठ घोड़ों से खींचे जाने वाला, श्वेत और चमकदार (स्वर्णमण्डित) सुन्दर तथा दिव्य रथ प्रह्लाद का है।

विरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरङ्गमः।
जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः॥ २८॥

विरोचन का हाथी, कुजम्भ का घोड़ा तथा जम्भ का दिव्यरथ स्वर्ण के सदृश घोड़ों से युक्त है।

शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः।
रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेश्च महोरगः॥ २९॥
शम्बरस्य विमानोऽभूदयः शङ्कोर्मृगाधिपः।

शंकुकर्ण का घोड़ा, हयग्रीव का हाथी, मयासुर का रथ, दुन्दुभि का विख्यात महोरग (विशाल सर्प) शम्बर का विमान तथा अयःशंकु का सिंह वाहन है।

बलिवृत्रौ च बलिनौ गदामुसलधारिणौ॥ ३०॥
पद्भ्यां दैवतसैन्यानि अभिद्रवितुमुद्यतौ।

गदा तथा मुसल धारण करने वाले महाबली बल तथा वृत्र भी देवसेना को अभिभूत करने के लिए उद्यत हैं।

ततो रणोऽभूत्तुमुलः संकुलोऽतिभंयकरः॥ ३१॥
रजसा संवृतो लोकः पिङ्गवर्णेन नारद।

फिर कोलाहलपूर्ण, घनघोर तथा अतिभयङ्कर युद्ध हुआ। हे नारद! पीली धूल से लोक व्याप्त हो गया।

नाज्ञासीच्च पिता पुत्रं न पुत्रः पितरं तथा॥ ३२॥
स्वानेवान्ये निजघ्नुर्वै परानन्ये च सुव्रत।

हे सुव्रत! पिता पुत्र को तथा पुत्र पिता को पहचान नहीं पाए। कुछ लोग स्वजनों का और कुछ शत्रुओं का हनन करने लगे।

गजो मत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमभ्यगात्।
अभिद्रुतो महावेगो रथोपरि रथस्तदा॥ ३३॥

तदनन्तर रथ के ऊपर रथ, हाथी मत्तगजेन्द्र के ऊपर, घुड़सवार घुड़सवारों के ऊपर महावेग से टूट पड़े।

पदातिरपि संक्रुद्धः पदातिनमथोल्वणम्॥ ३४॥
परस्परं तु प्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकांक्षिणः।

संक्रुद्ध पदातिन (पैदल सैनिकों) ने अन्य बली पैदल सेना पर आक्रमण किया। इस प्रकार एक दूसरे पर जय की इच्छा से परस्पर लोगों ने प्रहार किया।

ततस्तु संकुले तस्मिन्युद्धे दैवासुरे मुने॥ ३५॥
प्रावर्तत नदी घोरा शमयन्ती रणाद्रजः।

फिर, हे मुने! उस घनघोर देवासुर संग्राम में धूल को शान्त करने वाली घोर नदी प्रवाहित हुई।

शोणितोदा रथावर्त्ता योधसंघट्टवाहिनी॥ ३६॥
गजकुम्भमहाकूर्मा शरमीना दुरत्यया।

वह नदी रक्तरूपी जल, रथरूपी आवर्त्त (भँवर) योद्धाओं के समूह को बहाने वाली, गजकुम्भरूपी महाकच्छप, बाणरूपी मत्स्य से युक्त तथा दुर्गम थी।

तीक्ष्णाग्रप्रासमकरा महासिग्राहवाहिनी॥ ३७॥
अन्त्रशैवालसंकीर्णा पताकाफेनमालिनी।
गृध्रकङ्कमहाहंसा श्येनचक्राह्वमण्डिता॥ ३८॥
वनवायसकादम्बा गोमायुश्वापदाकुला।
पिशाचमुनिसंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनैः॥ ३९॥
रथप्लवैः संतरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे।

वह तीक्ष्ण अग्रप्रासरूपी मकर, महान् खड्गरूपी ग्राह को बहाने वाली, आँतरूपी शैवाल से युक्त, पताकारूपी फेन से युक्त, गृध्र व कंकरूपी महाहंसों वाली, श्येनरूपी चक्रवाक से मण्डित, वनकाकरूपी कलहंस, शृगाल व

कुत्तों से भरी हुई, पिशाचरूपी मुनि से युक्त, सामान्यजनों के लिए दुर्गम थी। रथ से तैरते हुए वीर लोग उसका अवगाहन कर रहे थे।

आगुल्फादवमज्जन्तः सूदयन्तः परस्परम्।
समुत्तरन्तो वेगेन योधा जयधनेप्सवः॥ ४०॥

घुटने पर्यन्त डूबते हुए, परस्पर (एक दूसरे को) व्यथित करते हुए जयरूपी धन की इच्छा रखने वाले योद्धा वेग से उस नदी को पार कर रहे थे।

ततस्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने
महाहवे भीरुभयंकरेऽथ।
रक्षांसि यक्षाश्च सुसंप्रहष्टाः
पिशाचयूथास्त्वभिरेमिरे च॥ ४१॥

फिर देव व राक्षसों को भयभीत करने वाले, भयङ्कर युद्ध में राक्षस, यक्ष एवं पिशाच समूह प्रसन्नता से आनन्दित हुए।

पिबन्त्यसृग्गाढतरं भटाना-
मालिङ्ग्य मांसानि च भक्षयन्ति।
वसां विलुम्पन्ति च विस्फुरन्ति
गर्जन्त्यथान्योन्यमथो वयांसि॥ ४२॥

वे वीरों के गाढ़े रक्त को पी रहे थे, मांस को लेकर खा रहे थे, पक्षी चर्बी को उछाल रहे थे। इस प्रकार वे सभी परस्पर गरज रहे थे।

मुञ्चन्ति फेत्काररवाञ्शिवाश्च
क्रन्दन्ति योधा भुवि वेदनार्त्ताः।
शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये
युद्धं श्मशानप्रतिमं बभूव॥ ४३॥

गीदड़ी (शृगालियाँ) चीख रही थीं; योद्धा वेदना से व्यथित होकर पृथ्वी पर क्रन्दन कर रहे थे; दूसरे लोग शस्त्राहत होकर गिर रहे थे। इस तरह युद्ध श्मशान की तरह हो गया था।

तस्मिञ्छिवा घोरतरे प्रवृत्ते
सुरासुराणां सुभयंकरे ह।
युद्धं बभौ प्राणपणोपविद्धं
द्वंद्वेऽतिशस्त्राक्षगतो दुरोदरम्॥ ४४॥

शृगालियों के घोर चीत्कार में प्रवृत्त हो जाने पर तथा देवासुर का भयङ्कर द्वन्द्व होने पर युद्ध मानों तीक्ष्ण शस्त्ररूपी पासे तथा प्राणरूपी द्रव्य (धन) से युक्त हो गया था।

हिरण्यचक्षोस्तनयो रणेऽन्धको
रथे स्थितो वाजिसहस्रयोजिते।
मत्तेभपृष्ठस्थितमग्रतेजसं
समेयिवान्देवपतिं शतक्रतुम्॥ ४५॥

हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक हजारों घोड़ों द्वारा वाहित (नीचे जाने वाले) रथ पर बैठकर, मत्त गजराज के पीठ पर बैठने वाले, उग्र तेजस्वी, देवराज इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए गया।

समापतन्तं महिषाधिरूढं
यमं प्रतीच्छद्‌बलवान्दितीशः।
प्रह्लादनामा तुरगाष्टयुक्तं
रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः॥ ४६॥

महिष पर आरूढ़ होकर आते हुए यम के आठ घोड़ों से युक्त रथ को रोककर और अपने अस्त्रों को उद्यत करके राक्षसराज बलवान् प्रह्लाद ने उसका सामना किया।

विरोचनश्चापि जलेश्वरं त्व-
गाज्जम्भस्त्वथागाद्धनदं बलाढ्यम्।
वायुं समभ्येत्य च शंबरोऽथ
मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र॥ ४७॥

हे मुनीन्द्र! विरोचन ने जलेश्वर (वरुण) का, जम्भ ने बलशाली कुबेर का, शम्बर ने वायु का तथा भय ने अग्नि का सामना किया।

अन्ये हयग्रीवमुखा महाबला
दितेस्तनूजा दनुपुंगवाश्च।
सुरान्हुताशार्कवसूरगेश्वरान्
द्वन्द्वं समासाद्य महाबलान्विताः॥ ४८॥

हयग्रीव आदि अन्य महाबलशाली राक्षस और दानवश्रेष्ठ अग्नि, सूर्य, वसु तथा उरगेश्वर आदि देवों से द्वन्द्व युद्ध करने लगे।

गर्जन्त्यथान्योन्यमुपेत्य युद्धे
चापानि कर्षन्त्यतिवेगिताश्च।

मुञ्चन्ति नाराचगणान्सहस्रश

आगच्छ हे तिष्ठसि किं ब्रुवन्तः॥४९॥

युद्ध में वे एक-दूसरे के समीप पहुँचकर गर्जन करने लगे। अत्यन्त वेग से चाप को खींचने लगे और नाराचसमूह को हजारों बार छोड़ते हुए यह कहने लगे- आओ! आओ! क्यों खड़े हो?

शरैस्तु तीक्ष्णैरभितापयन्तः

मन्दाकिनीवेगनिभां वहन्तीम्।

प्रावर्त्तयन्तो भयदां नदीं च

शस्त्रैरमोघैरभिताडयन्तः॥५०॥

उन्होंने तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते हुए, और अमोघ शस्त्रों को ताडित करते हुए मंदाकिनी के वेग के समान भयंकर बहती हुई नदी को प्रवर्तित किया।

त्रैलोक्यमाकाङ्क्षिभिरुग्रवेगैः

सुरासुरैर्नारद संप्रयुद्धे ः।

पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनी-

मुत्तर्तुमिच्छद्भिरसृङ्नदी बभौ॥५१॥

हे नारद! त्रैलोक्य की इच्छा वाले सम्प्रबुद्ध सुर और असुर प्रवर्तित युद्ध में पिशाच तथा राक्षसगण को पुष्ट करने वाली उस रक्त नदी को पार करने की इच्छा करने लगे।

वाद्यन्ति तूर्याणि सुरासुराणां

पश्यन्ति खस्था मुनिसिद्धसंघाः।

नयन्ति तान्प्सरसां गणाग्र्या

हता रणे येऽभिमुखास्तु शूराः॥५२॥

सुर तथा असुरों के वाद्ययंत्र बजाए जा रहे थे। आकाशस्थ मुनियों का सिद्धसंघ युद्ध देख रहा था। जो रणाग्रयायी वीर युद्ध में मारे गये, उन्हें अप्सराएँ ले जा रही थीं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे देवासुरयुद्धं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

(अन्धक विजय-वर्णन)

पुलस्त्य उवाच-

ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरूणां भयवर्धने।

सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर भीरूओं का भयवर्धन करने वाले सङ्ग्राम में सहस्राक्ष इन्द्र ने विशाल धनुष को लेकर बाणों को छोड़ा।

अन्धकोऽपि महावेगं धनुराकृष्य भास्वरम्।

पुरन्दराय चिक्षेप शरान्बर्हिणवाससः॥२॥

अन्धक ने भी तेजस्वी धनुष को खींचकर मयूर के पंख की तरह बाणों को अत्यन्त वेग के साथ इन्द्र के ऊपर फेंका।

तावन्योन्यं सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः।

रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराजघ्नतुरुभावपि॥३॥

उन दोनों ने एक दूसरे पर तीक्ष्ण अग्रभाग वाले, झुके हुए पर्व वाले तथा स्वर्ण पुंख वाले बाणों से अत्यन्त वेग के साथ प्रहार किया।

ततः क्रुद्धः शतमखः कुलिशं भ्राम्य पाणिना।

चिक्षेप दैत्यराजाय तं ददर्श तथाऽन्धकः॥४॥

आजघान च बाणौघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद।

तान्भस्मसात्तदा चक्रे नगानिव हुताशनः॥५॥

हे नारद! फिर क्रोधित इन्द्र ने हाथ से वज्र को घूमाकर दैत्यराज पर फेंका। उस वज्र को अन्धक ने देख लिया। तब अन्धक ने भी अस्त्र, शस्त्र तथा बाण-समूह से उस पर प्रहार किया। परन्तु जैसे अग्नि वृक्षों को भस्म करती है, उसी तरह उन बाणों को वज्र ने भस्म कर दिया।

ततोऽतिवेगिनं वज्रं दृष्ट्वा बलवतां वरः।

समाप्लुत्य रथात्तस्थौ भुवि बाहुसहायवान्॥६॥

फिर अतिवेगशाली वज्र को आते देखकर अपनी बाहु पर आश्रित रहने वाला महाबली अन्धक रथ से कूदकर पृथ्वी पर खड़ा हो गया।

रथं सारथिना सार्धं साश्वध्वजसकूबरम्।
भस्म कृत्वाऽथ कुलिशमन्धकं समुपाययौ॥७॥

सारथि, घोड़े, ध्वज एवं कूबर सहित रथ को भस्म करके वह वज्र अन्धक के समीप पहुँच गया।

तमापतन्तं वेगेन मुष्टिनाऽऽहत्य भूतले।
पातयामास बलवाञ्जगर्ज च तदाऽन्धकः॥८॥

उस वेग से आते हुए वज्र को बलवान् अन्धक ने मुष्टिकाप्रहार से भूमि पर गिरा दिया और वह गर्जन करने लगा।

तं गर्जमानं वीक्ष्याथ वासवः सायकैर्दृढम्।
ववर्ष तान् वारयन् स समभ्यायाच्छतक्रतुम्॥९॥

गर्जन करते हुए उस अन्धक को देखकर इन्द्र ने उसके ऊपर दृढ़ बाणों की वर्षा की। उन सभी को निवारित करता हुआ वह शतक्रतु (इन्द्र) के पास आ गया।

आजघान तलेनेभं कुम्भमध्ये पदा करे।
जानुना च समाहत्य विषाणं प्रबभञ्ज च॥१०॥

उसने तल से कुम्भमध्य पर, पैर से सूंड़ पर तथा जानु से दाँत पर प्रहार करके उसे तोड़ दिया।

वाममस्य तथा पार्श्वं समाहत्यान्धकस्त्वरन्।
गजेन्द्रं पातयामास प्रहारैर्जर्जरीकृतम्॥११॥

अन्धक ने शीघ्रता के साथ उस हाथी के वामपार्श्व पर प्रहार किया। उसके प्रहार से गजराज का शरीर जर्जर हो गया; जिसके परिणामस्वरूप वह गिर पड़ा।

गजेन्द्रात्पतमानाच्च अवप्लुत्य शतक्रतुः।
पाणिना वज्रमादाय प्रविवेशामरावतीम्॥१२॥

गिरते हुए गजेन्द्र से कूदकर इन्द्र कूद पड़े और हाथ में वज्र लेकर अमरावती में प्रवेश कर गये।

पराङ्मुखे सहस्राक्षे तद्दैवतबलं महत्।
पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टितलादिभिः॥१३॥

सहस्राक्ष (इन्द्र) के पराङ्मुख हो जाने पर दैत्यराज ने उस देवसेना को पाद तथा मुष्टितल आदि से प्रहार करके गिरा दिया।

ततो वैवस्वतो दण्डं परिभ्राम्य द्विजोत्तम।
समभ्यधावत्प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः॥१४॥

हे द्विजोत्तम! फिर प्रह्लाद को मार डालने की इच्छा से सुरोत्तम यम दण्ड घुमाकर दौड़े।

तमापतन्तं बाणौघैर्ववर्ष रविनन्दनम्।
हिरण्यकशिपोः पुत्रश्चापमानम्य वेगवान्॥१५॥

रविनन्दन (यम) को आते देखकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद ने धनुष झुकाकर गर्जन करते हुए उन पर अत्यन्त वेग से बाणों की वर्षा की।

तां बाणवृष्टिमतुलां दण्डेनाहत्य भास्करिः।
शातयित्वा प्रचिक्षेप दण्डं लोकभयंकरम्॥१६॥

यम ने उस अतुलित बाणवृष्टि को दण्ड से व्यर्थ करके लोकभयकारी दण्ड फेंका।

स वायुपथमास्थाय धर्मराजकरे स्थितः।
जज्वाल कालाग्निनिभो यद्वद्दग्धुं जगत्त्रयम्॥१७॥

धर्मराज (यम) के हाथ में स्थित वह दण्ड तीनों लोकों को जलाने वाले कालाग्नि के सदृश वायुपथ में आकर प्रज्ज्वलित होने लगा।

जाज्वल्यमानमायान्तं दण्डं दृष्ट्वादितेः सुताः।
प्राक्रोशन्ति हतः कष्टं प्रह्लादोऽयं यमेन हि॥१८॥

उस जाज्वल्यमान दण्ड को आते देखकर दैत्यगण, यम ने प्रह्लाद को मार डाला— ऐसा कहते हुए क्रन्दन करने लगे।

तमाक्रन्दितमाकर्ण्य हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः।
प्रोवाच मा भैष्ट मयि स्थिते कोऽयं सुराधमः॥१९॥

उनके उस आक्रन्दन को सुनकर हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ने कहा— 'डरो मत! मेरे रहते यह सुराधम क्या है'?

इत्येवमुक्त्वा वचनं वेगेनाभिससार च।
जग्राह पाणिना दण्डं हसन् सव्येन नारद॥२०॥

हे नारद! ऐसा कहकर अन्धक वेग के साथ आगे बढ़ा और अपने बायें हाथ से उसने दण्ड को पकड़ लिया।

तमादाय ततो वेगाद्भ्रामयामास चान्धकः।
जगर्ज च महानादं यथा प्रावृषि तोयदः॥२१॥

उसको (दण्ड को) पकड़कर अन्धक ने वेग से घुमाया और वर्षाऋतु में बादल की तरह गर्जन करने लगा।

प्रह्लादं रक्षितं दृष्ट्वा दण्डाद्दैत्येश्वरेण हि।
साधुवादं ददुर्हृष्टात्यदानवयूथपाः॥ २२॥

दैत्येश्वर (अन्धक) के द्वारा दण्ड से प्रह्लाद को रक्षित देखकर दैत्य और दानवों के नेताओं ने प्रसन्न होकर उसका साधुवाद किया।

भ्रामयन्तं महादण्डं दृष्ट्वा भानुसुतो मुने।
दुःसहं दुर्धरं मत्वा अन्तर्धानमगाद्यमः॥ २३॥

हे मुने! घुमाए जाते हुए महादण्ड को देखकर उसे दुःसह तथा दुर्धर मानकर भानुसुत यम अन्तर्धान हो गए।

अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महामुने।
दारयामास बलवान्देवसैन्यं समन्ततः॥ २४॥

हे महामुने! धर्मराज (यम) के अन्तर्हित हो जाने पर प्रह्लाद ने भी देवसेना को चारों ओर से दलित कर दिया।

वरुणः शिशुमारस्थो बद्ध्वा पाशैर्महासुरान्।
गदया दारयामास तमभ्यागाद्विरोचनः॥ २५॥
तोमरैर्वज्रसंस्पर्शैः शक्तिभिर्मार्गणैरपि।
जलेशं ताडयामास मुद्गरैः कणपैरपि॥ २६॥

शिशुमार पर आरूढ़ वरुण ने महासुरों को पाशे से बाँधकर गदा से आहत किया। उनका सामना करने के लिए विरोचन आगे बढ़े। उसने वज्रतुल्य तोमर, शक्ति, बाण, मुद्गर तथा कणप (नामक आयुध) से जलेश (वरुण) को प्रताडित किया।

ततस्तं गदयाऽभ्येत्य पातयित्वा धरातले।
अभिद्रुत्य बबन्धाथ पाशैर्मत्तगजं बली॥ २७॥

बलवान् वरुण के समीप पहुँचकर उस मत्त गज को गदा प्रहार से भूमि पर गिरा दिया और शीघ्रता के साथ अपने पाशों से उसे बाँध दिया।

तान्पाशाञ्छतधा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः।
वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद॥ २८॥

हे नारद! दैत्यराज ने अतिवेगपूर्वक उस पाश के सौ टुकड़े कर दिये तथा मध्य में जाकर उसने वरुण को पकड़ लिया।

ततो दन्ती च शृङ्गाभ्यां प्रचिक्षेप तदाऽव्ययः।
ममर्द च तथा पद्भ्यां सवाहं सलिलेश्वरम्॥ २९॥

फिर अव्यय दन्ती ने सींग से वरुण को फेंक दिया और वाहन सहित उनको पैर से रौंद दिया।

तं मर्द्यमानं वीक्ष्याथ शशाङ्कः शिशिरांशुमान्।
अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः॥ ३०॥

उन (वरुण) को मर्दित होता हुआ देखकर शीतरश्मि चन्द्रमा उनके समीप पहुँचे और उन पर शरीर को विदीर्ण करने वाले बाणों की वर्षा करने लगे।

स ताड्यमानः शिशिरांशुबाणै-
रवाप पीडां परमां गजेन्द्रः।
दुष्टश्च वेगात्पयसामधीशं
मुहुर्मुहुः पादतलैर्ममर्द॥ ३१॥

चन्द्रमा के बाणों से मर्दित किये जाने के कारण गजेन्द्र को अत्यधिक पीड़ा हुई, लेकिन दुष्ट गजेन्द्र वरुण को बारम्बार अपने पादतल से रौंदता रहा।

स मृद्यमानो वरुणो गजेन्द्रं
पद्भ्यां सुगाढं जगृहे महर्षे।
पादेषु भूमिं करयोः स्पृशंश्च
मूर्द्धानमुल्लाल्य बलान्महात्मा॥ ३२॥
गृह्याङ्गुलीभिश्च गजस्य पुच्छं
कृत्वेह बन्धं भुजगेश्वरेण।
उत्पाट्य चिक्षेप विरोचनं हि
सकुञ्जरं खे सनियन्तृवाहम्॥ ३३॥

हे महर्षे! रौंदे जाते हुये वरुण ने गजेन्द्र के पैरों को अच्छी तरह पकड़ लिया। पैर और हाथ से भूमि का स्पर्श करते हुए सिर को उठाकर बलवान् महात्मा ने अङ्गुलियों से गज के पुच्छ को पकड़ा और उस पुच्छ को सर्पराज से बाँधकर नियन्ता (विरोचन) सहित उस गजेन्द्र को उठाकर आकाश में फेंक दिया।

क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु
सकुञ्जरो भूमितले पपात।
साट्टं सयन्त्राऽर्गलहर्म्यभूमि
पुरं सुकेशेरिव भास्करेण॥ ३४॥

वरुण के द्वारा हाथी सहित फेंका गया विरोचन भूमि पर इस प्रकार गिरा जैसे अट्टालिका यंत्र, अर्गला एवं

हर्म्य भूमि से युक्त सुकेशि का नगर भास्कर के द्वारा गिराया गया हो।

ततो जलेशः सगदः सपाशः
समभ्यधावद्दितिजं निहन्तुम्।
ततः समाक्रन्दमनुत्तमं हि
मुक्तं तु दैत्यैर्घनरावतुल्यम्॥३५॥

तदनन्तर वरुण गदा व पाश लेकर दैत्यराज को मारने के लिए दौड़ पड़े। तब दैत्यों ने मेघ के गर्जन की तरह अनुत्तम आक्रन्दन किया।

हाहा हतोऽसौ वरुणेन वीरो
विरोचनो दानवसैन्यपालः।
प्रह्लाद हे जम्भकुजम्भकाद्या
रक्षध्वमभ्येत्य सहान्धकेन॥३६॥

हा! हा! दानवसेना के पालक वीर विरोचन वरुण के द्वारा मारे जा रहे हैं। हे प्रह्लाद! हे जम्भ! हे कुजम्भकादि! अन्धक के साथ आकर इन्हें बचाओ।

अहो महात्मा बलवाञ्जलेशः
संचूर्णयन्दैत्यभटां सवाहाम्।
पाशेन बद्ध्वा गदया निहन्ति
यथा पशून्वाजिमखे महेन्द्रः॥३७॥

अरे! महात्मा बलवान् वरुण वाहनसहित दैत्यवीर को पीड़ित करते हुए पाश से बाँध करके गदा से इस प्रकार मार रहे हैं जैसे इन्द्र अश्वमेध यज्ञ में पशु को मारते हैं।

श्रुत्वाऽथ शब्दं दितिजैः समीरितं
जम्भप्रधाना दितिजेश्वरास्ततः।
समभ्यधावंस्त्वरिता जलेश्वरं
यथा पतङ्गा ज्वलितं हुताशनम्॥३८॥

दैत्यों के इस प्रकार के शब्द को सुनकर जम्भ नामक अपने नेता के साथ दैत्येश्वर वरुण की ओर इस तरह शीघ्रता से दौड़े जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि की ओर पतङ्ग दौड़ते हैं।

तानागतान्वै प्रसमीक्ष्य देवः
प्राह्लादिमुत्सृज्यं वितत्य पाशम्।
गदां समुद्भ्राम्य जलेश्वरस्तु
दुद्राव ताञ्जम्भमुखानरातीन्॥३९॥

उन्हें आते हुए देखकर वरुण देव ने विरोचन को छोड़ दिया और अपने पाश को बढ़ाकर और गदा को घुमाते हुए जम्भप्रधान उन शत्रुओं को विदीर्ण कर दिया।

जम्भं च पाशेन तथा निहत्य
तारं तलेनाशनिसंनिभेन।
पादेन वृत्रं तरसा कुजम्भं
निपातयामास बलं च मुष्ट्या॥४०॥

उन्होंने (वरुण) पाश से जम्भ को, वज्रसदृश करतल से तार को, पैर से वृत्र को और वेगपूर्वक मुष्टिका से कुजम्भ और बल को गिरा दिया।

तेनार्दिता देववरेण दैत्याः
संप्राद्रवन्दिक्षु विमुक्तशस्त्राः।
ततोऽन्धकः सत्वरितोऽभ्युपेया-
द्रणाय योद्धुं जलनायकेन॥४१॥

देवश्रेष्ठ वरुण के द्वारा मर्दित दैत्यगण शस्त्रों को छोड़कर विभिन्न दिशाओं में भाग गए। तब अन्धक वरुण के साथ युद्ध करने के लिए शीघ्रता से आया।

तमापतन्तं गदया जघान
पाशेन बद्ध्वा वरुणोऽसुरेशम्।
तं पाशमाविद्ध्य गदां प्रगृह्य
चिक्षेप दैत्यः स जलेश्वराय॥४२॥

वरुण ने उस आये हुये असुरेश्वर को पाश से बाँधकर गदा से मारा। उस पाश तथा गदा को छीनकर दैत्य ने वरुण के ऊपर फेंक दिया।

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाशं
गदां च दाक्षायणिनन्दनस्तु।
विवेश वेगात्पयसां निधानं
ततोऽन्धको देवबलं ममर्द॥४३॥

उस पाश एवं गदा को आते हुए देखकर दाक्षायणिनन्दन वरुण वेगपूर्वक समुद्र में प्रवेश कर गए। तब अन्धक देवसेना को मर्दित करने लगा।

ततो हुताशः सुरशत्रुसैन्यं
ददाह रोषात्पवनावधूतः।
तमभ्ययाद्दानवविश्वकर्मा
मयो महाबाहुरुदग्रवीर्यः॥४४॥

फिर पवन से प्रज्ज्वलित अग्नि देवशत्रु की सेना को क्रोध से जलाने लगे। उसके समक्ष मय नामक दानवों का विश्वकर्मा आया। वह मय महान् बाहुबल से सम्पन्न तथा उग्र वीर्य से सम्पन्न था।

तमापतन्तं सह शम्बरेण
समीक्ष्य वह्निः पवनेन सार्द्धम्।
शक्त्या मयं शम्बरमेत्य कण्ठे
संताड्य जग्राह बलान्महर्षे॥४५॥

हे महर्षि! पवन के साथ अग्नि ने जब मय को शम्बर के साथ आते हुए देखा तो मय तथा शम्बर के समीप पहुँचकर उन्होंने उसके कण्ठ को शक्ति के साथ घायल करते हुए पकड़ लिया।

शक्त्या स कायावरणे विदारिते
सं भिन्नदेहो न्यपतत्पृथिव्याम्।
मयः प्रजज्वाल च शम्बरोऽपि
कण्ठावलग्ने ज्वलने प्रदीप्ते॥४६॥

शक्ति से कवच के छिन्न-भिन्न हो जाने पर विदीर्ण शरीर वाला होकर मय पृथ्वी पर गिर पड़ा। कण्ठ में अग्नि के प्रज्ज्वलित होने के कारण शम्बर भी जलने लगा।

स दह्यमानो दितिजोऽग्निनाऽथ
सुविस्वरं घोरतरं रुराव।
सिंहाभिपन्नो विपिने यथैव
मत्तोगजः क्रन्दति वेदनार्त्तः॥४७॥

अग्नि द्वारा जलाये जाते हुए वह दैत्य भयंकर शब्द करते हुये ऐसे रोने लगा जैसे जंगल के सिंह द्वारा आक्रान्त गज पीड़ा से व्यथित होकर भयंकर शब्द करते हुए रोता है।

तं शब्दमाकर्ण्य च शम्बरस्य
दैत्येश्वरः क्रोधविरक्तदृष्टिः।
आः किं किमेतन्ननु केन युद्धे
जितो मयः शम्बरदानवश्च॥४८॥

शम्बर के उस शब्द को सुनकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले दैत्येश्वर ने कहा— आह! यह क्या हुआ? दानव शम्बर तथा मय को किसने युद्ध में पराजित कर दिया है?

ततोऽब्रुवन्दैत्यभटा दितीशं
प्रदह्यते ह्येष हुताशनेन।
रक्षस्व चाभ्येत्य न शक्यतेऽन्यै-
र्हुताशनो वारयितुं रणाग्रे॥४९॥

दैत्यवीरों ने राक्षसराज को बताया— इन्हें अग्नि ने जलाया है। आप इनके पास पहुँचकर इनकी रक्षा करें। युद्ध में अग्नि का सामना करना अन्य लोगों के वश में नहीं है।

इत्थं स दैत्यैरभिनोदितस्तु
हिरण्यचक्षोस्तनयो महर्षे।
उद्यम्य वेगात्परिघं हुताशं
समाद्रवत्तिष्ठ तिष्ठ ब्रुवन्हि॥५०॥

हे महर्षे! इस प्रकार दैत्यों के कहने पर वह हिरण्याक्षपुत्र वेग से अग्नि के तुल्य परिघ को उठाकर 'रुको! रुको!' ऐसा कहते हुए दौड़ पड़ा।

श्रुत्वाऽन्धकस्यापि वचोऽव्ययात्मा
संक्रुद्धचित्तस्त्वरितो हि दैत्यम्।
उत्पाट्य भूम्यां च विनिष्पिपेष
ततोऽन्धकः पावकमाससाद॥५१॥

अन्धक के वचन को सुनकर क्रोधित चित्त वाले अव्ययात्मा अग्नि ने शीघ्र ही उस दैत्य (शम्बर) को उठाकर पटक दिया। फिर अन्धक अग्नि के पास पहुँचा।

समाजघानाथ हुताशनं हि
वरायुधेनाथ वराङ्गमध्ये।
समाहतोऽग्निः परिमुच्य शम्बरं
तथाऽन्धकं स त्वरितोऽभ्यधावत॥५२॥

उसने श्रेष्ठ आयुधों से अग्नि के सिर पर प्रहार किया। आहत अग्नि शम्बर को छोड़कर तुरन्त अन्धक की ओर दौड़े।

तमापतन्तं परिघेण भूयः
समाहनन्मूर्ध्नि तदाऽन्धकोऽपि।
स ताडितोग्निर्दितिजेश्वरेण
भयात्प्रदुद्राव रणाजिराद्बहिः॥५३॥

आते हुए अग्नि के सिर पर अन्धक ने पुनः परिघ से प्रहार किया। दैत्येश्वर से ताडित वह अग्नि भय से

रणाङ्गण से भाग गये।

ततोऽन्धको मारुतचन्द्रभास्करान्
साध्यान्वसूनश्विमरुन्महोरगान्।
यान्याञ्छरेण स्पृशते पराक्रमी
पराङ्मुखांस्तान्कृतवान्रणाजिरात्॥५४॥

तदनन्तर पराक्रमी अन्धक ने मारुत (वायु) चन्द्र, सूर्य, साध्य रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, महोरग इत्यादि जिन-जिन पर बाण चलाया उन सभी को रणाङ्गण से भगा दिया।

ततो विजित्यामरसैन्यमग्रं
सेन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम्।
संपूज्यमानो दनुपुंगवैस्तु
तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम॥५५॥

इन्द्र, रुद्र, यम एवं सोम सहित उग्र देवसेना को जीतकर और दानववीरों से पूजित होकर अन्धक पृथ्वी पर आ गया।

आसाद्य भूमिं करदान्नरेन्द्रान्
कृत्वा वशे स्थाप्य चराचरं च।
जगत्समग्रं प्रविवेश धीमान्
पातालमग्र्यं पुरमश्मकाह्वम्॥५६॥

पृथ्वी पर आकर उसने राजाओं को कर देने वाला बनाया और चराचर को अपने वशीभूत बनाकर उस बुद्धिमान् ने पाताल में स्थित अश्मक नामक नगर में प्रवेश किया।

तत्र स्थितस्यापि महासुरस्य
गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः।
सहाप्सरोभिः परिचारणाय
पातालमभ्येत्य समावसन्तः॥५७॥

महासुर के वहाँ निवास करने पर गन्धर्व, विद्याधर और सिद्धसंघ अप्सराओं के साथ सेवा करने के उद्देश्य से पाताल में पहुँचकर वहीं निवास करने लगे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे अन्धकविजयो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(पुष्करद्वीप-वर्णन)

नारद उवाच–

यदेतद्भवता प्रोक्तं सुकेशिपुरमम्बरात्।
पातितं भुवि सूर्येण तदाचक्ष्व द्विजोत्तम॥१॥

नारद बोले— आपने जो यह कहा कि सूर्य ने सुकेशी के नगर को आकाश से भूमि पर गिरा दिया, वह कब और कहाँ हुआ?

सुकेशीति च कश्चासौ केनदत्तवरश्चसः।
किमर्थं पातितो भूम्यामाकाशाद्भास्करेण हि॥२॥

यह सुकेशी कौन है? इसको नगर किसने दिया था? तथा सूर्य ने आकाश से जमीन पर इस नगर को किस लिये गिराया था?

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
यथा श्रुतां मया पूर्वं कथ्यमानां महामुने॥३॥

पुलस्त्य ने कहा— हे अनघ! ब्रह्मा ने मेरे पूछने पर जैसा कहा था, उस पुरातन कथा को आप सावधान होकर सुनिए।

आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीति विश्रुतः।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवन्मुने॥४॥

विद्युत्केशी नामक एक निशाचरों का प्रसिद्ध राजा था। उसे सुकेशी नाम का एक अत्यन्त गुणी पुत्र प्राप्त हुआ।

तस्य तुष्टस्तथेशानः पुरमाकाशचारि यत्।
प्रादादजेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम्॥५॥

उससे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने उसे आकाशचारी नगर, अजयेत्व, शत्रुओं से अवध्यता जैसे वरदान प्रदान किये थे।

स चापि शङ्करात्प्राप्य वरं गगनगं पुरम्।
रेमे निशाचरैः सार्द्धं सदा धर्मपथे स्थितः॥६॥

शङ्कर से गगनचारी नगर को प्राप्त करके वह धर्मपथ में स्थित रहकर राक्षसों के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

स कदाचिद्गतोऽरण्यं मागधं दानवेश्वरः।
तत्राश्रमांस्तु ददृशे ऋषीणां भावितात्मनाम्॥७॥

वह राक्षसराज किसी समय मगध में स्थित किसी अरण्य में गया। वहाँ उसने ध्यानावस्थित ऋषियों के आश्रमों को देखा।

महर्षीन्स तदा दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिवाद्य च।
प्रत्युवाच ऋषीन्सर्वान्कृतासनपरिग्रहः॥ ८॥

तब उसने वहाँ महर्षियों के दर्शन किये। प्रणाम एवं अभिवादन के पश्चात् आसन ग्रहण करके उसने महर्षियों से कहा—

सुकेशिरुवाच–

प्रष्टुमिच्छामि भवतः संशयोऽयं हृदि स्थितः।
कथयन्तु भवन्तो मे न चैवं ज्ञापयाम्यहम्॥ ९॥

सुकेशी बोला— आप लोगों से मेरी यह जिज्ञासा है। मेरे हृदय में यह संशय है। मैं आप लोगों को आज्ञा नहीं दे सकता किन्तु कृपा करके आप हमको बताएँ।

किंस्विच्छ्रेयः परे लोके किमुचेह द्विजोत्तमाः।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासौ सुखमेधते॥ १०॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस लोक में क्या श्रेय है? सज्जनों के बीच में कैसे पूज्यता प्राप्त होती है? तथा सुख कैसे प्राप्त होता है? यह सब आप हमको बताइएँ।

पुलस्त्य उवाच–

इत्थं सुकेशिवचनं निशम्य परमर्षयः।
प्रोचुर्विमृश्य श्रेयोऽर्थमिह लोके परत्र च॥ ११॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार सुकेशी के वचनों को सुनकर ऋषियों ने 'इस लोक तथा परलोक में क्या श्रेय है' इस प्रश्न पर विचार करके कहना आरम्भ किया।

ऋषय ऊचुः

श्रूयतां कथयिष्यामस्तव राक्षसपुंगव।
यद्धि श्रेयो भवेद्वीर इह चामुत्र चाव्ययम्॥ १२॥

ऋषिगण बोले— हे राक्षसश्रेष्ठ! हे वीर! इस लोक एवं परलोक में जो कुछ अव्यय और श्रेयस् है, उसके बारे में हम लोग कहेंगे, आप सुनें।

श्रेयो धर्मः परे लोके इह च क्षणदाचर।
तस्मिन्समाश्रिते सत्सु पूज्यस्तेन सुखी भवेत्॥ १३॥

हे निशाचर! इस लोक एवं परलोक दोनों ही में धर्म ही सर्वाधिक श्रेयस्कर स्थानों पर है। उसमें आश्रित व्यक्ति पूजनीय होता है और उसी से सुखी होता है।

सुकेशिरुवाच–

किंलक्षणो भवेद्धर्मः किमाचरणसत्क्रियः।
यमाश्रित्य न सीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम्॥ १४॥

सुकेशी बोला— धर्म का लक्षण क्या है? और वह किस आचरण एवं किस सत्कर्म वाला होता है जिसका आश्रयण करके देवादि दुःखी नहीं होते, आप मुझे इस बारे में बताएँ।

ऋषय ऊचुः

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः।
स्वाध्यायतत्त्ववेदित्वं विष्णुपूजा इति श्रुतिः॥ १५॥

ऋषिगण बोले— वेदों में कहा गया है कि देवताओं का परम धर्म नित्य यज्ञादि क्रिया, स्वाध्याय, ज्ञान तथा विष्णु की पूजा है।

दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्यं युद्धसत्क्रियाः।
वेन्दनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता॥ १६॥

दैत्यों का धर्म है— बाहुबल, ईर्ष्या, युद्धतत्परता, नीतिशास्त्रों का ज्ञान तथा शिवभक्ति।

सिद्धानामुदितो धर्मो योगसिद्धिरनुत्तमा।
स्वाध्यायो ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्विष्णौ हरे तथा॥ १७॥

उत्तम योग-साधन, स्वाध्याय, ब्रह्मविज्ञान और विष्णु एवं शिव में स्थिर भक्ति सिद्धों का धर्म है।

उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता।
सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते॥ १८॥

उत्कृष्ट उपासना, नृत्य-वाद्यादि का ज्ञान तथा सरस्वती में स्थिर भक्ति गन्धर्वों का धर्म है।

विद्याधारित्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः।
विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च॥ १९॥

अतुलनीय विद्वत्ता, विज्ञान, पराक्रम, बुद्धि तथा भवानी में भक्ति विद्याधरों का धर्म है।

गान्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा।
कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः कैम्पुरुषः स्मृतः॥ २०॥

गन्धर्वविद्या का ज्ञान, सूर्य में स्थिर भक्ति तथा सभी शिल्पों में कुशलता किम्पुरुषों का धर्म है।

ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः॥ २१॥

ब्रह्मचर्य, अमानित्व, योगाभ्यास में दृढ़ अनुराग तथा सर्वत्र स्वेच्छानुसार भ्रमण करना पितरों का धर्म है।

ब्रह्मचर्यं सदा सत्यं जप्यं ज्ञानं च राक्षस।
नियमो धर्मवेदित्वमार्षो धर्मः प्रचक्षते॥ २२॥

हे राक्षस! ब्रह्मचर्य, नियत आहार, जप, ज्ञान तथा नियमपूर्वक धर्मज्ञान ऋषियों का धर्म है।

स्वाध्यायो ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च।
अकार्पण्यमनायासो दयाऽहिंसाक्षमादयः॥ २३॥
जितेन्द्रियत्वं शौचं च माङ्गल्यं भक्तिरच्युते।
शङ्करे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः॥ २४॥

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, अकृपणता (उदारता), अनायास दया, अहिंसा, क्षमा, मनोनिग्रह (दम), जितेन्द्रियता, पवित्रता, कल्याणशीलता एवं विष्णु, शङ्कर, सूर्य तथा देवी में भक्ति मनुष्यों का धर्म है।

धनाधिपत्यं भोगाश्च स्वाध्यायः शङ्करार्चनम्।
अहंकारमशौण्डीर्यं धर्मोऽयं गुह्यकेष्विति॥ २५॥

धनाधिपत्य, भोग, स्वाध्याय, शिवार्चन, अहंकार तथा अवीरता गुह्यकों (यक्षों) का धर्म है।

परदारावमर्शित्वं पारक्यार्थे च लोलुपाः।
स्वाध्यायत्र्यंबके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः॥ २६॥

परदारागमन, परधन में लोलुपता, स्वाध्याय तथा शिव में भक्ति राक्षसों का धर्म है।

अविवेकस्तथाऽज्ञानं शौचहानिरसत्यता।
पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिषगृघ्नुता॥ २७॥

अविवेक, अज्ञान, अपवित्रता, असत्यता तथा मांसभक्षण पिशाचों का धर्म है।

योनयो द्वादशैवैतास्तासु धर्माश्च राक्षस।
ब्रह्मणा कथिताः पुण्या द्वादशैव गतिप्रदाः॥ २८॥

हे राक्षस! ये बारह योनियाँ हैं। इनके पुण्यशाली तथा गति प्रदान करने वाले बारह ही धर्म हैं जिनका उपदेश ब्रह्मा ने किया है।

सुकेशिरुवाच–

भवद्भिरुक्ता ये धर्माः शाश्वता द्वादशाव्ययाः।
तत्र ये मानवा धर्मास्तान्भूयो वक्तुमर्हथ॥ २९॥

सुकेशी बोला— आपने जिन बारह अव्यय एवं शाश्वत धर्मों का प्रवचन किया है, इनमें मनुष्यों के जो धर्म हैं, कृपया उनके बारे में पुनः कहिए!

ऋषय ऊचुः

शृणुष्व मनुजादीनां धर्मांस्तु क्षणदाचर।
ये वसन्ति महीपृष्ठे नरा द्वीपेषु सप्तसु॥ ३०॥

ऋषिगण बोले— हे निशाचर! पृथ्वी के सातों द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों के जो धर्म हैं उनके विषय में सुनो।

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिरायता।
जलोपरि महीयं हि नौरिवास्ते सरिज्जले॥ ३१॥

पचास करोड़ योजन में विस्तृत यह पृथ्वी जल के ऊपर इस तरह स्थित है, जैसे नदी में नौका स्थित रहती है।

तस्योपरि च देवेशो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम्
कर्णिकाकारमत्युच्चं स्थापयामास सत्तमः॥ ३२॥

हे सज्जन! उसके ऊपर भी देवेश ब्रह्मा ने कर्णिका के आकार का अति उन्नत एवं उत्तम शैलेन्द्र स्थापित किया है।

स चेमां निर्ममे पुण्यां प्रजां देवश्चतुर्दिशम्
स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापतिः॥ ३३॥

फिर उस देव (ब्रह्मा) ने चारों दिशाओं में पुण्यमयी प्रजा तथा द्वीपसंज्ञक स्थानों का निर्माण किया है।

तत्र मध्ये च कृतवाञ्जम्बूद्वीपमिति श्रुतम्
तल्लक्षं योजनानां च प्रमाणेन निगद्यते॥ ३४॥

उसके मध्य में उस देव ने विश्रुत जम्बूद्वीप का निर्माण किया। इसका परिमाण एक लाख योजन है।

ततो जलनिधिः क्षारो बाह्यतो द्विगुणः स्थितः
तस्यापि द्विगुणः प्लक्षो बाह्यतः संप्रतिष्ठितः॥ ३५॥

उसके बाहर द्विगुण परिमाण वाला रौद्र सागर स्थित है। उसके भी बाहर द्विगुण परिमाण वाला प्लक्ष द्वीप स्थित है।

ततस्त्विक्षुरसोदश्च बाह्यतो वलयाकृतिः
द्विगुणः शाल्मलिद्वीपो द्विगुणोऽस्य महोदधिः॥ ३६॥

उसके बाहर द्विगुण परिमाण वाला वलयाकार इक्षुरस सागर है। इस सागर का द्विगुण परिमाण वाला शाल्मली द्वीप है।

सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्माच्च द्विगुणः कुशः
घृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात्प्रकीर्तितः॥ ३७॥

उससे द्विगुण सुरासागर, उससे भी द्विगुण कुश द्वीप तथा कुशद्वीप से भी द्विगुण घृतसागर है।

घृतोदाद् द्विगुणः प्रोक्तः क्रौञ्चोद्वीपो निशाचर।
ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्तः समुद्रो दधिसंज्ञितः॥ ३८॥

हे निशाचर! घृतसागर से दुगुना क्रौञ्चद्वीप और क्रौञ्चद्वीप से भी दुगुना दधि नामक समुद्र है।

समुद्राद्विगुणः शाकः शाकाद्दुग्धाब्धिरुत्तमः।
द्विगुणः संस्थितो यत्र शेषपर्यङ्कगो हरिः।
एते च द्विगुणाः सर्वे परस्परमवस्थिताः॥ ३९॥

दधिसागर से द्विगुण शाकद्वीप, शाकद्वीप से द्विगुण उत्तम दुग्ध सागर स्थित है जहाँ शेषशय्या पर श्रीहरि विराजमान रहते हैं। ये सभी परस्पर द्विगुण परिमाण में स्थित हैं।

चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षाश्च नवतिः स्मृताः।
योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च चातिसुविस्तृताः॥ ४०॥
जम्बूद्वीपात्समारभ्य यावत्क्षीराब्धिरन्ततः।

हे राक्षसेन्द्र! जम्बूद्वीप से लेकर क्षीरसागर पर्यन्त ये सभी द्वीप चालीस करोड़ नौ लाख पाँच योजन में अच्छी प्रकार फैले हुए हैं।

तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वादूदस्तदनन्तरम्।
कोट्यश्चतस्रो लक्षाणां द्विपञ्चाशच्च राक्षस॥ ४१॥
पुष्करद्वीपमानोऽयं तावानन्ते महोदधिः।
लक्षमण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम्॥ ४२॥

हे राक्षस! इसके अनन्तर पुष्कर द्वीप और तदनन्तर सुस्वादु जल का समुद्र है। चार करोड़ बावन लाख परिमाण का यह पुष्कर द्वीप तथा जल समुद्र है। यह एक लाख अण्डकटाह से चारों तरफ परिपूर्ण है।

एवं द्वीपास्त्विमे सप्त पृथग्धर्माः पृथक् क्रियाः।
गदिष्यामस्तव वयं शृणुष्व त्वं निशाचर॥ ४३॥
प्लक्षादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनाः।
शाकान्तेषु न तेष्वस्ति युगावस्था कथंचन॥ ४४॥

हे निशाचर! इस प्रकार इन सात द्वीपों के पृथक्-पृथक् धर्म तथा क्रियाओं के विषय में हम आपको बताते हैं; आप सुनें। हे वीर! प्लक्षादि से शाकपर्यन्त द्वीपों में जो सनातन पुरुष रहते हैं उन द्वीपों में युगों की स्थिति नहीं है।

मोदन्ते देववत्तेषां धर्मो दिव्य उदाहृतः।
कल्पान्ते प्रलयस्तेषां निगद्येत महाभुज॥ ४५॥

हे महाभुज! वे सभी देवता की तरह आनन्द रहते हैं। उनके धर्म दिव्य कहे गये हैं तथा कल्प के अन्त में उनका प्रलय कहा गया है।

ये जनाः पुष्करद्वीपे वसन्ते रौद्रदर्शने।
पैशाचमाश्रिता धर्मं कर्मान्ते ते विनाशिनः॥ ४६॥

जो लोग भयङ्कर पुष्कर द्वीप में रहते हैं उनका धर्म पैशाचिक होता है तथा कर्म के अन्त में उनका विनाश कहा गया है।

सुकेशिरुवाच–

किमर्थं पुष्करद्वीपो भवद्भिः समुदाहृतः।
दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्मार्थनाशकृत्॥ ४७॥

सुकेशि बोला— पुष्कर द्वीप को आप लोगों ने भयङ्कर दिखायी देने वाला, अपवित्र, घोर तथा कर्म के अन्त में नाश होने वाला क्यों कहा?

ऋषय ऊचुः

तस्मिन्निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति दारुणाः।
रौरवाद्यास्ततो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः॥ ४८॥

ऋषि बोले— हे निशाचर! उसमे भयङ्कर रौरवादि नरक हैं। इसलिए पुष्कर द्वीप भयङ्कर दिखायी पड़ने वाला माना गया है।

सुकेशिरुवाच–

कियन्त्येतानि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः।
कियन्मात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता॥४९॥

सुकेशी बोला— हे तपोधन! ये रौद्र आदि नरक कितने हैं? उनके मार्ग कितने हैं? तथा उनका स्वरूप क्या है?

ऋषय ऊचुः

शृणुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षणं तथा।
सर्वेषां रौरवादीनां संख्या वा त्वेकविंशतिः॥५०॥

ऋषि बोले— हे राक्षसश्रेष्ठ! रौरवादि सभी नरकों का प्रमाण तथा लक्षण आप सुनें। उनकी संख्या इक्कीस है।

द्वे सहस्रे योजनानां ज्वलिताङ्गारविस्तृतः।
रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्त्तितः॥५१॥

प्रथम रौरव नामक नरक है। वह दो सहस्र योजन वाला तथा ज्वलित अङ्गारों से युक्त है।

तप्तताम्रमयी भूमिरधस्ताद्वह्नितापिता।
द्वितीयो द्विगुणस्तस्मान्महारौरव उच्यते॥५२॥

इससे द्विगुण दूसरा महारौरव नाम वाला नरक है। उसकी भूमि जलते हुए ताम्र से युक्त तथा नीचे से अग्नि से तापित है।

ततोऽपि विस्तृतश्चान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः।
अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः॥५३॥

तीसरा इससे भी दुगुना तामिस्र नामक नरक है। तामिस्र से भी दुगुना परिमाण वाला चौथा अन्धतामिस्र नामक नरक है।

ततस्तु कालसूत्रेति पञ्चमः परिगीयते।
अप्रतिष्ठं तथा षष्ठं घटीयन्त्रं च सप्तमम्॥५४॥

इसके अनन्तर कालचक्र पाँचवा नरक है और अप्रतिष्ठ छठा तथा घटीयंत्र सातवाँ नरक है।

असिपत्रवनं चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः।
योजनानां परिख्यातमष्टमं नरकोत्तमम्॥५५॥

नरकों में श्रेष्ठ असिपत्रवन आठवाँ नरक है जिसका विस्तार बहत्तर हजार योजन है।

नवमं तप्तकुम्भं च दशमं कूटशाल्मलिः।
करपत्रस्तथैवोक्तस्तथाऽन्यः श्वानभोजनः॥५६॥

नौवाँ तप्तकुम्भ, दशवाँ कूटशाल्मीलि, ग्यारहवाँ करपत्र और बारहवाँ नरक श्वानभोजन है।

सदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिकता तथा।
घोरा क्षारनदी चान्या तथाऽन्या कृमिभोजना।
तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वैतरणी नदी॥५७॥

इसके बाद संदंश, लोकपिण्ड, करम्भसिकता, घोर क्षारनदी, कृमिभोजन तथा अट्ठारहवाँ नरक भयङ्कर वैतरणी है।

तथाऽपरः शोणितपूयभोजनः
क्षुराग्रधारो निशितश्च चक्रकः।
संशोधनो नाम तथापि चान्ते
प्रोक्तास्तवैते नरकाः सुकेशिन्॥५८॥

तब शोणितपूयभोजन, क्षुराग्रधार, निशित, चक्रकः तथा अन्त में संशोधन नामक नरक हैं। हे सुकेशिन्! इस प्रकार हमने तुमको सभी नरकों के बारे में बता दिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे पुष्करद्वीपवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(कर्मविपाक-वर्णन)

सुकेशिरुवाच–

कर्मणा नरकानेतान्केन गच्छन्ति वै कथम्।
एतद्वदत विप्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम॥१॥

सुकेशी बोले— किन कर्मो को करने के कारण और किस तरह मनुष्य इन नरकों में जाते है? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस विषय को बताइए। इस विषय में मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है।

ऋषय ऊचुः

कर्मणा येन येनेह यान्ति शालकटंकट।
स्वकर्मफलभोगार्थं नरकान्मे शृणुष्व तान्॥२॥

ऋषि बोले— हे शालकटंकट (राक्षस)! जिस-जिस कर्म को करने के कारण स्वकर्मफलभोग के लिए लोग उन नरकों में जाते हैं, उनके बारे में सुनिए।

देववेदद्विजातीनां यैर्निन्दा सततं कृता।
ये पुराणेतिहासार्थान्नाभिनन्दन्ति पापिनः॥ ३॥
गुरुनिन्दाकरा ये च मखविघ्नकराश्च ये।
दातुर्निवारका ये च तेषु ते निपतन्ति हि॥ ४॥

जिन्होंने निरन्तर वेद, देव तथा ब्राह्मणों की निन्दा की तथा जो पापी लोग पुराण तथा इतिहास के अर्थों का सम्मान नहीं करते, जो गुरु की निन्दा, जो यज्ञ में विघ्न पहुँचाते हैं तथा जो दाता को दान क्रिया से रोकते हैं वे इन नरकों में जाया करते हैं।

सुहृद्दम्पतिसोदर्यस्वामिभृत्यपितासुतैः।
याज्याध्यापकयोश्चैव कृतो भेदोऽधमैर्मिथः॥ ५॥
कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः।
करपत्रेण पाट्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः॥ ६॥

जो सुहृद्, दम्पति, सहोदर, स्वामी, सेवक, पिता, पुत्र तथा याज्याध्यापक में भेद करते हैं, ऐसे अधम लोग और जो कन्या एक को देकर पुनः दूसरे को देते हैं, यम के दूत उन्हें करपत्र (आरे) से दो टुकड़ों में विभाजित कर देते हैं।

परोपतापजनकाश्चन्दनोशीरहारिणः।
बालव्यजनहर्त्तारः करम्भसिकताश्रिताः॥ ७॥

दूसरों को संताप देने वाले, चन्दन व खस को चुराने वाले तथा बाल व्यजन को हरने वाले करम्भसिकता नामक नरक में जाते हैं।

निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते श्राद्धे दैवेऽथ पैतृके।
स द्विधाः कृष्यते मूढस्तीक्ष्णतुण्डैः खगोत्तमैः॥ ८॥

दैव व पैतृक श्राद्ध में निमंत्रित होने पर जो दूसरी जगह भोजन करते हैं, उन मूढों को तीक्ष्ण चोंच वाले बड़े पक्षी दो टुकड़े में विभक्त कर देते हैं।

मर्माणि यस्तु साधूनां तुदन्वाग्भिर्निकृन्तति।
तस्योपरि तुदन्तस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पत्रिणः॥ ९॥

जो वाणी से सज्जनों के मर्म को पीड़ित करते हैं उनके ऊपर चोंच से प्रहार करते हुए पक्षी बैठे रहते हैं।

यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यथामतिः।
वज्रतुण्डनिभा जिह्वामाकर्षन्तेऽस्य वासयाः॥ १०॥

जो दुष्ट लोग सज्जनों की चुगली करते हैं उनकी जिह्वा को वज्र के समान नख एवं चोंच वाले कौए खींच देते हैं।

पितृमातृगुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः।
मज्जन्ति पूयविण्मूत्रे त्वप्रतिष्ठे ह्यधोमुखाः॥ ११॥

जो उद्धत लोग माता-पिता एवं गुरुजनों की अवज्ञा करते हैं वे लोग पूय, विष्ठा एवं मूत्र से युक्त अप्रतिष्ठ नामक नरक में अधोमुख होकर गिरते हैं।

देवतातिथिभृत्येषु भूतेष्वभ्या गतेषु च।
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति बालपित्रग्निमातृषु॥ १२॥
दुष्टासृक्पूयनिर्यासं भुञ्जते त्वधमा इमे।
सूचीमुखाश्च जायन्ते क्षुधार्त्ता गिरिविग्रहाः॥ १३॥

देवता, अतिथि, मृत्यु, अन्य प्राणी, अतिथि, बालक, पिता, अग्नि तथा माता लोगों को बिना खिलाए जो भोजन करते हैं वे अधम लोग दूषित रक्त व पीन के रस पीते हैं। वे लोग सूची के सदृश मुख तथा पर्वत के समान मुख वाले सर्वदा क्षुधार्त रहते हैं।

एकपङ्क्त्युपविष्टानां विषमं भोजयन्ति ये।
विड्भोजनं राक्षसेन्द्र नरकं ते व्रजन्ति च॥ १४॥

हे राक्षसश्रेष्ठ! एक पंक्ति में बैठे हुए लोगों को जो एक-जैसा भोजन नहीं देते, वे विड्भोजन नामक नरक में जाते हैं।

एकसार्थप्रयाताश्च पश्यन्तश्चार्थिनं नराः।
असंविभज्य भुञ्जन्ति ते यान्ति श्लेष्मभोजनम्॥ १५॥

एक साथ चलने वाले (सहपात्री) इच्छुक व्यक्ति को देखते हुए भी जो भोजन नहीं देते श्लेष्मभोजन नामक नरक में जाते हैं।

गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः।
क्षिप्यन्ते हि करास्तेषां तप्तकुम्भे सुदारुणे॥ १६॥

हे निशाचर! गौ, ब्राह्मण तथा अग्नि को जो लोग उच्छिष्ट (जूठा होकर) स्पर्श करते हैं उनके हाथ भयङ्कर तप्तकुम्भ में डाले जाते हैं।

सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः।
तेषां नेत्रगतो वह्निर्धम्यते यमकिंकरैः॥ १७॥

मनमाने ढंग से उच्छिष्ट होकर जो लोग सूर्य, चन्द्र एवं तारा को देखते हैं उनके नेत्रों में विद्यमान ज्वाला को यमदूत जलाते हैं।

मित्रजायाऽथ जननी ज्येष्ठो भ्राता पिता स्वसा।
जामयो गुरवो वृद्धायैः संस्पृष्टाः पदा नृभिः॥ १८॥
बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लोहैर्वह्निप्रतापितैः।
क्षिप्यन्ते रौरवे घोरे ह्याजानुपरिदाहिनः॥ १९॥

मित्र की पत्नी, माता, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहन, पुत्री, गुरुजन व वृद्धों को जो लोग पैर से छूते हैं उनके पैर अग्नि से प्रतप्त लौह निगड से बाँधा जाता है तथा जानुपर्यन्त जलते हुए उनको रौरव नामक घोर नरक में डाल दिया जाता है।

पायसं कृशरामांसं वृथा भुक्तानि यैर्नरैः।
तेषामयोगुडास्तप्ताः क्षिप्यन्ते वदनेऽद्भुताः॥ २०॥

जो लोग पायस, कृशर तथा मांस को (देवतादि को अर्पण किए बिना) वृथा खाते हैं उनके मुख में अद्भुत एवं तप्त अयोगोलक डाले जाते हैं।

गुरुदेवद्विजातीनां वेदानां च नराधमैः।
निन्दाऽनिशं श्रुता यैस्तु पापानामभिकुर्वताम्॥ २१॥
तेषां लोहमयाः कीला वह्निवर्णाः पुनः पुनः।
श्रवणेषु निखन्यन्ते धर्मराजस्य किंकरैः॥ २२॥

जो नराधम गुरु, देव, ब्राह्मण व वेद की निरन्तर निन्दा सुनते हैं उन पापियों के कान में धर्मराज के दूत अग्निसदृश लोहे के कील बारम्बार ठोकते हैं।

प्रपादेवकुलारामविप्रवेश्मसभामठान्।
वापीकूपतडागांश्च भङ्क्त्वा विध्वंसयन्ति ये॥ २३॥
तेषां विलपतां चर्म देहतः क्रियते पृथक्।
कर्त्तरीभिः सुतीक्ष्णाभिः सुरौद्रैर्यमकिंकरैः॥ २४॥

प्रपा, देवमंदिर, बाग, ब्राह्मणगृह, सभा, मठ, कूप, वापी और तडाग को जो लोग तोड़कर नष्ट करते हैं, उनके विलाप करते रहने मर भी यम के भयंकर दूत अतितीक्ष्ण चाकूओं से उनके देहों से चर्म को पृथक् कर दिया करते हैं।

गोब्राह्मणार्कमग्निं च ये हि मेहन्ति मानवाः।
तेषां गुदेभ्यश्चान्त्राणि विनिष्कृन्तन्ति वायसाः॥ २५॥

गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा सूर्य के सम्मुख जो मनुष्य शौचादि क्रिया करते हैं, उनके गुदा से कौए आँत को नोंचकर काट देते हैं।

स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः।
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम्।
दुर्भिक्षे संभ्रमे चापि स श्वयोनौ निपात्यते॥ २६॥

दुर्भिक्ष या संभ्रम के समय अकिञ्चन पुत्र, भृत्य, कलत्र आदि बन्धु वर्ग को छोड़कर जो मनुष्य स्वपोषण में लगा रहता है वह श्वभोज्य नामक नरक में गिरा दिया जाता है।

शरणागतं ये त्यजन्ति ये च बन्धनपालकाः।
पतन्ति यन्त्रपीठे ते ताड्यमानास्तु किङ्करैः॥ २७॥

शरणागत की रक्षा नहीं करने वाले तथा कारागार के पालक को यमदूत पीटते हुए यन्त्रपीठ नामक नरक में गिरा देते हैं।

क्लेशयन्ति हि विप्रादीन्याज्यकर्मसु पापिनः।
ते पेष्यन्ते शिलायां वै शोष्यन्तेऽपि च शौषकैः॥ २८॥

जो पापी लोग कर्म से ब्राह्मणों को क्लेश पहुँचाते हैं, वे शिलाओं पर पीसे तथा अग्नि से शोषित किए जाते हैं।

न्यासापहारिणः पापा बध्यन्ते निगडैरपि।
क्षुत्क्षामाः शुष्कताल्वोष्ठाः पात्यन्ते वृश्चिकाशने॥ २९॥

न्यास को हरने वाले पापियों को निगड (जंजीर) से बाँधा जाता है तथा क्षुधा से क्षीण व शुष्क तालु और ओष्ठ वाले उनको वृश्चिकाशन नामक नरक में गिराया जाता है।

पर्वमैथुनिनः पापाः परदाररताश्च ये।
ते वह्नितप्तां कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शाल्मलीम्॥ ३०॥

पर्व में मैथुन करने वाले तथा परस्त्री में रत पापियों को अग्नि से तप्त कीलों वाले शाल्मली को छूना पड़ता है।

उपाध्यायमधःकृत्य यैरधीतं द्विजाधमैः।
तेषामध्यापको यश्च स शिलां शिरसा वहेत्॥ ३१॥

उपाध्याय (आचार्य) को निम्न आसन पर बैठाकर अध्ययन करने वाले द्विजाधमों तथा उनके अध्यापकों को सिर से शिला वहन करना पड़ता है।

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि।
ते पात्यन्ते च विण्मूत्रे दुर्गन्धे पूयपूरिते॥३२॥

मूत्र, श्लेष्म (पीक) तथा विष्ठा जो वारि में छोड़ते हैं उनको दुर्गन्ध से युक्त, पीव से भरे विण्मूत्र नामक नरक में डाला जाता है।

श्राद्धेऽतिथेयमन्योन्यं यैर्भुक्तं भुवि मानवैः।
परस्परं भक्षयन्ति ते स्वमांसानि बालिशाः॥३३॥

जो मनुष्य इस पृथ्वी पर श्राद्ध तथा आतिथेय खाते हैं वे मूर्ख परलोक में परस्पर अपने मांस को खाते हैं।

वेदवह्निगुरुत्यागी मातापित्रोस्तथैव च।
गिरिशृङ्गादधः पातं पात्यन्ते यमकिङ्करैः॥३४॥

वेद, अग्नि तथा गुरु का त्याग करने वाले व माता-पिता का त्याग करने वालों को यमदूत पर्वत के शिखर से नीचे गिरा देते हैं।

पुनर्भूपतयो ये च कन्याविध्वंसकाश्च ये।
तद्गर्भस्रावकृद्यश्च कृमीन्भक्षेत्पिपीलिकाः॥३५॥

विधवा से विवाह करने वाले तथा कन्या को (अविवाहित) दूषित करने वाले तथा उनके यहाँ श्राद्ध का भोजन करने वाले व्यक्ति कृमि तथा पिपीलिका का भक्षण करते हैं।

चण्डालादन्त्यजाद्वाऽपि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम्।
याजको यजमानश्च स स्यादश्मनि कीटकः॥३६॥

चाण्डाल तथा अन्त्यज से दक्षिणा लेने वाले याजक तथा यजमान पत्थर में रहने वाले स्थूल कीटक होते हैं।

पृष्ठमांसाशिनो मूढास्तथैवोत्कोचजीविनः।
क्षिप्यन्ते वृकभक्षे ते नरके रजनीचर॥३७॥

हे निशाचर! पृष्ठ मांस खाने वालों तथा घूसखोर मूर्खों को वृकभक्ष नामक नरक में डाल दिया जाता है।

स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
तथा गोभूमिहर्त्तारो गोस्त्रीबालहताश्च ये॥३८॥
एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रयिणस्तथा।
सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा॥३९॥
कूटसत्यास्त्वशौचाश्च नित्यनैमित्तनाशकाः।
कूटसाक्षिप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः॥४०॥

स्वर्ण चुराने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, सुरा पीने वाला, गुरुपत्नी का गमन करने वाला, गाय व भूमि का हरण करने वाला, गौ, स्त्री व बालक को मारने वाले, गाय का विक्रय करने वाले, सोम व वेद को बेचने वाले, कूटसत्य, अशौच, नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों के नाशक तथा कूट साक्ष्य देने वाले जो व्यक्ति हैं उनको महारौरव नरक में रहना पड़ता है।

दशवर्षसहस्राणि तावत्तामिस्रके स्थिताः।
तावच्चैवान्धतामिस्रे असिपत्रवने ततः॥४१॥
तावच्चैव घटीयन्त्रे तप्तकुम्भे ततः परम्।
प्रपातो हि भवेत्तेषां यैरिदं दुष्कृतं कृतम्॥४२॥

ऐसे पाप का आचरण करने वाले लोग दस हजार वर्ष तक तामिस्र में तथा उतने ही समय तक अन्धतामिस्र नामक नरक में रहते हैं। तदनन्तर वे इतने ही समय तक असिपत्रभवन में और फिर घटीयन्त्र नामक नरक में रहते हैं। उसके पश्चात् उतने ही काल तक वे तप्तकुम्भ नामक नरक में गिराये जाते हैं।

ये त्वेते नरका रौद्रा रौरवाद्यास्तवोदिताः।
ते सर्वे क्रमशः प्रोक्ताः कृतघ्ने लोकनिन्दिते॥४३॥

जो ये भयङ्कर रौरवादि नरकों के बारे में बताया गया, आपको वे सभी लोकों में निन्दित कृतघ्न मनुष्यों के लिए क्रमशः कहे गए हैं।

यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो
यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः।
यथाऽऽयुधानां प्रवरं सुदर्शनं
यथा खगानां विनतातनूजः।
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो
यथा च भूतेषु मही प्रधाना॥४४॥

जिस प्रकार देवों में श्रेष्ठ श्रीहरि, पर्वतों में हिमालय, आयुधों में सुदर्शन, पक्षियों में गरुड, सर्पों में अनन्त और भूतों में पृथ्वी प्रधान है।

नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं
सुरारिमुख्येषु हराङ्घ्रिभक्तः।
क्षेत्रेषु यद्वत्कुरुजाङ्गलं वरं
तीर्थेषु यद्वत्प्रवरं पृथूदकम्॥४५॥

नदियों में गंगा, पुष्पों में कमल, राक्षसों (देवशत्रु) में शिव भक्त, क्षेत्रों में कुरुजाङ्गल तथा तीर्थों में पृथूदक श्रेष्ठ है।

सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा
वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा।
लोकेषु यद्वत्सदनं विरञ्चेः
सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु॥४६॥

सरोवरों में उत्तरमानस, पुण्य वनों में नन्दनवन, लोकों में ब्रह्मा का लोक और धर्मविधि की क्रियाओं में सत्य प्रधान है।

यथाऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः।
तपोधनानामपि कुम्भयोनिः
श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु॥४७॥

यज्ञों में प्रधान अश्वमेध, स्पृश्यों में पुत्र, तपस्वियों में अगस्त्य और आगमों में श्रुति श्रेष्ठ है।

मुख्यं पुराणेषु यथैव मात्स्यं
स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव
तिथीषु दर्शो विबुधेषु वासवः॥४८॥

पुराणों में मत्स्य, संहिताओं में ब्रह्मा द्वारा कही गयी संहिता, स्मृतियों में मनुस्मृति, तिथियों में अमावस्या, विषुवों (मेष व तुला की सङ्क्रान्ति) में दान श्रेष्ठ है।

तेजस्विनां च प्रवरोऽर्क उक्त
ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्ह्रदेषु।
भवान्यथा राक्षससत्तमेषु
पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः॥४९॥

तेजस्वियों में जैसे सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र, जलाशयों में समुद्र, राक्षसश्रेष्ठों में आप, अचेत करने वाले बन्धनों में नागपाश श्रेष्ठ है।

धान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्र-
श्चतुष्पदे गौश्च यथा मृगेन्द्रः।
पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची
नारीषु रम्भाऽऽश्रमिणां गृहस्थः॥५०॥

धानों में शालि, द्विपदों में ब्राह्मण, चतुष्पद में गौ तथा सिंह, पुष्पों में जाती, नगरों में काञ्ची, नारियों में रम्भा, आश्रमियों में गृहस्थ श्रेष्ठ है।

कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु
देशेषु सर्वेषु च मध्यदेशः।
फलेषु चूतो मुकुलेष्वशोकः
सर्वौषधीनां प्रवरा च पथ्या॥५१॥
मूलेषु कन्दः प्रवरो यथोक्तो
व्याधिष्वजीर्णं क्षणदाचरेन्द्र।
श्वेतेषु दुग्धं प्रवरं यथैव
कार्पासिकं प्रावरणे हि यद्वत्॥५२॥

हे राक्षसेन्द्र! पुरों में कुशस्थली, सभी देशों में मध्यदेश, फलों में आम, मुकुलों में अशोक, सभी औषधियों में पथ्या, मूलों में कन्द, व्याधियों में अजीर्ण, श्वेतों में दुग्ध तथा आच्छादकों में रुई श्रेष्ठ है।

कलासु मुख्या गणितज्ञता
विज्ञानमुख्यं तु यथेन्द्रजालम्।
शाकेषु मुख्या त्वपि काचमाची
रसेषु मुख्यं लवणं यथैव॥५३॥
फलेषु तालो नलिनीषु पम्पा
वनौकसेष्वेव च ऋक्षराजः।
महीरुहेष्वेव यथा वटश्च
यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः॥५४॥

कलाओं में गणित का ज्ञान, विज्ञानों में इन्द्रजाल, शाकों में काकमाची, रसों में लवण, तुङ्गों में ताल, कमलसरों में पम्पा, वनौकसों में ऋक्षराज, वृक्षों में बरगद (बट) तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ शिव हैं।

यथा सतीनां हिमवत्सुता हि
यथाऽर्जुनीनां कपिला वरिष्ठा।
यथा वृषाणामपि नीलवर्ण-
स्तथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु
दुर्गेषु रौद्रेषु निशाचरेश
यथा नदी वैतरणी प्रधाना॥५५॥

हे राक्षस! सतियों में हिमालय की पुत्री पार्वती, गायों

में कपिला, वृषभों में नीलबैल तथा सभी दु:सह रौद्र नरकों में वैतरणी प्रधान है।

पापीयसां तद्वदिह कृतघ्नः
सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र।
ब्रह्मघ्नगोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि
विद्येत नैवास्य तु दुष्टचारिणः।
न निष्कृतिश्चापि कृतघ्नवृत्तेः
सुहृत्कृतं नाशयतोऽब्दकोटिभिः॥ ५६॥

हे राक्षसेन्द्र! उसी तरह पापियों में कृतघ्न व्यक्ति सर्वाधिक पापी है क्योंकि ब्रह्महत्या, गोवध आदि पापों से दुराचारियों की निराकृति सम्भव है; किन्तु सुहृद् द्वारा किए गये उपकार को नष्ट करने वाली कृतघ्नतावृत्ति की निराकृति करोड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकती।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे कर्मविपाको नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः॥

(जम्बूद्वीप का वर्णन)

सुकेशिरुवाच–

भवद्भिरुदिता घोरा पुष्करद्वीपसंस्थितिः।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथयन्तु महर्षयः॥ १॥

सुकेशी बोला—आप लोगों ने पुष्कर द्वीप की घोर स्थिति का वर्णन किया। हे महर्षिगण! अब जम्बूद्वीप के संस्थान का वर्णन कीजिए।

ऋषय ऊचुः

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथ्यमानं निशामय।
नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्॥ २॥

ऋषिगण बोले— जम्बूद्वीप के संस्थान के विषय में बताया जा रहा है, आप सुनें। यह नौ भागों में विभाजित है तथा यह स्वर्ग व मोक्षरूप फलों को प्रदान करने वाला है!

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरणमान्राक्षसेश्वर॥ ३॥

हे राक्षसेन्द्र! इसके मध्य इलावृतवर्ष, पूर्व में अद्भुत भद्राश्ववर्ष तथा पूर्वोत्तर में हिरण्यवर्ष है।

भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे।
पश्चिमे केतुमालश्च चम्पकः पश्चिमोत्तरे॥ ४॥
उत्तरेण कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः।
पूर्वमुत्तरतो रम्यो वर्षः किंपुरुषः स्मृतः॥ ५॥

दक्षिण में भारतवर्ष और दक्षिण-पश्चिम में हरिवर्ष है। पश्चिम में केतुमाल, पश्चिमोत्तर में चम्पक, उत्तर में कुरुवर्ष तथा कल्पवृक्षों से समावृत है।

पुण्या रम्या नवैवैते वर्षाः सालकटंकट।
इलावृताद्याश्चैवाष्टौ वर्षं मुक्त्वैव भारतम्॥ ६॥
न तेष्वस्ति युगावस्था जरा मृत्युभयं न च।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः॥ ७॥
विपर्ययो न तेष्वस्ति नोत्तमाधममध्यमाः।
यदेतद्भारतं वर्षं नवद्वीपं निशाचर॥ ८॥

हे शालकरंकट! उपर्युक्त ये नौ वर्ष पुण्य एवं रम्य हैं। भारतवर्ष को छोड़कर इलावृतादि आठ वर्षों में युगावस्था तथा जरामृत्यु का भय नहीं है। इनमें सिद्धि स्वाभाविक रूप से सुखपूर्वक तथा विना प्रयत्न के होती है। इनमें कोई विपर्यय तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम का भेद नहीं होता। हे निशाचर! यह भारतवर्ष नवद्वीप वाला प्रदेश है।

सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम्।
इन्द्रद्वीपः कशेरूणास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥ ९॥
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथां
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥ १०॥
कुमाराख्यः परिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः।

ये सभी द्वीप सागरों से अन्तरित तथा परस्पर अगम्य हैं। भारतवर्ष के नवद्वीपों के नाम हैं— इन्द्रद्वीप, कशेरूण, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल, वारुण तथा यह नौवाँ कुमार नाम वाला द्वीप दक्षिणोत्तर की ओर सागर से संवृत है।

पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः॥ ११॥
आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे।

हे वीर! जिसके (भारतवर्ष के) पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आन्ध्र तथा उत्तर में तुरुष्क लोग रहते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्त्वन्तरवासिनः॥ १२॥
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः।
तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते॥ १३॥
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तथैव च।

इसके अन्दर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रहते हैं। यज्ञ, युद्ध एवं वाणिज्य आदि कर्मों के द्वारा ये पवित्र होते हैं। इनका व्यवहार भी इन्हीं कर्मों से होता है। यहाँ स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति पुण्य तथा पाप के आधार पर निर्धारित होती है।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः॥ १४॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः।
तथाऽन्ये शतसाहस्रा भूधरा मध्यवासिनः॥ १५॥
विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाः शुभसानवः।

यहाँ सात मुख्य पर्वत हैं— महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य तथा पारियात्र। तथा इसके मध्य सुन्दर चोटी वाले विस्तृत, विशाल तथा रम्य उत्तुङ्ग शिखर वाले लाखों पर्वत हैं।

कोलाहलश्च वैभ्राजो मन्दरो दुर्धराचलः॥ १६॥
वातधूमो वैद्युतश्च मैनाकः सरसस्तथा।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिस्तथा गोवर्धनाचलः॥ १७॥
उज्जयन्तः पुष्पगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा।
ऋष्यमूकः सगोमन्तश्चित्रकूटः कृतस्मरः॥ १८॥
श्रीपर्वतः कोकणकः शतशोऽन्येऽपि पर्वताः।

कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दुर्धराचल, वातधूम, वैद्युत, मैनाक, सरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, गोवर्धन, उज्जायन, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर, श्रीपर्वत, कोङ्कण इत्यादि सैकड़ों अन्य पर्वत भी यहाँ हैं।

तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः॥ १९॥
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा याः सम्यक्ता निशामय।

इनसे विभागानुसार म्लेच्छ व आर्यों के जनपद हैं। इनके द्वारा जिन श्रेष्ठ नदियों का जलपान किया जाता है, उसे सुनिए।

सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी च हिरण्वती॥ २०॥
शतद्रुश्चन्द्रिका नीला वितस्तेरावती कुहूः।
मधुरा हाररावी च उशीरा धातकी रसा॥ २१॥
गोमती धूतपापा च बाहुदा सा दृषद्वती।
निःस्वरा गण्डकी चित्रा कौशिकी च वधूसरा॥ २२॥
सरयूश्च सलौहित्या हिमवत्पादनिःसृताः।

सरस्वती, पञ्चरूपा, कालिन्दी, हिरण्वती, शतद्रु, चन्द्रिका, नीला, वितस्ता, अरावती, कुहू, मधुरा, हाररावी, उशीरा, धातकी, रसा, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, निःस्वरा, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू, लौहित्या—ये सभी हिमालय के पाद से निःसृत हैं।

वेदस्मृतिर्वेदसिनी वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च॥ २३॥
पर्णासा नन्दिनी चैव पावनी च मही तथा।
शरा चर्मण्वती लूपी विदिशा वेणुमत्यपि॥ २४॥
चित्रा ह्योघवती रम्या पारियात्रोद्भवाः स्मृताः।

वेदस्मृति, वेदसिनी, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नन्दिनी, पावनी, मही, शरा, चर्मण्वती, लूपी, विदिशा, वेणुमती, चित्रा, रम्या ओघवती–इनका उद्भव पारियात्र पर्वत से होता है।

शोणा महानदी चैव सुरसा क्रिया॥ २५॥
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा हि देविका।
चित्रोत्पला वै तमसा करतोया पिशाचिका॥ २६॥
तथाऽन्या पिप्पलश्रोणी विपाशा वञ्जुलावती।
सत्सन्तजा शुक्तिमती चक्रिणी त्रिदिवा वसुः॥ २७॥
ऋक्षुपादप्रसूता च तथाऽन्या वल्गुवाहिनी।

महानदी शोण, नर्मदा, सुरसा, कृपा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, अपवाहिका, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी, विपाशा, वञ्जुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, चक्रिणी, त्रिदिवा, वसु, वल्गुवाहिनी, ऋक्षपर्वत के पादभाग (निम्नप्रदेश) से प्रसूत हैं।

शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी सनिषधावती॥ २८॥
वेणा वैतरणी चैव सिनीबाहुः कुमुद्वती।
तोया रेवा महागौरी दुर्गन्धा वाशिला तथा॥ २९॥
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः।

शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोया, रेवा, महागौरी, दुर्गन्धा, वाशिला– ये सभी पुण्यजल वाली शुभ नदियाँ विन्ध्य से निकलने वाली हैं।

गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्या सरिद्वती॥ ३०॥
विशमद्री सुप्रयोगा वाह्या कावेरिरेव च।
दुग्धोदा नलिनी चैव वारिसेना कलस्वना॥ ३१॥
एताश्चापि महानद्यः सह्यपादविनिर्गताः।

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, सरिद्वती, विशमद्री सुप्रयोगा, वाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, वारिसेना कलस्वना आदि महानदियाँ सह्यपाद पर्वत से निकलती हैं।

कृतमाला ताम्रपर्णी बञ्जुला चोत्पलावती॥ ३२॥
शुनी चैव सुदामा च शुक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः।
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रशमनास्तथा॥ ३३॥
जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोषितः।
अन्याः सहस्रशश्चात्र क्षुद्रनद्यो हि राक्षस॥ ३४॥
सदाकालवहाश्चान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा।
मध्यदेशोद्भवा एताः पिबन्ति स्वेच्छया शुभाः॥ ३५॥

कृतमाला, ताम्रपर्णी, वञ्जुला, उत्पलावती, शुनी और सुदामा– ये नदियाँ शुक्तिमत् पर्वत से निकलने वाली हैं। ये सभी नदियाँ पवित्र, प्रवाहपूर्ण और पुण्यमय हैं तथा समस्त पापों का नाश करने वाली हैं। हे राक्षस! और भी छोटी-छोटी हजारों नदियाँ वहां पर हैं। कुछ सभी समय प्रवाहित होने वाली और कुछ मात्र वर्षा ऋतु में ही बहने वाली हैं। मध्यदेश में रहने वाले इन नदियों का जल स्वेच्छापूर्वक पीते हैं।

यत्स्थाः कुशूद्राः किलकुण्डलाश्च
पञ्चालकाश्चैव सह कौशिकैश्च।
वृकाः शका बर्बरकौरवाश्च
कलिङ्गवङ्गाङ्गजनास्तथैते॥ ३६॥

उस द्वीप में कुशूद्रा, किलकुण्डल, पञ्चालक, कौशिक, वृक, शक, बर्बर, कौरव, कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग जाति के लोग रहते हैं।

मर्मका मध्यदेशीया आभीराः शाढ्यधानकाः।
बाह्नीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयदाः॥ ३७॥
अपरान्तास्तथा शूद्राः पल्लवाश्च सखेटकाः।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः॥ ३८॥
शातद्रवा ललित्थाश्च पारावतसमूषकाः।
माठरोदकधाराश्च कैकेया दंशनास्तथा॥ ३९॥
क्षत्रियाः प्रति वैश्याश्च तथा शूद्रकुलानि च।
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराश्चाङ्गलोकिकाः॥ ४०॥
वेणाश्चैव तुषाराश्च बहुधा बाह्यतोदराः।
आत्रेयाः सभरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः॥ ४१॥

मर्मक, आभीर, शाढ्यधानक, बाह्लीक, वाटधान, आभीर, और कालतोयद– ये मध्यदेश के वासी हैं। पाश्चात्य देश में रहने वाले अन्य शूद्र, पल्लव, खेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मूषक, माठर, उदकधार, कैकेय, दंशन, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रकुल, काम्बोज, दरद, बर्बर, अङ्गलोकिक, वेण, तुषार, आत्रेय, भरद्वाज आदि बाह्यदेश में रहने वाले, प्रस्थल प्रदेश में रहने वाले तथा दशेरक में रहने वाले हैं।

लम्पकास्तावकारामाश्चूडिकास्तङ्गणैः सह।
अलसाश्चलिभद्राश्च किरातानां च जातयः॥ ४२॥
तामसाः कर्ममार्गाश्च सुपार्श्वा गणकास्तथा।
कुलूताः कुहिकाश्चूर्णास्तूर्णपादाः सकुक्कुटाः॥ ४३॥
माण्डव्याः पाणवीयाश्च उत्तरापथवासिनः।
अङ्गावङ्गा मद्गुरवाः स्वन्तर्गिरिबहिर्गिराः॥ ४४॥
तथा प्रवङ्गा वाङ्गेया मांसादा बलदन्तिकाः।
ब्रह्मोत्तराः प्राविजया भार्गवाङ्गेयमर्षकाः॥ ४५॥
प्राग्ज्योतिषाः पृषध्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
मालामगधमानन्दाः प्राच्या जनपदास्त्विमे॥ ४६॥

लम्पक, तावकाराम, चूडिका, तङ्गण, अलस, आलिभद्र– किरातों की जातियां हैं। ये तामस प्रकृति वाले, कर्ममार्गी, सुपार्श्व तथा गणित विद्या जानने वाले हैं। कुलूता, कुहिक, चूर्ण, तूर्णपाद, कुक्कुट, माण्डव्य, पाणवीय– ये उत्तर दिशा के वासी है। अङ्ग, वङ्ग,

मद्गुरव- ये पर्वत के अन्दर भाग में रहने वाले हैं तथा प्रवङ्ग, वाङ्गेय, मांसाद, बलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गव, आंगेय, मर्षका, प्राग्ज्योतिष, पृषध्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मालामगध, मानन्द- ये सभी प्राच्य जनपद के लोग हैं।

पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव चौडाः कुल्याश्च राक्षस।
जानुका मूषिकादाश्च कुमारादा महाशकाः॥४७॥
महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः।
आभीराः सहवैसक्या आरण्याः शबराश्च ये॥४८॥
पुलिन्दा विन्ध्यशैलेया वैदर्भा दण्डकैः सह।
पौरिकाः सारिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः॥४९॥
नैमिकाः कुन्दला आन्ध्राः उच्छिदा नलकारकाः।
दाक्षिणात्या जनपदास्त्विमे शालकटंकट॥५०॥

हे राक्षस! हे शालकटंकट! पुण्ड्र, केरल, चौड, कुल्य, जानुक, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, आभीर, वैसक्य, आरण्यक, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यशैलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, सारिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैमिक, कुन्दल, आन्ध्र, उच्छिद, नलकारक- ये सभी दाक्षिणात्य जनपद के लोग हैं।

शूर्पारका वारिधाना दुर्गाश्चालीकटैः सह।
पुलीयाश्चसिनीलाश्चातापसास्तामसास्तथा॥५१॥
कारस्करास्तुभमिनो नासिकान्ताः सुनर्मदाः।
दारुकच्छाः सुमाहेयाः सह सारस्वतैरपि॥५२॥
वात्सीयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह।
इत्येते पश्चिमामाशां स्थिता जानपदा जनाः॥५३॥

शूर्पारक, वारिधान, दुर्ग, अलीकट, पुलीय, असिनील, तापस, तामस, कारस्कर, भमिन, नासिकान्त, सुनर्मद, दारुकच्छ, सुमाहेय, सारस्वत, वात्सीय, सुराष्ट्र, आवन्त्य, आर्बुद- ये पश्चिम दिशा में स्थित जनपदों में रहने वाले लोग हैं।

कारूपाश्चैकलव्याश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च गोप्ताः किकरवैः सह॥५४॥
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुराः खेल्लिशास्तथा।
तुरगास्तुम्बराश्चैव वहेला नैषधैः सह॥५५॥
अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतहोत्रास्त्ववन्तयः।
सुकेशे विन्ध्यमूलस्थास्त्विमे जनपदाः स्मृताः॥५६॥

कारूष, एकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, गोप्त, किकरव, तोशल, कोशल, त्रैपुर, खेल्लिश, तुरग, तुम्बर, वहेल, नैषध, अनूप, तुण्डिकेर, वीतहोत्र, अवन्ति- ये लोग हे सुकेशि! विन्ध्य पर्वत के मूलभाग के जनपदों में रहने वाले हैं।

आद्यान्देशान्प्रवक्ष्यामः पर्वताश्रयिणस्तु ये।
निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तङ्गणाः खशाः॥५७॥
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णाप्लुष्टाः सुहूहुकाः।
त्रिगर्त्ताश्च किराताश्च तोमराः शशिखाद्रिकाः॥५८॥

अब पर्वत के आश्रित रहने वाले आद्य देशीय लोगों को कहते हैं- निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तङ्गण, खश, कुथ, प्रावरण, ऊर्णाप्लुष्ट, सुहूहुक, त्रिगर्त्त, किरात, तोमर, और शशिखाद्रिक।

इमे तवोक्ता विषयाः सुविस्तराद्
द्वीपे कुमारे रजनीचरेश।
एतेषु देशेषु च देशधर्मान्
संकीर्त्यमानाञ्छृणु तत्त्वतो हि॥५९॥

हे निशाचर! इस प्रकार कुमार द्वीप के देश तुम्हें विस्तारपूर्वक बताये। इन सब देशों के जो देशों को कहा जा रहा है, उनको अच्छी प्रकार सुनो।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भुवनकोशवर्णने
त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः॥

(धर्मानुशासन-वर्णन)

ऋषयः ऊचुः

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः।
अकार्पण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचर॥१॥
दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसौ सार्ववर्णिकः।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्यकल्पना॥२॥

ऋषियों ने कहा— हे रजनीचर राक्षसश्रेष्ठ! अहिंसा सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), दान, क्षान्ति (क्षमा)

दम (इन्द्रियनिग्रह), शम (शान्ति), अकार्पण्य (कंजूस न होना) शौच (शुद्धता) तथा तप—ये दश अंगों वाला वह धर्म सभी जातियों के लिए है। ब्राह्मण के लिए भी चारों आश्रमों की कल्पना की गयी है।

सुकेशिरुवाच-

विप्राणां चातुराश्रम्यं विस्तरान्मे तपोधना।
आचक्षध्वं न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते॥ ३॥

सुकेशि ने कहा— ब्राह्मणों के लिए चारों आश्रमों के लिए विहित धर्म मुझे बताएँ। इस विषय को सुनने हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

ऋषय ऊचुः

कृतोपनयनः सम्यग्ब्रह्मचारी गुरौ वसेत्।
तत्र धर्मोऽस्य यस्तं त्वं कथ्यमानं निशामय॥ ४॥

ऋषि बोले— (सर्वप्रथम) उपनयन संस्कार हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी को गुरु के समीप जाकर रहना चाहिए। उसके जो धर्म कहे जा रहे हैं, उसे तुम सुनो।

स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा।
गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वथा॥ ५॥
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादनम्।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः॥ ६॥
एकं द्वौ सकलान्वाऽपि वेदान्प्राप्य गुरोर्मुखात्।
अनुज्ञातो वरं दत्त्वा गुरवे दक्षिणां ततः॥ ७॥
गृहस्थाश्रमकामस्तु गार्हस्थ्याश्रममावसेत्।
वान्प्रस्थाश्रमं वाऽपि चतुर्थं स्वेच्छयाऽऽत्मनः॥ ८॥

स्वाध्याय (वेदाध्ययन) अग्निसेवा, स्नान, भिक्षा मांगकर गुरु को अर्पित करना और उनकी आज्ञा से भोजन करना, गुरु के कार्य के लिये उद्यम करना, गुरु के प्रति अच्छी प्रीति सम्पादन करना चाहिए। गुरु के द्वारा बुलाये जाने पर ही पढ़े और एकचित्त होकर पढ़ना चाहिए। एक, दो अथवा सभी वेदों को गुरु से पढ़कर उनकी आज्ञा प्राप्तकर तथा गुरुदक्षिणा देकर पश्चात् गृहस्थाश्रम की इच्छा रखने वाले को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। अथवा वानप्रस्थ या संन्यास की इच्छा हो तो उसी प्रकार करना चाहिए।

तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात्।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतां विना॥ ९॥
शुश्रूषन्निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत्।
एवं जयति मृत्युं स द्विजः सालकटंकट॥ १०॥

यदि ब्रह्मचर्याश्रम में ही रहना चाहें, तो एकनिष्ठ होकर गुरु के घर पर ही रहें। गुरु न हो तो उसके पुत्र के घर और यदि वह भी न हो तो गुरु के शिष्य के घर रहकर उसकी सेवा करनी चाहिए। गुरु की पुत्री के यहाँ नहीं रहना चाहिए। अभिमान छोड़कर सेवायुक्त होकर ब्रह्मचर्याश्रम में वास करें। हे शालकटंकट! इस प्रकार रहने वाला द्विज मृत्यु को भी जीत लेता है।

उपावृत्तैस्तु तैस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया।
असमानार्षकुलजा कन्योद्वाह्या निशाचर॥ ११॥
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवाऽतिथीनपि।
सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्या सदाचाररतो द्विजः॥ १२॥

हे राक्षस! ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण होने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा वाले असमान गोत्र अथवा असमान कुल की कन्या के साथ विवाह करें। इसके बाद अपने परिश्रम से धन संग्रह करके पितृ, देव और अतिथियों को भक्तिपूर्वक अच्छी प्रकार सन्तुष्ट करें और सदाचार का पालन करें।

सुकेशिरुवाच–

सदाचारेति गदितं युष्माभिर्मम सुव्रताः।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयध्वं तदद्य मे॥ १३॥

सुकेशी ने कहा— हे सुव्रतो! आपने मुझे जो सदाचार बताये हैं, उनके लक्षण सुनने की अब मेरी इच्छा है, अतः मुझे कहें।

ऋषय ऊचुः

सदाचारो निगदितस्तव योऽस्माभिरादरात्।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर॥ १४॥

ऋषि बोले- हे निशाचर! हमने तुम्हें जो सदाचार के विषय में आदरपूर्वक बताया है, उसके लक्षण अब कहते हैं, उसे सुनो।

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम्।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र च॥ १५॥

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः समुल्लङ्घ्य सदाचारं प्रवर्त्तते॥ १६॥

गृहस्थ को सदा आचार का पालन करना चाहिए। आचार विहीन मनुष्य का इस लोक और परलोक में कल्याण नहीं होता। जो सदाचार का उल्लंघन करता है, इस लोक में उसके यज्ञ, दान और तप फलीभूत नहीं होते।

दुराचारो हि पुरुषो नेह नामुत्र नन्दते।
कार्यो यत्नः सदाचार आचारो हन्त्यलक्षणम्॥ १७॥

दुराचारी पुरुष इस लोक में तथा परलोक में सुखी नहीं होता। इसलिए सदाचारी होने के लिए यत्न करना चाहिए; क्योंकि सदाचार कुलक्षणों का विनाश करता है।

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामः सदाचारस्य राक्षस।
शृणुष्वैकमनास्त्वं च यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥ १८॥

हे राक्षस! अब तुम्हें सदाचार का स्वरूप बताते हैं। यदि अपना कल्याण चाहते हो तो, उसे सावधानतया सुनो।

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखाः
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन्
संसेवितो येन स पुण्यभोक्ता॥ १९॥

इसका मूल धर्म है, उसकी शाखाएँ धन हैं, काम इसके पुष्प हैं तथा मोक्ष इसका फल है। हे सुकेशि! जो भी इस सदाचार वृक्ष का सेवन करता है, वही पुण्य का भोक्ता बनता है।

ब्राह्मेमूहुर्ते प्रथमं विबुध्येदनुस्मरेद्देववरान्महर्षीन्।
प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं यदुक्तवान्देवपतिस्त्रिनेत्रः॥

सर्वप्रथम प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। तत्पश्चात् देवों तथा महर्षियों का नाम स्मरण करना चाहिए। इसके बाद प्रातःकालीन मंगलमय स्तोत्र पढने चाहिए, जो देवपति शङ्कर ने कहे हैं।

सुकेशिरुवाच–

किं तदुक्तं सुप्रभातं शङ्करेण महात्मना।
प्रभाते यत्पठन्मर्त्यो मुच्यते पापबन्धनात्॥ २१॥

सुकेशि ने कहा – महात्मा शङ्कर ने जो प्रातःकालीन स्तोत्र कहे हैं, वे कौन से हैं जिसका प्रातः पाठ करने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है।

ऋषय ऊचुः

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं हरोदितम्।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २२॥

ऋषि बोले – हे राक्षसश्रेष्ठ! महादेवजी द्वारा कहे हुए प्रातःकाल के स्तोत्रों को तुम सुनो। उसे सुनकर, स्मरण कर अथवा पाठकर पापों से मुक्ति मिलती है।

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २३॥

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मुनिः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २४॥

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽथासुरिपिङ्गलौ च
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २५॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, गुरु, शुक्र और शनि- ये सभी मेरे प्रातःकाल को शुभ करे। भृगु, वसिष्ठ, ऋतु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रेभ्य, मरीचि, च्यवन, ऋभु- ये सभी मेरे प्रभात को मंगलकारी करे। सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातन, आसुरी, पिंगल, सप्तस्वर और सप्तरसातल- ये सभी मेरे प्रातः को शुभ करे।

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाऽऽपः
सस्पर्शवायुर्ज्वलनः सुतेजाः।
नभः सशब्दं महता सहैव
यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २६॥

सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।

भूरादयः सप्त तथैव लोका

यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ २७॥

गंध सहित पृथ्वी, रस सहित जल, स्पर्श सहित वायु, ऊष्णता सहित तेज, शब्द सहित आकाश और महत्तत्त्व- ये सभी मेरे प्रातः समय को मंगलमय करे। सप्तसमुद्र, सप्तकुलपर्वत, सप्तऋषि, सप्तद्वीप और भू आदि सप्तलोक- ये सभी मुझे सुप्रभात प्रदान करें।

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं

पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।

दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं

भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात्॥ २८॥

ततः समुत्थाय विचिन्तयेत

धर्मं तथार्थं च विहाय शय्याम्।

उत्थाय पश्चाद्धरिरित्युदीर्य

गच्छे त्तदोत्सर्गविधिं हि कर्तुम्॥ २९॥

इस प्रकार प्रातःकाल में जो परमपवित्र नामों का भक्तिपूर्वक पठन, स्मरण अथवा श्रवण करता है, उसके दुःस्वप्न का भगवान् की कृपा से नाश होता है तथा उसका प्रभात मंगलमय होता है। इसलिए शैय्या से उठकर धर्म तथा अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। इसके पश्चात् हरि नाम का उच्चारण करके उत्सर्ग विधि (मलत्याग) करनी चाहिए।

न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गे

न राजमार्गे न चतुष्पथे च।

कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे

पूर्वां परां नैव समाश्रितो गाम्॥ ३०॥

देव, गौ, अग्नि तथा ब्राह्मण के मार्ग में, राजमार्ग में, चौराहे में, पशु बाँधने के स्थान में और पूर्व अथवा पश्चिम दिशा की ओर बैठकर मल त्याग नहीं करना चाहिए।

ततस्तु शौचार्थमुपाहरेन्मृदं

गुदे त्रयं पाणितले दशैव।

तथोभयोः सप्त तथैव पादयो-

र्लिङ्गे तथैकां मृदमाहरेत॥ ३१॥

इसके बाद पवित्र होने के लिए मिट्टी लेकर गुदा को तीन बार, बाएँ हाथ को दस बार, दोनों हाथों को सात बार, दोनों पैरों को भी सात बार जल से धोना चाहिए तथा लिङ्ग को भी एक बार मिट्टी से धोना चाहिए।

नान्तर्जलाद्राक्षस मूषकस्य

बिलाच्च शौचाचरणागतान्यैः।

वल्मीकमृच्चैव हि शुद्धये सदा

ग्राह्या सदाचारविदा नरेण॥ ३२॥

हे राक्षस! पानी के अंदर की, चूहे के बिल की, दूसरे के द्वारा शौच विधि में ली गई और (दीमक या सर्प के) वल्मीक की मिट्टी सदाचार जानने वाले पुरुषों को शुद्धि हेतु प्रयोग में नहीं लानी चाहिए।

उदङ्मुखः प्राग्वदनोऽपि विद्वान्

प्रक्षाल्य पादौ भुवि संनिविष्टः।

समाचमेदद्भिरफेनिलाभि-

र्मुखं त्रिरादौ परिमृज्य च द्विः॥ ३३॥

विद्वान् पुरुष को उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके, पैर धोकर, भूमि पर बैठना चाहिए और बाद में फेनरहित जल से तीन बार आचमन करके मुख प्रक्षालन करना चाहिए।

ततः स्पृशेत्खानि शिरः करेण

संध्यामुपासीत ततः क्रमेण।

केशांश्च संशोध्य च दन्तधावनं

कृत्वा तथा दर्पणदर्शनं च॥ ३४॥

इसके पश्चात् बालों को होथों से सँवारना चाहिए, दातुन करना, दर्पण में मुख देखना और स्नान करने के बाद न्यास सहित संध्या करनी चाहिए।

कृत्वा शिरःस्नानमथाह्निकं वा

संपूज्य तोयेन पितॄन्सदेवान्।

होमं च कृत्वाऽऽलभनं शुभानां

कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम्॥ ३५॥

सिर भिगोकर स्नान करने के बाद पानी से तर्पण करके पितरों तथा देवों का पूजन करना चाहिए। इसके बाद हवन करके पवित्र वस्तुओं का स्पर्श करने के पश्चात् कार्य हेतु बाहर निकलना चाहिए।

दूर्वां दधिं सर्पिरथोदकुम्भं
धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम्।
मृग्गोमयं स्वस्तिकमक्षतानि
लाजा मधु ब्राह्मणकन्यकाश्च॥ ३६॥
श्वेतानि पुष्पाणि च शोभानि
हुताशनं चन्दनमर्कविम्बम्।
अश्वत्थवृक्षं च समालभेत
ततस्तु कार्यो निजजातिधर्मः॥ ३७॥

उस समय दुर्वा, दहीं, घी, पानी से भरा घड़ा, बछड़े वाली गौ, बैल, सुवर्ण, मृचिका, गोबर, स्वस्तिक, अक्षत, लाजा, मधु, ब्राह्मण कन्या, श्वेत पुष्प, अग्नि, चन्दन, सूर्य का बिम्ब, पीपल-वृक्ष आदि के दर्शन करके अथवा उन्हें स्पर्श करके अपने-अपने जातिधर्म के अनुकूल कार्य में लग जाना चाहिए।

देशानुशिष्टं कुलधर्ममग्र्यं
स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत्।
तेनार्थसिद्धिं समुपाचरेत
नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम्॥ ३८॥
न निष्ठुरं नागमशास्त्रहीनं
वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन।
निन्द्यो भवेन्नैव च धर्मभेदी
सङ्गं न चासत्सु नरेषु कुर्यात्॥ ३९॥

देशाचार के अनुसार शिष्ट पुरुषों द्वारा निश्चित किया गया स्वधर्म तथा अपने गोत्र का धर्म त्याग करना नहीं चाहिए। इसी से अर्थ की सिद्धि होती है। मिथ्या प्रलाप न करें। असत्य भाषण न करे। निष्ठुर (कठोर) अथवा वेदशास्त्र विरुद्ध वचन भी न बोले; जिससे साधुजनों द्वारा निन्दा का पात्र न बने। धर्म में भेद डालने वाला न हो और असज्जन पुरुषों का संग न करें।

संध्यासु वर्ज्यं सुरतं दिवा च
सर्वासु योनीषु पराबलासु।
सर्वान्ययोनिष्वपराबलासु
रजस्वलास्वेव जलेषु वीर॥ ४०॥

हे वीर! सन्ध्या समय में तथा दिन में मैथुन नहीं करना चाहिए। सभी अन्य योनियों में अर्थात् पशु आदि सभी जातियों में परस्त्री के साथ तथा अपनी रजस्वला स्त्री के साथ कभी मैथुन वर्ज्य है।

वृथाऽटनं वृथा दानं वृथा च पशुमारणम्।
न कर्त्तव्यो गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहः॥ ४१॥
वृथाऽटनान्नित्यहानिर्वृथा दानाद्धनक्षयः।
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकार्थि यत्॥ ४२॥

गृहस्थ को बिना उद्देश्य के इधर-उधर भटकना नहीं चाहिए। बिना कारण दान नहीं करना चाहिए। बिना कारण पशु को मारना भी नहीं चाहिए और बिना कारण स्त्री से विवाह भी नहीं करना चाहिये। बेकार घूमने से नित्य कर्म में हानि होती है। बेकार दान करने से धन का क्षय होता है। बिना कारण पशुओं को मारने से पाप लगता है और नरक भोगना पड़ता है।

संतत्या हानिरश्लाघ्या वर्णसंकरतो भयम्।
भेतव्यं च भवेल्लोके वृथादारपरिग्रहात्॥ ४३॥
परस्वे परदारेषु न कार्या बुद्धिरुत्तमैः।
परस्वं नरकायैव परदाराश्च मृत्यवे॥ ४४॥

बिना कारण स्त्री से विवाह करने पर संतति की हानि होती है। यदि होती है, तो निन्दनीय अथवा वर्णसंकर का भय रहता है। इस कारण उत्तम पुरुषों को परस्त्री और परधन में कभी भी बुद्धि नहीं रखनी चाहिए क्योंकि परधन नरक में ले जाता है और परस्त्री मृत्यु को देने वाली होती है।

नेक्षेत्परस्त्रियं नग्नां न संभाषेत तस्करान्।
उदक्यादर्शनं स्पर्शं संभाषां च विवर्जयेत्॥ ४५॥
नैकासने तथा स्थेयं सोदर्या परजायया।
तथा सापत्नमातुश्च तथा स्वदुहितृष्वपि॥ ४६॥
न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन।
दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमणमिष्यते॥ ४७॥

परस्त्री को कभी भी नग्न नहीं देखना चाहिए। उसी प्रकार चोर के साथ बात नहीं करनी चाहिए तथा रजस्वला स्त्री का दर्शन भी नहीं करना चाहिए। उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए और उसके साथ वार्तालाप भी न करें। अपनी बहन अथवा परस्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए। उसी प्रकार सौतेली माँ

अथवा अपनी पुत्री के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए। नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए और सोना भी नहीं चाहिए तथा नग्न होकर घूमना भी नहीं चाहिए।

भिन्नांश्च शय्यासनभाजनादी-
ञ्छुद्ध्यै रतः संपरिवर्जयेत्तान्।
नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेत
क्षौरं च रिक्तासु जयासु मांसम्॥४८॥
पूर्णासु योषित्परिवर्जनीया
भद्रासु सर्वाणि समाचरेच्च।
नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे
क्षौरं च शुक्रे रविजे च मांसम्॥४९॥
बुधेषु योषिन्न समाचरेत
शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात्।
चित्रासु हस्ते श्रवणे न तैलं
क्षौरं विशाखास्वभिजित्सु वर्ज्यम्॥५०॥

फटी हुई शैय्या, टूटा हुआ आसन और फूटे हुए बर्तन का उपयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि इससे अशुद्धि होती है। नन्दातिथि (१, ६, ११) इसमें अभ्यङ्ग नहीं करना चाहिए। रिक्तातिथि (४, ९, १४) में क्षौरकर्म वर्जित है और जयातिथि (३, ८, १३) में मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। पूर्णातिथि (५, १०, १५) में स्त्री संसर्ग नहीं करना चाहिए। भद्रातिथि (२, ७, १२) में सभी काम किये जा सकते हैं। रविवार को अभ्यङ्ग स्नान नहीं करना चाहिए। मंगलवार को क्षौरकर्म नहीं करना चाहिए और शुक्र तथा शनिवार को मांस भक्षण न करें। स्त्री को बुधवार के दिन कोई काम नहीं करना चाहिए और अन्य दूसरे दिनों में सभी काम कर सकते हैं। चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षण में तेल मर्दन न करें। विशाखा और अभिजित् नक्षत्रों में दिवस में क्षौरकर्म न करावें।

मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं
योषिन्मघाकृत्तिकभोत्तरासु।
सदैव वर्ज्यं शयने उदक्छिर-
स्तथा प्रतीच्यां रजनीचरेश॥५१॥
भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो
न च प्रतीचीमभि भोजनीयम्।
देवालयं चैत्यतरुं चतुष्पथं
विद्याधिकं चापि गुरुं प्रदक्षिणम्॥५२॥

मूल, मृगशीर और भाद्रपदा नक्षत्र में दिवस में मांस भक्षण न करें। मघाकृतिका और तीनों उत्तरा नक्षत्रों में स्त्री संग न करें। हे राक्षस! पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर सिर रखकर कभी नहीं सोना चाहिए। दक्षिण तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके भोजन नहीं करना चाहिए। देवालय, पीपल का वृक्ष, ब्राह्मण, विद्वान् और गुरु जो कोई मार्ग में मिले उनकी प्रदक्षिणा किये बिना आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

माल्यान्नपानं वसनानि यत्नतो
धृतानि चान्यैर्न हि धारयेद् बुधः।
स्नायाच्छिरःस्नानतया च नित्यं
निष्कारणं नैव महानिशासु॥५३॥
ग्रहोपरागे स्वजनापघाते
मुक्त्वा च जन्मर्क्षगते शशाङ्के।
नाभ्यङ्गितं कायमुपस्पृशेच्च
स्नातो न केशान्विधुनीत चापि॥५४॥
गात्राणि नैवाम्बरपाणिना च
स्नातो विमृज्याद्रजनीचरेश।
वसेत्सुदेशेषु सुराजकेषु
सुंसहितेष्वेव जनेषु नित्यम्॥५५॥

बुद्धिमान् पुरुष को दूसरे के द्वारा उपयोग में लाई गई फूलों की माला, अन्न, पान और वस्त्र कभी नहीं उपयोग में लाने चाहिए। सदा सिर धोकर नहाना चाहिए और महारात्रि के समय बिना कारण स्नान नहीं करना चाहिए। ग्रहण होने पर, संबंधी की मृत्यु के समय और जन्म नक्षत्र में यदि चन्द्रमा हो तो रात्रि में भी स्नान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त रात्रि में स्नान कभी न करें। जिसने शरीर पर तेल मर्दन किया हो, उसका स्पर्श न करें और स्नान करने के बाद सिर के बालों को झाड़ना नहीं चाहिए। हे राक्षस! स्नान करने के पश्चात् धारण किये हुए वस्त्र से शरीर पोंछना नहीं चाहिए और हाथ से भी पोंछना नहीं चाहिए। जिस देश में लोग मिलकर और

शान्ति से रहते हों तथा समस्त राज्य व्यवस्था बनी हुई हो, उस देश में ही रहना चाहिए।

अक्रोधना न्यायपरा विमत्सराः
कृषीवला ह्यौषधिजातयश्च।
स्वापस्तु वैद्यो धनिकश्च यत्र
सच्छ्रोत्रियस्तत्र वसेत नित्यम्॥५६॥

जिस देश में लोग क्रोध न करते हों, ईर्ष्या रहित हों, जहाँ कृषक रहते हों, भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ हों, अधिकाधिक जल प्राप्त होता हो, वैद्य रहते हों, धनवान्, व्यापारी हों और जहाँ श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते हों, उस देश में निवास करना चाहिए।

न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्
सदा नृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः।
जनोऽपि नित्योत्सवबद्धवैरः
सदा जिगीषुश्च निशाचरेन्द्र॥५७॥

जिस देश में राजा सदा लोगों को दण्ड देने में ही आनन्द मानता हो, स्वयं अशक्त हो और जहाँ लोग एक-दूसरे में वैर रखकर एक-दूसरे को जीतने की इच्छा रखते हों, हे राक्षसेन्द्र! उस देश में कभी नहीं रहना चाहिए।

यद्य वर्ज्यं महावाहो सदा धर्मस्थितैर्नरैः।
यद्भोज्यं च समुद्दिष्टं कथयिष्यामहे वयम्॥५८॥
भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम्।
अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा॥५९॥
शशकः शल्यको गोधा समेधा मत्स्यकच्छपौ।
तद्वद्द्विवदलकादीनि भोज्यानि मनुरब्रवीत्॥६०॥

हे महाबाहु! अब धर्मशील मनुष्यों के लिये जो त्याग करने योग्य है, जो पालन करने योग्य है और जो खाने योग्य है, उसे मैं तुम्हें कहता हूँ। घी अथवा तेल में तला हुआ अन्न बासी होने पर भी खाने योग्य है। उसी प्रकार चावल आदि खराब न हुये हों तो स्वच्छ करके खाने में कोई दोष नहीं है और दूध का पदार्थ भी यदि खराब न हुआ हो तो अधिक काल बीत जाने पर भी खाने में कोई हानि नहीं है।

मणिवस्त्रप्रवालानां तद्वन्मुक्ताफलस्य च।
शैलदारुमयानां च तृणमूलौषधान्यपि॥६१॥
शूर्पधान्यतृणानां च संहतानां च वाससाम्।
वल्कलानामशेषाणामम्बुना शुद्धिरिष्यते॥६२॥
सस्नेहानामथोष्णेन तिलकल्केन चाविकम्।
कार्पासिकानां वस्त्राणां शुद्धिः स्याद्वहिरम्बुना॥६३॥
नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते।
पुनः पाकेन भाण्डानां मृन्मयानां च मेध्यता॥६४॥
शुचि भैक्षं कारुहस्तः पण्ययोषिन्मुखं तथा।
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम्॥६५॥
वाक्यपूतं चिरानीतमनेकान्तरितं लघु।
चेष्टितं वालवृद्धानां बालस्य तु मुखं शुचि॥६६॥

मणि, वस्त्र, प्रवाल, मोती, पत्थर, लकड़ी, मूल, औषध, सूप, अनाज, घास, वल्कल इन सब की शुद्धि जल से ही हो जाती है। तेल वाले पदार्थों की शुद्धि गर्म जल से होती है। तिल के कल्क के साथ उबले हुए पानी से ऊन के वस्त्र की शुद्धि होती है और सूती वस्त्र की शुद्धि पानी से धोने पर हो जाती है। हाथी दांत, हड्डी और सींग की शुद्धि तत्काल हो जाती है। मिट्टी के बर्तन अग्नि में पुनः तपाने से शुद्ध हो जाते हैं। भिक्षा का अन्न, कारीगर का हाथ, विक्रय की वस्तु, स्त्री का मुख, मार्ग में पड़ी हुई वस्तु, अनजानी चीज और सेवक द्वारा बनाई हुई वस्तु ये सभी चीजें पवित्र ही मानी जाती है। वचन से पवित्र रहना चाहिए। लंबे समय से संगृहीत, अच्छी प्रकार से ढँका हुआ, हल्का, बारीक और वृद्ध की चेष्टा तथा बालक का मुख इतनी वस्तुएँ पवित्र हैं।

कर्मान्ताङ्गारशालास्तु स्तनंधयसुताः स्त्रियः।
वाग्विप्रुषो द्विजेन्द्राणां संतप्ताश्चाम्बुबिन्दवः॥६७॥
भूमिर्विशुद्ध्यते खातदाहमार्जनगोक्रमैः।
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात्॥६८॥

कर्म करने के पश्चात् अंगारशाला (चूल्हा), दूध पीता बालक, स्त्री, बोलते समय ब्राह्मण के मुख से निकलते हुए छींटें और गर्म जल में गिरे हुए- बिन्दु ये सभी वस्तुएँ स्वभाव से ही पवित्र हैं। खोदने से, जलाने से तथा साफ करने से और गाय के पैर पड़ने से जमीन शुद्ध होती है। और भी - गोबर का लेप करने से, उखाड़ने से,

पानी छाँटने से और झाड़ू लगाने से घर के अंदर की जमीन शुद्ध होती है।

केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते।
मृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेसव्यानि शुद्धये॥६९॥
औदुम्बराणां चाम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः।
भस्माद्भिश्चैव कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च॥७०
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च।
अन्येषामपि तद्द्रव्यैः शुद्धिर्गन्धापहारतः॥७१॥

जिस अन्न में सिर के बाल गिरे गिरे हों, कीड़े पड़ गये हों, जिसे गाय ने सूँघ लिया हो तथा जिसमें मक्खी गिरी हो, उस अन्न की शुद्धि के लिए मिट्टी, पानी अथवा क्षार डालना चाहिए। तांबे का पात्र खटाई से, कलई और शीशे का बर्तन क्षार से, कांसे का पात्र राख से तथा पानी से और प्रवाही पदार्थ को उबाल आने तक गर्म करने से शुद्धि होती है। खराब पदार्थ के द्वारा दुर्गन्धित हुए बर्तन की भी शुद्धि उसकी गंध मिटने तक मिट्टी और पानी से दूर हो जाती है।

मातुः प्रस्रवणे वत्सः शकुनिः फलपातने।
गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥७२॥
रथ्याकर्दमतोयानि गावः पथि तृणानि च।
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च॥७३॥

माँ का दूध पीते समय गाय का बछड़ा, भार उठाते समय गधा, वृक्ष से फल तोड़ते समय पक्षी और शिकार करते समय कुत्ता शुद्ध माना जाता है। मोहल्ले में कीचड़, पानी, गाय, मार्ग में घास और पक्की ईटों का भट्टा, ये सब पवन से ही शुद्ध हो जाते हैं।

पक्वं द्रोणाधिकं चान्नममेध्याभिप्लुतं भवे।
अग्रमुद्धृत्य संत्याज्यं शेपस्य प्रोक्षणं स्मृतम्॥७४॥
उपवासस्त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने।
अज्ञातज्ञातपूर्वे वा नैव शुद्धिर्विधीयते॥७५॥

एक द्रोण (एक हजार चौबीस तौला) उससे भी अधिक अनाज पकाया गया हो और उसमें कोई अपवित्र वस्तु गिर जाये तो उसके ऊपर का भाग निकाल कर बाकी के भाग पर शुद्ध जल छिंटकने से वह भी पवित्र हो जाता है। अनजान में दूषित अन्न खाया जाये तो तीन रात्रि का उपवास करने से शुद्धि होती है परन्तु यदि जानबूझ कर खाया जाये तो उसकी कोई शुद्धि नहीं होती।

उदक्यास्नातनग्नाश्च सूतिकान्त्यावसायिनः।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः॥७६॥
सस्नेहमस्थि संपृश्य सवासा जलमाविशेत्।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य च॥७७॥

रजस्वला स्त्री, स्नान बिना किये हुए स्त्री, नग्न स्त्री, प्रसवयुक्त स्त्री— इन्हें स्पर्श करके तथा चाण्डाल और शव को उठाने वाले पुरुष को स्पर्श करने पर स्नान करने से ही शुद्धि हो जाती है। चर्बीयुक्त, हड्डी का स्पर्श किया हो तो वस्त्रसहित स्नान करने से शुद्धि होती है और शुष्क हड्डी का स्पर्श किया हो तो आचमन द्वारा, गाय का स्पर्श करने से अथवा सूर्य के दर्शन करने से शुद्धि हो जाती है।

न लङ्घयेन्नरं नासृक्शरीरोद्वर्तनानि च।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः॥७८॥

मनुष्य को लांघकर नहीं जाना चाहिए तथा खून, प्राणी का शरीर तथा उद्वर्तन को भी लांघकर नहीं जाना चाहिए। झूठन, विष्ठा, मूत्र और पैर धोया हुआ पानी— इन सबको घर से बाहर फेंक देना चाहिए।

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि।
स्नायीत देवखातेषु सरःसु च सरित्सु च॥७९॥
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन।
नालपेज्जनविद्विष्टं वीरहीनां तथा स्त्रियम्॥८०॥

दूसरे के जलाशय से पाँच हथेली भर कीचड़ निकाले बिना उसमें स्नान नहीं करना चाहिए। देवखात, तालाब तथा नदी में स्नान करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष को असमय में बाग आदि में नहीं रहना चाहिए और लोगों में द्वेष नहीं करना चाहिए। ऐसे मनुष्य के साथ तथा भाई, पति अथवा पुत्र साथ न हो उस समय किसी स्त्री के साथ बोलना नहीं चाहिए।

देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञसत्रादिनिन्दकैः।
कृत्वा तु स्पर्शमालापं शुद्ध्यतेऽर्कविलोकनात्॥८१॥

देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ और सत्र— इनकी निन्दा करने वाले का यदि स्पर्श हो अथवा उसके साथ

वार्तालाप हो तो सूर्य के दर्शन करने से शुद्धि हो सकती है।

अभोज्याः सूतिकाः षण्डो मार्जाराखू च कुक्कुटाः।
पतितापविद्धनग्नाश्चण्डालाद्याधमाश्च ये॥८२॥

सूतिक, शण्ड, मार्जार, आखु, कुक्कुट, पतित, अपविद्ध, नग्न, चाण्डाल और अधम— इन सबका अन्न नहीं खाना चाहिए।

सुकेशिरुवाच–

भवद्भिः कीर्त्तिता भोज्या य एते सूतिकादयः।
अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि॥८३॥

सुकेशी ने कहा – आपने जो सूतिक आदि का अन्न न खाने के लिये कहा है, उस सूतिक आदि के लक्षण क्या हैं, इन सबको मैं तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ।

ऋषय ऊचुः

ब्राह्मणी ब्राह्मणश्चैव यावच्छेषत्वमागतौ।
तावुभौ सूतिके त्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम्॥८४॥
न जुहोत्युचिते काले न स्नाति न ददाति च।
पितृदेवार्चनाद्धीनः स षण्डः परिगीयते॥८५॥
दम्भार्थं जपते यश्च तप्यते पठते तथा।
न परत्रार्थमुद्युक्तो मार्जारः परिकीर्तितः॥८६॥

ऋषि कहते हैं – ब्राह्मण और ब्राह्मणी दो ही हों और निर्धन तथा वृद्ध हों, वे दोनों सूतिक कहे जाते हैं। उनका अन्न निन्दायुक्त माना जाता है। जो योग्य समय पर होम नहीं करते हैं, स्नान नहीं करते, दान नहीं करते और पितरों तथा देवों की पूजा नहीं करते, वे शण्ड कहे जाते हैं। जो दम्भयुक्त होकर ही जप-तप और पाठ करते हैं तथा परलोक के कल्याण हेतु कोई भी परिश्रम नहीं करते, वे मार्जार कहे जाते हैं।

विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति न।
तमाहुराखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुध्यति॥८७॥
सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत्।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम्॥८८॥
स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाचरेत्।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते॥८९॥

सम्पत्ति होने पर भी जो उसका उपभोग नहीं करते, दान नहीं करते अथवा होम नहीं करते वे आखु कहे जाते हैं और उनका अनाज खाने पर तो कृच्छ्रचांद्रायण व्रत करने से ही शुद्धि होती है। सभाओं में बैठकर जो सदस्य पक्षपात करता है, उसे देवता कुक्कुट कहते हैं और उसका अन्न निन्दनीय होता है। आपत्ति समय के बिना जो अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म का आचरण करता है, उसे विद्वान् लोग पतित कहते हैं।

देवत्यागी पितृत्यागी गुरुवद्धुगनकस्तथा।
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः प्रकीर्त्यते॥९०॥
येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम्।
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम्॥९१॥
आशार्तानामदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः।
शरणागतं यस्त्यजति स चण्डालोऽधमो जनः॥९२॥
यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि।
कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥९३॥

देवगण, पितरगण और गुरुओं का त्याग करने वाले तथा गौ, ब्राह्मण तथा स्त्री की हत्या करने वाले अपविद्ध माने जाते हैं। जिसके कुल में वेदशास्त्र और व्रत नहीं हैं, वे नग्न कहे जाते हैं और उनका अन्न त्याज्य है। जो आश्वासन देकर दान नहीं करता अथवा दाता को देते हुए रोकता है तथा जो शरणागत का त्याग करता है, उस मनुष्य को अधम और चाण्डाल कहा गया है। सगे-संबंधी, साधु पुरुषों और ब्राह्मणों ने जिसका त्याग किया हो वे कुण्डाशी कहे जाते हैं। इनका भोजन किया जाय तो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च।
भुक्त्वाऽन्नं तस्य शुध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः॥९४॥
नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृतजन्मसु।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथञ्चन॥९५॥
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते।
मृते च सर्वबन्धूनामित्याह भृगवान्भृगुः॥९६॥

जो नित्य कर्म तथा नैमित्तिक कर्म नहीं करते उनका अन्न खाया जाय तो भी तीन रात्रि का उपवास करने से शुद्धि होती है। जन्म तथा मृत्यु के समय नित्य कर्म छोड़

सकते हैं परन्तु नैमित्तिक कर्म तो कभी भी त्याग करने योग्य नहीं है। पुत्र का जन्म हो तब पिता को वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए और मृत्यु के समय सभी सगे-संबंधियों को स्नान करना चाहिए, ऐसा भगवान् भृगु ने कहा है।

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रजैः।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थि संचयम्॥ ९७॥
ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या अशुद्धैस्तु सपिण्डकैः॥ ९८॥
नृपोद्बन्धनशस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च।
बाले प्रव्राजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा॥ ९९॥

मृत्यु को प्राप्त मनुष्य को गाँव से बाहर अग्निदाह करके गोत्र के मनुष्यों को जलदान करना चाहिए और प्रथम, चतुर्थ तथा सातवें दिन उनकी अस्थियाँ एकत्रित करनी चाहिए। उन्हें इकट्ठा करके ऊपर की ओर रखकर उसका स्पर्श किया जा सकता है। अशुद्ध भी सपिण्ड व्यक्ति को उसकी जल द्वारा क्रिया करनी चाहिए। विष खाकर, गले में फाँसी लगाकर, किसी हथियार से आत्महत्या करके और अग्नि में गिरकर जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है उसका तथा बालक, संन्यासी और दूर देश में गये हुए मनुष्य का मरण सुनकर तत्काल सूतक लगता हैं।

सद्यः शौचं भवेद्वीर तच्चाप्युक्तं चतुर्विधम्।
गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्वकाले न वै चरेत्॥ १००॥
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम्।
षड्रात्रं चैव वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम्॥ १०१॥
दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः।
स्वाःस्वाः काले क्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाक्रमम्॥
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः।
सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेत आवत्सरान्नरैः॥ १०३॥

यह सूतक चार प्रकार का है – गर्भस्राव का शौच भी उसी प्रकार कहा गया है। ब्राह्मणों को एक रात और एक दिन, क्षत्रिय को तीन दिन और वैश्यों को छः रात्रि और शूद्रों को बारह दिन का सूतक लगता है। ब्राह्मणों को दस दिन, क्षत्रिय को बारह दिन, वैश्यों को पंद्रह दिन और शूद्रों को एक मास बीतने के बाद अपने वर्ण के अनुसार सभी धार्मिक क्रिया करनी चाहिए। प्रेत को उद्देश्य करके एकोदिष्ट श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए और वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण करना चाहिए।

ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिर्दिनैः।
प्रीणनं तस्य कर्त्तव्यं यथाश्रुतिनिदर्शनात्॥ १०४॥

इसके पश्चात् प्रेत पितृरूप बनता है! तब उसके बाद उन्हें प्रसन्न रखने के लिए अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन वेद-विधि के अनुसार धार्मिक क्रिया करनी चाहिए।

पितुरर्थं समुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम्।
कुर्याद्येनास्य सुप्रीताः पितरो यान्ति राक्षस॥ १०५॥
यद्यदिष्टतमं किंचिद्यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥ १०६॥

पितरों की प्रसन्नता के लिये भूमि दान आदि करना चाहिए। हे राक्षस! पितरगण इसके द्वारा उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। यदि अक्षय सुख की प्राप्ति चाहते हों, तो उनकी जिस-जिस वस्तु पर प्रीति हो, उन वस्तुओं को उनके कल्याण के लिये गुणवान् व्यक्तियों को दान में देनी चाहिए।

अध्येतव्यास्त्रयो नित्यं वेदाश्च विदुषा सदा।
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि शक्तितः॥ १०७॥
यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस।
तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने॥ १०८॥
एवमाचरतो लोके पुरुषस्य गृहे सतः।
धर्मार्थकामसंप्राप्तिः परत्रेह च शोभना॥ १०९॥

विद्वान् पुरुषों को सदा तीनों वेदों का अध्ययन करना चाहिए। धर्म मार्ग में धन सम्पादन करके यथाशक्ति यज्ञ करने में उसे खर्च करना चाहिए। हे राक्षस! जिसे करने से स्वयं निन्दा का पात्र न हो और जिसे करने से अच्छे व्यक्तियों से छुपाना न पड़े वह काम शंका रहित होकर करना चाहिए। ऐसा आचरण करने वाले पुरुष को इस लोक में और परलोक में धर्म, अर्थ और काम की उत्तम प्राप्ति होती है।

एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उत्तमः।
वानप्रस्थाश्रमं धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम्॥ ११०॥

अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम्।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणम्॥ १११॥

इस प्रकार उत्तम गृहस्थाश्रम का वर्णन किया है। अब वानप्रस्थाश्रम के धर्मों को कहते हैं। यह ध्यानपूर्वक सुनो। बुद्धिमान् पुरुष अपने पुत्र की सन्तान-परम्परा और अपने शरीर की शिथिलता को देखकर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये वानप्रस्थाश्रम में गमन करें।

तत्रारण्योपभोगैश्च तपोभिश्चात्मदर्शनम्।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया:॥ ११२॥
होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम्।
वन्यस्नेहनिषेवित्वं वानप्रस्थविधिस्त्वयम्॥ ११३॥

वहाँ जंगल में रहकर अरण्य के उपभोग और तप के द्वारा आत्मदर्शन करे तथा भूमि पर सोना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और पितृ, देव तथा अतिथि की सेवा आदि करना चाहिए। हवन, त्रिकाल संध्या, जटा तथा वल्कल धारण करने चाहिए तथा वन्य स्नेह (इंगुदी आदि तेल) का सेवन करना चाहिए। यह वानप्रस्थ की विधि है।

सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता।
जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसते चिरम्॥ ११४॥
अनारम्भस्तथाऽऽहारो भिक्षान्नं नातिकोपिता।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम्॥ ११५॥
चतुर्थे चाश्रमे धर्मास्तेऽस्माभिः परिकीर्तिताः।
वर्णधर्मांस्तथा चान्यान्निशामय निशाचर॥ ११६॥

सभी प्रकार के संग का परित्याग, ब्रह्मचर्य, मानरहितता, जितेन्द्रियता रखनी चाहिए और एक घर में बहुत समय तक नहीं रहना चाहिए। किसी भी कार्य का आरम्भ नहीं करना चाहिए। भिक्षा माँग कर भोजन करना चाहिए। किसी पर क्रोध नहीं करना चाहिए। आत्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए तथा आत्मा को जानना चाहिए। हे निशाचर! इस प्रकार चतुर्थ संन्यास आश्रम के धर्मों को बताया गया है, अब वर्ण धर्म तथा अन्य धर्मों को भी सुनो।

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयोऽश्रमाः।
क्षत्रियस्यापि गदितो य आचारो द्विजस्य हि॥ ११७॥
वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः।
गार्हस्थमाश्रमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर॥ ११८॥
स्वान्स्वान्वर्णाश्रमप्रोक्तान्स्वधर्मान्नैव हापयेत्।
स्वधर्मक्षपणादन्यविधानाद्यो द्विजस्त्रयीम्।
संतापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥ ११९॥
कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥ १२०॥
तस्मात्स्वधर्मं नहि संत्यजेच्च
न हापयेच्चापि हि चात्मवंशम्।
यः संत्यजेच्चापि निजं हि धर्मं
तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु॥ १२१॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ— ये तीनों आश्रम जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिये हैं उसी प्रकार क्षत्रिय के लिये भी कहे गये हैं। वैश्यों के लिये गृहस्थ और वानप्रस्थ— ये दो आश्रम ही कहे गये हैं। अपने-अपने वर्णाश्रम के जो धर्म हैं उनका त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। अपने धर्म का त्याग करके जो ब्राह्मण अन्य धर्म का पालन करता है और उसी प्रकार जो वेदत्रयी को संतप्त करता है, उस पर सूर्य भगवान् कुपित होते हैं। हे राक्षस! कोपायमान हुए सूर्य भगवान् उस मनुष्य के कुल का नाश करते हैं और रोगों की वृद्धि करते हैं। इसलिये अपने धर्म का त्याग करके अपने वंश का नाश नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो अपने धर्म का त्याग करता है, उस पर भगवान् सूर्यनारायण कुपित होते हैं।

पुलस्त्य उवाच–

इत्येवमुक्तो मुनिना सुकेशी
प्रणम्य तान्ब्रह्मनिधीन्महर्षीन्।
जगाम चोत्पत्य पुरं स्वकीयं
मुहुर्मुहुर्धर्ममवेक्षमाणः॥ १२२॥

पुलस्त्य कहते हैं- इस प्रकार मुनियों से धर्म सुनकर उन ब्रह्मनिधि महर्षियों को प्रणाम करके बार-बार धर्म का विचार करते हुए सुकेशी अपने नगर में चला गया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सुकेश्यनुशासनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥अथ पञ्चदशोऽध्यायः॥

(सुकेशिचरित, सूर्यदेव का पतन)

पुलस्त्य उवाच–

ततः सुकेशिर्देवर्षे गत्वा स्वपुरमुत्तमम्।
सगाहूयाब्रवीत्सर्वान् राक्षसान्धार्मिकं वचः॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा– हे देवर्षि! इसके अनन्तर सुकेशी अपने श्रेष्ठ नगर में गया और वहाँ जाकर उसने समस्त राक्षसों को बुलाकर उनसे निम्न धार्मिक वचन कहे।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता॥ २॥
शुभा सत्या च मधुरा वाङ्नित्यं सत्क्रियारतिः।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकाः॥ ३॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रियों का संयम, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहंकारशून्यता, प्रिय, सत्य एवं मधुर वाणी का प्रयोग, नित्य सत्कार्यों में अनुराग तथा सदाचारपालन– ये सब धर्म परलोक में सुख देने वाले हैं।

इत्यूचुर्मुनयो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम्।
सोऽहमाज्ञापये सर्वान्क्रियतामविकल्पतः॥ ४॥

इस आद्य एवं पुरातन धर्म के बारे में मुझे ऋषियों ने बतलाया था। मेरी तुम सब को यह आज्ञा है कि तुम बिना विचार के इस धर्म का पालन करो।

पुलस्त्य उवाच–

ततः सुकेशिवचनात्सर्व एव निशाचराः।
त्रयोदशाङ्ग ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः॥ ५॥

पुलस्त्य ने कहा–सुकेशी के वचन को सुनकर सभी राक्षस प्रसन्न हुए। अब वे प्रसन्नता के साथ अहिंसा आदि त्रयोदश अंग वाले धर्म का आचरण करने लगे।

ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छंस्ते निशाचराः।
पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः॥ ६॥

धर्म के आचरण के कारण राक्षसगण सदाचारी हो गए पुत्रपौत्रादि से समन्वित होकर अत्यन्त उन्नति प्राप्त करने लगे।

ततस्तु तेजसा तेषां राक्षसानां महात्मनाम्।
गन्तुं नाशक्नुवन्सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः॥ ७॥

उन महात्मा राक्षसों के तेज से सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमा भी अपनी गति करने में असमर्थ हो गये।

ततस्त्रिभुवने ब्रह्मन्निशाचरपुरोऽभवत्।
दिवा चन्द्रस्य सदृशः क्षणदायां च सूर्यवत्॥ ८॥

हे भगवन्! इसके पश्चात् तीनों लोकों में राक्षसों की वह नगरी दिन में चन्द्रमा के समान और रात में सूर्य दिखाई देने लगी।

न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य ततोऽम्बरे।
शशाङ्कमिव तेजस्त्वादमन्यन्त पुरोत्तमम्॥ ९॥

आकाश में सूर्य की गति नहीं दिखाई दे रही थी। तेज के कारण वह उत्तम नगर आकाश में स्थित चन्द्रमा की तरह प्रतीत हो रहा था।

स्वं विकासं विमुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन्।
कमलाकरेषु कमला मित्रमित्यभिगम्य हि।
रात्रौ विकसिता ब्रह्मन्विभूतिं दातुमीप्सवः॥ १०॥

हे ब्रह्मन्! सरोवर के कमलों ने दिन को रात समझ लिया और विकसित होना बन्द कर दिया। रात के समय में सुकेशी के नगर को सूर्य समझ कर कमल विभूति प्रदान करने की इच्छा से विकसित होने लगे।

कौशिका रात्रिसमयं बुद्ध्वा निरगमन्किल।
तान्वायसास्तदा ज्ञात्वा दिवा निघ्नन्ति कौशिकान्॥ ११

उल्लू दिन को रात समझ कर बाहर निकल आये। जब कि कौओं ने इस समय को दिन जानकर उल्लुओं को मारना शुरु कर दिया।

स्नातकास्त्वापगास्वेव स्नानजप्यपरायणाः।
आकण्ठमग्नास्तिष्ठन्ति रात्रौ ज्ञात्वाऽथ वासरम्॥ १२॥

स्नातकगण रात को दिन जानकर जल में आकण्ठ मग्न होकर स्नान तथा जप करते हुए खड़े रहे।

न व्ययुज्यन्त चक्राश्च तदा वै पुरदर्शने।
मन्यमानास्तु दिवसमिदमुच्चैर्ब्रुवन्ति च॥ १३॥

उस समय नगर के दिखाई देने के कारण चकवों ने रात को दिन समझ लिया और वे एक दूसरे से अगल नहीं हुए। उन्होंने उच्च स्वर में कहना प्रारम्भ किया।

नूनं कान्ताविहीनेन केनचिच्चक्रपत्त्रिणा।
उत्सृष्टं जीवितं शून्ये फूत्कृत्य सरितस्तटे॥ १४॥

निसन्देह किसी चकवे ने पत्नी से वियुक्त होने के कारण नदी के तट पर एकान्त में फूत्कार करके प्राण त्याग दिये हैं।

ततोऽनु कृपयाऽऽविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः।
संतापयज्जगत्सर्वं नास्तमेति कथंचन॥ १५॥

इसी कारण दयार्द्रचित्त होकर सूर्य अपने तीक्ष्ण किरणों से जगत् को धूप प्रदान कर रहे हैं और किसी प्रकार अस्त नहीं हो रहे हैं।

अन्ये वदन्ति चक्राह्वो नूनं कश्चिन्मृतोऽभवत्।
तत्कान्तया तपस्तप्तं भर्तृशोकार्त्तया बत॥ १६॥

दूसरों ने कहा— निश्चित रूप से कोई चकवा मर गया है और पति के शोक के कारण उसकी पत्नी ने तप किया है।

आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः।
तेनासौ शशिनिर्जेता नास्तमेति रविर्ध्रुवम्॥ १७॥

इसमें सन्देह नहीं है कि उस चकवी की तपस्या से प्रसन्न होने के कारण चन्द्रजयी सूर्य अस्त नहीं हो रहे हैं।

यज्विनो होमशालासु सह ऋत्विग्भिरध्वरे।
प्रावर्त्तयन्त कर्माणि रात्रावपि महामुने॥ १८॥

हे महामुनि! रात्रि के समय में भी यज्ञशालाओं में ऋत्विजों के साथ यजमान यज्ञ कर्म कर रहे हैं।

महाभागवताः पूजां विष्णोः कुर्वन्ति भक्तितः।
रवौ शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च॥ १९॥

विष्णु के भक्त भक्ति के साथ विष्णु की अर्चना कर रहे हैं। दूसरे लोग सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिव की उपासना में प्रवृत्त हो रहे हैं।

कामिनश्चाप्यमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम्।
यदियं रजनी रम्या कृता सततकौमुदी॥ २०॥

कामियों ने सोचा कि चन्द्रमा ने चाँदनी से भरी हुई रमणीय रात्रि की रचना करके एक सुन्दर कार्य किया है।

अन्येऽब्रुवँल्लोकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद्वशी।
निर्व्याजेन महागन्धैरर्चितः कुसुमैः शुभैः॥ २१॥

सह लक्ष्म्या महायोगी नभस्यादिचतुर्ष्वपि।
अशून्यशयना नाम द्वितीया सर्वकामदा॥ २२॥

तेनासौ भगवान्प्रीतः प्रादाच्छयनमुत्तमम्।
अशून्यं च महाभोगैरनस्तमितशेखरम्॥ २३॥

दूसरे लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि हम लोगों ने निश्चल भाव के साथ श्रावण आदि चार मासों में सुगन्धित एवं पवित्र पुष्पों के द्वारा लक्ष्मी सहित महायोगी चक्रधारी भगवान् विष्णु की अर्चना की थी। इसी अवधि में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली अशून्यशयना द्वादशी तिथि होती है। भगवान् विष्णु ने हमारी उस अर्चना से प्रसन्न होकर अशून्य एवं महाभोगों से पूर्ण यह उत्तम शयन प्रदान किया है।

अन्येऽब्रुवन्ध्रुवं देव्या रोहिण्या शशिनः क्षयम्।
दृष्ट्वा तप्तं तपो घोरं रुद्राराधनकाम्यया॥ २४॥

पुण्यायामक्षयाष्टम्यां वेदोक्तविधिना स्वयम्।
तुष्टेन शम्भुना दत्तो वरश्चास्यै यदृच्छया॥ २५॥

दूसरों ने कहा कि चन्द्रमा का क्षय देखकर देवी मोहिनी ने रुद्र की आराधना करने की इच्छा से युक्त होकर अक्षयाष्टमी की पावन तिथि में वेदविहीन विधि से कठिन तपस्या की थी। उस तपस्या से प्रसन्न होकर ही भगवान् शिव ने उस देवी को इच्छानुसार वर प्रदान किया है।

अन्येऽब्रुवंश्चन्द्रमसा ध्रुवमाराधितो हरिः।
व्रतेनेह त्वखण्डेन तेनाखण्डः शशी दिवि॥ २६॥

दूसरों ने कहा कि वस्तुतः चन्द्रमा ने अखण्ड व्रत द्वारा भगवान् हरि की आराधना की थी। इसी कारण आकाश में चन्द्रमा अखण्ड रूप से स्थित है।

अन्येऽब्रुवञ्छशाङ्केन ध्रुवं रक्षा कृताऽऽत्मनः।
पदद्वयं समभ्यर्च्य विष्णोरमिततेजसः॥ २७॥

दूसरों ने कहा की वस्तुतः चन्द्रमा ने असीम तेज से सम्पन्न भगवान् विष्णु के चरणकमल की आराधना करके अपनी रक्षा की है।

तेनासौ दीप्तिमांश्चन्द्रः परिभूय दिवाकरम्।
अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यवत्॥ २८॥

इसी कारण दीप्तिसम्पन्न चन्द्रमा सूर्य को पराजित करके हमें अन्न प्रदान करते हुए आकाश में सूर्य के समान चमक रहे हैं।

लक्ष्यते कारणै रन्यैर्बहुभिः सत्यमेव हि।
शशाङ्कनिर्जितः सूर्यो न विभाति यथा पुरा॥ २९॥

अन्य भी अनेक प्रकार के कारणों से यह प्रतीत होता है कि चन्द्रमा के द्वारा परास्त होने के कारण सूर्य पहले जैसे नहीं दिखाई दे रहे हैं।

यथामी कमलाः श्लक्ष्णा रणद्भृङ्गगणाकुलाः।
विकचाः प्रतिभासन्ते जातः सूर्योदयो ध्रुवम्॥ ३०॥

जिस पर भ्रमर गुञ्जन कर रहे हैं, वे सुन्दर कमल विकसित दिखाई दे रहे हैं। अतः यह निश्चित है कि सूर्योदय हुआ है।

यथा चामी विभासन्ति विकचाः कुमुदाकराः।
अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान्॥ ३१॥

और जिस प्रकार कुमुदसमूह विकसित है, इससे यह विदित होता है कि दीप्तिमान् चन्द्रमा उदित है।

एवं संभाषतां तत्र सूर्यो वाक्यानि नारद।
अमन्यत किमेतद्धि लोको वक्ति शुभाशुभम्॥ ३२॥

हे नारद! इस तरह से बातें करते हुए लोगों के वाक्यों को सुनकर सूर्य ने सोचा कि ये लोग इस तरह शुभाशुभ वचन क्यों बोल रहे हैं।

एवं संचिन्त्य भगवान्दध्यौ ध्यानं दिवाकरः।
आसमन्ताज्जगद्ग्रस्तं त्रैलोक्यं रजनीचरैः॥ ३३॥

ऐसा सोचते हुए भगवान् सूर्य ध्यानस्थ हो गए। उन्होंने देखा कि सारा त्रिभुवन चारों ओर से राक्षसों से त्रस्त हो गया है।

ततस्तु भगवाञ्ज्ञात्वा तेजसोऽप्यसहिष्णुताम्।
निशाचरस्य वृद्धिं तामचिन्तयत योगवित्॥ ३४॥
ततोऽज्ञासीच्च तान्सर्वान्सदाचाररताञ्छुचीन्।
देवब्राह्मणपूजासु संसक्तान्धर्मसंयुतान्॥ ३५॥

योगी भगवान् भास्कर ने राक्षसों की वृद्धि और तेज को असहनीय पाया। वे विचार मग्न हो गए। विचारोपरान्त उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सभी राक्षस सदाचारयुक्त, पवित्र, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा में संलग्न तथा धर्मपरायण हैं।

ततस्तु रक्षःक्षयकृत्तिमिरद्विपकेसरी।
महांशुनखरः सूर्यस्तद्विघातमचिन्तयत्॥ ३६॥

इसके पश्चात् राक्षसों का क्षय करने वाले तथा अन्धकाररूपी हाथी के लिए किरणरूपी तीक्ष्ण नखों वाले सिंह के सदृश सूर्य उन राक्षसों के विनाश के बारे में विचार करने लगे।

ज्ञातवांश्च ततश्छिद्रं राक्षसानां दिवस्पतिः।
स्वधर्मविच्युतिर्नाम सर्वधर्मविघातकृत्॥ ३७॥

तदनन्तर सूर्य को राक्षसों के स्वधर्म से पतनरूपी छिद्र का ज्ञान हुआ। क्योंकि स्वधर्मच्युत होना समस्त धर्मों का विनाशक है।

ततः क्रोधाभिभूतेन भानुना रिपुभेदिभिः।
तद्वीतं राक्षसपुरं तन्नष्टं च यथेच्छया॥ ३८॥

इसके उपरान्त क्रोधभरित सूर्य ने अपनी शत्रुभेदी किरणों के द्वारा उस राक्षसकुमार की ओर अच्छी तरह से देखा।

स भानुना तदा दृष्टः क्रोधाध्मातेन चक्षुषा।
निपपाताम्बराद्भ्रष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः॥ ३९॥

सूर्य द्वारा क्रोधित दृष्टि से देखा गया वह राक्षसकुमार विनष्टपुण्य ग्रह के समान आकाश से गिर पड़ा।

पतमानं समालोक्य पुरं शालकटङ्कटः।
नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरुदीरयत्॥ ४०॥

अपने नगर को गिरते हुए देखकर शालकंटकट ने ऊँचे स्वर में 'नमो भवाय शर्वाय' का पाठ करना शुरु कर दिया।

तदाक्रन्दितमाकर्ण्य चारणा गगनेचराः।
हाहेति चुक्रुशुः सर्वे हरभक्तः पतत्यसौ॥ ४१॥

शालकंटकट के उस क्रन्दन को सुनकर समस्त गगनचारी चारणगण यह कहते हुये चिल्लाने लगे- हाय! हाय! यह हरभक्त गिर रहा है।

तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान्सर्वगोऽव्ययः।
श्रुत्वा संचिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि॥ ४२॥

चारणों की चिल्लाहट को सुनकर सर्वव्यापी अनश्वर भगवान् शिव ने सोचा कि इसे कौन पृथ्वी पर गिरा रहा है।

ज्ञातवान्देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्।
पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः॥४३॥

शिव ने यह जान लिया कि राक्षसों का नगर सहस्रकिरण सर्य के द्वारा गिराया जा रहा है। यह जानकर भगवान् त्रिलोचन क्रुद्ध हो गये।

क्रुद्धस्तु भगवाञ्छंभुर्भानुमन्तमपश्यत।
दृष्टमात्रस्त्रिणेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात्॥४४॥

क्रुद्ध त्रिलोचन ने भगवान् सूर्य की ओर दृष्टिपात किया। त्रिनेत्र के देखते ही सूर्य आकाश से गिर पड़े।

गगनात्स परिभ्रष्टः पथि वायुनिषेविते।
यदृच्छया निपतितो यन्त्रमुक्तो यथोपलः॥४५॥

गगनच्युत सूर्य वायुनिषेवित मार्ग में यन्त्रमुक्त पत्थर के समान गिरने लगे।

ततो वायुपथान्मुक्तः किंशुकोज्ज्वलविग्रहः।
निपपातान्तरिक्षात्स वृतः किन्नरचारणैः॥४६॥

वायुमार्ग से मुक्त होने के उपरान्त किंशुकसदृश उज्ज्वल शरीर वाले सूर्य किन्नर तथा चारणों से आवृत होकर अन्तरिक्ष से गिरने लगे।

चरणैर्वेष्टितो भानुः प्रविभात्यम्बरात्पतन्।
अर्द्धपक्वं यथा तालात्फलं कपिभिरावृतम्॥४७॥

आकाश से नीचे गिरते समय चारणों से आवृत सूर्य तालवृक्ष से च्युत एवं कपियों से आवृत अर्धपक्व फल के सदृश प्रतीत हो रहे थे।

ततस्तु ऋषयोऽभ्येत्य प्रत्यूचुर्भानुमालिनम्।
निपतस्व हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥४८॥

मुनियों ने भगवान् सूर्य के समीप आकर उनसे कहा- ''यदि कल्याण की कामना करते हो तो आप हरि के क्षेत्र में गिरो।''

ततोऽब्रवीत्पतन्नेव विवस्वांस्तांस्तपोधनान्।
किं तत्क्षेत्रं हरेः पुण्यं वदध्वं शीघ्रमेव मे॥४९॥

सूर्य ने गिरते हुये उन तपस्वियों से पूछा-मुझे शीघ्र बतलाएँ हरि का वह पावन क्षेत्र कहाँ है?

तमूचुर्मुनयः सूर्यं शृणु क्षेत्रं महाफलम्।
साम्प्रतं वासुदेवस्य भावितं तच्छंकरस्य च॥५०॥

ऋषियों ने सूर्य से कहा— उस महाफलदायक क्षेत्र का विवरण सुनो! इस समय वह वासुदेव का क्षेत्र है। परन्तु भविष्य में वह शङ्कर का क्षेत्र होने वाला है।

योगशायिनमारभ्य यावत्केशवदर्शनम्।
एतत्क्षेत्रं हरेः पुण्यं नाम्ना वाराणसी पुरी॥५१॥

योगशायी से लेकर केशवदर्शन के बीच का पावन क्षेत्र हरि का क्षेत्र है। इस क्षेत्र का नाम वाराणसी है।

तच्छुत्वा भगवान्भानुर्भवनेत्राभितापितः।
वरणायास्तथैवास्यास्त्वन्तरे निपपात ह॥५२॥

शिव की नेत्राग्नि से तप्त भगवान् सूर्य इसे सुनकर वरुणा एवं असि के मध्य गिर पड़े।

ततः प्रदह्यति तनौ निमज्ज्यास्यां लुलद्रविः।
वरणायां समभ्येत्य न्यमज्जत यथेच्छया॥५३॥

शरीर के निरन्तर जलते रहने के कारण व्याकुल हुए सूर्य ने असि में निमज्जन करने के उपरान्त वरुणा में जाकर यथेष्ट निमज्जन किया।

भूयोऽसिं वरणां भूयो भूयोऽपि वरणामसिम्।
लुलंस्त्रिणेत्रवह्न्यार्त्तो भ्रमतेऽलातचक्रवत्॥५४॥

त्रिनेत्र की अग्नि से आर्त होकर सूर्यदेव अलातचक्र के समान बार-बार इस तरह असि और वरुणा की ओर दौड़ने लगे।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मनृषयो यक्षराक्षसाः।
नागा विद्याधरश्चापि पक्षिणोऽप्सरसस्तथा॥५५॥

यावन्तो भास्कररथे भूतप्रेतादयः स्थिताः।
तावन्तो ब्रह्मसदनं गता वेदयितुं मुने॥५६॥

हे ब्रह्मन्! हे मुनि! इस बीच ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, पक्षी, अप्सराएँ तथा भास्कर के रथ में स्थित समस्त भूतप्रेतादि यह समाचार देने के लिये ब्रह्मा के पास गये।

ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्द्धं समभ्ययात्।
रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात्॥५७॥

तत्पश्चात् देवताओं के स्वामी ब्रह्मा देवताओं को साथ

लेकर सूर्य के निमित्त शङ्कर के रम्य आवास मन्दर पर्वत पर गये।

गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शङ्करं शूलपाणिनम्।
प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयन्॥ ५८॥

मन्दर पर्वत पर जाकर ब्रह्मा ने शूलपाणि भगवान् शकर के दर्शन किये। भास्कर के लिये ब्रह्मा ने उन्हें प्रसन्न किया। तदनन्तर ब्रह्मा उन्हें वाराणसी ले गये।

ततो दिवाकरं भूयः पाणिनाऽऽदाय शङ्करः।
कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत्पुनः॥ ५९॥

तदुपरान्त शङ्कर ने दिवाकर को हाथ में उठाया ओर उन्हें रथ पर स्थापित कर दिया। इससे पहले शङ्कर ने सूर्य का नाम 'लोल' रखा।

आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुकेशिनम्।
सबान्धवं सनगरं पुनरारोपयद्दिवि॥ ६०॥

दिवाकर सूर्य के स्वरथ में स्थापित हो जाने पर ब्रह्मा सुकेशी के समीप गये। उन्होंने सुकेशी को उसके बान्धवों तथा नगर के सहित पुनः आकाश में आरोपित कर दिया।

समारोप्य सुकेशिं च परिष्वज्य च शङ्करः।
प्रणम्य केशवं देवं वैराजं स्वगृहं गतः॥ ६१॥

सुकेशी को आकाश में आरोपित करने के पश्चात् ब्रह्मा ने शङ्कर का आलिङ्गन किया। आलिङ्गन के अनन्तर केशवदेव को प्रणाम करके वे वैराजनामक अपने लोक में चले गये।

एवं पुरा नारद भास्करेण
पुरं सुकेशेर्भुवि सन्निपातितम्।
दिवाकरो भूमितले भवेन
क्षिप्तस्तु दृष्ट्वाऽनलसंप्रदग्धः॥ ६२॥

हे नारद! इस तरह पुराकाल में सूर्य ने सुकेशी के नगर को पृथ्वी पर गिरा दिया था; तथा महादेव ने सूर्य को अपने नेत्रानल से दग्ध न करके पृथ्वीतल पर गिरा दिया था।

आरोपितो भूमितलाद्भवेन
भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय।
स्वयंभुवा चापि निशाचरेन्द्र-
स्त्वारोपितः खे सपुरः सबन्धुः॥ ६३॥

महादेव ने सूर्य को फिर से प्रतिभासित होने के लिये पृथ्वीतल से उठाकर आकाश में स्थापित कर दिया। ब्रह्मा ने राक्षसराज को उसके पुर एवं बन्धुओं सहित आकाश में आरोपित कर दिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सुकेशिचरिते
लोलार्कजननं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥अथ षोडशोऽध्यायः॥

(अशून्य-शयन व्रत)

नारद उवाच–

यानेतान्भगवान् प्राह कामिभिः शशिनं प्रति।
आराधनाय देवाभ्यां हरीशाभ्यां वदस्व तान्॥ १॥

नारद ने कहा— आपने चन्द्रमा के विषय में कामिजनों द्वारा श्रीहरि और शङ्कर की आराधना के निमित्त किये जाने वाले जिन व्रतों का उल्लेख किया, कृपया उनका वर्णन करें।

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान्व्रतान्पुण्यान्कलिप्रिय।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा— हे कलिप्रिय! महादेव शङ्कर एवं धीमान् केशव की आराधना हेतु कामिजनों द्वारा कहे गये पवित्र व्रतों का वर्णन सुनो।

यदा त्वाषाढी चायाति व्रजते चोत्तरायणात्।
तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः॥ ३॥

जब आषाढी पूर्णिमा आ रही होती है और जब उत्तरायण व्यतीत हो चुका होता है, उस समय लक्ष्मीपति देवेश शेषशय्या पर शयन करते हैं।

प्रतिसुप्ते विभौ तस्मिन्देवगन्धर्वगुह्यकाः।
देवानां मातरश्चापि प्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात्॥ ४॥

उन विभु परमेश्वर के सो जाने पर देव, गन्धर्व, गुह्यक तथा देवमाताएं भी यथाक्रम सो जाया करती हैं।

नारद उवाच–

कथयस्व सुरादीनां शयने विधिमुत्तमम्।
सर्वमनुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्दनम्॥ ५॥

नारद बोले— जनार्दन से लेकर देवताओं आदि के शयन की समग्र उत्तम विधियों के बारे में मुझे बतलाएँ।

पुलस्त्य उवाच–

मिथुनाभिगते सूर्ये शुक्लपक्षे तपोधनं।
एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत्॥ ६॥

पुलस्त्य ने कहा— हे तपोधन! आषाढ़ के शुक्लपक्ष में जब सूर्य मिथुन राशि में चला जाता है, उस समय एकादशी की तिथि को जगत् के स्वामी प्रभु जनार्दन शयन किया करते हैं।

शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशवम्।
कृत्वा पवित्रकं चैव सम्यक्संपूज्य वै द्विजान्॥७॥
अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयत: शुचि:।
लब्ध्वा पीताम्बरधर: स्वस्थो निद्रां समानयन्॥८॥

शेषनाग के शरीर को शयनार्थ अपना पलङ्ग बनाकर, यज्ञोपवीत धारण करके, श्रीकेशव तथा ब्राह्मणों की पूजा करने के उपरान्त द्वादशी तिथि में ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर संयम तथा पीताम्बर से युक्त हुये उन जनार्दन को सुखपूर्वक निद्रा का आश्रय ग्रहण करायें।

त्रयोदश्यां तत: काम: स्वपते शयने शुभे।
कदम्बानां सुगन्धानां कुसुमै: परिकल्पिते॥ ९॥

इसके पश्चात् त्रयोदशी तिथि को सुगन्धित कदम्बपुष्पों से निर्मित पवित्र शय्या पर कामदेव शयन करते हैं।

चतुर्दश्यां ततो यक्षा: स्वपन्ति सुखशीतले।
सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके॥ १०॥

तदनन्तर चतुर्दशी तिथि में सुखप्रद उपधान वाली स्वर्णनिर्मित एवं सुशीतल शय्या पर यक्षगण शयन करते हैं।

पौर्णमास्यामुमानाथ: स्वपते चर्मसंस्तरे।
वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रन्थ्यान्यचर्मणा॥ ११॥

पौर्णमासी तिथि में उमापति शङ्कर अपनी जटाओं को दूसरे चर्म द्वारा बाँधकर व्याघ्रचर्म से निर्मित शय्या पर शयन करते हैं।

ततो दिवाकरो राशिं संप्रयाति च कर्कटम्।
ततोऽमराणां रजनी भवते दक्षिणायनम्॥ १२॥

इसके पश्चात् सूर्य कर्कट राशि में चले जाते हैं। इसके साथ ही देवताओं के लिये रात्रिरूप दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है।

ब्रह्मा प्रतिपदि तथा नीलोत्पलमयेऽनघ।
तल्पे स्वपिति लोकानां दर्शयन्मार्गमुत्तमम्॥ १३॥

हे पापहीन! ब्रह्मा मनुष्यों को उत्तम मार्ग दिखलाते हुये प्रतिपदा तिथि में नीलकमल की शय्या पर शयन करते हैं।

विश्वकर्मा द्वितीयायां तृतीयायां गिरे: सुता।
विनायकश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामपि धर्मराट्॥ १४॥
षष्ठ्यां स्कन्द: प्रस्वपिति सप्तम्यां भगवान्रवि:।
कात्यायनी तथाष्टम्यां नवम्यां कमलालया॥ १५॥
दशम्यां भुजगेन्द्राश्च स्वपन्ते वायुभोजना:।
एकादश्यां तु कृष्णायां साध्या ब्रह्मन्स्वपन्ति च॥ १६॥

हे ब्रह्मन्! विश्वकर्मा द्वितीया तिथि को, पर्वतनन्दिनी तृतीया तिथि को, गणेश चतुर्थी तिथि को, धर्मराज पञ्चमी तिथि को, स्कन्द षष्ठी तिथि को, भगवान् सूर्य सप्तमी तिथि को, कात्यायनी अष्टमी तिथि को, लक्ष्मी नवमी तिथि को, वायुभक्षी सर्प दशमी तिथि को तथा साध्यगण कृष्ण एकादशी तिथि को सोते हैं।

एष क्रमस्ते गदितो नभादौ स्वपने मुने।
स्वपत्सु तत्र देवेषु प्रावृट्काल: समाययौ॥ १७॥

हे मुनि! हमने आपको देवताओं के श्रावण आदि में सोने का क्रम बतलाया। देवताओं के सो जाने पर वर्षाकाल आया करता है।

कङ्का: समं बलाकाभिरारोहन्ति नगोत्तमान्।
वायसाश्चापि कुर्वन्ति नीडानि ऋषिपुङ्गव॥ १८॥
वायस्यश्च स्वपन्त्येते ऋतौ गर्भभरालसा:।

हे श्रेष्ठ ऋषि! तब बलाकाओं के साथ कङ्क ऊँचे पर्वत पर चढ़ जाते हैं। कौए घोंसलों का निर्माण प्रारम्भ कर देते हैं। इस ऋतु में मादा कौए गर्भभार से अलसाते हुये सो जाता करती हैं।

यस्यां तिथ्यां प्रस्वपिति विश्वकर्मा प्रजापति:॥ १९॥
द्वितीया सा शुभा पुण्या सुपुण्या शयनोदिता।

प्रजापति विश्वकर्मा जिस तिथि में सोते हैं उसे द्वितीया तिथि कहते हैं। इस तिथि को अशून्यशयना भी कहते हैं। वह तिथि कल्याणप्रदा एवं पवित्र होती है।

तस्यां तिथावर्च्य हरिं श्रीवत्साङ्कं चतुर्भुजम्॥ २०॥
पर्यङ्कस्थं समं लक्ष्म्या गन्धपुष्पादिभिर्मुने।
ततो देवाय शय्यायां फलानि प्रक्षिपेत्क्रमात्ः।
सुरभीणि निवेद्येत्थं विज्ञाप्यो मधुसूदनः॥ २१॥

हे मुनि! उस तिथि में लक्ष्मी के साथ पर्यङ्क में स्थित श्रीवत्साङ्क एवं चार भुजाओं वाले हरि की गन्ध तथा पुष्प आदियों से पूजा करके उन देवों के लिये शय्या पर क्रमशः फल तथा सुगन्ध अर्पित करने के पश्चात् मधूसूदन से निम्न प्रकार से प्रार्थना करनी चाहिये-

यथा हि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं
त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास।
तथा त्वशून्यं शयनं सदैव
अस्माकमेवेह तव प्रसादात्॥ २२॥

हे त्रिविक्रम! हे अनन्त! हे जगन्निवास! जिस प्रकार आप लक्ष्मी से कभी पृथक् नहीं होते, वैसे ही हम आपकी कृपा से अपनी स्त्रियों से कभी शून्य न हों।

यथा त्वशून्यं तव देव तुल्यं
समं हि लक्ष्म्या वरदाच्युनेश।
सत्येन तेनामितवीर्य्य विष्णो
गार्हस्थ्यनाशो न ममास्तु देव॥ २३॥

हे देव! हे वरप्रद! हे अच्युत! हे ईश! हे अमितवीर्य! हे विष्णु! आपकी शय्या कभी भी लक्ष्मी से शून्य नहीं होती। इस सत्य के प्रभाव से हमारी गृहस्थता कभी नष्ट न हो।

इत्युचार्य प्रणम्येशं प्रसाद्य च पुनः पुनः।
नक्तं भुञ्जीत देवर्षे तैलक्षारविवर्जितम्॥ २४॥

हे देवर्षि! इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् उन ईश को बार-बार प्रणामों द्वारा प्रसन्न करके रात्रि में तेल एवं नमक से शून्य भोजन करें।

द्वितीयेऽह्नि द्विजाग्र्याय फलं दद्याद्विचक्षणः।
लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युचार्य निवेदयेत्॥ २५॥

अगले दिन बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह 'लक्ष्मीधर मुझ पर प्रसन्न हो।' यह कहते हुये श्रेष्ठ ब्राह्मण को फल का दान करें।

अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं चरेत्।
यावद् वृश्चिकराशिस्थः प्रतिभाति दिवाकरः॥ २६॥

इस विधि के साथ चातुर्मास्य व्रत का पालन तब तक करना चाहिये जब तक सूर्य वृश्चिक राशि में रहते हैं।

ततो विबुध्यन्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मुने।
तुलास्थे तु हरिः पूर्वं कामः पश्चाद्विबुध्यते॥ २७॥

हे मुनि! इसके पश्चात् देवगण क्रमशः जागते हैं। जब सूर्य तुला राशि में स्थित होते हैं तब हरि प्रबुद्ध हो जाते हैं। इसके बाद काम जगा करते हैं।

तत्र दानं द्वितीयायां मूर्तिर्लक्ष्मीधरस्य तु।
सशय्यासस्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः॥ २८॥

तदुपरान्त द्वितीया तिथि को अपनी सामर्थ्य के अनुसार आस्तरण से युक्त शय्या के साथ लक्ष्मीधर की मूर्ति का दान करें।

एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तव महामुने।
यस्मिंश्चीर्णे वियोगस्तु न भवेदिह कस्यचित्॥ २९॥

हे महामुनि! इस तरह मैंने आपको प्रथम व्रत के विषय में बतलाया। इसका आचरण करने से इस संसार में किसी को वियोग नहीं सहना पड़ता।

नभस्ये मासि च तथा या सा कृष्णाष्टमी शुभा।
युक्ता मृगशिरेणैव सा तु कालाष्टमी स्मृता॥ ३०॥

इसी प्रकार भाद्रमास मे मृगशिरा नक्षत्र से युक्त जो पवित्र कृष्णाष्टमी होती है, उसे कालाष्टमी माना गया है।

तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु तिथौ स्वपिति शङ्करः।
वसते सन्निधाने तु तत्र पूजाऽक्षया स्मृता॥ ३१॥

उस तिथि में शिव समस्त लिंगों में सोते हैं तथा उसके सन्निधान में निवास करते हैं। इस अवसर पर की गई शङ्कर की पूजा अक्षय मानी जाती है।

तत्र स्नायीत वै विद्वान्गोमूत्रेण जलेन च।
स्नातः संपूजयेत्पुष्पैर्धत्तूरस्य त्रिलोचनम्॥ ३२॥

विद्वान् मनुष्य को उस तिथि में गोमूत्र तथा जल से

स्नान करना चाहिये। स्नान के पश्चात् धत्तूर पुष्पों से शिव की अर्चना करनी चाहिये।

धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्पिषी।
प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्चार्य च दक्षिणाम्॥ ३३॥
विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तमम्।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तदनन्तर गोंद का धूप, मधु तथा घृत का नैवेद्य अर्पित करें और 'विरूपाक्ष मुझ पर प्रसन्न हों' यह कहते हुये ब्राह्मण को दक्षिणा एवं स्वर्ण के साथ नैवेद्य अर्पित करें।

तद्वदाश्वयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः॥ ३४॥
नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः।
धूपयेत्सर्जनिर्यासैर्नैवेद्यं मधुमोदकैः॥ ३५॥

इसी तरह आश्विन मास में नवमी तिथि के दिन उपवास रखकर जितेन्द्रिय होकर गोबर से स्नान करे और तदनन्तर कमलों से पूजा करे। साथ ही सर्ज वृक्ष के निर्यास का धूप, मधु एवं मोदक का नैवेद्य अर्पित करें।

कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत्।
प्रीयतां मे हिरण्याक्षो दक्षिणा सतिला स्मृता॥ ३६॥

अष्टमी के दिन उपवास रखकर नवमी तिथि को स्नान करने के पश्चात् 'हिरण्याक्ष मुझ पर प्रसन्न हों' यह बोलते हुये तिलमिश्रित दक्षिणा प्रदान करें।

कार्त्तिके पयसा स्नानं करवीरेण चार्चनम्।
धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्यं मधुपायसम्॥ ३७॥

कार्तिक मास में दूध से स्नान करें तथा करवीर के पुष्प से पूजा करें। उसके पश्चात् श्रीवास वृक्ष की गोंद का धूप एवं मधु व पायस का नैवेद्य अर्पित करें।

सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे।
प्रीयतां भगवान्स्थाणुरिति वाच्यमनिष्ठुरम्॥ ३८॥

तदुपरान्त नम्र होकर 'भगवान् स्थाणु मुझ पर प्रसन्न हों' यह बोलते हुये ब्राह्मण को नैवेद्य के साथ रजत का दान करें।

कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत्।
मासि मार्गशिरे स्नानं दध्नार्चा मद्रया स्मृता॥ ३९॥

मार्गशीर्ष मास में अष्टमी तिथि को उपवास रखकर नवमी के दिन दधि से स्नान करें। इस अवसर पर भद्रनामक औषधि द्वारा पूजा का विधान किया गया है।

धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुनौदनम्।
सन्निवेद्या रक्तशालिर्दक्षिणा परिकीर्तिता॥ ४०॥
नमोऽस्तु प्रीयतां शर्व इति वाच्यं च पण्डितैः।

बुद्धिमान् को चाहिये कि वह इस अवसर पर श्रीवृक्ष के निर्यास का धूप, मधु और ओदन का नैवेद्य अर्पित करके 'शर्व को प्रमाण है; वे मुझ पर प्रसन हों' यह बोलते हुये रक्त शालि (धान्य) की दक्षिणा प्रदान करें।

पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तगरैः शुभैः॥ ४१॥
धूपो मधुकनिर्यासो नैवेद्यं मधु शष्कुलीः।
समुद्गा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः॥ ४२॥
वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्त्तयेत्।

पौषमास में घृत का स्नान तथा पवित्र नगर पुष्पों से पूजा करे। इसके अनन्तर महुए के वृक्ष की गोंद से धूप देवे और मधु व शुष्कुली का नैवेद्य अर्पण करे। साथ ही 'हे देवेश! हे त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है' यह कहते हुये जगद्गुरु को प्रसन्न करने के लिये मूंग सहित दक्षिणा प्रदान करे।

माघे कुशोदकस्नानं मृगदेन चार्चनम्॥ ४३॥
धूपः कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलोदनम्।
पयोभक्तं तु नैवेद्यं सरुक्मं प्रतिपादयेत्॥ ४४॥

माघ मास में कुशोदक से स्नान एवं कस्तूरी से पूजा करें। इसके पश्चात् कदम्ब वृक्ष के निर्यास का धूप देवे और तिल एवं ओदन का नैवेद्य अर्पित करे। इसके पश्चात् 'महादेव उमापति मझ पर प्रसन्न हों' यह कहते हुए स्वर्ण के साथ दुग्ध एवं ओदन की दक्षिणा प्रदान करे।

प्रीयतां मे महादेव उमापतिरितीरयेत्।
एवमेव समुद्दिष्टं षड्भिर्मासैस्तु पारणम्।
पारणान्ते त्रिणेत्रस्य स्नपनं कारयेत्क्रमात्॥ ४५॥

इस तरह छः मासों के पश्चात् प्रथम पारण का विधान किया गया है। पारण का जब अन्त हो, तब त्रिलोचन भगवान् महादेव को क्रम से स्नान कराना चाहिये।

गोरोचनायाः सहिता गुडेन
देवं समालभ्य च पूजयेत।

प्रीयस्व दीनोऽस्मि भवांस्त्वमीश
मच्छोकनाशं प्रकुरुष्व योग्यम्॥४६॥

गोरोचन[4] से युक्त गुड़ से शिव की प्रतिमा को अनुलेपित करके उसकी पूजा करें और उनसे निम्न प्रार्थना करें-'हे ईश्वर मैं दीन आपकी शरण में हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न हों! कृपया मेरे शोक को अच्छी तरह से समाप्त कर दीजिए।

ततस्तु फाल्गुने मासि कृष्णाष्टम्यां यतव्रतः।
उपवासं समुदितं कर्त्तव्यं द्विजसत्तम॥४७॥
द्वितीयेऽह्नि ततः स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत्।
पूजयेत्कुन्दकुसुमैर्धूपयेच्चन्दनं त्वपि॥४८॥
नैवेद्यं सघृतं दद्यात्ताम्रपात्रे गुडोदनम्।
दक्षिणां च द्विजातिभ्यो नैवेद्यैः सहितां मुने॥४९॥
वासोयुगं प्रीणयेच्च रुद्रमुच्चार्य नामतः।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इसके बाद फाल्गुनी मास की कृष्णाष्टमी के दिन उपवास धारण करें। अगले दिन पञ्चगव्य से स्नानविधि कराएँ तथा कुन्दपुष्प से पूजा करके चन्दन का धूप एवं ताम्रपत्र में घृत के साथ गुडोदन का नैवेद्य प्रदान करें। उसके उपरान्त 'रुद्र' शब्द का उच्चारण करें और नैवेद्य के साथ ब्राह्मणों को दक्षिणा तथा दो वस्त्रों का दान करके महादेव शङ्कर को प्रसन्न करें।

चैत्रे चौदुम्बरजलैः स्नानं मन्दारकार्चनम्॥५०॥
गुग्गुलुं महिषाख्यं च घृताक्तं धूपयेद् बुधः।
समोदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत्॥५१॥
दक्षिणा च सनैवेद्या मृगाजिनमुदाहृतम्।
नाट्येश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चार्य नारद॥५२॥
प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः।

चैत्रमास में गूलर के जल से स्नान करावे और मन्दार पुष्पों से पूजा करें। तदनन्तर बुद्धिमान्-नर को चाहिये कि महिष नामक घृतमिश्रित गुग्गुलु से धूप देकर मोदक के साथ घृत अर्पित करे और 'हे नाट्येश! आपको नमस्कार है' यह कहते हुये नैवेद्ययुक्त मृगचर्म की दक्षिणा देवे। इस प्रकार श्रद्धासमन्वित होकर देवाधिपति को प्रसन्न करें।

वैशाखे स्नानमुदितं सुगन्धकुसुमाम्भसा॥५३॥
पूजनं शङ्करस्योक्तं चूतमञ्जरिभिर्विभोः।
धूपः सर्ज्जस्य निर्यासो नैवेद्यं सफलं घृतम्॥५४॥
नाम जंप्यमपीशस्य कालघ्नेति विपश्चिता।
जलकुम्भान्सनैवेद्यान्ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥५५॥
सोपवीतान् सहान्नाद्यांस्तच्चित्तैस्तत्परायणैः।

हे विभु! वैशाख मास में सुगन्धयुक्त पुष्पों के जल से स्नान तथा आम्रमञ्जरियों से शिव की अर्चना का विधान किया गया है। इस समय सर्ज वृक्ष के घृतमिश्रित निर्यास का धूप एवं फल सिहत घृत का नैवेद्य अर्पित करे। बुद्धिमान् नरों को चाहिये कि वे महादेव के 'कालघ्न' नाम का जप करें और तन्मना एवं तत्परायण होकर ब्राह्मण को यज्ञोपवीत तथा अन्नादि सहित जलकुम्भ की दक्षिणा प्रदान करें।

ज्येष्ठे स्नानं चामलकैः पूजाऽर्ककुसुमैस्तथा॥५६॥
धूपजयेत्त्रिनेत्रं च आयत्यां पुष्टिकारकम्।
सक्तूंश्च सघृतान्देवे दध्नाऽक्तान्विनिवेदयेत्॥५७॥
उपानद्युगलं छत्रं दानं दद्याच्च भक्तिमान्।
नमस्ते भगनेत्रघ्न पूष्णो दशननाशन॥५८॥
इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः।

ज्येष्ठमास में आमलक के जल से स्नान कराना चाहिये और मन्दारपुष्पों से पूजा करनी चाहिये। उसके उपरान्त भविष्य में पुष्टि प्रदान करने वाले त्रिलोचन प्रभु को धूपदान करके घृत तथा दधि से मिश्रित सत्तू का नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। और उस जगदीश्वर को प्रसन्न करने के लिये 'हे भगनेत्रघ्न! हे पूषा के दाँतों के नाशक! आपको प्रणाम है' यह कहते हुये भक्तियुक्त होकर छत्र एवं एक जोड़ी जूते दक्षिणारूप में प्रदान करें।

आषाढे स्नानमुदितं श्रीफलरैर्चनं तथा॥५९॥
धत्तूरकुसुमैः शुक्लैर्धूपयेत्सिल्हकं तथा।
नैवेद्यं सघृताः पूपाः दक्षिणा सघृता यवाः॥६०॥
नमस्ते दक्षयज्ञघ्न इदमुच्चैरुदीरयेत्।

4. Gallstone (Bastanous)

आषाढ़ मास में श्रीफल युक्त जल से स्नान कराना चाहिये और धत्तूर के श्वेत पुष्पों से पूंजा करनी चाहिये। फिर सिल्हक का धूप देकर घृतयुक्त पूप का नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और ऊँचे स्वर से 'हे दक्षफल के नाशक! आपको नमस्कार है' यह कहते हुये घृतमिश्रित जौ की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।

श्रावणे मृगभोज्येन स्नानं कृत्वाऽर्चयेद्धरम्॥ ६१॥
श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्धूपं दद्यात्तथाऽगुरुम्।
नैवेद्यं सघृतं दद्याद्दधिपूर्वांश्च मोदकान्॥ ६२॥
दध्योदनं सकृसरं माषधानाः सशुष्कलीः।
दक्षिणां श्वेतवृषभं धेनुं च कपिलां शुभाम्॥ ६३॥
कनकं रक्तवसनं प्रदद्याद्ब्राह्मणाय हि।
गङ्गाधरेति जप्तव्यं नाम शंभोश्च पण्डितैः॥ ६४॥

श्रावण मास में महादेव को भृंगराज[5] के जल से स्नान कराके फलसहित बिल्व पत्रों से उनकी अर्चना करनी चाहिये। उन्हें अगुरु का धूप प्रदान करना चाहिये। इसके पश्चात् घृतयुक्त धूप, लड्डू, दही, दधिमिश्रित ओदन, उड़द की दाल, भुना हुआ जौ एवं कचौड़ी का नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह ब्राह्मण को श्वेत वृषभ, पवित्र कपिला गौ, स्वर्ण एवं लाल वस्त्रों की दक्षिणा दे और शिव के 'गंगाधर' नाम का जप करे।

अमीभिः षड्भिरपरैर्मासैः पारणमुत्तमम्।
एवं संवत्सरं पूर्णं संपूज्य वृषभध्वजम्॥ ६५॥
अक्षयाँल्लभते लोकामान् महेश्वरवचो यथा।

इन दूसरे छः मासों के उपरान्त द्वितीय पारण आता है। इस तरह वर्षपर्यन्त वृषभध्वज की पूजा करने से मनुष्य को महेश्वर के वचन के अनुसार अक्षय कामनाओं की सिद्धि होती है।

इदमुक्तं व्रतं पुण्यं सर्वक्षयहरं शुभम्।
स्वयं रुद्रेण देवर्षे तत्तथा न तदन्यथा॥ ६६॥

हे देवर्षि! इस कल्याणप्रद, पवित्र तथा सर्वाक्षयकर व्रत के विषय में स्वयं रुद्र ने ही बतलाया है। यह जैसा कहा गया वैसा ही है। यह कदापि अन्यथा नहीं हो सकता।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे
अशून्यशयनद्वितीयाकालाष्टमीव्रतवर्णनं नाम
षोडशोध्याय:॥ १६॥

॥अथ सप्तदशोऽध्यायः॥

(महिषासुर उत्पत्तिवर्णन)

पुलस्त्य उवाच–

मासि चाश्वयुजि ब्रह्मन्यदा पद्मं प्रजापतेः।
नाभ्या निर्याति हि तदा देवेष्वेतान्यथोऽभवन्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्रह्मन्! आश्विन मास में जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु के नाभिमण्डल से जब कमल उत्पन्न हुआ था, उसी समय अन्य देवताओं से निम्न वस्तुएं उत्पन्न हुई थीं।

कन्दर्पस्य कराग्रे तु कदम्वश्चारुदर्शनः।
तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते॥ २॥

कामदेव के हाथ के अग्रभाग से सुन्दर दिखने वाला कदम्ब उत्पन्न हुआ। यही कारण है कि कदम्ब से उनकी प्रीति बहुत बढ़ती है।

यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद।
वटवृक्षः समभवत्तस्मिंस्तस्य रतिः सदा॥ ३॥

हे नारद! यक्षों के अधिपति मणिभद्र से वटवृक्ष उत्पन्न हुआ। इसी कारण उन्हें सदा वटवृक्ष से प्रेम है।

महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः।
संजातः स च शर्वस्य रतिकृत्तस्य नित्यशः॥ ४॥

महेश्वर के हृदय से सुन्दर धत्तूर का वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसीलिये महादेव को धत्तूर सदा प्रिय है।

ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः।
खदिरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः॥ ५॥

ब्रह्मा के शरीर के मध्य भाग से मरकत मणि जैसा खदिर उत्पन्न हुआ। विश्वकर्मा के शरीर से सुन्दर कंटकी वृक्ष की उत्पत्ति हुई।

गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्वजायत।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः॥ ६॥

5. Eclipta Prostrata

गिरिनन्दिनी के करतल पर गुल्म उत्पन्न हुआ। गणपति के कुम्भप्रदेश पर सिन्धुबारक वृक्ष विराजमान है।

यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे।
कृष्णोदुम्बरको रौद्रो जातः क्षोभकरोऽव्ययः॥७॥

यमराज के दाहिने पार्श्व से पलाश की और दक्षिणोत्तर पार्श्व से उदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति हुई। रुद्र से उद्वेजक वृष उत्पन्न हुआ।

स्कन्दस्य बन्धुजीवस्तु रवेरश्वत्थ एव च।
कात्यायन्याः शमी जाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्॥

स्कन्ध से बन्धुजीव की, सूर्य से अश्वत्थ की कात्यायनी से शमी की तथा लक्ष्मी के हाथ से बिल्ववृक्ष की उत्पत्ति हुई।

नागानां पतये ब्रह्मञ्छरस्तम्बो व्यजायत।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता॥९॥

हे ब्रह्मन्! शेषनाग से शरस्तम्ब की उत्पत्ति हुई। वासुकि के विस्तृत पुच्छ और पीठ से श्वेत व कृष्ण दूर्वा की उत्पत्ति हुई।

साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दनः।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत्॥१०॥

साध्यों के हृदयस्थल से हरितचन्दन वृक्ष की उत्पत्ति हुई। उक्त प्रकार से उत्पन्न होने के कारण ही उन-उन वृक्षों के प्रति उन-उन देवताओं की अनुरक्ति है।

तत्र रम्ये शुभे काले या शुक्लैकादशी भवेत्।
तस्यां संपूजयेद्विष्णुं तेनाखण्डोऽस्य पूयते॥११॥

उस रम्य एवं शुभ समय में आने वाली शुक्ल एकादशी तिथि में विष्णु की पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से उसकी न्यूनता दूर हो जाती है।

पत्रैः पुष्पैः फलैर्वाऽपि गन्धवर्णरसान्वितैः।
ओषधीभिश्च मुख्याभिर्यावत्स्याच्छरदागमः॥१२॥

शरत्काल के आने तक गन्ध, वर्ण और रस से युक्त पत्रों, पुष्पों, फूलों और साथ ही ओषधियों से विष्णु की पूजा करनी चाहिये।

घृतं तिला व्रीहियवा हिरण्यं कनकादि यत्।
मणिमुक्ताप्रवालानि वस्त्राणि विविधानि च॥१३॥

रसानि स्वादुकट्वम्लकषायलवणानि हि।
तिक्तानि च निवेद्यानि तान्यखण्डानि यानि च॥१४॥

तत्पूजार्थं प्रदातव्यं केशवाय महात्मने।
यावत्संवत्सरं पूर्णमखण्डं भवते गृहे॥१५॥

महात्मा केशव के निमित्त पूजा में घृत, तिल, धान्य, गौ, चाँदी, सोना, मणि, मुक्ता, प्रवाल, विविध प्रकार के वस्त्र, स्वादु, कटु, अम्ल, कषाय, लवण और तिक्त रस आदि वस्तुओं को अखण्ड रूप से समर्पित करें। इस विधि से पूजा करने से वर्ष की समाप्ति पर घर में पूर्णता की सिद्धि होती है।

कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽहनि संयतः।
स्नानेन येन स्नायीत तेनाखण्डं हि वत्सरम्॥१६॥

हे देवर्षि! दूसरे दिन उपवास रखकर संयमित होकर इस प्रकार से स्नान करें जिससे वर्ष अखण्ड रहे।

सिद्धार्थकैस्तिलैर्वाऽपि तेनैवोद्वर्त्तनं स्मृतम्।
हविषा पद्मनाभस्य स्नानमेवं समाचरेत्।
होमस्तेनैव गदितो दाने शक्तिर्निजा द्विज॥१७॥

हे ब्राह्मण! सफेद रंग वाले सरसों अथवा तिल के द्वारा उबटन का विधान किया गया है। होम में भी घृत का ही विधान किया गया है। दान अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रदान किये जाने का विधान है।

पूजयेद्वाऽथ कुसुमैः पादादारभ्य केशवम्।
धूपयेद्विविधं धूपं येन स्याद्वत्सरं परम्॥१८॥

इसके उपरान्त पुष्पों द्वारा केशव की पूजा करें। पूजा को उनके चरण से प्रारम्भ करें। उन्हें विविध प्रकार के धूपों से धूपित करें जिससे कि वर्ष पूर्ण हो।

हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेच्च जगद्गुरुम्।
रागखाण्डवचोष्याणि हविष्याणि निवेदयेत्॥१९॥

स्वर्ण, रत्न व वस्त्रों द्वारा जगद्गुरु की अर्चना करें और राग-खाण्डव (मिष्टान्न विशेष), चोष्य एवं हविष्य का नैवेद्य अर्पित करें।

ततः संपूज्य देवेशं पद्मनाभं गद्गुरुम्।
विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत॥२०॥

हे मुनिवर! हे सुव्रत! देवपति जगद्गुरु पद्मनाभ की

इस प्रकार से पूजा करने के पश्चात् निम्न मन्त्र से प्रार्थना करें।

नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माधव महाद्युते।
धर्मार्थकाममोक्षाणि त्वखण्डाः भवन्तु मे।।२१।।

हे पद्मनाभ! हे लक्ष्मीश! हे महातेजस्विन्! आपको नमस्कार। आपकी कृपा से हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अखण्ड हों।

विकासिपद्मपत्राक्ष यथाऽखण्डोऽसि सर्वतः।
तेन सत्येन धर्माद्यास्त्वखण्डाः सन्तु केशव।।२२।।

हे विकसित कमलपत्रवत् नयन वाले प्रभो! जिस प्रकार आप सर्वतः अखण्ड हैं, उसी सत्य के प्रभाव से हमारे धर्म और अर्थ भी अखण्डित रहें।

एवं संवत्सरं पूर्णं सोपवासो जितेन्द्रियः।
अखण्डं पारयेद्ब्रह्मन्तं व्रतं सर्ववस्तुषु।।२३।।

हे ब्रह्मन्! इस तरह सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त उपवास रखकर एवं जितेन्द्रिय बने रहकर समस्त वस्तुओं के द्वारा व्रत की अखण्डता प्राप्त करें।

अस्मिंश्चीर्णे हि व्यक्तं तु परितुष्यन्ति देवताः।
धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्त्वक्षयाः संभवन्ति हि।।२४।।

ऐसे व्रत के धारण से देवतागण निश्चित रूप से प्रसन्न होते हैं। उससे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में अक्षयता की सिद्धि होती है।

एतानि ते मयोक्तानि व्रतान्युक्तानि कामिभिः।
प्रवक्ष्याम्यधुना त्वेतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम्।।२५।।

मैंने तुम्हें कामिजनों द्वारा कथित इन व्रतों के बारे में बताया। अब मैं इस शुभ वैष्णवपञ्जर के बारे में आपको बताता हूँ।

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।।२६।।

हे गोविन्द! आपको प्रणाम है। हे विष्णु! आप सुदर्शन चक्र को धारण करके पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ।

गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभामितद्युते।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।।२७।।

हे अपरिमित तेज से सम्पन्न! हे पद्मनाभ! आप कौमौदकी गदा को लेकर दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें। हे विष्णु! मैं आपकी शरण में हूँ!

हलमादाय सगदं नमस्ते पुरुषोत्तम।
प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।।२८।।

हे पुरुषोत्तम! आपको प्रणाम है। आप सौन्दक हल को लेकर पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें। हे विष्णु! मैं आपकी शरण में आया हूँ!

मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः।।२९।।

हे कमलनयन! आप विनाशकारी मुसल को लेकर उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं आपकी शरण में आया हूँ!

शार्ङ्गमादाय च धनुरस्त्रं नारायणं हरे।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ईशान्यां शरणं गतः।।३०।।

हे हरि! आप शार्ङ्गधनुष तथा नारायणास्त्र लेकर उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें! हे रक्षोघ्न! आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ!

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुबोध्य च पङ्कजम्।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञसूकर।।३१।।

हे यज्ञसूकर! हे विष्णु! आप पाञ्चजन्य नामक महाशंख तथा अन्तर्बोध्य पङ्कज को लेकर अग्निकोण में मेरी रक्षा करें।

चर्मसूर्यशतं गृह्य खड्गं चन्द्रमसं तथा।
नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन्।।३२।।

हे दिव्यमूर्ति! हे नरकेसरी! आप सूर्यशत नामक ढाल तथा चन्द्रमस नामक तलवार को लेकर नैर्ऋत्य में मेरी रक्षा करें।

वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्।
वायव्यां रक्ष मां देव अश्वशीर्ष नमोऽस्तु ते।।३३।

हे अश्वशीर्ष! आप वैजयन्तीमाला और श्रीवत्स नामक कण्ठभूषण को धारण करके वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें। हे देव! आपको प्रणाम है।

वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन।
मां त्वं रक्षाजित सदा नमस्ते त्वपराजित।।३४।।

हे जनार्दन! आप वैनतेय पर आरोहित होकर अन्तरिक्ष में मेरी रक्षा करें। हे अजित! हे अपराजित! आपको सदा नमस्कार है।

विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते।।३५।।

हे महाकच्छप! आप विशालाक्ष पर आरूढ़ होकर रसातल में मेरी रक्षा करें। हे महामोह! आपको नमस्कार है।

करशीर्षाङ्घ्रिसर्वेषु तथाऽष्टबाहुपञ्जरम्।
कृत्वा रक्षस्व मां देव नमस्ते पुरुषोत्तम।।३६।।

हे पुरुषोत्तम! आप हाथ, शिव तथा जोड़ों इत्यादि में अष्टबाहु पञ्जर करके मेरी रक्षा करें। हे देव! आपको प्रणाम है।

एतदुक्तं भगवता वैष्णवं पञ्जरं महत्।
पुरा रक्षार्थमीशेन कात्यायन्यै द्विजोत्तम।।३७।।
नाशयामास सा यत्र दानवं महिषासुरम्।
नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान्सुरकण्टकान्।।३८।।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! प्राचीन काल में भगवान् शङ्कर ने यह महान वैष्णवपंजर कात्यायनी की रक्षा के निमित्त उस स्थान पर कहा था जिस स्थान पर उन्होंने महिषासुर, नमर, रक्तबीज एवं अन्य अनके देवशत्रुओं का वध किया था।

नारद उवाच–

काऽसौ कात्यायनी नाम या जघने महिषासुरम्।
नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान् सुरकण्टकान्।।३९।।

नारद बोले— यह कात्यायनी कौन है जिसने महिषासुर, नमर, रक्तबीज तथा अन्य अनेक सुरकण्टकों का वध किया था?

कश्चासौ महिषो नाम कुले जातश्च कस्य सः।
कश्चासौ रक्तबीजाख्यो नमरः कस्य चात्मजः।
एतद्विस्तरतस्तात यथावद्वक्तुमर्हसि।।४०।।

यह महिष कौन है? वह किस के कुल में उत्पन्न हुआ है? यह रक्तबीज कौन है? और नमर किसका पुत्र है? हे तात! आप कृपया इसका सविस्तार वर्णन करें।

पुलस्त्य उवाच–

श्रूयतां संप्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशनीम्।
सर्वदा वरदा दुर्गा येयं कात्यायनी मुने।।४१।।

पुलस्त्य ने कहा— मैं यह पापनाशक कथा सुनाता हूँ। आप सुनें! हे मुनि! सदा वर देने वाली दुर्गा ही कात्यायनी है।

पुरासुरवरौ रौद्रौ जगत्क्षोभकरावुभौ।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां सुमहाबलौ।।४२।।

प्राचीन काल में रम्भ और करम्भ नामक दो श्रेष्ठ राक्षस थे। वे दोनों भयंकर थे। जगत्क्षोभकारी वे बहुत अधिक बलशाली थे।

तावपुत्रौ च देवर्षे पुत्रार्थं तेपतुस्तपः।
बहून्वर्षगणान्दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले।।४३।।

हे देवर्षि! वे दोनों राक्षस पुत्रहीन थे। उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए बहुत वर्षों तक पञ्चनद के जल में जप किया था।

तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपञ्चमीः।
करम्भश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति।।४४।।

करम्भ और रम्भ में से एक मालवट यक्ष के प्रति एकाग्र होकर जल में निमग्न होकर तो दूसरा पञ्चाग्नि के मध्य में स्थित होकर तप कर रहा था।

एकं निमग्नं सलिले ग्राहरूपेण वासवः।
चरणाभ्यां समादाय निजघान यथेच्छया।।४५।।

उनमें से एक जलनिमग्न राक्षस को ग्राहरूपधारी इन्द्र ने पैर पकड़कर इच्छानुसार मार डाला।

ततो भ्रातरि नष्टे च रम्भः कोपपरिप्लुतः।
वह्नौ स्वशीर्षं संछिद्य होतुमैच्छन्महाबलः।।४६।।

भाई के नष्ट हो जाने पर महाबलशाली रम्भ अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। तब उसने अपने शिर को काट कर अग्नि में चढ़ाने की इच्छा की।

ततः प्रगृह्य केशेषु खड्गं च रविसप्रभम्।
छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिषेधितः।।४७।।
उक्तश्च मा दैत्यवर नाशयात्मानमात्मना।
दुस्तरा परवध्याऽपि स्ववध्याऽप्यतिदुस्तरा।।४८।।

रम्भ ने इस हेतु अपने केश को कपड़ा। हाथ में सूर्य के समान प्रभा वाले खड्ग को धारण करके वह अपने शिर को काटने के लिये उद्यत ही था कि अग्नि ने उसे रोक लिया और कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ! तुम स्वयं अपनी हत्या मत करो। परहत्या ही दुस्तर होती है, आत्महत्या तो फिर अति दुस्तर है ही।

यच्च प्रार्थयसे वीर तद्ददामि यथेप्सितम्।
मा म्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा॥४९॥

हे वीर! जो तुम चाहते हो, माँगो, मैं तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करता हूँ। मरो नहीं! इस संसार में मृत व्यक्ति की कथा नष्ट हो जाती है।

ततोऽब्रवीद्वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः॥५०॥

तब रम्भ ने उनसे ये वचन कहे— यदि आप मुझे वर देते हैं तो कृपया यह वर दीजिए कि मुझे आपसे भी अधिक तेजस्वी और त्रैलोक्यविजयी पुत्र प्राप्त हो।

अजेयो दैवतैः सर्वैर्युधि दैत्यैश्च पावक।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित्॥५१॥

हे पावक! वह मेरा पुत्र समस्त देवताओं, मानवों और दैत्यों द्वारा अपराजेय हो। वह वायु के समान महाबली हो, कामरूपी हो तथा सर्वास्त्रवेत्ता हो।

तं प्रोवाच कविर्ब्रह्मन्बाढमेवं भविष्यति।
यस्यां चित्तं समालम्बि करिष्यसि ततः सुतः॥५२॥

हे ब्रह्मन्! तब अग्नि ने उससे कहा— अच्छा, ऐसा ही होगा! जिस स्त्री में तुम्हारा चित्त समलम्बित होगा उसी से तुम ऐसा पुत्र उत्पन्न करोगे!

इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ।
द्रष्टुं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम्॥५३॥

अग्निदेव के ऐसा कहने पर रम्भ यक्षगण द्वारा परिवेष्टित मालवट यक्ष के दर्शनार्थ चला गया।

तेषां पद्मनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजाविपरिप्लुताः॥५४॥

वहाँ उन यक्षों का पद्म नामक निधि एकाग्र मन से रहता था। वहाँ बकरे, भेड़, अश्व, महिष, हाथी तथा गौ थे।

तान्दृष्ट्वैव तदा चक्रे भावं दानवपार्थिवः।
महिष्यां रूपयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन॥५५॥

हे तपोधन! दानवराज उन्हें देखने के उपरान्त एक तीन वर्ष की रूपवती महिषी पर आसक्त हो गया।

सा समागाद्य दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी।
स चापि गमनं चक्रे भवितव्यप्रचोदितः॥५६॥

वह महिषी कामासक्त होकर शीघ्रता के साथ इस दैत्यराज के समीप आ गई। भवितव्यता से प्रेरित होकर उस दैत्य ने भी उस महिषी के साथ संगम किया।

तस्यां समभवद्गर्भस्तां प्रगृह्याथ दानवः।
पातालं प्रविवेशाथ ततः स्वभवनं गतः॥५७॥

महिषी गर्भवती हो गई। दानवपति उस महिषी को लेकर पाताल में प्रविष्ट हुआ और अपने घर को चला गया।

दृष्टश्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तश्च बन्धुभिः।
अकार्यकारकेत्येवं भूयो मालवटं गतः॥५८॥

वहाँ उसके दैत्यबन्धुओं ने उसे देखा। परन्तु उसे अकरणीय का कर्त्ता जानकर उन्होंने उसका बहिष्कार कर दिया। तब वह दैत्य पुनः मलवट में चला गया।

साऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना।
समं जगाम तत्पुण्यं यक्षमण्डलमुत्तमम्॥५९॥

सुन्दर रूप वाली वह महिषी भी अपने पति का अनुगमन करती हुई उस उत्तम और पवित्र यक्षमण्डल में चली गई।

ततस्तु वसतस्तस्य श्यामा सा सुषुवे मुने।
अजीजनत्सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम्॥६०॥

हे मुनि! वहाँ निवास करते हुये उस श्यामा महिषी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका वह पुत्र शुभ्र था। वह इच्छानुसार रूप धारण करना जानता था।

एतामृतुमतीं जातां महिषोऽन्यो ददर्श ह।
सा चाभ्यगाद्दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः॥६१॥

एक दिन जब वह ऋतुमती थी, उस समय किसी दूसरे महिष ने उसे देख लिया। वह अपने शील का रक्षण करती हुई दैत्यश्रेष्ठ के पास आई।

तमुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः।
खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं तमुपाद्रवत्॥ ६२॥

दानवराज ने जब नाक ऊपर उठाये हुये उस महिष को देखा तो उसने खड्ग उठाकर वेग के साथ उस पर आक्रमण कर दिया।

तेनापि दैत्यस्तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदि ताडितः।
निर्भिन्नहृदयो भूमौ निपपात ममार च॥ ६३॥

तब उस महिष ने भी अपने तीक्ष्ण शृङ्गों से दैत्य के हृदय पर प्रहार कर दिया। शृङ्गप्रहार के कारण हृदय के फट जाने से वह दैत्य भूमि पर गिर पड़ा और फलतः मर गया।

मृते भर्त्तरि सा श्यामा यक्षाणां शरणं गता।
रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिषं ततः॥ ६४॥

पति की मृत्यु हो जाने पर महिषी यक्षों की शरण में चली गई। गुह्यकों ने महिष को हटाकर उस साध्वी महिषी की रक्षा की।

ततो निवारितो यक्षैर्हयारिमर्दनातुरः।
निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः॥ ६५॥

यक्षों के द्वारा निवारित वह कामातुर महिष एक दिव्य सरोवर में गिर पड़ा। मरकर वह दैत्य हो गया।

नमरो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः।
यक्षानाश्रित्य तस्थौ स कालयन श्वापदान् मुने॥ ६६॥

हे मुनि! वह महाबली व महापराक्रमी दैत्य वन्यपशुओं को मारते हुये व यक्षों के आश्रय में रहते हुये नमर नाम से प्रसिद्ध हो गया।

स च दैत्येश्वरो यक्षैर्मालवटपुरस्सरैः।
चितामारोपितः सा च श्यामां तं चारुहत्पतिम्॥ ६७॥

मालवट आदि यज्ञों ने उस दैत्यराज को चिता पर रखा। श्याम महिषी भी अपने पति के साथ चिता पर आरूढ़ हो गई।

ततोऽग्निमध्यादुत्तस्थौ पुरुषो रौद्रदर्शनः।
व्यद्रावयत्स तान्यक्षान्खड्गपाणिर्भयंकरः॥ ६८॥

तभी अग्नि के मध्य से एक विकरालदर्शन पुरुष प्रकट हुआ। उसने हाथ में खड्ग धारण कर रखा था। उसने सभी यक्षों को वहाँ से भगा दिया।

ततो हतास्तु महिषाः सर्व एव महात्मना।
ऋते संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दनम्॥ ६९॥

उस बलशाली पुरुष ने संरक्षक रम्भनन्दन महिष को छोड़कर अन्य सभी महिषों को मार डाला।

स नामतः स्मृतो दैत्यो रक्तबीजो महामुने।
योऽजयत्सर्वतो देवान्सेन्द्ररुद्रार्कमारुतान्॥ ७०॥

हे महामुनि! वह दानव तदनन्तर रक्तबीज नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने इन्द्र, रुद्र, सूर्य और मरुत्, आदि सभी देवों को पूरी तरह से जीत लिया।

एवंप्रभावो दनुपुंगवास्ते
तेजोऽधिकस्तत्र बभौ हयारिः।
राज्येऽभिषिक्तश्च महासुरेन्द्रै-
र्विनिर्जितैः शम्बरतारकाद्यैः॥ ७१॥

वे सभी दैत्य इस प्रकार के तेज से सम्पन्न थे। परन्तु उन सब में भी हयारि सर्वाधिक तेजस्वी था। उसके द्वारा पराजित हुये शम्बर एवं तारक आदि महान असुरों ने उसका राज्याभिषेक किया।

अशक्नुवद्भिः सहितैश्च देवैः
सलोकपालैः सहुताशभास्करैः।
स्थानानि त्यक्तानि शशीन्द्रभास्करै-
र्धर्मश्च दूरे प्रतियोजितश्च॥ ७२॥

लोकपालों सहित अग्नि एवं सूर्य आदि देवता एक साथ मिलकर भी उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके तो चन्द्र, सूर्य एवं इन्द्र ने अपने-अपने स्थान को छोड़ दिया। धर्म को भी दूर हटा दिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे महिषासुरोत्पत्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥अथ अष्टादशोऽध्यायः॥

(देवी माहात्म्य वर्णन)

पुलस्त्य उवाच-

ततस्तु देवा महिषेण निर्जिताः
स्थानानि संत्यज्य सवाहनायुधाः।
जग्मुः पुरस्कृत्य पितामहं ते
द्रष्टुं गदाचक्रधरं श्रियः पतिम्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— महिष के द्वारा पराजित हुये देवतागण अपने अपने स्थानों को छोड़कर अपने वाहनों व हथियारों के साथ पितामह को आगे करके लक्ष्मीपति के दर्शनार्थ चले गये।

गत्वा त्वपश्यंश्च मिथ: सुरोत्तमौ
स्थितौ खगेन्द्रासनशङ्करौ हि।
दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकौ
न्यवेदयंस्तन्महिषारिचेष्टितम्॥ २॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि विष्णु एवं शिव दोनों देवश्रेष्ठ एक साथ बैठे हैं। देवताओं ने उन दोनों सिद्धिसाधकों को नमस्कार किया और महिषादियों की चेष्टाओं के बारे में उन्हें बतलाया।

प्रभोऽश्विसूर्येन्द्वनिलाग्निवेधसां
जलेशशक्रादिषुर चाधिकारान्।
आक्रम्य नाकात्तु निराकृता वयं
कृतावनिस्था महिषासुरेण॥ ३॥

वे बोले— हे प्रभु! महिषासुर ने अश्विनीकुमार, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, वरुण, व इन्द्र प्रभृति हम देवताओं के अधिकारों पर आक्रमण करके हमें स्वर्ग से निष्कासित कर दिया और हमें पृथ्वी का वासी बना दिया है।

एतद्भवन्तौ शरणागतानां
श्रुत्वा वचो ब्रूत हितं सुराणाम्।
न चेद् व्रजामोऽद्य रसातलं हि
संकाल्यमाना युधि दानवेन॥ ४॥

हम देवतागण आप दोनों की शरण में हैं। कृपया आप हमारी बातों को सुनकर हमारे हित की बात करें! अन्यथा हम लोग युद्ध में उस राक्षस द्वारा मारे जायेंगे और रसातल में पहुँचा दिये जायेंगे।

इत्थं मुरारि: सह शङ्करेण
श्रुत्वा वचो विप्लुतचेतसस्तान्।
दृष्ट्वाऽत्र चक्रे सहसैव कोपं
कालाग्निकल्पो हरिरव्ययात्मा॥ ५॥

शिव के साथ भगवान् मुरारि ने देवताओं के वचनों को सुना। दोनों ने उन दु:खी चित्त वाले देवताओं को देखा। कालाग्नि के तुल्य अव्ययात्मा हरि सहसा क्रोधित हो उठे।

ततोऽनु कोपान्मधुसूदनस्य
सशङ्करस्यापि पितामहस्य।
तथैव शक्रादिषु देवतेषु
महद्धि तेजो वदनाद्विनि:सृतम्॥ ६॥

तदनन्तर मधुसूदन, शङ्कर, पितामह और शक्र आदि देवताओं द्वारा क्रोधित होने पर उनके मुख से एक महान् तेज उत्पन्न हुआ।

तच्चैकतां पर्वतकूटसन्निभं
जगाम तेज: प्रवराश्रमे मुने।
कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
महर्षिणा तेज उपाकृतं च॥ ७॥

हे मुनि! वह तेज पर्वतशृङ्ग के समान दिखाई दे रहा था। वह अप्रतिम तेज कात्यायन के आश्रम में एकत्रित हो गया। महर्षि कात्यायन ने उस तेज का उपबृंहण किया।

तेनर्षिसृष्टेन च तेजसा वृतं
ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम्।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी
कात्यायनी योगविशुद्धदेहा॥ ८॥

महर्षि ने भी तेज को उत्पन्न किया। महर्षि के तेज से आवृत वह तेज हजारों सूर्य के समान चमकने लग गया। उस तेज से कात्यायनी आविर्भूत हुई। वह कात्यायनी योग से विशुद्ध चित्त वाली तथा विशाल आँखों वाली थी।

माहेश्वराद् वक्त्रमथो बभूव
नेत्रत्रयं पावकतेजसा च।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाऽष्टादश संप्रजज्ञिरे॥ ९॥

महेश्वर के तेज से कात्यायनी का मुख उत्पन्न हुआ। अग्नि के तेज से उसकी तीन आँखें उत्पन्न हुईं। यम के तेज से उसके केश तथा हरि के तेज से उसकी अट्ठारह भुजाएँ उत्पन्न हुईं।

सौम्येन युग्मं स्तनयोः सुसंहतं
मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत्।
उरू च जङ्घे च नितम्बसंयुतौ
जातौ जलेशस्य तु तेजसा हि॥ १०॥

चन्द्रमा के तेज से उनके दो गठे हुये स्तन उत्पन्न हुये। इन्द्र के तेज से कात्यायनी का मध्य भाग उत्पन्न हुआ। वरुण के तेज से उनकी जंघाओं एवं नितम्ब की उत्पत्ति हुई।

पादौ च लोकप्रपितामहस्य
पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतुः।
दिवाकराणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव॥ ११॥

जगत् के पितामह ब्रह्मा के तेज से उसके पद्मकोश तुल्य पादयुगल उत्पन्न हुये। आदित्यों के तेज से उसकी पादांगुलियाँ उत्पन्न हुईं। वसुओं के तेज से उसकी हस्तांगुलियाँ उत्पन्न हुईं।

प्रजापतीनां दशनाश्च तेजसा
याक्षेण नासाश्रवणौ च मारुतात्।
साध्येन च भ्रूयगुलं सुकान्तिमत्
कन्दर्पबाणासनसन्निभं बभौ॥ १२॥

प्रजापति के तेज से उसके दाँत उत्पन्न हुये। यक्षों के तेज से उसकी नाक, वायु के तेज से दोनों कान तथा साध्य के तेज से कामदेव के धनुष जैसी उनकी दोनों भौंहें प्रकट हुईं।

तद्यापि तेजोत्तममुत्तमं महन्
नाम्ना पृथिव्यामभवत्प्रसिद्धम्।
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा
नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा॥ १३॥

इस प्रकार महर्षि का श्रेष्ठ तथा महान तेज पृथ्वी पर 'कात्यायनी' के नाम से प्रख्यात हुआ। तदनन्तर वे उसी नाम से प्रसिद्ध हुईं।

ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूली
चक्रं मुरारिर्वरुणश्च शङ्खम्।
शक्तिं हुताशः श्वसनश्च चापं
तूणं तथाऽक्षय्यशरौ विवस्वान्॥ १४॥

वरप्रद त्रिशूली ने उन्हें त्रिशूल, मुरारि ने चक्र, वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति, वाय ने धनुष तथा सूर्य ने अक्षय बाणों वाले दो तूणीर प्रदान किये।

वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
यमोऽथ दण्डं धनदो गदां च।
ब्रह्माऽक्षमालां सकमण्डलुं च
कालोऽसिमुग्रं सह चर्मणा च॥ १५॥

इन्द्र ने उन्हें घण्टा सहित वज्र प्रदान किया। यम ने उन्हें गदा, ब्रह्मा ने कमण्डल के साथ अक्षमाला तथा काल ने ढाल सहित उग्र तलवार प्रदान की।

हारं च सोमः सह चामरेण
मालां समुद्रो हिमवान्मृगेन्द्रम्।
चूडामणिं कुण्डलमर्द्धचन्द्रं
प्रादात्कुठारं वसुशिल्पकर्त्ता॥ १६॥

चन्द्रमा ने उन्हें चामरसहित हार, समुद्र ने माला, हिमालय ने सिंह, विश्वकर्मा ने चूड़ामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र तथा कुठार प्रदान किया।

गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं
पानस्य पूर्णं सदृशं च भाजनम्।
भुजङ्गहारं भुजगेश्वरोऽपि
अम्लानपुष्पामृतवः स्रजं च॥ १७॥

गन्धर्वराज ने उन्हें उनके अनुरूप रजत का भरा हुआ पान (मद्य) प्रदान किया। नागराज ने उन्हें भुजङ्गहार प्रदान किया, जबकि ऋतुओं ने कभी न मुरझाने वाले पुष्पों की माला प्रदान की।

तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमां सा
अट्टाट्टहासं मुमुचे त्रिनेत्रा।
तां तुष्टुवुर्देववराः सहेन्द्राः
सविष्णुरुद्रेन्द्वनिलाग्निभास्कराः॥ १८॥

तब उन श्रेष्ठ देवताओं पर अति प्रसन्न होकर त्रिनेत्रा कात्यायनी ने उच्च अट्टहास किया। तदुपरान्त इन्द्र, विष्णु, रुद्र, चन्द्र वायु, अग्नि तथा सूर्य प्रभृति श्रेष्ठ देवगण निम्न शब्दों में उनका स्तुतिगान करने लगे—

नमोऽस्तु देव्यै सुरपूजितायै
या संस्थिता योगविशुद्धदेहा।

निद्रास्वरूपेण महीं वितत्य
तृष्णात्रपाक्षुद्भयदाऽथ कान्तिः॥ १९॥
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा च
छाया च शक्तिः कमलालया च।
मेधा स्मृतिः क्षान्तिरथेह माया
नमोऽस्तु देव्यै भविरूपितायै॥ २०॥

योग से शुद्ध देह वाली एवं देवतागण द्वारा सुपूजित देवी को नमस्कार है। यह देवी ही पृथ्वी में निद्रा रूप से व्याप्त है। यही तृष्णा, त्रपा, क्षुधा, भयदा, कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, दया भ्रान्ति तथा माया है। ऐसी जगद्रूपिणी देवी को नमन है!

ततः स्तुता देववरैर्मृगेन्द्र-
मारुह्य देवी प्रगता वनाढ्यम्।
विन्ध्यं महापर्वतमुच्चशृङ्गं
चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः॥ २१॥

श्रेष्ठ देवताओं द्वारा उपर्युक्त प्रकार से स्तुत वे देवी सिंह पर आरुढ़ होकर उच्च शिखरों से युक्त विन्ध्य नामक महान पर्वत पर चली गई। उस पर्वत पर जिसे अगस्त्य ने कभी निम्न कर दिया था।

नारद उवाच–

किमर्थमद्रिं भगवानगस्त्य-
स्तं निम्नशृङ्गं कृतवान्महर्षिः।
कस्मै कृते केन च कारणेन
एतद्वदस्वामलसत्त्ववृत्ते॥ २२॥

नारद ने पूछा- हे शुद्धात्मन्! ऋषिवर अगस्त्य ने उस पर्वत को किसके निमित्त और किस कारण से निम्न शिखर वाला बना दिया था? कृपया बतलाएँ!

पुलस्त्य उवाच–

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य।
रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
होमावसाने वचनं बभाषे॥ २३॥

पुलस्त्य बोले— प्राचीन समय की बात है। एक बार विन्ध्य ने आकाशचारी सूर्य की गति को रोक दिया था। तब सूर्य महर्षि अगस्त्य के पास गये थे। वहाँ जाकर होम के अवसान पर सूर्य ने ऋषि से निम्न वचन कहे थे।

समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
कुरुष्व विश्वोद्धरणं मुनीन्द्र।
ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृतः॥ २४॥

हे द्विज! मैं बहुत दूर से आपके पास आया हूँ। हे मुनिवर! आप मेरा उद्धार करें! कृपया मेरी इच्छा पूरी करो, जिससे मैं निश्चिन्त होकर आकाश में विचरण कर सकूँ।

इत्थं दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं बभाषे।
दानं ददामि तव यन्मनसस्त्वभीष्टं
नार्थी प्रयाति विमुखो मम कश्चिदेव॥ २५॥

दिवाकर के इन गुणों वाली बातों को सुनकर अगस्त्य बोले—मैं तुम्हें तुम्हारा इष्ट प्रदान करता हूँ। मेरे यहाँ से कोई भी याचक विमुख होकर नहीं जाता।

श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्भवस्य
प्राह प्रभुः करतलं विनिधाय मूर्ध्नि।
एषोऽद्य मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
विन्ध्यश्च निम्नकरणे भगवन्यतस्व॥ २६॥

कलशोद्भव महर्षि अगस्त्य की अमृतमय वाणी को सुनकर दिवाकर ने अपने हाथों को शिर से संयुक्त किया और कहा— यह विन्ध्याचल पर्वत आज मेरे मार्ग को रोक रहा है, अतः हे भगवन्! कृपया आप इस पर्वतश्रेष्ठ को नीचा करने का प्रयत्न करें।

इति रविवचनादथाह कुम्भजन्मा
कृतमिति विद्धि मया हि नीचशृङ्गम्।
तव किरणजितो भविष्यति महीध्रो
मम चरणसमाश्रितस्य का व्यथा ते॥ २७॥

कुम्भ से उत्पन्न हुये महर्षि अगस्त्य ने सूर्य की बात को सुनकर कहा— यही समझो कि मैंने विन्ध्य को नीचा कर दिया है। यह पर्वत तुम्हारी किरणों से पराजित रहेगा। तुमने मेरे चरणों का आश्रय पाया है। तुम्हें व्यथा कैसी?

इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु
सूर्यं हि संस्तूय विनम्रभक्त्या।
जगाम संत्यज्य हि दण्डकां तु
विन्ध्याचलं वृद्धवपुर्महर्षिः॥ २८॥

ऐसा कहने के पश्चात् वृद्ध शरीर वाले महर्षि अगस्त्य ने नम्रता के साथ भक्तियुक्त होकर सूर्य की स्तुति की और वे दण्डक को छोड़कर विन्ध्य पर्वत के समीप गये।

गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीध्रं
यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम्।
वृद्धोऽस्म्यशक्तश्च तवाधिरोढुं
तस्माद्भवान्नीचतरोऽस्तु सद्यः॥ २९॥

वहाँ पहुँचकर मुनि ने पर्वत से कहा— मैं परमपावन महातीर्थ को जा रहा हूँ। वृद्ध होने के कारण मैं तुम्हारे ऊपर चढ़ने में समर्थ नहीं हूँ। इसीलिए कृपया तुम तत्काल नीचे हो जाओ।

इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन
स नीचशृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः।
समाक्रमंश्चापि महर्षिमुख्यः
प्रोल्लङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम्॥ ३०॥

मुनिवर के ऐसा कहने पर वह पर्वत ने अपना शृङ्ग नीचे कर दिया। तब मुनिश्रेष्ठ ने विन्ध्य पर्वत को चढ़कर पार किया। पार कने के पश्चात् ऋषिवर ने उससे निम्न वचन कहे—

यावन्न भूयो निजमाव्रजामि
महाश्रमं धौतवपुः सुतीर्थात्।
त्वया न तावत्त्विह वर्धितव्यं
नो चेद्विशप्स्येऽहमवज्ञया ते॥ ३१॥

मैं जब तक पवित्र तीर्थ से स्नान करके अपने आश्रम में लौट न आऊँ तब तक तुम्हें आगे नहीं बढ़ना है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो मैं तुम्हें घोर शाप दे दूँगा।

इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
दिशं स याम्यां सहसाऽन्तरिक्षम्।
आक्रम्य तस्थौ सहितां तदाशां
काले व्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः॥ ३२॥

इस प्रकार के वचन कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशा की ओर अन्तरिक्ष में चले गये। उन्होंने ''फिर यथोचित समय पर आऊँगा'' कहा और वे उसी दिशा में रुक गये।

तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
संशुद्धजाम्बूनदतोरणान्तम्।
तत्राथ निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं
स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम॥ ३३॥

वहाँ मुनि अगस्त्य ने विशुद्ध स्वर्ण से बने तोरणों वाले एक अत्यन्त रमणीय आश्रम की रचना की। उस आश्रम में उन्होंने विदर्भपुत्री लोपमुद्रा को स्थापित कर दिया और स्वयं अपने आश्रम को चले गये।

ऋतावृतौ पर्वकालेषु नित्यं
तमम्बरे ह्याश्रममावसत्सः।
शेषं च कालं स हि दण्डकस्थस्
तपश्चचारामितकान्तिमान्मुनिः॥ ३४॥

अपरिमित कान्ति से सम्पन्न मुनिवर अगस्त्य ऋतुओं के पर्वकाल में अपने आकाश में स्थित आश्रम में निवास करते थे और शेष समय में दण्डक में रहकर ही तपस्या करते थे।

विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
वृद्धिं न यात्येव भयान्महर्षेः।
नासौ निवृत्तेति मतिं विधाय
स संस्थितो नीचतराग्रशृङ्गः॥ ३५॥

आकाशस्थित महान् आश्रम को देखकर विन्ध्य पर्वत भी आगे नहीं बढ़ा। ऐसा सोचकर कि ऋषिवर नहीं लौटे हैं, विन्ध्य पर्वत अपने शिखर को नीचा किए हुए स्थित है।

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः
स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम्॥ ३६॥

हे महर्षि! मुनि अगस्त्य ने इस प्रकार उस महान् पर्वतराज को निम्न शिखर वाला बना दिया। उसके

ऊर्ध्वश्रृंग पर मुनियों के द्वारा संस्तुता दुर्गा दानवों के विनाश के लिये स्थित हुईं।

देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च

विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे।

सर्वाप्सरोभिः प्रतिरामयन्तः

कात्यायनीं तस्थुरपेतशोकाः॥ ३७॥

देवता, सिद्ध, महानाग, विद्याधर तथा समस्त भूतगण अप्सराओं के साथ कात्यायनी की प्रसन्नता के निमित्त शोकवियुक्त होकर उनके समीप रहने लगे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे

देवीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

(देवी कात्यायनी का वर्णन)

पुलस्त्य उवाच-

ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं

कात्यायनीं शैलवरस्य श्रृङ्गे।

अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ

चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं भृशम्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— उस श्रेष्ठ पर्वत के शिखर पर निवास करती हुई उस तपस्वी कात्यायनी को चण्ड और मुण्ड नाम के दो श्रेष्ठ राक्षसों ने देखा।

दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य शीघ्र-

माजग्मतुः स्वं भवनं सुरारी।

दृष्ट्वोचतुस्तौ महिषासुरस्य

दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम्॥ २॥

कात्यायनी को देखने के बाद वे दोनों देवशत्रु अपने घरों को चले गये। महिषासुर के चण्ड-मुण्ड नामक उन दोनों दूतों ने दानवराज के पास जाकर कहा—

स्वस्थो भवान्किंत्वसुरेन्द्र साम्प्रत-

मागच्छ पश्याम च तत्र विन्ध्यम्।

तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा

कन्या सुरूपा सुरसुन्दरीणाम्॥ ३॥

हे दैत्यराज! आप सम्प्रति स्वस्थ तो हैं? आइये; विन्ध्य पर्वत पर चलते हैं। वहाँ श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त एक देवी कन्या रह रही है जो सुरसुन्दरियों में सर्वाधिक रूपवती है।

जितस्तया तोयधरोऽलकैर्हि

जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या।

नेत्रैस्त्रिभिस्त्रिणि हुताशनानि

जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः॥ ४॥

उस सुन्दरी ने अपने केशों द्वारा मेघों को जीत लिया है। उसने अपने मुख के द्वारा चन्द्रमा को, तीन आखों के द्वारा गार्हपत्य, दक्षिण एवं आहवनीय नामक तीन अग्नियों को और कण्ठ के द्वारा शंख को जीत लिया है।

स्तनौ सुवृत्तावथ निम्नचूचुकौ

स्थितौ विजित्यैव गजस्य कुम्भौ।

त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य

कुचौ स्मरेणैव कृतौ सुदुर्गौ॥ ५॥

उसके मग्न चूचुक से युक्त सुवृत्त आकार वाले दो स्तन इस प्रकार स्थित हैं मानों उन्होंने हाथी के दोनों गण्डस्थलों पर विजय प्राप्त कर लिया हो। ऐसा लगता है मानों आपको सर्वविजयी जानकर स्वयं कामदेव ने ये कुचरूपी दो सुन्दर दुर्ग बनाए हों!

पीनाः सशस्त्राः परिघोपमाश्च

भुजास्तथाऽष्टादश भान्ति तस्याः।

पराक्रमं वै भवतो विदित्वा

कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु॥ ६॥

परिघ जैसी उसकी अट्ठारह शस्त्रसम्पन्न भुजाएँ इस प्रकार शोभित हो रही हैं मानों आपके पराक्रम को जानने वाले कामदेव ने यन्त्र के समान उनका निर्माण किया हो!

मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं

विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि।

भयात्तवारोहणकातरस्य

कामेन सोपानमिव प्रयुक्तम्॥ ७॥

हे दैत्यराज! उसका मध्यभाग त्रिवली से तरंगित एवं सुन्दर रोमावलि से युक्त है। वह मध्यभाग इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों वह भयातुर एवं आरोहण के लिए अधीर बने कामदेव का सोपान हो!

सा रोमराजी नितरां हि तस्या
विराजते पीनकुचावलग्ना।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य॥ ८॥

हे दानव! उसके स्थूल कुचों में लग्न वह रोमराजि इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानों आपके भय से आरोहण करने में कातर हुये कामदेव का स्वेद-प्रवाह हो!

नाभिर्गभीरा नितरां विभाति
प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा
कन्दर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता॥ ९॥

उसकी नाभि दक्षिण की ओर घुमी हुई है। वह नाभि इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानों स्वयं कामदेव ने उस लावण्यगृह के ऊपर मुद्रा लगाई हो।

विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः
समन्ततो मेखलयाऽवजुष्टम्।
मन्याम तं कामनराधिपस्य
प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम्॥ १०॥

उस मृगनयनी का जघन अत्यन्त रमणीय है। वह चारों ओर मेखला से वेष्टित होकर सुशोभित हो रहा है। हम उसे चहारदीवारी से सुरक्षित कामदेव का दुर्गम नगर मानते हैं।

वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः
शोभेत ऊरू समनुत्तमौ हि।
आवासनार्थं मकरध्वजेन
जनस्य देशाविव सन्निविष्टौ॥ ११॥

उस कुमारी की वृत्ताकार, रोमशून्य, कोमल व श्रेष्ठ जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों मकरध्वज ने मनुष्यों के निवास के निमित्त दो देशों की रचना की हो।

तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र
अर्धोन्नतं भाति तथैव तस्याः।
सृष्ट्वा विधाता हि निरूपणाय
श्रान्तस्तथा हस्ततले ददौ हि॥ १२॥

हे महिषासुरसम्राट्! उसके अर्धोन्नत जानुयुगल ऐसे लग रहे हैं मानों उनकी रचना के पश्चात् श्रान्त विधाता ने निरूपणार्थ अपना हाथ रख दिया हो!

जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
शुभे च दैत्येश्वर ते तदीये।
आक्रम्य लोकानिव निर्मिताया
रूपार्जितस्यैव कृताधरौ हि॥ १३॥

हे दैत्यराज! उसकी जंघाएं सुवृत्त आकार वाली तथा रोमरहित हैं। वे जंघाएं इस प्रकार शोभित हो रही हैं मानों लोकातिक्रमण कर रची गई नायिका के रूप के द्वारा नीची की गई हो।

पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा।
आज्ञापि ताभ्यां नखरत्नमाला
नक्षत्रमाला गगने यथैव॥ १४॥

विधाता ने प्रयत्न के साथ कमलोदर के समान कान्ति से युक्त उसके दो पैरों की रचना की है। विधाता ने उसकी नखरूपी रत्नमाला को इस प्रकार से प्रकाशित किया है मानों वह आकाश में नक्षत्रों की माला हो!

एवं स्वरूपा दनुनाथ कन्या
महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती।
दृष्ट्वा यथेष्टं न च वेद्मि का सा
सुता तथा कस्यचिदेव बाला॥ १५॥

हे दानवपति! उपर्युक्त स्वरूप वाली उस कन्या ने महान् व उग्र शस्त्र धारण किये हुये हैं। मैंने यद्यपि उसको भली भाँति देखा है, फिर भी यह नहीं जान पाया कि वह कौन है, वह किसकी पुत्री है या किसकी स्त्री है?

तद्भूतले रत्नमनुत्तमं स्थितं
स्वर्गं परित्यज्य महासुरेन्द्र।
गत्वाऽथ विन्ध्ये स्वयमेव पश्य
कुरुष्व यत्तेऽभिमतं क्षमं च॥ १६॥

हे महासुरेन्द्र! वह एक श्रेष्ठ रत्न है। वह स्वर्ग को छोड़कर भूतल में रह रही है। आप विन्ध्य जाकर स्वयं

उसे देखें। फिर आपकी जो इच्छा व जो सामर्थ्य हो वह करें!

श्रुत्वैव ताभ्यां महिषासुरस्तु
देव्याः प्रवृत्तिं कमनीयरूपाम्।
चक्रे मतिं नात्र विचार्यमस्ति
इत्येवमुक्त्वा महिषो महर्षे॥ १७॥

हे महर्षे! चक्र और मुण्ड से उस देवी से सम्बद्ध कमनीयरूपा वार्त्ता को सुनने के पश्चात् महिषासुर ने 'इस विषय में विचार का कोई प्रश्न ही नहीं है' ऐसा कहा। वस्तुतः अब महिष का भी अन्त आ गया था।

प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि।
यस्मिन्यथा यानि य सोऽथ विप्र
स नीयते वा व्रजति स्वयं वा॥ १८॥

विधाता ने मनुष्य के शुभाशुभ को पूर्व से ही तत्तत् स्थानों में निर्धारित कर दिया है। मनुष्य को जहाँ से या जहाँ पर, जिस प्रकार का या जो जो शुभ या अशुभ मिलना होता है, वह या तो वहाँ ले जाया जाता है या फिर वह स्वयं वहाँ चला जाता है।

ततोऽनु मुण्डं नमरं सचण्डं
विडालनेत्रं सपिङ्गवाष्कलम्।
उग्रायुधं विक्षुररक्तबीजौ
समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः॥ १९॥

उस महासुरेन्द्र ने चण्ड, मुण्ड, नमर, विडालनेत्र, पिशंगवाष्कल, उग्रायुध, चिक्षुर, और रक्तबीज को आदेश दिया।

आहत्य भेरीं रणकर्कशास्ते
स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु।
आगम्य मूले शिबिरं निवेश्य
तस्थुश्च सज्जा दनुनन्दनास्ते॥ २०॥

उन रणकर्कश राक्षसों ने पहले भेरियाँ बजाईं और फिर स्वर्ग को छोड़कर पर्वत के समीप आकर उसके मूल में शिबिर बना कर तैयार होकर बैठ गये।

ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
संप्रेपितो दानवयूथपालः।!
मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी
स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःस्वनस्तु॥ २१॥

इसके पश्चात् महिषासुर ने दुन्दुभि के समान शब्द करने वाले शत्रुसेना के नाशक दानवसेनापति मयपुत्र दुन्दुभि को उस देवी के पास भेजा।

अभ्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र।
कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे॥ २२॥

हे ब्राह्मण! वह दुन्दुभि देवी के पास गया और आकाश में स्थित होकर उसने देवी से निम्न वचन कहे— हे कुमारी! मैं युद्ध में अप्रतिम रहने वाले रम्भपुत्र महासुर का दूत हूँ।

कात्यायनी दुन्दुभिमित्युवाच
एह्येहि दैत्येन्द्र भयं विमुञ्च।
वाक्यं च यद्रम्भसुतो बभाषे
वदस्व तत्सत्यमपेतमोहः॥ २३॥

कात्यायनी ने तब दुन्दुभि से कहा— हे दानवपति! तुम भय को छोड़कर यहाँ मेरे समीप चले आओ और रम्भपुत्र महिषासुर ने जो कुछ कहा है, उसे मोहशून्य होकर मुझसे यथावत् कहो।

ततस्तु वाक्याद्दितिजः शिवाया-
स्त्यक्त्वाऽम्बरं भूमितले निषण्णः।
सुखोपविष्टः परमासने च
रम्भात्मजेनोक्तमुवाच वाक्यम्॥ २४॥

शिवा के ऐसा कहने पर वह दानव आकाश को छोड़कर पृथ्वी पर आ गया। फिर उत्तम आसन पर सुख के साथ बैठकर उसने रम्भपुत्र द्वारा कहे हुये वाक्यों को देवी से कहा।

दुन्दुभिरुवाच—

एवं समाज्ञापयते सुरारि-
स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु।
यथाऽमरा हीनबलाः पृथिव्यां
भ्रमन्ति युद्धे विजिता मया ते॥ २५॥

दुन्दुभि बोला— देवताओं के शत्रु महिषासुर आपको बताना चाहते हैं कि मेरे द्वारा युद्ध में पराजित हुए बलशून्य देवतागण पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं।

स्वर्गं मही वायुपथाश्च वश्याः
पातालमन्ये च महीश्वराद्याः।
इन्द्रोऽस्मि रुद्रोऽस्मि दिवाकरोऽस्मि
सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि बाले॥ २६॥

हे बाले! स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पाताल तथा महेश्वर आदि सब मेरे वश में हैं। मैं ही इन्द्र, रुद्र और सूर्य हूँ। मैं ही सभी लोकों का स्वामी हूँ।

न सोऽस्ति नाके न महीतले वा
रसांतले देवभटोऽसुरो वा।
यो मां हि संग्राममुपेयिवांस्तु
भूतो न यक्षो न जिजीविषुर्यः॥ २७॥

ऐसा कोई योद्धा, असुर, भूत, या यक्ष नहीं है जो स्वर्ग, पृथ्वी या रसातल में जीवित रहने का इच्छुक हो और मेरे से युद्ध में सामना करें।

यान्येव रत्नानि महीतले वा
स्वर्गेऽपि पातालतलेऽथ मुग्धे।
सर्वाणि मामद्य समागतानि
वीर्यार्जितानीह विशालनेत्रे॥ २८॥

हे मुग्धे! हे विशालाक्षी! पृथ्वी, स्वर्ग या पाताल में जितने भी रत्न हैं, सभी मेरे पराक्रम द्वारा अर्जित होने के कारण मेरे पास आ गये हैं।

स्त्रीरत्नमग्र्यं भवती च कन्या
प्राप्तोऽस्मि शैलं तव कारणेन।
तस्माद्भजस्वैव जगत्पतिं मां
पतिस्तवार्होऽस्मि विभुः प्रभुश्च॥ २९॥

आप एक श्रेष्ठ कन्या और स्त्रीरत्न हैं। मैं तुम्हारे कारण से ही पर्वत पर आया हूँ। मैं जगत् का स्वामी हूं। मुझे स्वीकारें करो। मैं विभु हूँ। मैं प्रभु हूँ। मैं ही तुम्हारा पति होने योग्य हूँ।

पुलस्त्य उवाच–

इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा
कात्यायनी प्राह मयस्य पुत्रम्।
सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्यां
सत्यं च युद्धे विजितामरश्च॥ ३०॥

पुलस्त्य बोले—दैत्य के ऐसा कहने पर दुर्गा कात्यायनी ने उस मयपुत्र से कहा— यह सत्य है कि दानवराज महिषासुर पृथ्वी में प्रभु है और यह भी सत्य ही है कि उसने युद्ध में देवताओं पर विजय प्राप्त की है।

किंत्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये
धर्मो हि शुल्काख्य इति प्रसिद्धः।
तं चेत्प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
भजामि सत्येन पतिं हयारिम्॥ ३१॥

परन्तु, हे दैत्यराज! मेरे कुल में शुल्क नामक एक धर्म (प्रथा) प्रसिद्ध है। यदि महिषासुर मुझे वह शुल्क प्रदान करें, तो मैं आज उस देवारि को सचमुच पति के रूप में स्वीकार कर लूँगी।

श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽब्रवीच्च
शुक्लं वदस्वायतपत्रनेत्रे।
दद्यात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्थे
किन्नाम शुक्लं च यदस्त्यलभ्यम्॥ ३२॥

कात्यायनी के उक्त वाक्य को सुनकर मयपुत्र ने उससे पूछा— हे कमलपत्र जैसे नयनों वाली! मुझे बताओं, वह शुल्क क्या है? महिष तुम्हें पाने के लिये अपना मस्तक भी दे सकता है। शुल्क तो फिर यहाँ प्राप्त है, उसकी तो बात ही क्या!

पुलस्त्य उवाच–

इत्येवमुक्ता दनुनायकेन
कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा।
विहस्य चैतद्वचनं बभाषे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य॥ ३३॥

पुलस्त्य बोले—दनुनायक के ऐसा कहने पर कात्यायनी ने उच्च स्वर से गर्जना की। अनन्तर हँसते हुए समस्त चराचर जगत् के हित के लिये उन्होंने उससे यह बात कही।

श्रीदेव्युवाच–

कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुक्लं
कृतं हि यत्पूर्वतरैः प्रसह्य।

योो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः पतिः सोऽपि भविष्यतीति॥ ३४॥

देवी कात्यायनी ने कहा— हे दानव! हमारे कुल में पूर्वजों ने हठ के साथ जो शुल्क निर्धारित किया है उसे सुनो! वह शुल्क यह है कि हमारे कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या का वही पुरुष पति हो सकेगा जो उसे युद्ध में जीतेगा।

पुलस्त्य उवाच–

तच्छुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवश्वेरः।
गत्वा निवेदयामास महिषाय यथायथम्॥ ३५॥

पुलस्त्य बोले— कात्यायनी देवी से यह बात सुनने के पश्चात् वह दानवेश्वर महिषासुर के पास गया और देवी की बात को ज्यों का त्यों उसे निवेदन कर दिया।

स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरस्सरः।
आवृत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम्॥ ३६॥

देवी की बात को सुनने के पश्चात् उस महातेजस्वी दैत्य ने समस्त दैत्यों के साथ वहाँ से प्रस्थान कर दिया। वह सरस्वती के साथ युद्ध करने की इच्छा से विन्ध्य शिखर पर पहुँच गया।

ततः सेनापतिर्दैत्यो चिक्षुरो नाम नारद।
सेनाग्रग्रामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम्॥ ३७॥

हे नारद! तदनन्तर सेनापति चिक्षुर ने नमर नामक दैत्य को अपनी सेना का अग्रगामी बनाया।

स चापि तेनाधिकृतश्चतुरङ्गं समूर्जितम्।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगतः॥ ३८॥

चिक्षुर द्वारा अधिकृत किये जाने के पश्चात् नमर सेना के अति-ऊर्जायुक्त तथा चारों अंगों से समन्वित एक अंश को लेकर वेग के साथ दुर्गा की ओर भागा।

तमापतन्तं वीक्ष्याथ देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
ऊचुर्वाक्यं महादेवीं वर्मबन्धनमाश्रय॥ ३९॥

उसको दुर्गा की ओर दौड़ता हुआ देखकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने महादेवी से कहा— हे अम्बिके! कवच बाँध लो!

अथोवाच सुरान्दुर्गा न बध्नामि च देवताः।
कवचं कोऽत्र संतिष्ठेन्ममाग्रे दानवाधमः॥ ४०॥

तब देवी ने देवताओं से कहा— हे देवगण! मुझे कवच नहीं बाँधना है। कौन अधम दानव यहाँ मेरे समक्ष ठहर सकता है!

यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिवारणम्।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान्॥ ४१॥

जब देवी दुर्गा ने शस्त्रों का निवारण करने वाला कवच नहीं धारण किया तो उनकी रक्षा के निमित्त पूर्वोक्त विष्णुपंजर स्तोत्र कहा गया।

सा तेन रक्षिता ब्रह्मन्दुर्गा दानवसत्तमम्।
अवध्यं दैवतैः सर्वैर्महिषं प्रत्यपिऽयत्॥ ४२॥

हे ब्रह्मन्! विष्णुपंजर से रक्षित होने के कारण ही वस्तुतः देवी दुर्गा ने समस्त देवताओं के द्वारा उस दानवश्रेष्ठ महिषासुर को अत्यधिक पीडित किया।

एवं पुरा देववरेण शंभुना
तद्वैष्णवं पञ्जरमायताक्ष्याः।
प्रोक्तं तया चापि हि पादघातै-
र्निषूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः॥ ४३॥

इस प्रकार देवश्रेष्ठ शम्भु ने प्राचीनकाल में सर्वप्रथम विशालाक्षी कात्यायनी से वह विष्णुपंजर कहा था। उसी के प्रभाव से देवी ने अपने पादप्रहार द्वारा उस महिषासुर का वध कर दिया था।

एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि गीतः।
कस्तस्य कुर्याद्भुवि दर्पहानिं
यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः॥ ४४॥

हे द्विज! इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न यह विष्णुपंजर स्तोत्र समस्त रक्षा करने वाली वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। जिसके हृदय में भगवान् चक्रपाणि बसते हों उसके दर्प को कौन नष्ट कर सकता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे
देवीमाहात्म्यपरिकीर्त्तनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ अथ विंशोऽध्यायः॥

(महिषासुर वध वर्णन)

नारद उवाच–

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम्।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद॥ १॥

नारद ने कहा– कात्यायनी देवी ने महिषासुर का उसके अनुचरों और वाहनों सहित किस प्रकार वध किया? उसे विस्तारपूर्वक कहें।

अयं च संशयो ब्रह्मन्हृदि मे परिवर्त्तते।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्भ्यां तममर्दयत्॥ २॥

हे ब्राह्मण! मेरे हृदय में यह संशय है कि शस्त्रों के होते हुए भी देवी ने पैरों से उसका मर्दन (नाश) क्यों किया।

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
वृत्तां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम्॥ ३॥

पुलस्त्य ने कहा– सतयुग के आदि में घटित होने वाली पाप और भय की विनाशिनी इस पुरातन पुण्य कथा को स्थिरचित्त होकर (सावधान) होकर सुनो।

स एवमसुरः क्रुद्धः समापतत वेगवान्।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन्दृष्टो देव्या यथेच्छया॥ ४॥

हे ब्राह्मण! गज, अश्व और रथसहित, क्रोधान्वत होकर अत्यन्त वेग से आक्रमण करते हुए उस असुर को देवी ने निःशंक होकर देखा।

ततो देवगणैर्दैत्यान्समानम्याथ कार्मुकम्।
ववर्ष देवी बाणौघैर्द्यौरिवाम्बुदवृष्टिभिः॥ ५॥

तदनन्तर सब देवों के साथ मिलकर देवी ने अपने धनुष को झुकाकर (उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर) जिस प्रकार आकाश में घने बादल बरसते हैं, उसी प्रकार दैत्यों पर बाणों की अति सघन वर्षा की।

तद्धनुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नमितं बलात्।
सुवर्णपुष्पं विबभौ विद्युदम्बुधरेष्विव॥ ६॥

देवी दुर्गा के द्वारा बलपूर्वक खींचा गया वह सुवर्णमण्डित धनुष दानवों की सेना के मध्य वैसे ही चमकने लगा जैसे काले बादलों के मध्य से निकलने वाली विद्युत् चमकती है।

बाणैः सुररिपूनन्यांस्ताडयामास सुव्रत।
गदया मुसलेनान्यान्स्वस्थानेभ्यो न्यपातयत्॥ ७॥

हे शुभव्रत! देवी ने कुछ दानवों को बाणों से, कुछ को खड्ग से, कुछ को गदा और मूसल से और कुछ को तलवार और ढाल से गिरा दिया।

एकोऽप्यसौ बहून्दैत्यान्केसरी कालसन्निभः।
विधुन्वन्केसरसटा निषूदयति दानवान्॥ ८॥

देवी के कालसदृश सिंह ने एकाकी होते हुए भी अपने अयालसमूह (सिंह के गर्दन के चारों ओर लम्बे बाल) को (क्रोध से) धुनते हुए अनेक दानवों को मार डाला।

कुलिशाभिहता दैत्याः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः।
लाङ्गुलैर्दारितग्रीवा द्विधा कृत्ताः परश्वधैः॥ ९॥

देवी के कुलिश (वज्र) से आहत दैत्यों के वक्षस्थल उसके शक्ति (अस्त्र) से छिन्न-भिन्न हो गये। भाले और कुल्हाड़े से उनकी ग्रीवाएँ विदीर्ण होकर टुकड़े-टुकड़े हो गई। दण्ड (गदा) से उनके सिर चकनाचूर हो गये।

दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः।
चेलुः पेतुश्च मत्ताश्च तत्युजश्चापरे रणम्॥ १०॥

चक्र के द्वारा उनके भुजदण्ड खण्डित हो गए (ऐसे वे अभिहत दानव) कुछ दानव घिसटने लगे, कुछ गिरने लगे, कुछ की हृदय गति रुक गई और कुछ रणभूमि को छोड़कर भागने लगे।

ते वध्यमाना रुद्रास्या दुर्गया दैत्यदानवाः।
कालरात्रिं मन्यमाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः॥ ११॥

(क्रोधवश) रौद्ररूप धारण करने वाली देवी दुर्गा के द्वारा मारे जाते हुए उन राक्षसों को वह समय काल रात्रि के समान प्रतीत हुआ और भयाक्रान्त होकर वे भाग खड़े हुए।

सेनान्यं भग्नमालोक्य दुर्गामग्रे तथा स्थिताम्।
दृष्ट्वा जगाम नमरो मत्तद्विरदसंस्थितः॥ १२॥

अपनी सेना के मुख्य भाग को छिन्न-भिन्न एवं (रौद्ररूपिणी) दुर्गा को सम्मुख देखकर वह नमरासुर

मदमस्त हाथी पर स्थित होकर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा।

समागम्य च वेगेन देव्यां शक्तिं मुमोच ह।

त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद्दानवो रणे॥ १३॥

दानव (नमर) ने युद्ध में देवी पर अत्यन्त वेग से अपनी शक्ति को छोड़ा और (देवी के) सिंह पर अपने त्रिशूल से वार किया।

तावायान्तौ ततो देव्या हुङ्कारेणाथ भस्मसात्।

कृतौ ततो गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः॥ १४॥

देवी ने तब अपनी ओर आते हुए उन दोनों शस्त्रों को हुंकार मात्र से ही भस्मसात् कर दिया। तदनन्तर उस मदमस्त गजेन्द्र ने सिंह को कमर से पकड़ लिया।

अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम्।

गतासुः कुञ्जरस्कन्धात्क्षिप्य देव्यै निवेदितः॥ १५॥

तदनन्तर सिंह ने अत्यन्त वेग से उछलकर अपने पंजे से दानव पर वार किया और मृत असुर को हाथी के कंधों से खींचकर देवी को समर्पित कर दिया।

गृहीत्वा दानवं युद्धे ब्रह्मन्कात्यायनी रुषा।

सव्येन पाणिनाऽऽभ्राम्यावादयत्पटहं यथा॥ १६॥

हे ब्राह्मण! क्रोधित कात्यायनी ने दानव को बीच से पकड़कर उलटे हाथ से घुमाते हुए इस तरह पीट डाला जैसे वह कोई एक ढोल हो।

ततोऽट्टहासं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते।

हास्यात्समुद्भवस्तस्या भूता नानाविधाः क्रमात्॥ १७॥

उस (नमर) के इस प्रकार वाद्य-यन्त्र में परिणत होने पर देवी ने अट्टाहास किया और उनके उस हास्य से अनेक विभूतियाँ प्रकट हुई।

केचिद्व्याघ्रमुखा रौद्रा वृकाकारास्तथाऽपरे।

हयास्या महिषास्याश्च वराहवदनाः परे॥ १८॥

(वे विभूतियाँ) कुछ भयंकर व्याघ्रमुखी, कुछ भेड़िये के समान मुखवाली, कुछ अश्वमुखी, कुछ भैंसे के समान मुखवाली और कुछ वराह (सूकर) के समान मुखवाली थीं।

आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोजाविकमुखास्तथा।

नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा॥ १९॥

उनमें से कुछ विभूतियाँ चूहे और मुर्गे के समान मुख वाली थीं। कुछ गाय, बकरी और भेड़ के समान मुख वाली थीं। इस प्रकार विभिन्न मुख, नेत्र और चरण वाली वे विभूतियाँ अनेक प्रकार के आयुध धारण किये हुए थीं।

गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये क्रीडन्त्यन्ये तु संहताः।

वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये तथाम्बिकाम्॥ २०॥

उनमें से कुछ गा रहीं थीं, कुछ हँस रहीं थीं, कुछ समूह में क्रीड़ा कर रहीं थीं, कुछ वाद्य-यन्त्र बजा रहीं थीं तथा कुछ देवी की स्तुति कर रहीं थीं।

सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्धं तद्दानवं बलम्।

शातयामास चङ्क्राम्य यथा तृण्यां महाशनिः॥ २१॥

उन भूतगणों सहित देवी ने उस (सम्पूर्ण) दानवसैन्य पर आक्रमण करके उसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार महावज्रपात (विद्युत्) समस्त फसल को नष्ट कर देता है।

सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगामिनि।

चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवताः॥ २२॥

सैन्यदल के सम्मुख सेनानायक के मारे जाने पर सेनापति चिक्षुर ने देवी से युद्ध किया।

कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः।

ववर्ष शरजालानि यथा मेघो वसुन्धराम्॥ २३॥

उस श्रेष्ठ रथी (चिक्षुर) ने अपने धनुष को दृढ़तापूर्वक कान तक खींचकर उसी प्रकार बाणों की वर्षा की जैसे मेघ पृथ्वी पर बरसते हैं।

तान्दुर्गा स्वशरैश्छित्त्वा शरसंघान्सुपर्वभिः।

सौवर्णपुङ्खानपराञ्छराञ्जग्राह षोडश॥ २४॥

दुर्गा ने अपने अत्यन्त नुकीले बाणों से (चिक्षुर के) बाणों को छिन्न-भिन्न करके सुवर्ण के पंखों वाले अन्य सोलह बाणों को (हाथ में) ग्रहण किया।

ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी।

हत्वा सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे॥ २५॥

तदनन्तर उस भामिनी ने चार बाणों से चार अश्वों को, एक बाण से सारथि को तथा एक बाण से ध्वजा को काट डाला।

ततस्तु सशरं चापं चिच्छैदैकेषुणाम्बिका।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चादत्तवान्बली॥ २६॥

तदनन्तर देवी अम्बिका ने अपने एक बाण से (चिक्षुर के) धनुष-बाण को काट डाला। धनुष के नष्ट हो जाने पर महाबली असुर ने खड्ग और ढाल हाथ में ले लिये।

तं खड्गं चर्मणा सार्द्धं दैत्यस्याधुन्वतो बलात्।
शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे॥ २७॥

देवी ने उस बलोद्धत दैत्य के ढालसहित खड्ग को अपने चार बाणों से काट डाला, तब उस दैत्य ने शूल ग्रहण कर लिया।

समुद्यम्य महाशूलं प्राद्रवत्स तथाऽम्बिकाम्।
क्रोष्टुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा॥ २८॥

उस विशाल त्रिशूल को चारों ओर घुमाते हुए दैत्य ने अम्बिका का वैसे ही पीछा किया जैसे मदमस्त शृगाल सिंहनी का पीछा करता है।

तस्याभिपततः पादौ करौ शीर्षं च पञ्चभिः।
शरैश्चिच्छेद संक्रुद्धा न्यपतत्स हतोऽसुरः॥ २९॥

अत्यन्त क्रोधित देवी ने पीछे भागते हुए उस दानव के हाथों, पैरों और सिर को पाँच बाणों से काट कर उस आक्रामक दैत्य को मार डाला।

तस्मिन्सेनापतौ क्षुण्णे तदोग्रास्यो महासुरः।
समाद्रवत वेगेन करालास्यास्तु दानवाः॥ ३०॥

उस सेनापति (चिक्षुर) का नाश होने पर महासुर उग्रास्य और दानव करालास्य ने अत्यन्त वेग से (देवी पर) आक्रमण कर दिया।

वाष्कलश्चोद्धतश्चैव उग्रास्योऽथोग्रकार्मुकः।
दुर्द्धरो दुर्मुखश्चैव विडालनयनोऽपरः॥ ३१॥
एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः।
कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः॥ ३२॥

वाष्कल, उद्धत, उग्रास्य, उग्रकार्मुक, दुर्धर, दुर्मुख तथा बिडालनयन नामक दानवों ने जो अन्य महाबलियों में श्रेष्ठ तथा विभिन्न अस्त्र-शस्त्र से परिपूरित थे, उन्होंने उस देवी पर आक्रमण कर दिया।

तान्दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम्॥ ३३॥

उनको देखकर दुर्गा ने लीला करते हुए (अत्यन्त सहज भाव से) हाथ में वीणा को ले लिया और हँसते हुए वह श्रेष्ठ डमरू को बजाने लगीं।

यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि च।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ ३४॥

जैसे-जैसे देवी उन वाद्य-यन्त्रों को बजाने लगीं वैसे-वैसे भूतगण हँसने लगे और नृत्य करने लगे।

ततोऽसुराः शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम्।
अभ्यघ्नंस्तांश्च सा देवी जग्राह परमेश्वरी॥ ३५॥

शस्त्रधारी उन असुरों ने ज्यों ही देवी के निकट पहुँचकर उन पर आक्रमण किया त्यों ही देवी ने उनको केशों से पकड़ लिया।

प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्ता-
नुत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम्।
ननर्त्त वीणां परिवादयन्ती
पपौ च पानं जगतां जनित्री॥ ३६॥

जगत् की जननी वह देवी उन महान् असुरों को केशों से पकड़े हुए सिंह की पीठ से उछलकर पर्वतशिखर पर वीणा बजाते हुए नृत्य करने लगीं और साथ ही पेय पीने लगीं।

ततस्तु देव्या बलिनो महासुरा
दोर्दण्डनिर्धूतविशीर्णदर्पाः।
विशस्त्रवस्त्रा व्यसवश्च जाता-
स्ततस्तु तान्वीक्ष्य महासुरेन्द्रान्॥ ३७॥
देव्या महौजा महिषासुरस्तु
व्यद्रावयद्भूतगणान्खुराग्रैः।
तुण्डेन पुच्छेन तथौजसाऽन्या-
न्निःश्वासवातेन च भूतसंघान्॥ ३८॥

तदनन्तर देवी के भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से बलशाली महान् असुरों का दर्प चूर-चूर हो गया तथा छिन्न-भिन्न वस्त्र वाले वे असुरगण विदीर्ण हो गये। उन्हें देखकर महाबलशाली महिषासुर देवी के भूतगणों के पीछे शीघ्रता से भागा और खुराग्रों, मुखाग्र, पूँछ, वक्षस्थल और श्वास-वायु से भूतसमूह पर आक्रमण करने लगा।

विषाणकोट्या च परान्प्रमथ्य
दुद्राव सिंहपतिहन्तुकामः।
ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम
चिक्षेप दैत्यं सहसैव लीलया॥३९॥

वह दैत्य वज्रपात-सदृश घोर गर्जना करता हुआ, नुकीले सींगों से अन्य पर प्रहार करके सिंह को मार डालने की इच्छा से उसके पीछे दौड़ा। तब देवी अम्बिका अत्यन्त क्रोधित हो उठी और अनायास ही लीलापूर्वक दैत्य को उठाकर फेंक दिया।

ततः स कोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः
क्षिप्रं गिरिन्भूमिमशीर्णयच्च।
संक्षोभयंस्तोयनिधीन्घनांश्च
विध्वंसयन्प्राद्रवताथ दुर्गाम्॥४०॥

तदनन्तर नुकीले सींगों वाला वह (महिषासुर) क्रोधवश भूमि और पर्वतों को विदीर्ण करने लगा। वह संक्षुब्ध होकर समुद्रों और बादलों का विध्वंस करता हुआ दुर्गा के पीछे भागा।

सा चाथ पाशेन बबन्ध दुष्टं
स चाप्यभूद्भिन्नकटः करीन्द्रः।
करं प्रचिच्छेद च हस्तिनोऽग्रं
स चापि भूयो महिषोऽभिजातः॥४१॥

तदनन्तर देवी ने उस दुष्ट को पाश (रस्सी) से बाँध लिया। वह भी मदमस्त हाथी के रूप में परिवर्तित हो गया। देवी ने उस हाथी की सूंड को काट डाला। वह भी पुनः महिष रूप हो गया।

ततोऽस्य शूलं व्यसृजद्भवानी
स शीर्णमूलो न्यपतत्पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशवक्त्रां
सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे॥४२॥

तदनन्तर भवानी ने अपना शूल उस (महिषासुर) पर फेंका। वह शीर्णमूल (टुकड़े-टुकड़े) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। देवी ने अग्निरूपी शक्ति उस पर फेंकी। हे महर्षि! वह अग्रभाग से कुण्ठित होकर गिर पड़ा।

चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
क्षिप्रं च वक्रत्वमुपागतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
क्षिप्ताऽऽशु भग्ना न्यपतत्पृथिव्याम्॥४३॥

दानवसमुदाय का नाश करने वाला हरि का चक्र वक्रत्व को प्राप्त हो गया (कुण्ठित हो गया)। तब देवी ने कुबेर की गदा को हिलाकर फेंका, वह भी टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

जलेशपाशोऽपि महासुरेण
विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्नः।
निरस्यता कोपितया च मुक्तो
दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः॥४४॥

उस महासुर ने वरुण के पाश को भी अपने सींग मुखाग्र और खुरों से कुण्ठित कर दिया। अत्यन्त क्रुद्ध देवी के द्वारा खींचकर फेंका गया यम का पाश भी टुकड़े-टुकड़े हो गया।

वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
संत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य
दुर्गाधिरूढा सहसैव पृष्ठम्॥४५॥

इस पर फेंका गया देवराज इन्द्र का वज्र भी टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया। (तदनन्तर) दुर्गा सिंह को छोड़कर सहसा महिषासुर की पीठ पर सवार हो गई।

पृष्ठस्थितायां महिषासुरोऽपि
पोल्यूयते वीर्यमदान्मृडान्याम्।
सा चापि पद्भ्यां मृदुकोमलाभ्यां
ममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि॥४६॥

देवी के पीठ पर सवार होने पर पराक्रमी और उद्दण्ड महिषासुर जोर-जोर से उछलने लगा और वह उसे अपने कोमल और सुकुमार चरणों से गीले सिंहचर्म के समान दबाने लगीं।

स मृद्यमानो धरणीधराभो
देव्या बली हीनबलो बभूव।
ततोऽस्य शूलेन बिभेद कण्ठं
तस्मात्पुमान्खड्गधरो विनिर्गतः॥४७॥

देवी के द्वारा मर्दित किये जाने के कारण पर्वताकार एवं अत्यन्त बली महिषासुर पूर्णरूपेण बलहीन हो गया।

तदनन्तर देवी ने अपने खड्ग से उसका गला काट डाला। उसमें से खड्गधारी एक पुरुष निकला।

निष्क्रान्तमात्रं हृदये यदा त-
माहत्य संगृह्य कचेषु कोपात्।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यबलं तदाऽभूत्॥ ४८॥

उस पुरुष के निकलते ही देवी ने क्रोधवश उसके वक्षस्थल पर पादप्रहार किया और केशों से पकड़कर अपने श्रेष्ठ खड्ग से उसका भी सिर काटा डाला। तदनन्तर दैत्यसमूह में हाहाकार मच गया।

सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः
सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः।
संताड्यमानाः प्रमथैर्भवान्याः
पातालमेवाविविशुर्भयार्ताः॥ ४९॥

भयभीत नेत्रों वाले चण्ड मुण्ड, मय, तारा, असिलोमन इत्यादि राक्षस देवी के प्रहारों से प्रताड़ित एवं भयाक्रान्त होकर पाताललोक में जा घुसे।

देव्या जयं देवगणा विलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम्॥ ५०॥

हे महर्षि! देवी की विजय को देखकर समस्त देवतागण समस्त जगत् की अधिष्ठात्री, नारायणी, कात्यायनी, सुन्दर स्वरूप वाली (परन्तु उस समय) रौद्ररूपिणी देवी की स्तुति करने लगे।

संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघैः
कात्यायनी सा हरपादमूले।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेव
मुक्त्वा सुरांस्तान्प्रविवेश दुर्गा॥ ५१॥

देवताओं और सिद्धों के समूह द्वारा पूजित वह देवी देवताओं को 'मैं देवताओं के लिये पुनः प्रकट होऊँगी' ऐसा कहकर हर-चरणों में प्रवेश कर गई।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

॥ अथ एकविंशोऽध्यायः॥

(उमा-जन्म वर्णन)

नारद उवाच–

पुलस्त्य कथ्यतां तावद्भूयो देव्या समुद्भवः।
महत्कौतूहलं मेऽद्य विस्तराद्ब्रह्मवित्तम॥ १॥

नारद ने कहा– हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम पुलस्त्य! देवी के पुनः प्रकट होने की कथा को फिर से विस्तार के साथ बताइये। इस विषय में मेरी विशेष जिज्ञासा है।

पुलस्त्य उवाच–

श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्या संभवं मुने।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा– हे मुनि! सुनिये। जगत् के हित की इच्छा से शुम्भ नामक असुर का वध करने के लिये देवी ने पुनः अवतार लिया था। उस कथा को मैं सुनाता हूँ।

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधन।
उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिकी॥ ३

वह हिमालय की उमा नामक तपस्विनी पुत्री, शिव द्वारा परिणीता थीं, उनके कोश से 'कौशिकी' उत्पन्न हुई।

संभूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता।
शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः॥ ४॥

पुनः प्रकट होने के पश्चात् वह देवी भूतगणों के साथ विन्ध्य पर्वत पर जाकर श्रेष्ठ आयुधों से शुम्भ और निशुम्भ का वध करेगी।

नारद उवाच

ब्रह्मंस्त्वया ममाख्याता मृता दक्षात्मजा सती।
संजाता हिमवत्पुत्रीत्येव मे वक्तुमर्हसि॥ ५॥

नारद ने कहा– हे ब्रह्मन्! दक्ष की पुत्री सती मृत (भस्मसात्) हो गई थीं, ऐसा आपने बताया था। वह (पुनः) हिमवान् की पुत्री के रूप में (कैसे) उत्पन्न हुई, यह आप मुझे बताइये।

यथा हि पार्वती कोशात्समुद्भूता हि कौशिकी।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भंच महासुरम्॥ ६॥

कस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ।
एतन्मे तत्त्वत: सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि॥७॥

पार्वती के कोश से कौशिकी किस प्रकार प्रकट हुई; उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ को कैसे मारा; शुम्भ और निशुम्भ नामक वे वीर किसके पुत्र थे? यह समस्त वृत्तान्त यथार्थतः आप मुझे कहें।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देव्याश्चरितमुत्तमम्।
श्रुतं विस्तरतो ब्रूहि पार्वत्या: संभवं मुने॥८॥

हे भगवन्! आपकी कृपा से मैंने देवी के उत्तम चरित को सुना। हे मुने! आप पार्वती के दूसरे अवतार के विषय में विस्तारपूर्वक कहें।

पुलस्त्य उवाच–

दिष्ट्या संकथयिष्यामि पार्वत्या: संभवं मुने।
श्रृणुष्वावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च शाश्वतीम्॥९॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुनि! पार्वती का पुनरवतार और स्कन्द की शाश्वत उत्पत्ति को मैं आपसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये।

रुद्र: सत्यां प्रनष्टायां ब्रह्मचारिव्रते स्थित:।
निराश्रमत्वमापन्नस्तपस्तमुं व्यवस्थित:॥१०॥

सती के विनष्ट होने पर रुद्र ने ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया और पूर्णरूप से आत्मसंयमी होकर तप करने का निश्चय किया।

स चासीद्देवसेनानीर्दैत्यदर्पविनाशन:।
शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत्॥११॥

जो देवताओं के सेनापति तथा दानवों के दर्प को नष्ट करने वाले रुद्र थे, उन्होंने शिवरूप धारण करके देवताओं के सेनापतित्व को त्याग दियां।

ततो विनाकृता देवा: सेनानाथेन शंभुना।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य निशुम्भेन पराजिता:॥१२॥

तदनन्तर सेनापति शम्भु द्वारा परित्यक्त देवतागण दानवराज निशुम्भ के द्वारा आक्रान्त होकर परास्त कर दिये गये।

ततो जग्मु: सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्।
श्वेतद्वीपे महाहंसं प्रपन्ना: शरणं हरिम्॥१३॥

तदनन्तर वे (आक्रान्त देवगण) चक्र-गदाधारी, देवाधिपति, श्वेतद्वीप तथा (क्षीरसागर) के महान् हंस, श्रीहरि की शरण में गये।

तानागतान्सुरान्दृष्ट्वा तत: शक्रपुरोगमान्।
विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तम:॥१४॥

इन्द्र पुरस्थायी उन देवताओं को आते हुये देखकर पुरुषोत्तम हरि हँसकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोले—

किं जिता: स्थासुरेन्द्रेण निशुम्भेन दुरात्मना।
येन सर्वे समेत्यैव मम पार्श्वमुपागता:॥१५॥

क्या असुराधिपति दुष्ट निशुम्भ ने आप सब को जीत लिया है जो इस प्रकार आप सब एकत्रित होकर मेरे पास आये हैं?

तद्युष्माकं हितार्थाय यद्वदामि सुरोत्तमा:।
तत्कुरुध्वं जयो यद्धि समाश्रित्य भवेत्तत:॥१६॥

अत: हे देवगण! आपके हित के लिए जो मैं कहता हूँ, वैसे ही कीजिए जिससे आपकी निश्चित विजय हो सके।

य एते पितरो देवस्त्वग्निष्वात्तेति विश्रुता:।
अमीषां मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवता॥१७॥

हे देवतागण! अग्निश्वात्त नाम से विश्रुत जो ये पितर हैं उनकी मेना नामक एक मानसी देवकन्या है।

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमरा:।
प्रार्थयध्वं सतीमेनां प्रालेयाद्रिमहार्थत:॥१८॥

हे देवगण! महातिथि को परम श्रद्धा के साथ उस (मेना) की आराधना करके, महासती मेना को हिमवान् के लिए प्रेरित कीजिए (हिमवान से विवाह के लिए आग्रह करें)।

तस्यां सा रूपसंयुक्ता भविष्यति तपस्विनी।
दक्षकोपाद्यया मुक्तं मलवज्जीवितं प्रियम्॥१९॥

उस मेना से रूपवती, तपस्विनी वह (पार्वती) उत्पन्न होगी जिसने दक्ष पर क्रोध के कारण अपने प्रिय जीवन को धूल के समान त्याग दिया था।

सा शङ्करात्सतेजोंऽशं जनयिष्यति यं सुतम्।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं शुम्भं च सपदानुगम्॥२०॥

वह (पार्वती) शङ्कर द्वारा अपने तेज से युक्त जिस पुत्र को उत्पन्न करेगी, वही असुराधिपति महिष को उसके समस्त अनुचरों सहित मार डालेगा।

तस्माद्गच्छत पुण्यं तत्कुरुक्षेत्रं महाफलम्।
तत्र पृथूदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽव्ययाः॥ २१॥
महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम्।
भवनाथात्मना सर्वे इच्छथ क्रियतामिति॥ २२॥

इसलिए महान् फलदायी पुनीत कुरुक्षेत्र में जाइये और पवित्र पृथूदक तीर्थ में महान् पुण्यशाली तथा अविनाशी पितरों की पूजा कीजिए। यदि शत्रु द्वारा पराभूत आप सब उपहास से बचना चाहते हैं तो ऐसा ही कीजिये।

पुलस्त्य उवाच-

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छुः परमेश्वरम्॥ २३॥

पुलस्त्य ने कहा— वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर इन्द्रपुरस्थायी देवताओं ने हाथ जोड़कर परमेश्वर से पूछा—

देवा ऊचुः

किं तत्कुरुक्षेत्रमिति यत्र पुण्यं पृथूदकम्।
उद्भवं तस्य तीर्थस्य भगवान्प्रब्रवीतु नः॥ २४॥

देवताओं ने कहा— हे भगवन्! यह कुरुक्षेत्र क्या है जहाँ यह पुण्य पृथूदक (नामक तीर्थस्थल) है। इस तीर्थस्थल की उत्पत्ति के विषय में हमें बताइये।

केयं प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः।
यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः॥ २५

तिथियों में कौन-सी तिथि उत्तम व महापुण्यशाली बताई गई है जिस दिन हमें दिव्य पितरों का भली-भाँति पूजन करना चाहिये।

ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः।
कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां तिथीमपि॥ २६॥

तदनन्तर देवताओं के वचन सुनकर कैटभ का विनाश करने वाले मुरारि ने पवित्र कुरुक्षेत्र की उत्पत्ति तथा महान् तिथि के विषय में बताया।

सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महाबलः।
कृतस्यादौ समभवदृक्षात्संवरणोऽभवत्॥ २७॥

श्रीभगवान् ने कहा— सतयुग के आरम्भ में ऋक्ष नाम का एक महाबलशाली सोमवंशी राजा हुआ। राजा ऋक्ष से संवरण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

श्रीभगवानुवाच-

स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः।
बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत्॥ २८॥

बचपन में ही पिता ने उसका राज्याभिषेक कर दिया। संवरण बचपन से ही धर्मपरायण और मेरा (ईश्वर) भक्त था।

पुरोहितस्तु तस्यासीद्वसिष्ठो वरुणात्मजः।
स तमध्यापयामास साङ्गान्वेदानुदारधी॥ २९॥

वरुणपुत्र वसिष्ठ उसका पुरोहित था और उदारबुद्धि वाले उस वसिष्ठ ने संवरण को साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ाया।

ततो जगाम चारण्ये त्वनध्याये नृपात्मजः।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसां निधिम्॥ ३०॥

एक दिन राजपुत्र (संवरण) एक अवकाश के दिन समस्त कार्य तपोनिधि वसिष्ठ को सौंपकर वन में चला गया।

ततो मृगस्य व्याक्षेपादेकाकी वाजिना वनम्।
वैभ्राजं स जगामाथ मनोन्मोदने तन्मुने॥ ३१॥

वहाँ आखेट के उद्देश्य से वह अकेला वैभ्राज नामक निर्जन वन में गया, जहाँ वह उन्माद के वशीभूत हो गया।

ततस्तु कौतुकाविष्टः सर्वर्तुकुसुमे वने।
अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद्व्यचरद्वनम्॥ ३२॥

तदनन्तर विभिन्न ऋतु-पुष्पों से कुसुमित तथा सुगंधित उस वन में क्रीड़ा-वशीभूत वह चारों ओर घूमने लगा।

सवनान्तं ददर्शाथ फुल्लकोकनदावृतम्।
कह्लारपद्मकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि॥ ३३॥

तदनन्तर उसने खिले हुए लाल, नीले और श्वेत कमल तथा धवल कुमुदों से परिपूर्ण सीमाप्रांत भी देखे।

तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः।
तासां मध्ये ददर्शाथ कन्यां संवरणोऽधिकाम्॥ ३४॥

वहाँ अप्सराएँ और देवकन्याएँ निरन्तर क्रीड़रत थीं। संवरण ने उन सब के बीच मध्य एक अत्यन्त सुन्दर कन्या को देखा।

दर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः।
तथा सा तं समीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत्॥३५॥

उसको देखते ही वह राजा काम से पीडित हो उठा। वह देवकन्या भी उसको देखकर कामबाण से आहत हो गई।

उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः।
राजा चलासनो भूम्यां निपपात तुरङ्गमात्॥३६॥

काम के बाणों से आहत होकर वे दोनों ही बेसुध हो गए। राजा अपदस्थ होकर घोड़े से जमीन पर गिर पड़ा।

तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः।
सिषिचुर्वारिणा तेन लब्धसंज्ञोऽभवत्क्षणात्॥३७॥

इच्छारूपधारी महात्मा गन्धर्वों ने आकर उस पर जल छिड़का जिससे थोड़े ही समय में वह होश में आ गया।

सा चाप्सरोभिरुत्पाट्य नीता पितृकुलं निजम्।
ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः॥३८॥

उस देवकन्या को भी उठाकर अप्सराएँ उसके पिता के घर ले गई और अनेक मधुर वचनों से उसे सांत्वना देने लगीं।

स चाप्यारुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम्।
गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः॥३९॥

राजा भी घोड़े पर चढ़कर प्रतिष्ठान नामक श्रेष्ठ नगर को चला गया जैसे इच्छाचारी देव सुमेरु पर्वत पर चले जाते हैं।

यदा प्रभृति सा दृष्टा चक्षुषा तपती गिरौ।
तदा प्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति वा निशि॥४०॥

जब से उसने पर्वत पर अपनी आँखों से उस 'तपती' को देखा था, तब से वह न दिन को खाता है और न रात को सोता है।

ततः सर्वविदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः।
तपतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः॥४१॥
समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम्।
विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम्॥४२॥

तदनन्तर त्रिकालदर्शी और स्थिरचित्त तपस्वी वसिष्ठ ने यह जानकर कि वीर राजा तपती के लिये व्यथित है— आकाश में आरोहण कर सूर्यमण्डल में प्रवेश किया और रथ में स्थित सूर्यदेव को देखा।

तं दृष्ट्वा भास्करं देवं ननाम द्विजसत्तमः।
प्रतिप्रणमितश्चासौ भास्करेणाप्यसावृषिः॥४३॥

प्रशस्त ब्राह्मण वसिष्ठ ने सूर्यदेव को देखकर नमस्कार किया तथा सूर्यदेव के द्वारा प्रति नमन किये जाने पर वे उनके रथ पर बैठ गये।

ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः।
शोभते वारुणिः श्रीमान्द्वितीय इव भास्करः॥४४॥

सूर्य के समीप स्थित और दीप्तिमान् जटासमूह वाले श्रीमान् वसिष्ठ दूसरे सूर्य के समान शोभित हो रहे थे।

ततः संपूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेण तपोधनः।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम्॥४५॥

तदनन्तर सूर्य ने अर्घ्यादि के द्वारा तपस्वी वसिष्ठ का सम्मान किया। सूर्य द्वारा आने का कारण पूछे जाने पर वसिष्ठ ने उत्तर दिया।

समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वां महाद्युते।
सुतां संवरणस्यार्थे त्वं च तां दातुमर्हसि॥४६॥

हे महातेजस्वी देवेश! मैं संवरण के लिये आपकी पुत्री को माँगने आया हूँ; आप उसको अपनी पुत्री देने की कृपा करें।

ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण
निवेदिता सा तपती तनूजा।
गृहागताय द्विजपुंगवाय
राज्ञोऽर्थतः संवरणस्य चैव॥४७॥

तदनन्तर दिवाकर ने अपनी पुत्री तपती को गृहागत ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठ को सौंप दिया जो उनकी पुत्री के साथ राजा संवरण के परिणय प्रस्ताव को लेकर उनके घर आये थे।

सावित्रमासाद्य वचो वसिष्ठः
स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं
कृताञ्जलिर्वारुणिमाह देवी॥४८॥

तदनन्तर सूर्यपुत्री तपती को लेकर वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रम को चले गए। देवी तपती भी राजपुत्र को स्मरण करते हुए हाथ जोड़कर वसिष्ठ से बोली—

ब्रह्मन्मयाखेदमुपेत्य यो हि
सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः।
दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो
नृपात्मजो लक्षणतोऽपि जाने॥४९॥

हे ब्राह्मण! मैं अप्सरा परिचारिकाओं के साथ वन में गई थी जहाँ मैंने देवपुत्र के समान उस संवरण को देखा जो लक्षणों से ही राजा का पुत्र प्रतीत हो रहा था।

पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ
जङ्घे तथोरू करिहस्ततुल्यौ।
कटिर्यथा केसरिणस्तथैव
क्षामं च मध्यं त्रिवलीनिबद्धम्॥५०॥

उसके सुन्दर चरण तथा चक्र, गदा और खड्ग से चिह्नित थे। उरू तथा जंघाएँ हाथी की सूंड के समान थीं। कटि सिंह के समान तथा उदर त्रिवलीयुक्त था।

ग्रीवास्य शङ्खाकृतिमादधाति
भुजौ च पीनौ कठिनौ सुदीर्घौ।
हस्तौ तथा पद्मदलोद्भवाङ्कौ
छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति॥५१॥

उसकी ग्रीवा शङ्खाकृति, भुजाएँ पुष्ट, सुदृढ़ और सुदीर्घ, करतल कमलांकों से सुशोभित तथा शिर छत्राकृति के समान सुशोभित हो रहा था।

नीलाश्च केशाः कुटिलाश्च तस्य
कर्णौ समांसौ सुसमा च नासा।
दीर्घाश्च तस्याङ्गुलयः सुपर्वाः
पद्भ्यां कराभ्यां दशनाश्च शुभ्राः॥५२॥

उसके केश काले और घुंघराले (या घने), कान मांसल, नासिका समवर्तिनी, हाथ और पैरों की अँगुलियाँ लम्बी और पतली तथा दाँत शुभ्रवर्ण थे।

समुन्नतः षड्भिरुदारवीर्य-
स्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः।
रक्तस्तथा सप्तसु राजपुत्रः
कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोऽपि॥५३॥

वह उदारशक्ति वाला राजपुत्र छह प्रकार से समुन्नत, तीन प्रकार से महानुभाव, तीन प्रकार से उन्नत, सात प्रकार से रक्त (भयानक), चार प्रकार से कृष्ण तथा तीन प्रकार से झुका हुआ था।

द्वाभ्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
सन्त्येव पद्मानि दशैव चास्यः।
वृतः स भर्त्ता भगवन्हि पूर्वं
तं राजपुत्रं परमं विचिन्त्य॥५४॥

वह दो प्रकार से शुक्ल, चार प्रकार से सुगंधित था, उसके दसों कमल (प्रकट रूप से) दृश्यमान थे। उसे राजपुत्र समझकर बहुत पहले ही मैंने उसे अपना पति चुन लिया था।

ददस्व मां नाथ तपस्विमुख्य
गुणोपपन्नाय समीहिताय।
स्नेहात्प्रकामं प्रवदन्ति सन्तो
दातुं तथाऽन्यस्य विभो क्षमस्त्वम्॥५५॥

हे नाथ! हे श्रेष्ठ तपस्वी! मुझे अभीप्सित, सर्वगुणसंपन्न महानुभाव को ही दीजिए क्योंकि महानुभाव को किसी अन्य की कामना करने वाली को किसी अन्य को नहीं देना चाहिए। इसलिए हे प्रभु! आप मुझे क्षमा करें।

इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव।
जाने तमेवर्क्षसुतं सकामं
मुदा युतो वाक्यमिदं जगाद॥५६॥

सूर्यपुत्री तपती के इस प्रकार कहने पर ऋषि ध्यानमग्न हो गए और सूर्यपुत्री को ऋक्षपुत्र (संवरण) के लिए कामयुक्त देखकर प्रसन्नता के साथ इस प्रकार बोले—

देवदेव उवाच—

स एव पुत्रि क्षितिपात्मजस्त्वया
दृष्टः पुरा कामयसे यमद्य।
स एष चायाति ममाश्रमं वै
ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना॥५७॥

हे पुत्री! यह वही राजकुमार है, जिसे तुमने पहले देखा था और अब जिसकी तुम कामना करती हो। वह ऋक्षपुत्र संवरण मेरे ही आश्रम में आ रहा है।

अथाजगामैव नृपस्य पुत्र-
स्तदाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
स्थितां त्वपश्यत्तपतीं नरेन्द्रः॥५८॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठ के आश्रम में वह राजकुमार आ पहुँचा। वसिष्ठ को देखकर शिर से उनका अभिवादन करके राजा ने वहाँ उपस्थित तपती को देखा।

दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
संदृष्टपूर्वेयमिति व्यचिन्तयत्।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम्॥५९॥

कमल के समान बड़ी आंखों वाली उस तपती को देखकर 'इसे पहले भी मैंने देखा है' ऐसा सोचते हुए राजा ने वसिष्ठ से पूछा- 'यह सुन्दरी कौन है'?

हयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र
नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम्।
मया तवार्थाय दिवाकरोऽर्थितः
प्रादान्मया त्वाश्रममापितेयम्॥६०॥

वसिष्ठ ने उत्तर दिया— हे राजन्! यह सूर्य की पुत्री है तथा इस लोक में यह 'तपती' नाम से प्रसिद्ध है। तुम्हारे लिए (इसकी) सविनय याचना करने पर सूर्य ने इसे मुझे प्रदान किया है और मैं इसे अपने आश्रम में लाया हूँ।

तस्मात्समुत्तिष्ठ नरेन्द्र देव्याः
पाणिं तपत्या विधिबद्ग्रहाण।
इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो
जग्राह पाणिं विधिवत्तपत्याः॥६१॥

इसलिये हे राजन्! उठो और देवी तपती का विधिवत् पाणिग्रहण करो। ऐसा कहने पर राजा संवरण ने प्रसन्नचित्त होकर विधिवत् तपती का पाणिग्रहण किया।

सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम्।
रेमे च तेनैव गृहोत्तमेषु
यथा महेन्द्रेण पुलोमजा दिवि॥६२॥

वह सूर्यपुत्री इन्द्र के समान तेजस्वी एवं मनवाञ्छित पति को प्राप्त करके उत्तम प्रासादों में उसी प्रकार रमण करने लगी जैसे दैत्यकन्या दिति इन्द्र के साथ रमण करती है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे तापत्ये उमासंभवो नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः॥

(कुरुक्षेत्र की महिमा)

देवदेव उवाच-

तस्यां तपत्यां नरसत्तमेन
जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो
ह्यवर्धताज्येन हुतो यथाऽग्निः॥१॥

देवाधिदेव ने कहा— नरोत्तम संवरण तथा तपती को समस्त नृपलक्षणों से युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जातकर्मादि संस्कारों से सुसंस्कृत वह पुत्र इसी प्रकार बढ़ने लगा जैसे आज्य से आहुत अग्नि बढ़ती है।

कृतं च चूडाकरणं तु देवा
विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन।
नवाब्दिकस्य व्रतबन्धनं च
वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत्॥२॥

मित्रावरुण के पुत्र ब्राह्मण वसिष्ठ ने उसका चूड़ाकर्म संस्कार किया। नौ वर्ष का होने पर उसका व्रतबंधन (उपनयन) संस्कार किया गया और वह वेदों तथा शास्त्रों में पारंगत हो गया।

ततश्चतुःषड्भिरपीह वर्षैः
सर्वज्ञतामभ्यगमत्ततोऽसौ।
ख्यातं पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः॥३॥

तदनन्तर दस वर्षों के अन्तर्गत वह समस्त विद्याओं में निष्णात हो गया। संवरण का यह पुरुषों में उत्तम पुत्र

'कुरु' नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो गया।

ततो नरपतिर्दृष्ट्वा पुत्रं तं षोडशाब्दिकम्।
दारक्रियार्थमरोद्यत्नं शुभकुले ततः॥४॥

तदनन्तर नरपति ने अपने पुत्र को सोलह वर्ष की आयु को प्राप्त देखा, तब उसने पुत्र के किसी शुभ कुल में विवाह हेतु प्रयत्न आरंभ कर दिया।

सौदाम्नीं च सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः।
कुरोरर्थाय वृतवान्स प्रादात्कुरवेऽपि ताम्॥५॥

राजा ने सुदामन की रूपवती पुत्री सौदामिनी का कुरु के लिए वरण किया। राजा सुदामन् ने भी अपनी कन्या को कुरु के लिए दे दिया।

स तां नृपसुतां लब्ध्वा स्वधर्मानविरोधयन्।
रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवांनिव॥६॥

कुरु उस राजकुमारी को पाकर धर्म और अर्थ का पालन करते हुए उस सुकुमारी के साथ वैसे ही रमण करने लगा जैसे इन्द्र पौलोमी के साथ रमण करते हैं।

ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षमं बली।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत्॥७॥

तदनन्तर बलशाली राजा (संवरण) ने अपने पुत्र को राज्यभार वहन करने में समर्थ जानकर विधिवत् उसका यौवराज्याभिषेक कर दिया।

ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे।
स पालयामास महीं पुत्रवच्च प्रजाः स्वयम्॥८॥

तदनन्तर पिता के द्वारा राज्याभिषेक किये जाने पर उसने पृथ्वी और प्रजा का पुत्रवत् पालन किया।

स एव क्षेत्रपालोऽभूत्पशुपालः स एव हि।
स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महाबलः॥९॥

उसके पश्चात् तो वही क्षेत्रपाल था, वही पशुपालक था। वह महाबलशाली ही प्रजाओं का पालक था और वही सब का पालक था।

ततोऽस्य वृद्धिरुत्पन्ना ह्यस्मिँल्लोके गरीयसी।
यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह॥१०॥

तदनन्तर समस्त संसार में उसकी महान् कीर्ति थी। जितनी उसकी कीर्ति प्रतिष्ठित थी उतना ही उसका देवलोक में निवास (निश्चित था)।

स त्वेवं नृपतिश्रेष्ठो याथातथ्यमवेक्ष्य च।
विचचार महीं सर्वां कीर्त्यर्थं तु नराधिपः॥११॥

वह प्रशस्त नृप इस प्रकार वस्तुस्थिति को देखकर (अपनी प्रशस्ति को फैला देखकर) कीर्ति अर्जित करने के लिए समस्त लोकों में घूमने लगा।

ततो द्वैतवनं नाम पुण्यं लोकेश्वरो बली।
तदासाद्य सुसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः॥१२॥

तदनन्तर वह बलशाली राजा (घूमते हुए) पवित्र द्वैतवन पहुँचा और वहाँ पहुँचकर प्रसन्नचित्त होकर वह उसके भीतर प्रविष्ट हो गया।

तत्र देवीं ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचिनीम्।
प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम्॥१३॥
सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तृतम्।
स्थितां भगवतीं कूले तीर्थकोटिभिराप्लुताम्॥१४॥
तस्यास्तज्जलमासाद्य स्नात्वाप्रीतोऽभवन्नृपः।
समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम्॥१५॥
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम्।
आसमन्ताद्योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः॥१६॥

वहाँ उसने पवित्र, पाप-विमोचिनी, ब्रह्मा की पुत्री हरि की जिह्वारूप, प्लक्षजा सरस्वती को देखा जो सुदर्शन की जननी थी। वहाँ वह एक सुविस्तृत ह्रद के रूप में स्थित थी, जिसके किनारे करोड़ों (असंख्य) तीर्थ थे। उसके जल को देखकर और उसमें स्नान करके राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और पुनः ब्रह्मा की उत्तरी वेदी और समन्तपञ्चक नामक उत्तम धार्मिक स्थान में पहुँचा जो चारों दिशाओं में पाँच-पाँच योजन फैला हुआ था।

देवा ऊचुः

कियन्तो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तम।
येनोत्तरतया वेदी गदिता सर्वपञ्चके॥१७॥

देवताओं ने कहा— हे नारायण! ब्रह्मा की कितनी वेदियाँ थी जो आपने सर्वपंचक नामक उत्तरी वेदी का वर्णन किया।

हरिरुवाच

वेदयो लोकनाथस्य पञ्चधर्मस्य सेतवः।
यासु चेष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शंभुना॥१८॥

विष्णु ने कहा— इस लोकाधिपति की पाँच वेदियाँ है जो धर्म की सेतु हैं और जिनमें देवाधिदेव जगत्पति शम्भु ने यज्ञ किया था।

प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गयाशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी॥१९॥

मध्यम वेदी प्रयाग है; पूर्वी वेदी गया है; दक्षिणी वेदी विरजा है जो अनन्त फलदायिनी है।

प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
स्यमन्तपञ्चके चोक्ता वेदिरेवोत्तरा तथा ॥२०॥

पूर्वी वेदी पुष्कर है जो तीन कुंडों से सुशोभित है तथा समन्तपंचक नामक अविनाशी उत्तरी वेदी कही गई है।

तदमन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रं महाफलम्।
करिष्यामि कृषिष्यामि सर्वान्कामान्यथेप्सितम्॥२१॥

तदनन्तर उस राजर्षि ने सोचा - यह भू-क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस अतिप्रशंसनीय क्षेत्र में मैं अपनी समस्त अभीप्सित कामनाओं को पूर्ण करूँगा।

इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
चक्रे कीर्त्यर्थमतुलं स्थानं तत्पार्थिवर्षभः॥२२॥

इस प्रकार मन में विचार कर तथा अपने उत्तम रथ को छोड़कर राजा ने उस स्थल को कीर्ति प्राप्ति का अनुपम संस्थान बना लिया।

कृत्वा सीरं ससौवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः।
वोढारं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः॥२३॥

राजा ने सुवर्णमय हल बनाकर रुद्र के वृषभ तथा यम के महिष पौण्ड्रक को लेकर स्वयं हल चलाना प्रारम्भ किया।

तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः।
प्रोवाच राजन्किमिदं भवान्कर्तुमिहोद्यतः॥२४॥

हल चलाते हुए राजा के पास आकर इन्द्र ने कहा— राजन्! आप यहाँ यह क्या कर रहे हैं?

राजाऽब्रवीत्सुरवरं तपः सत्यं क्षमां दयाम्।
कृषामि शौचदाने च योगं च ब्रह्मचारिताम्॥२५॥

राजा ने इन्द्र से कहा— मैं तप, सत्य, क्षमा, दया, पवित्रता, दान, योग और ब्रह्मचर्य को उगा रहा हूँ। मैंने कुछ से तब कहा— मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तब कुरु ने वर मांगा।

तं चोवाच हरिर्देवः कस्माद्बीजं नरेश्वर।
लब्धं त्वयेति सहसा ह्यवहस्य गतस्ततः॥२६॥

उससे भगवान् हरि ने कहा— हे राजन्! आपने यह अष्ट अवयवों वाला बीज कहाँ से प्राप्त किया। इतना कहकर हँसकर वे वहाँ से चले गए।

गतेऽपि शक्रे नृपतिरहन्यहनि सीरधृक्।
कृषतेऽन्यतसमन्ताच्च सप्त क्रोशान्महीपतिः॥२७॥

इन्द्र के चले जाने पर भी राजर्षि (कुरु) प्रतिदिन हल चलाते। उस राजा ने सात कोस तक चारों ओर से भूमि का कर्षण कर दिया।

ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यथ।
तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं समाख्यातं नृपेण हि॥२८॥

तदनन्तर मैंने वहाँ जाकर कहा— हे कुरु! यह क्या है? तब राजा ने महान् अष्टावयवी धर्म का व्याख्यान किया।

ततो मयाऽस्य गदितं नृप बीजं क्व तिष्ठति।
स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम्।
देह्यहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान्॥२९॥

तब मैंने उससे पूछा— हे नृप! इसका बीज कहाँ स्थित है? उसने कहा— बीज मेरे शरीर में स्थित है। उससे मैंने कहा— इसे मुझे दे दो। मैं इसे बो दूँगा; आप हल चलाइये।

ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः।
प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा महाचक्रेण वेगतः॥३०॥
सहस्रधा प्रचिच्छेद यस्मादेकभुजोऽभवत्।
ततः सव्यो भुजो राज्ञा दत्तश्छिन्नोऽप्यसौ मया॥३१॥

तदनन्तर राजा ने अपनी दाहिनी भुजा फैलायी। फैली हुई भुजा को देखकर मैंने अपने चक्र से वेगपूर्वक उसके हजार टुकड़े कर दिये। तब राजा एकभुजा वाला हो गया। इसके बाद राजा ने अपनी बायीं भुजा पसारी। मैंने उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

तथैवोरुयुगं प्रादान्मया च्छिन्नौ च तावुभौ।
ततः स मे शिरः प्रादात्तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च॥
वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाचत॥ ३२॥

तदनन्तर राजा ने अपनी दोनों जंघाएँ फैलायीं; वह भी मैंने काट डालीं। तब राजा ने अपना सिर मुझे दे दिया; जिससे मैं उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गया। मैंने कुरु से तब कहा— मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। कुरु ने वर मांगा।

कुरुरुवाच–

यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु वः।
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह॥ ३३॥

कुरु ने कहा— मैंने जिस भू-भाग का कर्षण किया है (हल चलाया है) वह धर्म का क्षेत्र हो। यहाँ स्नान करने वाले तथा यहाँ मृत्यु को प्राप्त होने वालों के लिए यह क्षेत्र महान् पुण्य प्रदान करने वाला हो।

उपवासश्च दानं च स्नानं जप्यं च माधव।
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाऽप्यशुभं विभो॥ ३४॥
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर।
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्॥ ३५॥

हे माधव! हे विभो! हे हृषीकेश! हे शङ्ख और चक्रधारी। आप की कृपा से उपवास, दान, स्नान, जप, होम तथा यज्ञादि सहस्र शुभ कर्म तथा इसके विपरीत जो कर्म अशुभ भी हैं— सब आप की कृपा से इस उत्तम क्षेत्र में अक्षम तथा महान् फल प्रदान करने वाले हों।

तथा भवान्सुरैः सार्द्धं समं देवेन शूलिना।
वसात्र पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत॥
इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम्॥ ३६॥

हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! आप देवताओं तथा त्रिशूलधारी शम्भु के साथ, मेरे नाम से पहचाने जाने वाले इस क्षेत्र में निवास करें। राजा के इस प्रकार कहने पर मैंने राजा से कहा— अच्छा ऐसा ही होगा।

तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते।
तथान्तकाले मय्येव लयमेष्यसि सुव्रत॥ ३७॥

और (मैंने कहा)— हे महीपति! तुम पुनः दिव्यशरीरधारी हो जाओ। हे सुव्रत! तुम अन्त समय में मुझ में ही लीन हो जाओगे।

शाश्वती तव कीर्तिश्च भविष्यति न संशयः।
तत्र वै याजको यज्ञान्यजिष्यसि सहस्रशः॥ ३८॥

निस्संदेह तुम्हारा यश शाश्वत होगा तथा इस क्षेत्र में तुम याजक बनकर सहस्रों यज्ञ करोगे।

पुलस्त्य उवाच–

तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम्॥ ३९॥
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशं राक्षसेश्वरम्।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम्॥ ४०॥

पुलस्त्य ने कहा— नारायण ने उस क्षेत्र की रक्षा के लिए, चन्द्र नामक यक्ष, वासुकि नामक नाग, शंकुकर्ण विद्याधर, सुकेशी नामक महाराक्षस, अजावन नामक नृप तथा महादेव नामक पावक को नियुक्त कर दिया।

एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम्।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयानिनः॥ ४१॥

तब से लेकर ये सब और इनके बलिष्ठ सेवक चारों ओर से कुरुजांगल की रक्षा में रहते हैं।

अष्टौ सहस्राणि धनुर्द्धराणां
निवारयन्तीह सुदुष्कृतान्वै।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपा-
स्त्वन्यस्य ते वीर चराचराणाम्॥ ४२॥

आठ हजार धनुर्धारी किसी भी पापात्मा को इस प्रदेश में प्रवेश करने अथवा स्नान करने से रोक कर इसकी पवित्रता की निरन्तर रक्षा करते हैं।

तस्यैव मध्ये बहुपुण्ययुक्तं
पृथूदकं पापहरं शिवं च।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
जलौघयुक्तस्य सुता जलाढ्या॥ ४३॥

इस प्रदेश के मध्य में ही 'पृथूदक' स्थित है जो अत्यन्त पवित्र, कल्याणकारी तथा समस्त पापों का नाशक कहा गया है। इसमें अत्यन्त गवित्र, कल्याणकारी, गहरे और निर्मल जलवाली पुण्य नदी प्राङ्मुख होकर बहती है।

पूर्वं नदीयं प्रपितामहेन
सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः।
महीं जलं वह्निसमीरमेव
खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकम्॥४४॥

प्रपितामह ब्रह्मा ने आदिकाल में समस्त भूतगणों के साथ इस नदी का भी निर्माण किया था और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के साथ-साथ 'पृथूदक' भी आदिकाल से ही शोभायमान है।

सर्वे तथा तोयधयो महान्त-
स्तीर्थानि नद्यः स्त्रवणाः सरांसि।
संनिर्मितानीह महाभुजेन
सदेवमार्गः सलिलं हि तेषु॥४५॥

तथा समस्त महासागर, तीर्थ, नदियाँ, सरोवर तथा तालाब उस महाबाहु के द्वारा ही बनाए गए हैं।

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले।
मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम्।
अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभवं सुरसत्तमाः॥४६॥

देवदेव ने कहा— तदनन्तर महान् ब्राह्मणों ने, सरस्वती और वृषद्वती नदी के मध्य कुरुवन में आसीन प्राचीन मुनि-श्रेष्ठ लोमहर्षण से सरोवर की उत्पत्ति के विषय में पूछा।

ऋषय ऊचुः

प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः।
देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च॥४७॥

ऋषियों ने कहा— हमें विशेषतः सरोवर के विस्तार, तीर्थस्थल देवताओं के माहात्म्य तथा वामनोत्पत्ति के विषय में बताइये।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तान्द्विजाँल्लोमहर्षणः।
प्रणिपत्य पुराणर्षिमिदं वचनमब्रवीत्॥४८॥

इस बात को सुनकर लोमहर्षण ने प्राचीन ऋषि को प्रणाम किया और उन ब्राह्मणों से यह वचन कहा—

लोमहर्षण उवाच-

ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थं
विष्णुं च लक्ष्मीसहितं तथैव।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं वरं ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये॥४९॥

लोमहर्षण ने कहा— कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा, लक्ष्मीसहित विष्णु तथा रुद्रदेव को शिर से प्रणाम कर मैं ब्रह्मसर नामक महान् तीर्थ की महिमा का वर्णन करता हूँ।

रन्तुकादौजसं चपि पावनाच्च चतुर्मुखम्।
सरः सन्निहितं प्रोक्तं ब्रह्मणः पूर्वमेव तु॥५०॥

रन्तुक से लेकर औजस तक तथा पावन से लेकर चतुर्मुख तक वह सरोवर, ब्रह्मा के द्वारा 'सन्निहित' नाम से बताया गया।

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना।
सरः प्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छ्रवन्तु द्विजोत्तमाः॥५१॥

हे द्विजोत्तम! कलि और द्वापर युग के मध्य महात्मा व्यास ने सरोवर के विस्तार के बारे में जो बताया है, वह सुनिये।

विश्वेश्वराद्धस्तिपुरं तथा कन्या जरद्गवी।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः॥५२॥

विश्वेश्वर से लेकर अस्थिपुर तक तथा कन्या जरद्गवी से लेकर ओघवती तक 'सन्निहित' सरोवर का विस्तार बताया गया है।

मया श्रुतं प्रमाणं तु कथ्यमानं तु वामनम्।
तच्छृणवन्तु द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत्॥५३॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैंने जो सरोवर के विस्तार के बारे में सुना है वह वामनपुराण में वर्णित है, उसे सुनिये; वह जो महान् पुण्यवर्धक है।

विश्वेश्वराद्देववरा नृपावनात् सरस्वती।
सरः सन्निहितं प्रोक्तं समन्तादर्द्धयोजनम्॥५४॥

विश्वेश्वर से लेकर देववर तथा नृपावन से लेकर सरस्वती तक चारों ओर अर्धयोजन तक 'सन्निहित' सरोवर की स्थिति मानी गयी है।

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः॥५५॥

देवता और ऋषिगण मुक्ति की कामना से यहाँ आकर

निवास करते हैं। अन्य मनुष्यादि भी स्वर्ग की कामना से यहाँ आकर बसते हैं।

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्॥५६॥
रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान्हरः॥५७॥

योगी ब्रह्मा ने सृष्टिसर्जन की कामना से यहाँ निवास किया। विष्णु ने सृष्टि की रक्षा हेतु हरिरूप में यहाँ निवास किया। सरोवर के मध्य में प्रविष्ट रुद्र ने महातेजस्वी होकर इस तीर्थ में निवास करते हुए स्थाणुत्व को प्राप्त किया था।

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥५८॥

सर्वप्रथम वह ब्रह्मवेदी नाम से और तदनन्तर रामह्रद नाम से प्रसिद्ध था। कुरु के द्वारा कर्षित होने के कारण (हल चलाये जाने के कारण) यह आज कुरुक्षेत्र नाम से जाना जाता है।

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदस्य पञ्चकात्।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते॥५९॥

तरन्तुक और अरन्तुक के मध्य का क्षेत्र तथा रामह्रद और चतुर्मुख के मध्य का क्षेत्र कुरुक्षेत्र समन्तपंचक तथा उत्तरी ब्रह्मवेदी नाम से प्रख्यात है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

॥अथ त्रयोविंशोऽध्यांयः॥

(बलि को ऐश्वर्य-प्राप्ति)

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः॥१॥

कृपया वामन के माहात्म्य विशेषतः उसकी उत्पत्ति के विषय में, बलि के नियम तथा उसके द्वारा अपना राज्य इन्द्र को प्रदान करने के बारे में आप हमें बतायें।

लोमहर्षण उवाच-

शृण्वन्तु मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले॥२॥

लोमहर्षण ने कहा— महात्मा वामन की उत्पत्ति उनके माहात्म्य तथा कुरुजांगल में निवास के विषय में प्रसन्न होकर सुनिये।

तथैव वंशं दैत्यानां शृण्वन्तु द्विजसत्तमाः।
यस्मिन्वंशे समभवद्बलिर्वैरोचनिः पुरा॥३॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! प्राचीन काल में जिस दैत्यवंश में विरोचन का पुत्र बलि उत्पन्न हुआ उसके विषय में सुनिये।

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुर्भवत्।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः॥४॥

प्राचीन काल में दैत्यों का सर्वप्रथम पूर्वज हिरण्यकशिपु हुआ। जिसका पुत्र प्रह्लाद नामक दानव महातेजस्वी था।

तस्माद्विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः॥५॥
राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे।
कृतयज्ञेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते॥६॥

उस (प्रह्लाद) से विरोचन उत्पन्न हुआ था और विरोचन से बलि उत्पन्न हुआ। हिरण्यकशिपु के मारे जाने के बाद उसने देवताओं का सम्पूर्ण नाश करके समस्त सचराचर त्रिलोक पर यथेच्छरूप से राज्य किया। देवताओं के अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी समस्त त्रिलोक दैत्यमय हो गया। यज्ञ में देवताओं को दी जाने वाली आहुति भी समाप्त कर दी गयी।

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि॥७॥
संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुरागेण चैव हि॥८॥
दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते।

जब बलशाली मय और शम्बर विजयी हो गए तो समस्त दिशाएँ शुद्ध और पवित्र होकर धर्म कार्यों में

प्रवृत्त हो गई। प्रह्लाद, शम्बर, मय और अनुह्लाद ने समस्त दिशाओं को अधिकार में कर लिया। आकाश भी दैत्यों के अधिकार में था।

वेदेषु मखशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च॥ ९॥

प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्त्तमाने च सत्पथे।

समस्त लोक प्रकृतिस्थ (अपने स्वस्थ सुचारु स्वरूप में विद्यमान) तथा

अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते॥ १०॥

चतुष्पादे स्थिते धर्मे ह्यधर्मे पादविग्रहे।

प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु।

स्वधर्मयुक्तेषु तथा सर्वेष्वाश्रमवासिषु॥ ११॥

अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराज्ये बलिस्तदा।

हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च॥ १२॥

समस्त पापों का अभाव था तथा धर्मनिष्ठा निरन्तर बढ़ रही थी। धर्म अपने चारों चरणों पर स्थित था तथा अधर्म एक चरण मात्र रह गया था। राजागण प्रजापालन में रत रहते हुए सुशोभित हो रहे थे। समस्त नागरिक अपने-अपने आश्रमों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णाश्रमों) में स्थित होते हुए अपने-अपने धर्म में संलग्न थे। ऐसे समय में समस्त दानवसमाज प्रसन्न, हर्षित और उल्लसित हुआ और समस्त दानवों और असुरों ने मिलकर बलि का राज्याभिषेक कर दिया।

अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा।

पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी॥ १३॥

तदनन्तर कमल के आन्तरिक भाग की प्रभा के समान प्रभा वाली, अतिमंगलकारी एवं वरदात्री भगवती लक्ष्मी हाथ में कमल को लिये हुये बलि के पास पहुँची।

श्रीरुवाच–

वले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते।

प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये॥ १४॥

लक्ष्मी ने कहा– हे बलि! आप बलशालियों में श्रेष्ठ हैं। हे महान् द्युतिमान्! हे दैत्यराज! (आप के द्वारा) देवराज की पराजय होने पर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आपका कल्याण हो।

यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः।

दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता॥ १५॥

युद्ध में विशेष पराक्रम से आपने देवराज इन्द्र को पराजित किया है। आपके अद्भुत साहस को देखकर मैं स्वयं आपसे पास आई हूँ।

नाश्चर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले।

प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम्॥ १६॥

हे दानवव्याघ्र! हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न श्रेष्ठ दानव आप के द्वारा इस प्रकार (पराक्रम) का कार्य आश्चर्यजनक नहीं है।

विशेषितस्त्वया राजन्दैत्येन्द्रः प्रपितामहः।

येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ १७॥

हे राजन्! आपने विशेषरूप से अपने प्रपितामह दैत्यराज हिरण्यकशिपु को जिसने इस समस्त अक्षय त्रैलोक्य के राज्य का भोग किया था– गौरवान्वित किया है।

एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम्।

प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा॥ १८॥

ऐसा कहकर वह कल्याणकारी, वंदनीय, समस्त देवी-देवताओं में मनोरम देवी लक्ष्मी दैत्यराज बलि के अन्दर प्रवेश कर गई।

तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च।

प्रभा धृतिः क्षमा शक्तिर्ऋद्धिर्दिव्या महामतिः॥ १९॥

श्रुतिर्विद्या स्मृतिः कीर्तिः शान्तिः पुष्टि स्तथा क्रिया।

सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः॥ २०॥

प्रपद्यन्ते तु दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम्।

प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना॥ २१॥

तदनन्तर प्रसन्न समस्त श्रेष्ठ विभूतियाँ ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, मूर्ति, ऋद्धि, दिव्यप्रज्ञा, श्रुति, स्मृति, इडा, कीर्ति, शांति, पुष्टि, क्रिया, नृत्य और गीत में विशारद समस्त दिव्य अप्सराएँ दैत्येन्द्र बलि को प्राप्त हो गई और इस तरह ब्रह्मवादी बलि ने त्रैलोक्य के चराचर अतुलनीय ऐश्वर्य को प्राप्त कर लिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

(देवों द्वारा बलि पर विजय का उपाय)

ऋषय ऊचुः

देवानां ब्रूहि मे कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिताः।
कथं देवाधिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतां गतः॥ १॥

ऋषियों ने कहा— देवतागण किस कार्य में संलग्न होने के कारण पराजित हुये; तथा देवाधिदेव विष्णु ने वामन रूप क्यों धारण किया, यह बताइये।

लोमहर्षण उवाच—

वलिसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः।
मेरुसंस्थं ययौ शक्रः स्वमातुर्निलयं शुभम्॥ २॥

लोमहर्षण ने कहा— तीनों लोकों को बलि के अधिकार में देखकर देवराज इन्द्र अपनी माता के गृहस्थान पवित्र सुमेरु पर्वत पर गया।

समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम्।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः॥ ३॥

इन्द्र ने अपनी माता के समीप जाकर उन्हें बताया कि किस प्रकार दानवों ने आदित्यों को युद्ध में पराजित कर दिया।

अदितिरुवाच—

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः॥ ४॥
सहस्रशिरसा शक्यं केवलं हन्तुमेव हि।
तेनैकेन सहस्राक्ष हन्तुं नान्येन शक्यते॥ ५॥

अदिति ने कहा— हे पुत्र! विरोचनपुत्र बलि यदिं तुम्हारे और समस्त मरुद्गणों के द्वारा भी युद्ध में नहीं मारा गया तो फिर वह सिर्फ विष्णु के द्वारा ही युद्ध में मारा जा सकता है, किसी अन्य के द्वारा नहीं।

तद्वत्पृच्छाद्य पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम्।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः॥ ६॥

मैं अपने ब्रह्मज्ञ पिता कश्यप से उपाय पूछती हूँ जिससे उस महान् तेजस्वी दानव बलि की पराजय हो।

ततो देवाः सहसुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम्।
तत्रापश्यंश्च मारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम्॥ ७॥
आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मतेजसा।
तेजसा भास्कराकारैः स्थितमग्निशिखोपमम्॥ ८॥
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम्।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा॥ ९॥
हुताशवद्दीप्यमानमाज्यगन्धपुरस्कृतम्।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम्॥ १०॥
ब्रह्मवादिनमत्यग्रं चराचरगुरुं प्रभुम्।
ब्रह्मणाप्रतिमं लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम्॥ ११॥
यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजानां पतिरुत्तमः।
आत्मभावविशेषेण तृतीयोऽयं प्रजापतिः॥ १२॥

तदनन्तर अदिति के साथ समस्त देवगण कश्यप ऋषि के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने तपस्या के तेज से देदीप्यमान ऋषि मारीच को देखा, जो आदिकालीन, देवताओं के गुरु, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान, सूर्य के समान तेजस्वी, अग्निशिखा के समान द्युतिमान्, दण्डधारी, तपस्वी, कृष्णव्याघ्रचर्मधारी, वल्कलचर्मधारण किये हुए, तपोतेज से प्रदीप्त, यज्ञाग्नि के समान दीप्तिमान्, आज्यगन्ध को बिखेरते हुए, वेदाध्यायी, साक्षात् अग्नि के समान, ब्रह्मवादी, सत्यवादी, सुर और असुरों के गुरु, ब्राह्मणत्व में अप्रतिम, श्री से देदीप्यमान कश्यप को देखा जो समस्त लोकों के स्रष्टा, समस्त प्रजाओं के स्वामी तथा विशिष्ट आत्मभाव से तृतीय प्रजापति माने गए हैं।

अथ प्रणम्य ते वीराः सहादित्याः सुरर्षभाः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः॥ १३॥

तदनन्तर अदिति के साथ वे सभी वीरश्रेष्ठ देवगण हाथ जोड़कर कश्यप से बोले यथा मानसपुत्र ब्रह्मा से (निवेदन करते हैं)।

अजेयो युधिशक्रेण बलिर्दैत्यो बलाधिकः।
तस्माद्विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम्॥ १४॥

अत्यन्त बलशाली दैत्य बलि युद्ध में इन्द्र के द्वारा अपराजेय है। अतः हम देवताओं के पुष्टिवर्धन तथा कल्याण का विधान करें।

श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत्॥ १५॥

अपने पुत्र देवों के वचनों को सुनकर समस्त लोकों का निर्माण करने वाले कश्यप ऋषि ने ब्रह्मलोक जाने का विचार किया।

कश्यप उवाच-

शक्र गच्छाम सदनं ब्रह्मणः परमाद्भुतम्।
तथा पराजयं सर्वे ब्रह्मणः ख्यातुमुद्यताः॥१६॥

कश्यप ने कहा— हे इन्द्र! हम सब ब्रह्मा के परम अद्भुत निवास की ओर चलते हैं, वहीं जाकर बलि के पराजय के विषय में जानने के लिए उद्यत होते हैं।

सहादित्यास्ततो देवा याताः काश्यपमाश्रमम्।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥१७॥

तदनन्तर अदिति के साथ कश्यप के आश्रम में आये हुये वे देवगण महर्षियों के द्वारा सेवित ब्रह्मा के निवास की ओर प्रस्थान करने लगे।

ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्यथार्हैः सुमहाबलैः॥१८॥

वे महाबलशाली तेजस्वी देवता इच्छाचारी एवं अत्यन्त वेगगामी दिव्य यानों से मुहूर्त भर में ही ब्रह्मलोक पहुँच गये।

ब्रह्माणं प्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिं तमव्ययम्।
अध्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम्॥१९॥

अखण्डित तपोनिधि ब्रह्मा को देखने के इच्छुक वे देवगण ब्रह्मा की विस्तृत दिव्य सभा में जा पहुँचे।

षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम्।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुस्तदा॥२०॥

वह सभा भ्रमरगीतों से गुंजायमान थी। वहाँ सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण हो रहा था। वह सभा कल्याणकारी तथा शत्रुओं का नाश करने वाली थी। ऐसी सभा को देखकर देवगण प्रसन्न हो गए।

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षरैः।
शुश्रुवुस्त्वमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु॥२१॥

वहाँ सम्पादित यज्ञादि विधानों के मध्य, मुख्य ऋत्विजों के द्वारा पद और अक्षर के क्रमानुसार उच्चरित ऋक् मन्त्रों को देवगण सुनने लगे।

यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा।
स्वरेण परमर्षीणां सा बभूव प्रणादिता॥२२॥

यज्ञ-विद्या को जानने वाले, वेदवेत्ता तथा पद और क्रम को जानने वाले महान् ऋषियों के स्वर से वह सभा गूँज रही थी।

यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः।
छन्दसां चैव चार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः॥२३॥
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम्।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा नियताः संशितव्रताः॥२४॥
जपहोमपरा मुख्या ददृशुः कश्यपात्मजाः।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः॥२५॥

यज्ञस्तवन को जानने वाले, शिक्षाविद्, छन्दशास्त्र में निष्णात, सर्वविद्याओं में पारंगत, लोकाचारविद् ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारित मन्त्रों को प्रशस्त तथा संयतेन्द्रिय देवतागण सुनने लगे। जप और होम करने वाले कश्यपपुत्र देवताओं ने उस सभा में आसीन लोकपितामह ब्रह्मा को देखा।

चराचरगुरुः श्रीमान्विद्यया वेदमायया।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम्॥२६॥

वह लोकपितामह ब्रह्मा जो सुर और असुरों के गुरु हैं, विद्या तथा वेदवाणी के प्रभाव से दीप्तिमान् है, प्रजापतियों के द्वारा सतत उपास्य हैं।

दक्षः प्रचेताः पुलहो मरिचिश्च द्विजोत्तमाः।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा॥२७॥
विद्यास्तथान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च॥२८॥
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं महत्।
साङ्गोपाङ्गश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा॥२९॥
नयाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च।
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपासते॥३०॥

उस सभा में आदरणीय ब्राह्मण, दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, विद्या, अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, प्रकृति, विकार तथा अन्य महत् कारण,

साङ्गोपाङ्ग चारों वेद, लोकपति, सिद्धान्त, कार्य-संकल्प एवं प्राण यह सब स्वयंभू-ब्रह्मा की उपासना कर रहे थे।

धर्मो ह्यर्थश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः।
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तोऽथबुधस्तथा॥ ३१॥
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः॥ ३२॥
दिवाकरश्च सोमश्च दिनं रात्रिस्तथैव च।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः॥ ३३॥

वहाँ धर्म, अर्थ, काम, क्रोध, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनिश्चर, राहु तथा समस्त ग्रह नित्य उपस्थित होते थे। हे ब्राह्मण! मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसुगण, सूर्य, चन्द्र, दिवा, रात्रि, अर्धमास, मास, छः ऋतुएँ —सब वहाँ उपस्थित थे।

तां प्रविश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम्।
कश्यपस्त्रिदशेशश्च पुत्रो धर्मभृतां वरः॥ ३४॥

तदनन्तर समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली ब्रह्मा की उस दिव्य सभा में श्रेष्ठ धर्माचारी कश्यप ऋषि ने अपने पुत्रों के साथ प्रवेश किया।

सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम्।
ब्राह्म्या श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतक्लमाम्॥ ३५॥

वह सभा अत्यन्त तेजस्वी, दिव्य ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान तथा समस्त पापों का विमोचन करने वाली थी।

ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम्।
शिरोभिः प्रणता देवं देवा ब्रह्मर्षिभिः सह॥ ३६॥
ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः॥ ३७॥

उस सभा में उन समस्त देवताओं ने ब्रह्मर्षियों के साथ विराजमान परमासन पर स्थित ब्रह्मा को देखा। सिर से नमस्कार करते हुए वे देवगण ब्रह्मा के चरणों में नतमस्तक होकर, समस्त पापों से मुक्त, शान्त तथा समस्त उद्वेगों से रहित हो गए।

दृष्ट्वा तु तान्सुरान्सर्वान्कश्यपेन सहागतान्।
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः॥ ३८॥

कश्यप के साथ आए उन देवताओं को देखकर महातेजस्वी देवताओं के स्वामी, ऐश्वर्यवान् ब्रह्मा ने कहा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

(देवों का श्वेतद्वीप में जाना)

ब्रह्मोवाच

यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि।
चिन्तयाम्यहमव्यग्रे तदर्थं च महाबलाः॥ १॥

ब्रह्मा ने कहा— जिस कारण आप सब देवगण यहाँ आए हैं, हे महाबली देवगण! मैं उस विषय में पहले से ही चिन्ता कर रहा हूँ।

भविष्यति च वः सर्वं कांक्षितं यत्सुरोत्तमाः।
बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति॥ २॥
न केवलं सुरादीनां गतिर्मम स विश्वकृत्।
त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः॥ ३॥
यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः।
पूर्वजोऽयं सदाप्याहुरादिदेवं सनातनम्॥ ४॥
तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति।
देवानस्मान् श्रुतिं विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः॥ ५॥

हे उत्तम देवगण! आपकी मनोकामना पूर्ण होगी। दानवाधिपति बलि को जीतने वाला उत्पन्न होगा। वह विश्वकर्ता अकेला न केवल असुरों का ही शरणस्थान है, अपितु मेरा भी है। वह त्रैलोक्य का और देवों का भी अधिपति है। वही सनातन विश्वरूप सभी लोकों का स्वामी है। जो मेरा भी पूर्वज सनातन आदिदेव है, उस सनातन आदिदेव महात्मा को देवता भी नहीं जानते कि वह कौन है? परंतु वह पुरुषोत्तम तो इन देवताओं और इस समस्त विश्व को जानता है।

तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम्।
यदि योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम्॥ ६॥
क्षीरोदस्योत्तरे कूल उदीच्यां दिशि विश्वकृत्।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः॥ ७॥

भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितव्रताः।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरति दुश्चरम्॥८॥
ततः श्रोष्यथ संघुष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम्।
उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम्॥९॥
रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम्।
वाणीं परमसंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम्॥१०॥
दिव्यां सत्याकरीं सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम्।
सर्वदेवाधिदेवस्य ततोऽसौ भवितात्मनः॥११॥
तस्य व्रतसमाप्त्यां तु योगव्रतविसर्जने।
अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः॥१२॥

उसकी कृपा से ही मैं उत्तम गति का वर्णन करूँगा। हे कश्यप! यदि आप क्षीरसागर के उत्तरी तट पर जिसे मनीषिगण उत्तम अमृत स्थान कहते हैं, उस अमृत स्थान को प्राप्त कर व्रतपरायण होकर तथा योग में स्थित होकर महान् तपस्या करेंगे तो इसके अनन्तर आप उत्तर दिशा से मेघ के समान गंभीर गर्जनायुक्त, प्रेम से ओतप्रोत अक्षरों से पुष्ट, रमणीय, अभय देने वाली, सर्वदा कल्याण करने वाली, ब्रह्मवादियों के परम संस्कारों से युक्त, दिव्य, सत्य के बाणरूप, सत्य से भरी हुई, सभी पापों का नाश करने वाली वाणी तुम सुनोगे। तदनन्तर सर्वदेवाधिदेव स्वयं प्रकट होंगे। व्रत की समाप्ति तथा योगव्रत का विसर्जन होने पर आप उस वाणी को सुनेंगें। उस महात्मा देवाधिदेव का परम तेज अमोघ है।

कस्य किं वो वरं देवा ददामि वरदः स्थितः।
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्समीपमुपागताः॥१३॥
ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदा।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते॥१४॥
भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः।

हे देवो! किस को क्या वर चाहिए? मैं देता हूँ। मैं वरदान देने के लिए खड़ा हूँ। आप मेरी शरण में आये हैं, आपका स्वागत है। तदनन्तर अदिति और कश्यप ने सिर झुकाकर प्रणाम करके धीमान् देव से यह वरदान मांगा कि आप भगवान् ही हमारे पुत्र बनें, हम पर कृपा करें।

उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति॥१५॥
देवा ब्रुवन्तु ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च।

इस प्रकार उनके कहने पर भगवान् ने परम वाणी से कहा- 'ऐसा ही हो'। तदनन्तर समस्त देवताओं, अदिति और कश्यप ने भी 'ऐसा ही हो' कहा।

तथाऽस्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति॥१६॥
तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम्।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना॥१७॥

तथा देवों ने भी परमदेव को सिर से नमस्कार करके 'एवमस्तु' कहकर श्वेतद्वीप की ओर संकेत करके चन्द्र दिशा की ओर प्रस्थान किया। सत्यवादी भगवान् ब्रह्मा ने जैसा बताया था वैसे ही समस्त देवगण शीघ्र ही उस क्षीरसागर के समीप जा पहुँचे।

ते क्रान्ताः सागरान्सर्वान्पर्वतांश्च सकाननान्।
नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमाः॥१८॥
अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम्।
अभास्करममर्यादं तमसा सर्वतो वृतम्॥१९॥

उन देवगणों ने इस पृथ्वी पर समस्त सागरों, पर्वतों, जंगलों एवं विविध दिव्य नदियों को पार किया। उन्होंने तब पूर्णतया जीवनरहित, सूर्यरहित, तम से पूरी तरह आच्छादित, असीमित घोर अंधकार को देखा।

अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्ष सहस्रकम्॥२०॥

'अमृत' स्थान पर पहुँचकर महात्मा कश्यप ने देवताओं को सहस्रों वर्षों के मनवांछित फल को देने वाला दिव्य एवं कठोर तप के लिए प्रेरित किया।

प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भूतये॥२१॥
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थाने वीरासनेन च।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिताः॥२२॥

देवाधिदेव उस धीमान् योगी, विभूतिमान्, सहस्राक्षी नारायणदेव की प्रसन्नता के लिये समस्त देवतागण ब्रह्मचर्य, मौनव्रत धारण कर पद्मासनस्थित होकर, लगातार घोर तप करने लगे।

कश्यपस्तत्र भगवान्प्रसादार्थं महात्मनः।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम्॥२३॥

तदनन्तर भगवान् कश्यप ने परमदेव को प्रसन्न करने के लिए वेदोक्त परमस्तुति का उच्चारण प्रारम्भ कर दिया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

(कश्यप द्वारा भगवान की स्तुति)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कश्यप उवाच

नमोऽस्तु ते देवदेवएकशृङ्ग वृषसिन्धो वृषाकपे सुरवृष अनादिसंभव रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव धर्म वैकुण्ठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रव पृश्नितेजः निजजय अमृतशय सनातन त्रिधामन् तुषित महातत्त्व लोकनाथ पद्मनाभ विरिञ्चे बहुरूप अक्षय अक्षर हव्यभुक् खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर विरजः लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाभ हव्यभुक् गभस्तिनाथ शतक्रतुनाथ चन्द्ररथ सूर्यतेजः समुद्रवासः अज सहस्रशिरः सहस्रपाद अयोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्रसंभव विश्वं त्वामाहुः।

कश्यप ने कहा— 'हे देव देव एकशृङ्ग, वृषार्चि, सिन्धुवृष, वृषाकपि, सुरवृष, अनादिसंभव, रुद्रकपिल, विष्वक्सेन, सर्वभूतपति, ध्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषावर्त्त, अनादिमध्यानिधन, धनञ्जय, शुचिश्रव, पृश्नितेज, निजजय, अमृतेशय, सनातन, त्रिधाम, तुषित, महातत्त्व, लोकनाथ, पद्मनाभ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुज, खण्डभुज, शक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेष, सूक्ष्म, महानियमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज, धर्मनाभ, गभस्तिनाभ, शतक्रतुनाभ, चन्द्ररथ, सूर्यतेज, समुद्रवास, अज, सहस्रशिर, सहस्रपाद, अधोमुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति सहस्रास्य, सहस्रसंभव! आपको नमस्कार है। आपको सहस्रसत्व कहते हैं।

पुष्पहास चरमात्वमेव वौषट्। वषट्कारं त्वामाहुरग्र्यं मुखेषु प्राशितारं शतधारं सहस्रधारं। बभूव भूवन्द्या भूनाथ भृगुपुत्र वेदवेद्य ब्रह्मशय ब्राह्मणप्रिय।त्वमेव द्यौरसि मातारिश्वाऽसि धर्मोऽसि। होता पोता हन्ता मन्ता नेता होमहेतुस्त्वमेव। अग्र्यश्च धाम्नात्वमेव ऋग्भिः सुभाण्ड इज्योऽसि।सुमेधोऽसि। समिधस्त्वमेव पतिर्गतिर्दाता त्वमसि। मोक्षोऽसि। योगोऽसि।सृजसि धाता परमयज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि। दक्षिणाऽसि।विश्वमसिस्थविर हिरण्यगर्भ नारायण त्रिनयन आदिवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव भूविक्रम त्रिविक्रम प्रभाकर शंभो स्वयंभूः भूतादिमहाभूतोऽसि विश्वभूत विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि। विश्वभव ऊर्ध्वकर्मन् अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चिः अनन्तकर्मवंश प्राग्वंशधीः त्वमश्वमेधः वरार्थिनां वरदोऽसि त्वम्॥

हे पुष्पहास, चरम! आप ही वौषट् हैं एवं आपको ही वषट् कहते हैं। आप ही अग्र्य, यज्ञों मे प्राशिता (भोक्ता) सहस्रधार, भूः, भुवः एव स्वः हैं। आप ही वेदवेद्य, ब्रह्मशय, ब्राह्मणप्रिय, द्यौ; मातरिश्वा, धर्म, होता, पोता, मन्ता, नेता एवं होमहेतु हैं। आप ही विश्वतेज के द्वारा अग्र्य हैं और दिशाओं के द्वारा सुभाण्ड हैं अर्थात् दिशायें आपमें समाविष्ट हैं। आप इज्य, सुमेध, समिधा, मति, गति एवं दाता हैं। आप ही मोक्ष, योग, स्रष्टा धाता, परमयज्ञ, सोम, दीक्षित, दक्षिणा एवं विश्व हैं। आप ही स्थविर, हिरण्यनाभ, नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज, महापुरुष, पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, शंभु, स्वयम्भु, भूतादि, महाभूत, विश्वभूत एवं विश्व हैं। आप ही संसार के रक्षक, पवित्र विश्वभव, ऊर्ध्वकर्म, अमृत, दिवस्पति, वाचस्पति, घृतार्चि, अनन्तकर्मा, वंश, प्राग्वंश, विश्वपा तथा वरार्थियों के वरदाता हैं।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः॥ १॥

चार (आश्रावय), चार (अस्तु श्रौषड्), दो (यज) तथा पांच (ये यजामहे) और पुनः (वषट्) अक्षरों (इस प्रकार ४+४+२+५+२=१७ अक्षरों से जिसका हवन होता है उस होत्रात्मक को नमस्कार है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

(अदिति द्वारा भगवान की स्तुति)

लोमहर्षण उवाच

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम्॥ १॥
उवाच वचनं सम्यक्तुष्टः पुष्टपदाक्षरम्।
श्रीमान्प्रीतमना देवो यद्वदेत्प्रभुरीश्वरः॥ २॥
वरं वृणुध्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः।

लोमहर्षण ने कहा— ब्रह्मवेत्ता! ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋषि कश्यप के द्वारा उद्‌गीत इस प्रकार की परम स्तुति को सुनकर संतुष्ट नारायण ने पुष्ट पदाक्षरों से युक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण वचन कहे – हे सुरश्रेष्ठो! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और वरदान देता हूँ, आप वर माँगे, आपका कल्याण हो।

कश्यप उवाच–

प्र..ोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयः॥ ३॥
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धनः।
आदित्या अपि च श्रीमान्भगवानस्तु वै सुतः॥ ४॥

कश्यप ने कहा— हे सुरश्रेष्ठ! आप हम सब पर प्रसन्न हैं, हमारा ऐसा दृढ़ विश्वास है। हे श्रीमान् भगवन्! आप इन्द्र के कनिष्ठ भ्राता, समस्त संबंधियों के आनन्दवर्धक तथा अदिति के पुत्र के रूप में उत्पन्न हों।

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम्।
पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी॥ ५॥

देवमाता अदिति इस उत्तम उद्देश्य के लिये पुत्र के लिये वर की प्रार्थी होकर, वरद भगवान् से सविनय प्रार्थना करने लगीं।

देवा ऊचुः

निःश्रेयसार्थं सर्वेषां दैवतानां महेश्वरः।
त्राता भर्ता च दाता च शरणं भव नः सदा॥ ६॥

देवताओं ने कहा— हे महेश्वर! आप समस्त देवताओं के परम कल्याण के लिए हमारे सदैव त्राता भर्ता, दाता और शरणरूप हो जाएँ।

ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च।
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः।
मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः॥ ७॥

तदनन्तर विष्णु ने उन समस्त देवताओं और कश्यप से कहा— आपके जो भी शत्रु होंगें, वे मेरे सम्मुख मुहूर्त मात्र के लिए भी नहीं ठहर सकेंगे।

हत्वाऽसुरगणान्सर्वान्यज्ञभागाग्रभोजिनः।
हव्यादांश्च सुरान्सर्वान्कव्यादांश्च पितृनपि॥ ८॥
करिष्ये विबुधश्रेष्ठा पारमेष्ठ्येन कर्मणा।
यथायातेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः॥ ९॥

समस्त असुरगणों का वध करके यज्ञ के अग्रभाग का भोग करने वाले, हव्यादि भोगी देवताओं को तथा कव्यादि भोगी पितरों को परमेष्ठी कर्म से प्रतिष्ठित करूँगा। इसलिये हे देवगण! आप जिस मार्ग से आये हैं उसी मार्ग से वापस लौट जाएँ।

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म तं प्रभुम्॥ १०॥

लोमहर्षण ने कहा— सर्वसमर्थ विष्णुदेव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर प्रसन्नचित्त देवगण उन प्रभु विष्णु की उपासना करने लगे।

विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसा॥ ११॥
प्रयाताः प्राग्दिशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम्।

समस्त देवगण, कश्यप तथा अदिति उन देवेन्द्र विष्णु को नमस्कार करके तीव्रता से प्राक् दिशा की ओर कश्यप ऋषि के विशाल आश्रम के लिये चल पड़े।

ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत्॥ १२॥
प्रसाद्य ह्यदितिं तत्र तपसे तां न्ययोजयन्।
सा चचार तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा॥ १३॥
तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम्।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्यता वायुभोजना॥ १४॥
दैत्यैर्निराकृतान्दृष्ट्वा सभयान्नृषिसत्तमान्।
वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात्प्रणता हरिम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः स्तुतिभिः सा तपोधना॥ १५॥

महान् कुरुक्षेत्र वन में देवताओं ने कश्यप के आश्रम में पहुँचकर अदिति की आराधना कर उन्हें तप के लिए प्रेरित किया। अदिति ने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त घोर तप किया। उसी के नाम से विख्यात वह दिव्य वन समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला और शुभ वन हो गया। वह विष्णु की आराधना के लिए वाग्जिता हो गई तथा एक मात्र वायु को ही उन्होंने भोजन बनाया। अपने पुत्रों को दानवों से पराभूत प्रसन्नोद्वेग के कारण स्वयं को नगण्य मानकर उस तपोधना अदिति अत्यन्त उत्कृष्ट स्तुतिरूप परिष्कृत वाणी से हरि-विष्णु की स्तुति करने लगीं और कहने लगीं।

शरण्यं शरणं विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम्।
देवदैत्यमयं चादिमध्यमान्तस्वरूपिणम्॥ १६॥

वे विष्णु परम शरणागतों के शरण और रक्षक हैं, भक्तवत्सल हैं, देव और दैत्यस्वरूप हैं, आदि है, मध्य हैं और अन्त भी हैं।

अदितिरुवाच

नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे॥ १७॥
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये।
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये॥ १८॥

अदिति ने कहा— कुकृत्य के दुष्प्रभाव का नाश करने वाले विष्णु को नमस्कार है, कमलमालाधारी विष्णु को नमस्कार है, परमकल्याणकारी आदिकर्त्ता विष्णु को नमस्कार है, कमलनयन विष्णु को नमस्कार है, पंकजनाभि विष्णु को नमस्कार है, पूर्णकुसुमित कमल के कोश में निवास करने वाले विष्णु को नमस्कार है।

श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे।
नमः पद्मासिहस्ताय नमः कनकरेतसे॥ १९॥
तथाऽत्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने।
निर्गुणाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे॥ २०॥

लक्ष्मीप्रिय, दमनकारी, दृश्यमान जगत् की माया से परे, चक्रधारी, कमल और खड्ग को धारण करने वाले, स्वर्णिम वस्त्र धारण करने वाले, आत्मज्ञानस्वरूप, यज्ञस्वरूप, योगियों के चिन्त्य, योगी, निर्गुण, विशिष्ट, ब्रह्मा और हरिस्वरूपधारी, विष्णु को नमस्कार है।

जगत्संतिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे॥ २१॥

सम्पूर्ण जगत् जिसमें अवस्थित है, परन्तु जगत् को जो दिखाई नहीं देता, जो स्थूल है, जो अत्यन्त सूक्ष्म है, ऐसे शार्ङ्गधारी देवता को नमस्कार है।

यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः।
अपश्यद्भिर्जगद्यश्च दृश्यते हृदि संस्थितः॥ २२॥

समस्त संसार को देखते हुए मनुष्य भी जिसे नहीं देख सकते, परन्तु जगत् को न देखते हुए मनुष्य जिसे अपने हृदय में स्थित देख सकते हैं, उस देवता को मेरा प्रणाम है।

बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत्॥ २३॥

जो बाह्य ज्योति से अलक्ष्य है, जो समस्त ज्योति से परे दिखाई देता है, यह समस्त जगत् जिसमें उपस्थित है जिस के कारण इसका अस्तित्व है, उस देवता को मेरा प्रणाम है।

तस्मै समस्तजगताममराय नमो नमः।
आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितृणां परमः पतिः।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे॥ २४॥

समस्त जगत् के उस स्वामी को पुनः पुनः नमस्कार है, जो आद्य प्रजापति हैं, जो पितरों तथा देवताओं के परम स्वामी हैं ऐसे विधाता कृष्ण को हमारा नमस्कार है।

यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते॥ २५॥

जो प्रवृत्तिपरक तथा निवृत्तिपरक समस्त कर्मों से परे है, जो स्वर्ग तथा मोक्षरूपी फल को देने वाला है, ऐसे गदाधारी विष्णु को हमारा नमस्कार है।

यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे॥ २६॥

ऐसे विष्णु को नमस्कार है जो परम विशुद्धस्वरूप हैं तथा जो मन के चिंतनमात्र से ही तत्काल पापों को नष्ट कर देते हैं।

ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम्।
न पुनर्जन्ममरणं प्राप्नुवन्ति नमामि तम्॥ २७॥

समस्त जगत् के आधार, परम ईश, जन्म मरण से सर्वथा परे, जिस देव को देखकर मनुष्य पुनः जन्म-मरण प्राप्त नहीं करते, ऐसे विष्णु को मेरा नमस्कार है।

यो यज्ञो यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंस्थितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥ २८॥

यज्ञवेदी में स्थित जिसकी विशेष यज्ञों द्वारा परम विधि से पूजा की जाती है, मैं उस सर्वसमर्थ, दिव्य शक्तिरूप, तथा यज्ञस्वरूप विष्णु को नमन करता हूँ।

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां गतिः।
यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय विष्णवे नमः॥ २९॥

समस्त वेदों में उद्गीयमान, वेदज्ञों तथा विद्वानों की परम शरण तथा वेदों में जानने योग्य तत्त्व के रूप में वर्णित परमनित्य विष्णु को नमस्कार है

यतो विश्वं समुद्भूतं यस्मिन्प्रलयमेष्यति।
विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने॥ ३०॥

इस विश्व के उद्भव और स्थिति के आधारभूत महानुभाव विष्णु को नमस्कार है, जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उद्भूत हुआ है और प्रलयकाल में जिनमें यह लीन हो जायेगा।

आब्रह्मास्तम्बपर्यन्तं व्याप्तं येन चराचरम्।
मायाजालसमुन्नद्धं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३१॥

ब्रह्मा से लेकर तुच्छ ग्रास तक सम्पूर्ण चराचर जिससे व्याप्त है परन्तु जो स्वयं इस माया जाल से परे है, ऐसे उपेन्द्र विष्णु को नमस्कार है।

योऽत्र तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम्॥ ३२॥

जलरूप में स्थित होकर जो सर्वशक्तिमान ईश्वर समस्त विश्व का भरण-पोषण करते हैं ऐसे प्रजापालक विश्वपति विष्णु को नमस्कार है।

मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्विना विनिहन्ति यः।
रात्रिजं सूर्यरूपी च तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३३॥
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्।
पश्यतः कर्म सततं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३४॥

चन्द्रमा और सूर्यरूपी दो नेत्रों से जो इस समस्त लोक के शुभ और अशुभ कर्मों को निरन्तर देखता रहता है ऐसे उपेन्द्र विष्णु को मेरा नमस्कार है।

यस्मिन्सर्वेश्वरे नित्यं सत्यमेतन्मयोदितम्।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम्॥ ३५॥

मैं उस सर्वशक्तिमान्, सर्वथा एवं सर्वदा एकरूप, अजन्य विष्णु को नमस्कार करती हूँ, मैंने जो यह कहा कि यह समस्त विश्व उस से व्याप्त है, वह सर्वथा सत्य है।

यद्येतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्चातो जनार्दन।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥ ३६॥

हे जनार्दन! जो मैंने बार-बार कहा है, यदि वह सत्य है तो उस सत्य के प्रभाव से मेरे समस्त मनोरथ सफल हो जाएँ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये
सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

(अदिति को वरदान)

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतोऽथ भगवान्वासुदेव उवाच ताम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः॥ १॥

लोमहर्षण ने कहा— समस्त प्राणियों के लिये अदृश्य, परन्तु अदिति के दृष्टिपथ में स्थित, अदिति के द्वारा इस प्रकार स्तुत्यमान भगवान् वासुदेव अदिति से बोले—

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः॥ २॥

श्रीभगवान् ने कहा— हे धर्मज्ञ अदिति! जिन अभिवांछित मनोरथों की तुम इच्छा करती हो, मेरी कृपा से उन्हें तुम अवश्य ही प्राप्त करोगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

शृणु त्वं च महाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति॥ ३॥

हे महाभागे! सुनो! तुम्हारे हृदय में जो अभिवांछित वर है, वह अवश्य ही प्राप्त होगा। मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होगा।

यश्चेह त्वद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति।
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति॥४॥

जो भी इस वन में तीन रात्रि तक व्रत का अनुष्ठान करेगा वह मन से जो कामनाएँ करेगा, निश्चय ही वे कामनाएं पूर्ण हो जायेगी ।

दूरस्थोऽपि वनं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन्नरः॥५॥

व्यक्ति दूर रह कर अदिति वन का स्मरण भी करता है, तो वह भी परमगति को प्राप्त कर लेता है। फिर इस वन में निवास करने वालों का तो कहना ही क्या?

यश्चेह ब्राह्मणान्पञ्च त्रीन्वा द्वावेकमेव वा।
भोजयेच्छ्रद्धया युक्तः स याति परमां गतिम्॥६॥

जो व्यक्ति इस अदिति वन में एक, दो, तीन या पाँच भी ब्राह्मण को श्रद्धा से भोजन कराता है, वह जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अदितिरुवाच

यदि देवः प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः॥७॥

अदिति ने कहा— हे भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्ति से प्रसन्न हैं, तो मेरा पुत्र इन्द्र तीनों लोकों का अधिपति हो जाए।

हतं राज्यं हतश्चास्य यज्ञभाग इहासुरैः।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत्प्राप्नोतु सुतो मम॥८॥

असुरों ने मेरे पुत्र का राज्य तथा यज्ञभाग भी छीन लिया। हे वर देने वाले प्रभु! आपके प्रसन्न होने पर मेरा पुत्र वह पुनः प्राप्त कर ले।

हतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव।
प्रपन्नदायविभ्रंशो बाधां मे कुरुते हृदि॥९॥

हे केशव! राज्यच्युत होना मेरे पुत्र के दुःख का कारण नहीं है, अपितु प्रार्थियों की इच्छापूर्ति में उसकी असमर्थता मेरे हृदय को दुःखी करती है।

भगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे संभविष्यामि कश्यपात्॥१०॥

श्री भगवान् ने कहा— हे देवी! आपका जो अभीप्सित है, वह मैंने वर दे दिया। अपने ही अंश से मैं आपके गर्भ में कश्यप से उत्पन्न होऊँगा।

तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः।
तानहं च हनिष्यामि निर्वृता भव नन्दिनि॥११॥

आपके गर्भ से उत्पन्न होकर मैं जो भी शत्रु हैं, उन सब का वध कर दूँगा। हे नंदिनी! अब आप वापस लौट जाएँ।

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन।
नाहं त्वामुदरे वोढुमीश शक्ष्यामि केशव।
यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वरः॥१२॥

अदिति ने कहा— हे समस्त देवों के देव! प्रसन्न हो जाइये। हे विश्व के आधारभूत! आपको नमस्कार है। हे केशव! मैं अपने उदर में आपको धारण नहीं कर सकूँगी। हे ईश्वर! आप तो समस्त संसार के आधारभूत हैं जिसमें समस्त जगत् प्रतिष्ठित है।

श्रीभगवानुवाच

अहं च त्वां वहिष्यामि आत्मानं चैव नन्दिनि।
न च पीडां करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥१३

श्रीभगवान् ने कहा— मैं स्वयं तुम्हारा और अपना (भार) वहन करूँगा। तुम्हें कोई पीड़ा भी नहीं होगी। हे नंदिनी! तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं प्रस्थान करता हूँ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे।
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः।
चकम्पिरे महाशैला जग्मुः क्षोभं महाब्धयः॥१४॥

यह कहकर भगवान् के अन्तर्ध्यान होने पर अदिति ने गर्भ धारण कर लिया। तदनन्तर कृष्ण के गर्भ में प्रतिष्ठित होते ही समस्त पृथ्वी हिलने लगी, विशाल पर्वत कम्पायमान होने लगे और महासागर क्षुब्ध होकर तरंगित होने लगे।

यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुत्तमम्।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम द्विजपुंगवाः॥ १५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जैसे-जैसे अदिति चलती और पृथ्वी पर पैर रखती वैसे-वैसे ही पृथ्वी खेद-वश नतमस्तक हो जाती।

दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना॥ १६॥

मधुसूदन के गर्भ में प्रतिष्ठित होने पर समस्त दैत्यों का बल क्षीण होने लगा, जैसा कि ब्रह्मा ने कहा था।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये अष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(प्रह्लाद द्वारा बलि की निन्दा और शाप)

लोमहर्षण उवाच

निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम्॥ १॥

लोमहर्षण ने कहा— समस्त असुरों को निस्तेज देखकर दानवराज बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा-

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव॥ २॥

बलि ने कहा— हे तात! दैत्यगण इस प्रकार निस्तेज हो गए हैं जैसे अग्नि से दग्ध हो गए हों या फिर अचानक वह ब्रह्मदण्ड से आहत हो गए हों।

दुरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या विधिनिर्मिता।
नाशायैषा समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः॥ ३॥

क्या यह दैत्यों का दुर्भाग्य है या फिर इनके नाश के लिए विधि के द्वारा विहित इन दैत्यों का प्रतिकार ही उत्पन्न हो गया है जिससे यह निस्तेज हो गए हैं!

लोमहर्षण उवाच

इत्यसुरवरस्तेन पृष्टः पौत्रेण ब्राह्मणाः।
चिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम्॥ ४॥

लोमहर्षण ने कहा— हे ब्राह्मणों! इस प्रकार अपने पौत्र के द्वारा पूछे जाने पर असुरश्रेष्ठ (प्रह्लाद) ने लम्बे समय तक ध्यानमग्न होकर अपने पौत्र बलि को यह कहा।

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां धृतिम्।
सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः॥ ५॥

प्रह्लाद ने कहा— पर्वत चलायमान हो गए हैं, भूमि ने अपनी स्थिरता छोड़ दी है, विशाल महासागर क्षुब्ध हो गए हैं, दैत्यगण निस्तेज हो गए हैं।

सूर्योदय यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः।
देवानां च परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते॥ ६॥

सूर्योदय पर समस्त ग्रह जिस प्रकार पहले गति करते थे अब वैसे नहीं करते (ग्रहों की गति भी पदल गई है)। देवों की समृद्धि बढ़ रही है। इन सब कारणों से अनुमान लगाना चाहिये।

महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन॥ ७॥

हे महाशक्तिशाली दानवराज! वह कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपको वह कारण और उसके परिणाम को किसी भी अवस्था में नगण्य नहीं मानना चाहिये।

लोमहर्षण उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः।
अत्यर्थभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥ ८॥

लोमहर्षण ने कहा— अनन्यभक्त असुरोत्तम प्रह्लाद दानवराज बलि से इस प्रकार कहकर वह मन से जगदीश हरि के पास पहुँच गए।

स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः।
विचारयामास ततो यथा देवो जनार्दनः॥ ९॥

असुर प्रह्लाद ने मन को ध्यानमग्न करके विचार किया कि जनार्दन भगवान् विष्णु इस समय कहाँ हो सकते हैं?

स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्।
तदन्तश्च वसून रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा॥ १०॥

प्रह्लाद ने अदिति के गर्भ में हरि को वामनाकृति में

देखा। तदनन्तर उसने वसुओं, रुद्रों, अश्विनी और मरुतों को देखा।

साध्यान् विश्वे तथादित्यांन् गन्धर्वोरगराक्षसान्।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम्॥ ११॥

तदनन्तर प्रह्लाद ने साध्यों, विश्वदेवों, आदित्यों, गन्धर्वों, राक्षसों, अपने पुत्र विरोचन और असुरराज बलि को (देखा)।

जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथाऽसुरान्।
आत्मानमुर्वी गगनं वायु वारि हुताशनम्॥ १२॥
समुद्राद्रिसरिद्द्वीपान्सरांसि च पशून्महीम्।
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्॥ १३॥
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतिन्॥ १४॥

तदनन्तर उसने जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण, अन्य राक्षस, स्वयं (प्रह्लाद) को, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, तालाबों, पृथ्वी पर रहने वाले समस्त पशुओं, पक्षियों, रेंगने वाले जन्तुओं, समस्त लोकों के स्रष्टा ब्रह्मा, शिव, समस्त ग्रह, नक्षत्र, तारागण और दक्षादि प्रजापतियों को (देखा)।

संपश्यन्विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात्पुनः।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोन्निं ततः॥ १५॥

यह सब देखकर विस्मित प्रह्लाद कुछ समय पश्चात् प्रकृतिस्थ हुए और उन्होंने विरोचन पुत्र दैत्यराज बलि से कहा—

तत्संज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम्।
तेजसो हानिरुत्पन्ना शृण्वन्तु तदशेषतः॥ १६॥

मैंने उस कारण का पूर्णतया अन्वेषण कर लिया है जिससे तुम्हारे तेज का ह्रास हो रहा है। उस कारण को तुम ध्यानपूर्वक पूर्णरूप से सुनो।

देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिजः।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः॥ १७॥
परावराणां परमः परापरसतां गतिः।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः।
स्थितिं कर्त्तुं जगन्नाथः सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः॥ १८॥

सभी देवों के देव, जगत् के कारण, जगत् के आदि, अज, प्रभु, स्वयं अनादि परन्तु विश्व के आदिस्वरूप, वरणीय, वरदाता हरि, पर और अपर सबके स्वामी, पर और अपर सब की एकमात्र गति, समस्त प्रमाणों के प्रमाण प्रभु, सात लोकों के गुरुओं के गुरु वे जगन्नाथ भगवान् विष्णु इस जगत् की पुनः प्रतिष्ठा के लिये गर्भ में प्रतिष्ठित हुए हैं।

प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः
कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः॥ १९॥
न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनि-
र्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २०॥

जो प्रभुओं के प्रभु हैं, श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम हैं, जिनका आदि, मध्य या अन्त नहीं है, ऐसे वे महात्मा विष्णु अंश स्वरूप से तीनों लोकों को सनाथ करने के लिए अपने अदिति के गर्भ से अवतार ले रहे हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा और मरीचि कोई नहीं जानता। हे दैत्याधिप! वह वासुदेव अपनी एक कला से अवतरित हो रहे हैं।

यमक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन्प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि देवम्॥ २१॥

जो वेदवेत्ताओं के द्वारा अक्षर रूप में जाने जाते हैं, ज्ञान के द्वारा विनष्ट पाप वाले महात्मागण जिस में अन्तःस्थ होते हैं तथा जिन में लीन होने पर उन (महात्माओं) का पुनर्जन्म नहीं होता, मैं ऐसे भगवान् वासुदेव को प्रणाम करता हूँ।

भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम्।
लयं च यस्मिन्प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम्॥ २२॥

समस्त प्राणी जगत् जिससे इसी प्रकार उत्पन्न होता है जिस प्रकार समुद्र से लहरें निरन्तर उद्भूत होती हैं और जिसमें प्रलयावस्था के समय समस्त प्राणी लीन हो जाते हैं ऐसे अचिन्त्य वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

न यस्य रूपं न बलं प्रभावो
न च प्रतापः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते सर्वपितामहाद्यैस्तं
वासुदेवं प्रणमामि नित्यम्॥ २३॥

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य।
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य॥ २४॥

जिसने रूप के ग्रहण के लिये चक्षु को, स्पर्श के ग्रहण के लिये त्वचा को, रस के लिये रसना को तथा गन्ध के ग्रहण के लिए घ्राण को नियुक्त किया है परन्तु जो स्वयं चक्षु, त्वचा, रसना और श्रवण से सर्वथा रहित हैं ऐसे भगवान् वासुदेव को मेरा प्रणाम है।

स्वयंप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या।
शक्यं तमीड्यमनघं च देवं
ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम्॥२५॥

जो सर्वथा और सर्वदा स्वयं प्रकाशित हैं तथा समस्त युक्तियों के द्वारा जो सर्वेश्वर रूप में जाने जाते हैं, ऐसे पूजनीय, सर्वथा पापरहित, समस्त जगत् में ज्योति रूप में आभासित हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं
धराऽचला धारयतीह सर्वम्।
शेते ग्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीड्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥ २६॥

जिन्होंने केवल एक नुकीले दाँत से इस अचल समस्त पृथ्वी को धारण कर लिया तथा जो इस समस्त जगत् को अपने में लीन करके शयन करते हैं ऐसे सर्वसमर्थ पूजनीय विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हतानि तेजांसि महाऽसुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीश
मशेषसंसारतरोः कुठारम्॥ २७॥

गर्भ में जिनके अंशावतार मात्र से ही महान् असुरों के तेज का ह्रास हो गया तथा इस संसाररूपी वृक्ष को जड़ से काटने के लिए जो कुल्हाड़ी के समान हैं, ऐसे अनन्त स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।

देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महासुरेन्द्राः।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो
हतानि वस्तेन बलं वपूंषि॥ २८॥

इस जगत् के उद्गम वह महान् वासुदेव अपने सोलहवें अंश से इन्द्र की माता अदिति के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं। हे असुरपति! इसी कारणवश तुम्हारे शरीरों से तेज का ह्रास हो गया है।

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ २९॥

बलि ने कहा– हे तात! यह हरि कौन है? जिससे हमें भय हो रहा है। मेरे सैकड़ों दानव ऐसे हैं जो वासुदेव से भी अधिक बलशाली है।

विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयःशंकुस्तथैव च।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः॥ ३०॥
प्रतापी: प्रघशः शुम्भः कुक्कुराक्षश्च दुर्जयः।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा॥ ३१॥
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन संमितः॥ ३२॥

विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, अयःशंकु, हयशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकार, महाहनु प्रतापी, प्रघश, शम्भु, कुक्कुराक्ष, दुर्जय– यह सब और अन्य भी मेरे दैत्य और दानव महाबलशाली महातेजस्वी तथा इस समस्त पृथ्वी का भार उठाने में सक्षम हैं। इनमें से प्रत्येक की आधे भी शक्ति का सामना कृष्ण नहीं कर सकता।

लोमहर्षण उवाच

पौत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ ३३॥

विनाशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवा:।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान्॥ ३४॥

लोमहर्षण ने कहा—अपने पौत्र के इस वचन को सुनकर क्रोधित दैत्यप्रवर प्रह्लाद ने विष्णु की निन्दा करने वाले बलि से कहा, जिनका तुम्हारे समान दुर्बुद्धि और अविवेकी राजा होगा। ऐसे दैत्य और दानवों का समुदाय है, निश्चय ही विनाश होगा।

देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्।
त्वामृते पापसंकल्प: कोऽन्य एवं वदिष्यति॥ ३५॥

तुम्हारे अतिरिक्त और कौन पापात्मा होगा जो देवाधिदेव, महाप्रतापी, अजन्मा, सर्वसमर्थ वासुदेव के विषय में इस प्रकार का कुभाषण करेगा।

य एते भवता प्रोक्ता: समस्ता दैत्यदानवा:।
सब्रह्मकास्तथा देवा: स्थावरान्ता विभूतय:॥ ३६॥
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम्।
समुद्रद्वीपलोकोऽयं यश्चेदं सचराचरम् ॥ ३७॥
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिन: परमात्मन:।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति॥ ३८॥
ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्॥ ३९॥

तुम्हारे द्वारा वर्णित समस्त दैत्य और दानव, समस्त देवतागण, ब्राह्मण, स्थावर, जंगम, जगत्, प्रकृति, तुम, मैं, यह सम्पूर्ण विश्व, पर्वत, वृक्ष, नदी, वन, समुद्र, द्वीप लोकत्रय और जो भी यह चराचर विश्व है वह समस्त उसके केवल एक अंशमात्र से उत्पन्न हैं उन सर्ववन्द्य, सर्वव्यापक परमात्मा के विषय में तुम्हारे अतिरिक्ति और कौन विनाशाभिमुख, अविवेकी, दुर्बुद्धि, असंयमी, तथा अपने ज्येष्ठों के आदेश का अतिक्रमण करने वाला होगा जो इस प्रकार अनर्गल प्रलाप करेगा।

शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधम:।
यस्य त्वमीदृश: पुत्रो देवदेवावमानक:॥ ४०॥

मैं निश्चय ही शोचनीय हूँ जिसके घर में तुम्हारे पिता जैसा अधम व्यक्ति उत्पन्न हुआ जिसका तुम जैसा देवाधिदेव विष्णु की अवमानना करने वाला पुत्र है।

तिष्ठत्वनेकसंसारसंघातौघविनाशिनि।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम्॥ ४१॥

अनेक संसार-समूह के पापों का विनाश करने वाले श्रीकृष्ण में मेरी भक्ति है, तो फिर आप मेरी ओर ध्यान क्यों नहीं देते है ?

न मे प्रियतर: कृष्णादपि देहोऽयमात्मन:।
इति जानात्ययं लोको भवांश्च दितिनन्दन॥ ४२॥

मुझे मेरा यह अपना शरीर भी महात्मा कृष्ण से अधिक प्रिय नहीं है। यह बात यह समस्त लोक और राक्षसाधम तुम भी जानते हो।

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन्गौरवं मम॥ ४३॥

यह जानते हुये भी कि हरि प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, तुम मुझे अपमानित करते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो।

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले।
ममापि सर्वजगतां गुरुर्नारायणो हरि:॥ ४४॥

हे बलि! विरोचन तुम्हारे गुरु हैं, विरोचन का गुरु मैं हूँ और मेरे गुरु समस्त विश्व के पूजनीय नारायण हरि हैं।

निन्दां करोषि तस्मिंस्त्वं कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ।
यस्मात्तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् भ्रंशमेष्यसि॥ ४५॥

तुमने गुरु के गुरु के गुरु कृष्ण की निन्दा की है, इसीलिए तुम निश्चय ही अपने समस्त पराक्रम और ऐश्वर्य से विहीन हो जाओगे।

स देवो जगतां नाथो बले प्रभुर्जनार्दन:।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते भक्तिमानत्र मे गुरु:॥ ४६॥

हे बलि! समस्त जगत् के स्वामी प्रभु जनार्दन मेरे गुरु हैं। अत: तुम्हारे पिता के पूजनीय मेरी अवहेलना तुम्हारे द्वारा उचित नहीं है।

एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम्।
नापेक्षितस्त्वया यस्मात्तस्माच्छापं ददामि ते॥ ४७॥

इतना सब जानने पर भी समस्त जगत् के गुरु हरि की तुम निन्दा और अपमान कर रहे हो। इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ।

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपं राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ४८॥

हे बलि! विष्णु की अवमानना करने वाले जो वाक्य तुमने कहे वे मेरे लिये अपने शिरच्छेदन से भी बढ़ कर हैं, इसलिये (मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि) तुम राज्यच्युत होकर विनाश को प्राप्त हो जाओ।

यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ४९॥

इस संसाररूपी महासागर में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षक नहीं है। इसलिये मैं तुम्हें शीघ्र ही राज्यच्युत देखूँ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये
एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

(भगवान वामन का जन्म)

लोमहर्षण उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम्।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ १॥

लोमहर्षण ने कहा— इस प्रकार भयकारी और अप्रिय वचन सुनकर दैत्यपति बलि गुरु (प्रह्लाद) को पुनः पुनः नमस्कार करके उन्हें प्रसन्न करने लगे।

वलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि।
बलावलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमीरितम्॥ २॥

बलि ने कहा— हे तात! प्रसन्न हो जाइय। मोह से संमूढ मुझ पर क्रोध भत कीजिये। बलाभिमान से बुद्धिविहीन होकर मैंने इस प्रकार के वचन बोल दिये।

मोहापहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम्॥ ३॥

हे दानवप्रवर! मोह के द्वारा मतिभ्रष्ट मैं निश्चय ही पापी और दुराचारी हूँ। आपने मुझे शाप देकर अच्छा ही किया।

राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम्।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तथैवाविनये कृते॥ ४॥

मैं निश्चित रूप से राज्यच्युत और यशःच्युत होऊँगा, क्योंकि मेरे द्वारा अवमानना करने से आप दुःखी हुए हैं।

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम्।
संसारे दुर्लभास्तात गुरवो ये भवद्विधाः॥ ५॥

हे तात! इस संसार में त्रैलोक्य का राज्य, समस्त ऐश्वर्य अथवा अन्य कुछ भी दुर्लभ नहीं है, किन्तु आप जैसे अग्रजों का मिलना दुर्लभ है।

प्रसीद तात मा कोपं कर्त्तुमर्हसि दैत्यप।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवानिशम्॥ ६॥

हे दैत्यराज पितामह! प्रसन्न हो जाइये, क्रोध मत कीजिए। आपकी क्रोधाग्नि से दग्ध होकर मैं रात-दिन परितप्त (बेचैन) हो रहा हूँ।

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम॥ ७॥

हे वत्स! क्रोध से मैं मूढ हो गया था जिस कारण मैंने तुम्हें शाप दे दिया। मोह ने मेरा विवेक हर लिया था।

यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर।
तत्कथं सर्वगं जानन्हरिं कञ्चिच्छपाम्यहम्॥ ८॥

हे असुरप्रवर! यह जो शाप मैंने तुम्हें दिया है, वह आज से ही प्रभावी हो जायेगा पर तुम दुःखी न होओ।

यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगवः।
भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मात्त्वं मा विषीद वै॥ ९॥

हे असुरराज! यदि मोह से मेरा विवेक नष्ट न होता तो मैं तुम्हें शाप क्यों देता, यह निश्चय ही होने वाला था, इसलिए तुम शोक न करो।

अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति॥ १०॥

आज से लेकर तुम देवेश और सर्वसमर्थ अच्युत हरि की शरण में चले जाओ। उनकी भक्ति को ग्रहण करो, वही तुम्हारे रक्षक होंगे।

शापं प्राप्य च मे वीर देवेशः संस्मृतस्त्वया।
तथा तथा वदिष्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा॥ ११॥

हे वीर! मेरे द्वारा शाप दिये जाने पर ही तुमने देवेश हरि का संस्मरण किया है। मैं तुम्हें उसी प्रकार निर्देश करूँगा जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

लोमहर्षण उवाच

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम्।
क्रमेण ह्युदरे देवो वृद्धिं प्राप्तो महायशाः॥ १२॥

लोमहर्षण ने कहा— अदिति की समस्त कामनाओं और समृद्धियों को परिपूर्ण करने वाले वर को प्राप्त करने पर, महान् यशस्वी देव अदिति के गर्भ में वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते।
अजायत स गोविन्दो भगवान्वामनाकृतिः॥ १३॥

तदनन्तर दसवें मास में प्रसव काल आने पर वह भगवान् गोविन्द वामनाकृति में उत्पन्न हुए।

अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन्ह सर्वामरेश्वरे।
देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा॥ १४॥

जगन्नाथ विष्णु के वामनेश्वर के रूप में अवतीर्ण होने पर समस्त देवता तथा देवमाता अदिति शोकरहित हो गए।

ववुर्वाताः सुखस्पर्शा नीरजस्कमभून्नभः।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥ १५॥

वायु सुख और शीतल स्पर्श वाला होकर बहने लगा आकाश रजो रहित हो गया तथा समस्त प्राणियों की मति धर्माभिमुख हो गई।

नोद्वेगश्चाप्यभूद्देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः।
तदा हि सर्वभूतानां धर्मे मतिरजायत॥ १६॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! मनुष्यों के शरीर में किसी भी प्रकार का उद्वेग नहीं था। इसीलिए समस्त प्राणियों की रुचि धर्माभिमुख हो गई थी।

तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम्॥ १७॥

लोकपितामह ब्रह्मा अवतार ग्रहण करने वाले उस प्रभु जातकर्मादि संस्कार करके प्रसन्न करने लगे।

ब्रह्मोवाच

जयाधीश जयाजेय जय विश्वगुरो हरे।
जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत॥ १८॥

हे जगत् स्वामी! हे विश्वगुरु! हे हरि! हे जन्ममृत्युजरा से सर्वथा परे! हे अनन्त! आपकी जय हो, हे अच्युत! जय हो।

जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत॥ १९॥

हे अपराजेय! आपकी जय हो। हे अशेष! आपकी जय हो। हे अव्यक्त! आपकी जय हो। हे परमार्थ के साधन! आपकी जय हो। हे सर्वज्ञ! आपकी जय हो। हे ज्ञानरूप! हे ज्ञेयरूप! आपकी जय हो।

जयाशेष जगत्साक्षिञ्जगत्कर्त्तर्जगद्गुरो।
जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयसे जय॥ २०॥

हे अनन्त! हे जगत् के साक्षी! हे जगत् के कता! हे जगत् गुरु! हे चराचर जगत् के स्वामी! हे जगत् की स्थिति और संहार के एकमात्र स्वामी! आपकी जय हो।

जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित।
जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम॥ २१॥

हे अनन्त! आपकी जय हो। हे अखिल! आपकी जय हो। हे सबके हृद्देश में प्रतिष्ठित! आपकी जय हो। हे आदि, मध्य और अन्त! आपकी जय हो। हे सर्वज्ञानमय! हे सर्वश्रेष्ठ! आपकी जय हो।

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर।
योगिभिर्मुक्तिकामैस्तु दमादिगुणभूषण॥ २२॥

हे मुमुक्षुओं के द्वारा भी अवर्णनीय! हे नित्यप्रसन्न! हे सर्वेश्वर! हे दमादिगुणों से सुशोभित! आपकी जय हो।

जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय।
जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय॥ २३॥

हे अतिसूक्ष्म! हे दुर्ज्ञेय! हे जगत् के मूल! हे सूक्ष्मातिसूक्ष्म! हे इन्द्रियरहित! हे इन्द्रियसहित! हे जगन्मय! आपकी जय हो।

जय स्वमायायोगस्थ शेषभोग जयाक्षर।
जयैकदंष्ट्राप्रान्तेन समुद्धृतवसुंधर॥ २४॥

हे अपनी माया से योग में स्थित! हे शेषशायी! अक्षर! एकदंत के अग्रभाग पर सम्पूर्ण पृथ्वी को वहन करने वाले आपकी जय हो।

नृकेसरिन्सुरारातिवक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन्मायावामन केशव॥ २५॥

हे नरकेसरी! हे देवशत्रुओं के वक्षस्थल को विदीर्ण करने वाले! हे विश्वात्मा! हे माया से वामन रूप धारण करने वाले! हे केशव! आपकी जय हो।

निजमायापरिच्छिन्न जगद्धातर्जनार्दन।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥ २६॥

अपनी माया से आविष्ट (आवृत) जगत् को धारण करने वाले हे जनार्दन! हे अचिन्त्य! हे अनेकस्वरूप होते हुए भी एकरूप प्रभु! आपकी जय हो।

वर्द्धस्व वर्द्धितानेकविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥ २७॥

न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे।
ज्ञातुमीशा न मुनयः सनकाद्या न योगिनः॥ २८॥

हे हरि! न तो मैं और न समस्त उत्पन्न जगत् का स्वामी, न इन्द्रादि अनेक देवता न सनकादि मुनि और न योगीजन आपको जानने में समर्थ हैं।

त्वं मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥ २९॥

हे जगत् के स्वामी! यह समस्त जगत् आपके माया के आवरण से ढका है। हे सर्वेश! आपकी कृपा के बिना कौन प्राणी आपको जान सकता है।

त्वमेवाराधितो येन प्रसादसुमुखः प्रभो।
स एव केवलं देवं वेत्ति त्वां नेतरो जनः॥ ३०॥

हे प्रभु! विभिन्न प्रकार से आराधित आप जिस व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसके अभिमुख होते हैं वही आपको जान सकता है, कोई अन्य नहीं।

तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन्पृथुलोचन॥ ३१॥

हे ईश्वराधीश्वर! हे विश्वात्मन्! हे सर्वसमर्थ! हे पृथुलोचन स्वामी! इस जगत् की समृद्धि के लिए उघम करें।

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसंपदम्॥ ३२॥

लोमहर्षण ने कहा— इस प्रकार प्रह्लाद के द्वारा स्तुति किये जाने पर वह वामन रूपधारण करने वाले हरि हँसकर भाव-गम्भीर और परिष्कृत वाणी में बोले—

स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च।
मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्॥ ३३॥

आपके द्वारा मेरी स्तुति की गई है। परन्तु इससे पहले इन्द्रादि देवताओं तथा कश्यप के द्वारा भी मेरी स्तुति की गई है। इसलिये इस लोकत्रय को मैं पहले इन्द्र के लिए (वरदान रूप में) दे चुका हूँ।

भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मयाश्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्॥ ३४॥

पुनः अदिति ने भी मेरी स्तुति की जिसे मैंने वरदान दिया कि मैं इन्द्र के लिए लोकत्रय का राज्य निष्कंटक करके उसे दूँगा।

सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥ ३५॥

इसलिये मैं वैसा ही करूँगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र इस जगत् का स्वामी बन जाए। यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ।

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्।
यज्ञोपवीतं भगवान्ददौ तस्य बृहस्पतिः॥ ३६॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने हृषीकेश विष्णु को कृष्ण मृगचर्म दिया और भगवान् बृहस्पति ने उनके लिए यज्ञोपवीत दिया।

आषाढमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमथाङ्गिराः।
आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी॥ ३७॥

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ने (भगवान् विष्णु के लिए) आषाढ़ दण्ड दिया, वसिष्ठ ने कमण्डल, अंगिरा कौशेय वस्त्र, पुहल ने आसन तथा पुलस्त्य ने पीतवर्ग वस्त्र दिये।

उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः॥ ३८॥

प्रणव तथा स्वरों से विभूषित समस्त वेद, समस्त शास्त्र, सांख्य योग इत्यादि (उन विष्णु में) प्रतिष्ठित हो गए।

स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः।
सर्ववेदमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात्॥ ३९॥

वह जटाधारी, दण्डधारी, क्षत्रधारी, कमण्डलधारी, वामनरूप धारण करने वाले, समस्त देवताओं के तेज से प्रदीप्त देव विष्णु बलि के यज्ञस्थल में पहुँचे।

यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ।
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्राभिपीडिता॥ ४०॥

हे ब्राह्मणों! जिस-जिस भू-भाग पर वामनरूपधारी विष्णु ने अपना पग रखा, वह भू-भाग अभिपीड़ित होकर नीचे धंस गया।

स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन्सपर्वताम्।
साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम्॥ ४१॥

उस वामनरूपधारी विष्णु ने अत्यन्त मंदगति से कोमलतापूर्वक चलते हुए भी समस्त पर्वतों, महासागरों तथा द्वीपों सहित समस्त पृथ्वी को कंपायमान कर दिया।

बृहस्पतिस्तु शनकैर्मार्गं दर्शयते शुभम्।
तथा क्रीडाविनोदार्थमतिजाड्य गतोऽभवत्॥ ४२॥

बृहस्पति ने शनकादि के द्वारा उनका शुभ मार्गदर्शन किया तथा क्रीड़ा-विनोद के लिए अत्यन्त मंद गति को धारण कर लिया।

ततः शेषो महानागो निःसृत्यासौ रसातलात्।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः॥ ४३॥

तदनन्तर शेषनाग ने भी रसातल से निकलकर चक्रधारी देवाधिदेव विष्णु की सहायता की।

तदद्यापि च विख्यातमहेर्विलमनुत्तमम्।
तस्य संदर्शनादेव नागेभ्यो न भयं भवेत्॥ ४४॥

इसीलिए आज भी नाग का विशिष्ट खिर (गड्ढा) जगत् प्रसिद्ध है जिसे देखकर नाग से भय नहीं होता।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(बलि के समीप भगवान वामन की याचना)

लोमहर्षण उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षुभितां बलिः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ १॥
आचार्य क्षोभमायाति साब्धिभूमिधरा मही।
कस्माच्च नासुरान्भागान्प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः॥ २॥

लोमहर्षण ने कहा— पृथ्वी को पर्वतों और वनों सहित संक्षुब्ध देखकर राजा बलि ने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए उशनस् शुक्र से पूछा— हे आचार्य! पृथ्वी महासागरों तथा वनों सहित संक्षुब्ध है तथा अग्नि भी किस कारण असुरों के द्वारा दी गई आहुतियों को स्वीकार नहीं कर रही है?

इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः॥ ३॥

बलि के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर वेदविदों में श्रेष्ठ महाविद्वान् शुक्र ने चिरकाल तक ध्यानमग्न होकर दैत्याधिपति से कहा—

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः।
वामनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः॥ ४॥

समस्त जगत् के आदिभूत सनातन परमात्मा हरि ने कश्यप ऋषि के गृह में वामनरूप में अवतार लिया है।

स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही॥ ५॥

हे दानवश्रेष्ठ! वह (वामनरूपधारी हरि) तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं; इसलिये उनके प्रत्येक पदन्यास से विक्षुब्ध यह पृथ्वी चलायमान हो रही है।

कम्पन्ते गिरयश्चैव क्षुभिता मकरालयाः।
नेयं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्॥ ६॥

पर्वत कम्पायमान तथा महासागर तरंगित हो रहे हैं; क्योंकि यह भूमि समस्त जगत् के स्वामी सर्वसमर्थ ईश्वर (हरि) को वहन करने में सक्षम नहीं है।

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा।
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।

धारयत्यखिलान्देवान्मनुष्यांश्च महासुरान्॥७॥
इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी।
धार्यधारकभावेन यथा संपीडितं जगत्॥८॥

देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग सहित यह भूमि तथा जल, अग्नि, वायु और आकाश- यह समस्त इस (हरि) के द्वारा ही धारण किये जाते हैं। यह हरि ही समस्त देवों, मनुष्यों और राक्षसों को धारण करते हैं। इस जगत् के धारक कृष्ण की यह विचित्र माया ही है जिसके द्वारा यह समस्त जगत् धार्य-धारक भाव से अत्यन्त कुशलता के साथ अवधृत है।

तत्सन्निधानादसुरा न भागर्हाः सुरद्विषः।
भुञ्जते नासुरान्भागानपि तेन त्रयोऽग्नयः॥९॥

उन हरि के सन्निकट होने के कारण ही देवताओं से द्वेष करने वाले असुरों को उनका यज्ञभाग नहीं मिल रहा है तथा इसी कारण तीन-अग्नियाँ भी अपने आसुरी-भाग को ग्रहण नहीं कर रहीं हैं।

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद्बलिः।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यतो यज्ञपतिः स्वयम्॥१०॥

शुक्र के वचन सुनकर हर्ष से रोमांचित हुये बलि ने कहा— मैं धन्य और अत्यन्त भाग्यशाली हूँ कि यज्ञपति स्वयं ही मेरे यज्ञ में आ रहे हैं। हे ब्राह्मण! मुझसे अधिक बढ़कर पुण्यवान् और कौन व्यक्ति होगा।

यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान्।
यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम्।
द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपेष्यति।
यन्मयाचार्य कर्त्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि॥११॥

योगिजन निरन्तर प्रयत्नपूर्वक जिन अगम्य परमात्मा को देखने के लिए लालायित रहते हैं वह देव स्वयं मेरे यज्ञ में आ रहे हैं। हे आचार्य! अब मुझे क्या करना चाहिये। आप मुझे आदेश दीजिए।

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर।
त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागभुजः कृताः॥१२॥

शुक्र ने कहा— हे असुर! देवताओं का यज्ञ-भाग ग्रहण करने का अधिकार वेद प्रामाणिक है, किन्तु दानवों को यज्ञ-भाग ग्रहण करने का अधिकारी आपने बनाया है।

अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टं च तथाऽयं च स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः॥१३॥

यह देव विष्णु इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि करके उसका पालन करते हैं तथा वे स्वयं ही अपने द्वारा बनाई गई इस समस्त सृष्टि का संहार करते हैं।

भवांस्तु वन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैवं महाभाग कुरु यत्ते मनोगतम्॥१४॥

हे राजन्! आपको बन्दी बनाने के लिए ही निश्चय से विष्णु ने यह रूप धारण किया है। यह समझकर हे पुण्यात्मा! जैसा आपको उचित लगे वैसा ही करें।

त्वयाऽस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्यं साम तथाऽफलम्॥१५॥
कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चापि कुर्वतः।
अलं दद्यां धनं देवे त्वेतद्वाच्यं तु याचतः।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुरः॥१६॥

हे दैत्याधिपति! आप हरि विष्णु से किसी अल्प वस्तु के विषय में कोई भी प्रतिज्ञा नहीं करना तथा उनसे अत्यन्त सावधानी के साथ सोच-समझकर ही वार्तालाप करना। स्वयं पूर्णरूपेण निष्काम परन्तु देवताओं के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उद्यत एवं देवताओं के कल्याण के लिए तत्पर याचकरूप में उपस्थित कृष्ण को आप केवल धन देने की ही प्रतिज्ञा करना।

बलिरुवाच

ब्रह्मन्कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः।
नास्तीति किमु देवेशं संसारस्याघहारिणः॥१७॥

बलि ने कहा-हे ब्रह्मन्! किसी अन्य याचक के द्वारा याचना करने पर भी मैं किसी भी वस्तु के लिये मना नहीं करता तो फिर समस्त पापों का नाश करने वाले श्रीहरि विष्णु का तो कहना ही क्या?

व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरिः।
स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम्॥१८॥

विविध प्रकार के व्रत और उपवासों के द्वारा जिन हरि (को प्रसन्न करके उनसे) से याचना की जाती है वह

गोविन्द स्वयं मुझसे याचना करें इससे अधिक और क्या हो सकता है।

यदर्थं सुमहारम्भा दमशौचगुणान्वितैः।
यज्ञाः क्रियन्ते यज्ञेशः स मां देहीति वक्ष्यति॥ १९॥

सर्वविधसंयमी और पवित्र महानुभाव जिन्हें पसन्न करने के लिए महान् प्रयत्नसाध्य यज्ञ करते हैं, वे यज्ञ के स्वामी 'मुझे दो' इस प्रकार स्वयं याचना करेंगें।

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः।
यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति॥ २०॥

वह निश्चय ही हमारा साधु और पुण्यशाली कर्म तथा सुचरित तप है, जो कि समस्त विश्व के स्वामी 'मुझे दो' ऐसा स्वयं ही कहेंगे (याचना करेंगें)।

नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम्।
प्राणत्यागं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित्॥ २१॥

हे गुरु! उन अतिथि सर्वसमर्थ स्वामी हरि को 'नहीं' ऐसा कहूँगा इससे अच्छा तो मैं प्राण त्याग कर दूँगा। 'नहीं' ऐसा तो मैं किसी भी व्यक्ति को नहीं कह सकता।

नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम्।
वक्ष्यामि कथमायाते तस्मिन्नभ्यागतेऽच्युते॥ २२॥

किसी याचक से आज तक मैंने 'नहीं' कदापि नहीं कहा, फिर स्वयं अच्युत हरि विष्णु के आने पर 'नहीं' मैं कैसे कहूँगा।

श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाद्यापत्समागमः।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत्स्मृतम्॥ २३॥

वीर पुरुषों के लिये प्रशंसनीय है कि दानवीरता के कारण,उन पर विपत्ति आ जाए। जिस दान में कोई बाधा न हो वह निश्चय ही महान् माना गया है।

मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः।
न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादविवर्जितः॥ २४॥

मेरे राज्य में कोई भी असुखी, दरिद्र तथा कष्ट-पीड़ित नहीं है तथा न ही कोई दुःखी, उद्विग्न और न शमादि रहित है।

हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वसुखान्वितः।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी॥ २५॥

हे महानुभाव! मेरी प्रजा सर्वप्रकारेण प्रसन्न, संतुष्ट, धर्मपरायण, तृप्त तथा सर्वसुखसम्पन्न है तथा इस सबसे बढ़ कर मैं सर्वथा और सर्वदा सुखी हूँ।

एतद्विशिष्टमत्राहं दानबीजफलं लभे।
विदितं मुनिशार्दूल मयैतत् त्वन्मुखवाच्छ्रुतम्॥ २६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं यह जानता हूँ कि यह सब संतुष्टि मेरी दानवीरता का ही परिणाम है, ऐसा मैंने आपके मुख से ही सुना है।

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
मम दानमवाप्यासौ पुष्णाति यदि देवताः॥ २७॥

यज्ञ के द्वारा आराधित, मुझ पर कृपा करने वाले हरि निश्चय ही मेरा दान प्राप्त करके देवताओं का कल्याण करेंगें।

एतद्वीजवरे दानबीजं पतति चेद्गुरौ।
जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया॥ २८॥

समस्त बीजों में सर्वश्रेष्ठ दान का बीज यदि सर्वश्रेष्ठ पात्र, गुरु, जनार्दन, (हरिरूपी भूमि) में गिरता है तो भला मेरे लिये अप्राप्य क्या रह गया?

विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः।
उपभोगाच्छतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम्॥ २९॥

मेरा वह दान निश्चय ही अतिविशिष्ट होगा जो देवताओं को भी परितुष्ट करने वाला है। उपभोग से दान निश्चय ही सौ गुना सुखदायक माना गया है।

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारस्कृत्॥ ३०॥

यज्ञ के द्वारा आराधित हरि विष्णु निश्चय ही मुझ पर कृपा के लिये तत्पर हैं इसीलिये अपने दर्शनों से मुझ पर कृतार्थ करने के लिये ही मेरे पास आ रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है।

अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधतः।
मां निहन्तुं ततो हि स्याद्वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥ ३१॥

देवताओं के यज्ञ-भाग का अवरोध करने के कारण मुझ पर क्रोधवश यदि मुझे मारने के लिये भी मेरे पास आ रहे हैं तो अच्युत के हाथ से मरने से श्रेष्ठतर क्या होगा?

एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नकरेण मे।
नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥ ३२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह जानकर मेरे दान में विघ्न नहीं होना चाहिये जबकि जगन्नाथ गोविन्द (स्वयं याचक रूप में) उपस्थित हैं।

लोमहर्षण उवाच

इत्यंवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक्॥ ३३॥

लोमहर्षण ने कहा— उसके इस प्रकार वार्तालाप करते हुए ही सर्वदेवमय अचिन्त्य, माया से वामनरूपधारी जनार्दन वहाँ आ पहुँचे।

तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम्।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः॥ ३४॥

उन प्रभु विष्णु को यज्ञशाला में प्रविष्ट देखकर वे समस्त दानव उनके तेजस्वी व्यक्तित्व के सम्मुख प्रभावहीन हो गए।

जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमाः॥ ३५॥

वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग आदि श्रेष्ठ मुनि जो उस महान् यज्ञ में उपस्थित थे, उनका जप करने लगे।

बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः।
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किंचिदुक्त्वान्॥ ३६॥

(उन हरि विष्णु को देखकर) बलि ने अपना सम्पूर्ण जन्म सफल माना तथा उन संक्षुब्ध दानवों में से भी कोई कुछ न बोल सका।

प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्॥ ३७॥
देवदेवपतिः साक्षाद्विष्णुर्वामनरूपधृक्।
तुष्टाव यज्ञं वह्निं च यजमानमथार्चितं।
यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसंपदम्॥ ३८॥

प्रत्येक ने देवाधिपति की यथोचित पूजा की। तदनन्तर असुरपति बलि तथा समस्त मुनियों को विनम्र देखकर वामनरूपधारी देवाधिदेव विष्णु यज्ञ, यज्ञाग्नि, यजमान, यज्ञपुरोहित, उनके सहायक, यज्ञशाला तथा वहाँ उपस्थित द्रव्य संपदा सबकी प्रशंसा करने लगे।

सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
यज्ञवाटस्थितं विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन्॥ ३९॥
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्धूतपुलकस्तदा।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः॥ ४०॥

उस क्षण ही यज्ञशाला में उपस्थित सर्वश्रेष्ठ याजक उस वामन के लिए समस्त विप्रगण 'साधु, साधु' कहने लगे। प्रसन्नता से रोमांचित बलि ने अर्घ्य लेकर गोविन्द की पूजा की तथा वह महासुर इस प्रकार कहने लगा।

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातो गजाश्वसमितिस्तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान् गावो ग्रामाश्च पुष्कला॥ ४१॥
सर्वं च सकलां पृथ्वीं भवतो वा यदीप्सितम्।
तद्दामि वृणुष्वेष्टं ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः॥ ४२॥

बलि ने कहा— समस्त स्वर्ण, रत्न-भण्डार, गज, अश्वसमूह, स्त्रियाँ, वस्त्र, पुष्कल, आभूषण, गौ-समूह, ग्रामसमूह, समस्त पृथ्वी तथा जो कुछ भी आपका अभीप्सित है वह देता हूँ; अथवा मेरा जो भी कुछ आपको प्रिय है वह चुन लीजिए।

इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान्वामनाकृतिः॥ ४३॥

दैत्यपति बलि के द्वारा इस प्रीतियुक्त वचन कहे जाने पर वामनरूपधारी भगवान् विष्णु मुस्कराते हुए गम्भीर वाणी में बोले—

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥ ४४॥

हे राजन्! सुवर्ण ग्राम रत्नादि उनके याचकों को दे दो। मुझे तो मेरी अग्नि के शरणस्थल के लिए केवल तीन पद स्थान चाहिये।

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान्॥ ४५॥

बलि ने कहा— हे प्रशंसनीय! केवल तीन पद ही क्यों? शत, सहस्र या शतसहस्र पद आप मांगिये।

श्रीवामन उवाच

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥४६॥

श्री वामन ने कहा— हे दैत्यपति! इच्छित के विषय में मैं इतने मात्र से ही कृतकृत्य हो जाऊँगा, अन्य वित्त इत्यादि आप उनके इच्छुक अभ्यर्थियों को दे दीजिए।

एतच्छुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः।
वाचयामास वै तस्मै वामनाय महात्मने॥४७॥

वामनरूपधारी महानुभाव विष्णु के यह वचन सुनकर बलि ने वामनरूपधारी विष्णु को (इच्छित दान के लिए) वचन दे दिया।

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥४८॥

जैसे ही वामन भगवान् के हाथ में (प्रतिज्ञा) जल गिरा वैसे ही उनका वामनरूप विराट बन गया और उसी क्षण विराट रूप सर्वदेवमय दिखाई देने लगा।

चन्द्रसूर्यौ तु नयने द्यौः शिरश्चरणौ क्षितिः।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥४९॥
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु संभूता रेखास्वप्सरसस्तथा॥५०॥
दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः।
तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः॥५१॥

चन्द्रमा और सूर्य उनके दोनों नेत्र थे, द्युलोक मस्तक था, पृथ्वीलोक चरण थे, पिशाच पाँव की अङ्गुलियाँ थी, और गुह्यक हाथ की अङ्गुलियाँ थीं, विश्वेदेवता घुटने, ब्राह्मण जंघास्थल थे। यक्ष उनके नख थे तथा अप्सराएँ उनकी रेखाएँ थीं (त्रिवली)। समस्त ऋक्षगण उनकी दृष्टि, सूर्य की किरणें उनके केश, तारागण उनके रोमकूप तथा महान् ऋषिगण उनके रोम थे।

बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः॥५२॥
प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः।
सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥५३॥
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा।
स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ॥५४॥
मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥५५॥
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु।
वक्षस्थले तथा रुद्रो धैर्यं चास्य महार्णवाः॥५६॥
उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबलाः।
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः॥५७॥

दिशाएँ उनकी भुजाएँ थीं तथा दिशाएँ उनके क्षेत्र, अश्विन उनके श्रवण तथा वायु उनकी नासिका थी। उनकी कृपा में पवित्र चन्द्रमा तथा उनका मन धर्म था। उनकी वाणी सत्य थी तथा उनकी जिह्वा देवी सरस्वती, देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा तथा विद्या उनकी वलय (कंगन) थी, स्वर्गद्वार उनकी मैत्री, त्वष्टा और मूँज उनकी भ्रू थीं। उनके मुख में वैश्वानर (अग्नि) वृष्णि प्रदेश में तथा प्रजापति (ब्रह्मा) उनका वृष्णि प्रदेश, हृदय पर ब्रह्म तथा पुरुषत्व ऋषि कश्यप थे। वसुगण उनकी पीठ तथा मरुद्गण समस्त संधिस्थल में, वक्षस्थल में रुद्र तथा महासागर उनका धैर्य था। उनके उदर में महाबलशाली गंधर्व तथा मरुद्गण थे। लक्ष्मी, मेधाशक्ति, धृति, कान्ति तथा समस्त विद्याएँ उनका कटिप्रदेश थीं।

सर्वज्योतींषि यानीह तपश्च परमं महत्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्॥५८॥
तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखाः।
इष्टयः पशवश्चास्य द्विजानां चेष्टितानि च॥५९॥

समस्त ज्योतिपुंज तथा महान् तप उन देवाधिदेव का उत्तम तेज, उनके शरीर तथा कुक्षिप्रदेश में समस्त वेद तथा जानुप्रदेश में समस्त यज्ञों, इष्टियों, पशुओं तथा ब्राह्मणों की गतिविधियों का निवास था।

तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः।
उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम्॥६०॥

उन महातमा विष्णु के उस सर्वदेवमय विराट् रूप को देखकर समस्त दैत्य उसी प्रकार उनकी ओर आकृष्ट हो गए जैसे पतंगें अग्नि की ओर आकृष्ट होती हैं।

चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान्।
दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः॥६१॥

महाबलशाली दैत्य चिक्षुर ने अपने दाँतों से उनके पाँव का अँगूठा पकड़ लिया। हरि विष्णु ने पाँव के अँगूठे से उसकी ग्रीवा विदीर्ण कर दी।

प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः।
कृत्वा रूपं महाकायं संजहाराशु मेदिनीम्॥६२॥

अपने हाथ और पाँव की हथेलियों,से समस्त असुरों का मर्दन करके महाशक्तिशाली विष्णु ने विराट् स्वरूप धारण करके शीघ्र ही पृथ्वी का उद्धार कर दिया (उसे असुरों से वापस छीन लिया)।

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभो विक्रममाणस्य सक्थिदेशे स्थितावुभौ॥६३॥
परं विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ।
विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि॥६४॥

भूमि पर पादन्यास करते समय चन्द्रमा और सूर्य उनके वक्षस्थल पर थे। आकाश में पादन्यास करते समय चन्द्रमा और सूर्य उनकी जंघा प्रदेश में थे तथा अन्तिम पादन्यास करते समय यह दोनों प्रकाशपुंज उनके घुटने से नीचे स्थित थे तथा देवताओं की रक्षा के लिये नियुक्त थे।

जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान्।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः॥६५॥

तीनों लोकों को जीतकर तथा सभी महाबलशाली असुरों को मारकर अद्भुत पराक्रमी बिष्णु ने तीनों लोक इन्द्र को दे दिये।

सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातलात्।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना॥६६॥

शक्तिशाली भगवान् विष्णु ने पृथ्वी के नीचे विद्यमान 'सुतल' नामक पाताल-लोक बलि को दे दिया।

अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।
यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया॥६७॥

तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णु ने दैत्यराज बलि से कहा— जो तुमने मेरे हाथ में जल दिया, वह मैंने ग्रहण कर लिया (तुम्हारा दान मैंने स्वीकार कर लिया)।

कल्पप्रमाणं तस्मात्ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा॥६८॥
सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति।
इदानीं भुवनं सर्वं दत्तं शक्राय वै पुरा॥६९॥
चतुर्युगव्यवस्था च साऽधिका ह्येकसप्ततिः।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः॥७०॥
तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले।
सुतलं नाम पातालं समासाद्य वचो मम॥७१॥
वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन्।

इस कारण तुम वैवस्वत काल तथा मन्वन्तर के समाप्त होने तथा कल्प पर्यन्त जीवित रहोगे। सावर्णिक के आने पर तुम इन्द्र बनोगे। इस समय मैंने तीनों लोक इन्द्र को दे दिये हैं क्योंकि मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की थी। इकहत्तर चतुर्युगों से भी अधिक व्यवस्था पर्यन्त इन्द्र के विरोध में खड़े होने वालों का मैं दमन करूँगा। हे बलि! क्योंकि उस (इन्द्र) ने पहले अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है। तुम मेरी आज्ञा के अनुसार सुतल नामक पाताल में जाकर मेरे आदेश का यथावत् पालन करते हुए निवास करो।

तत्र देवासुखोपेते प्रासादशतसंकुले॥७२॥
प्रोत्फुल्लपद्मसरसि ह्रदशुद्धसरिद्वरे।
सुगन्धी रूपसंपन्नो वराभरणभूषितः॥७३॥
स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान्।
उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर॥७४॥
ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः।

वहाँ सुतल में देवोपयोगी सुख-सामग्री से परिपूर्ण सैकड़ों प्रासाद हैं, प्रफुल्लित कमलों से युक्त नहरें हैं, शुद्ध और शीतल जल से युक्त नदियों हैं, हे दानवेश्वर! सुंगधित, रूपसंवन, श्रेष्ठ आभूषणों से अलंकृत, माला तथा चंदन आदि से सुसज्जित, नृत्यगीतादि से मनोहारी विविध भोगों का उपभोग करते हुए सहस्रों दिव्यांगनाओं से घिरे हुए यह समय व्यतीत करो, यह मेरी आज्ञा है।

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं न गमिष्यसि॥७५॥
तावत्त्वं भुङ्क्ष्व संभोगान्सर्वकामसमन्वितान्।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा घोरदर्शनाः॥७६॥

जब तक तुम देवताओं से और ब्राह्मणों से विरोध न करोगे, तब तक तुम समस्त इन्द्रियों को संतुष्ट करने वाले भोगों का उपभोग करो; पर जब तुम देवताओं और ब्राह्मणों से विरोध करोगे तब वरुण के अत्यन्त कठोर पाश तुम्हें बाँध लेंगे।

बलिरुवाच

तत्रासतो मे पाताले भगवन्भवदाज्ञया।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्।
आप्यायितो येन देव स्मरेयं त्वामहं सदा॥७७॥

बलि ने कहा— हे भगवन्! आपकी आज्ञा से पाताल में निवास करते हुए मेरे लिये उपभोग की क्या-क्या सामग्री प्राप्त होगी जिससे संतुष्ट हो मैं निरन्तर आपका स्मरण करता रहूँ।

श्रीभगवानुवाच-

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम्॥७८॥

अविधिपूर्वक दिया गया दान, अवैदिक श्राद्धकर्म, अश्रद्धा से किये गये यज्ञादि कर्म तुम्हें संतुष्टि प्रदान करेंगे।

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥७९॥

दक्षिणा से रहित यज्ञ कर्म, अविधिपूर्वक किये कर्म तथा अनियमपूर्वक ग्रहण किये ब्रह्मचर्यादि व्रत तुम्हें फल प्रदान करेंगे।

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण याः क्रियाः।
आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति ते बले॥८०॥

हे बलि! जल के बिना पूजा, कर्म के बिना धार्मिक क्रिया तथा आज्य के बिना किए गए यज्ञादि कर्म तुम्हें फल प्रदान करेंगें।

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित्करिष्यति।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन॥८१॥

जो भी व्यक्ति इस स्थान पर आकर कोई धार्मिक क्रिया करेगा उसमें दानवों का भाग कदापि नहीं होगा।

ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे ह्रदे।
ये च श्राद्धानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च॥८२॥
क्रिया कृता च या काचिद्विधिनापि वा।
सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः॥८३॥

जो मनुष्य महापुण्यशाली ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपाद में श्रद्धा भक्ति रखता है तथा व्रत या नियम का पालन करता है और जो महात्मा विधिपूर्वक कोई धार्मिक क्रिया करता है, उसकी वे समस्त क्रियाएँ निश्चय ही अक्षय होगी, इसमें संशय नहीं है।

ज्येष्ठ मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे ह्रदे।
दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम्॥८४॥

ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष में, एकादशी के दिन उपवास रखने वाला, द्वादशी को वामन भगवान् का दर्शन करके, विष्णुपाद सरोवर में स्नान करने वाला यथाशक्ति दान देकर निश्चय ही परम पद को प्राप्त करता है।

लोमहर्षण उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम्।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥८५॥

लोमहर्षण ने कहा— बलि को इस प्रकार वरदान देकर तथा इन्द्र को त्रिलोक का राज्य देकर विराटरूपधारी विष्णु अदृश्य हो गए।

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूर्जितः।
निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थितः॥८६॥

इन्द्र ने पूर्ववत् तीनों लोकों पर राज्य किया बलि उस काल के समाप्त होने तक पाताल में रहा।

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
वामनस्य शृण्वन् यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥८७॥

यह विष्णु के महान् पुण्यशाली वामनावतार के विषय में कहा गया। इसको सुननने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः।
बलेर्विष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः॥८८॥
नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥८९॥

जो बलि और प्रह्लाद के संवाद, बलि और शुक्र के विचार-विमर्श को तथा बलि और विष्णु के व्यवहार को स्मरण करता है, उस व्यक्ति को आधि और व्याधि पीड़ित नहीं करती तथा मन भी मोहाकुल नहीं होता। हे द्विजश्रेष्ठो! उसे पाप कभी नहीं लगता।

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान्।
समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥ ९०॥
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम्।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात्।
वामनस्य च माहात्म्यं श्रृण्वन् पापैः प्रमुच्यते॥ ९१॥

हे महानुभावों! इस कथा को सुनकर राज्यच्युत अपने राज्य को तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने अभीप्सित को प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण वेद को प्राप्त कर लेता है, क्षत्रिय भूमि-विजय कर लेता है, वैश्य धन-समृद्धि को प्राप्त कर लेता है, तो शूद्र सुख-प्राप्ति कर लेता है। वामनावतार के माहात्म्य को सुनकर व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये वामनबलिचरितं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

(सरस्वती की स्तुति)

ऋषय ऊचुः

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी॥ १॥

ऋषियों ने कहा— कुरुक्षेत्र में बहने वाली और अत्यन्त पुण्यप्रताप से युक्त सरस्वती नामक श्रेष्ठ नदी कैसे उत्पन्न हुई?

कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम्॥ २॥

समस्त तीर्थों को अपने दोनों किनारों पर स्थित करने वाली, कभी दृश्य और कभी अदृश्य प्रवाह वाली यह सरस्वती नदी पश्चिम दिशा की ओर कैसे गयी। कृपया विस्तार से बताइएँ।

लोमहर्षण उवाच

प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः॥ ३॥

लोमहर्षण ने कहा— सरस्वती नदी प्लक्ष[६] वृक्ष से उत्पन्न हुई है। यह स्मरणमात्र से ही समस्त पापों का सदा के लिए नाश कर देती है।

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी।
प्रविष्टा पुण्यतोयौघा वनं द्वैतमिति स्मृतम्॥ ४॥

यह पुण्य-सलिला महानदी हजारों पर्वतों को चीरकर द्वैत नामक वन में प्रविष्ट हुई।

तस्मिन्प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्॥ ५॥

मार्कण्डेय महामुनि ने सरस्वती को पलाश वृक्ष में स्थित देखकर उसको शिर से प्रणाम किया और निम्न शब्दों में उनकी स्तुति की।

त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा।
सदसद्देवि यत्किञ्चिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम्॥ ६॥
तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम्।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत्क्षरात्मकम्॥ ७॥

हे देवी! आप समस्त लोक की माता तथा देवताओं की पवित्र जननी हैं। हे देवी! जो कुछ भी सत् और असत् है, वह मोक्षदायी है, तथा जो कुछ भी सार्थक पद है, वह सब योगमुक्त पदार्थ के समान आपमें संयुक्त होकर स्थित है। यह अक्षर परब्रह्म आप में ही प्रतिष्ठित है। और यह नश्वर संसार भी आप में ही प्रतिष्ठित है।

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम्।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः॥ ८॥

जिस प्रकार अग्नि नित्य काष्ठ में और गन्ध भूमि में अवस्थित है उसी प्रकार ब्रह्म तथा यह सम्पूर्ण आप में अवस्थित है।

---

६. Ficus Virance (पाखर) प्लक्षो जटी पर्कटी च स्त्रियामपि (भा०नि०)

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च॥ ९॥

हे देवी! स्थिर और अस्थिर, सभी वस्तुएँ 'ओंकार' अक्षर में स्थित हैं। जो कुछ भी 'अस्ति' और 'नस्ति' है, वह सब ओंकार की तीन मात्राओं में ही अनस्यूत है।

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा॥ १०॥
त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात्।
त्रैधातवस्तथाऽवस्था: पितरश्चैवमादय:॥ ११॥
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम्॥ १२॥

हे देवी सरस्वती! तीनों लोक (भू:, भुव:, स्व:), तीनों वेद (ऋक्, यजु, साम), तीनों विद्याएँ (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व), तीनों अग्नि (गार्हपत्य, आवहनीय, दक्षिणाग्नि), तीनों ज्योतियाँ (सूर्य, चन्द्र, अग्नि), तीनों वर्ग (धर्मादि), तीनों गुण (सत्व, रज और तम), तीनों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) क्रमपूर्वक तीनों देवता, तीनों धातुएँ (वात, पित्त, कफ), तीनों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तथा तीनों पितर (पिता आदि)– ये तीनों मात्राएँ आपके ही विभिन्न आदि सनातन और विशिष्ट स्वरूप हैं।

सोमसंस्था हवि:संस्था: पाकसंस्था: सनातनी।
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभि:॥ १३॥

हे देवी! ब्रह्मवादी, ऋषिमुनि, आपके नाम-मात्र के उच्चारण से ही सोमसंस्था, हवि:संस्था तथा पाकसंस्था नामक यज्ञों का अनुष्ठान कर लेते हैं।

अनिर्देश्यपदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम्।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्॥ १४॥

अर्धमात्राश्रित आपका यह अनिर्वचनीय व्यक्तित्व पूर्णत: अविकारी, अक्षय, दिव्य और अपरिर्वतनीय है।

तवैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्।
न चास्येन न वा जिह्वा ताल्वोष्ठादिभिरुच्यते॥ १५॥

आपके इस अद्भुत स्वरूप का वर्णन मैं कदापि नहीं कर सकता न जिह्वा, से न तालु से तथा न ओष्ठादि इन्द्रियों से इसका वर्णन न किया जा सकता है।

स विष्णु: स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च।
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम्॥ १६॥
साङ्ख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदैव तु॥ १७॥
एकं त्वनेकधाऽप्येकं भावभेदसमाश्रितम्।
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम्॥ १८॥

तुम्हारा वह रूप ही विष्णु है। वही शिव, वही ब्रह्म, वही चन्द्रमा, वही सूर्य तथा वही ज्योतिपिण्ड (तारागण) है। उसी में इस विश्व का वास है, वही विश्वरूप है, वही जगत् की आत्मा है वही महेश्वर, और वही वेदोक्त सांख्य-सिद्धात है। आपका यह रूप बहुत-सी शाखाओं में व्यवस्थित है आदि, मध्य और अन्त से हित है; सत् तथा असत् यह एक होने पर भी यह अनेक प्रकार से वर्णित है। ज्ञान की विभिन्न शाखओं पर आश्रित है। यह नामरहित, यह ऐश्वर्यादि षड्गुणों से युक्त है। इसकी बहुत सी आख्याएँ हैं। यह त्रिगुणाश्रित है।

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम्।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम्॥ १९॥

आपका यह रूप नत्वगुणात्मक है। यह विविध शक्तियों के उद्भव को जानता है। यह नाना शक्तियों का जनक है। यह सुखों से बढ़कर सुख है। यह महासुख है।

एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम्॥ २०॥

यह सकल और समस्त जगत् के रूप में जो अद्वैत और द्वैत रूप में व्यवस्थित ब्रह्म है वह आप ही हो।

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
येऽर्था: स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्मा:।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि तत्त्व एवोपलब्धि:॥ २१॥

जो कुछ भी नित्य अथवा नश्वर है; जो कुछ भी स्थूल अथवा सूक्ष्म है; जो कुछ भी इस भूलोक, द्युलोक अथवा अन्यत्र कहीं है, वह सब आप से ही प्राप्य है (उसे आप की उपासना से ही प्राप्त किया जा सकता है)।

यद्वा मूर्त्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित्।

यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्यं
तत्संबद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च॥ २२॥

जो कुछ भी व्यक्त अथवा अव्यक्त है, जो कुछ भी सब भूतों में एकरूप में अवस्थित है, जो एक ही और जो द्वैत रूप में अलग-अलग रूप से परिणत होता है, वह सब आपके स्वर और व्यंजनों से ही सम्बद्ध है।

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती।
प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता॥ २३॥

विष्णु की जिह्वास्वरूप देवी सरस्वती इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महामुनि महात्मा मार्कण्डेय से बोलीं - हे विप्र! तुम मुझे जहाँ भी ले जाओगे, मैं निरालस्य होकर वहाँ जाऊँगी।।

मार्कण्डेय उवाच

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा॥ २४॥

मार्कण्डेय ने कहा— पहले पवित्र ब्रह्म सरोवर नाम से और तदनन्तर रामह्रद नाम से अभिहित, फिर उसके पश्चात् ऋषि कुरु के द्वारा कृष्ट होने के कारण 'कुरुक्षेत्र' नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र के मध्य में आप पवित्र और 'पुण्यसलिला' होकर प्रवाहित होओ।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सरस्वतीस्तोत्रं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(कुरुक्षेत्र का माहात्म्य)

लोमहर्षण उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः।
नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह॥ १॥

लोमहर्षण ने कहा— बुद्धिमान् ऋषि मार्कण्डेय के इस प्रकार के वचन को सुनकर वह प्रवाहयुक्त सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र में प्रवेश कर गई।

तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम्॥ २॥

वह पुण्यसलिला सरस्वती वहाँ रन्तुक में जाकर कुरुक्षेत्र को आप्लावित करके पश्चिम दिशा की ओर चली गई।

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च।
तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ३॥

वहाँ कुरुक्षेत्र में ऋषियों के द्वारा सेवित सहस्रों तीर्थ हैं। ब्रह्मा की कृपा से मैं उनका वर्णन करूँगा।

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।
स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः॥ ४॥

तीर्थों का स्मरणमात्र पुण्यशाली होता है उनका दर्शन पापनाशक होता है; और तीर्थस्नान पापियों के लिये भी मुक्तिदायक कहा गया है।

ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च।
स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५॥

जो तीर्थों का स्मरण करते हैं, देवताओं को प्रसन्न करते हैं तथा श्रद्धापूर्वक उन तीर्थों में स्नान करते हैं वे परम गति को प्राप्त करते हैं।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ६॥

व्यक्ति यदि पवित्र, अपवित्र अथवा किसी अन्य अवस्था में रहने वाला कोई भी हो वह यदि कुरुक्षेत्र का स्मरण करता है तो वह बाह्य और आन्तरिक सब प्रकार से पवित्र हो जाता है।

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७॥

मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा— इस प्रकार की वाणी बोलने से ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है।

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा॥ ८॥

ब्रह्मज्ञान, गया में श्राद्ध, गोग्रह में मरण तथा कुरुक्षेत्र में निवास- ये मुक्ति के चार साधन मनुष्यों के लिये कहे गये हैं।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्द्वयोर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥ ९॥

सरस्वती तथा दृषद्वती नामक दैवी-नदियों के मध्य जो देवनिर्मित प्रदेश है, वह ब्रह्मावर्त नाम से जाना जाता है।

दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम्।
एवं यः सततं ब्रूयात्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥ १०॥

दूर रहते हुए भी मनुष्य यदि, 'मैं कुरुक्षेत्र में जाऊँगा, और वहाँ निवास करूँगा' इस प्रकार निरन्तर बोलता रहे तो वह समस्त पापों से छूट जाता है।

तत्र चैव सरःस्नायी सरस्वत्यास्तटे स्थितः।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्स्यति न संशयः॥ ११॥

सरस्वती के तट पर स्थित सरोवर में स्नान करने वाला मनुष्य निश्चितरूप से ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम्।
तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति॥ १२॥

देवता, ऋषि और सिद्धगण नित्य कुरुक्षेत्र के जंगलों में निवास करते हैं; अतएव (उसके परिणामस्वरूप) अपने में वे नित्य ब्रह्म का दर्शन पाते हैं।

चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः।
सेवन्ति नियतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः॥ १३॥
ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसंभवैः।
पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम्॥ १४॥

चंचल मनुष्यत्व को प्राप्त करने वाले पापकर्मा मनुष्य भी मोक्ष की इच्छा से जितेन्द्रिय होकर यदि कुरुक्षेत्र के जंगलों में निवास करते हैं तो वे नित्य आत्मतत्व का सेवन करके अनेक जन्मों के पापों से विमुक्त होकर हृदय में स्थित निर्मल सनातन तत्त्व का दर्शन कर सकते हैं।

ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं सन्निहितं सरः।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम्॥ १५॥

जो मनुष्य ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र तथा सन्निहित सरोवर का नित्य सेवन करते हैं, वे परम पद को पाया करते हैं।

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम्।
कुरुक्षेत्रे मृतानां च पतनं नैव विद्यते॥ १६॥

ग्रह, नक्षत्र तथा तारों के भी कालचक्र में गिरने का भय रहता है; परन्तु कुरुक्षेत्र में प्राणत्याग करने वालों का कदापि पतन नहीं होता।

यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सेवन्ते स्थानकङ्क्षिणः॥ १७॥

जहाँ ब्रह्मादि देवता, ऋषिमुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा यक्ष कुरुक्षेत्र में नित्य निवास के इच्छुक रहते हैं।

गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे।
मनसा चिन्तितं कामं लभते नात्र संशयः॥ १८॥

श्रद्धावान् पुरुष वहाँ जाकर 'स्थाणु' महाताल में स्नान करे तो वह अपने अभीप्सित को प्राप्त कर लेता है,इसमें कोई संशय नहीं है।

नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम्।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः॥ १९॥
सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचमुदीरयेत्॥ २०॥
तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र वनानि सरितश्च याः।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि अविघ्नं कुरु मे सदा॥ २१॥

तदनन्तर नियमव्रतादि का पालन करके, ब्रह्मसर की प्रदक्षिणा करके, रन्तुक के समीप पहुँचकर पुनः क्षमा याचना करने वाला व्यक्ति सरस्वती नदी में स्नान करके, यक्ष को दर्शन और प्रणाम करके, पुष्प-धूप-नैवेद्य (इत्यादि पूजा-सामग्री) प्रदान करके यह वचन उच्चारण करे- हे यक्षेन्द्र! जो भी वन, नदियाँ तथा तीर्थ हैं, आपकी कृपा से ही मैं उनका भ्रमण करूँगा, कृपया मेरे (भ्रमण) को सदैव निर्विघ्न कीजिए।!

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(विविध तीर्थों का माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

वनानि सप्त नो ब्रूहि नव नद्यश्च याः स्मृताः।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा॥ १॥

ऋषियों ने कहा— सात वनों, नौ प्रसिद्ध नदियों, प्रसिद्ध समस्त तीर्थों तथा तीर्थस्नान के फल के सम्बन्ध में हमें बताइये।

येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत्फलम्।
तत्सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम॥ २॥

हे पौराणिकों में सर्वश्रेष्ठ! जिस-जिस विधि से जिस-जिस तीर्थ का जो-जो फल प्राप्त होता है वह सब आप हमें विस्तार से बतायें।

लोमहर्षण उवाच

शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च॥ ३॥

लोमहर्षण ने कहा— कुरुक्षेत्र के मध्य में विद्यमान सात वनों के विषय में सुनिये; जिनके नाम अत्यन्त पुण्यशाली तथा समस्त पापों का नाश करने वाले हैं।

काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत्।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च॥ ४॥
तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत्।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम्॥ ५॥

पवित्र काम्यक वन, महान् अदितिवन, पवित्र व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, महान् मधुवन, तथा समस्त पापों का नाशक शीतवन ये सभी वन समस्त पापों का नाश करने वाले हैं।

वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी॥ ६॥
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी।
मधुस्रवा वासुनदी कौशिकी पापनाशिनी॥ ७॥
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम्॥ ८॥

ये सात वन हैं। हे ब्राह्मणों! अब नदियों के विषय में सुनो! पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापुण्यशाली आपगा नदी, मंदाकिनी गंगा नदी, मधुस्रवा, वासुनदी, पापनाशिनी कैशिकी नदी, महापवित्र दृषद्वती तथा हिरण्वती नदी। इनमें से सरस्वती को छोड़कर अन्य सब नदियाँ वर्षाकाल में ही बहने वाली हैं।

एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्त्तितम्।
रजस्वलत्वमेतासां विद्यते न कदाचन।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः॥ ९॥

इन नदियों का जल वर्षाकाल में (भी) पवित्र रहता है। इनका जल कभी भी दूषित नहीं होता। तीर्थों के प्रभाव के कारण ही ये श्रेष्ठ नदियाँ अत्यन्त पवित्र हैं।

शृण्वन्तु मुनयः प्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत्।
गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम्॥ १०॥

हे मुनिगण! तीर्थों में स्नान के महान् फल को प्रसन्नतापूर्वक सुनिये। तीर्थों में जाना तथा उनका स्मरण करना समस्त पापों का नाशक होता है।

रन्तुकं च नरो दृष्ट्वा द्वारपालं महाबलम्।
यक्षं समभिवाद्यैव तीर्थयात्रां समाचरेत्॥ ११॥

रन्तुक का दर्शन करके तथा महाबलशाली द्वारपाल यक्ष का अभिवादन करके ही मनुष्य को तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवनं महत्।
अदित्या यत्र पुत्रार्थे कृतं घोरं महत्तपः॥ १२॥

हे ब्राह्मणप्रवर! तदनन्तर अदिति वन जाना चाहिये। यह वह वन है, जहाँ पुत्र-प्राप्ति के लिये अदिति ने घोर तप किया था।

तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमातरम्।
पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविवर्जितम्।
आदित्यशतसंकाशं विमानं चाधिरोहति॥ १३॥

वहाँ स्नान करने तथा देवमाता अदिति का दर्शन करने से मनुष्य को समस्त दोषों से रहित शूरवीर पुत्र की प्राप्ति होती है। ऐसा करने से मनुष्य को सैकड़ों सूर्यों की आभा वाले विमान पर आरोहण करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता है।

ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।
सवनं नाम विख्यातं यत्र संनिहितो हरिः॥ १४॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णु के श्रेष्ठ स्थान पर जाना चाहिये। यह स्थान 'सवन' नाम से प्रख्यात है। इस स्थान पर हरि प्रतिष्ठित हैं।

विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम्।
निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति॥ १५॥

इस विमल सर में स्नान एवं विमलेश्वर का दर्शन करके मानव पवित्र स्वर्गलोक को प्राप्त करता है तथा रुद्रलोक में चला जाता है।

हरिं च बलदेवं च एकमात्रससमन्वितौ।
दृष्ट्वा मोक्षमवाप्नोति कलिकल्मषसंभवैः॥ १६॥

हरि तथा बलदेव को एक ही स्थल पर प्रतिष्ठित देखकर मनुष्य कील-काल से उत्पन्न समस्त पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

ततः पारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम्॥ १७॥
ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात्।

इसके अनन्तर त्रिलोकप्रसिद्ध 'पारिप्लव' तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करके वेदसंयुत ब्रह्मा का दर्शन करने से मनुष्य को वेद तथा ब्रह्मज्ञान का फल प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति निर्मल स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है।

तत्रापि संगमं प्राप्य कौशिक्यां तीर्थसंभवम्।
संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥१८॥

वहाँ भी कौशिकी तीर्थ में समुद्भूत संगम पर पहुँचकर उसमें स्नान करने से मनुष्य को परम पद की प्राप्ति होती है।

धरण्यास्तीर्थमासाद्य सर्वपापविमोचनम्।
क्षान्तियुक्तो नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥१९॥

समस्त पापों का नाश कर देने वाले 'धरणी' नामक तीर्थ में पहुँचकर स्नान करके मनुष्य परम क्षमाशीलता को प्राप्त करता हुआ परमपद को प्राप्त कर लेता है।

धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै।
सर्वाणि क्षमते तस्य स्नातमात्रस्य देहिनः॥२०॥

पाप धरणी तीर्थ में पहुँचकर वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य के द्वारा किये गए समस्त पाप शान्त हो जाते हैं।

ततो दक्षाश्रमं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम्।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ २१॥

तदनन्तर दक्षाश्रम में पहुँचकर दक्षेश्वर शिव का दर्शन करने से व्यक्ति को अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त लेता है।

ततः शालूकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमाः।
हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतं लोकं सर्वपापविवर्जितः॥ २२॥

तदनन्तर शालूकिनी में जाकर वहाँ तीर्थस्थल में स्नान करने और भक्तियुक्त होकर हरसहित हरि की पूजा करने से श्रेष्ठ ब्राह्मण समस्त पापों से विवर्जित अभीप्सित लोकों को प्राप्त कर लेता है।

सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नानं नरः कृत्वा मुक्तो नागभयाद्भवेत्॥ २३॥

नागों के श्रेष्ठ तीर्थ सर्पिर्दधि में पहुँचकर वहाँ स्नान करने से मनुष्य नागों के भय से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे॥ २४॥
द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥ २५॥
तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र मुक्तो भवति किल्बिषैः।
सिद्धिर्मयाऽभिलषिता तया सार्द्धं भवाम्यहम्।
एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं व्रजेत्॥ २६॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों व्यक्ति को तदनन्तर नरक से उद्धार कराने वाले रन्तुक में पहुँचना चाहिए। वहाँ एक रात्रि व्यतीत ने और शुभ तीर्थप्रवर में स्नान करने के पश्चात्, द्वितीय द्वारपाल की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराके नमस्कार करते हुए उनसे क्षमायाचना करनी चाहिये। हे यक्षेन्द्र! आपकी कृपा से मैं पापों से मुक्त हो गया हूँ। मेरी अभीप्सित सिद्धि मुझे प्राप्त हो जाए। इस प्रकार यक्षेन्द्र को प्रसन्न करके 'पञ्चनद' की ओर जाना चाहिए।

पञ्चनदाश्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः।
तेन सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम्॥ २७॥

दानवों को भयभीत करने वाली 'पञ्चनदियाँ' रुद्र के द्वारा सृजित हैं। इसीलिये समस्त संसार में 'पञ्चनद' को तीर्थ माना गया है।

कोटितीर्थानि रुद्रेण समाहृत्य यत: स्थितम्।
तेन त्रैलोक्यविख्यातं कोटितीर्थं प्रचक्षते॥ २८॥

करोड़ों तीर्थों को एकत्रित करके रुद्र ने उन्हें जहाँ प्रतिस्थापित किया था वह त्रिलोक में प्रसिद्ध स्थान 'कोटितीर्थ' नाम से जाना जाता है।

तस्मिंस्तीर्थे नर: स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम्।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्यं श्रद्धासमन्वित:॥ २९॥

उस (कोटितीर्थ) में स्नान तथा कोटीश्वर हर का दर्शन करके व्यक्ति श्रद्धावान् होता हुआ पञ्चयज्ञों को प्राप्त कर लेता है।

तत्रैव वामनो देव: सर्वदेवै: प्रतिष्ठित:।
तत्रापि च नर: स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत्॥ ३०॥

उसी स्थान पर समस्त देवताओं के द्वारा 'वामनदेव' की प्रतिष्ठा की गई है। अत: वहाँ स्नान करने से भी व्यक्ति अग्निष्टोम के फल को प्राप्त कर लेता है।

अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान्यो जितेन्द्रिय:।
रूपस्य भागी भवति यशस्वी च भवेन्नर:॥ ३१॥

अश्विनी तीर्थ में पहुँचकर वह रूपवान्, एवं श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय व्यक्ति यशस्वी होता है।

वराहं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम्।
तस्मिन् स्नात्वा श्रद्दधान: प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३२॥

विष्णु के द्वारा प्रशंसित प्रसिद्ध वराह नामक तीर्थ में स्नान करके श्रद्धावान् व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा: सोमतीर्थमनुत्तमम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत्पुरा॥ ३३॥

हे विप्रप्रवर! तदनन्तर व्यक्ति को प्रसिद्ध सोमतीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ पर प्राचीनकाल में चन्द्रमा ने तपस्या करके अपने रोग से मुक्ति प्राप्त की थी।

तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानव:॥ ३४॥

वहाँ सोमेश्वर का दर्शन करके तथा पुण्य तीर्थप्रवर में स्नान करके व्यक्ति राजसूय यज्ञ का फ़ल प्राप्त कर लेता है।

व्याधिभिश्च विनिर्मुक्त: सर्वदोषविवर्जित:।
सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते चिरम्॥ ३५॥

समस्त व्याधियों से मुक्त तथा समस्त दोषों से विनिर्मुक्त हुआ व्यक्ति सोमलोक को प्राप्त कर लेता है तथा वहीं चिरकाल तक निवास करता है।

भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा।
तावुभौ लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात्॥ ३६॥

वहीं भूतेश्वर तथा ज्वालमालेश्वर —इन दो लिंगों की अभ्यर्चना करके व्यक्ति पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करता।

एकहंसे नर: स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तम:॥ ३७॥
पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नर:।

एकहंस नामक तीर्थ में स्नान करके मनुष्य हजारों गायों के दान का फल प्राप्त करता है। कृतशौच नामक तीर्थ में पहुँचकर तीर्थसेवी उत्तम ब्राह्मण पुण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

ततो मुञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमत:॥ ३८॥
उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात्।

तदनन्तर धीमान् महादेव का मुञ्जवट नामक तीर्थ है, जहाँ एक रात्रि व्यतीत करके व्यक्ति 'गाणपत्य' को प्राप्त होता है।

तत्रैव च महाग्राही यक्षिणी लोकविश्रुता॥ ३९॥
स्नात्वाऽभिगम्य तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं तत:।
उपवासं च तत्रैव महापातकनाशनम्॥ ४०॥

वहीं महाग्राही नामक लोकप्रसिद्ध यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान करने के पश्चात् यक्षिणी को प्रसन्न करके उपवास करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है।

कुरुक्षेत्रस्य तद्द्वारं विश्रुतं पुण्यवर्द्धनम्।
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान्भोजयेत्तत:।
पुष्करं च ततो गत्वा अभ्यर्च्य पितृदेवता:॥ ४१॥
जामदग्न्येन रामेण आहत तन्महात्मना।
कृतकृत्यो भवेद्राजा अश्वमेधं च विन्दति॥ ४२॥

वहाँ प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों को भोजन कराए। तदनन्तर पुष्कर नामक तीर्थ में जाकर, जो जामदग्नि

परशुराम द्वारा प्रतिष्ठित है, व्यक्ति कृतार्थ हो जाता है तथा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कन्यादानं च यस्तत्र कार्त्तिक्यां वै करिष्यति।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दास्यन्त्यभिमतं फलम्॥ ४३॥

जो व्यक्ति कार्तिकी में कन्यादान करेगा, उसे देवता प्रसन्न होकर इच्छित फल प्रदान करेंगें।

कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः।
विघ्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति॥ ४४॥

वहाँ पर स्थित है। कपिल नामक द्वारपाल महायक्ष जो पापियों के लिए विघ्न उपस्थित करके उन्हें दुर्गति प्रदान करता है।

पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोदूखलमेखला।
आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि॥ ४५॥

उसकी पत्नी उलूखलमेखला नामक महायक्षिणी है जो दुन्दुभि बजाते हुए वहाँ नित्य भ्रमण करती है।

सा ददर्श स्त्रियं चैकां सपुत्रां पापदेशजाम्।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य निशि दुन्दुभिम्॥ ४६॥
युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले।
तद्वद्भूतालये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि॥ ४७॥
दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम्॥ ४८॥
उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि।
ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयाऽन्विता॥ ४९॥
यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित्।
सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि॥ ५०॥

उस यक्षिणी ने पापप्रदेश में उत्पन्न एक पुत्रवती स्त्री को देखा। रात्रि में दुन्दुभि बजाकर यक्षिणी ने उससे कहा— युगन्धर में दधि का प्राशन तथा अच्युतस्थल में निवास करने के उपरान्त भूतालय में स्नान करके तुम पुत्र के साथ निवास करने की इच्छा करती हो —दिन में मैंने तुम्हें इस प्रकार कहा है; परन्तु रात्रि में मैं निश्चय ही तुम्हारा भक्षण करूँगी। इस प्रकार के वचन को सुनकर वह स्त्री यक्षिणी को प्रणाम करके, अत्यन्त दीन-वचनों से बोली - हे भामिनी! आप प्रसन्न हों। तब कृपान्वित वह यक्षिणी उस स्त्री से बोली - जब कभी कालवश सूर्यग्रहण हो उस समय सन्निहिता नदी में स्नान करके पवित्र होकर तुम स्वर्ग में जाओगी।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(भिन्न-भिन्न तीर्थों का वर्णन)

लोमहर्षण उवाच

ततो रामह्रदं गच्छेत्तीर्थसेवी द्विजोत्तमः।
तत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्ततेजसा॥ १॥
क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नः श्रुतम्॥ २॥
पितरस्तर्पितास्तेन तथैव च पितामहाः।
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्द्विजोत्तमाः॥ ३॥
राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो॥ ४॥

लोमहर्षण ने कहा— तदनन्तर तीर्थसेवी द्विजश्रेष्ठ को रामह्रद तीर्थ जाना चाहिये जहाँ देदीप्यमान तेज वाले वीर ब्राह्मण राम (परशुराम) ने क्षत्रियों का विनाश करके उनके रुधिर से पूरित पंचनदों का निर्माण किया था। हे नरश्रेष्ठ! हमने सुना है कि तदनन्तर परशुराम अपने पिता तथा पितामहों का तर्पण किया गया। उनके द्वारा प्रसन्न हुये पितरों ने राम से कहा— हे राम! हे पराक्रमी राम! हे भार्गव! इस पितृभक्ति और पराक्रम से हम प्रसन्न हुए।

वरं वृणीष्व भद्रं ते कमिच्छसि महायशः।
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रभवतां वरः॥ ५॥
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितृन्गगने स्थितान्।
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि॥ ६॥
पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाऽऽस्यायनं पुनः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥ ७॥
ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम्।
ह्रदाश्चैते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥ ८॥

हे महायशस्वी! तुम इच्छानुसार वर मांगो। पितरों के

द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पराक्रमशालियों में श्रेष्ठ राम ने द्युलोक में स्थित अपने पितरों से हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा— आप यदि मुझसे प्रसन्न हैं, और मुझ पर कृपालु हैं तो पितरों की कृपा से मैं पुनः आत्मसंयम में प्रशस्त हो जाऊँ और क्रोधाभिभूत होकर जो मैंने क्षत्रियों का नाश किया है, आप लोगों के तेज से मैं उस पाप से मुक्त हो जाऊँ। और यह कि ये पाँच सरोवर लोकप्रसिद्ध तीर्थ बन जाएँ।

एवमुक्ताः शुभ वाक्यं रामस्य पितरस्तदा।
प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं हर्षपुरस्कृताः॥ ९॥
तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया॥ १०॥
ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः।
ह्रदाश्च तव तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः॥ ११॥

राम (परशुराम) के द्वारा इस प्रकार के शुभ एवं प्रशस्त वचन कहे जाने पर राम के पितरों ने परमप्रसन्न और हर्षान्वित होकर कहा— हे पुत्र! तुम्हारा तप निरन्तर अभिवृद्ध हो; विशेषरूप से तुम्हारी पितृभक्ति। तुमने क्रोधाभिभूत होकर जो क्षत्रियों का नाश किया है, तुम उस पाप से मुक्त होओ; वे क्षत्रिय वस्तुतः अपने ही कर्मों से विनष्ट हुए हैं। तुम्हारे द्वारा स्थापित ये ह्रद निश्चय ही तीर्थत्व को प्राप्त होंगें; इमें संशय नहीं है।

ह्रदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान्पितृंस्तर्पयिन्ति च।
तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम्॥ १२॥
ईप्सितान्मानसान्कामान्स्वर्गवासं च शाश्वतम्।
एवं दत्त्वा वरान्विप्रा रामस्य पितरस्तदा॥ १३॥
आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्हितास्तदा।
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महातमनः॥ १४॥

इन पंचतालों में स्नान करके जो अपने पितरों का तर्पण करेंगे उनको पितर अभीप्सित वर, अभिलषित कामनाएँ तथा स्वर्ग में शाश्वत निवास प्रदान करेंगे। इस प्रकार वर प्रदान करके (परशु) राम के पितर उन भार्गव से विदा लेकर प्रसन्नचित्त हो, वहीं अन्तर्ध्यान हो गए। इस प्रकार महात्मा भार्गव के वे ह्रद पुण्यशाली रूप में प्रसिद्ध हो गए।

स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिव्रतः।
राममभ्यर्च्य श्रद्धावान् विन्देद् बहु सुवर्णकम्॥ १५॥

(परशु) राम के तालों में स्नान करके संयमी ब्रह्मचारी राम की अभ्यर्चना द्वारा श्रद्धावान् होकर बहुत स्वर्ण को प्राप्त कर लेता है।

वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः।
स्ववंशसिद्धये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके॥ १६॥
कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन्न संशयः॥ १७॥

हे ब्राह्मणों संयमी तीर्थयात्री अपने वंश की स्थिरता के लिए वंशमूल में जाकर, वहाँ स्नान करके, त्रिलोकप्रसिद्ध कायशोधन नामक तीर्थ में पहुँचकर स्नान करके शरीर की सम्पूर्ण शुद्धि को प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

शुद्धदेहश्च तं याति यस्मान्नावर्त्तते पुनः।
तावद्भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तीर्थपरायणाः।
यावन्न प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम्॥ १८॥

पवित्र देह वाला मनुष्य उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहाँ से पुनः आगमन नहीं होता। सिद्ध और तीर्थपरायण यात्री तब तक ही विभिन्न तीर्थों में घूमते हैं जब तक इस 'कायशोधन' नामक तीर्थ में नहीं पहुँच जाते।

तस्मिंस्तीर्थे च संप्लाव्य कायं संयतमानसः।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्त्तते पुनः॥ १९॥

उस तीर्थ में शरीर को धोकर आत्मसंयमी पुरुष उस परमपद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से पुनः आवर्तन नहीं होता।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २०॥
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः।
स्नात्वा तीर्थवरे तस्मिन् लोकान् पश्यति शाश्वतम्॥ २१

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! तदनन्तर तीर्थस्मरण में तत्पर तीर्थयात्री त्रिलोक को प्रसिद्ध लोकोद्धार तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ सर्वसमर्थ विष्णु के द्वारा समस्त लोकों का उद्धार किया गया था। वहाँ पहुँचकर तीर्थश्रेष्ठ में स्नान करने से शाश्वत लोकों का दर्शन होता है।

यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः।
तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात्॥ २२॥

वह स्थान वह है जहाँ सनातन देव विष्णु और शिव की नित्य रहते हैं। वहाँ उन दोनों देवों को नमस्कार द्वारा प्रसन्न करके व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत् शालग्राममनुत्तमम्।
यत्र स्नातस्य सान्निध्यं सदा देवी प्रयच्छति॥ २३॥

तदनन्तर शालग्राम नामक श्रेष्ठ एवं समृद्धिदायक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने वाले व्यक्ति के लिए देवी समृद्धि सदैव अपना सान्निध्य प्रदान करती है।

कपिलाह्रदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितृंस्तथा॥ २४॥
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः।
तत्र स्थितं महादेवं कापिलं वपुरास्थितम्॥ २५॥
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम्।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः॥ २६॥
अर्चयित्वा पितृन्देवानुपवासपरायणः।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति॥ २७॥

तदुपरान्त त्रिलोकप्रसिद्ध तीर्थ कपिलाह्रद में पहुँचकर वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरों का अर्चन करने से व्यक्ति को एकसहस्र कपिला गौओं के दान के फल प्राप्त होता है। वहाँ पर कपिल के रूप में अवस्थित ऋषियों के द्वारा अभ्यर्चित महादेव शिव का दर्शन करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। सूर्यतीर्थ में पहुँचकर स्नान करके देवताओं और पितरों की अभ्यर्चना करके उपवास रखने से क्यक्ति को अग्निष्टोम के फल की होती है तथा वह सूर्यलोक में पहुँच जाता है।

सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः॥ २८॥

ज्ञानी मनुष्य त्रिलोक में प्रसिद्ध सहस्रकिरण सूर्यदेव का दर्शन कर के मुक्ति को पाता है।

भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम्।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत्॥ २९॥

तदनन्तर तीर्थयात्री क्रमशः 'भवानीवन' में पहुँचकर वहाँ अभिषेक करते हुए सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

पितामहस्य पिबतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि।
उग्ररात्सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता॥ ३०॥

आदिकाल में अमृत का पान करते हुए पितामह (ब्रह्मा) की डकार से सुरभि उत्पन्न हुई थी, जो पाताल लोक में चली गई।

तस्याः सुरभयो जाता मातरो लोकमातरः।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुनिरन्तरम्॥ ३१॥

उससे अनेकों लोकमाता सुरभियाँ उत्पन्न हुईं। उससे समस्त पाताल लोक अत्यन्त सघनता से और निरन्तर व्याप्त हो गया।

पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृताः।
आहूता ब्राह्मणा ताश्च विभ्रान्ता विवरेण हि॥ ३२॥
तस्मिन्विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम्।
यं दृष्ट्वा सकलान्कामान्प्राप्नोति संयतेन्द्रियः॥ ३३॥

यज्ञ करते हुए पितामह (ब्रह्मा) ने उन्हें दक्षिणा के उद्देश्य से बुलवाया। ब्रह्मा के द्वारा बुलाई गई वे गौवें विवर के कारण भटक गई। उस विवर के द्वार पर स्वयं गणपति अवस्थित हैं जिनका दर्शन करके आत्मसंयमी मनुष्य समस्त इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है।

सङ्गिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम्।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम्॥ ३४॥

मुक्ति प्रदान करने में समर्थ 'संगिनी' नामक तीर्थ में पहुँचकर देवी के तीर्थ में स्नान करने से व्यक्ति को उत्तम रूप प्राप्त होता है।

अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः।
भोगांश्च विपुलान् भुक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३५॥

ऐसे मनुष्यों को पुत्र-पौत्रों से युक्त अपरिमित समृद्धि, विपुल भोग एवं परम पद की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः।
भवते नात्र संदेहः प्राणान्मुञ्चति स्वेच्छया॥ ३६॥

ब्रह्मज्ञानी मनुष्य ब्रह्मावर्त में स्नान करके स्वेच्छा से प्राणों का विसर्जन करता है, इसमें संदेह नहीं है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तत्र तीर्थे सरस्वत्या यक्षेन्द्रस्य महात्मनः॥ ३७॥

हे ब्राह्मणप्रवर! तदनन्तर द्वारपाल 'रन्तुक' को तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ सरस्वती में महात्मा यक्ष का तीर्थ है।

तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम्॥ ३८॥

हे महाप्राज्ञ! वहाँ सरस्वती में स्नान करके उपवास करने वाला मनुष्य यक्ष के प्रसाद से समस्त अभिलषित फल को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्त्तं मुनिस्तुतम्।
ब्रह्मावर्त्ते नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम्॥ ३९॥

हे ब्राह्मणप्रवर! तदनन्तर मुनियों के द्वारा अभ्यर्चित ब्रह्मावर्त में जाना चाहिये। ब्रह्मावर्त में स्नान करने से व्यक्ति को निश्चित ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमनुत्तमम्।
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह॥ ४०॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेधमवाप्नोति पितॄन्प्रीणाति शाश्वतान्॥ ४१॥

तदनन्तर ब्राह्मणप्रवर को श्रेष्ठ सुतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पितरों और देवताओं के साथ नित्य निवास करते हुए, उनकी अर्चना में लीन होकर वहाँ अभिषेक करना चाहिये। ऐसे करने से शाश्वतरूप से पितर प्रसन्न होते हैं तथा इससे मनुष्य अश्वमेघ के फल को प्राप्त करते हैं।

ततोऽम्बुवनं धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम्।
कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥ ४२॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मवाप्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः॥ ४३॥
प्रज्ञा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम्।
ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः॥ ४४॥

हे धर्मज्ञ! श्रद्धावान् व्यक्ति तदनन्तर क्रमशः अम्बुवन में जाकर कामेश्वर तीर्थ में स्नान करे तो वह समस्त रोगों से विनिर्मुक्त होकर शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। वहीं मातृतीर्थ है जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करने वाले की निरन्तर वंशवृद्धि होती है तथा वह अनन्त श्री को प्राप्त करता है। तदुपरान्त आत्मसंयमी अल्पाहारी को 'शीतवन' में जाना चाहिये।

तीर्थं तत्र महाविप्रा महदन्यत्र दुर्लभम्।
पुनाति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः॥ ४५॥
केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः।
तत्र तीर्थवरं चान्यत् स्वानुलोमायनं महत्॥ ४६॥
तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः।
श्वानुलोमायने तीर्थे विप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते॥ ४७॥
प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः।
पूतात्मानश्च ते विप्राः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ४८॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वहाँ पर अन्यत्र दुर्लभ दण्डकनाम एक महातीर्थ है। हे द्विजोत्तमों! दण्डकवन के दर्शन से ही व्यक्ति पवित्र हो जाता है। उस तीर्थ में अपने केशों को चढ़ाने से व्यक्ति समस्त पापों से पवित्र हो जाता है। वहीं अन्य 'स्वानुलोमायन' नामक एक महान् तीर्थ है। हे ब्राह्मणों! महान विद्वान् तीर्थपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण उस त्रिलोकप्रसिद्ध स्वानुलोमायन तीर्थ में प्राणायाम के द्वारा अपने रोमों का विसर्जन करते हैं और पवित्रात्मा होकर वे ब्राह्मण परमगति को प्राप्त कर लेते हैं।

दशाश्वमेधिकं चैव तत्र तीर्थं सुविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तस्तदेव लभते फलम्॥ ४९॥
ततो गच्छेत श्रद्धावान्मानुषं लोकविश्रुतम्।
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य मुक्तो भवति किल्बिषैः॥ ५०॥

वहीं पर 'दशाश्वमेधिक' नामक प्रसिद्ध एक तीर्थ है जहाँ स्नान करके भक्तियुक्त मनुष्य तत्काल ही पूर्वोक्त फल प्राप्त कर लेता है। उस लोकप्रसिद्ध तीर्थ में व्यक्ति को श्रद्धायुक्त होकर जाना चाहिये। उस तीर्थ के दर्शन से व्यक्ति निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

पुरा कृष्णमृगास्तत्र व्याधेन शरपीडिताः।
विगाह्य तस्मिन् सरसि मानुषत्वमुपागताः॥ ५१॥

प्राचीन काल में एक शिकारी के बाणों से आहत अनेक कृष्णमृग इस तालाब में डुबकी लगाकर मनुष्यत्व को प्राप्त हो गए थे।

ततो व्याधाश्च ते सर्वे तानपृच्छन्द्विजोत्तमान्।
मृगाः अनेन वै याता अस्माभिः शरपीडिताः॥ ५२॥

निमग्नास्ते सरः प्राप्य क्व ते याता द्विजोत्तमाः।
तेऽब्रुवंस्तत्र वै पृष्टा वयं ते च द्विजोत्तमाः॥५३॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मानुषत्वमुपागताः।
तस्माद्यूयं श्रद्दधानाः स्नात्वा तीर्थे विमत्सराः॥५४॥
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यथ न संशयः।
ततः स्नाताश्च ते सर्वे शुद्धदेहा दिवं गताः॥५५॥

तदनन्तर उन शिकारियों ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से पूछा - हमारे द्वारा आहत कृष्णमृग इसी मार्ग से गए थे। सरोवर के निकट पहुँचकर वे उसमें निमग्न हो गए। हे द्विजोत्तमों! वे मृग कहाँ चले गये? इस प्रकार पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया। वे मृग हम ही हैं। इस तीर्थ के माहात्म्य के कारण ही हम मनुष्यत्व को प्राप्त हो गए हैं। अत एव आप मात्सर्यरहित होकर इस तीर्थ में श्रद्धापूर्वक स्नान करें तो आप समस्त पापों से विमुक्त हो जाओगे; इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर उसमें स्नान करके पवित्र देह; वाले वे सब स्वर्गलोक को चले गए।

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं मानुषस्य द्विजोत्तमाः।
ये शृण्वन्ति श्रद्दधानास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥५६॥

हे द्विजोत्तमों! यह इस मानुष तीर्थ का माहात्म्य है। जो मनुष्य श्रद्धावान् होकर इसका श्रवण करते हैं वे भी परमगति को प्राप्त करते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(तीर्थ माहात्म्य वर्णन)

लोमहर्षण उवाच

मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे द्विजोत्तमाः।
आपगा नाम विख्याता नदी द्विजनिषेविता॥१॥

लोमहर्षण ने कहा—हे ब्राह्मणप्रवरों! मानुष तीर्थ की पूर्व दिशा में लगभग एक कोस पर ब्राह्मणों के द्वारा निवेशित 'आपगा' नाम की एक विख्यात नदी है।

श्यामाकं पयसा सिद्धमाज्येन च परिप्लुतम्।
ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पापं न विद्यते॥२॥

जो व्यक्ति वहाँ श्यामाक चावल को दूध में पकाकर उसमें घी डालकर ब्राह्मणों को देते हैं उनके पाप नहीं रहते (नष्ट हो जाते हैं)।

ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राप्य तामापगां नदीम्।
ते सर्वकामसंयुक्ता भविष्यन्ति न संशयः॥३॥

जो उस 'आपगा' नदी पर जाकर श्राद्धकर्म करते हैं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

शंसन्ति सर्वे पितरः स्मरन्ति च पितामहाः।
अस्माकं च कुले पुत्रः पौत्रो वाऽपि भविष्यति॥४॥
य आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति।
तेन तृप्ता भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम्॥५॥

सभी पिता तथा पितामह यह स्मरण करते हैं कि हमारे कुल में ऐसा कोई पुत्र या पौत्र होगा जो आपगा नदी पर जाकर तिलों से हमारा तर्पण करेगा जिससे हम सौ कल्पों तक के लिये संतृप्त हो जाएंगे।

नभस्ये मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः।
चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात्॥६॥

भाद्रपद मास में विशेष रूप से कृष्ण पक्ष आने पर, चतुर्दशी के दिन मध्याह्न में पिण्डदान करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम्॥७॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! तदनन्तर मनुष्य को ब्रह्मा के श्रेष्ठ स्थान पर जाना चाहिये जो 'ब्रह्मोदुम्बर' के नाम से त्रिलोक में प्रसिद्ध है।

तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमाः।
सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं लभेत्॥८॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! वहाँ ब्रह्मर्षिकुण्डों में स्नान करने वाले व्यक्ति को सप्तर्षि की कृपा से सात सोमयज्ञों के फल की प्राप्ति होती है।

भरद्वाजो गौतमश्च जमदग्निश्च कश्यपः।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः॥९॥
एतैः समेत्य तत्कुण्डं कल्पितं भुवि दुर्लभम्।
ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते॥१०॥

भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ

एवं अत्रि— इन सात महान् ऋषियों के द्वारा निर्मित एवं प्रतिष्ठित यज्ञकुण्ड भूलोक में अन्यत्र दुर्लभ हैं। ब्रह्मा के द्वारा सेवित होने के कारण यह 'ब्रह्मोदुम्बर' नाम से जाना जाता है।

तस्मिंस्तीर्थे वरे स्नातो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ११॥

अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के इस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है। इस विषय में शंका नहीं करनी चाहिये।

देवान्पितॄन्समुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति।
पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम्॥ १२॥

पितरों और देवताओं को उद्देश्य बनाकर जो ब्राह्मण को भोजन कराता है, पितर उसे मनुष्यलोक में दुर्लभ सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं।

सप्तर्षींश्च समुद्दिश्य पृथक्स्नानं समाचरेत्।
ऋषीणां च प्रसादेन सप्तलोकाधिपो भवेत्॥ १३॥

सप्तर्षियों को उद्देश्य बनाकर जो व्यक्ति विशिष्ट स्नान करता है, ऋषियों की कृपा से वह सातों लोकों का स्वामी बन जाता है।

कपिलस्थलेति विख्यातं सर्वपातकनाशनम्।
यस्मिन्स्थितः स्वयं देवो वृद्धकेदारसंज्ञितः॥ १४॥

वहाँ समस्त पापों का नाशक प्रसिद्ध कपिल स्थल है जहाँ 'वृद्धकेदार' रूप में देव स्वयं प्रतिष्ठित हैं।

तत्र स्नात्वार्चयित्वा च रुद्रं दिण्डिसमन्वितम्।
अन्तर्द्धानमवाप्नोति शिवलोके स मोदते॥ १५॥

वहाँ स्नान करके तथा पिण्डि सहित रुद्र की अभ्यर्चना करके व्यक्ति अन्तर्ध्यान (अवस्था) को प्राप्त हो शिवलोक में प्रसन्नता प्राप्त करता है।

यस्तत्र तर्पणं कृत्वा पिबते चुलकत्रयम्।
दिण्डिदेवं नमस्कृत्य केदारस्य फलं लभेत्॥ १६॥

जो मनुष्य वहाँ तर्पण करके तीन चूल्लू जल पीता है वह पिण्डिदेव को नमस्कार करके केदार फल को प्राप्त करता है।

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं शिवमुद्दिश्य मानवः।
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां प्राप्नोति परमं पदम्॥ १७॥

शिव को उद्देश्य करके जो मनुष्य चैत्रमास की शुक्लपक्षीय चतुर्दशी को वहाँ श्राद्ध करता है, वह परमपद को प्राप्त कर लेता है।

कलस्यां तु ततो गच्छेद्यत्र देवी च संस्थिता।
दुर्गा कात्यायनी भद्रा निद्रा माया सनातनी॥ १८॥

तदनन्तर 'कलसी' तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ दुर्गा, कात्यायनी, भद्रा, निद्रा, माया एवं सनातनी (विभिन्न नामों से प्रख्यात) देवी स्वयं प्रतिष्ठित है।

कलस्यां च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुर्गां तटे स्थिताम्।
संसारगहनं दुर्गं निस्तरेन्नात्र संशयः॥ १९॥

कलसी में स्नान कर तट पर प्रतिष्ठित देवी दुर्गा का दर्शन करने से मनुष्य इस संसाररूपी गहन दुर्ग को पार कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

ततो गच्छेत सरकं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥ २०॥
लभते सर्वकामांश्च शिवलोकं स गच्छति।
तिस्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके द्विजसत्तमाः॥ २१॥

तदनन्तर व्यक्ति को त्रिलोक में दुर्लभ 'सरक' तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ कृष्णपक्ष में चतुर्दशी को देव शिव के दर्शन करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है तथा शिवलोक में गमन करता है। हे ब्राह्मणप्रवर! सरक में तीन करोड़ तीर्थों का वास है।

रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता।
तस्मिन्सरे च यः स्नात्वा रुद्रकोटि स्मरेन्नरः॥ २२॥
पूजिता रुद्रकोटिश्च भविष्यति न संशयः।
रुद्राणां च प्रसादेन सर्वदोषविवर्जितः॥ २३॥

सरोवर के मध्य में स्थित कूप में रुद्रकोटि प्रतिष्ठित है। उस सर में स्नान करके जो व्यक्ति रुद्रकोटि का स्मरण कर उनकी पूजा करता है वह भगवान् रुद्र की कृपा से समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

ऐन्द्रज्ञानेन संयुक्तः परं पदमवाप्नुयात्।
इडास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापभयापहम्॥ २४॥
अस्मिन्मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च पितृदेवगणानपि॥ २५॥

न दुर्गतिमवाप्नोति मनसा चिन्तितं लभेत्।
केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम्॥ २६॥
तत्र स्नात्वा तु पुरुषः सर्वदानफलं लभेत्।
किं रूपं च महातीर्थं तत्रैव भुवि दुर्लभम्।
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २७॥

वह मनुष्य इन्द्रज्ञान से युक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लेता है। वहीं पर समस्त पापों के भय को हरने वाला 'इडास्पद' नामक तीर्थ है। इसके दर्शन मात्र से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। यहाँ स्नान करने तथा पितरों और देवताओं का अर्चन करने से मनुष्य दुर्दशा को प्राप्त नहीं होता। वह मन से काम्य किसी भी विषय को प्राप्त कर लेता है। तदुपरान्त समस्त पापों का नाशक केदार नामक महातीर्थ है जहाँ जाकर स्नान करके व्यक्ति सर्वस्वदान के फल को प्राप्त कर लेता है। वहीं भूलोक में दुर्लभ 'किंरूप' नामक महातीर्थ है जिसमें स्नान करके व्यक्ति समस्त यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।

सरकस्य तु पूर्वेण तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अन्यजन्म सुविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २८॥

सरक के पूर्व में त्रिलोकप्रसिद्ध 'अन्यजन्म' नामक सुविख्यात तीर्थ है। यह तीर्थ समस्त पापों को नष्ट करने वाला है।

नारसिंहं वपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम्।
तिर्यग्योनौ स्थितो विष्णुः सिंहेषु रतिमाप्नुवन्॥ २९॥

नृसिंह के रूप को धारण कर शक्तिशाली दानव का नाश करने के उपरान्त तिर्यक्योनि .में स्थित भगवान् विष्णु सिंहों के प्रति विशेषरूप से आकृष्ट हो गए।

ततो देवाः संगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम्।
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्भने॥ ३०॥

तदनन्तर गन्धर्वों सहित सभी देवों ने वरप्रदान करने वाले शिव को सर्वाङ्ग से प्रणाम करते हुये उनकी आराधना की और उनसे विष्णु के पुनः देहधारण की प्रार्थना की।

ततो देवो महात्माऽसौ शारभं रूपमास्थितः।
युद्धं चकारयामास दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
युद्ध्यमानौ तु तौ देवौ पतितौ सरमध्यतः॥ ३१॥

तदनन्तर महात्मा शिव ने 'शरभ' मृग का रूप धारण करके सहस्रों दिव्य वर्षों तक युद्ध किया। युद्ध करते हुए दोनों देवता सरोवर के मध्य में गिर पड़े।

तस्मिन्सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य ध्यानस्थस्तौ ददर्श ह॥ ३२॥

उस सरोवर के तट पर देवर्षि नारद ध्यान में स्थित थे। अश्वत्थ वृक्ष के नीचे समाधि अवस्था में विद्यमान नारद ने उन दोनों देवताओं को देखा।

विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावितः॥ ३३॥

विष्णु ने चतुर्भुज रूप धारण किया था तथा शिव शिवलिंग के आकार में स्थित थे। नारद उन दोनों पुरुषों को देखकर भक्तिभाव से आप्लावित होकर दोनों की स्तुति करने लगे।

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः॥ ३४॥

भगवान् शिव तथा सर्वसमर्थ प्रभु विष्णु को नमस्कार है तथा स्थिति और संहार के आधारस्वरूप उमापति हर विष्णु को नमस्कार है।

हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे॥ ३५॥

बहुरूपधारी हर तथा विश्वरूप विष्णु को नमस्कार है। सुसिद्ध त्र्यम्बक तथा ज्ञानहेतु कृष्ण को नमस्कार है।

धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद्दृष्टौ पुरुषोत्तमौ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम्।
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अन्यजन्मेति विश्रुतम्॥ ३६॥

आप दोनों पुरुषोत्तमों के दर्शन से मैं नित्य धन्य तथा कृतार्थ हो गया। मेरा यह आश्रम आप दोनों के आगमन से पवित्र और विशुद्ध हो गया है। आज से लेकर यह 'अन्यजन्म' नाम से त्रिलोक में प्रसिद्ध होगा।

य इहागत्य च स्नात्वा पितृन्सन्तर्पयिष्यति।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमैन्द्रं भविष्यति॥ ३७॥

जो मनुष्य यहाँ आकर स्नान करके अपने पितरों का तर्पण करेगा· उस श्रद्धावान् पुरुष को 'ऐन्द्र' ज्ञान प्राप्त होगा।

अश्वत्थस्य च यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम्।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति॥३८॥

मैं सदैव अश्वत्थ वृक्ष के मूल में निवास करता हूँ। अश्वत्थ वृक्ष की वंदना करने से व्यक्ति को रौद्ररूप यम का दर्शन नहीं करना पड़ता।

ततो गच्छेति विप्रेन्द्रा नागस्य ह्रदमुत्तमम्।
पौण्डरीके नरः स्नात्वा पुण्यरीकफलं लभेत्॥३९॥

हे विप्रप्रवरों! तदनन्तर उत्तम नागसरोवर को जाना चाहिए। पौण्डरीक (सरोवर) में स्नान करके व्यक्ति पुण्डरीक (यज्ञविशेष) फल को प्राप्त करता है।

दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः।
स्नानं जपस्तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम्॥४०॥

चैत्र मास के शुक्लपक्ष की 'दशमी' तिथि में वहाँ स्नान करने से, जप तथा श्राद्ध, मुक्तिमार्ग की प्राप्ति होती है।

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्तीर्थं देवनिषेवितम्।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी॥४१॥

तदनन्तर 'त्रिविष्टप' नामक देवों के द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पवित्र एवं पापविमोचिनी वैतरणी नदी (बहती) है।

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम्॥४२॥

वहाँ स्नान करके शूलपाणि वृषध्वज (भगवान् शिव) का अर्चन करने से मनुष्य समस्त पापों से विशुद्ध होकर परम गति को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा रसावर्त्तमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥४३॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! तदनन्तर 'रसावर्त' नामक श्रेष्ठ तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करके भक्तिवान् मनुष्य श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है।

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते॥४४॥

चैत्रमास की शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को अलेपक तीर्थ में स्नान करके शिव की पूजा करने से व्यक्ति पापलिप्त नहीं होता।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम्।
यत्र देवाः सगन्धर्वा साध्याश्च ऋषयस्तथा।
तपश्चरन्ति विपुलं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥४५॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! तदनन्तर श्रेष्ठ 'फलकी' वन में जाना चाहिए। वहाँ स्थित होकर गन्धर्व, देवता, सिद्ध और ऋषिगण सहस्र वर्षों तक दिव्य एवं कठोर तप करते हैं।

दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः॥४६॥

दृषद्वती नदी में स्नान करके देवताओं को तृप्त करने वाला व्यक्ति अग्निष्टोम तथा अतिरात्र के फल को प्राप्त करता है।

सोमक्षये च संप्राप्ते सोमस्य च दिने तथा।
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥४७॥

चन्द्रमा के क्षय होने पर (कृष्ण पक्ष में) सोमवार के दिन जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसका पुण्यफल सुनो।

गयायां च यथा श्राद्धं पितृन्प्रीणाति नित्यशः।
तथा श्राद्धं च कर्त्तव्यं फलकीवनमाश्रितैः॥४८॥

जिस प्रकार 'गया' में किया गया श्राद्ध पितरों को नित्य प्रसन्न करता है, उसी प्रकार का श्राद्ध 'फलकीवन' में निवास करने वालों को करना चाहिए।

मनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम्।
तस्यापि पितरस्तृप्तिं प्रयास्यन्ति न संशयः॥४९॥

जो व्यक्ति मन से श्रेष्ठ 'फलकीवन' का स्मरण करता है उसके पितर तृप्ति को प्राप्त करते हैं। इस विषय में कोई संशय नहीं है।

तत्रापि तीर्थं सुमहत्सर्वदेवैरलंकृतम्।
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत्॥५०॥

वहीं समस्त देवों के द्वारा सुशोभित एक सुमहत् तीर्थ है जिसमें स्नान करने वाला व्यक्ति सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

पाणिखाते नरः स्नात्वा पितृन् संतर्प्य मानवः।
अवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति॥५१॥

पाणिखात तीर्थ में स्नान करके अपने पितरों का तर्पण करने वाला व्यक्ति राजसूय यज्ञ का फल तथा सांख्य और योग को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत सुमहत्तीर्थं मिश्रकमुत्तमम्।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना॥५२॥
व्यासेन मुनिशार्दूल दधीच्यर्थं महात्मना।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः॥५३॥

तदनन्तर अत्यन्त महान् एवं श्रेष्ठ मिश्रक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ मुनिश्रेष्ठ महात्मा व्यास ने ऋषि दधीचि के लिए समस्त तीर्थों का मिश्रण किया गया था। जो व्यक्ति मिश्रण में स्नान करता है, वह समस्त तीर्थों में स्नान करता है।

ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
मनोजवे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम्॥५४॥
मनसा चिन्तितं सर्वं सिद्ध्यते नात्र संशयः।
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः॥५५॥
तत्र स्नात्वा च वै देवान्पितृंश्च प्रयतो नरः।
स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः॥५६॥

तदनन्तर संयमपूर्वक भोजन करने वाले संयमी व्यक्ति को 'व्यास' वन में जाना चाहिये। 'मनोजव' में स्नान करके देवमणि शिव का दर्शन करने से व्यक्ति समस्त मनोरथों को सिद्ध कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर देवी के मधुवटी नामक तीर्थ में जाकर पवित्र हो व्यक्ति को वहाँ स्नान करके प्रयत्नपूर्वक देवताओं और पितरों की अर्चना करनी चाहिये। ऐसा करने वाला मनुष्य देवी के द्वारा अच्छी प्रकार अनुज्ञात होकर यथेष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्यां नरोत्तमः।
स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५७॥

कौशिकी और दृषद्वती के संगम में जो नरश्रेष्ठ स्नान करने वाला नियताहारी मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः॥५८॥
कृतो देवैश्च विप्रेन्द्र पुनरुत्थापितस्तदा।
अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति॥५९॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तदनन्तर 'व्यासस्थली' नामक तीर्थ है जहाँ बुद्धिमान् व्यास ने पुत्रशोकाभिभूत होकर देहत्याग का निश्चय किया था तो देवताओं ने उन्हें सांत्वना देकर शान्त किया था। इस स्थली के समीप जाने से व्यक्ति को पुत्रशोक प्राप्त नहीं होता ।

किंदत्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च।
गच्छेच्च परमां सिद्धिं ऋणैर्मुक्तिमवाप्नुयात्॥६०॥

'किंदत्त' नामक कूप में पहुँचकर तिलाञ्जलि प्रदान करके व्यक्ति परमसिद्धि को प्राप्त करता है तथा संपूर्ण ऋणों से मुक्त हो जाता है।

अह्नं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥६१॥

अह्न और सुदिन नामक दो तीर्थ भूलोक में दुर्लभ हैं। उनमें स्नान करके पूतात्मा होकर व्यक्ति सूर्यलोक को प्राप्त कर लेता है।

कृतजप्यं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां प्रयतः स्थितः॥६२॥
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत्।
कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम्॥६३॥
तत्र स्नात्वा श्रद्धधानः कोटियज्ञफलं लभेत्।
ततो वामनकं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥६४॥
यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना।
बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम्॥६५॥

तदनन्तर घृतजन्य नामक त्रिलोकप्रसिद्ध तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ गंगा में संयमपूर्वक खड़े होकर महादेव का अभिषेक और पूजन करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। वहीं कोटितीर्थ में कोटीश्वर प्रभु का दर्शन करके स्नान करने से श्रद्धावान् को सहस्र यज्ञों का फल प्राप्त होता है। तदनन्तर त्रिलोकप्रसिद्ध 'वामनक' तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ सर्वसमर्थ वामनरूपधारी प्रभु विष्णु ने बलपूर्वक बलि से राज्य छीनकर इन्द्र को दे दिया था।

तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥६६॥

तदनन्तर विष्णुपद में स्नान करने तथा 'वामन' (देव) की अर्चना करने से मनुष्य समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है।

ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम्।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः॥६७॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृषु॥६८॥

वहीं पर समस्त पापों का नाश करने वाला 'ज्येष्ठाश्रम' है। जिसका दर्शन करके व्यक्ति निस्सन्देह मुक्ति को प्राप्त कर,लेता है। ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में एकादशी को उपवास और द्वादशी को (ज्येष्ठाश्रम में) स्नान करने से मानव अन्यों से श्रेष्ठ बन जाता है।

तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्पराः॥६९॥

वहाँ सर्वसमर्थ विष्णु ने दीक्षा और प्रतिष्ठा से युक्त तथा अपनी आराधना में निरन्तर तत्पर ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित किया।

तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वन्तरस्थितिः॥७०॥

उन ब्राह्मणों को दिये गये विभिन्न दान तथा श्राद्ध आदि कर्म मन्वन्तर तक के लिये 'अक्षय' हो जाते हैं।

तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत्॥७१॥

वहीं पर त्रिलोकविश्रुत कोटितीर्थ है। उसमें स्नान करने से व्यक्ति को सहस्त्रों यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

कोटीश्वरं नरो दृष्ट्वा तस्मिंस्तीर्थे महेश्वरम्।
महादेवप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात्॥७२॥

मनुष्य उस तीर्थ में कोटीश्वर महेश्वर का दर्शन करके महादेव की कृपा से 'गाणपत्य' भाव को प्राप्त कर सकता है।

तत्रैव सुमहत्तीर्थं सूर्यस्य च महात्मनः।
तस्मिन्स्नात्वा भक्तियुक्तः सूर्यलोके महीयते॥७३॥

वहाँ महानुभाव सूर्य का महान् तीर्थ है। भक्तियुक्त व्यक्ति उसमें स्नान करके सूर्यलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं कल्मषनाशनम्।
कूलोत्तारणनामानं विष्णुना कल्पितं पुरा॥७४॥
वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम्।
ब्रह्मचर्यात्परं मोक्षं य इच्छन्ति सुनिर्मलम्।
तेऽपि तत्तीर्थमासाद्य पश्यन्ति परमं पदम्॥७५॥

हे ब्राह्मणप्रवरों! तदनन्तर आदिकाल में विष्णु के द्वारा प्रतिष्ठित कुलोत्तारण नामक पापनाशक तीर्थ में जाना चाहिये। यह तीर्थ मनुष्यों को वर्णों और आश्रमों से मुक्ति दिलाने में समर्थ है। ब्रह्मचर्य के बाद ही निर्मल मोक्ष की कामना करने वाले वह भी इस तीर्थ में आकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
कुलानि तारयेत्स्नातः सप्त सप्त च सप्त च॥७६॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी—ये सभी यहाँ स्नान करके अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर लेते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये तत्परायणाः।
स्नाताः भक्तियुताः सर्वे पश्यन्ति परमं पदम्॥७७॥

भगवत्परायण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्री—सभी भक्तियुक्त होकर वहाँ स्नान करके परमपद का दर्शन करते हैं।

दूरस्थोऽपि स्मरेद्यस्तु कुरुक्षेत्रं सवामनम्।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्न्निवसन्नरः॥७८॥

दूर रहते हुये भी जो व्यक्ति वामन भगवान् से समृद्ध कुरुक्षेत्र का स्मरण करता है, वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, फिर वहाँ कुरुक्षेत्र में रहने वाले का व्यक्ति तो कहना ही क्या?

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(सरस्वती नदी की कथा)

लोमहर्षण उवाच

ग्वनस्य ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
विमुक्तः कलुशैः सर्वैः शैवं पदमवाप्नुयात्॥१॥

लोमहर्षण ने कहा— पवन के सरोवर में स्नान तथा देव महेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त होकर शैव-पद को प्राप्त कर लेता है।

पुत्रशोकेन पवनो यस्मिंल्लीनो बभूव ह।
ततः सब्रह्मकैर्देवैः प्रसाद्य प्रकटीकृतः॥ २॥

पवन पुत्रशोक के कारण इस सरोवर में डूब गए थे। ब्रह्मा सहित समस्त देवों ने उन्हें (आराधना करके) प्रसन्न करके प्रकट किया था।

अतो गच्छेत अमृतं स्थानं तच्छूलपाणिनः।
यत्र देवैः सगन्धर्वैं हनुमान् प्रकटीकृतः॥ ३॥

तदनन्तर वहाँ से शूलपाणि के अमृत नामक स्थान पर जाना चाहिए जहाँ देवताओं और गंधर्वों ने हनुमान को प्रकट किया था।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात्।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः॥ ४॥
कुलानि तारयेत् सर्वान्मातामहपितामहान्।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ५॥
तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ६॥
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत्।
ततो नैमिषकुञ्जं तु समासाद्य नरः शुचिः॥ ७॥
नैमिषस्य च स्नानेन यत्पुण्यं तत्समाप्नुयात्।
तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निषेवितम्॥ ८॥
रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमाः।
तद्वधाय च सा प्राणान्मुमुचे शोककर्शिता॥ ९॥

उस तीर्थ में स्नान करके व्यक्ति अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। तीर्थसेवी ब्राह्मणश्रेष्ठ 'कुलोत्तारण' नामक स्थान पर पहुँचकर अपने समस्त मातामहों और पितामहों सहित (मातृ और पितृ) कुलों को तार लेता है। राजर्षि शालिहोत्र का त्रिलोकप्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ स्नान करके व्यक्ति समस्त शारीरिक पापों से विमुक्त हो जाता है। सरस्वती नदी पर 'श्रीकुञ्ज' नामक त्रिलोकप्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके व्यक्ति अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् व्यक्ति पवित्र होकर नैमिषकुञ्ज में पहुँचकर वहाँ स्नान का पुण्य प्राप्त कर लेता है। वहाँ वेदवती के द्वारा निषेवित महाप्रसिद्ध तीर्थ है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! जब रावण ने उसे केशों से पकड़ा तब शोकाभिभूत होकर उसने उसके वध के उद्देश्य से अपने प्राण विसर्जित कर दिए थे।

ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता॥ १०॥

तदनन्तर महात्मा राजा जनक के घर पर वह पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई और सीता नाम से राम की पतिव्रता पत्नी के रूप में प्रसिद्ध हुईं।

सा हता रावणेनेह विनाशायात्मनः स्वयम्।
रामेण रावणं हत्वा अभिषिच्य विभीषणम्॥ ११॥
समानीता गृहं सीता कीर्तिरात्मवता यथा।
तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत्॥ १२॥
विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम्।
ततो गच्छेत सुमहद्ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्॥ १३॥
यत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १४॥

रावण ने स्वयं अपने विनाश के लिए यहाँ सीता का अपहरण कर लिया। राम रावण को मार कर तथा विभीषण को लंका का राज्य प्रदान करके सीता को उसी प्रकार वापस ले आए जैसे दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति अपनी कीर्त्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है। उनके तीर्थ में स्नान करके व्यक्ति कन्यायज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है तथा समस्त पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर ब्रह्मा के श्रेष्ठ स्थान 'सुमहत्' में जाना चाहिए जहाँ स्नान करके निम्न वर्ण वाले व्यक्ति को भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जाता है। विशुद्धात्मा ब्राह्मण तो यहाँ स्नान करने से परमपद को प्राप्त कर ही लेता है।

ततो गच्छेत् सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात्॥ १५॥

तदनन्तर त्रिलोकदुर्लभ सोमतीर्थ में जाना चाहिए जहाँ चन्द्रमा ने तपस्या करके द्विजराज्य को प्राप्त कर लिया था।

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च स्वपितॄन्दैवतानि च।
निर्मलः स्वर्गमायाति कार्तिक्यां चन्द्रमा यथा॥ १६॥

मनुष्य वहाँ स्नान करके तथा अपने पितरों और देवों की अर्चना करके पवित्र होकर स्वर्ग में जाता है; जैसे कार्तिक पूर्णिमा में चन्द्रमा का स्वर्गारोहण होता है।

सप्तसारस्वतं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च॥ १७॥

तीनों लोकों में दुर्लभ सप्तसारस्वत नामक एक तीर्थ है जहाँ सात सरस्वतियाँ एकीभूत होकर बहती हैं।

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसह्रदा।
सरस्वत्योघनामा च सुवणुर्विमलोदका॥ १८॥

सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा, सरस्वत्योघनामा, सुवेणु तथा विमलोदका— ये सात सरस्वती एकीभूत होकर जहाँ बहती हैं वह त्रैलोक्य में दुर्लभ सारस्वत तीर्थ है।

पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह।
अब्रुवन् ऋषयः सर्वे नायं यज्ञो महाफलः॥ १९॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम्॥ २०॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।
सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती॥ २१॥

पुष्कर में स्थित पितामह ब्रह्मा ने जब यज्ञ किया था तब समस्त ऋषियों ने उनसे कहा था कि वह यज्ञ फलदायक नहीं है; क्योंकि श्रेष्ठ सरिता सरस्वती वहाँ दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। यह सुनकर महामहिम ब्रह्मा ने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वती का स्मरण किया। पुष्कर में यज्ञ करते हुए पितामह ने तब सरस्वती का आह्वान किया तो सुप्रभा नामक देवी वहाँ गयी और सरस्वती नाम से प्रख्यात हुई।

तां दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं ते तु तां बहु मेनिरे॥ २२॥

प्रसन्न मुनिगणों ने पितामह ब्रह्मा का मान—सम्मान करती हुई उस प्रवाहपूर्ण सरस्वती का अनेक प्रकार से सम्मान किया।

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती।
समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना॥ २३॥

इस प्रकार पुष्कर में स्थित सरस्वती नामक यह श्रेष्ठ नदी कुरुक्षेत्र में महात्मा मङ्कण के द्वारा लाई गई।

नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः।
ते पृच्छन्ति महात्मानं पौराणं लोमहर्षणम्॥ २४॥
कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्त्ततां सत्पथे मुने।
ततोऽब्रवीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा मुनीन्॥ २५॥

नैमिष में स्थित होकर शौनकादि तपस्वी मुनियों ने पुराणविशेषज्ञ महात्मा लोमहर्षण से पूछा— सन्मार्ग में वर्तमान हमारा यज्ञ किस प्रकार फलदायक हो सकता है? इस पर महानुभाव लोमहर्षण ने ऋषियों को नतमस्तक होकर कहा—

सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत्।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः॥ २६॥
समागम्य ततः सर्वे सस्मरुते सरस्वतीम्।
सा तु ध्याता ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः॥ २७॥
समागता प्लावनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्कणकेन सा॥ २८॥

जहाँ सरस्वती स्थित है वहाँ यज्ञ महान् फलदायक होता है। यह सुनकर विभिन्न वेदों के स्वाध्याय करने वाले सब मुनियों ने वहाँ एकत्रित होकर देवी सरस्वती का स्मरण किया। होता ऋषियों के द्वारा आहूत वह सरस्वती उन महात्माओं के स्नान के लिये वहाँ उपस्थित हो गई। नैमिष में 'मङ्कण' के द्वारा वह काञ्चनाक्षी नाम से प्रख्यात हुई।

समागता कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती।
गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम्॥ २९॥
आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती।
विशालां नाम तां प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः॥ ३०॥

वह पवित्र जल वाली सरस्वती कुरुक्षेत्र पहुँची। यज्ञ करते हुए राजा गय के गया प्रदेश में होने वाले श्रेष्ठ एवं महान् यज्ञ में पवित्र नदी सरस्वती का आह्वान किया गया। वहाँ संयमी मुनियों ने उन्हें विशाला नाम दिया।

सरित्सा हि समाहूता मङ्कणेन महात्मना।
कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी॥ ३१॥
उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते।
उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती॥ ३२॥
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात्।
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः॥ ३३॥

मनोहरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा।

आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना।

ऋषेः समाननार्थाय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमंम्॥३४॥

महात्मा मंकण के द्वारा आहूत वह विशाला नदी कुरुक्षेत्र में आकर प्रविष्ट हो गई। देवताओं और मुनियों के द्वारा निषेवित पवित्र उत्तर कोशल प्रदेश में उद्दालक मुनि ने सरस्वती का ध्यान किया और वह श्रेष्ठ नदी मुनि की तपस्या के कारण उस प्रदेश में पहुँच गई। मृगचर्म और वल्कल धारण करने वाले मुनिगणों के द्वारा पूजित समस्त पापों का नाश करने वाली 'मनोहरा' इस रूप में विख्यात महात्मा मंकण के द्वारा आहूत वह नदी ऋषि के सम्मान के लिये श्रेष्ठ तीर्थ (कुरुक्षेत्र) में प्रविष्ट हो गई।

सुवेणुरिति विख्याता केदारे या सरस्वती।

सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता॥३५॥

जो सरस्वती केदारतीर्थ में सुवेणु नाम से विख्यात है और ऋषियों, सिद्धगणों के द्वारा सेवित है उसे समस्त पापों की नाशिका समझना चाहिये।

साऽपि तेनेह मुनिना आराध्य परमेश्वरम्।

ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता॥३६॥

उन मुनि के द्वारा परमेश्वर की आराधना करके आहूत वह सरस्वती भी ऋषियों के उपकार के लिए कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट हो गई।

दक्षेण यजता साऽपि गङ्गाद्वारे सरस्वती।

विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता॥३७॥

यज्ञ करते हुए दक्ष के द्वारा गंगा के द्वार पर प्रकटीकृत सरस्वती 'विमलोदा' के रूप में स्थित है।

समाहूता ययौ तत्र मङ्कणेन महात्मना।

कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती॥३८॥

तदनन्तर ऋषि मंकण के द्वारा आहूत सरस्वती वहाँ गई तथा यज्ञ करते हुए कुरु के द्वारा आहूत होकर कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट हो गई।

सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता।

अभिष्टूय महाभागां पुण्यतोयां सरस्वतीम्॥३९॥

बुद्धिमान् मार्कण्डेय के द्वारा पूजित पुण्यसलिला महान् नदी सरस्वती सरोवर के मध्य लाई गई।

यत्र मङ्कणकः सिद्धः सप्तसारस्वते स्थितः।

नृत्यमानश्च देवेन शङ्करेण निवारितः॥४०॥

जहाँ सप्तसारस्वत में स्थित निरन्तर नृत्य करते हुए सिद्ध मंकणक को देवाधिदेव शिव ने रोका।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

(मङ्कण द्वारा शिव स्तुति)

ऋषय ऊचुः

कथं मङ्कणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः।

नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः॥१॥

ऋषियों ने कहा— मंकणक कैसे सिद्ध हुए, वे महान् ऋषि किस से उत्पन्न हुए? तथा नृत्य करते हुए उन्हें महादेव ने क्यों रोका?

लोमहर्षण उवाच

कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्कणो मुनिः।

स्नानं कर्त्तुं व्यवसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजः॥२॥

लोमहर्षण ने कहा— ऋषि मंकण कश्यप के मानस पुत्र थे। एक दिन वे ब्राह्मण एक वल्कल लेकर स्नान करने के लिए गये।

तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः।

स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धास्तेन सार्धमनिन्दिताः॥३॥

वहाँ रम्भा इत्यादि सुन्दर अप्सराएँ पहुँचीं। सुन्दर, आकर्षक एवं अनिन्द्य रूपवाली वे अप्सराएँ उनके साथ स्नान करने लगीं।

ततो मुनेस्तदा क्षोभाद्रेतः स्कन्नं यदम्भसि।

तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः॥४॥

उस समय उत्तेजना से उनका वीर्य जल में स्खलित हो गया। उस वीर्य को उस महातपस्वी ने एक कलश में ले लिया।

सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह।

तत्रर्षयः सप्त जाता विदुर्यान्मरुतां गणान्॥५॥

वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः।

वायुज्वालो वायुरेतो वायुचक्रश्च वीर्यवान्॥६॥

कलश में स्थित वह वीर्य सात भागों में विभक्त हो गया। उनसे सात ऋषि उत्पन्न हुये जो मरुद्गणों के रूप में जाने जाते हैं। उनका नाम वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेत तथा वायुचक्र था। वे सब महाशक्तिशाली थे। ऋषि के ये पुत्र समस्त चराचर को धारण करते हैं।

एते ह्यपत्यास्तस्यर्षे:धारयन्ति चराचरम्।
पुरा मङ्कणक: सिद्ध: कुशाग्रेणेति मे श्रुतम्॥७॥
क्षत: किल करे विप्रास्तस्य शाकरसोऽस्रवत्।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्ट: प्रनृत्तवान्॥८॥

मैंने सुना प्राचीन काल में एक बार सिद्ध मंकण का हाथ कुशाग्र से घायल हो गया था। हे ब्राह्मणों! उससे शाकरस बहने लगा था और उस शाकरस को देखकर हर्षयुक्त ऋषि नृत्य करने लगे थे।

तत: सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत्।
प्रनृत्तं च जगदृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम्॥९॥
ब्रह्मादिभि: सुरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनै:।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थे द्विजोत्तमा:॥१०॥

हे ब्राह्मणों! तदनन्तर समस्त स्थावर और जंगम जगत् नृत्य करने लगा, उनके तेज से मोहित समस्त जगत् को नाचते हुए देखकर ब्रह्मादि देवता तथा तपस्वी ऋषियों ने मुनि (के कल्याण) के लिए महादेव से कहा—

नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्त्तुमर्हसि।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि॥११॥
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदं मुनिसत्तम।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम॥१२॥

हे देव! आप ऐसा कीजिए जिससे ये नृत्य न करे। महादेव ने अत्यंत हर्षाविष्ट मुनि को देखकर देवताओं के कल्याण के लिए कहा— हे मुनिश्रेष्ठ! हे द्विजश्रेष्ठ! तपस्वी धर्मपथानुगामी आपके इस हर्षातिरेक का कारण क्या है?

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन्कराच्छाकरसं स्रुतम्।
यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वित:॥१३॥

ऋषि ने कहा— हे ब्रह्मन्! क्या आप मेरे हाथ से गिरते हुए शाकरस को नहीं देख रहे? मैं इसीको देखकर अत्यंत हर्ष से अभिभूत होता हुआ नृत्य कर रहा हूँ।

तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम्।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्यताम्॥१४॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं देवदेवो महाद्युति:।
अङ्गुल्यग्रेण विप्रेन्द्रा: स्वाङ्गुष्ठं ताडयद् भव:॥१५॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उत्तेजना से मोहित मुनि से महादेव हँसकर बोले— मैं तनिक भी विस्मित नहीं हूँ। यह देखो। मुनिश्रेष्ठ से यह कहकर महाद्युति सम्पन्न देवाधिदेव महादेव ने अङ्गुली के अग्रभाग से अपने अंगुष्ठ पर प्रहार किया।

ततो भस्म क्षतात्तस्मान्निर्गतं हिमसन्निभम्।
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो विप्र: पादयो: पतितोऽब्रवीत्॥१६॥

तब अङ्गुली के उस घाव से हिम जैसा (स्वच्छ) भस्म निकलने लगा। उसको देखकर लज्जित ब्राह्मण शिव के पैरों में गिर कर बोला।

नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मन:।
चराचरस्य जगतो वरस्त्वमसि शूलधृक्॥१७॥
त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ।
पर्वस्त्वमसि देवानां कर्त्ता कारयिता महत्॥१८॥
त्वत्प्रसादात् सुरा: सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभया:।
एवं स्तुत्वा महादेवमृषि: स प्रणतोऽब्रवीत्॥१९॥

मैं आपको देवाधिदेव शूलपाणि महानुभाव शिव से भिन्न नहीं मानता। हे शूलधारी! इस चराचर जगत् में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। हे अनघ! ब्रह्मादि समस्त देवता आपका ही आश्रय देखते हैं। आप ही देवताओं में आदि, कर्त्ता और महान् कारयिता हो। आपकी कृपा से ही समस्त देवता निर्भय होकर प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके वह ऋषि प्रसन्नतापूर्वक बोले।

एवं स्तुत्वा महादेवमृषि: स प्रणतोऽभवत्।
ततो देव: प्रसन्नात्मा तमृषिं वाक्यमब्रवीत्॥२०॥

हे भगवन्! आपकी कृपा से मेरा तप क्षीण न हो। इस प्रकार ऋषि के द्वारा पूजित महादेव ने प्रसन्न होकर उन ऋषि से कहा—

ईश्वर उवाच

तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा॥ २१॥

महादेव ने कहा— हे ब्राह्मण! मेरी कृपा से तुम्हारा तप हजार गुना बढ़ जाए। यहाँ इस आश्रम में मैं सदैव तुम्हारे साथ निवास करूँगा।

सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च॥ २२॥

जो व्यक्ति इस सप्तसारस्वत में स्नान करके मेरी अभ्यर्चना करेगा उसके लिए इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा।

सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३॥

वह मनुष्य उस सारस्वत लोक में जाएगा और शिव के प्रसाद से परमपद को प्राप्त करेगा।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

(औशनस तथा पृथूदक तीर्थ का माहात्म्य)

लोमहर्षण उवाच

ततस्त्वौशनसं तीर्थं गच्छेत्तु श्रद्धयान्वितः।
उशना यत्र संसिद्धो ग्रहत्वं च समाप्तवान्॥ १॥
तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसंभवैः।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्त्तते पुनः॥ २॥

लोमहर्षण ने कहा— तदनन्तर श्रद्धावान् व्यक्ति को औशनस तीर्थ जाना चाहिए जहाँ उशना को सिद्धि मिली थी और ग्रहत्व प्राप्त हुआ था। वहाँ स्नान करके व्यक्ति जीवन के समस्त पापों से मुक्त होकर परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है जहाँ से पुनः आवर्तन नहीं होता।

रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्॥ ३॥

जहाँ पर विशाल सिर वाले 'रहोदर' नामक मुनि को इस तीर्थ के माहात्म्य के दर्शन से मुक्ति प्राप्त हुई थी।

ऋषय ऊचुः

कथं रहोदरो ग्रस्तः कथं मोक्षमवाप्तवान्।
तीर्थस्य तस्य महात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात्॥ ४॥

ऋषियों ने कहा— रहोदर मुनि (बड़े सिर से) ग्रस्त कैसे हुए तथा उन्होंने कैसे मुक्ति प्राप्त की? उस तीर्थ के माहात्म्य के बारे में हम आदरपूर्वक सुनने की इच्छा करते हैं।

लोमहर्षण उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः॥ ५॥

लोमहर्षण ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! प्राचीन काल में दण्डकारण्य में निवास करते हुए महामहिम राघव ने अनेक राक्षसों का वध किया था।

तत्रैकस्य शिरच्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः।
क्षुरेण शितधारेण तत्पपात महावने॥ ६॥

वहाँ उन्होंने एक दुरात्मा राक्षस का सिर एक तेज धार वाले छुरे से काट डाला था। वह शिर वहाँ (दण्डक नामक) महावन में गिर पड़ा था।

रहोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह॥ ७॥

संयोगवश वह सिर वन में घूमते हुए रहोदर की जंघा से टकराया और उसकी एक हड्डी को तोड़कर उसके भीतर घुस गया।

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च॥ ८॥

उन सिर के टकराने से वे प्रज्ञावान् ब्राह्मण विभिन्न तीर्थों और मंदिरों में नहीं जा पाते थे।

स पूतिना विस्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च॥ ९॥

पीड़ा से अत्यंत आर्त महामुनि इस दुर्गन्धपूर्ण स्राव के बहते हुए होने पर भी पृथ्वी पर विद्यमान विभिन्न तीर्थों में गए।

ततः स कथयामास ऋषिणां भावितात्मनाम्।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्र प्रयाह्यौशनसं प्रति॥ १०॥

उन्होंने अत्यंत पवित्र आत्मा वाले ऋषियों से इस विषय में निवेदित किया। उन ऋषियों ने ब्राह्मण रहोदर को औशनस् के प्रति प्रस्थान करने को कहा।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः।
ततस्त्वौशनसं तीर्थं तस्योपस्पृशतस्तदा॥ ११॥
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः॥ १२॥
आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम्।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः॥१३॥

उनके वचन को सुनकर रहोदर मुनि वहाँ पहुँचे। उशनस् तीर्थ में उसके जल के स्पर्श से वह सिर उनका चरण छोड़कर जल में गिर पड़ा। हे ब्राह्मण! तदनन्तर निष्पाप, पवित्रात्मा, शान्त और प्रसन्न मुनि आश्रम में आ पहुँचे और ऋषियों से समस्त वृतांत सुनाया। तीर्थ के श्रेष्ठ माहात्म्य को सुनकर वहाँ आए ऋषियों ने उसका नाम कपालमोचन रख दिया।

तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम्।
ब्राह्मण्यं लब्धवान्यत्र विश्वामित्रो महामुनिः॥१४॥

वहीं पर विश्वामित्र का सुप्रसिद्ध सुमहत् तीर्थ है जहाँ महामुनि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम्।
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥१५॥

उस तीर्थप्रवर में स्नान करने से विशुद्धात्मा मनुष्य को निश्चय ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है तथा ब्राह्मण परमपद को प्राप्त कर लेता है।

ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षि रुषङ्गुर्नाम नामतः॥१६॥

तदनन्तर अल्पाहारी और संयमी व्यक्ति को 'पृथूदक' जाना चाहिये। वहाँ 'रुषङ्गु' नामक ब्रह्मर्षि को सिद्धत्व प्राप्त हुआ था।

जातिस्मरो रुषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान्वचनमब्रवीत्।
इह श्रेयो न पश्यामि नयध्वं मां पृथूदकम्॥१७॥

पूर्वजन्म के ज्ञाता और सदैव गंगा तट पर निवास करने वाले रुषङ्गु ने अपना अन्त समय देखकर अपने पुत्रों से कहा था कि यहाँ मैं कल्याण नहीं देख रहा, अतः मुझे पृथूदक ले जाओ।

विज्ञाय तस्य तद्भावं रुषङ्गोस्ते तपोधनाः।
तं वै तीर्थे उपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्॥१८॥

उनके भाव को जानकर रुषङ्गु के तपस्वी पुत्र उन्हें सरस्वती के तीर्थ पर ले गए।

स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां समाप्लुतः।
स्मृत्वा तीर्थगुणान्सर्वान्प्राहेदमृषिसत्तमः॥ १९॥

अपने पुत्रों के द्वारा वहाँ लाए गए उस ऋषिश्रेष्ठ ने सरस्वती में स्नान किया और तीर्थ के समस्त गुणों को स्मरण कर कहा।

सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत्॥ २०॥

सरस्वती के उत्तर तीर्थ पृथूदक में जो मनुष्य जप करता हुआ अपने शरीर को छोड़ता है, वह निश्चय ही अमरत्व को प्राप्त कर सकता है।

तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता।
पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः॥ २१॥

वहीं ब्रह्मयोनि है, जो ब्रह्मा के द्वारा बनाई गई है। यह सरस्वती के तट पर पृथूदक के आश्रय में स्थित है।

चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत्।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ २२॥
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा।
ऊरूभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन्॥ २३॥

अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा चातुर्वर्ण्य की सृष्टि के लिए ध्यानस्थ होकर आत्मज्ञानाभिमुख हो गए। तब उनके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।

चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम्॥ २४॥
तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति।

तदनन्तर उन्होंने चारों वर्णों को भिन्न-भिन्न आश्रमों में स्थापित देखा। इस प्रकार 'ब्रह्मयोनि' नाम से जाना जाने

वाला यह तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ। वहाँ स्नान करके मुमुक्षु पुनः योनि (जन्ममरण) को नहीं देखता।

तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः।
यस्मिंस्तीर्थे बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रममर्षणम् ।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्राबुध्यत्ततो नृपः॥ २६॥

वहीं पर एक तीर्थ 'अवकीर्ण' नाम से विख्यात है। जिस तीर्थ में असहिष्णु धृतराष्ट्र को दाल्भ्य बक ने वाहन सहित 'यज्ञाज्य' के लिए हवन कर दिया था। तब राजा अपने होश में आया था।

ऋषय ऊचुः

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णेति नामतः।
धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स किमर्थं न प्रसादितः॥ २७॥

ऋषियों ने कहा— अवकीर्ण नामक तीर्थ किस प्रकार प्रतिष्ठित हुआ और राजा धृतराष्ट्र ने दाल्भ्य बक क्यों प्रसन्न किया था?

लोमहर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा।
तत्रैव च वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत॥ २८॥

लोमहर्षण ने कहा— प्राचीन काल में नैमिष निवासी ऋषिगण दक्षिणा के लिये धृतराष्ट्र के पास गए। वहाँ दाल्भ्य वंशीय बक ऋषि ने धृतराष्ट्र से याचना की।

तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पश्वनृतं तु यत्।
ततः क्रोधेन महता मांसामुत्कृत्य तत्र ह॥ २९॥
पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः॥ ३०॥

धृतराष्ट्र के द्वारा (उन ऋषियों के) तिरस्कार के उद्देश्य से बोले गए निन्दापूर्वक असत्य वचन कहने पर अत्यंत क्रोधवश ऋषियों ने अपना मांस फाड़कर वहीं अवकीर्ण नामक महातीर्थ में राजा धृतराष्ट्र के राज्य को हवि रूप में दे दिया।

हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै॥ ३१॥

यज्ञ में राष्ट्र को हवन कर दिए जाने के कारण राजा के दुराचार से राज्य नष्ट होने लगा।

ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम्।
पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्यादाय सर्वशः॥ ३२॥
प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णं ययौ तदा।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम्॥ ३३॥

राजा धृतराष्ट्र ने ब्राह्मण की उक्त चेष्टा के विषय में विचार किया और अपने पुरोहित के साथ समस्त प्रकार के रत्नादियों को लेकर ऋषि को प्रसन्न करने के लिए अवकीर्ण तीर्थ में गया। राजा के द्वारा प्रसन्न तथा संतुष्ट किये जाने के पश्चात् उस ऋषि ने उस राजा से कहा—

ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता।
अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम्॥ ३४॥

बुद्धिमान् पुरुष को ब्राह्मणों की अवमानना नहीं करनी चाहिये। तिरस्कृत ब्राह्मण मनुष्य की तीन पीढ़ी को नष्ट कर सकता है।

एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः।
उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञो हिते स्थितः॥ ३५॥

इस प्रकार कहकर राजा के शुभेच्छुक ऋषि ने राजा (धृतराष्ट्र) को उनके राज्य और यश (प्रतिष्ठा के साथ पुनः प्रतिष्ठापित कर दिया।

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
स प्राप्नोति नरो दिव्यं मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६॥

जो श्रद्धावान तथा संयमी व्यक्ति उस तीर्थ में स्नान करता है वह नित्य ही मन से इच्छित फल को प्राप्त कर लेता है।

तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायातं नाम नामतः।
यस्येह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी॥ ३७॥

वहाँ 'यायात' नाम से सुविख्यात तीर्थ है, जहाँ (ययाति के) यज्ञ करने पर नदी में मधु बहने लगी थी।

तस्मिन्स्नातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः॥ ३८॥

उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करके व्यक्ति समस्त पापों से मुक्ति पाता है तथा मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः।
तस्मिन्स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत्पितॄन्॥ ३९॥

हे ब्राह्मणों! वहीं 'मधुस्रव' नामक पुण्यतम तीर्थ है जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य को मधु से अपने पितरों का तर्पण करना चाहिए।

तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम्।
तत्र स्नातो भक्तियुतो वासिष्ठं लोकमाप्नुयात्॥४०॥

वहीं अत्यंत महान् वसिष्ठोद्वाह नाम से जाना जाने वाल तीर्थ है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करने वाला मनुष्य वासिष्ठलोक को प्राप्त कर सकता है।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

(अरुणा-सरस्वती संगम)

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै संबभूव ह।
किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥१॥

ऋषियों ने कहा— वसिष्ठापवाह किस प्रकार उत्पन्न हुआ? वह श्रेष्ठ नदी किस कारण उन ऋषि को बहाकर ले गई?

लोमहर्षण उवाच

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
भृशं वैरं बभूवेह तपः स्पर्द्धाकृते महत्॥२॥

लोमहर्षण ने कहा— राजर्षि विश्वामित्र तथा महात्मा वसिष्ठ के बीच में तप सम्बन्धी स्पर्धा के कारण महान् वैर उत्पन्न हो गया था।

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः॥३॥

स्थाणुतीर्थ में वसिष्ठ का आश्रम था। उसकी पश्चिम दिशा में बुद्धिमान् विश्वामित्र का आश्रम था।

यत्रेष्ट्वा भगवान्स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वीतम्।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम्॥४॥

जहाँ देवेश स्थाणु ने सरस्वती की आराधना तथा पूजा करके उन्हें लिंगाकार में स्थापित किया था।

वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह॥५॥

वहाँ घोर तप करते हुए वसिष्ठ ऋषि विराजमान थे। उनकी तपस्या से विश्वामित्र हीन हो गये।

सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत्।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं स्वेन वेगेन आनय॥६॥
इहाहं तं मुनिश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी॥७॥

सरस्वती का आह्वान करके विश्वामित्र ने उससे कहा— मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को अपने तीव्र प्रवाह से बहाकर यहाँ ले आओ। मैं यहाँ उस मुनिश्रेष्ठ का निस्संदेह वध कर दूँगा। यह वचन सुनकर वह महानदी अत्यंत व्यथित हो गई।

तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम्।
विश्वामित्रोऽब्रवीत्क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय॥८॥

उस महानदी को व्यथित तथा कंपायमान देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र ने कहा— वसिष्ठ को शीघ्र लाओ।

ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्।
कथयामास रुदती विश्वामित्रस्य तद्वचः॥९॥

तदनन्तर नदीश्रेष्ठ सरस्वती ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ के पास जाकर रोते हुए विश्वामित्र के उक्त वचन कहे।

तपः क्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम्।
उवाच तां सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह॥१०॥

तपश्चर्या से क्षीणकाय तथा अत्यंत शोकाभिभूत उस श्रेष्ठ नदी से वसिष्ठ ने कहा— मुझे विश्वामित्र के पास ले जाओ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित्।
चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भसस्तदा॥११॥

कृपाशील वसिष्ठ के वचन को सुनकर वह नदी उन्हें उस स्थान से अपने जलप्रवाह में बहाकर ले चली।

स च कूलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम्॥१२॥

तब किनारों का अतिक्रमण करके बहती हुई नदी के द्वारा ले जाए जाते हुए वसिष्ठ ने देवी सरस्वती की वंदना की—

पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वती।
व्याप्तं त्वया जगत्सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः॥ १३॥

हे सरस्वती! आप पितामह ब्रह्मा के सरोवर से उद्भूत हैं। आपके उत्तम जल से यह समस्त जल आप्लावित है।

त्वमेवाकाशगा देवी मेघेषु सृजसे पयः।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे॥ १४॥

हे देवी! तुम्हीं आकाशगामी होकर मेघों में जल उत्पन्न करती हो। समस्त जल आप ही हो। आप से ही हम अध्ययन करते हैं।

पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत्॥ १५॥

आप ही पुष्टि, धैर्य, कीर्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा वाणी हो यह सब जगत् आपसे ही व्याप्त है।

त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती तदा॥ १६॥
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति।
न्यवेदयत्तदाऽ खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम्॥ १७॥

आप ही समस्त प्राणियों में वाणीरूप में प्रतिष्ठित हो। इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा पूजित देवी सरस्वती उन ब्राह्मण (वसिष्ठ) को सुखपूर्वक विश्वामित्र के आश्रम की ओर बहाकर ले गई और इस प्रकार दुःखी सरस्वती ने वसिष्ठ को विश्वामित्र के लिए सौंप दिया।

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः।
अथान्विषत्प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा॥ १८॥

सरस्वती के द्वारा लाए गए वसिष्ठ को देखकर क्रोधित विश्वामित्र वसिष्ठ की हत्या करने के लिए आयुध ढूँढने लगे।

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्येन चैवाम्भसस्तदा।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम्॥ १९॥

विश्वामित्र को क्रोधित देखकर ब्रह्महत्या के भय से नदी गाधिपुत्र विश्वामित्र को छलावा देकर, दोनों के आदेश का पालन करती हुई वसिष्ठ को जल के मध्य बहाकर ले गई।

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृपिसत्तमम्।
अब्रवीत्क्रोधरक्ताक्षो विश्वमित्रो महातपाः॥ २०॥

ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ को नदी के द्वारा अपवाहित देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले महातपस्वी विश्वामित्र ने कहा—

यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुता॥ २१॥

हे नदियों में श्रेष्ठ! तुम मुझे छलावा देकर अन्यत्र चली गई हो। इसलिये हे कल्याणि! तुम (जल के स्थान पर) रक्त का वहन करोगी तथा सदैव राक्षससमूह से परिवेष्टित रहोगी।

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा॥ २२॥

इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र के द्वारा शापित होने के कारण सरस्वती नदी में वर्षपर्यन्त रक्तमिश्रित जल बहता रहा।

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः॥ २३॥

सरस्वती को इस प्रकार देखकर देवता, ऋषि तथा गंधर्व, अत्यंत दुखी हुए।

तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत्॥ २४॥
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः।

उस रमणीय पुण्यतीर्थ में नदी में जब रक्त बहने लगा, तब वहाँ भूत, पिशाच तथा राक्षस एकत्रित हो गए।

ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्ति सुखमासत।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा॥ २५॥

वे सब रक्त का पान करते हुए वहाँ तृप्त, सुखी एवं क्लेशरहित होकर सुखपूर्वक निवास करने लगे। उन्होंने नाचते हुए और हँसते हुए स्वर्ग को भी जीत लिया।

कस्यचित्त्वथ कालस्य मुनयः सतपोधनाः।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः॥ २६॥

एक बार किसी समय तपोधन ऋषिगण सरस्वती नदी पर तीर्थयात्रा के लिए वहाँ पहुँचे।

तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम्।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे॥२७॥

भयानक राक्षसों के द्वारा नदी को पीते हुए देखकर वे सरस्वती के परित्राण के लिये परम प्रयत्न करने लगे।

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन्॥२८॥
किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्रदो ह्ययम्
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम्॥२९॥

उन महातपस्वी एवं महामहिम ऋषि श्रेष्ठों ने नदी सरस्वती को बुलाकर कहा— हे श्रेष्ठ नदी! किस कारण से यह सरोवर रक्त से उत्प्लावित होकर इस दुर्दशा को पहुँच गया हम यह सुनकर ही जान पाएंगे।

ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम्।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन्।
अरुणां पुण्यतोयौघां सर्वदुष्कृतनाशनीम्॥३०॥

सरस्वती ने विश्वामित्र के समस्त कृत्यों का वर्णन किया। तदनन्तर वे ऋषि संतुष्ट होकर समस्त पापों का नाश करने वाली पुण्यसलिला 'अरुणा' के जल को सरस्वती में ले आए।

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम्।
ऊचुस्तान्वै मुनीन्सर्वान्दैत्ययुक्ताः पुनः पुनः॥३१॥
वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः।
न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः॥३२॥

सरस्वती के जल को देखकर राक्षस अत्यन्त दुःखी हुए और दीनतापूर्वक ऋषियों से बार-बार कहने लगे- हम क्षुधात्रस्त एवं धर्महीन रहते हैं। हम पापाचारी हैं; इसमें हमारी इच्छा कारण नहीं है।

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः॥३३॥

आपकी अकृपा से तथा (व्यक्तियों के) दुष्ट कर्मों से हमारा पक्ष पुष्ट होता है। इसलिए हम ब्रह्मराक्षस हो गए हैं।

एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः।
ये ब्राह्मणान्प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः॥३४॥

इसी प्रकार ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले वैश्य, शूद्र तथा क्षत्रिय अपने दुष्कर्मों से यहाँ राक्षस हो जाते हैं।

योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते।
इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी॥३५॥
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते॥३६॥
ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः।
क्षुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत्॥३७॥

स्त्रियों के योनिदोष संबधी पापों से हमारा वंश बढ़ता है यह सनातन गति है। आप सब समस्त जगत् का उद्धार करने में समर्थ हैं। उन (राक्षसों) के वचन को सुनकर वे ऋषि कृपाशील हो गए। वे तपस्वी ब्राह्मण परस्पर बोले—

केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम्।
एभिः संस्पृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत्॥३८॥
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत्।
राक्षसानामसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते अन्नमीदृशम्॥३९॥

जो अन्न छींक तथा बीट के संसर्ग से दूषित होता है, जो उच्छिष्ट, केशयुक्त तिरस्कृत एवं श्वासवायु से दूषित होता है। वह राक्षसों का भाग होता है।

शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं चाप्यकल्पयन्॥४०॥

उन तपस्वी ऋषियों ने उस तीर्थ को शुद्ध करके राक्षसों के मोक्ष के लिए वहाँ संगम बनाया।

अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥४१॥

अरुणा और सरस्वती के लोकप्रसिद्ध संगम में जो व्यक्ति तीन रात्रि तक उपवास करने के बाद स्नान करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः॥४२॥

कलियुग आने पर और घोर अधर्म के प्रतिष्ठित हो जाने पर अरुणा के संगम में स्नान करने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है।

ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः।
दिव्यमालाम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः॥४३॥

तदनन्तर उन समस्त राक्षसों ने वहाँ स्नान किया और पापविमुक्त हुये और तब वे दिव्यमाला एवं वस्त्र धारण करके स्वर्ग में अवस्थित हो गए।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(कुरक्षेत्र आदि तीर्थों की महिमा)

लोमहर्षण उवाच

समुद्रास्तत्र चत्वारो दर्विणा आहृताः पुरा।
प्रत्येकं तु नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥१॥

प्राचीन काल में ऋषि ने वहाँ चार समुद्रों का निर्माण किया था। उनमें स्नान करके प्रत्येक व्यक्ति एक हजार गायों के दान का फल प्राप्त कर सकता है।

यत्किंचित्क्रियते तस्मिंस्तपस्तीर्थे द्विजोत्तमाः।
परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः॥२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस तीर्थ में जो कुछ भी तप किया जाए वह दुराचारियों द्वारा किये जाने पर भी सब कुछ परिपूर्ण (पूर्ण पुण्यदायक) हो जाता है।

शतसाहस्रिकं तीर्थं तथैव शतिकं द्विजाः।
उभयोर्हि नर स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥३॥

हे ब्राह्मणों! वही शतसाहस्रिक तथा शतिक तीर्थ है। उन दो तीर्थों में स्नान करने वाला व्यक्ति एक हजार गायों के दान का फल प्राप्त कर सकता है।

सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम्।
यस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत्॥४॥

वहीं सरस्वती के तट पर सोमतीर्थ स्थित है जिसमें स्नान करके मनुष्य राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त कर सकता है।

रेणुकाश्रममासाद्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
मातृभक्त्या च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः॥५॥

रेणुका आश्रम में पहुँचकर श्रद्धावान् जितेन्द्रिय व्यक्ति मातृभक्ति का पुण्य फल प्राप्त कर सकता है।

ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम्।
ऋणैर्मुक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसंभवैः।
कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विश्रुतम्॥६॥
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः।
कुमारपुरमाप्नोति कृत्वा श्राद्धं तु मानवः॥७॥

ब्रह्मा के द्वारा निषेवित ऋणमोचन तीर्थ में पहुँचकर व्यक्ति देवताओं और पितरों के समस्त ऋण से नित्य मुक्त हो जाता है। कुमाराभिषेक तीर्थ 'ओजस्' नाम से भी प्रसिद्ध है। उसमें स्नान करके व्यक्ति यशस्वी होता है तथा वहाँ श्राद्ध करके कुमारपुर को प्राप्त कर लेता है।

चैत्रषष्ठ्या सिते पक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति।
गयाश्राद्धे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः॥८॥

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को जो श्राद्ध करेगा वह व्यक्ति गया में किये गये श्राद्ध का पुण्य प्राप्त कर सकता है।

संनिहत्यां यथा श्राद्धं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तथा श्राद्धं तत्र कृतं नात्र कार्या विचारणा॥९॥

जिस प्रकार सन्निहित में दिवाकर के राहुग्रस्त होने पर (ग्रहण होने पर) श्राद्ध पुण्यकारी होता है वैसे ही वहाँ किया गया श्राद्ध पुण्यप्रद होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।

ओजसे ह्यक्षयं श्राद्धं वायुना कथित पुरा।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत्॥१०॥
यस्तु स्नानं श्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्यां करिष्यति।
अक्षय्यमुदकं तस्य पितृणामुपजायते॥११॥

ओजस में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है— ऐसा वायु के द्वारा प्राचीन काल में कहा गया है। इसलिए संपूर्ण प्रयत्नों से यहाँ श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। जो श्रद्धावान् चैत्र की षष्ठी को यहाँ स्नान करेगा उसके पितरों को मिलने वाल जल अक्षय हो जाएगा।

तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम्॥१२॥

वहाँ त्रिलोकप्रसिद्ध 'पंचवट' नामक तीर्थ है जहाँ स्वयं महादेव योगमूर्ति रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं।

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवदेवं महेश्वरम्।
गाणपत्यमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते॥ १३॥

वहाँ स्नान तथा देवाधिदेव महेश्वर की अर्चना करने से व्यक्ति गाणपत्य भाव को प्राप्त करता है तथा देवताओं के साथ सुखपूर्वक विहार करता है।

कुरुतीर्थं च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः।
तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः॥ १४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठों! वहाँ सुविख्यात कुरुक्षेत्र है जहाँ क्षेत्र के कर्षण के लिए कुरु ने अत्यंत घोर तप किया था।

तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद्वचः।
राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत॥ १५॥
यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतोः।
ते गमिष्यन्ति सुकृतॉंल्लोकान्पापविवर्जितान्॥ १६॥

उनके घोर तप से प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा था— हे राजर्षि! हे सुव्रत! मैं इस तप से संतुष्ट हुआ। जो कुरुक्षेत्र में इन्द्र का यज्ञ करेंगे वे पाप से सर्वथा रहित होकर सुकृत लोकों में जायेंगे।

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः।
आगम्यागम्य चैवैनं भूयोभूयोऽवहस्य च॥ १७॥
शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह।
यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष देहमात्मनः।
ततः शक्रोऽब्रवीत्प्रीत्या ब्रूहि यत्ते चिकीर्षितम्॥ १८॥

इन्द्र पुनः पुनः आये और पूछ-पूछ कर चले गये। जब कुरु ने उग्र तपस्या से अपने शरीर का कर्षण किया तो इन्द्र ने उनसे प्रेम के साथ कहा- 'आप की जो इच्छा हो वह कहे'।

कुरुरुवाच

ये श्रद्धानास्तीर्थेऽस्मिन्मानवा निवसन्ति ह।
ते प्राप्नुवन्ति सदनं ब्रह्मणः परमात्मनः॥ १९॥

जो श्रद्धावान् व्यक्ति इस तीर्थ में निवास करते हैं वे परमात्मा ब्रह्मा के निवास को प्राप्त करते हैं।

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः।
अस्मिंस्तीर्थे नराः स्नात्वा मुक्ता यान्तु परां गतिम्॥ २०

अन्यत्र पापाचार करने वाले एवं पाँच-पापों[७] से दूषित मनुष्य भी इस तीर्थ में स्नान करें तो मुक्त होकर परमगति को प्राप्त कर लेते हैं।

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे कुरुक्षेत्रं द्विजोत्तमाः।
तं दृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाप्नुयात्॥ २१॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! कुरुक्षेत्र में कुरुतीर्थ पुण्यतम है। उसका दर्शन करने से व्यक्ति पापमुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है।

कुरुतीर्थे नरः स्नातो मुक्तो भवति किल्बिषैः।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम्॥ २२॥

कुरुक्षेत्र में स्नान करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा कुरु के द्वारा स्वीकृत परमपद को प्राप्त कर लेता है।

स्वर्गद्वारं ततो गच्छेत् शिवद्वारे व्यवस्थितम्।
तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३॥

तदनन्तर शिवद्वार पर स्थित स्वर्गद्वार पर जाना चाहिये। वहाँ शिवद्वार पर स्नान करके व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
यत्र पूर्वं स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे च महेश्वरः॥ २४॥
रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः।
मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २५॥

तदनन्तर अनरक नामक त्रिलोक प्रसिद्धतीर्थ में जाना चाहिये। जहाँ पूर्व में ब्रह्मा, दक्षिण में महेश्वर, पश्चिम में रुद्रपत्नी पार्वती तथा उत्तर में पद्मनाभ स्थित हैं वहीं मध्य में त्रिलोक में भी दुर्लभ अनरक तीर्थ है।

यस्मिन्स्नातास्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः।
वैशाखे च यदा षष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत्॥ २६॥
तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः।
यः प्रयच्छेत कनकांश्चतुरो भक्ष्यसंयुतान्॥ २७॥
कलशं च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम्।
देवताः प्रीणयेत्पूर्वं करकैरन्नसंयुतैः॥ २८॥

---

७. ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन और इन पापियों में से किसी के साथ सम्पर्क- ये पाँच महापातक माने गये हैं।

वैशाख मास में मंगल के दिन पड़ने वाली षष्ठी तिथि को व्यक्ति वहाँ स्नान करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति यहाँ भोज्य पदार्थों से परिपूर्ण चार पात्र तथा मिष्ठान्नों से परिपूर्ण कलश प्रदान करता है वह अन्न से परिपूर्ण कलशों से निश्चय ही देवताओं को सर्वप्रथम प्रसन्न कर सकता है।

ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातकनाशनम्।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत्॥ २९॥
स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम्।
अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति॥ ३०॥
तत्रापि मुक्तिफलदा कृत्या तस्मिन्भविष्यति।

तदनन्तर समस्त पापों का नाश करने वाले कलश प्रदान करना चाहिए। इस विधान के द्वारा स्नानादि का आचरण करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लेता है। मंगल के दिन पडने वाली षष्ठी को की गई क्रिया सदैव मुक्ति का फल प्रदान करने वाली होती है।

तीर्थे च सर्वतीर्थानां यस्मिन्स्नातो द्विजोत्तमाः॥ ३१॥
सर्वदेवैरनुज्ञातः परं पदमवाप्नुयात्।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! समस्त तीर्थों में श्रेष्ठतर तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य, समस्त देवताओं के द्वारा अनुज्ञात होकर परम पद को प्राप्त कर सकता है।

काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्॥ ३२॥
यस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्बिषैः।
यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः॥ ३३॥
पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात्।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन्स्नातस्तु मानवः।
विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत्॥ ३४॥

हे ब्राह्मण प्रवर! पवित्र काम्यकवन समस्त पापों का नाशक है, जिसमें प्रवेश करने मात्र से व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जिस पावन वन का आश्रय लेकर सूर्यदेव 'पूषा' रूप में प्रकट हुए उनके दर्शन से व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। आदित्य के दिन (रविवार) उसमें स्नान करने वाला व्यक्ति विशुद्ध देह वाला होकर मन से इच्छित (उद्देश्य) को प्राप्त कर लेता है।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

(दुर्गतीर्थ आदि तीर्थों का माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

काम्यकस्य तु पूर्वेण कुञ्जं देवैर्निषेवितम्।
तस्य तीर्थस्य संभूतिं विस्तरेण ब्रवीहि नः॥ १॥

ऋषियों ने कहा— काम्यक के पूर्व में देवों के द्वारा निषेवित कुञ्ज है। उस तीर्थ की उत्पत्ति के विषय में हमें विस्तार से बताइये।

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
ऋषीणां चरितं श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्विषैः॥ २॥

लोमहर्षण ने कहा— आप सब मुनिगण तीर्थ के उत्तम माहात्म्य को सुनें!। ऋषियों के चरित को सुनकर व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

नैमिषेयाश्च ऋषयः कुरुक्षेत्रे समागताः।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं न च लेभिरे॥ ३॥

नैमिष के ऋषि सरस्वती में स्नान के लिए कुरुक्षेत्र में एकत्रित हुए। परन्तु वे उसमें प्रवेश नहीं कर सके।

ततस्तु कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिकम्।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे॥ ४॥

तदनन्तर उन्होंने 'यज्ञोपवीतिक' नामक तीर्थ का निर्माण किया। उस तीर्थ में अन्य मुनिगण प्रवेश नहीं कर सके।

रन्तुकस्याश्रमात्तावद् यावत्तीर्थं सचक्रकम्।
ब्राह्मणैः परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती॥ ५॥
हितार्थं सर्वविप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी।
प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतिहते स्थिता॥ ६॥

रन्तुक के आश्रम से लेकर जहाँ तक 'चक्रक' तीर्थ है उस प्रदेश को ब्राह्मणों से परिपूर्ण देखकर देवी सरस्वती

समस्त विप्रों के हित के लिए कुण्ड बनाकर समस्त प्राणियों की हितकामना से प्रेरित होकर पश्चिमोत्तर दिशा की ओर प्रवाहित हो गई।

पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफलं लभेत्।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा॥७॥
पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संश्रिता नदी।
यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी॥८॥

सरस्वती के पूर्व प्रवाह में जो स्नान करता है वह गंगास्नान के फल को प्राप्त करता है। उसके दक्षिण प्रवाह में नदीश्रेष्ठ नर्मदा तथा पश्चिम-दिशा में यमुना स्थित है। जब वह उत्तर की ओर जाती है तो वह सिन्धु कहलाती है।

एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः॥९॥

इस प्रकार पवित्र सरस्वती विभिन्न दिशाओं में (विभिन्न रूपों में) प्रवाहित होती है। उसमें स्नान करके मनुष्य समस्त तीर्थों में स्नान किया हुआ हो जाता है।

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः॥१०॥
यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः।
समागता न चापश्यन्देवं देव्या समन्वितम्॥११॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तदनन्तर महात्मा मदन के त्रिलोकप्रसिद्ध 'विहार' नामक तीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ शिवदर्शन के इच्छुक देवों ने आकर देवी पार्वती सहित भगवान् शिव का दर्शन किया था।

ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गणनायकम्।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चेष्टितम्॥१२॥
भवस्य उमया सार्धं विहारे क्रीडितं महत्।
तच्छ्रुत्वा देवतास्तत्र पत्नीराहूय क्रीडिताः॥१३॥

उन्होंने महादेव नन्दी एवं गणनायक की स्तुति की। तदनन्तर पूजित नन्दीश ने प्रसन्न होकर गण शिव का उमा के साथ 'विहार' तीर्थ में गहन विहार किया। यह सुनकर देवताओं ने अपनी पत्नियों को बुलाकर क्रीडा की।

तेषा क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शङ्करः।
योऽस्मिंस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयाऽन्वितः॥१४॥

उनके क्रीडाविनोद से संतुष्ट भगवान् शङ्कर ने कहा—जो व्यक्ति श्रद्धान्वित होकर इस विहार तीर्थ में स्नान करता है वह धन-धान्य तथा अभीप्सित से युक्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

धनधान्यप्रियैर्युक्तो भवते नात्र संशयः।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद्दुर्गया सेवितं महत्॥१५॥

तदनन्तर दुर्गा के द्वारा प्रतिष्ठित दुर्गातीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ स्नान तथा पितरों की पूजा करके व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

यत्र स्नात्वा पितृन्पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
तत्रापि च सरस्वत्याः कूलं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥१६॥
दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः।
यस्तत्र तर्पयेद्देवान्पितृंश्च श्रद्धयान्वितः॥१७॥
अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥१८॥
स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती।
देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता॥१९॥

वहीं त्रिलोकप्रसिद्ध सरस्वतीकूप है जिसके दर्शन से समस्त पापों से मुक्त होकर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य श्रद्धान्वित होकर अपने देवों और पितरों का यहाँ तर्पण करता है, वह समस्त और अक्षय अभीप्सित को प्राप्त करता है। 'पितृतीर्थ' अत्यन्त विशिष्ट है। मातृघातक, पितृघातक, ब्राह्मणघातक तथा गुरुशय्या का अतिक्रमण करने वाला मनुष्य देवमार्ग से प्रविष्ट होकर आकाशमार्ग से जाने वाली प्राची सरस्वती में स्नान करके शुद्धि को प्राप्त करता है।

प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम्।
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम्॥२०॥
न तेषां दृष्कृतं किंचिद्देहमाश्रित्य तिष्ठति।
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणुस्तथा रविः॥२१॥
प्राचीं दिशं निषेवन्ते सदा देवाः सवासवाः।
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः॥२२॥

तेषां न दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च।
तस्मात्प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः॥ २३॥
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवान् जायते नरः।
तत्र तीर्थमौशनसं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २४॥
उशना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम्।
ग्रहमध्येषु पूज्यते स तस्य तीर्थस्य सेवनात्॥ २५॥

प्राची सरस्वती दुष्कर्म करने वालों के लिए भी अत्यन्त पवित्र है। प्राची सरस्वती के पास आकर जो तीन रात तक निवास करता है, उसका कोई भी शारीरिक दुष्कर्म ठहरता नहीं है। नर, नारायण, ब्रह्मा, स्थाणु (शिव), सूर्य एवं समस्त देवता इन्द्र सहित प्राची दिशा में निवास करते हैं। जो व्यक्ति प्राची में आकर श्राद्ध करते हैं उनके लिए इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। इसलिए प्राची की सदैव और विशेषतः 'पंचमी' को पूजा करनी चाहिये। पंचमी को प्राची की पूजा करने वाला व्यक्ति विशेष रूप से धनवान् होता है। वहाँ त्रिलोक में दुर्लभ 'औशनस्' नामक तीर्थ है जहाँ परमेश्वर की आराधना करके 'उशना' ने सिद्धि प्राप्त की थी। इस तीर्थ के सेवन के कारण ही वह ग्रहों के मध्य पूजे जाते हैं।

एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम्।
ये सेवन्ते श्रद्दधानास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६॥

इसी प्रकार शुक्र के द्वारा निषेवित उत्तम तीर्थ है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं। वे परमगति को प्राप्त करते हैं।

यस्तु श्राद्धं नरो भक्त्या तस्मिंस्तीर्थे करिष्यति।
पितरस्तारितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः॥ २७॥

जो व्यक्ति इस तीर्थ में भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है वह निस्संदेह अपने पितरों का तारक हो जाता है।

चतुर्मुखं ब्रह्मतीर्थं यत्र मर्यादया स्थितम्।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां सोपवासा वसन्ति च॥ २८॥
अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः।
ते पश्यन्ति परं सूक्ष्मं यस्मान्नावर्तते पुनः॥ २९॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! चतुर्मुख ब्रह्मतीर्थ वहाँ मर्यादानुसार स्थित है। जो वहाँ चतुर्दशी के दिन जाकर उपवास के साथ निवास करते हैं तथा जो चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी में वहाँ जाते हैं वे परमसूक्ष्म का दर्शन करते हैं जिस कारण जगत् में पुनरावर्तन नहीं होता।

स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत्सहस्रलिङ्गशोभितम्।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्विषैः॥ ३०॥

तदनन्तर सहस्रों लिंगों से सुशोभित स्थाणुतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्थाणुवट का दर्शन करके पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(सृष्टिवर्णन तथा धर्म निरूपण)

ऋषय ऊचुः

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं वटस्य च महामुने।
सन्निहत्यसरोत्पत्तिं पूरणं पांशुना ततः॥ १॥
लिङ्गानां दर्शनात्पुण्यं स्पर्शनेन च किं फलम्।
तथैव सरमाहात्म्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः॥ २॥

ऋषियों ने कहा— स्थाणुतीर्थ तथा वटवृक्ष का माहात्म्य, सन्निहित सरोवर की उत्पत्ति तथा बाद में उसका धूल से परिपूर्ण होना; लिंगों के दर्शन तथा स्पर्श के पुण्य का फल— इन सबके विषय में तथा सरोवर के माहात्म्य के बारे में आप हमें पूर्ण रूप से बतायें।

लोहमर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वाः पुराणं वामनं महत्।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद्वामनस्य तु॥ ३॥

लोमहर्षण ने कहा— हे देवतागण! महान् वामनपुराण को सुनिये; जिसको सुनकर मनुष्य भगवान् वामन की कृपा से मुक्ति प्राप्त करता है।

सनत्कुमारमासीनं स्थाणोर्वटसमीपतः।
ऋषिभिर्बालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः॥ ४॥
मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च।
पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा॥ ५॥

मार्कण्डेय मुनि ने बालखिल्य आदि ऋषियों तथा

महात्मा ब्रह्मपुत्रों के साथ स्थाणुवट के समीप विराजमान सनत्कुमार के पास जाकर विनयपूर्वक सरोवर का महात्म्य, उसका प्रमाण तथा उसकी स्थिति के विषय में पूछा—

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापक्षयापहम्॥ ६॥

मार्कण्डेय ने कहा— हे ब्रह्मपुत्र! हे महानुभाव! हे सर्वशास्त्र! हे विशारद! समस्त पापों के नाशक सरोवर के माहात्म्य के विषय में आप मुझे बतायें।

कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसत्तम।
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपतः॥ ७॥
येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे॥ ८॥

हे द्विजश्रेष्ठ! कौन से तीर्थ दृश्यमान तथा कौन से गुप्त हैं? स्थाणु के समीप स्थित कौन से लिंग अत्यंत पवित्र हैं? जिनके दर्शनमात्र से व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, वटवृक्ष के दर्शनों का पुण्य तथा उसकी उत्पत्ति के विषय में भी आप हमें बतायें।

प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम्।
गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते॥ ९॥
देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमध्ये व्यवस्थितः।
किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान्पुनः॥ १०॥
स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम्।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे॥ ११॥

प्रदक्षिणा का जो फल है, तीर्थस्नान का जो फल है, गुप्त तथा व्यक्त तीर्थों में जाने से जो पुण्य उत्पन्न होता है, देवाधिदेव स्थाणु जिस प्रकार संसार के मध्य प्रतिष्ठित हुए, शक्र ने किस लिए उस तीर्थ सरोवर को धूल से भर दिया? स्थाणुतीर्थ का माहात्म्य, चक्रतीर्थ का फल तथा सूर्यतीर्थ और सोमतीर्थ का माहात्म्य कृपया यह सब हमें बताइये।

शङ्करस्य च गुह्यानि विष्णोः स्थानानि यानि च।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम्॥ १२॥
ब्रूहि देवाधिदेवस्य माहात्म्यं देव तत्त्वतः।
विरञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च॥ १३॥

हे महानुभाव! सरस्वती के समीप शङ्कर और विष्णु के जो गुप्त स्थान हैं उनके विषय में भी विस्तार से बताइये। हे देव! देवाधिदेव के माहात्म्य को हमारे लिये यथार्थतः कहिये। ब्रह्मा की कृपा से आपको सब कुछ विदित है।

लोमहर्षण उवाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः।
अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः॥ १४॥
पर्यङ्कं शिथिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम्।
कथयामास तत्सर्वं यच्छुतं ब्रह्मणः पुरा॥ १५॥

लोमहर्षण ने कहा— मार्कण्डेय के वचन को सुनकर वे ब्रह्मात्मा महामुनि पर्यंक (आसन) में स्थित होकर अत्यन्त भक्तिभाव से तीर्थ के माहात्म्य का विशेषरूप से ध्यान करते हुये तथा महेश्वर को नमस्कार करके वह सब कुछ कहने लगे जो उन्होंने पहले ब्रह्मा से सुना था।

सनत्कुमार उवाच

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शुभम्।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम्॥ १६॥

सनत्कुमार ने कहा— मैं वरदान देने वाले सर्वसमर्थ भगवान् महादेव शिव को नमस्कार करके ब्रह्मा के द्वारा बताई गयी तीर्थों की उत्पत्ति के विषय में कहूँगा।

पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसंभवम्॥ १७॥
तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे।
सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत॥ १८॥

पुराकाल में एक बार घोर प्रलयकाल आया था। तब स्थावर तथा जंगम समस्त अस्तित्व के नष्ट हो जाने पर निखिल प्रजाओं का बीजभूत एक विशाल अण्ड उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा उस अण्डे में स्थित होकर सो गये तथा सहस्र युगपर्यन्त सोने के पश्चात् वह जागे।

सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च॥ १९॥

सोकर उठे ब्रह्मा ने शून्य लोक को देखा और रजोगुण से आकृष्ट होकर उन्होंने सृष्टि के विषय में सोचा।

रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः।
उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते॥ २०॥

रजस् को सृष्टि का गुण कहा गया है, जब कि सत्त्व स्थिति का गुण को जाता है। प्रलयकाल में तमोगुण का प्रवर्तन होता है।

गुणातीतः स भगवान्व्यापकः पुरुषः स्मृतः।
तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्॥ २१॥

जीवरूप में जाना जाने वाला यह समस्त विश्व जिसके द्वारा व्यापक है वह व्यापक परमेश्वर पुरुष उक्त तीनों ही गुणों से परे माना जाता है

स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षवित्॥ २२॥

वही ब्रह्मा है, वही गोविन्द है, ईश्वर और वही सनातन है। जो उस महान् को जान लेता है वह मोक्षवित् समस्त को जान लेता है।

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम्।
येषामनन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्॥ २३॥

जिनका चित्त अनन्य भाव से उस 'आत्मा' (परम पुरुष) में प्रतिष्ठित है। समस्त तीर्थों अथवा विभिन्न आश्रमों से क्या प्रयोजन है?

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलशमादियुक्ता।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥ २४॥

आत्मा एक नदी है, जिसमें 'संयम' उतरने की पवित्र सीढ़ियाँ हैं, सत्य जिसका जल है और जो शील और समाधि से युक्त है, उसमें स्नान करने वाला पुण्यकर्म मनुष्य पवित्र हो जाता है। जल से वह अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होता।

एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
यदात्मसंबोधसुखे प्रविष्टम्।
ज्ञेयं तदेव प्रवन्दति सन्त-
स्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान्॥ २५॥

प्रत्येक मनुष्य का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह आत्मबोध के सुख को अनुभव करे। वह आत्मतत्त्व ही एकमात्र ज्ञेय है, ऐसा सन्त कहते हैं। उसे प्राप्त कर के यह शरीरी समस्त कामनाओं से मुक्त हो जाता है।

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च।
शीलं स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
मक्रोधनश्चोपरमः क्रियासु॥ २६॥

ब्राह्मण के लिए एकता, समता, सत्यता,शील में अवस्थिति, हिंसावृत्ति पर नियंत्रण, क्रोध से रहित होना, समस्त क्रियाओं से उपरति—इन सब से बढ़ कर कोई धन नहीं है।

एतद् ब्रह्म समासेन मयोक्तं ते द्विजोत्तम।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥ २७॥

हे द्विजोत्तम! यह मैंने संक्षेपरूप से ब्रह्मा के विषय में तुमसे कहा है जिसको जानकर तुम परम ब्रह्म को प्राप्त करोगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः।
इमं चोदाहरन्त्येव श्लोकं नारायणं प्रति॥ २८॥

अब परमात्मा ब्रह्म की उत्पत्ति के विषय में सुनिये। इस श्लोक को नारायण के विषय में कहा जाता है।

आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥ २९॥

जल को 'नारा' कहा जाता है— ऐसा हम सुनते हैं। उनमें वह शयन करता है जिस कारण से वह 'नारायण' रूप में स्मृत है।

विशुद्धः सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतं जगत्।
अण्डं विभेद भगवांस्तस्मादोमित्यजायत॥ ३०॥

उस जल में समस्त जगत् को अन्तर्गत जानकर वह महाशक्तिमान् जागृत हुआ, और उसने अण्डे को तोड़ा जिसमें से 'ओम्' उत्पन्न हुआ।

ततो भूरभवत्तस्माद्भुव इत्यपरः स्मृतः।
स्वः शब्दश्च तृतीयोऽभूद्भूर्भुवःस्वेति संज्ञिताः॥ ३१॥

तदनन्तर 'भूः' हुआ। उसमें से भुवः यह (दूसरा)

तथा 'स्वः' यह तीसरा शब्द उत्पन्न हुआ और इस तरह यह 'भूः भुवः स्वः' इस प्रकार जाना गया।

तस्मात्तेजः समभवत्तत्सवितुर्वरेण्यं यत्।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम्॥ ३२॥

उससे तेज उत्पन्न हुआ तो 'तत् सवितुः वरेण्यम्' हुआ। अण्डे से जो तेज निकला उसने समस्त जल को सुखा दिया।

तेजसा शोषितं शेषं कललत्वमुपागतम्।
कललाद्बुद्बुदं ज्ञेयं ततः काठिन्यतां गतम्॥ ३३॥
काठिन्याद्धरणी ज्ञेया भूतानां धारिणी हि सा।
यस्मिन्स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन् संनिहितं सरः॥ ३४

तेज से जल के सूखने के पश्चात् अवशिष्ट 'गर्भ' बन गया। उस गर्भ से 'भ्रूण' समझना चाहिये जो कठ़ोर हो गया। कठ़ोरता के कारण उसे 'धरणी' रूप में जाना गया; क्योंकि वह समस्त प्राणियों को धारण करने वाली है। जिस स्थान पर वह अण्ड स्थित था उसी स्थान पर यह 'सन्निहित' सरोवर है।

यदाद्यं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३५॥

जो तेज सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ उसे 'आदित्य' कहा जाता है। अण्डे के मध्य से लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुये।

उल्वं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः॥ ३६॥
नाभिस्थाने यदुदकं ब्रह्मणो निर्मलं महत्।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा॥ ३७॥

उस अण्ड का 'उल्व' मेरु पर्वत हुआ। अन्य पर्वत उसके जरायु माने गये। समस्त महासागर तथा हजारों नदियाँ 'गर्भोदक' है। ब्रह्मा के नाभिस्थान में जो जल है, वह अत्यंत निर्मल था। उस निर्मल और श्रेष्ठ जल से यह सरोवर परिपूर्ण हो गया।

तस्मिन्मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः।
तस्माद्विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥ ३८॥
शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम्।
ततः सृष्टिं चिन्तयतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
मनसा मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः॥ ३९॥

इस सरोवर के मध्य यह स्थाणुरूप वटवृक्ष है जिससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उत्पन्न हुए। तदनन्तर ब्राह्मणों की सेवा के लिये शूद्र उत्पन्न हुआ। तदुपरान्त सृष्टि के विषय में विचार करते हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मन से मानसपुत्र सनकादि ऋषि उत्पन्न हुए।

पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः।
उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन्॥ ४०॥

उस बुद्धिमान् ब्रह्मा के पुनः सर्जन के इच्छुक होने पर सप्तर्षि उत्पन्न हुए जो प्रजापति बन गए।

पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च।
बालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः॥ ४१॥
ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः।
उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैः शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४२॥

रजोगुण से मोहित एवं चिन्तन करते हुए ब्रह्मा से तप एवं स्वाध्याय में तत्पर बालखिल्यादि उत्पन्न हुए जो सदैव स्नान, तप एवं देवाराधन में तत्पर रहते हैं; और उपवास तथा घोर तपव्रतों से अपने शरीर का शोषण करते हैं।

वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः।
तपसा परमेणेह शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४३॥
दिव्यं वर्षसहस्रं ते कृशा धमनिसंतताः।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शङ्करः॥ ४४॥

वानप्रस्थाश्रम में विधिवत् निरन्तर अग्निहोत्र में संलग्न रहकर वे परम तप से अपने कलेवर को शोषित करते हैं। सैकड़ों दिव्य वर्षों तक अपनी नाड़ियों को संयत करके कृश-शरीर वाले उन्होंने देवेश की आराधना की, परन्तु शङ्कर संतुष्ट नहीं हुए।

ततः कालेन महता उमया सह शङ्करः।
आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवी सुदुःखिता॥ ४५॥
प्रसाद्य देवदेवेशं शङ्करं प्राह सुव्रता।
क्लिश्यन्ति ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः॥ ४६॥

बहुत समय पश्चात् देवाधिदेव शङ्कर उमा के साथ

आकाशमार्ग से जा रहे थे। उन कठोरव्रती तपस्वियों को देखकर अत्यंत दुःखित सुव्रता देवी उमा ने देवदेवेश को प्रसन्न करते हुए उनसे कहा— देवदारु के वन में रहने वाले ये मुनिगण अत्यन्त दुःखी हैं।

तेषां क्लेशक्षयं देव विधेहि कुरु मे दयाम्।
किं वेदधर्मनिष्ठानामनन्तं देव दुष्कृतम्॥४७॥
नाद्यापि येन शुद्ध्यन्ति शुष्कस्नाय्वस्थिशोषिताः।

हे देव! मुझ पर दया करें और इनके दुःख का नाश करें। क्या, धर्म में निष्ठा रखने वाले इन ऋषियों के पाप इतने अनंत हैं कि अपनी नाड़ियों को सुखा देने और अस्थिभाग मात्र अवशिष्ट रहने पर भी ये अभी भी शुद्ध नहीं हुए।

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिनाकी पातितान्धकः।
प्रोवाच प्रहसन्मूर्ध्ना चारुचन्द्रांशुशोभितः॥४८॥

देवी उमा के इस प्रकार वचन सुनकर अन्धक के शत्रु, चारुचन्द्रकला से सुशोभित मूर्धा वाले पिनाकधारी भगवान् शिव ने हँसते हुए कहा—

श्रीमहादेव उवाच

न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः॥४९॥
न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः।

हे देवि! आप धर्म की गहन गति को यथार्थ रूप में नहीं जानती। ये न तो धर्म को जानते हैं और न ही ये काम से ही रहित है। न ही ये क्रोध से मुक्त हैं। वस्तुतः ये तो मूढबुद्धि हैं।

एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद्देवी मा मैवं शंसितव्रतान्॥५०॥
देव प्रदर्शयात्मानं परं कौतूहलं हि मे।
स इत्युक्त उवाचेदं देवीं देवः स्मिताननः॥५१॥

यह सुनकर देवी ने कहा— हे देव! इन कठोर व्रतधारियों के विषय में ऐसा न कहें। आप स्वयं को प्रकट करें; मुझे तीव्र जिज्ञासा है। देवी के इस प्रकार कहने पर देव शङ्कर ने मुस्कराते हुए देवी से इस प्रकार कहा—

तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मुनिपुंगवाः।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम्॥५२॥

(हे देवि) तुम यहीं रुको। मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ ये मुनिगण घोर तपस्या कर रहे हैं। मैं वहाँ जाकर इनके क्रियाकलापों को देखूँगा।

इत्युक्ता तु ततो देवी शङ्करेण महात्मना।
गच्छस्वेत्याह मुदिता भर्त्तारं भुवनेश्वरम्॥५३॥

महानुभाव शङ्कर के द्वारा ऐसा कहने पर प्रसन्नचित्त देवी ने स्वामी भुवनेश्वर से कहा 'जाइये'।

यत्र ते मुनयः सर्वे काष्ठलोष्ठसमाः स्थिताः।
अधीयाना महाभागाः कृताग्निसदनक्रियाः॥५४॥
तान्विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत्॥५५॥
आश्रमे पर्यटन्भिक्षां मुनीनां दर्शनं प्रति।
देहि भिक्षां ततश्चोक्त्वा ह्याश्रमादाश्रमं ययौ॥५६॥

जहाँ वे मुनिगण काष्ठ के टुकडे के समान (निश्चल) स्थित थे, वेदों का अध्ययन करते हुए यज्ञाग्नि इत्यादि क्रिया करते हुए रहे थे, वहाँ उन्हें देखकर महानुभाव नग्न,सर्वांगसुन्दर, वनमालाधारी, युवा, भिक्षापात्र धारण करने वाले, वह देव शङ्कर मुनियों के दर्शन की इच्छा से आश्रम में भिक्षा माँगते हुए 'भिक्षा दो' इस प्रकार कहते हुए एक आश्रम से अन्य आश्रम को जाने लगे।

तं विलोक्याश्रमगतं योषितो ब्रह्मवादिनाम्।
सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः॥५७॥
प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम्।
परस्परमिति चोक्त्वा गृह्य मूलफलं बहु॥५८॥
गृहाण भिक्षामूचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः।
स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम्॥५९॥
देहि देहि भिक्षां शिवं वोऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः।
तस्मै दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्ताः स्मरातुराः॥६०॥

स्त्रियों ने कहा— आश्रम में आए हुए उस भिक्षुक को देखकर तपस्वियों की स्त्रियाँ उसके रूपसौन्दर्य से आकृष्ट होकर कौतूहलवश एक दूसरे से बोलीं— आओ! इस भिक्षुक को देखें। परस्पर इस प्रकार कहकर बहुत से कन्दमूलफल लेकर वे मुनिपत्नियाँ उस देव से बोलीं—

भिक्षा ग्रहण कीजिए। वह शङ्कर भी उस भिक्षापात्र को पसार कर अत्यन्त आदरसहित 'दीजिए, दीजिए', तपोवन में रहने वाली आप सब का कल्याण हो, इस प्रकार कहने लगे। हँसते हुए देव शङ्कर को देवी उमा ने देखा। शङ्कर को भिक्षा देकर उनसे आकृष्ट हुई मुनिपत्नियाँ उनसे पूछने लगीं।

कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते।
यत्र नग्नेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः।
भवान्वै तापसो हृद्यो ब्रूहि स्मो यदि मन्यसे॥ ६१॥

हे तपस्वी! आपने कौन सा व्रत को धारण किया है जो आप नग्न शरीर पर वनमाला से सुशोभित हैं? आप आकर्षक तपस्वी हैं और हम भी सुन्दर हैं। यदि आप ऐसा मानें तो!

इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः।
इदमीदृग् व्रतं किंचिन्न रहस्यं प्रकाशते॥ ६२॥
शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र वाऽऽख्या न विद्यते।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ॥ ६३॥

तपस्वी स्त्रियों के द्वारा इस प्रकार कहने पर देव शङ्कर ने हँसते हुए इस प्रकार कहा— यह व्रत इस प्रकार का है कि इसका रहस्य प्रकाश्य नहीं है। विशेषरूप से जहाँ बहुत से सुनने वाले हों वहाँ इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। हे सौभाग्यवती! इस व्रत को इस प्रकार जानकर आप सब चली जाएँ।

एवमुक्तास्तदा तेन ताः प्रत्यूचुस्तदा मुनिम्।
रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत्॥ ६४॥

उस मुनि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उन स्त्रियों ने मुनि से कहा— हे मुनि! हम निश्चय ही एकांत स्थान में जाएँगे; क्योंकि हमें तुम्हारे विषय में जानने का महान् कौतूहल है।

इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहुः पाणिपल्लवैः।
काचित्कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्त्वथा॥ ६५॥
जानुभ्यामपरा नार्यः केशेषु ललितापराः।
अपरास्तु कटीरन्ध्रे अपराः पादयोरपि॥ ६६॥

यह कह कर उन विलासी स्त्रियों में से उस तपस्वी को कुछ ने हथेलियों से, कुछ ने कण्ठ से, कुछ ने भुजाओं से, कुछ स्त्रियों ने घुटनों से, कुछ ने केशों से, कुछ ने कटिरन्ध्र से तथा कुछ ने पैरों से पकड़ लिया।

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः॥ ६७॥
पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमूर्द्धत्य भीषणम्।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ ६८॥

आश्रम में अपनी स्त्रियों के कामजनित क्षोभ को देखकर काष्ठ और पाषाण को हाथ में लिए हुए मुनियों ने 'मार डालो' इस प्रकार कहकर देव के भीषण लिंग को उखाड़कर गिरा दिया। उस लिंग के गिरते ही देव (शङ्कर) अन्तर्ध्यान हो गये।

देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः।
पतिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे चराचरे॥ ६९॥
क्षोभो बभूव सुमहानृषीणां भावितात्मनाम्।
एवं देवे तदा तत्र वर्तति व्याकुलीकृते॥ ७०॥
उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमतां वरः।
न वयं विद्मः सद्भावं तापसस्य महात्मनः॥ ७१॥

देवी (उमा) के साथ भगवान् रुद्र कैलाश पर्वत की ओर चले गए। देवाधिदेव के लिंग के गिरते ही समस्त चराचर के नष्ट हो जाने पर पवित्रात्मा ऋषियों को महान् क्षोभ हुआ। तब देव (शङ्कर) के व्याकुल अवस्था में वर्तमान होने पर उन बुद्धिमान् ऋषियों में से भी सर्वश्रेष्ठ मुनि ने कहा— हम तपस्वी महात्मा के सद्भाव (शांत व्यवहार) को नहीं जानते।

विरिञ्चिं शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम्।
एवमुक्ताः सर्व एव मुनयः लज्जिता भृशम्॥ ७२॥

हमें विरंचि की शरण में जाना चाहिये। वही समस्त क्रियाकलापों को जानते हैं। इस प्रकार कहने पर समस्त ऋषिगण अत्यन्त लज्जित हुए।

ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सह निषेवितम्।
प्रणिपत्याथ देवेशं लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः॥ ७३॥

वे देवों के द्वारा निषेवित ब्रह्मा के लोक में गए। तदनन्तर देवेश को नमस्कार करके वे सब लज्जावश मुख नीचे करके खड़े हो गए।

अथ तान्दु:खितान्दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
अहो मुग्धा यदा यूयं क्रोधेन कलुषीकृता:॥७४॥

उनको इस प्रकार दु:खी देखकर ब्रह्मा ने कहा— अहो! तुम सब निश्चय ही मूढ़ हो जो क्रोध से अपने आप को कलुषित कर रहे हो।

न धर्मस्य क्रिया कांचिज्ज्ञायते मूढबुद्धय:।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं तापसा: क्रूरचेष्टिता:॥७५॥
विदित्वा यद्बुध: क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात्।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन्विभुर्नित्यो व्यवस्थित:॥७६॥

हे मूढ़बुद्धि महात्मागण! धर्म की किसी विशिष्ट क्रिया को तुम नहीं जानते। हे क्रूर व्यवहार करने वाले ऋषिगण! धर्म के सर्वस्व को सुनिये जिसको जान कर बुद्धिमान् धर्म के फल को प्राप्त करते हैं।

सोऽनादि: स महास्थाणु पृथक्त्वे परिसूचित:।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै॥७७॥
तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृत:।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपचीयते॥७८॥

वह नित्य आत्मतत्त्व और सर्वव्यापक शरीर में अवस्थित है। वह अनादि महास्थाणु है, वह सर्वथा पृथक् अथवा अनिर्बद्ध या अनासक्त रूप से जाना जाता है। जिस प्रकार सर्वथा वर्णहीन (उज्ज्वल) मणि समीपस्थ वस्तु के वर्ण के वर्ण को ग्रहण कर उसी वर्ण को धारण कर लेती है। उसी प्रकार आत्मा भी मन की सन्निधि में रूप धारण करता है तथा मन से चिंतित उस रूपभेद का आश्रय लेकर विभिन्न कर्मों द्वारा पहचाना जाता है (रूप धारण करने वाला प्रतीत होता है)।

तत: कर्मवशाद्भुङ्क्ते संभोगान् स्वर्गनारकान्।
तन्मन: शोधयेद्धीमान्ज्ञानयोगाद्युपक्रमै:॥७९॥

तदनन्तर उन कर्मों के संयोग से ही (संस्कारों से ही) वह स्वर्ग और नरक का भोग करता है। इसलिए ज्ञानयोग आदि साधनों के द्वारा बुद्धिमान् व्यक्ति को अपना मन शुद्ध करना चाहिए।

तस्मिन् शुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुल:।
न शरीरस्य संक्लेशैरपि निर्दहनात्मक:॥८०॥

मन के शुद्ध होने पर वह आत्मा स्वयं ही निश्चल और शान्त हो जाता है। शरीर के इन निर्दहनात्मक क्लेशरूप व्रत एवं नियमों के द्वारा वह आत्मा शुद्ध और शान्त होता है।

शुद्धिमाप्नोति पुरुष: संशुद्धं यस्य नो मन:।
क्रिया हि नियमनार्थाय पातकेभ्य: प्रकीर्त्तिता:॥८१॥

जिसका मन शुद्ध है वह मनुष्य निश्चय ही शुद्धि को प्राप्त कर लेता है। व्रतादि क्रियाएं तो केवल पापकर्मों से रोकने के लिए कही गई हैं।

यस्मादत्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्ध्यते किल।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्तित:॥८२॥

क्योंकि यह शरीर अत्यंत अशुद्ध है, इसलिये यह शीघ्र शुद्ध नहीं होता। अत: लोकों में इसके सन्मार्ग पर प्रवर्तन का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है।

वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित्।
निमित्तं मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोत्तमभागिनाम्॥८३॥

किसी लोकाध्यक्ष के द्वारा यह वर्णाश्रम विभाग बनाया गया है, जो उत्तम भाग्यवालों के लिए मोह-माहात्म्य का चिह्नरूप है।

भवन्त: क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिता:।
ज्ञानिनामाश्रमो वेश्म अनाश्रममयोगिनाम्॥८४॥

आप सब क्रोध और लालसा से अभिभूत होकर इस आश्रम में निवास कर रहे हैं, जबकि ज्ञानी (योगियों) का ही आश्रम में निवास होता है, अयोगियों (कामी और क्रोधी) का आश्रमनिवास नहीं हुआ करता।

क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रम:।
क्व क्रोधमीदृशो घोरं येनात्मानं न जानथ॥८५॥

कहाँ आप लोगों का यह समस्त इच्छाओं का दमन और कहाँ यह नारीविषयक भ्रम और कहाँ यह भयानक क्रोध! जिसके कारण आप अपने आपको भी नहीं जान पा रहे हो।

यत्क्रोधनो यजति यद् ददाति
यद् वा तपस्तपति यज्जुहोति तस्य।
न तस्य प्राप्नोति फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि क्रोधनस्य॥८६॥

क्रोधी व्यक्ति चाहे यज्ञ करें, चाहे दान करे, चाहे तपस्या करे अथवा चाहे आहुति दे— वे इस लोक में इन कर्मों का कोई फल प्राप्त नहीं करता। क्रोधी व्यक्ति के (समस्त क्रियाओं का) फल नष्ट हो जाते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(ब्रह्मादि देव द्वारा महादेव की स्तुति)

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते।
पुनरेव च पप्रच्छुर्जगतः श्रेयकारणम्॥ १॥

सनत्कुमार ने कहा— ब्रह्मा के वचन को सुनकर उन समस्त ऋषियों ने पुनः ब्रह्मा से जगत् के कल्याण का कारण पूछा।

ब्रह्मोवाच

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम्।
प्रसादाद्देवदेवस्य भविष्यथ यथा पुरा॥ २॥

ब्रह्मा ने कहा—हम भगवान् त्रिलोचन शूलपाणि (शिव) की शरण में जाते हैं। देवाधिदेव की कृपा से तुम पहले जैसे हो जाओगे।

इत्युक्ता ब्रह्मणा सार्द्धं कैलासं गिरिमुत्तमम्।
ददृशुस्ते समासीनमुमया सहितं हरम्॥ ३॥

इस प्रकार कहने पर ब्रह्मा के साथ वे सब ऋषिगण गिरिश्रेष्ठ कैलास पर उमासहित विराजमान 'हर' के दर्शन के लिए गए।

ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः।
देवाधिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य प्रभु शिवम्॥ ४॥

लोकपितामह ब्रह्मा ने देवाधिदेव, त्रिलोक के स्वामी, वरद शिव की स्तुति करना प्रारम्भ किया।

ब्रह्मोवाच

अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने।
महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने॥ ५॥

अनन्त, वरदान देने वाले, पिनाकधारी, परमात्मा, महादेव, स्वामी, स्थाणु— आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः॥ ६॥

हे सर्वदा तारक! हे लोकों के स्वामी! आपको नमस्कार है। आप समस्त ज्ञान के देने वाले हैं! आप ही एकमात्र स्वामी पुरुषोत्तम हैं।

नमस्ते पद्मगर्भाय पद्मशाय नमो नमः।
घोरशातिस्वरूपाय चण्डक्रोध नमोऽस्तु ते॥ ७॥

पद्मगर्भ, पद्मेश तथा परम शांतिस्वरूप आपको पुनः-पुनः नमस्कार है। हे प्रचण्ड क्रोध वाले! आप को नमस्कार है।

नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सुरनायक।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥ ८॥

हे देव! हे विश्व के स्वामी! हे देवताओं के सेनापति! आपको नमस्कार है। हे शूलपाणि! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन (समस्त विश्व के कर्त्ता) आपको नमस्कार है।

एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा।
उवाच मा भैर्व्रजत लिङ्गं वो भविता पुनः॥ ९॥
क्रियतां मद्वचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्तमा।
भविष्यति प्रतिष्ठायां लिङ्गस्यात्र न संशयः॥ १०॥

ब्रह्मा और ऋषियों के द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर महादेव ने कहा— डरिये मत! लिंग पुनः उत्पन्न हो जायेगा। मेरे वचनों के अनुसार शीघ्र आचरण कीजिए। लिंग की पुनः प्रतिष्ठा से मैं निश्चय ही अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा।

ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः।
न तेषां दुर्लभं किंचिद्भविष्यति कदाचन॥ ११॥

जो भक्ति को आश्रित होकर मेरे लिंग की पूजा करेंगे उनके लिए कभी भी कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा।

सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता।
शुद्ध्यते लिङ्गपूजायां नात्र कार्या विचारणा॥ १२॥

जानबूझकर किये गए समस्त पापों की भी लिंगपूजा से शुद्धि हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

युष्माभिः पातितं लिङ्गं सारयित्वा महत्सरः।
सन्निहत्यां तु विख्यातं तस्मिञ्शीघ्रं प्रतिष्ठितम्॥ १३॥

हे ब्राह्मणों! आप सब के द्वारा यह लिंग गिराया गया है, उसे उठाकर सान्निहत्य नामक सुविख्यात सरोवर तीर्थ में स्थापित करें।

यथाऽभिलषितं कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः।
स्थाणुनाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवौकसाम्॥ १४॥
स्थाण्वीश्वरे स्थितो यस्मात्ततः स्थाण्वीश्वरः स्मृतः।
ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ताः सर्वकिल्विषैः॥ १५॥

आप लोग इसमें प्रतिष्ठित लिंग से समस्त अभिलषित वस्तुओं को अवश्य ही प्राप्त करोगे। यह स्थाणीश्वर में स्थित है, अत एव स्थाणु-ईश्वर के रूप में जाना जाता है। जो स्थाणु का स्मरण करते हैं वे समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।

भविष्यन्ति शुद्धदेहा दर्शनान्मोक्षगामिनः।
इत्येवमुक्ता देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह॥ १६॥
तस्माद्दारुवनाल्लिङ्गं नेतुं समुपचक्रमुः।
न तं चालयितुं शक्तास्ते देवा ऋषिभिः सह॥ १७॥

शुद्ध देह वाले होकर वे दर्शनमात्र से मोक्षगामी हो जाते हैं। देव (शङ्कर) ने ऋषियों सहित ब्रह्मा से यह कहा! इसलिए वे दारुवन से लिंग को लाने का प्रयत्न करने लगे। परंतु ऋषियों सहित देवता उसे हिलाने में भी समर्थ नहीं हुए।

श्रमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तेषां श्रमाभिपन्नानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद्वचः॥ १८॥

अत्यधिक थक जाने पर वे सब ब्रह्मा की शरण में गए। परिश्रम से अत्यधिक संतप्त उन देवताओं को ब्रह्मा ने इस प्रकार कहा—

किं वा श्रमेण महता न यूयं वहनक्षमाः।
स्वेच्छया पातितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना॥ १९॥

आपके कठोर परिश्रम से क्या लाभ? आप सब उस लिंग को उठाने में समर्थ नहीं है जिसे शूलपाणि देवाधिदेव ने अपनी इच्छा से गिराया था।

तस्मात्तमेव शरणं यास्यामः सहिताः सुराः।
प्रसन्नश्च महादेवः स्वयमेव स नयिष्यति॥ २०॥

इसलिए देवताओं सहित हमें उनकी शरण में जाना चाहिये। प्रसन्न होकर स्वयं महादेव ही उस (लिंग) को ले जायेंगे।

इत्येवमुक्ता ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह।
कैलासं गिरिमासेदू रुद्रदर्शनकाङ्क्षिणः॥ २१॥

इस प्रकार कहे जाने पर ऋषि और देवता ब्रह्मा के साथ रुद्र की दर्शन की अभिलाषा से कैलाश पर्वत आ पहुँचे।

न च पश्यन्ति ते देवं ततश्चिन्तासमन्विताः।
ब्रह्माणमूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः॥ २२॥

परन्तु वे देव का दर्शन नहीं कर पाए। तदनन्तर चिंतितमना होकर उन ऋषियों ने ब्रह्मा से कहा— वह देव महेश्वर कहाँ हैं?

ततो ब्रह्मा चिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा देवं महेश्वरम्।
हस्तिरूपेण तिष्ठन्तं मुनिभिर्मानसः स्तुतम्॥ २३॥

तब ब्रह्मा ने चिरकाल तक ध्यान लगा कर पता लगाया कि देव महेश्वर हाथी के रूप में विराजमान हैं तथा मानस मुनियों के द्वारा उनकी स्तुति की जा रही है।

अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह।
गता महत्सरः पुण्यं यत्र देवः स्वयं स्थितः॥ २४॥

तदनन्तर वे ऋषि और ब्रह्मा सहित समस्त देवतागण पवित्र महत्सर पर पहुँचे जहाँ देव स्वयं प्रतिष्ठित थे।

न च पश्यन्ति तं देवमन्विषन्तस्ततस्ततः।
ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहिता स्तिथाः॥ २५॥
पश्यन्ति देवीं सुप्रीतां कमण्डलुविभूषिताम्।
प्रीयमाणा तदा देवी इदंपदं वचनमब्रुवीत्॥ २६॥

इधर -उधर ढूँढने पर भी ब्रह्मा सहित देवता शकंर को नहीं देख सके। वे सब चिन्ताकुल हो गए। तब उन्होंने अत्यंत प्रसन्न रूप वाली और कमण्डलु से सुशोभित देवी पार्वती को देखा। अत्यंत प्रसन्न देवी ने उनसे कहा—

श्रमेण महता युक्ता अन्विषन्तो महेश्वरम्।
पीयताममृतं देवास्ततो ज्ञास्यथ शङ्करम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भवान्या समुदाहतम्॥ २७॥
सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृतं शुचि।
अनन्तरं सुखासीनाः पप्रच्छुः परमेश्वरीम्॥ २८॥

क्व स देव इहायातो हस्तिरूपधरः स्थितः।
दर्शितश्च तदा देव्या सरोमध्ये व्यस्थितः॥२९॥
दृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सहर्षिभिः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं वचनमब्रुवन्॥३०॥

महेश्वर को ढूँढते हुए आप सब बहुत थक गए हैं। इस अमृत को पीजिए। तदनन्तर आप शङ्कर को जान लेंगे। भवानी के द्वारा कहे गए इन वचनों को सुनकर सुखपूर्वक बैठे हुए वे देवतागण उस पवित्र अमृत को पीने लगे। तदनन्तर अत्यंत सुखी और संतुष्ट परमेश्वरी (उमा) से पूछने लगे— क्या हाथी का रूप धारण करने वाले वे देव यहाँ आए हैं? तदनन्तर देवी ने उन्हें सरोवर के मध्य अवस्थित देव को दिखाया। देव (शङ्कर) को देखकर अत्यंत प्रसन्न ऋषियों सहित समस्त देवता ब्रह्मा को आगे करके कहने लगे।

त्वया त्यक्तं महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम्।
तस्य चानयने नान्यः समर्थः स्यान्महेश्वरः॥३१॥

हे महेश्वर! हे महादेव! त्रिलोक में अभिवन्द्य जिस लिंग को आपने गिराया है; उसे लाने में और कोई समर्थ नहीं हो सकता ।

इत्येवमुक्तो भगवान्देवो ब्रह्मादिर्भिहरः।
जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रमम्॥३२॥

ब्रह्मादि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सर्वसमर्थ देव शङ्कर ऋषियों के साथ देवदारुवन के आश्रम में पहुँचे।

तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः।
करेण जग्राह ततो लीलया परमेश्वरम्॥३३॥

वहाँ जाकर हस्तिरूपधारी हर महादेव ने क्रीडावश उस लिंग को अपनी सूंड से उठा लिया।

तमादाय महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः।
निवेशयामास तदा सरःपार्श्वे तु पश्चिमे॥३४॥

महर्षियों के द्वारा स्तूयमान महादेव ने उसे उठाकर सरोवर के पश्चिम की ओर रख दिया।

ततो देवाः सर्व एव ऋषयश्च तपोधनाः।
आत्मानं सफलं दृष्ट्वा स्तवं चक्रुर्महेश्वरे॥३५॥

इस प्रकार समस्त तपस्वी ऋषिगण तथा देवतागण अपने आप को सफल देखकर महेश्वर की स्तुति करने लगे—

नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन् परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ सर्वेश्वर ज्ञानज्ञेय महाविरञ्च महाविभूते महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यम्बक महायोगिन् परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण सर्वगत सर्वदर्शन सर्वशक्ते सर्वदेव अज सहस्रार्चिः सुधामन् हरधाम अनन्तधाम संवर्त्त संकर्षण वडवानल अग्नीषोमात्मक पवित्र महापवित्र महामेघ महाकामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित हिरण्यवाह हिरण्यरेतः हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश मुञ्जकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर कमलेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शंभो च विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञहृदय सर्वयज्ञमय सर्वयज्ञसंस्तुत निराश्रय समुद्रेशय अत्रिसंभव भक्तानुकम्पिन् अभग्नयोग योगधर वासुकिमहामणिविद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर उमाशरीरार्धधर खड्गचर्मधर गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर प्रसीद भक्तजनवत्सल॥३८॥

हे परमात्मन्, हे अनन्तयोने .... आपको नमस्कार है। हे भक्तजनवत्सल! आप प्रसन्न हों।

एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या
सब्रह्ममुख्यैश्च पितामहेन।
त्यक्त्वा तदा हस्तिरूपं महात्मा
लिङ्गे तदा संनिधानं चकार॥३६॥

इस प्रकार ब्रह्मा को प्रतिनिधि बना कर देवताओं के द्वारा तथा स्वयं ब्रह्मा के द्वारा स्तूयमान भगवान् शङ्कर हस्तिरूप को त्याग कर लिंग में समा गए।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(स्थाणु लिङ्ग का माहात्म्य)

सनत्कुमार उवाच

अथोवाच महादेवो देवान्ब्रह्मपुरोगमान्।
ऋषीणां चैव प्रत्यक्षं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥ १॥

सनत्कुमार ने कहा— तदनन्तर महादेव ने ब्रह्मा के प्रतिनिधित्व में आये देवों तथा ऋषियों को श्रेष्ठ तीर्थ का माहात्म्य सुनाया।

एतत्सान्निहतं प्रोक्तं सरः पुण्यतमं महत्।
मयोपसेवितं यस्मात्तस्मान्मुक्तिप्रदायकम्॥ २॥

यह सन्निहित नाम से प्रसिद्ध महान् पुण्यशाली सरोवर है। क्योंकि यह मेरे द्वारा सेवित है, इसलिये यह मुक्ति प्रदान करने वाला है।

इह ये पुरुषाः केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
लिङ्गस्य दर्शनादेव पश्यन्ति परमं पदम्॥ ३॥

कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उस लिंग के दर्शन से परमपद का दर्शन करते हैं।

अहन्यहनि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च।
स्थाणुतीर्थं समेष्यन्ति मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥ ४॥

प्रतिदिन जब सूर्य मध्य आकाश में होता है तब समस्त तीर्थ, समुद्र नदियाँ और सरोवर स्थाणुतीर्थ में पहुँच जाते हैं।

स्तोत्रेणानेन च नरो यो मां स्तोष्यति भक्तितः।
तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः॥ ५॥

जो मनुष्य इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेगा उसके लिए मैं निश्चय ही सुलभ होऊँगा। इसमें संशय नहीं है।

इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रो ह्यन्तर्धानं गतः प्रभुः।
देवाश्च ऋषयः सर्वे स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ ६॥

यह कहकर प्रभु भगवान् रुद्र अन्तर्ध्यान हो गए तथा समस्त देवता और ऋषिगण अपने-अपने स्थान को चले गए।

ततो निरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कृतम्।
स्थाणुलिङ्गस्य माहात्म्यदर्शनात्स्वर्गमाप्नुयात्॥ ७॥

तदनन्तर स्वर्ग निरन्तर मनुष्यों से परिपूर्ण रहने लगा; क्योंकि स्थाणुलिंग के माहात्म्य के कारण उसके दर्शन से व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

ततो देवाः सर्व एव ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः॥ ८॥

तदनन्तर समस्त देवता ब्रह्मा की शरण में गए। उनसे ब्रह्मा ने कहा— आप सब किस कारण से यहाँ आए हैं?

ततो देवाः सर्व एव इदं वचनमब्रुवन्।
मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षास्माकं पितामह॥ ९॥

तदनन्तर समस्त देवताओं ने कहा-हमें मनुष्यों से अत्यधिक भय हो गया है। हे पितामह! हमारी रक्षा करें।

तानुवाच तदा ब्रह्मा सुरान् त्रिदशनायकः।
पांशुना पूर्यतां शीघ्रं सरः शक्रेहितं कुरु॥ १०॥

तदनन्तर देवताओं के नायक ब्रह्मा ने उन देवताओं से कहा— शीघ्र ही इस सरोवर को रेत से भर दो; और इन्द्र का भला करो।

ततो ववर्ष भगवान्पांशुना पाकशासनः।
सप्ताहं पूरयामास सरो दैवैस्तदा वृतः॥ ११॥

तब देवों से घिरे हुए भगवान् पाकशासन इन्द्र ने एक सप्ताह तक रेत की वर्षा की और सरोवर को रेत से भर दिया।

तं दृष्ट्वा पांशुवर्षं च देवदेवो महेश्वरः।
करेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तथा॥ १२॥

सरोवर को रेत से परिपूरित देखकर देवाधिदेव महेश्वर ने लिंग और वटवृक्ष को अपने हाथ में उठा लिया।

तस्मात्पुण्यतमं तीर्थमाद्यं यत्रोदकं स्थितम्।
तस्मिन्स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः॥ १३॥

इसलिये वटतीर्थ पुण्यतम है, जहाँ पवित्र एवं प्राचीन जल स्थित है। उसमें स्नान करके व्यक्ति समस्त तीर्थो में स्नान कर लेता है।

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं वटलिङ्गस्य चान्तरे।
तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुलर्भम्॥ १४॥

जो व्यक्ति वहाँ वटवृक्ष और लिंग के बीच में श्राद्ध करता है उसके पितर प्रसन्न होकर उसे भूलोक में दुर्लभ सब कुछ प्रदान कर देते हैं।

पूरितं च ततो दृष्ट्वा ऋषयः सर्व एव ते।
पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति श्रद्धया युताः॥ १५॥

सरोवर को रेत से परिपूरित देखकर समस्त ऋषि श्रद्धान्वित होकर समस्त अङ्गों का स्पर्श करते हैं।

तेऽपि निर्धूतपापास्ते पांशुना मुनयो गताः।
पूज्यमानाः सुरगणैः प्रयाता ब्रह्मणः पदम्॥ १६॥

समस्त पापों से मुक्त मुनिगण भी रेत से (स्पर्श के द्वारा) देवताओं के द्वारा पूज्यमान होकर ब्रह्मा के पद को प्राप्त कर लेते हैं।

ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च।
व्रजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १७॥

जो सिद्ध और महात्मा लिंग की पूजा करते हैं वे उस परमसिद्धि को प्राप्त करते हैं जहाँ पहुँचकर पुनर्जन्म नहीं होता।

एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शैलमयं तदा।
आद्यं लिङ्गं तदा स्थाप्य तस्योपरि दधार तत्॥ १८॥

इस प्रकार जानकर ब्रह्मा ने पहले आद्यलिंग की प्रतिष्ठा की और उसके ऊपर शैलमय लिंग की स्थापना की।

ततः कालेन महता तेजसा तस्य रञ्जितम्।
तस्यापि स्पर्शनात्सिद्धाः परं पदमवाप्नुयात्॥ १९॥

बहुत समय व्यतीत हो जाने पर वह शैलमय लिंग आदिलिंग के तेज से प्रकाशित हो गया। इस कारण उसके स्पर्श से भी सिद्धगण परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तमाः।
एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गस्य दर्शनान्नराः॥ २०॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तदनन्तर देवताओं ने ब्रह्मा को सूचित किया कि लिंग के दर्शन से मनुष्यों को परम सिद्धि की प्राप्ति होती है।

तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा देवानां हितकाम्यया।
उपर्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र चकार ह॥ २१॥

यह सुनकर सर्वसमर्थ ब्रह्मा ने देवताओं की हितेच्छा से क्रमशः अलग-अलग सात लिंगों की रचना की।

ततो ये मुक्तिकामाश्च सिद्धाःशमपरायणाः।
सेव्य पांशुं प्रयत्नेन प्रयाताः परमं पदम्॥ २२॥

जो व्यक्ति मुक्ति के इच्छुक हैं, सिद्ध हैं, तथा शांतिपरायण हैं वे इस रेत के सेवन से प्रयत्नपूर्वक परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः।
महादुष्कृतकर्माणं प्रयन्ति परं पदम्॥ २३॥

कुरुक्षेत्र में वायु के द्वारा उड़ाई गई यह धूल बड़े दुष्कर्म करने वालों को भी परमपद प्राप्त करा देती है।

अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि स्त्रियो वा पुरुषस्य वा।
नश्यते दुष्कृतं सर्वं स्थाणुतीर्थप्रभावतः॥ २४॥

स्त्रियों अथवा पुरुषों द्वारा जाने अथवा अनजाने में किये गये समस्त दुष्कर्म स्थाणुतीर्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च।
तत्सन्निधौ जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम्॥ २५॥

लिंग के दर्शन तथा वटवृक्ष के स्पर्श से निश्चय ही मुक्ति मिलती है। उसके समीप जल में स्नान करके मनुष्य को अभीप्सित फल की प्राप्ति होती है।

पितृणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन्करिष्यति।
बिन्दौ बिन्दौ तु तोयस्य अनन्तफलभाग्भवेत्॥ २६॥

जो उस जल में पितरों का तर्पण करेगा वहाँ जल की बूंद-बूंद में अनंत फलों को प्राप्त करेगा।

यस्तु कृष्णतिलैः सार्द्धं लिङ्गस्य पश्चिमे स्थितः।
तर्पयेच्छ्रद्धया युक्तः स प्रीणाति युगत्रयम्॥ २७॥

जो व्यक्ति लिंग के पश्चिम में बैठ कर कृष्णतिलों के साथ श्रद्धापूर्वक पितरों का तर्पण करता है वह उन्हें तीन युगों तक प्रसन्न रखता है।

यावन्मन्वन्तरं प्रोक्तं यावल्लिङ्गस्य संस्थितिः।
तावत्प्रीताश्च पितरः पिबन्ति जलमुत्तमम्॥ २८॥

जब तक मन्वन्तर कहा गया है तथा जब तक लिंग की प्रतिष्ठा है तब तक प्रसन्न पितर उत्तम जल का पान करते हैं।

कृते युगे सान्निहत्यं त्रेतायां वायुसंज्ञितम्।
कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपे रुद्रह्रदं स्मृतम्॥ २९॥

यह सतयुग में सान्निहत्य तथा त्रेता में 'वायु' इस नाम

से जाना गया। कलि और द्वापर युग के मध्य यह रुद्रह्रदकूप नाम से जाना जाता है।

चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां नरोत्तमः।
स्नात्वा रुद्रह्रदे तीर्थे परं पदमवाप्नुयात्॥ ३०॥

श्रेष्ठ मनुष्य चैत मास के कृष्णपक्ष में चतुर्दशी के दिन इस रुद्रह्रद के परम तीर्थ में स्नान करके परमपद को प्राप्त कर सकता है।

यस्तु वटे स्थितो रात्रौ ध्यायते परमेश्वरम्।
स्थाणोर्वटप्रसादेन मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३१॥

जो व्यक्ति रात्रि में वटवृक्ष के नीचे बैठकर परमेश्वर का ध्यान करता है वह स्थाणुवट की कृपा से अपने मन द्वारा अभिलषित फल को प्राप्त कर लेता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(भिन्न-भिन्न लिङ्गों का वर्णन)

सनत्कुमार उवाच

स्थाणोर्वटस्योत्तरतः शुक्रतीर्थं प्रकीर्त्तितम्।
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण सोमतीर्थं द्विजोत्तमाः॥ १॥

सनत्कुमार ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! स्थाणुवट के उत्तर में शुक्रतीर्थ तथा पूर्व में सोमतीर्थ प्रसिद्ध है।

स्थाणोर्वटं दक्षिणतो दक्षतीर्थमुदाहृतम्।
स्थाणोर्वटात् पश्चिमतः स्कन्दतीर्थं प्रतिष्ठितम्॥ २॥

स्थाणुवट के दक्षिण में दक्षतीर्थ कहा गया है तथा उस से पश्चिम में स्कन्दतीर्थ प्रतिष्ठित है।

एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृतः।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३॥

इन समस्त पुण्यतीर्थों के मध्य 'स्थाणु' प्रतिष्ठित है जिसके दर्शनमात्र से परमपद की प्राप्ति होती है।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यस्त्वेतानि परिक्रमेत्।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः॥ ४॥

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन जो इनकी परिक्रमा करता है, वह प्रत्येक पद में यज्ञफल को प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है।

एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तदा।
मरुद्भिर्वह्निभिश्चैव सेवितानि प्रयत्नतः॥ ५॥

यह सब तीर्थ मुनिगण, साध्यगण, आदित्यों, वसुओं मरुद्गण तथा वह्नियों के द्वारा निरन्तर प्रयत्नपूर्वक निषेवित है।

अन्ये ये प्राणिनः केचित् प्रविष्टाः स्थाणुमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ६॥

अन्य भी जो कोई व्यक्ति श्रेष्ठ स्थाणु तीर्थ में प्रवेश करते हैं, वह समस्त पापों से विमुक्त होकर परम गति को प्राप्त कर लेते हैं।

अस्ति तत्संनिधौ लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः।
उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति॥ ७॥

वहीं सन्निधि में देवाधिदेव शूलधारी शिव का लिंग है। उमा लिंगरूप में अवस्थित हर की सन्निधि को नहीं छोड़तीं। उसके दर्शनमात्र से व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना॥ ८॥
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वकामप्रदायकम्।
वटस्य पूर्वदिग्भागे विश्वकर्मकृतं महत्॥ ९॥
लिङ्गं प्रत्यङ्मुखं दृष्ट्वा सिद्धिमाप्नोति मानवः।
तत्रैव लिङ्गरूपेण स्थिता देवी सरस्वती॥ १०॥

वट के उत्तरी किनारे पर महात्मा तक्षक के द्वारा प्रतिष्ठित समस्त कामनाओं को देने वाला महालिंग है। वट के पूर्व वाले भाग में विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया महान् लिंग है जिसके दर्शन से व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वहीं देवी सरस्वती लिंग रूप में प्रतिष्ठित हैं।

प्रणम्य तां प्रयत्नेन बुद्धिं मेधां च विन्दति।
वटपार्श्वे स्थितं लिङ्गं ब्रह्मणा तत्प्रतिष्ठितम्॥ ११॥

जिनको प्रयत्नपूर्वक नमस्कार करने से बुद्धि और मेधा की प्राप्ति होती है। वटवृक्ष के बराबर में स्थित लिंग को स्वयं ब्रह्मा ने प्रतिष्ठित किया है।

दृष्ट्वा वटेश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम्।
ततः स्थाणुवटं दृष्ट्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्॥ १२॥

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा।

स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलीशो गणः स्मृतः॥ १३॥

वटेश्वर देव के दर्शन करके व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर स्थाणुवट के दर्शन करके और उसकी प्रदक्षिणा करके व्यक्ति सप्तद्वीपों सहित पृथिवी की प्रदक्षिणा कर लेता है। स्थाणु के पश्चिम दिशा वाले भाग में नकुलीश गण माना गया है।

तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।

तस्य दक्षिणदिग्भागे तीर्थं रुद्रकरं स्मृतम्॥ १४॥

जिनकी सायास अभ्यर्चना से व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। उसके दक्षिण दिशा वाले भाग में रुद्रकर नामक तीर्थ माना गया है।

तस्मिन्स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः।

तस्य चोत्तरदिग्भागे रावणेन महात्मना॥ १५॥

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः।

आषाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी।

तस्यां योऽर्चति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥ १६॥

उसमें स्नान करने वाला व्यक्ति समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है। उसके उत्तर दिशा वाले भाग में महात्मा रावण के द्वारा प्रतिष्ठित गोकर्ण नामक महालिंग है। आषाढमास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जो व्यक्ति गोकर्ण की अर्चना करता है उसका फल अत्यंत पुण्यदायक होता है।

कामतोऽकामतो वाऽपि यत्पापं तेन संचितम्।

तस्माद्विमुच्यते पापात्पूजयित्वा हरं शुचिः॥ १७॥

पवित्रात्मा मनुष्य जाने अनजाने में जो भी पाप कर लेता है हर की पूजा करके उन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

कौमारब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः।

तत्पुण्यं सकलं तस्य अष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम्॥ १८॥

अष्टमी के दिन शिव की पूजा करने वाला मनुष्य युवावस्था में ब्रह्मचर्य के पालन से प्राप्त होने वाला पुण्य प्राप्त करता है।

यदीच्छेत्परमं रूपं सौभाग्यं धनसंपदः।

कुमारेश्वरमाहात्म्यात्सिद्ध्यते नात्र संशयः॥ १९॥

व्यक्ति यदि परम सौन्दर्य, सौभाग्य और धनसंपदा की इच्छा करता है तो कुमारेश्वर के माहात्म्य से वह सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्य विभीषणः।

अजरश्चामरश्चैव कल्पयित्वा बभूव ह॥ २०॥

इसकी उत्तर दिशा वाले भाग में स्थित लिंग की पूजा करके विभीषण अजर और अमर हो गया था।

आषाढस्य तु मासस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत्।

तस्यां पूज्यः सोपवासो ह्यमृतत्वमवाप्नुयात्॥ २१॥

आषाढ मास के शुक्लपक्ष में जो अष्टमी होती है उसमें उस लिंग की पूजा करके उपवास रखने वाला व्यक्ति अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

खरेण पूर्णेरितं लिङ्गं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम।

तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात्॥ २२॥

हे द्विजोत्तम! उस स्थान में खर के द्वारा पूजित लिंग है, जिसकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करके व्यक्ति समस्त कामनाओं को पूर्ण कर लेता है।

दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम्।

यथाऽभिलषितान्कामानापतुस्तौ मुदाऽन्वितौ॥ २३॥

वहाँ पर दूषण और त्रिशिरा ने महेश्वर की पूजा करके समस्त अभिलषित कामनाओं की प्राप्ति द्वारा प्रसन्नता प्राप्त की थी।

चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत्।

तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिवाञ्छितम्॥ २४॥

चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में जो व्यक्ति वहाँ पूजा करता है, उसे वे दोनों वरदायी देवता समस्त अभिवाञ्छित प्रदान करते हैं।

स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः।

तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनि संभवैः॥ २५॥

स्थाणुवट के पूर्व में हस्तिपादेश्वर शिव हैं, जिनके दर्शन से मनुष्य अन्य जन्म में किए गये पापों से भी छूट जाता है।

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हारीतस्य ऋषेः स्थितम्।

यत्प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः॥ २६॥

उसके दक्षिण में हारीत ऋषि के द्वारा प्रतिष्ठित लिंग है, जिसको प्रयत्न के साथ प्रणाम करने से व्यक्ति को सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु वापीतस्य महात्मनः।
लिङ्गं त्रैलोक्यविख्यातं सर्वपापहरं शिवम्॥ २७॥

उसके दक्षिणपार्श्व में महात्मा वापीत का त्रिलोकप्रसिद्ध एवं समस्त पापों को हरने वाला शिवलिंग है।

कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २८॥
भुक्तिदं मुक्तिदं प्रोक्तं सर्वकिल्विषनाशनम्।
लिङ्गस्य दर्शनादेव ह्यग्निष्टोमफलं लभेत्॥ २९॥

कंकालरूपी महानुभाव रुद्र के द्वारा प्रतिष्ठित समस्त पापों का नाशक महालिंग है, जो समस्त भोगों तथा मुक्ति को प्रदान करने वाला है। समस्त पापों के नाशक उस लिंग के दर्शन से व्यक्ति को अग्निष्टोम के फल की प्राप्ति होती है।

तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धप्रतिष्ठितम्।
सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ३०॥

उसके पश्चिम दिशा वाले भाग में सिद्धेश्वर नाम से विख्यात सिद्ध लिंग प्रतिष्ठित है, जो समस्त सिद्धियों को देने वाला है।

तस्य दक्षिणदिग्भागे मृकण्डेन महात्मना।
तत्र प्रतिष्ठितं लिङ्गं दर्शनात्सिद्धिदायकम्॥ ३१॥

उसकी दक्षिण दिशा वाले भाग में महात्मा मृकण्ड के द्वारा प्रस्थापित लिंग है जो दर्शन मात्र से सिद्धिदायक है।

तस्य पूर्वे च दिग्भागे आदित्येन महात्मना।
प्रतिष्ठितं लिङ्गवरं सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ ३२॥

उसकी पूर्व दिशा वाले भाग में महात्मा आदित्य के द्वारा प्रतिष्ठित श्रेष्ठ लिंग है जो समस्त पापों का नाश करने वाला है।

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो रम्भा चाप्सरसां वरा।
परस्परं सानुरागौ स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणौ॥ ३३॥
दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सानुरागौ परस्परम्।
आराध्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम्॥ ३४॥

परस्पर अनुरक्त एवं स्थाणु के दर्शनों के इच्छुक चित्रांगद गंधर्व एवं अप्सराओं में श्रेष्ठ रम्भा ने स्थाणु का दर्शन और पूजन करके वरदाता देव की आराधना की एवं महेश्वर की प्रतिष्ठा की।

चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विज।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले जन्म समाप्नुयात्॥ ३५॥

हे ब्राह्मण! चित्रांगदेश्वर एवं रम्भेश्वर के दर्शन करने से सौभाग्यशाली दर्शनीय पुरुष को अच्छे कुल में जन्म प्राप्त होता है।

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं वज्रिणा स्थापितं पुरा।
तस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६॥

उसके दक्षिण में प्राचीनकाल में इन्द्र के द्वारा प्रतिष्ठित लिंग है जिसकी कृपा हो तो मन से अभिलषित फल की प्राप्ति होती है।

पराशरेण मुनिना तथैवाराध्य शङ्करम्।
प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छङ्करस्य च॥ ३७॥

जिस प्रकार पराशर मुनि ने शङ्कर की आराधना करके शङ्कर के दर्शनों से परम कवित्व को प्राप्त किया था।

वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम्।
सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः॥ ३८॥

वेदव्यास मुनि ने परमेश्वर की आराधना करके भगवान् की कृपा से सर्वज्ञत्व ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया था।

स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे वायुना जगदायुना।
प्रतिष्ठित महालिङ्गं दर्शनात् पापनाशनम्॥ ३९॥

स्थाणु के पश्चिम दिशा वाले भाग में जगत् के आयुस्वरूप वायु द्वारा प्रतिष्ठित महालिंग है जो दर्शनमात्र से पापों का नाश करने वाला है।

तस्यापि दक्षिणे भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम्।
प्रतिष्ठितं पुण्यकृतां दर्शनात् सिद्धिकारकम्॥ ४०॥

उसके भी दक्षिण भाग में हिमवतेश्वर लिंग प्रतिष्ठित है जो दर्शनमात्र करने से अच्छे कर्म करने वालों को सिद्धि प्रदान करता है।

तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम्।
लिङ्गं पापहरं सद्यो दर्शनात्पुण्यमाप्नुयात्॥ ४१॥

उसके पश्चिम भाग में कार्तवीर्य के द्वारा स्थापित पापों का नाशक लिंग है। जिसके दर्शनमात्र से मनुष्य शीघ्रता पूर्वक पुण्य प्राप्त कर सकता है।

तस्याप्युत्तरदिग्भागे सुपार्श्वे स्थापितं पुनः।
आराध्य हनुमांश्चाप सिद्धिं देवप्रसादतः॥४२॥

और उसकी भी उत्तर दिशा वाले भाग में सुपार्श्व में स्थापित लिंग है। जिसकी आराधना करके देवताओं की कृपा से हनुमान् ने सिद्धि प्राप्त की थी।

तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना।
आराध्य वरदं देवं चक्रं लब्धं सुदर्शनम्॥४३॥

उसकी ही पूर्व दिशा वाले भाग में सर्वसमर्थ विष्णु ने वर प्रदान करने वाले देव की आराधना करके सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था।

तस्यापि पूर्वदिग्भागे मित्रेण वरुणेन च।
प्रतिष्ठितौ लिङ्गवरो सर्वकामप्रदायकौ॥४४॥

उसकी भी पूर्व दिशा वाले भाग में मित्र और वरुण ने समस्त कामनाओं को देने वाले श्रेष्ठ लिंगों को प्रतिष्ठापित किया था।

एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा।
सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै॥४५॥

यह सब लिंग सिद्ध मुनियों, आदित्यगण तथा वसुओं के द्वारा प्रयत्नपूर्वक निषेवित हैं तथा समस्त पापों का नाश करने वाले हैं।

स्वर्णलिङ्गस्य पश्चात्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां संख्या न विद्यते॥४६॥

तत्त्व का दर्शन करने वाले ऋषियों द्वारा स्वर्णलिंग के पीछे असंख्य लिंगों की प्रतिष्ठा की गई।

तथा ह्युत्तरतस्तस्य यावदोघवती नदी।
सहस्रमेकं लिङ्गानां देवपश्चिमतः स्थितम्॥४७॥

उसके उत्तर की ओर ओघवती नदीपर्यन्त देव के पश्चिम की ओर एक सहस्र लिंगों की प्रतिष्ठा की गई।

तस्यापि पूर्वदिग्भागे बालखिल्यैर्महात्मभिः।
प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्यावत्सन्निहितं सरः॥४८॥

उसके भी पूर्व दिशा वाले भाग में सन्निहित सरोवर पर्यन्त बालखिल्य महात्माओं ने रुद्रकोटि की स्थापना की।

दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैर्यक्षकिन्नरैः।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां संख्या न विद्यते॥४९॥

देव के दक्षिण की ओर गंधर्व, यक्ष और किन्नरों ने असंख्य लिंगों की प्रतिष्ठा की।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गानां वायुरब्रवीत्।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः स्थाणुमाश्रिताः॥५०

वायु के अनुसार लिंगों की संख्या साढे तीन करोड़ बतायी गयी है और सहस्रों रुद्र असंख्यात है जो स्थाणु के आश्रित है।

एतज्ज्ञात्वा श्रद्दधानः स्थाणुलिङ्गं समाश्रयेत्।
यस्य प्रसादात्प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम्॥५१॥

यह सब जानकर श्रद्धावान् व्यक्ति को स्थाणुलिंग का आश्रय लेना चाहिए। जिसकी कृपा से मन से अभिलषित समस्त फल प्राप्त हो जाते हैं।

अकामो वा सकामो वा प्रविष्टः स्थाणुमन्दिरम्।
विमुक्तः पातकैर्घोरैः प्राप्नाति परमं पदम्॥५२॥

जो कोई भी मनुष्य कामनारहित और कामनासहित होकर स्थाणु के मंदिर में प्रवेश करता है, वह भयानक पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है।

चैत्रे मासे त्रयोदश्यां दिव्यनक्षत्रयोगतः।
शुक्रार्कचन्द्रसंयोगे दिने पुण्यतमे शुभे॥५३॥
प्रतिष्ठितं स्थाणुलिङ्गं ब्रह्मणा लोकधारिणा।
ऋषिभिर्देवसंघैश्च पूजितं शाश्वतीः समाः॥५४॥

दिव्य नक्षत्रों के योग से शुक्र, सूर्य और चन्द्रमा का संयोग होने पर चैत्र मास में त्रयोदशी के अत्यंत शुभ और पवित्र दिवस में लोकधारक ब्रह्मा ने स्थाणुलिंग की प्रतिष्ठा की थी जो ऋषियों और देवताओं के द्वारा अनंत वर्षों से पूजा जाता है।

तस्मिन्काले निराहारा मानवाः श्रद्धयाऽन्विताः।
पूजयन्ति शिवं ये वै ते यान्ति परमं पदम्॥५५॥

उस समय जो व्यक्ति निराहार रहकर श्रद्धापूर्वक शिव की पूजा करते हैं वे परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

तदारूढमिदं ज्ञात्वा ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुंधरा॥५६॥

यह जानकर जो मनुष्य वहाँ प्रतिष्ठित शिवलिंग की प्रदक्षिणा करते हैं वे सात द्वीपों सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर लेते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये
षट्चत्वारिंशोऽध्याय:॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

(वेनचरित)

मार्कण्डेय उवाच

स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने।
केन सिद्धिरथ प्राप्ता सर्वपापभयापहा॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा— हे मुनि! मैं स्थाणुतीर्थ के प्रभाव को सुनना चाहता हूँ। (आप मुझे बतायें) किसने समस्त पापों को हरने वाली सिद्धि प्राप्त की?

सनत्कुमार उवाच

शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानव:॥२॥

सनत्कुमार ने कहा— स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य को पूर्ण रूप से सुनो, जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

एकार्णवे जगत्यस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतं पद्ममव्यक्तजन्मन:।
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूत: सर्वलोकपितामह:॥३॥

एक बार महाप्रलय में इस समस्त स्थावर तथा जंगम जगत् के नष्ट हो जाने पर अव्यक्तजन्मा विष्णु की नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ जिससे समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचे: कश्यप: सुत:।
कश्यपादभवद्भास्वांस्तस्मान्मनुरजायत॥ ४॥

उनसे मरीचि उत्पन्न हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप थे। कश्यप से सूर्य तथा सूर्य से मनु उत्पन्न हुए।

मनोस्तु क्षुवत: पुत्र उत्पन्नो मुखसंभव:।
पृथिव्यां चतुरन्तायां राजासीद् धर्मरक्षिता॥५॥

मनु के छींकने पर उनके मुख से जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह चारों दिशाओं में सीमन्त पृथ्वी का स्वामी और धर्म का रक्षक हुआ।

तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा।
मृत्यो: सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा॥६॥

उसकी 'भया' नामक अत्यंत भयानक पत्नी थी। वह मृत्यु से उत्पन्न हुई थी। अत: काल की पुत्री थी।

तस्यां समभवद्वेनो दुरात्मा वेदनिन्दक:।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्रुद्धो राजा वेन ययौ॥७॥

उस भया से दुरात्मा और वेदों की निंदा करने वाला 'वेन' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का मुख देखकर क्रुद्ध होकर राजा वन में चला गया था।

तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मेणावृत्य रोदसी।
प्राप्तवान् ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥८॥

वहाँ उन्होंने अपनी घोर तपस्या से द्युलोक और पृथ्वी लोक को धर्म से परिपूर्ण करके ब्रह्मलोक को प्राप्त किया, जहाँ से पुनरावृत्ति दुर्लभ होती है।

वेनो राजा समभवत्समस्ते क्षितिमण्डले।
स मातामहदोषेण तेन: कालात्मजात्मज:॥९॥
घोषयामास नगरे दुरात्मा वेदनिन्दक:।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन॥१०॥
अहमेकोऽत्र वै वन्द्य: पूज्योऽहं भवतां सदा।
मया हि पालिता यूयं निवसध्वं यथासुखम्॥११॥

समस्त भूमंडल पर वेन राजा हुआ। उस कालात्मजा के पुत्र ने अपने नाना के दोष के कारण दुरात्मा और वेदनिंदक बनकर घोषणा की कि लोग न दान दें न ही यज्ञ करें; और न ही आहुति दें। मैं ही एकमात्र तुम सबका वंदनीय और पूजनीय हूँ। मेरे द्वारा पालित होकर ही तुम सब सुखपूर्वक निवास करो।

तन्मत्तोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं य: परायणम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषय: सर्व एव ते॥१२॥
परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन्।
श्रुति: प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञ: प्रतिष्ठित:॥१३॥

यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः।
अप्रीता न प्रयच्छन्ति वृष्टिं सस्यस्य वृद्धये॥ १४॥

इसलिए मुझ से अतिरिक्त और कोई देव नहीं है जिसकी आप पूजा करें। यह सुनकर वे समस्त ऋषिगण एकत्रित होकर राजा से बोले— वेद ही धर्म का प्रमाण है। वेद ने ही यज्ञ की प्रतिष्ठा की है। यज्ञ के बिना स्वर्गस्थ देवता प्रसन्न नहीं होते और अप्रसन्न देवता कृषि की वृद्धि के लिये वृष्टि प्रदान नहीं करते।

तस्माद्यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम्।
एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिर्वेनः प्राह पुनः पुनः॥ १५॥
न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोधमूर्च्छितः।
ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्व एव ते॥ १६॥
निर्जघ्नुर्मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः।
ततस्त्वराजके लोके तमसा संवृते तदा॥ १७॥
दस्युभिः पीड्यमानास्तान् ऋषींस्ते शरणं ययुः।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुस्तस्य वै करम्॥ १८॥
सव्यं तस्मात्समुत्तस्थौ पुरुषो ह्रस्वदर्शनः।
तमूचुर्ऋषयः सर्वे निषीदतु भवानिति॥ १९॥

इसलिये यज्ञों और देवताओं के द्वारा ही यह चराचर जगत् धारण किया जाता है। यह सुनकर वेन अत्यंत क्रोधित होकर पुनः-पुनः कहने लगा-यज्ञ नहीं करना चाहिये, दान नहीं देना चाहिए। ऐसा कहकर वह क्रोध से मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर क्रोधाविष्ट होकर उन समस्त ऋषियों ने मंत्रों के द्वारा अभिमंत्रित वज्रसदृश कुशा घास से उस पर प्रहार किया। तदनन्तर समस्त लोक दुःख और अंधकार से आवृत हो गया। दुःख से आहत होकर लोग ऋषियों की शरण में जाने लगे। तदनन्तर उन समस्त ऋषियों ने उठकर उसके बाएं हाथ का मंथन किया जिसमें से एक ह्रस्वकाय पुरुष उत्पन्न हुआ। उसको समस्त ऋषियों ने कहा— 'आप आसन ग्रहण करें'।

तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्मषसंभवाः।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुर्दक्षिणं करम्॥ २०॥

उससे निषाद उत्पन्न हुए जो वेन के पापों से उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर समस्त ऋषियों ने उसके दाहिने हाथ का मंथन किया।

मथ्यमाने करे तस्मिन्नुत्पन्नः पुरुषोऽपरः।
बृहत्सालप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः॥ २१॥

उस हाथ के मंथन करने पर एक अन्य पुरुष उत्पन्न हुआ जो बृहत् शालवृक्ष के सदृश तथा दिव्य लक्षणों से युक्त था।

धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः।
तमुत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः॥ २२॥
अभ्यषिञ्चन्पृथिव्यां तं राजानं भूमिपालकम्।
ततः स रञ्जयामास धर्मेण पृथिवीं तदा॥ २३॥

उसकी हथेली धनुष-बाण, चक्र और ध्वजा के चिह्नों से अंकित थी। उसको उत्पन्न देखकर इन्द्रसहित समस्त देवताओं ने पृथ्वी पर भूमिपालक राजा के रूप में उसका अभिषेक कर दिया। तदनन्तर उसने धर्मपूर्वक पृथ्वी का रंजन किया (पृथ्वी का पालन किया)।

पित्राऽपरञ्जिता तस्य तेन सा परिपालिता।
तत्र राजेतिशब्दोऽस्य पृथिव्या रञ्जनादभूत्॥ २४॥

पिता के असंतुष्ट होने पर भी उस राजा ने पृथ्वी का पालन किया। पृथिवी का रंजन, सम्यक् परिचालन के कारण उसका नाम ही राजा हुआ।

स राज्यं प्राप्य तेभ्यस्तु चिन्तयामास पार्थिवः।
पिता मम अधर्मिष्ठो यज्ञव्युच्छित्तिकारकः॥ २५॥

उनसे राज्य पाकर उस राजा ने सोचा— मेरे पिता अधर्मी यथा यज्ञविनाशक थे।

कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखावहा।
इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह॥ २६॥

उनकी श्राद्धादि क्रिया किस प्रकार सम्पन्न की जाए जिससे वह परलोक में सुख प्राप्त कर सकें। जब वह ऐसा सोच रहे थे तभी नारद वहाँ आ पहुँचे।

तस्मै स चासनं दत्त्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान्।
भगवन्सर्वलोकस्य जानासि त्वं शुभाशुभम्॥ २७॥

नारद के लिए आसन देकर तथा नमस्कार करने के पश्चात् राजा ने पूछा— भगवन्! आप समस्त लोकों के शुभ और अशुभ को जानने वाले हैं।

पिता मम दुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः।
स्वकर्मरहितो विप्रः परलोकमवाप्तवान्॥ २८॥

हे ब्राह्मण! मेरे पिता दुराचारी और देवता तथा ब्राह्मणों के निंदक थे। वे अपने धर्म से च्युत थे एवं वह परलोक को चले गए थे।

ततोऽब्रवीन्नारदस्तं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नं क्षयकुष्ठसमन्वितम्॥ २९॥

तदनन्तर नारद ने अपने दिव्य चक्षुओं से जानकर उस राजा से कहा— तुम्हारे पिता म्लेच्छों के मध्य उत्पन्न होकर क्षय और कुष्ठ रोग से ग्रस्त हैं।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः।
चिन्तयामास दुःखार्त्तः कथं कार्यं मया भवेत्॥ ३०॥

महात्मा नारद के वचन को सुनकर दुःखी और कातर होकर उसने सोचा— मैं अपने पिता का श्राद्धकार्य किस प्रकार करूँ?

इत्येवं चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः।
पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितृंस्त्रायते भयात्॥ ३१॥

इस प्रकार सोचते हुए उस महानुभाव को विचार आया कि संसार में पुत्र वस्तुतः वही होता है जो अपने पितरों को भयमुक्त कर देता है।

एवं संचिन्त्य स तदा नारदं पृष्टवान्मुनिम्।
तारणं मत्पितुस्तस्य मया कार्यं कथं मुने॥ ३२॥

इस प्रकार सोचकर उसने नारदमुनि से पूछा-मेरे पिता का उद्धार कैसे हो, उनका श्राद्धकार्य किस प्रकार किया जाना चाहिए।

नारद उवाच

गच्छ त्वं तस्य तं देहं तीर्थेषु कुरु निर्मलम्।
यत्र स्थाणोर्महत्तीर्थं सरः संनिहितं प्रति॥ ३३॥

नारद ने कहा— तुम जाओ; और उनके शरीर को तीर्थों में ले जाकर पवित्र करो; जहाँ सन्निहित सरोवर के समीप स्थाणुतीर्थ है।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः।
सचिवे राज्यमाधाय राजा स तु जगाम ह॥ ३४॥

महात्मा नारद का यह वचन सुनकर अपने मंत्रियों को राज्य सौंपकर वह राजा चल पड़ा।

स गत्वा चोत्तरां भूमिं म्लेच्छमध्ये ददर्श ह।
कुष्ठरोगेण महता क्षयेण च समन्वितम्॥ ३५॥

उसने उत्तर दिशा में जाकर म्लेच्छों के मध्य अपने पितरों का देखा जो कुष्ठ तथा महान् क्षय रोग से ग्रस्त थे।

ततः शोकेन महता संतप्तो वाक्यमब्रवीत्।
हे म्लेच्छा नौमि पुरुषं स्वगृहं च नयाम्यहम्॥ ३६॥

तदनन्तर अत्यन्त शोकसंतप्त होकर उसने कहा— हे म्लेच्छों! मैं इस पुरुष को नमस्कार करता हूँ तथा इस को अपने घर ले जाता हूँ।

तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ।
तथेति सर्वे ते म्लेच्छाः पुरुषं तं दयापरम्॥ ३७॥

यदि आप अनुमति दें तो मैं इन्हें ले जाकर रोगमुक्त करूँगा। तदनन्तर वे सब म्लेच्छ उस दयालु पुरुष को साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले-

ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु।
तत आनीय पुरुषान् शिविकावाहनोचितान्॥ ३८॥
दत्त्वा शुल्कं च द्विगुणं सुखेन नयत द्विजम्।
ततः श्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो दयावतः॥ ३९॥
गृहीत्वा शिविकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थे अवतीर्य च ते गताः॥ ४०॥

आप जैसा चाहें-वैसा कीजिए! तदनन्तर वे शिविका वाहन (पालकी) तथा पुरुषों को लाकर बोले-इन को दोगुना शुल्क देकर इस द्विज को सुखपूर्वक ले जाओ। उस दयालु राजा के वचन को सुनकर वे पालकी को लेकर शीघ्रतापूर्वक कुरुक्षेत्र चले गएं और वहाँ ले जाकर स्थाणुतीर्थ में उन्हें उतार कर वे चले गए।

ततः स राजा मध्याह्ने तं स्नापयति वै तदा।
ततो वायुरन्तरिक्षे इदं वचनमब्रवीत्॥ ४१॥
मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः।
अयं पापेन घोरेण अतीव परिवेष्टितः॥ ४२॥
वेदनिन्दा महत्पापं यस्यान्तो नैव लभ्यते।
सोऽयं स्नानान्महत्तीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणात्॥ ४३॥

तदनन्तर वह राजा मध्याह्न में जब अपने पिता को स्नान कराना चाहता था तब अन्तरिक्ष में वायु ने उनसे

कहा-हे तात! इस प्रकार का साहस न करना! तीर्थ की रक्षा प्रयत्नपूर्वक करना-यह व्यक्ति अत्यंत घोर पापों से लिप्त है। वेदों की निंदा अत्यंत घोर पाप है जिसका कोई पश्चाताप नहीं है। इसलिए इस व्यक्ति के स्नान करते ही यह महान् तीर्थ तत्क्षण नष्ट हो जाएगा।

एतद्वायोर्वचः श्रुत्वा दुःखेन महताऽन्वितः।
उवाच शोकसंतप्तस्तस्य दुःखेन दुःखितः।
एष घोरेण पापेन अतीव परिवेष्टितः॥४४॥
प्रायश्चितं करिष्येऽहं यद्वदिष्यन्ति देवताः।
ततस्ता देवताः सर्वा इदं वचनमब्रुवन्॥४५॥

वायु के इस वचन को सुनकर अपने पिता के दुःख से अत्यधिक दुःखी और शोकसंतप्त उस राजा ने कहा— यह अत्यंत घोर पाप से परिवेष्टित है। इसलिये जो देवता कहेंगे मैं वही प्रायश्चित करूँगा। तदनन्तर उन समस्त देवताओं ने कहा-

स्नात्वा स्नात्वा च तीर्थेषु अभिषिञ्चस्व वारिणा।
ओजसा चुलुकं यावत्प्रतिकूलां सरस्वतीम्॥४६॥
स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः।
एष स्वपोषणपरो देवदूषणतत्परः॥४७॥
ब्राह्मणैश्च परित्यक्तो नैष शुद्ध्यति कर्हिचित्।
तस्मादेनं समुद्दिश्य स्नात्वा तीर्थेषु भक्तितः॥४८॥

तीर्थों में स्नान करके उसके जल से अभिषेक करके, ओजस से लेकर चुलुक तक सरस्वती पर्यन्त (तीर्थों में) स्नान करके श्रद्धान्वित व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। यह केवल अपने पोषण में लगा हुआ और देवताओं के दूषण (अवमानना) में तत्पर है ब्राह्मणों के द्वारा परित्यक्त की किसी भी प्रकार शुद्धि नहीं होती।

अभिषिञ्चस्व तोयेन ततः पूतो भविष्यति।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा कृत्वा तस्याश्रमं ततः॥४९॥
तीर्थयात्रां ययौ राजा उद्दिश्य जनकं स्वकम्।
स तेषु प्लवनं कुर्वंस्तीर्थेषु च दिने दिने॥५०॥
अभ्यषिञ्चत्स्वपितरं तीर्थतोयेन नित्यशः।
एतस्मिन्नेव काले तु सारमेयो जगाम ह॥५१॥
स्थाणोर्मठे कौलपतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता।
परिग्रहस्य द्रव्यस्य परिपालयिता सदा॥५२॥

इसलिए इसको उद्दिष्ट करके तीर्थों में भक्तिपूर्वक स्नान करके, जल से (पितरों का) अभिषेक करें फिर वे पवित्र हो जाएंगे। इस प्रकार के वचन को सुनकर वहाँ उसका आश्रम बनाकर वे राजा अपने पिता को उद्देश्य बनाकर तीर्थयात्रा पर चले गए। वह प्रतिदिन विभिन्न तीर्थों में स्नान करके तीर्थों के जल से नित्य अपने पितरों का अभिषेक करने लगे। उसी समय वहाँ एक कुत्ता आ गया जो (पूर्वजन्म में) स्थाणुमठ में कौलपति था तथा देवताओं की संपत्ति का संरक्षक था। वह संपत्ति के परिपालन तथा संरक्षण में सदैव तत्पर रहता था।

प्रियश्च सर्वलोकेषु देवकार्यपरायणः।
तस्यैवं वर्त्तमानस्य धर्ममार्गे स्थितस्य च॥५३॥
कालेन चलिता बुद्धिर्देवद्रव्यस्य नाशने।
तेनाधर्मेण युक्तस्य परलोकगतस्य च॥५४॥
दृष्ट्वा यमोऽब्रवीद्वाक्यं श्वयोनिं व्रज मा चिरम्।
तद्वाक्यानन्तरं जातः श्वा वै सौगन्धिके वने॥५५॥

वह समस्त लोक में प्रिय तथा देवकार्य में परायण था। वह इस प्रकार धर्मकार्य तथा स्वधर्म में तत्परता से लगा हुआ था कि एक बार उसकी मति कालदुर्विपाक देवताओं की संपत्ति के विनाश के लिए भ्रष्ट हो गई। अधर्म से युक्त वह जब परलोक गया तो उसे देखकर यमराज ने कहा— शीघ्र ही कुत्ते की योनि में चले जाओ। तब वह सौगंधिक वन में कुत्ता बन गया।

ततः कालेन महता श्वयूथपरिवारितः।
परिभूत सरमया दुःखेन महता वृतः॥५६॥

तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने पर अपने विशाल श्वपरिवार से युक्त वह 'सरमा' नामक कुतिया के द्वारा अवमानित होकर अत्यंत दुःखी हो गया।

त्यक्त्वा द्वैतवनं पुण्यं सांनिहत्यं ययौ सरः।
तस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु स्थाणोरेव प्रसादतः॥५७॥
अतीव तृषया युक्तः सरस्वत्यां ममज्ज ह।
तत्र संप्लुतदेहस्तु विमुक्तः सर्वकिल्विषैः॥५८॥

वह द्वैतवन को छोड़कर पवित्र सन्निहित सरोवर को चला गया। स्थाणु की कृपा से उसमें प्रवेश करते ही वह अत्यंत प्यास के कारण उसने सरस्वती में डुबकी लगाई

और उसमें डुबकी लगाते ही समस्त पापों से विमुक्त हो गया।

आहारलोभेन तदा प्रविवेश कुटीरकम्।
प्रविशन्तं तदा दृष्ट्वा श्वानं भयसमन्वित:॥५९॥
स तं पस्पर्श शनकै: स्थाणुतीर्थे ममज्ज ह।
पतित: पूर्वतीर्थेषु विप्रुषै: परिषोचित:॥६०॥
शुनोऽस्य गात्रसंभूतैरब्बिन्दुभि: स सिञ्चित:।
विरक्तश्छिश्च शुन: क्षेपेण च तत: परम्॥६१॥
स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यात्स पुत्रेण च तारित:।
नियतस्तत्क्षणाज्जातो दिव्यदेहसमन्वित:।
प्रणिपत्य तदा स्थाणुं स्तुतिं कर्त्तुं प्रचक्रमे॥६२॥

आहार के लोभ में वह एक कुटिया में घुस गया। उस भयभीत कुत्ते को कुटिया में प्रविष्ट होते देखकर वह वेन ने उसको धीरे से छुआ तो वह स्थाणुतीर्थ में मज्जन कर गया (डुबकी लगाने लगा)। पुन: स्थाणुतीर्थ में आकर अपने शरीर में एकत्रित पानी की बूंदों को जब कुत्ते ने उस पर छिड़का तो स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य तथा अपने पुत्र के द्वारा उद्धार किया गया वह संयमित होकर उसी क्षण दिव्य देह से युक्त हो गया और स्थाणु को प्रणाम करके उसने उनकी स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

वेन उवाच

प्रपद्ये देवमीशानं त्वामजं चन्द्रभूषणम्।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगत: पतिम्॥६३॥

वेन ने कहा—मैं अजन्मा, चद्रभूषण, ईशान देव, महात्मा, एवं समस्त जगत् के पति आप महादेव की शरण में जाता हूँ।

नमस्ते देवदेवेश सर्वशत्रुनिषूदन।
देवेश बलिविष्टम्भ देवदैत्यैश्च पूजित॥६४॥

हे देवाधिदेव! हे सर्वशत्रुविनाशक! हे देवेश! हे बलि को वश में करने वाले! हे देवों और दैत्यों से पूजित! आपको नमस्कार है।

विरूपाक्ष सहस्राक्ष त्र्यक्ष यक्षेश्वरप्रिय।
सर्वत: पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुख॥६५॥

हे विरूपाक्ष! हे सहस्राक्ष! हे त्र्यक्ष (तीन नेत्र वाले)! हे यक्षेश्वरप्रिय (कुबेर के प्रिय)! हे चारों ओर हस्तपादादि से युक्त तथा चारों ओर आँख एवं मुखवाले! (आपको नमस्कार है)।

सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्त्य तिष्ठसि।
शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय॥६६॥
गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते।
शतजिह्व शतावर्त शतोदर शतानन॥६७॥

चारों ओर आप श्रोत्र से व्याप्त हैं। लोक में सभी को आवृत करके आप स्थित हैं। हे शङ्कुकर्ण! हे महाकर्ण! हे कुम्भकर्ण! हे समुद्रनिवासी! हे गजेन्द्रकर्ण! हे गोकर्ण! हे पाणिकर्ण! हे शतजिह्व! हे शतावर्त! हे शतोदर! हे शतानन! (आपको नमस्कार है)।

गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्च्यन्त्यर्क्कमर्किण:।
ब्रह्माणं त्वा शतक्रतो उद्वंशमिव मेनिरे॥६८॥

गायत्री के उपासक गायत्री द्वारा आपकी ही महिमा गाते हैं। सूर्योपासक आपकी ही सूर्यरूप से उपासना करते हैं। आपको ही सभी लोग इन्द्र से उत्तम वंशवाले ब्रह्मरूप मानते हैं।

मूर्त्तौ हि ते महामूर्त्ते समुद्रम्बुधरास्तथा।
देवता: सर्व एवात्र गोष्ठे गाव इवासते॥६९॥

हे महामूर्ति! समुद्र, मेघ तथा समस्त देवता आपकी मूर्त्ति में इस प्रकार स्थित हैं, जैसे गोशाला में गौएँ स्थित रहती हैं।

शरीरे तव पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्।
नारायणं तथा सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥७०॥

मैं आपके शरीर में सोम, अग्नि, वरुण, नारायण, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति को देख रहा हूँ।

भगवान्कारणं कार्यं क्रियाकारणमेव तत्।
प्रभव: प्रलयश्चैव सदसच्चापि दैवतम्॥७१॥

आप भगवान्, कारण, कार्य, क्रिया-कारण, प्रभव, प्रलय, सत्, असत् एवं दैवत हैं।

नमो भवाय शर्वाय वरदायोग्ररूपिणे।
अन्धकासुरहन्त्रे च पशूनां पतये नम:॥७२॥

भव, शर्व, वरद, उग्ररूपी, अन्धकासुर को मारने वाले और पशुपति को नमस्कार है।

त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलासक्तपाणये।

त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्न नमोऽस्तु ते॥७३॥

हे तीन जटाधारी, तीन शिर वाले, त्रिशूल को हाथ में रखने वाले, त्र्यम्बक, त्रिनेत्रस्वरूप तथा त्रिपुरनाशक! आपको नमस्कार है।

नमो मुण्डाय चण्डाय अण्डायोत्पत्तिहेतवे।

डिण्डिमासक्तहस्ताय दण्डिमुण्डाय ते नमः॥७४॥

हे मुण्ड, चण्ड, अण्ड, उत्पत्ति के हेतुरूप, डिण्डिमपाणि[८] दण्डिमुण्ड[९]! आप को नमस्कार है।

नमोर्ध्वकेशदंष्ट्राय शुष्काय विकृताय च।

धूम्रलोहितकृष्णाय नीलग्रीवाय ते नमः॥७५॥

हे ऊर्ध्वकेश, ऊर्ध्वदंष्ट्र, शुष्क, विकृत, धूम्र, लोहित, कृष्ण, एवं नीलग्रीव! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च।

सूर्यमालाय सूर्याय स्वरूपध्वजमालिने॥७६॥

हे अप्रतिमस्वरूप, विरूप, शिव, सूर्यमालाधारी, सूर्य एवं स्वरूपध्वजमाली! आप को नमस्कार है।

नमो मानातिमानाय नमः पटुतराय ते।

नमो गणेन्द्रनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने॥७७॥

मानातिमान को नमस्कार, आप अति चतुर को नमस्कार। गणेन्द्रनाथ, वृषस्कन्ध एवं धन्वी को नमस्कार।

संक्रन्दनाय चण्डाय पर्णधारपुटाय च।

नमो हिरण्यवर्णाय नमः कनकवर्चसे॥७८॥

संक्रन्दन, चण्ड, पर्णधार, पुटस्वरूप, हिरण्यवर्ण (सुवर्ण जैसे वर्ण वाले) एवं कनकवर्चस् (सुवर्ण जैसी कान्ति वाले) को नमस्कार।

नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तुतिस्थाय नमोऽस्तु ते।

सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतशरीरिणे॥७९॥

स्तुत तथा स्तुतियोग्य, स्तुति में स्थित, सर्व, सर्वभक्ष एवं सर्वभूतशरीरी आपको नमस्कार है।

---

८. डमरूधारी

९ संन्यासी के समान मस्तकवाले।

नमो होत्रे च हन्त्रे च सितोदग्रपताकिने।

नमो नम्याय नम्राय नमः कटकटाय च॥८०॥

नमोऽस्तु कृशनाशाय शयितायोत्थिताय च।

स्थिताय धावमानाय मुण्डाय कुटिलाय च॥८१॥

होता, संहारक, सितोदग्रपताकी,[१०] नम्य, नम्र, कटकट, कृशनाश (पतली नाक वाले), शयित, उत्थित, स्थित, धावमान, मुण्डरूप एवं कुटिल को नमस्कार है।

नमो नर्त्तनशीलाय लयवादित्रशालिने।

नाट्योपहारलुब्धाय मुखवादित्रशालिने॥८२॥

नर्त्तनशील, लयवादित्रशाली, नाट्योपहारलुब्ध[११] एवं मुखवादित्रशाली[१२] को नमस्कार है।

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलातिबलघातिने।

कालनाशाय कालाय संसारक्षयरूपिणे॥८३॥

ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलातिबलघाती,[१३] कालनाशक, कालरूप एवं संसार के क्षयरूप आप को नमस्कार है।

हिमवद्दुहितुः कान्त भैरवाय नमोऽस्तु ते।

उग्राय च नमो नित्यं नमोऽस्तु दशबाहवे॥८४॥

हे हिमालय की दुहिता के पति! आप भैरव को नमस्कार है। उग्रस्वरूप एवं दश बाहों वाले आपको नमस्कार है।

चितिभस्मप्रियायैव कपालासक्तपाणये।

विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराय च॥८५॥

नमो विकृतवक्त्राय नमः पूतोग्रदृष्टये।

पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बिवीणाप्रियाय च॥८६॥

चितिभस्मप्रिय,[१४] कपालपाणि, विभीषण, भीष्म, भीमव्रतधर, विकृतमुख, पूतोग्रदृष्ट,[१५] पक्वाममांसलुब्ध, एवं तुम्बिवीणाप्रिय को नमस्कार है।

नमो वृषाङ्कवृक्षाय गोवृषाभिरुते नमः।

कटङ्कटाय भीमाय नमः परपराय च॥८७॥

---

१० श्वेत ऊँची पताका वाले।

११. नाट्यकलाओं के उपहारों में लोभ रखने वाले।

१२ मुख से बजाये जाने वाले वाद्य में कुशल।

१३ अति बलवानों को घात करने वाले।

१४. श्मशान की भस्म (राख) से प्रेम रखने वाले।

१५. पवित्र एवं भयानक नेत्र वाले।

वृषाङ्कवृक्ष, गोवृषाभिरुत, कटङ्कट, भीम, एवं पर से भी पर को नमस्कार है।

नमः सर्ववरिष्ठाय वराय वरदायिने।
नमो विरक्तरक्ताय भावनायाक्षमालिने॥८८॥
विभेदभेदभिन्नाय छायायै तपनाय च।
अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च॥८९॥

सर्ववरिष्ठ, वर, वरदायी, विरक्तरक्त, भावन, एवं अक्षमाली, विभेदभेदभिन्न, छाया, तपन, अघोरघोररूप, एवं घोरघोरतर को नमस्कार है।

नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च।
बहुनेत्रकपालाय एकमूर्त्ते नमोऽस्तु ते॥९०॥

शिव एवं शान्त को नमस्कार। शान्ततम, अनेकनेत्र एवं कपालधारी को नमस्कार। हे एकमूर्त्ते! आपको नमस्कार है।

नमः क्षुद्राय लुब्धाय यज्ञभागप्रियाय च।
पञ्चालाय सिताङ्गाय नमो यमनियामिने॥९१॥
नमश्चित्रोरुघण्टाय घण्टाघण्टनिघण्टिने।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाविभूषिणे॥९२॥

क्षुद्र, लुब्ध, यज्ञभागप्रिय, पञ्चाल, सिताङ्ग (श्यामांग), यम के नियमनकर्ता को नमस्कार है। चित्रोरुघण्ट,[१६] घण्टाघण्टनिघण्टी,[१७] सहस्रशतघण्ट एवं घण्टाओं की मालारूप आभूषण वाले को नमस्कार है।

प्राणसंघट्टगर्वाय नमः किलकिलप्रिय।
हुंहुंकाराय पाराय हुंहुंकारप्रियाय च॥९३॥

प्राणसंघट्टगर्व,[१८] किलकिलप्रिय,[१९] हुंहुंकाररूप, पाररूप, और हुंहुंकारप्रिय को नमस्कार है।

नमः समसमे नित्यं गृहवृक्षनिकेतिने।
गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च॥९४॥

नित्य समानरूप से सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, गृहवृक्षनिकेती,[२०] गर्भमांस के लिए शृगालरूप, तारक एवं तर को नित्य नमस्कार है।

नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च।
यज्ञवाहाय हव्याय तप्याय तपनाय च॥९५॥

यज्ञ, यजमान, हुत, प्रहुत, यज्ञवाह, हव्य, तप्य एवं तपन को नमस्कार है।

नमस्तु पयसे तुभ्यं तुण्डानां पतये नमः।
अन्नदायान्नपतये नमो नानान्नभोजिने॥९६॥

पयस आपको नमस्कार है। तुण्डों के पति को नमस्कार है। अन्नद, अन्नपति एवं नानान्नभोजी को नमस्कार है।

नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च।
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्राभरणाय च॥९७॥
बालानुचरगोप्त्रे च बाललीलाविलासिने।
नमो बालाय वृद्धाय क्षुब्धाय क्षोभणाय च॥९८॥

सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्रोद्यतशूल, सहस्राभरण, बालानुचरगोप्ता,[२१] बाललीलाविलासी, बाल, वृद्ध, क्षुब्ध, एवं क्षोभण को नमस्कार है।

गङ्गालुलितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः।
नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च॥९९॥
नग्नप्राणाय चण्डाय कृशाय स्फोटनाय च।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कथ्याय कथनाय च॥१००॥

गङ्गालुलितकेश,[२२] मुञ्जसदृश केश वाले को नमस्कार है। षट्कर्मतुष्ट, त्रिकर्मनिरत, नग्नप्राण, चण्ड, कृश, स्फोटन, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के कथ्य और कथन को नमस्कार है।

साङ्ख्याय साङ्ख्यमुख्याय साङ्ख्ययोगमुखाय च।
नमो विरथरथ्याय चतुष्पथरथाय च॥१०१॥

साङ्ख्यरूप, साङ्ख्यों में मुख्य, साङ्ख्य और योग में प्रमुख, विरथरथ्य,[२३] तथा चतुष्पथरथ[२४] को नमस्कार है।

---

१६. विभिन्न प्रकार के बड़े घण्टाओं को धारण करने वाले।
१७. घण्टा-समूह की ध्वनियों वाले।
१८. प्राणों को हरने के गर्व वाले।
१९. किलकिल शब्द से प्रेम रखने वाले।
२०. घरों और वृक्षों को निवास स्थान बनाने वाले।
२१. बालकों और सेवकों के रक्षक।
२२. गङ्गा की धाराओं से व्याप्त केशों वाले।
२३. रथरहित मार्ग वाले।
२४. चौराहों पर स्थित रथ वाले।

कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने।
वक्त्रसंधानकेशाय हरिकेश नमोऽस्तु ते।
त्र्यम्बिकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्ताय वेधसे॥ १०२॥

हे हरिकेश! कृष्णाजिनोत्तरीय, व्यालयज्ञोपवीती, वक्त्रसंधानकेश, त्र्यम्बिकाम्बिकनाथ (पार्वती के पति), व्यक्ताव्यक्त एवं वेधास्वरूप आपको नमस्कार है।

कामकामदकामघ्न तृप्तातृप्तविचारिणे।
नमः सर्वद पापघ्न कल्पसंख्याविचारिणे॥ १०३॥

हे कामरूप! हे कामद! हे कामहन्ता! आप तृप्तातृप्त का विचार करने वाले आप के लिए नमस्कार है। हे सर्वद! हे पापघ्न! आप कल्पसंख्याविचारी को नमस्कार है।

महासत्त्वमहाबाहो महाबल नमोऽस्तु ते।
महामेघ महाप्रख्य महाकाल महाद्युते॥ १०४॥
मेघावर्त्त युगावर्त्त चन्द्रार्कपतये नमः।
त्वमन्नमन्नभोक्ता च पक्वभुक्पावनोऽत्तमः॥ १०५॥

हे महासत्त्व! हे महाबाहु! हे महाबल! हे महामेघ! हे महाप्रख्य! हे महाकाल! हे महाद्युते! हे मेघावर्त्त! हे युगावर्त्त! आप चन्द्र और सूर्य के स्वामी को नमस्कार है। आप ही अन्न, अन्न के भोक्ता, पक्वभुक् एवं पावनोत्तम हैं।

जरायुजाश्चाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिदजाश्च ये।
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः॥ १०६॥

हे देवदेवेश! आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज— चतुर्विध भूतग्राम हैं।

स्रष्टा चराचरस्यास्य पाता हन्ता तथैव च।
त्वामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो परं ब्रह्म ब्रह्मविदां गतिम्॥ १०७

आप ही इस चराचर के स्रष्टा, पाता तथा हन्ता हैं। ब्रह्मवेत्ता लोग आप को ब्रह्म एवं ब्रह्मवेत्ताओं की गति कहते हैं।

मनसः परमज्योतिस्त्वं वायुर्ज्योतिषामपि।
हंसवृक्षे मधुकरमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः॥ १०८॥

आप मन की परमज्योति हैं और ज्योतियों की भी वायु हैं। ब्रह्मवादी जन आपको हंसवृक्ष (जीवात्मा) पर रहने वाला मधुकर कहते हैं।

यजुर्मयो ऋङ्मयस्त्वामाहुः साममयस्तथा।
पठ्यसे स्तुतिभिर्नित्यं वेदोपनिषदां गणैः॥ १०९॥

आप को यजुर्मय, ऋङ्मय, एवं साममय कहते हैं। वेद और उपनिषदों के समूहरूप स्तुतियों द्वारा नित्य आपका वर्णन होता है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये।
त्वमेव मेघसंघाश्च विद्युतोऽशनिगर्जितम्॥ ११०॥

आप ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णों से हीन, मेघसमूह, विद्युत, तथा मेघगर्जन हैं।

संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्धमेव च।
युगा निमेषाः काष्ठाश्च नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः॥ १११॥

आप संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, युग, निमेष, काष्ठा, नक्षत्र, ग्रह तथा कला हैं।

वृक्षाणां ककुभोऽसि त्वं गिरीणां हिमवान्गिरिः।
व्याघ्रो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम्॥ ११२॥

आप वृक्षों में ककुभ (अर्जुन वृक्ष) पर्वतों में हिमालय, मृगों (पशुओं) में व्याघ्र, पक्षियों में तार्क्ष्य (गरुड़) और सर्पों में अनन्त (शेषनाग) हैं।

क्षीरोदोऽस्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च।
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च॥ ११३॥

आप समुद्रों में क्षीरसागर, यन्त्रों में धनुष, अस्त्रों में व्रज और व्रतों में सत्यरूप हैं।

त्वमेव द्वेष इच्छा च रागो मोहः क्षमाक्षमे।
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ॥ ११४॥

आप ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय हैं।

त्वं शरी त्वं गदी चापि खट्वाङ्गी च शरासनी।
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ताऽसि मन्ता नेता सनातनः॥ ११५॥

आप शरधारी, गदाधारी, खट्वाङ्गी एवं धनुर्धारी हैं। आप छेत्ता, भेत्ता, प्रहर्ता, मन्ता नेता और सनातन हैं।

दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च।
समुद्राः सरितो गङ्गा पर्वताश्च सरांसि च॥ ११६॥

आप दश लक्षण से संयुक्त, धर्म, अर्थ एवं काम तथा समस्त समुद्र, सरितो, गङ्गा, पर्वत एवं सरोवर हैं।

लतावल्ल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः।
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः॥ ११७॥

आप समस्त लताएँ, वल्लियाँ, तृण, औषधियाँ, पशु, मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म और गुणों के आरम्भकर्ता एवं समय पर पुष्पफलप्रद हैं।

आदिश्चान्तश्च वेदानां गायत्री प्रणवस्तथा।
लोहितो हरितो नीलः कृष्णः पीतः सितस्तथा॥ ११८॥
कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा।
सवर्णश्चाप्यवर्णश्च कर्त्ता हर्त्ता त्वमेव हि॥ ११९॥

आप वेदों के आदि और अन्त, गायत्री तथा प्रणव हैं। आप ही लोहित, हरित, नील, कृष्ण, पीत, सित, कद्रु,[२५] कपिल, कपोत,[२६] मेचक,[२७] वर्ण (रंग) सहित, वर्णरहित, कर्त्ता एवं हर्त्ता हैं।

त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनिलः।
उपप्लवश्चित्रभानुः स्वर्भानुरेव च॥ १२०॥

आप इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, पवन, उपप्लव, चित्रभानु, स्वर्भानु एवं भानु हैं।

शिक्षाहौत्रं त्रिसौपर्णं यजुषां शतरुद्रियम्।
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्॥ १२१॥

आप शिक्षा, हौत्र, त्रिसौपर्णं, यजुर्वेद का शतरुद्रिय, पवित्रों में पवित्र एवं मङ्गलों में मङ्गल हैं।

तिन्दुको गिरिजो वृक्षो मुद्गं चाखिलजीवनम्।
प्राणाः सत्त्वं रजश्चैव तमश्च प्रतिपत्पतिः॥ १२२॥

आप तिन्दुक,[२८] गिरिज (शिलाजतु) वृक्ष, मुद्ग, अखिल जीवन, प्राण, सत्त्व, रज, तम, प्रतिपत्पति[२९] हैं।

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च।
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुतं जृम्भितमेव च॥ १२३॥

आप ही प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, क्षुत (छींक) एवं जृम्भित हैं।

---

२५. रक्तमिश्रित पीला।
२६. कपोत जैसा हलका नीला।
२७. गहरा कृष्णवर्ण।
२८. *Diospyros Embryopteris*
२९. ज्ञान के अधिपति।

लोहितान्तर्गतो दृष्टिर्महावक्त्रो महोदरः।
शुचिरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः॥ १२४॥

आप लोहितान्तर्गत, दृष्टि, महावक्त्र, महोदर, शुचिरोमा, हरिश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश एवं चल तथा अचल हैं।

गीतवादित्रनृत्यज्ञो गीतवादित्रकप्रियः।
मत्स्यो जालो जलौकाश्च कालः केलिकला कलिः॥

आप गीतवादित्रनृत्यज्ञ, गीतवादित्रकप्रिय हैं। आप मत्स्य, जाल, जलौका, काल, केलि-कला एवं कलह हैं।

अकालश्च विकालश्च दुष्कालः काल एव च।
मृत्युश्च मृत्युकर्त्ता च यक्षो यक्षभयंकरः॥ १२६॥

आप अकाल, विकाल, दुष्काल और कालस्वरूप हैं। आप मृत्यु, मृत्युकर्त्ता, यक्ष, यथा यक्ष-भयंकर हैं।

संवर्त्तकोऽन्तकश्चैव संवर्त्तकबलाहकः।
घण्टो घण्टी महाघण्टी चिरी माली च मातलिः॥ १२७

आप संवर्त्तक, अन्तक एवं संवर्त्तकबलाहक है। आप घण्ट, घण्टी, महाघण्टी, चिरी, माली और मातलि हैं।

ब्रह्मकालयमाग्नीनां दण्डी मुण्डी त्रिमुण्डधृक्।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः॥ १२८॥

आप ब्रह्म, काल, यम, और अग्नि को दण्ड देने वाले मुण्डी एवं त्रिमुण्डधारी हैं। आप ही चतुर्युग, चतुर्वेद एवं चातुर्होत्र के प्रवर्त्तक हैं।

चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरस्तथा।
नित्यमक्षप्रियो धूर्त्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः॥ १२९॥

आप चारों आश्रमों का नेतृत्व करने वाले तथा चारों वर्णों के कर्त्ता हैं। आप नित्य, द्यूतप्रिय, धूर्त्त, गणाध्यक्ष, गणाधिप हैं।

रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिको गिरिकप्रियः।
शिल्पं च शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः॥ १३०॥

आप रक्तमाल्याम्बरधारी, गिरिक, गिरिकप्रिय, शिल्प और शिल्पियों में श्रेष्ठ तथा संपूर्ण शिल्पों के प्रवर्त्तक हैं।

भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कारो नमो नमः॥ १३१॥

आप भग के नेत्रनाशक, चण्ड एवं पूषा के दाँतों को तोड़ने वाले हैं। आप स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार हैं।

गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकास्तारकामयः।
धाता विधाता संधाता पृथिव्या धरणोऽपरः॥ १३२॥

आप गूढव्रत, आप गुह्यतपा, तारक और तारकामय हैं। आप धाता, विधाता, संधाता और पृथिवी के श्रेष्ठ धारणकर्त्ता हैं।

ब्रह्मा तपश्च सत्यं च व्रतचर्यमथार्जवम्।
भूतात्मा भूतकृद्भूतिर्भूतभव्यभवोद्भवः॥ १३३॥

आप ब्रह्मा, तप, सत्य, व्रत-चर्या और आर्जव हैं। आप भूतात्मा, भूतकृद्, भूति और भूतभव्यभवोद्भव हैं।

भूर्भुवः स्वर्ऋतं चैव ध्रुवो दांतो महेश्वरः।
दीक्षितोऽदीक्षितः कान्तो दुर्दान्तो दान्तसंभवः॥ १३४॥

आप भू, भुवः स्वः ऋत, ध्रुव, दांत तथा महेश्वर हैं। आप दीक्षित, अदीक्षित, कान्त, दुर्दान्त और दान्तसंभव हैं।

चन्द्रावर्त्तो युगावर्त्तः संवर्त्तकप्रवर्त्तकः।
बिन्दुः कामो ह्यणुः स्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः॥ १३५

आप चन्द्रावर्त्त, युगावर्त्त, संवर्त्तक और प्रवत्तर्क हैं। आप बिन्दु, काम, अणु और स्थूल हैं तथा कर्णिकार की माला के प्रेमी हैं।

नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखस्तथा।
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट्॥ १३६॥

आप नन्दीमुख, भीममुख, सुमुख तथा दुर्मुख हैं। आप हिरण्यगर्भ, शकुनि, महासर्पपति तथा विराट् हैं।

अधर्महा महादेवो दण्डधारो गणोत्कटः।
गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः॥ १३७॥

आप अधर्महन्ता, महादेव, दण्डधार, गणोत्कट, गोनर्द, गोप्रतार, गोवृषेश्वरवाहन हैं।

त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोमार्गो मार्ग एव च।
स्थिरः श्रेष्ठश्च स्थाणुश्च विक्रोशः क्रोश एव च॥ १३८

आप त्रैलोक्यगोप्ता, गोविन्द, गोमार्ग तथा मार्ग हैं। आप स्थिर, श्रेष्ठ, स्थाणु, विक्रोश तथा क्रोश हैं।

दुर्वारणो दुर्विण्णहो दुःसहो दुरतिक्रमः।
दुर्द्धर्षो दुष्प्रकाशश्च दुर्दर्शो दुर्जयो जयः॥ १३९॥

आप दुर्वारण, दुर्विण्णह, दुःस्सह, दुरतिक्रम, दुर्धर्ष, दुष्प्रकाश, दुर्दर्श, दुर्जय तथा जय हैं।

शशाङ्कानलशीतोष्णः क्षुत्तृष्णा च निरामयः।
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिनाशनः॥ १४०॥

आप शशाङ्क, अनल, शीत, उष्णस क्षुधा, तृष्णा, निरामय, आधि, व्याधि, व्याधिहा तथा व्याधिनाशक हैं।

समूहश्च समूहस्य हन्ता देवः सनातनः।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः॥ १४१॥

आप समूह के समूह, हन्ता तथा सनातन देव हैं। आप शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष तथा पुण्डरीकवनालय हैं।

त्र्यम्बको दण्डधारश्च उग्रदंष्ट्रः कुलान्तकः।
विषापहः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पते।
अमृताशी जगन्नाथो वेदेदेवगणेश्वरः॥ १४२॥

हे मरुत्पति! हे देवदेव! आप त्र्यम्बक, दण्डधारी, उग्रदंष्ट्र, कुलान्तक[३०], विषापह, सुरश्रेष्ठ, सोमपायी, अमृताशी, जगन्नाथ तथा गणेश्वर हैं।

मधुश्च्युतानां मधुपो ब्रह्मवाक् त्वं घृतच्युतः।
सर्वलोकस्य भोक्ता त्वं सर्वलोकपितामहः॥ १४३॥

आप मधुश्च्युतों के मधुप, ब्रह्मवाक्, घृतच्युत, सर्वलोकभोक्ता एवं सर्वलोक-पितामह हैं।

हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेकः
त्वं स्त्री पुमांस्त्वं हि नपुंसकं च।
बालो युवा स्थविरो देवदंष्ट्रा
त्वन्ते गिरिर्विश्वकृद्विश्वहर्त्ता॥ १४४॥

आप हिरण्यरेत एक पुरुष हैं। आप स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक भी हैं। आप ही हमारे बालक, युवा, वृद्ध, देवहस्ती, गिरि, विश्वस्रष्टा तथा विश्वहर्त्ता हैं।

त्वं वै धाता विश्वकृतां वरेण्यस्
त्वां पूजयन्ति प्रणताः सदैव।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते भवान् हि
त्वमेव चाग्निः प्रपितामहश्च।
आराध्य त्वां सरस्वतीं वाग्लभन्ते
अहोरात्रे निमिषोन्मेषकर्त्ता॥ १४५॥

३०. कुल के विनाशक।

आप विश्वनिर्माणकर्त्ताओं में श्रेष्ठ धाता है। प्रणतजन सदैव आप की पूजा करते हैं। चन्द्रमा एवं सूर्य आप के नेत्रस्वरूप हैं। आप ही अग्नि एवं प्रपितामह हैं। सरस्वतीस्वरूप आप की आराधना कर लोग वाणी को प्राप्त करते हैं। आप अहोरात्र में निमेष एवं उन्मेष के कर्त्ता हैं।

न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन शङ्कर॥ १४६॥

हे शङ्कर! ब्रह्मा, गोविन्द तथा प्राचीन ऋषि भी आप के माहात्म्य को यथार्थतः जानने में समर्थ नहीं हैं।

पुंसां शतसहस्राणि यत्समावृत्य तिष्ठति।
महतस्तमसः पारे गोप्ता मन्ता भवान्सदा॥ १४७॥

आप लाखों पुरुषों को समावृत कर स्थित हैं। आप सदा महान् तम से परे रहने वाले गोप्ता एवं मन्ता हैं।

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः संजितेन्द्रियाः।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः॥ १४८

विनिद्र, जितश्वास, सत्त्वस्थ एवं अच्छी प्रकार इन्द्रियां पर विजय प्राप्त करने वाले योगोपासक योगीजन जिस ज्योति का दर्शन करते हैं उस योगात्मा को नमस्कार है।

या मूर्त्तयश्च सूक्ष्मास्ते न शक्या या निदर्शितुम्।
ताभिर्मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम्॥ १४९॥

आप की जो सूक्ष्म मूर्तियाँ हैं, उन्हें निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। उनके द्वारा सदा आप मेरी रक्षा करें जैसे कि पिता औरस पुत्र की रक्षा करता है।

रक्ष मां रक्षणीयोऽयं तवानघ नमोऽस्तु ते।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि॥ १५०॥

हे अनघ! आप मेरी रक्षा करें। मैं आप का रक्षणीय हूँ। आप को नमस्कार है। आप भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले एवं ऐश्वर्यसम्पन्न हैं एवं मैं सदा आप का भक्त हूँ।

जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे।
कमण्डलुनिषङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः॥ १५१॥

जटी, दण्डी, लम्बोदरशरीरी तथा कमण्डलुनिषङ्ग रुद्रात्मा को नमस्कार है।

यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥ १५२॥

जिनके केश में मेघ, समस्त अंग की सन्धियों में नदियाँ एवं कुक्षि में चारों सागर हैं, उन तोयात्मा को नमस्कार है।

संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते पर्युपस्थिते।
यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम्॥ १५३॥

युगान्त उपस्थित होने पर समस्त भूतों का भक्षण कर जो जल के मध्य शयन करते हैं, उन जलशायी की मैं शरण लेता हूँ।

प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि।
ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानू रक्षितस्तव तेजसा॥ १५४॥

आप जो रात्रि में राहु के मुख में प्रवेश कर सोम को पीते हैं तथा आप के तेज से रक्षित राहु सूर्य को ग्रसित करता है।

ये चात्र पतिता गर्भा रुद्र गन्धस्य रक्षणे।
नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्ति तदद्भुते॥ १५५॥

रुद्रगन्ध की रक्षा में यहाँ जो गर्भ गिरे हैं उन्हें नमस्कार है। उस अद्भुत को ही स्वाहा और स्वधा प्राप्त करते हैं।

येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्।
रक्षन्तु ते हि मां नित्यं ते मामाप्यायन्तु वै॥ १५६॥

समस्त देहियों की देह में स्थित अंगुष्ठमात्रा वाले जो पुरुष हैं वे नित्य मेरी रक्षा करें तथा वे मुझे आप्यायित करें।

ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च॥ १५७॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च॥ १५८॥
ये च पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च।
चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु॥ १५९॥
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः॥ १६०॥

जो नदियों, समुद्रों, पर्वतों, गुहाओं, वृक्षमूलों, गोष्ठों, गहनकान्तारों, चतुष्पथों, गलियों, चत्वरों, सभाओं हस्त्यश्वरथशालाओं, जीर्णोद्यानों, आलयों, पञ्चभूतों, दिशाओं एवं विदिशाओं में स्थित, चन्द्र-सूर्य के

मध्यगत, चन्द्र तथा सूर्य की रश्मियों में स्थित, रसातलगत एवं उससे भी परंगत हैं, उनको नित्य बारम्बार नमस्कार है।

येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च।
असंख्येयगणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः॥ १६१॥

जिनकी संख्या, प्रमाण और रूप नहीं है, उन असंख्य रुद्रगणों को सदा नमस्कार है।

प्रसीद मम भद्रं ते तव भावगतस्य च।
त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्मतिस्त्वयि॥ १६२॥
स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम द्विजोत्तमः॥ १६३॥

आप प्रसन्न हों, आप के भाव में स्थित मेरा कल्याण हो। हे देव! आप ही में मेरा हृदय मेरी बुद्धि एवं मति है। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके वह ब्राह्मणश्रेष्ठ स्थिर हो गया।

इति वामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(वेन राजा को मोक्ष)

सनत्कुमार उवाच

अथैनमब्रवीद्देवस्त्रैलोक्याधिपतिर्भवः।
आश्वासनकरं चास्य वाक्यविद्वाक्यमुत्तमम्॥ १॥

सनत्कुमार ने कहा— इसके बाद तीनों लोकों के अधिपति वाक्यविद् महादेव ने उस वेन को आश्वासनयुक्त उत्तम वचन कहे।

शिव उवाच

अहो तुष्टोऽस्मि ते राजन्स्तवेनानेन सुव्रत।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपे वसिष्यसि॥ २॥

शिव ने कहा— हे सुव्रत, हे राजन्! मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ? तुम मेरे समीप ही वास करोगे।

उषित्वा सुचिरं कालं मम गात्रोद्भवः पुनः।
असुरो ह्यन्धको नाम भविष्यसि सुरान्तकृत्॥ ३॥

बहुत समय तक निवास करने के बाद मेरे शरीर से पुनः तुम देवों के विनाशकारी अन्धक असुर बनोगे।

हिरण्याक्षगृहे जन्म प्राप्य वृद्धिं गमिष्यसि।
पूर्वाधर्मेण घोरेण वेदनिन्दाकृतेन च॥ ४॥

वेद की निन्दा करने से पूर्वकृत घोर अधर्म के कारण तुम हिरण्याक्ष के घर में जन्म ग्रहण करके वृद्धि को प्राप्त करोगे।

साभिलाषो जगन्मातुर्भविष्यसि यदा तदा।
देहं शूलेन हत्वाऽहं पावयिष्यामि समार्बुदम्॥ ५॥

जब तुम जगन्माता (पार्वती) की अभिलाषा करोगे तो मैं तुम्हारे शरीर को शूल से मारकर अरबों वर्षों के लिए पवित्र कर दूँगा।

तत्राप्यकल्मषो भूत्वा स्तुत्वा मां भक्तितः पुनः।
ख्यातो गणाधिपो भूत्वा नाम्ना भृङ्गिरिटिः स्मृतः॥ ६॥

इसके पश्चात् तुम पापरहित होकर पुनः मेरी भक्ति से भृङ्गिरिटि नामक विख्यात गणाधिप होकर प्रसिद्धि को प्राप्त करोगे।

मत्संनिधाने स्थित्वा त्वं ततः सिद्धिं गमिष्यसि।
वेनप्रोक्तं स्तवमिमं कीर्त्तयेद्यः शृणोति च॥ ७॥
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्शिवः॥ ८॥
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां वेननिर्मितः।
यशोराज्यसुखैश्वर्यधनमानाय कीर्तितः ॥ ९॥

इसके पश्चात् मेरे समीप रहते हुए तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। वेन द्वारा कही गई इस स्तुति का जो कीर्तन तथा श्रवण करता है उसका कुछ भी अशुभ नहीं होता और वह दीर्घायु प्राप्त करता है। जिस प्रकार सब देवों में भगवान् शिव विशिष्ट है, उसी प्रकार वेन द्वारा कही गई यह स्तुति समस्त स्तुतियों में श्रेष्ठ है। इसका कीर्तन करने से यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन और सम्मान प्राप्त होता है।

श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः।
व्याधितो दुःखितो दीनश्चौरराजभयान्वितः॥ १०॥
राजकार्यविमुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्।
अनेनैव तु देहेन गणानां श्रेष्ठतां व्रजेत्॥ ११॥
तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः।
न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः॥ १२॥

विघ्नं कुर्युर्गृहे तत्र यत्रायं पठ्यते स्तवः।
शृणुयाद्या स्तवं नारी अनुज्ञां प्राप्य भर्तृतः॥ १३॥
मातृपक्षे पितुः पक्षे पूज्या भवति देववत्।
शृणुयाद्यः स्तवं दिव्यं कीर्त्तयेद्वा समाहितः॥ १४॥
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्ति नित्यशः।
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽनुकीर्त्तितम्॥ १५॥
सर्वं संपद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्त्तनात्।
मनसा कर्मणा वाचा कृतमेनो विनश्यति।
वरं वरय भद्रं ते यत्त्वया मनसेप्सितम्॥ १६॥

विद्या की कामना करने वाले पुरुषों को यत्नपूर्वक भक्ति के आश्रित होकर इसका श्रवण करना चाहिए। व्याधि से ग्रस्त, दुःखी, चोर अथवा राजा से भयभीत अथवा राजकार्य से विमुक्त पुरुष महान भय से मुक्त होकर इसी देह से गणों की श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। वह तेज, यश से युक्त होकर निर्मल हो जाता है। जहाँ पर इस स्तुति का पाठ होता है उस गृह में राक्षस, पिशाच, भूत या विनायकगण किसी प्रकार का विघ्न नहीं करते हैं। पति की आज्ञा लेकर जो नारी इस स्तव को श्रवण करती है वह मातृपक्ष एवं पितृपक्ष में देवों के समान पूज्य हो जाती है। एकाग्रतापूर्वक इस दिव्य स्तोत्र को सुनने या कीर्तन करने वाले पुरुष के सभी कार्य सदा सिद्ध हो जाते हैं। मन से विचारित तथा वाणी से कथित सभी कुछ इसके द्वारा प्राप्त हो जाता है। इस स्तव के अनुकीर्तन से मन, वाणी और वचन से किए गए सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

वेन उवाच

अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्तथा लिङ्गस्य दर्शनात्।
मुक्तोऽहं पातकैः सर्वैस्तव दर्शनतः किल॥ १७॥

वेन ने कहा— इस लिंग के माहात्म्य से, लिंग के दर्शन के कारण और आपके दर्शनों से मैं निश्चय ही समस्त पापों से मुक्त हो गया हूँ।

यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम।
देवस्वभक्षणाज्जातं श्वयोनौ तव सेवकम्॥ १८॥
एतस्यापि प्रसादं त्वं कर्त्तुमर्हसि शङ्कर।
एतस्यापि भयान्मध्ये सरसोऽहं निमज्जितः॥ १९॥
देवैर्निवारितः पूर्वं तीर्थेऽस्मिन्स्नानकारणात्।
अयं कृतोपकारश्च एतदर्थे वृणोम्यहम्॥ २०॥

हे देव! यदि आप प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो देवों की संपत्ति हड़पने के कारण आपका एक सेवक कुत्ते की योनि में था। आप इस पर भी कृपा कीजिए। इसके ही भय के कारण मैंने उस सरोवर में डुबकी लगाई थी, जिस तीर्थ में पहले मेरा स्नान देवताओं ने वर्जित कर दिया था। इसने मेरा उपकार किया है इसलिए मैं इसके लिए वर मांग रहा हूँ।

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा तुष्टः प्रोवाच शङ्करः।
एषोऽपि पापनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः॥ २१॥

उसके इस वचन को सुनकर संतुष्ट हुये महादेव शङ्कर ने कहा— यह भी निस्संदेह पापमुक्त हो जाएगा।

प्रसादान्मे महाबाहो शिवलोकं गमिष्यति।
तथा स्तवमिमं श्रुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः॥ २२॥

हे महाबाहो! मेरी कृपा से यह शिवलोक में जाएगा तथा इस स्तुति को सुनकर समस्त पापों से मुक्त हो जाएगा।

कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यं सरसोऽस्य महीपते।
मम लिङ्गस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते॥ २३॥

हे राजन्! कुरुक्षेत्र तथा इस सरोवर के महात्म्य को तथा मेरे लिंग की उत्पत्ति के विषय में सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है।

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान्सर्वलोकनमस्कृतः।
पश्यतां सर्वलोकानां तत्रैवान्तरधीयत॥ २४॥

सनत्कुमार ने कहा— इस प्रकार कहकर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत वे भगवान् सब के देखते-देखते वहीं अन्तर्ध्यान हो गए।

स च श्वा तत्क्षणादेव स्मृत्वा जन्म पुरातनम्।
दिव्यमूर्त्तिधरो भूत्वा तं राजानमुपस्थितः॥ २५॥

वह कुत्ता भी उसी ही क्षण अपने पूर्वजन्म का स्मरण करके दिव्यदेहचारी होकर उस राजा के पास उपस्थित हो गया।

कृत्वा स्नानं ततो वैन्यः पितृदर्शनलालसः।
स्थाणुतीर्थे कुटीं शून्यां दृष्ट्वा शोकसमन्वितः॥ २६॥

वेन का पुत्र स्नान करके अपने पिता के दर्शन की इच्छा से स्थाणुतीर्थ में कुटी को खाली देखकर दुःखी हो गया।

दृष्ट्वा वेनोऽब्रवीत् वाक्यं हर्षेण महताऽन्वितः।
सत्पुत्रेण त्वया वत्स त्रातोऽहं नरकार्णवात्॥ २७॥

उसको देखकर अत्यंत हर्षान्वित होकर वेन ने कहा— हे वत्स! तुम जैसे सत्पुत्र ने मुझे नरक के महासागर से बचा लिया!

त्वयाऽभिषिञ्चितो नित्यं तीर्थस्थपुलिने स्थितः।
अस्य साधोः प्रसादेन स्थाणोर्देवस्य दर्शनात्॥ २८॥
इत्येवमुक्त्वा राजानं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम्॥ २९॥
स्थाणुतीर्थे ययौ सिद्धिं तेन पुत्रेण तारितः।
मुक्तपापश्च स्वर्लोकं यास्ये यत्र शिवः स्थितः।
स च श्वा परमां सिद्धिं स्थाणुतीर्थप्रभावतः॥ ३०॥
विमुक्तः कलुषैः सर्वैर्जगाम भवमन्दिरम्।
राजा पितृऋणैर्मुक्तः परिपाल्य वसुंधराम्॥ ३१॥
पुत्रानुत्पाद्य धर्मेण कृत्वा यज्ञं निरर्गलम्।
दत्त्वा कामांश्च विप्रेभ्यो भुक्त्वा भोगान्पृथग्विधान्॥ ३२
सुहृदो ऋणैर्मुक्त्वा कामैः संतर्प्य च स्त्रियः।
अभिषिच्य सुतं राज्ये कुरुक्षेत्रं ययौ नृपः॥ ३३॥

तीर्थस्थ सरोवर के किनारे बैठे मेरा तुमने नित्य अभिषेक किया है। इस साधु की कृपा तथा स्थाणुदेव के दर्शन से मैं मुक्तपाप हो कर स्वर्गलोक को चला जाऊँगा। वहाँ भगवान् शिव प्रतिष्ठित हैं। राजा को यह कहकर महेश्वर की प्रतिष्ठा करने के उपरांत वेन अपने पुत्र के द्वारा तारित स्थाणुतीर्थ को चले गए। और उस कुत्ते ने भी स्थाणुतीर्थ के प्रभाव के कारण परमगति को प्राप्त किया तथा समस्त पापों से मुक्त होकर वह शिव के मंदिर को चला गया। राजा भी पितृऋण से मुक्त होकर पृथ्वी का परिपालन करते हुए धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न करके, सर्वथा बाधारहित यज्ञ करके, ब्राह्मणों को यथेष्ट दान देकर, विविध भोगों का भोग करके, कामनाओं से स्त्रियों को संतृप्त करके, विभिन्न धर्म-अर्थकामादि ऋणों से मुक्त होकर एवं अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके कुरुक्षेत्र को चला गया।

तत्र तप्त्वा तपो घोरं पूजयित्वा च शङ्करम्।
आत्मेच्छया तनुं त्यक्त्वा प्रयातः परमं पदम्॥ ३४॥

वहाँ उसने घोर तपस्या शङ्कर की पूजा करके अपनी इच्छा से शरीर त्यागकर परमपद को प्राप्त किया।

एतत्प्रभावं तीर्थस्य स्थाणोर्यः शृणुयान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्॥ ३५॥

जो भी मनुष्य इस स्थाणुतीर्थ के प्रभाव को सुनता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पुलस्त्यनारदसंवादे
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

(ब्रह्मा द्वारा शिवस्तुति)

मार्कण्डेय उवाच

चतुर्मुखानामुत्पत्तिं विस्तरेण ममानघ।
तथा ब्रह्मेश्वराणां च श्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते॥ १॥

मार्कण्डेय ने कहा— हे अनघ! ब्रह्मेश्वर और चतुर्मुख की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से सुनने की मेरी इच्छा है।

सनत्कुमार उवाच

शृणु सर्वमशेषेण कथयिष्यामि तेऽनघ।
ब्रह्मणः स्त्रष्टुकामस्य यद् वृत्तं पद्मजन्मनः॥ २॥

सनत्कुमार ने कहा— हे अनघ! सृष्टि की इच्छा करने वाले, पद्मजन्मा ब्रह्मा का जो वृतांत है वह सब मैं तुमसे सम्पूर्णतः कहता हूँ— सुनो।

उत्पन्न एव भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
ससर्ज सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ३॥

लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने उत्पन्न होते ही स्थावर और जंगम समस्त भूतों का सर्जन कर दिया था।

पुनश्चिन्तयतः सृष्टिं जज्ञे कन्या मनोरमा।
नीलोत्पलदलश्यामा तनुमध्या सुलोचना॥ ४॥

सृष्टि के विषय में विचार करते हुए ब्रह्मा ने पुनः एक मनोरमा कन्या को उत्पन्न किया जो नीलोत्पल की पंखुरी के समान श्यामवर्णा, कृशतनु तथा सुलोचना थी।

तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनायाजुहाव ताम्।
तेन पापेन महता शिरोऽशीर्यत वेधसः॥ ५॥

उस कन्या को वांछित समझकर कामेच्छा से ब्रह्मा ने उसे बुलाया। इस भयानक घोर पाप से ब्रह्मा का सिर टुकड़े- टुकड़े कर खंडित हो गया।

तेन शीर्णेन स ययौ तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
सान्निहत्यं सरः पुण्यं सर्वपापक्षयावहम्॥ ६॥

अपने खंडित सिर के साथ ब्रह्मा त्रिलोकविख्यात, समस्त पापों के नाशक, पवित्र सन्निहित सरोवर तीर्थ को चले गए।

तत्र पुण्ये स्थाणुतीर्थे ऋषिसिद्धनिषेविते।
सरस्वत्युत्तरे तीरे प्रतिष्ठाप्य चतुर्मुखः॥ ७॥
आराधयामास तदा धूपैर्गन्धैर्मनोरमैः।
उपहारैस्तथा हृद्यै रौद्रसूक्तैर्दिने दिने॥ ८॥

वहाँ सरस्वती के उत्तरी किनारे पर ऋषियों और सिद्धों द्वारा निरन्तर सेवित स्थाणुतीर्थ में बैठकर ब्रह्मा धूप व मनोरम गन्ध वाले चन्दनादियों तथा मनोरम शिवसूक्तों द्वारा प्रतिदिन शिव की आराधना करने लगे।

तस्यैवं भक्तियुक्तस्य शिवपूजापरस्य च।
स्वयमेवाजगामाथ भगवान्नीललोहितः॥ ९॥

उनके इस प्रकार भक्तिसहित शिव की पूजा में लीन होने से नीललोहित भगवान् शङ्कर स्वयं प्रकट हो गए।

तमागतं शिवं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्तुतिं तस्य चकार ह॥ १०॥

शिव को प्रकट हुआ देखकर लोकपितामह ब्रह्मा भूमि पर नतमस्तक होकर उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव भूतभव्यभवाश्रय।
नमस्ते स्तुतिनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालिने॥ ११॥

हे भूत-भविष्यरूप संसार के आश्रयस्वरूप महादेव! आपको नमस्कार है। नित्य स्तुति के योग्य आपको नमस्कार। तीनों लोकों के पालक आपको नमस्कार है।

नमः पवित्रदेहाय सर्वकल्मषनाशिने।
चराचरगुरो गुह्यगुह्यानां च प्रकाशकृत्॥ १२॥

पवित्रदेह से युक्त, समस्त पापों का नाश करने वाले आपको नमस्कार है। संपूर्ण चराचर के गुरु और गुह्य से भी गुह्य को प्रकाशित करने वाले आप हैं।

रोगा न यान्ति भिषजैः सर्वरोगविनाशन।
रौरवाजिनसंवीत वीतशोक नमोऽस्तु ते॥ १३॥

जो रोग वैद्यों से दूर नहीं होते, ऐसे समस्त रोगों के विनाशक हो। हे मृगचर्मधारी! हे वीतशोक! आपको नमस्कार है।

वारिकल्लोलसंक्षुब्धमहाबुद्धिविघट्टिने।
त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवाश्रयाः॥ १४॥

आप जलतरंगों से संक्षुब्ध हुए समुद्र की तरह महान् बुद्धि से युक्त हैं। हे देव! आपको नाम का जाप करने वाले इस संसार का आश्रय नहीं लेते हैं।

नमस्ते नित्यनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालन।
शङ्करायाप्रमेयाय व्याधीनां शमनाय च॥ १५॥

नित्य के भी नित्य आपको नमस्कार है। हे तीनों लोकों का पालक! आपको नमस्कार। समस्त व्याधियों का नाश करने वाले अप्रमेय शङ्कर को नमस्कार।

परायापरिमेयाय सर्वभूतप्रियाय च।
योगेश्वराय देवाय सर्वपापक्षयाय च॥ १६॥

पर, अपरिमेय, सर्वभूतप्रिय, योगेश्वर और सब पापों के नाशक देव के लिए नमस्कार।

नमः स्थाणवे सिद्धाय सिद्धवन्दिस्तुताय च।
भूतसंसारदुर्गाय विश्वरूपाय ते नमः॥ १७॥

स्थाणुरूप, सिद्धरूप, सिद्धों और बन्दियों से स्तुत, संसार के प्राणियों के लिए दुर्गरूप तथा विश्वरूप को नमस्कार है।

फणीन्द्रोक्तमहिम्ने ते फणीन्द्राङ्गदधारिणे।
फणीन्द्रवरहाराय भास्कराय नमो नमः॥ १८॥

शेषनाग द्वारा आपकी महिमा का गान होता है, आपने शेषनाग को ही बाजुबन्दरूप में धारण किया है और

शेषनाग की ही माला पहनी है, ऐसे सूर्यरूप आपको नमस्कार है।

एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्माणं प्राह शङ्करः।
न च मन्युस्त्वया कार्यो भाविन्यर्थे कदाचन॥ १९॥

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महादेव शङ्कर ने कहा— आपको भावी घटनाओं के विषय में कभी भी स्वयं को अपराधी नहीं मानना चाहिए।

पुरा वराहकल्पे ते यन्मयाऽपहतं शिरः।
चतुर्मुखं च तदभून्न कदाचिन्नशिष्यति॥ २०॥

प्राचीन काल में वराह अवतार के समय में तुम्हारा सिर मेरे द्वारा खंडित किया गया था, तब चार सिर अवशिष्ट रह गए थे, जो कभी भी नष्ट नहीं होंगें।

अस्मिन्सन्निहिते तीर्थे लिङ्गानि मम भक्तितः।
प्रतिष्ठाय विमुक्तस्त्वं सर्वपापैर्भविष्यसि॥ २१॥

इस सन्निहित तीर्थ में मेरे लिंगों की भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा करके तुम समस्त पापों से विमुक्त हो जाओगे।

सृष्टिकामेन च पुरा त्वयाऽहं प्रेरितः किल।
तेनाहं त्वां तथेत्युक्त्वा भूतानां देशवर्तिवत्॥ २२॥
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा मग्नः संनिहिते स्थितः।
सुमहान्तं ततः कालं त्वं प्रतीक्षां ममाकरोः॥ २३॥

प्राचीनकाल में सृष्टि की कामना से आपने मुझे प्रेरित किया था जिससे मैं आपसे 'ऐसा ही हो' कहकर दीर्घ काल तक तप करते हुए इस सन्निहित सरोवर में निमग्न होकर स्थित रहा। तदनन्तर आपने अत्यंत दीर्घकाल तक मेरी प्रतीक्षा की थी।

स्रष्टारं सर्वभूतानां मनसा कल्पितं त्वया।
सोऽब्रवीत्त्वां तदा दृष्ट्वा मां मग्नं तत्र चाम्भसि॥ २४॥

आपने समस्त जगत् के जिस स्रष्टा को मन से उत्पन्न किया वह मुझे जल में निमग्न देखकर आपसे बोला-

यदि मे नाग्रजस्त्वन्यस्ततः स्रक्ष्यामहं प्रजाः।
त्वयैवोक्तश्च नैवास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः॥ २५॥
स्थाणुरेष जले मग्नो विवशः कुरु मद्धितम्।
स सर्वभूतानसृजद्दक्षादींश्च प्रजापतीन्॥ २६॥

यदि मेरा कोई अग्रज नहीं है तो ही मैं प्रजा की सृष्टि करूँगा। आपने कहा— तुम्हारा कोई अन्य पुरुष अग्रज नहीं हैं। यह स्थाणु जलमग्न और विवश है; मेरी सहायता करो। तदनन्तर उसने दक्षादि प्रजापतियों और समस्त प्राणियों की सृष्टि की।

यैरिमं प्राकरोत्सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम्।
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम्॥ २७
बिभक्षयिषवो ब्रह्मन्सहसा प्राद्रवंस्तदा।
स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत्॥ २८॥

इस प्रकार समस्त चतुर्विध भूतग्राम की रचना की गई। उत्पन्न हुई सारी प्रजा अत्यंत क्षुधार्त होकर खाने की इच्छा से प्रजापति की ओर दौड़ पड़ी। हे ब्राह्मण! उनके द्वारा खाया जाता हुआ वह अपनी रक्षा के लिए पितामह की ओर दौड़ा।

अथासां च महावृत्तिः प्रजानां संविधीयताम्।
दत्तं ताभ्यस्त्वया ह्यन्नं स्थावराणां महौषधीः॥ २९॥
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम्।
विहितान्नाः प्रजाः सर्वाः पुनर्जग्मुर्यथागतम्॥ ३०॥

अब इन उत्पन्न प्रजाओं के लिए जीवन-निर्वाह की वृत्ति का विधान करें। आपने उन सब को भोजन प्रदान किया। स्थावर को आपने महान् औषधियाँ प्रदान की। जंगम प्राणियों में बलवानों के लिए क्रमशः निर्बल का विधान किया। प्रजाओं के लिए अन्न का विधान किया। इस प्रकार व्यवस्थित होकर वे पुनः जहाँ से आए थे वहीं वापस चले गए।

ततो ववृधिरे सर्वाः प्रीतियुक्ताः परस्परम्।
भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरौ त्वयि॥ ३१॥
समुत्तिष्ठञ्जलात्तस्मात्प्रजाः संदृष्टवानहम्।
ततोऽहं ताः प्रजा दृष्ट्वा विहिताः स्वेन तेजसा॥ ३२॥

तदनन्तर सारी प्रजा परस्पर प्रीतियुक्त होकर अभिवृद्ध होने लगीं। प्रजा के इस प्रकार अभिवृद्ध होने तथा आप लोकगुरु के संतुष्ट होने पर जल से निकलते हुए मैंने उन समस्त प्रजाओं को देखा। उन प्रजाओं को देखते हुए मैंने उन्हें अपने तेज से अभिवृद्ध किया।

क्रोधेन महता युक्तो लिङ्गमुत्पाट्य चाक्षिपम्।
तक्षिप्तं सरसो मध्ये ऊर्ध्वमेव यदा स्थितम्॥ ३३॥

मैंने अत्यंत क्रोधित होकर लिंग को उखाड़कर फेंक

दिया। इस प्रकार फेंका गया वह लिंग सरोवर के मध्य सीधा खड़ा हो गया।

तदा प्रभृति लोकेषु स्थाणुरित्येष विश्रुतः।
सकृद्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वकिल्विषैः॥३४॥

तब से लेकर वह लिंग समस्त लोकों में 'स्थाणु' के रूप में प्रसिद्ध है। हे सुकृत! इसके दर्शनमात्र से व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

प्रयाति मोक्षं परमं यस्मान्ना वर्त्तते पुनः।
यश्चेह तीर्थे निवसेत्कृष्णाष्टम्यां समाहितः॥३५॥

जो कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को शान्तचित्त होकर इस तीर्थ में निवास करता है— वह परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है जिससे इस जगत् में पुनरावर्तन नहीं होता।

स मुक्तः पातकैः सर्वैरम्यागमनोद्भवैः।
इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥३६॥
ब्रह्मा विशुद्धपापस्तु पूज्य देवं चतुर्मुखम्।
लिङ्गानि देवदेवस्य ससृजे सरमध्यतः॥३७॥

वह अगम्या के गमन से होने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। यह कहकर भगवान् स्वयं वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गए। समस्त पापों से विमुक्त हुए ब्रह्मा ने चतुर्मुख देवता की पूजा करके देवाधिदेव शिव के लिङ्गों की सरोवर के मध्य प्रतिष्ठा की।

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं हरिपार्श्वे प्रतिष्ठितम्।
द्वितीयं ब्रह्मसदनं स्वकीये ह्याश्रमे कृतम्॥३८॥
तस्यैव पूर्वदिग्भागे तृतीयं च प्रतिष्ठितम्॥।
चतुर्थं ब्रह्मणा लिङ्गं सरस्वत्यास्तटे कृतम्॥३९॥

सर्वप्रथम हरि के समीप पवित्र 'ब्रह्मसर' को प्रतिष्ठित किया गया; फिर 'ब्रह्मसदन' को अपने आश्रम में प्रतिष्ठित किया। उससे पूर्व दिशा वाले भाग में तृतीय लिङ्ग को प्रतिष्ठित किया गया तथा चौथे लिङ्ग को ब्रह्मा ने सरस्वती के किनारे प्रतिष्ठित किया।

एतानि ब्रह्मतीर्थानि पुण्यानि पावनानि च।
ये पश्यन्ति निराहारास्ते यान्ति परमां गतिम्॥४०॥

जो निराहार रहकर इन पवित्र ब्रह्मतीर्थों का दर्शन करते हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

कृते युगे हरेः पार्श्वे त्रेतायां ब्रह्मणाश्रमे।
द्वापरे तस्य पूर्वेण सरस्वत्यास्तटे कलौ॥४१॥
एतानि पूजयित्वा च दृष्ट्वा भक्तिसमन्विताः।
विमुक्ताः कलुषैः सर्वैः प्रयान्ति परमां गतिम्॥४२॥

सतयुग में हरि के पार्श्व में, त्रेतायुग में ब्रह्मा के आश्रम में, द्वापर में उसके पूर्व में तथा कलियुग में सरस्वती के किनारे पर इनका पूजन करने से तथा भक्तियुक्त चित्त से इनका दर्शन करने से व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा परमगति को प्राप्त करते हैं।

सृष्टिकाले भगवता पूजितस्तु महेश्वरः।
सरस्वत्युत्तरे तीरे नाम्ना ख्यातश्चतुर्मुखः॥४३॥

सृष्टिकाल में सरस्वती के उत्तरी किनारे पर भगवान् ने शङ्कर की पूजा की जो चतुर्मुख नाम से प्रसिद्ध हुए।

तं प्रणम्य श्रद्दधानो मुच्यते सर्वकिल्विषैः।
लीलासंकरसंभूतैस्तथा वैभाण्डसंकरैः॥४४॥

उनको प्रमाण करके श्रद्धावान् व्यक्ति, लोलासांकर्य तथा वैभाण्डसांकर्य से होने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

तथैव द्वापरे प्राप्ते स्वाश्रमे प्राच्यं शङ्करम्।
विमुक्तो राजसैर्भावैर्वर्णसंकरसंभवैः॥४५॥

उसी प्रकार द्वापर आने पर व्यक्ति अपने आश्रम में शङ्कर की पूजा करके वर्णसांकर्य से उत्पन्न राजसी भावों से मुक्त हो जाता है।

ततः कृष्णचतुर्दश्यां पूजयित्वा तु मानवः।
विमुक्तः पातकैः सर्वैरभोज्यस्यान्नसंभवैः॥४६॥

तदनन्तर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को शङ्कर का पूजन कर व्यक्ति अभोज्य अन्न से उत्पन्न होने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

कलिकाले तु संप्राप्ते वसिष्ठाश्रममास्थितः।
चतुर्मुखं स्थापयित्वा ययौ सिद्धिमनुत्तमाम्॥४७॥

कलियुग के आने पर वसिष्ठ आश्रम में स्थित होकर ब्रह्मा ने चतुर्मुख की स्थापना की और उत्तम सिद्धि को प्राप्त हो गए।

तत्रापि ये निराहाराः श्रद्दधाना जितेन्द्रियाः।
पूजयन्ति महादेवं ते यान्ति परमं पदम्॥४८॥

वहीं पर जो श्रद्धावान् मनुष्य निराहार और जितेन्द्रिय रहकर महादेव की पूजा करते हैं वे परमपद को प्राप्त करते हैं।

इत्येतत्स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं कीर्त्तितं तव।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानव:॥४९॥

यह स्थाणुतीर्थ का माहात्म्य तुम्हारे लिए सुनाया गया है जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे सरोमाहात्म्ये एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय:॥४९॥

पञ्चाशोऽध्याय:

(पृथूदक तीर्थ का माहात्म्य)

देवदेव उवाच

एवं पृथूदको देवा: पुण्यं पापभयापह:।
तं गच्छध्वं महातीर्थं यावत् संनिधिवोधितम्॥१॥

ब्रह्मा ने कहा— हे देवगण! पृथूदक इस प्रकार पवित्र तथा अपहारक है। इसलिए इस महातीर्थ में अवश्य जाना चाहिए जो सन्निधि नाम से जाना जाता है।

यदा मृगशिरोऽऋक्षे शशिसूर्यौ बृहस्पति:।
तिष्ठन्ति सा तिथि: पुण्या त्वक्षया परिगीयते॥२॥

जब चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति मृगशिरा नक्षत्र के साथ समूह बनाकर स्थित होते हैं वह तिथि पुण्य और अक्षय मानी जाती है।

तं गच्छध्वं सुरश्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती।
पितृनाराधयध्वं च तत्र श्राद्धेन भक्तित:॥३॥

हे सुरश्रेष्ठों! उस समय जहाँ प्राची सरस्वती है वहाँ जाना चाहिए और भक्तिपूर्वक श्राद्ध के द्वारा अपने पितरों की आराधना करनी चाहिए।

ततो मुरारिवचनं श्रुत्वा देवा: सवासवा:।
समाजग्मु: कुरुक्षेत्रे पुण्यतीर्थं पृथूदकम्॥४॥

भगवान् मुरारि के वचन को सुनकर इन्द्रसहित देवतागण कुरुक्षेत्र में स्थित पुण्यतीर्थ 'पृथूदक' में पहुँच गये।

तत्र स्नात्वा सुरा: सर्वे बृहस्पतिमचोदयन्।
विशस्व भगवन् ऋक्षमिदं मृगशिर: कुरु।
पुण्यां तिथिं पापहरां तव कालोऽयमागत:॥५॥

समस्त देवगण वहाँ स्नान करके बृहस्पति से प्रार्थना करने लगे— हे भगवन्! मृगशिरा के भीतर प्रवेश कीजिए। इस तिथि को पुण्य और पापहारी बनाइये— यह आपके प्रविष्ट होने का समय है।

प्रवर्त्तते रविस्तत्र चन्द्रमाऽपि विशत्यसौ।
तवायत्तं गुरो कार्यं सुराणां तत्कुरुष्व व:॥६॥

वहाँ सूर्य का प्रवर्तन हो रहा है। चन्द्रमा भी प्रवेश कर रहा है। हे गुरु! आपके आने से ही देवताओं की कार्यसिद्धि हो सकती है, कृपया वैसा कीजिए।

इत्येवमुक्तो देवैस्तु देवाचार्योऽब्रवीदिदम्।
यदि वर्षाधिपोऽहं स्यां ततो यास्यामि देवता:॥७॥

बाढमूचु: सुरा: सर्वे ततोऽसौ प्राक्रमन्मृगम्॥९॥

देवों के इस प्रकार कहने पर देवाचार्य (बृहस्पति) ने कहा— हे देवगण! यदि मैं वर्ष का स्वामी बनूँ तभी मैं जाऊँगा। समस्त देवताओं ने कहा— अच्छा! तब वह मृगशिरा में प्रवेश कर गए।

आषाढे मासि मार्गर्क्षे चन्द्रक्षयतिथिर्हि या।
तस्यां पुरन्दर: प्रीत: पिण्डं पितृषु भक्तित:॥१०॥

आषाढ़ मास में मार्गशीर्ष नक्षत्र में जो चन्द्रक्षया तिथि थी (अमावास्या थी) उसमें इन्द्र ने प्रसन्नता और भक्तिपूर्वक अपने पितरों को पिण्ड प्रदान किया था।

प्रादात्तिलमधून्मिश्रं हविष्यान्नं कुरुष्वथ।
तत: प्रीतास्तु पितरस्तां प्राहुस्तनयां निजाम्॥११॥

और कुरुक्षेत्र में तिल और मधु से मिश्रित हविष्यान्न प्रदान किया। तदनन्तर प्रसन्न पितरों ने उस (इन्द्र) को अपनी पुत्री दे दी।

मेनां देवाश्च शैलाय हिमयुक्ताय वै ददु:।
तां मेनां हिमवाँल्लब्ध्वा प्रसादाद्दैवतेष्वथ।
प्रीतिमानभवच्चासौ रराम च यथेच्छया॥१२॥

देवताओं ने हिमयुक्त शैल को 'मैना' दे दी। हिमालय मेना को प्राप्त कर देवताओं पर प्रसन्नता के कारण अत्यंत हर्षयुक्त होकर आनन्दपूर्वक रमण करने लगा।

ततो हिमाद्रिः पितृकन्यया समं
संतर्पयन् वै विषयान् यथेष्टम्।
अजीजनत् सा तनयाश्च तिस्रो
रूपातियुक्ताः सुरयोषितोपमाः॥ १३॥

हिमाद्रि ने पितृकन्या (मेना) के साथ विषयों का यथेष्ट उपभोग किया। उसने (मेना ने) तीन कन्याओं को जन्म दिया जो देवांगनाओं के समान रूपवती थीं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उमासंभवे कुरुक्षेत्रमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(शिव-बटुक का संवाद)

पुलस्त्य उवाच

मेनायाः कन्यकास्तिस्रो जाता रूपगुणान्विताः।
सुनाभ इति च ख्यातश्चतुर्थस्तनयोऽभवत्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— मेना से रूप और गुणों से युक्त तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं तथा चतुर्थ 'सुनाभ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्ताम्बरविभूषिता।
रागिणी नाम संजाता ज्येष्ठा मेनासुता मुने॥ २॥

हे मुनि! मेना की ज्येष्ठ पुत्री 'रागिणी' थी। वह रक्तवर्णा तथा रक्तनेत्रा थी। वह रक्त वर्ण के वस्त्रों से विभूषित थी।

शुभाङ्गी पद्मपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा।
श्वेतमाल्याम्बरधरा कुटिला नाम चापरा॥ ३॥

दूसरी का नाम 'कुटिला' था। वह शुभांगी, कमलपत्र के समान नेत्रों वाली तथा नीले और घुंघराले बालों वाली थी।

नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्दीवरलोचना।
रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनकासुता॥ ४॥

मेनका की तीसरी कन्या का नाम 'काली' था। वह अनुपम रूपवती, नील सुरमे के समान वर्ण वाली तथा नीलकमल के समान नेत्रों वाली थी।

जातास्ताः कन्यकास्तिस्रः षडब्दात्परतो मुने।
कर्तुं तपः प्रयाताश्च देवास्ता ददृशुः शुभाः॥ ५॥

हे मुनि! वे तीनों कन्याएँ जन्म के छः वर्ष बाद ही कठोर तप के लिये प्रवृत्त हो गईं। देवताओं ने उन सुंदर कन्याओं को देखा।

ततो दिवाकरैः सर्वैर्वसुभिश्च तपस्विनी।
कुटिला ब्रह्मलोकं तु नीता शशिकरप्रभा॥ ६॥

तदनन्तर चन्द्रमा की किरणों के समान आभावाली तपस्विनी 'कुटिला' दिवाकरों और वसुओं के द्वारा ब्रह्मलोक को ले जाई गई।

अथोचुर्देवताः सर्वाः किं त्वियं जनयिष्यति।
पुत्रं महिषहन्तारं ब्रह्मन्व्याख्यातुमर्हसि॥ ७॥

तदनन्तर समस्त देवताओं ने कहा— हे ब्रह्मन्! क्या यह महिषासुर को मारने वाले पुत्र को उत्पन्न करेगी-यह हमें बताइये।

ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्नेयं शक्ता तपस्विनी।
शार्वं धारयितुं तेजो वराकी मुच्यतां त्वियम्॥ ८॥

तब सुरपति ने कहा— यह तपस्विनी शिव के तेज को धारण नहीं कर सकती। इस बेचारी को छोड़ दीजिए।

ततस्तु कुटिला क्रुद्धा ब्रह्माणं प्राह नारद।
तथा यतिष्ये भगवन्यथा शार्वं सुदुर्धरम्॥ ९॥
धारयिष्याम्यहं तेजस्तथैव शृणु सत्तम।
तपसाऽहं सुतप्तेन समाराध्य जनार्दनम्॥ १०॥
यथा हरस्य मूर्धानं नमयिष्ये पितामह।
तथा देव करिष्यामि सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ११॥

हे नारद! तदनन्तर क्रुद्ध कुटिला ने ब्रह्मा से कहा— हे श्रेष्ठ! सुनिये! मैं शिव के दुर्धर तेज को धारण कर सकने योग्य कठिन तप करूँगी। अत्यंत कठिन तप से जनार्दन की आराधना करके मैं वैसा ही करूँगी जिससे मैं शिव के सिर को झुका सकूँ! मैं यह सत्य कहती हूँ।

पुलस्त्य उवाच

ततः पितामहः क्रुद्धः कुटिलां प्राह दारुणाम्।
भगवानादिकृद्ब्रह्मा सर्वेशोऽपि महामुने॥ १२॥

पुलस्त्य ने कहा— हे महामुनि! तब भगवान् आदि को बनाने वाले एवं समस्त देवों के स्वामी पितामह ने क्रुद्ध होकर उस निर्दयी कुटिला से कहा—

ब्रह्मोवाच

यस्मान्मद्वचनं पापे न क्षान्तं कुटिले त्वया।
तस्मांन्मच्छापनिर्दग्धा सर्वा आपो भविष्यसि॥ १३॥

ब्रह्मा ने कहा— हे पापिनी कुटिला! क्योंकि तुमने मेरे वचनानुसार आचरण नहीं किया, इसलिए मेरे शाप से निर्दग्ध होकर तुम सर्वथा जल के रूप में परिवर्तित हो जाओगी।

इत्येवं ब्रह्मणा शप्ता हिमवद्दुहिता मुने।
आपोमयी ब्रह्मलोकं प्लावयामास वेगिनी।१४॥

हे मुनि! इस प्रकार शापित हुई वह हिमवान् की पुत्री सर्वथा जलरूप होकर ब्रह्मलोक में वेगपूर्वक बहने लगी।

तामुद्वृत्तजलां दृष्ट्वा प्रबबन्ध पितामहः।
ऋक्सामाथर्वयजुभिर्वामयैर्ब्बन्धनैर्दृढम्॥ १५॥

उस उमड़ती हुई नदी को देखकर पितामह ने उसे ऋक्, यजु, साम और अथर्व के दृढ़ बंधनों से बांध दिया।

सा बद्धा संस्थिता ब्रह्मंस्तत्रैव गिरिकन्यका।
आपोमयी प्लावयन्ती ब्रह्मणो विमला जटाः॥ १६॥

वह सुबद्ध और जलाप्लावित गिरिकन्या जलरूपा, ब्रह्मा की श्वेत जटाओं को भिगोती हुई वहीं रहने लगी।

या सा रागवती नाम सापि नीता सुरैर्दिवम्।
ब्रह्मणे तां निवेद्यैवं तामप्याह प्रजापतिः॥ १७॥

देवतागण रागवती को भी द्युलोक ले गये और उसे ब्रह्मा को सौंप दिया। प्रजापति ने उससे भी यही कहा—

साऽपि क्रुद्धाऽब्रवीन्नूनं तथा तप्स्ये महत्तपः।
यथा मन्नामसंयुक्तो महिषघ्नो भविष्यति॥ १८॥

वह भी क्रुद्ध होकर बोली— मैं निश्चय ही ऐसी महान् तपस्या करूँगी जिससे महिषासुर के संहारक के साथ मेरा नाम संयुक्त हो जाय।

तामप्यथाशपद् ब्रह्मा संध्या पापे भविष्यसि।
या मद्वाक्यमलङ्घ्यं वै सुरैर्लङ्घयसे बलात्॥ १९॥

तदनन्तर उसको भी ब्रह्मा ने शाप देते हुये कहा— हे पापिनी! देवताओं के द्वारा भी अलंघ्य मेरे आदेश का उल्लंघन करती हो, अतः तुम सन्ध्या हो जाओगी।

साऽपि जाता मुनिश्रेष्ठ संध्यारागवती ततः।
प्रतीच्छत् कृत्तिकायोगं शैलेया विग्रहं दृढम्॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब वह भी रागवती संध्या बन गई और उस शैलपुत्री ने कृत्तिका के योग से छः विग्रह को धारण कर लिया।

ततो गते कन्यके द्वे ज्ञात्वा मेना तपस्विनी।
तपसो वारयामास उमेत्येवाब्रवीच्च सा॥ २१॥

तदनन्तर तपस्विनी मेना ने अपनी दो कन्याओं को गया हुआ जानकर अपनी तृतीय कन्या 'उमा' को तपस्या से रोका और 'उमा' इस प्रकार कहा।

तदेव माता नामास्याश्चक्रे पितृसुता शुभा।
उमेत्येव हि कन्यायाः सा जगाम तपोवनम्॥ २२॥

अपने पितरों की प्यारी मेना ने उस कन्या का नाम 'उमा' रख दिया और तदनन्तर वह तपोवन में चली गई।

ततः सा मनसा देवं शूलपाणिं वृषध्वजम्।
रुद्रं चेतसि संधार्य तपस्तेपे सुदुष्करम्॥ २३॥

तदुपरान्त उसने मन से देव शूलपाणि, वृषध्वज तथा रुद्र का अपने चित्त में सन्निधान करते हुये अत्यंत दुष्कर तप किया।

ततो ब्रह्माऽब्रवीद्देवान्गच्छध्वं हिमवत्सुताम्।
इहानयध्वं तां कालीं तपस्यन्तीं हिमालये॥ २४॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने देवताओं से कहा— हिमालय की पुत्री के पास जाओ और हिमालय पर तपस्या करती हुई उस 'काली' को यहाँ ले आओ।

ततो देवाः समाजग्मुर्ददृशुः शैलनन्दिनीम्।
तेजसा विजितास्तस्या न शेकुरुपसर्पितुम्॥ २५॥

तब समस्त देवतागण एकत्रित होकर शैलनंदिनी के दर्शनार्थ पहुँचे। परंतु उसके तेज से पराजित होने के कारण वे उसके समीप न जा सके।

इन्द्रोऽमरगणैः सार्धं निर्द्धूतस्तेजसा तया।
ब्रह्मणोऽधिकतेजोऽस्या विनिवेद्य प्रतिष्ठितः॥ २६॥

देवताओं सहित इन्द्र को उसने अपने तेज से निस्तेज कर दिया। इसका तेज ब्रह्मा के तेज से भी अधिक है; ऐसा जानकर उन्होंने उसे प्रतिष्ठित कर दिया।

ततो ब्रह्माऽब्रवीत् सा हि ध्रुवं शङ्करवल्लभा।
यूयं यत् तेजसा नूनं विक्षिप्तास्तु हतप्रभाः॥ २७॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा— निश्चय ही वह उमा शङ्कर की प्रिया है। उसके तेज के कारण ही आप निस्तेज और निष्प्रभ हुए हैं।

तस्माद् भजध्वं स्वं स्वं हि स्थानं भो विगतज्वराः।
सतारकं हि महिषं विदध्वं निहतं रणे॥ २८॥

इसलिए आप सब चिंतारहित होकर अपने-अपने स्थान पर जाइये; और तारकसहित महिष को रण में मरा हुआ ही समझिये।

इत्येवमुक्ता देवेन ब्रह्मणा सेन्द्रकाः सुराः।
जग्मुः स्वान्येव धिष्ण्यानि सद्यो वै विगतज्वराः॥ २९

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर इन्द्र सहित समस्त देवतागण चिन्तारहित होकर शीघ्र ही अपने-अपने स्थान को चले गए।

उमामपि तपस्यन्तीं हिमवान् पर्वतश्वेरः।
निवर्त्य तपसस्तस्मात् सदारो ह्यनयद् गृहान्॥ ३०॥

पर्वतेश्वर हिमवान् भी अपनी पत्नी के साथ आकर तपस्या करती हुई उमा को तप से निवर्तित करके अपने घर ले गए।

देवोऽप्याश्रित्य तद्रौद्रं व्रतं नाम्ना निराश्रयम्।
विचचार महाशैलान् मेरुप्राग्यान् महामतिः॥ ३१॥

निराश्रय नामक कठोर व्रत का आश्रय लेने वाले महामति भगवान् शङ्कर भी मेरु के समान विशाल पर्वत की शृंखलाओं पर घूमने लगे।

स कदाचिन्महाशैलं हिमवन्तं समागतः।
तेनार्चितः श्रद्धयाऽसौ तां रात्रिमवसद्धरः॥ ३२॥

घूमते-घूमते कदाचित् वह विशाल पर्वत हिमालय पर आ पहुँचे। हिमालय ने अत्यंत श्रद्धापूर्वक शिव की आराधना की। हर ने उस रात्रि को वहीं पर निवास किया।

द्वितीयेऽह्नि गिरीशेन महादेवो निमन्त्रितः।
इहैव तिष्ठस्व विभो तपःसाधनकारणात्॥ ३३॥

दूसरे दिन पर्वतराज हिमालय ने महादेव को निमन्त्रित करते हुये कहा— हे प्रभु! आप तपस्या करने के निमित्त यहीं रह जाइये।

इत्येवमुक्तो गिरिणा हरश्चक्रे मतिं च ताम्।
तथावाश्रममाश्रित्य त्यक्त्वा वासं निराश्रमम्॥ ३४॥

हिमालय द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर शिव ने इस प्रस्ताव पर विचार किया और 'निराश्रय' व्रत का त्याग कर वहीं आश्रम में रहने लगे।

वसतोऽप्याश्रमे तस्य देवदेवस्य शूलिनः।
तं देशमगमत् काली गिरिराजसुता शुभा॥ ३५॥

देवाधिदेव शूलधारी शिव के वहाँ आश्रम में निवास करने पर हिमालयसुता सौन्दर्यशालिनी काली (उमा) (एक दिन) उनके पास आयी।

तामागतां हरो दृष्ट्वा भूयो जातां प्रियां सतीम्।
स्वागतेनाभिसंपूज्य तस्थौ योगरतो हरः॥ ३६॥

वहाँ आयी उस उमा को देखकर शिव ने समझा कि उनकी प्रिया सती पुनर्जन्म लेकर फिर आ गई है। ऐसा सोचकर शङ्कर ने स्वागतपूर्वक उनका अभिनंदन किया और योगरत ही स्थित रहे।

सा चाभ्येत्य वरारोहा कृताञ्जलिपरिग्रहा।
ववन्दे चरणौ शैवौ सखीभिः सह भामिनी॥ ३७॥

वह सौन्दर्यशालिनी उमा अपनी सखियों के साथ शिव के समीप गई और जाकर हाथ जोड़कर शिव के चरणों की वंदना की।

ततस्तु सुचिराच्छर्वः समीक्ष्य गिरिकन्यकाम्।
न युक्तं चैवमुक्त्वाऽथ सगणोऽन्तर्दधे ततः॥ ३८॥

शिव देर तक गिरिसुता को देखते रहे और ऐसा करना 'उपयुक्त नहीं है'— यह कहकर वे अपने गणों सहित अन्तर्ध्यान हो गए।

साऽपि शर्ववचो रौद्रं श्रुत्वा ज्ञानसमन्विता।
अन्तर्दुःखेन दह्यन्ती पितरं प्राह पार्वती॥ ३९॥

शिव के कठोर वचनों को सुनकर ज्ञानसम्पन्ना उमा अन्तर्दुख से तप्त हुई और अपने पिता से बोली—

तात यास्ये महारण्ये तप्तुं घोरं महत्तपः।
आराधनाय देवस्य शङ्करस्य पिनाकिनः॥ ४०॥

हे तात! मैं देवाधिदेव पिनाकी शङ्कर की आराधना के लिए कठोर तप करने के उद्देश्य से महान् अरण्य में जाना चाहती हूँ।

तथेत्युक्तं वचः पित्रा पादे तस्यैव विस्तृते।
ललिताख्या तपस्तेपे हराराधनकाम्यया॥४१॥

पिता के द्वारा 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहने पर 'उमा' ने 'ललिता' नाम धारण किया और हर की आराधना करने की इच्छा से कठोर तपस्या करने लगी।

तस्याः सख्यस्तदा देव्याः परिचर्यां तु कुर्वते।
समित्कुशफलं चापि मूलाहरणमादितः॥४२॥

उसकी सखियाँ समिधा, कुश, फल तथा कन्दमूलादि लाकर उस देवी की सेवा करने लगीं।

विनोदनार्थं पार्वत्या मृन्मयः शूलधृग्घरः।
कृतश्च तेजसा युक्तो भद्रमस्त्विति साऽब्रवीत्॥४३॥

पार्वती के विनोद के लिए सखियों ने शूलधारी शिव की मिट्टी की तेजयुक्त प्रतिमा बनाई। उस प्रतिमा को देखकर वह 'बहुत अच्छा' बोली।

पूजां करोति तस्यैव तं पश्यन्ती मुहुर्मुहुः।
ततोऽस्यास्तुष्टिमगमच्छ्रद्धया त्रिपुरान्तकृत्॥४४॥

उमा उस प्रतिमा की ओर बार-बार देखती हुई उसकी पूजा करने लगी। उमा की श्रद्धा से त्रिपुर का अंत करने वाले शिव संतुष्ट हो गए।

वटुरूपं समाधाय आषाढी मुञ्जमेखली।
यज्ञोपवीती छत्री च मृगाजिनधरस्तथा॥४५॥
कमण्डलुव्यग्रकरो भस्मारुणितविग्रहः।
प्रत्याश्रमं पर्यटन्स तं काल्याश्रममागतः॥४६॥

(एक दिन) शिव ने ब्रह्मचारी का रूप धारण किया और हाथ में पलाश का दण्ड, मुञ्ज की मेखला, यज्ञोपवीत, छत्र, मृगचर्म का वस्त्र, तथा कमण्डलु को लेकर, समस्त शरीर पर भस्म का लेप किये हुए वे आश्रम-दर आश्रम घूमते हुए काली के आश्रम में आ पहुँचे।

तमुत्थाय तदा काली सखीभिः सह नारद।
पूजयित्वा यथान्यायं पर्यपृच्छदिदं ततः॥४७॥

हे नारद! तब काली ने अपनी सखियों के सहित उठकर, उस ब्रह्मचारी की यथाविधि पूजा की और उसके बाद पूछा—

उमोवाच

कस्मादागम्यते भिक्षो कुत्र स्थाने तवाश्रमः।
क्व च त्वं परिगन्तासि मम शीघ्रं निवेदय॥४८॥

उमा ने कहा— हे भिक्षु! आप कहाँ से आए हैं? आपका आश्रम कहाँ है? और, आपको कहाँ जाना है? कृपया मुझे शीघ्र बताइये।

भिक्षुरुवाच

ममाश्रमपदं बाले वाराणस्यां शुचिव्रते।
अथातस्तीर्थयात्रायां गमिष्यामि पृथूदकम्॥४९॥

भिक्षु ने कहा— हे पवित्रव्रतधारी बालिका! मेरा आश्रम वाराणसी में हैं। मैं यहाँ से तीर्थयात्रा के लिये पृथूदक जा रहा हूँ।

देव्युवाच

किं पुण्यं तत्र विप्रेन्द्र लब्धासि त्वं पृथूदके।
पथि स्नानेन च फलं केषु किं लब्धवानसि॥५०॥

देवी ने कहा— हे विप्रेन्द्र! आपको पृथूदक में क्या पुण्य मिलेगा तथा रास्ते में किन-किन तीर्थों में स्नान के द्वारा आपको क्या-क्या फल मिला?

भिक्षुरुवाच

मया स्नानं प्रयागे तु कृतं प्रथममेव हि।
ततोऽथ तीर्थे कुब्जाम्रे जयन्ते चण्डिकेश्वरे॥५१॥
बन्धुवृन्दे च कर्कन्धे तीर्थे कनखले तथा।
सरस्वत्यामग्निकुण्डे भद्रायां तु त्रिविष्टपे॥५२॥
कोनटे कोटितीर्थे च कुब्जके च कृशोदरि।
निष्कामेन कृतं स्नानं ततोऽभ्यागां तवाश्रमम्॥५३॥

भिक्षु ने कहा—सर्वप्रथम मैंने प्रयाग में तथा तदनन्तर क्रमशः कुब्जाम्र, जयन्त तथा चण्डिकेश्वर तीर्थ में स्नान किया। इसके बाद मैंने बंधुवृंद, कर्कन्ध तथा कनखल तीर्थ में स्नान किया। इसके साथ ही सरस्वती में, अग्निकुण्ड में, भद्रा में, त्रिविष्टप में, कोनट में, कोटितीर्थ में, कुब्जक में कृशोदर में, तथा निष्काम में स्नान किया और फिर तदनन्तर तुम्हारे आश्रम में आ पहुँचा।

इहस्थां त्वां समाभाष्य गमिष्यामि पृथूदकम्।
पृच्छामि यदहं त्वां वै तत्र न क्रोद्धुमर्हसि॥५४॥

यहाँ अवस्थित तुम से वार्तालाप करने के पश्चात् मैं पृथूदक जाऊँगा। मैं तुमसे जो पूछता हूँ कृपया उससे क्रोधित मत होना।

अहं यत्तपसाऽऽत्मानं शोषयामि कृशोदरि।
बाल्येऽपि संयततनुस्ततः श्लाघ्यं द्विजन्मनाम्॥५५॥

हे कृशोदरि! मैं तप से अपने आप को शोषित कर रहा हूँ। मैं बाल्यकाल से ही कठोर व्रतधारी हूँ। यह आचरण ब्राह्मणों के लिये प्रशंसनीय है।

किमर्थं भवती रौद्रं प्रथमे वयसि स्थिता।
तपः समाश्रिता भीरु संशयः प्रतिभाति मे॥५६॥

हे देवी! तुम किस कारण से बाल्यकाल में ही इतना कठोर तप कर रही हो। यह संशय मेरे मन में बना हुआ है।

प्रथमे वयसि स्त्रीणां सह भर्त्रा विलासिनि।
सुभोगा भोगित्ताः काले व्रजन्ति स्थिरयौवने॥५७॥

हे स्थिरयौवन वाली कन्या! हे विलासिनी! प्रथमावस्था के समय में स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ सुन्दर भोगों का भोग किया करती हैं।

तपसा वाञ्छयन्तीह गिरिजे सचराचराः।
रूपाभिजनमैश्वर्यं तच्च ते वर्त्तते बहु॥५८॥

हे गिरिजा! मनुष्य इस संसार में तप से चर और अचर जिस रूप, अभिजात्य, तथा ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं वह सब तुम्हारे पास पहले से ही बहुलता से है।

तत्किमर्थमपास्यैतानलंकाराञ्जटा धृताः।
चीनांशुकं परित्यज्य किं त्वं वल्कलधारिणी॥५९॥

किस कारण से तुमने अलंकारों का त्याग करके जटाएँ धारण कर रखी हैं? किस कारण रेशमी वस्त्रों का त्याग कर तुमने वल्कल धारण कर रखे हैं।

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु तपसा वृद्धा देव्याः सोमप्रभा सखी।
भिक्षवे कथयामास यथावत् सा हि नारद॥६०॥

पुलस्त्य ने कहा— हे नारद! तदनन्तर देवी उमा की सखी सोमप्रभा, जो तपस्या में उससे भी अधिक श्रेष्ठ थी। भिक्षु से आदरपूर्वक बोली—

सोमप्रभोवाच

तपश्चर्या द्विजश्रेष्ठ पार्वत्या येन हेतुना।
तं शृणुष्व त्वियं काली हरं भर्तारमिच्छति॥६१॥

सोमप्रभा ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! जिस कारण से पार्वती कठोर तपस्या कर रही है वह सुनिये। यह काली शिव को 'भर्ता' के रूप में प्राप्त करना चाहती है।

पुलस्त्य उवाच

सोमप्रभाया वचनं श्रुत्वा संकम्प्य वै शिरः।
विहस्य च महाहासं भिक्षुराह वचस्त्विदम्॥६२॥

पुलस्त्य ने कहा— सोमप्रभा के वचन को सुनकर भिक्षु ने अपने सिर को जोर से हिलाया और जोर से हंसते हुये कहा—

भिक्षुरुवाच

वदामि ते पार्वति वाक्यमेवं
केन प्रदत्ता तव बुद्धिरेषा।
कथं करः पल्लवकोमलस्ते
समेष्यते शार्वकरं ससर्पम्॥६३॥

भिक्षु ने कहा— हे पार्वती! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम को किसने यह परामर्श दिया? पल्लव के समान कोमल तुम्हारा हाथ शिव के सर्प के वलय वाले हाथ को कैसे सहन करेगा?

तथा दुकूलाम्बरशालिनी त्वं
मृगारिचर्माभिवृतस्तु रुद्रः।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्मभूषितो
न युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम्॥६४॥

तुम उत्कृष्ट रेशमी वस्त्र धारण करने वाली हो जबकि शिव व्याघ्रचर्म धारण करते हैं। तुम चंदन का लेप लगाती हो तो शिव भस्मलेपधारी हैं। मुझे यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

पुलस्त्य उवाच

एवं वादिनि विप्रेन्द्र पार्वती भिक्षुमब्रवीत्।
मा मैवं वद भिक्षो त्वं हरः सर्वगुणाधिकः॥६५॥

पुलस्त्य ने कहा— हे विप्रेन्द्र! भिक्षु के इस प्रकार कहने पर पार्वती ने उस से कहा— हे भिक्षु! तुम इस

तरह मत बोलो। हर सर्वाधिक गुणी हैं।

शिवो वाऽप्यथवा भीमः सधनो निर्धनोऽपि वा।
अलंकृतो वा देवेशस्तथा वाऽप्यनलंकृतः॥६६॥
यादृशस्तादृशो वाऽपि स मे नाथो भविष्यति।
निवार्यतामयं भिक्षुर्विवक्षुः स्फुरिताधरः।
न तथा निन्दकः पापी यथा शृण्वन् शशिप्रभे॥६७॥

वे शिव हों अथवा भयंकर, निर्धन हों या धनवान्, अलंकृत या अनलंकृत, वे देवेश जैसे भी हैं मेरे स्वामी हैं। शशिप्रभा! बोलने के लिए इच्छुक स्फुरित होंठ वाले इस भिक्षु को यहाँ से हटाओ। शिव की निंदा करने वाला उतना पापी नहीं होता जितना उसे सुनने वाला होता है।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वरदा समुत्थातुमथैच्छत।
ततोऽत्यजद्भिक्षुरूपं स्वरूपस्थोऽभवच्छिवः॥६८॥

पुलस्त्य ने कहा— वह वरदा (पार्वती) ऐसा कहकर उठने के लिए उद्यत हो गई। तब भिक्षुरूप का त्यागकर शिव अपने वास्तविक रूप में आ गए।

भूत्वोवाच प्रिये गच्छ स्वमेव भवनं पितुः।
तवार्थाय प्रहेष्यामि महर्षीन् हिमवद्गृहे॥६९॥

शिव ने कहा— हे प्रिये! अपने पिता के घर जाओ। तुम्हारे लिए मैं महर्षियों को हिमालय के घर पर भेजूँगा।

यच्चेह रुद्रमीहन्त्या मृन्मयश्चेश्वरः कृतः।
असौ भद्रेश्वरेत्येवं ख्यातो लोके भविष्यति॥७०॥

और जो यहाँ तुमने पूजा के लिए मृन्मय शिव को स्थापित किया है वह 'भद्रेश्वर' नाम से समस्त लोक में प्रख्यात होगा।

देवदानवगन्धर्वा यक्षाः किंपुरुषोरगाः।
पूजयिष्यन्ति सततं मानवाश्च शुभेप्सवः॥७१॥

देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, किंपुरुष, उरग तथा शुभेच्छुक मानव सब निरन्तर उसकी पूजा करेंगे।

इत्येवमुक्ता देवेन गिरिराजसुता मुने।
जगामाम्बरमाविश्य स्वमेव भवनं पितुः॥७२॥

हे मुनि! देव शिव के द्वारा इस प्रकार कहने पर गिरिराजकन्या पार्वती आकाशमार्ग से अपने पिता के भवन में चली गई।

शङ्करोऽपि महातेजा विसृज्य गिरिकन्यकाम्।
पृथूदकं जगामाथ स्नानं चक्रे विधानतः॥७३॥

महातेजस्वी शिव भी गिरिराजकन्या को छोड़कर पृथूदक की ओर चले गए और विधिपूर्वक वहाँ स्नान किया।

ततस्तु देवप्रवरो महेश्वरः
पृथूदके स्नानमपास्तकल्मषः।
कृत्वा सनन्दिः सगणः सवाहनो
महागिरिं मन्दरमाजगाम॥७४॥

पृथूदक में स्नान से समस्त पापों के नष्ट हो जाने पर देवप्रवर महेश्वर नन्दीगणों के साथ अपने वाहन में महान् पर्वत मंदर पर चले गए।

आयाति त्रिपुरान्तके सह गणैर्ब्रह्मर्षिभिः सप्तभि-
रारोहत्पुलको बभौ गिरिवरः संहृष्टचित्तः क्षणात्।
चक्रे दिव्यफलैर्जलेन शुचिना मूलैश्च कन्दादिभिः
पूजां सर्वगणेश्वरैः सह विभोरद्रिस्त्रिनेत्रस्य तु॥७५॥

अपने गणों और सप्तर्षियों सहित त्रिपुरान्तक शिव के वहाँ आने पर पर्वतराज हिमालय हर्ष से पुलकित और रोमांचित हो गये। उन्होंने दिव्यफलों, पवित्र जल, तथा कन्दादिमूल से त्रिनेत्र स्वामी की समस्त गणों सहित पूजा की।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उमासंभवे
मन्दरगिरिप्रवेशो नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

द्विपञ्चाशोऽध्यायः

(काली को वरदान)

पुलस्त्य उवाच

ततः संपूजितो रुद्रः शैलेन प्रीतिमानभूत्।
सस्मार च महर्षींस्तु अरुन्धत्या समं ततः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— पर्वत के द्वारा संपूजित होने पर शिव प्रसन्न हुये और उन्होंने अरुन्धती सहित (सप्त) महर्षियों को बुलवाया।

ते संस्मृतास्तु ऋषयः शङ्करेण महात्मना।

समाजग्मुर्महाशैलं मन्दरं चारुकन्दरम्॥ २॥

महानुभाव शङ्कर के द्वारा आहूत वे महर्षिगण सुंदर कंदराओं वाले उस महान् पर्वत मंदर पर एकत्रित हो गए।

तानागतान्समीक्ष्यैव देवस्त्रिपुरनाशनः।

अभ्युत्थायाभिपूज्यैतानिदं वचनमब्रवीत्॥ ३॥

उन अभ्यागत महर्षियों को देखकर त्रिपुरनाशक देव शिव ने उठकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया और उनसे इस प्रकार बोले-

धन्योऽयं पर्वतश्रेष्ठः श्लाघ्यः पूज्यश्च दैवतैः।

धूतपापस्तथा जातो भवतां पादपङ्कजैः॥ ४॥

देवताओं के द्वारा पूजनीय यह प्रशंसनीय पर्वतश्रेष्ठ आप सब के आगमन से धन्य हुआ। आप महानुभावों के पदकमलों के स्पर्श से यह सर्वथा पापरहित हो गया है।

स्थीयतां विस्तृते रम्ये गिरिप्रस्थे समे शुभे।

शिलासु पद्मवर्णासु श्लक्ष्णासु च मृदुष्वपि॥ ५॥

इस विशाल, रम्य, समतल, शुभ, पद्मवर्ण, कोमल शिलाओं वाले विस्तृत पर्वत पर आप निवास करें।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ता देवेन शङ्करेण महर्षयः।

सममेव त्वरुन्धत्या विविशुः शैलसानुनि॥ ६॥

पुलस्त्य ने कहा— देव शिव के इस प्रकार कहने पर समस्त महर्षिगण अरुन्धती के साथ पर्वतशिखर पर स्थित हो गए।

उपविष्टेषु ऋषिषु नन्दी देवगणाग्रणीः।

अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य स्थितः प्रयतमानसः॥ ७॥

ऋषियों के बैठने पर देवगणों में अग्रणी नन्दी अर्घ्य आदि से उनकी अभ्यर्चना करके सावधान होकर बैठ गए।

ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्धर्म्यं वाक्यं हितं सुरान्।

आत्मनो यशसो वृद्ध्यै सप्तर्षीन्विनयान्वितान्॥ ८॥

तदनन्तर सुरपति शिव ने अपने यश की वृद्धि करते हुए विनयान्वित सप्तर्षियों से ये धर्मयुक्त एवं देवताओं के लिये हितकारी वचन कहे।

हर उवाच

कश्यपात्रे वारुणेय गाधेय शृणु गौतम।

भरद्वाज शृणुष्व त्वमङ्गिरस्त्वं शृणुष्व च॥ ९॥

ममासीद्दक्षतनुजा प्रिया सा दक्षकोपतः।

उत्ससर्ज्ज सती प्राणान् योगदृष्ट्या पुरा किल॥ १०॥

शिव ने कहा— हे कश्यप! हे अत्रि! हे वसिष्ठ! हे विश्वामित्र! हे गौतम! सुनो, हे भरद्वाज! हे अंगिरा! आप सब सुनिये। दक्षतनया सती मेरी प्रिया थी। प्राचीन समय में दक्ष पर कोप के कारण सती ने योगाग्नि द्वारा अपने प्राणों का उत्सर्जन कर दिया था।

साऽद्य भूयः समुद्भूता शैलराजसुता उमा।

सा मदर्थाय शैलेन्द्रो याच्यतां द्विजसत्तमाः॥ ११॥

वह अब हिमालयकन्या 'उमा' के रूप में पुनः उत्पन्न हुई है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उसे आप पर्वतराज से मेरे लिए मांग दीजिए।

पुलस्त्य उवाच

सप्तर्षयस्त्वेवमुक्ता बाढमित्यब्रुवन्वचः।

ॐ नमः शङ्करायेति प्रोक्त्वा जग्मुर्हिमालयम्॥ १२॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार कहे जाने पर सप्तर्षियों ने 'अच्छा' कहा और 'ओम् नमः शङ्कराय' कहकर वे हिमालय के पास जा पहुँचे।

ततोऽप्यरुन्धतीं शर्वः प्राह गच्छस्व सुन्दरि।

पुरन्ध्र्यो हि पुरन्ध्रीणां गतिं धर्मस्य वै विदुः॥ १३॥

तदनन्तर शङ्कर ने अरुन्धती से कहा— हे सुन्दरी! आप जाइये। आप जैसी समझदार और अनुभवी महिलाएँ निश्चय ही धर्म के उचित व्यवहार को जानती हैं।

इत्येवमुक्ता दुर्लङ्घ्यं लोकाचारं त्वरुन्धती।

नमस्ते रुद्र इत्युक्त्वा जगाम पतिना सह॥ १४॥

इस प्रकार कहे जाने पर लोकव्यवहार को दुर्लङ्घ्य जानकर उमा 'नमस्ते रुद्र' कह कर अपने पति के साथ चली गई।

गत्वा हिमाद्रिशिखरमोषधिप्रस्थमेव च।

ददृशुः शैलराजस्य पुरीं सुरपुरीमिव॥ १५॥

हिमाद्रि के शिखर ओषधिप्रस्थ पर जाकर उन्होंने देवताओं की नगरी के समान हिमालयपुरी को देखा।

ततः संपूज्यमानास्ते शैलयोषिद्भिरादरात्।
सुनाभादिभिरव्यग्रैः पूज्यमानास्तु पर्वतैः॥ १६॥

पर्वतांगनाओं ने उनका आदरपूर्वक पूजन किया। सुनाभादि पर्वतों ने सावधानी पूर्वक उनकी अभ्यर्चना की।

गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैस्ततपुरस्सरैः।
विविशुर्भुवनं रम्यं हिमाद्रेर्हाटकोज्ज्वलम्॥ १७॥

गंधर्व, किन्नर तथा यक्ष आदि के द्वारा निर्दिष्ट होकर वे हिमालय के रम्य और उज्ज्वल भवन में प्रविष्ट हुए।

ततः सर्वे महात्मानस्तपसा धौतकल्मषाः।
समासाद्य महाद्वारं संतस्थुर्द्वाःस्थकारणात्॥ १८॥

तदनन्तर तपस्या से नष्ट कल्मष वाले वे महात्मागण भवन के मुख्य द्वार पर द्वारपाल के कारण ठहर गए।

ततस्तु त्वरितोऽभ्यागाद् द्वाःस्थोऽद्रिर्गन्धमादनः।
धारयन्वै करे दण्डं पद्मरागमयं महत्॥ १९॥

तदनन्तर गंधमादन नामक द्वारपालपर्वत शीघ्रता से आया। उसके हाथ में पद्मरागमय विशाल दण्ड था।

ततस्तमूचुर्मुनयो गत्वा शैलपतिं शुभम्।
निवेदयास्मान् संप्राप्तान् महत्कार्यार्थिनो वयम्॥ २०॥

ऋषियों ने उस गंधमादन से कहा— जाकर श्रीमान् शैलराज से हमारे आगमन के विषय में निवेदन करो। हम अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य से आए हैं।

इत्येवमुक्तः शैलेन्द्रो ऋषिभिर्गन्धमादनः।
जगाम तत्र यत्रास्ते शैलराजोऽद्रिभिर्वृतः॥ २१॥

ऋषियों के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर गंधमादन शैलेन्द्र के पास गया। वहाँ अनेक पर्वतों से घिरे हुए शैलराज हिमालय स्थित थे।

निषण्णो भुवि जानुभ्यां दत्त्वा हस्तौ मुखे गिरिः।
दण्डं निक्षिप्य कक्षायामिदं वचनमब्रवीत्॥ २२॥

गंधमादन घुटनों से भूमि पर बैठकर, मुख पर हाथ रखकर तथा दण्ड को बगल में दबाकर अत्यंत आदरपूर्वक इस प्रकार बोला-

गन्धमादन उवाच

इमे हि ऋषयः प्राप्ताः शैलराज तवार्थिनः।
द्वारे स्थिताः कार्यिणस्ते तव दर्शनलालसाः॥ २३॥

गन्धमादन ने कहा—हे शैलराज! ये ऋषिगण आपसे कुछ याचना करने के उद्देश्य से यहाँ आए हैं और आपके दर्शनों के इच्छा से द्वार पर उपस्थित हैं।

पुलस्त्य उवाच

द्वाःस्थवाक्यं समाकर्ण्य समुत्थायाचलेश्वरः।
स्वयमभ्यागमद्वारि समादायार्घ्यमुत्तमम्॥ २४॥

पुलस्त्य ने कहा—द्वारपाल के वचनों को सुनकर अचलेश्वर हिमालय उठकर तथा उत्तम अर्घ्यादि लेकर स्वयं द्वार पर आ पहुँचे।

तानर्च्यार्घ्यादिना शैलः समानीय सभातलम्।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः कृतासनपरिग्रहान्॥ २५॥

पर्वतराज ने अर्घ्यादि से उनकी अभ्यर्चना की और उन्हें अपने सभागार में ले आए। तदनन्तर वाक्यविद् हिमालय उचित आसन ग्रहण करने वाले उन महर्षियों से इस प्रकार बोले-

हिमवानुवाच-

अनभ्रवृष्टिः किमियमुताहोऽकुसुमं फलम्।
अप्रतर्क्यमचिन्त्यं च भवदागमनं त्विदम्॥ २६॥

हिमालय ने कहा—जिस प्रकार बादलों के बिना बरसात तथा फूल के बिना फल आश्चर्यजनक है, उसी प्रकार आपका यह अचानक आगमन हमारे लिए आश्चर्यजनक है।

अद्यप्रभृति धन्योऽस्मि शैलराडद्य सत्तमाः।
संशुद्धदेहोऽस्म्यद्यैव यद्भवन्तो ममाजिरम्॥ २७॥

आज से मैं धन्य हो गया, आज से ही मेरा वस्तुतः पर्वतराज होना सार्थक हो गया। हे संशुद्धात्मा! मैं आज से पूर्ण एवं पवित्र देह वाला हो गया हूँ, जो आप सब मेरे प्रांगण में पधारे हैं।

आत्मसंसर्गसंशुद्धं कृतवन्तो द्विजोत्तमाः।
दृष्टिपूतं पदाक्रान्तं तीर्थं सारस्वतं यथा॥ २८॥

हे द्विजोत्तम! आप सबने अपने संसर्ग से मुझे उसी प्रकार शुद्ध कर दिया है जिस प्रकार पैदल जाने पर सारस्वत तीर्थ दर्शनमात्र से पवित्र कर देता है।

दासोऽहं भवतां विप्राः कृतपुण्यश्च साम्प्रतम्।
येनार्थिनो हि ते यूयं तन्माऽनुज्ञातुमर्हथ॥ २९॥

हे ब्राह्मणों! अब मैं आपका दास हूँ। मैं कृतकृत्य हो गया। जिस कारण से आपका आगमन हुआ है, उसकी मुझे आज्ञा दीजिए।

सदारोऽहं समं पुत्रैर्भृत्यैर्नप्तृभिरव्ययाः।
किंकरोऽस्मि स्थितो युष्मदाज्ञाकारी तदुच्यताम्॥ ३०॥

मैं अपनी पत्नी, पुत्रों, पौत्रों तथा सेवकों सहित आपका दास हूँ; तथा आज्ञाकारी होकर आपके सम्मुख खड़ा हूँ; कृपया आप आज्ञा करें।

पुलस्त्य उवाच

शैलराजवचः श्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः।
ऊचुरङ्गिरसं वृद्धं कार्यमद्रौ निवेदय॥ ३१॥

पुलस्त्य ने कहा— शैलराज के वचन को सुनकर उत्तमव्रतधारी ऋषियों ने वृद्ध ऋषि अंगिरा से कहा— आप हिमालय से अपने आगमन के कार्य के विषय में निवेदन करें।

इत्येवं चोदितः सर्वैर्ऋषिभिः कश्यपादिभिः।
प्रत्युवाच परं वाक्यं गिरिराजं तमङ्गिराः॥ ३२॥

कश्यप आदि समस्त ऋषियों के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ऋषि अंगिरा ने पर्वतराज से निम्न उत्तम वचन कहे—

अङ्गिरा उवाच

श्रूयतां पर्वतश्रेष्ठ येन कार्येण वै वयम्।
समागतास्त्वत्सदनमरुन्धत्या समं गिरे॥ ३३॥

अंगिरा ने कहा— हे पर्वतराज! जिस कारण से हम सब अरुन्धती के साथ आपके भवन में आए हैं वह सुनिये।

योऽसौ महात्मा सर्वात्मा दक्षयज्ञक्षयंकरः।
शङ्करः शूलधृक् शर्वस्त्रिनेत्रो वृषवाहनः॥ ३४॥
जीमूतकेतुः शत्रुघ्नो यज्ञभोक्ता स्वयं प्रभुः।
यमीश्वरं वदन्त्येके शिवं स्थाणुं भवं हरम्॥ ३५॥
भीममुग्रं महेशानं महादेवं पशोः पतिम्।
वयं तेन प्रेपिताः स्मस्त्वत्सकाशं गिरीश्वर॥ ३६॥

हे गिरीश्वर! जो महात्मा, सर्वात्मा, दक्ष के यज्ञ का भ्रंश करने वाले, शूलधारी, शर्व, त्रिनेत्र, वृषवाहन, शङ्कर, अंभ्र (बादल) केतु हैं, जो शत्रुघ्न, यज्ञभोंक्ता, स्वयंप्रभु हैं; जिन्हें लोग ईश्वर, शिव, स्थाणु, भव, हर, भीम, उग्र, महादेव तथा पशुपति कहते हैं- उन शङ्कर ने ही हमें आपके पास भेजा है।

इयं या त्वत्सुता काली सर्वलोकेषु सुन्दरी।
तां प्रार्थयति देवेशस्तां भवान्दातुमर्हति॥ ३७॥

यह जो आपकी कन्या काली, समस्त लोकों में अनुपम सौन्दर्यशालिनी है, देवेश शिव उसे अपने लिये चाहते हैं; उसे आप उन्हें दे दीजिए।

स एव धन्यो हि पिता यस्य पुत्री शुभं पतिम्।
रूपाभिजनसंपत्त्या प्राप्नोति गिरिसत्तम॥ ३८॥

हे गिरिश्रेष्ठ हिमालय! वह पिता निश्चय ही धन्य होता है जिसकी पुत्री रूप, कुल और वैभव की दृष्टि से उत्तम पति को प्राप्त करती है।

यावन्तो जङ्गमागम्या भूताः शैल चतुर्विधाः।
तेषां माता त्वियं देवी यतः प्रोक्तः पिता हरः॥ ३९॥

हे हिमालय! जितने भी चतुर्विध स्थावर और जंगम प्राणी हैं यह देवी उनकी माता है; क्योंकि 'हर' उनके पिता कहे गए हैं।

प्रणम्य शङ्करं देवाः प्रणमन्तु सुतां तव।
कुरुष्व पादं शत्रूणां मूर्ध्नि भस्मपरिप्लुतम्॥ ४०॥

समस्त देवतागण शिव को प्रणाम करने के पश्चात् आपकी पुत्री को प्रणाम करते हुये कहते हैं-(हे देवी!) अपने भस्मपरिप्लुत चरण को शत्रु के सिर पर रखें।

याचितारो वयं शर्वो वरो दाता त्वमप्युमा।
वधूः सर्वजगन्माता कुरु यच्छ्रेयसे तव॥ ४१॥

हम याचक है, 'शिव' वरदाता हैं तथा आप जगत् की माता 'उमा' वधू हैं, आप को जो कल्याणकारी प्रतीत हो वह कीजिए।

पुलस्त्य उवाच

तद्वचोऽङ्गिरसः श्रुत्वा काली तस्थावधोमुखी।
हर्षमागतय सहसा पुनर्दैन्यमुपागता॥ ४२॥

पुलस्त्य ने कहा—अंगिरा ऋषि के वचन को सुनकर काली नीचे मुख करके बैठी रही। पहले तो वह अत्यंत प्रसन्न हुई परंतु फिर तत्काल ही उदास हो गई।

ततः शैलपतिः प्राह पर्वतं गन्धमादनम्।
गच्छ शैलानुपामन्त्र्य सर्वानागन्तुमर्हसि॥४३॥

तब पर्वतराज हिमालय ने गंधमादन से कहा— जाओ! समस्त पर्वतों को बुलाकर लाओ।

ततः शीघ्रतरः शैलो गृहाद्गृहमगाज्जवी।
मेर्वादीन् पर्वतश्रेष्ठानाजुहाव समन्ततः॥४४॥

तदनन्तर पर्वत गंधमादन एक घर से दूसरे घर तक अत्यंत वेगपूर्वक गया और चारों ओर से 'मेरु' आदि श्रेष्ठ पर्वतों को बुला कर ले आया।

तेऽप्याजग्मुस्त्वरावन्तः कार्यं मत्वा महत्तदा।
विविशुर्विस्मयाविष्टाः सौवर्णेष्वासनेषु ते॥४५॥

वे सब कार्य को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए अत्यंत शीघ्र आ पहुँचे और विस्मयाविष्ट होते हुये स्वर्णासनों पर विराजमान हो गए।

उदयो हेमकूटश्च रम्यको मन्दरस्तथा।
उद्दालको वारुणश्च वराहो गरुडासनः॥४६॥
शुक्तिमान् वेगसानुश्च दृढशृङ्गोऽथ शृङ्गवान्।
चित्रकूटस्त्रिकूटश्च तथा मन्दरकाचलः॥४७॥
विन्ध्यश्च मलयश्चैव पारियात्रोऽथ दुर्दरः।
कैलासाद्रिर्महेन्द्रश्च निषधोऽञ्जनपर्वतः॥४८॥
एते प्रधाना गिरस्यथाऽन्ये क्षुद्रपर्वताः।
उपविष्टाः सभायां वै प्रणिपत्य ऋषींश्च तान्॥४९॥

उदय, हेमकूट, रम्यक, मन्दर, उद्दालक, वारुण, वराह, गरुड़ासन, शुक्तिमान्, वेगसानु, दृढ़शृंग, शृंगवान्, चित्रकूट, त्रिकूट, एवं मन्दरक पर्वत, विन्ध्य, मलय, वारियात्र, दुर्दर, कैलाश, महेन्द्र, निषध एवं अंजन ये सब प्रमुख पर्वत एवं अन्य गौण पर्वत उन ऋषियों को प्रणाम करके सभा में बैठ गए।

ततो गिरीशः स्वां भार्यां मेनामाहूतवांश्च सः।
समागच्छत कल्याणी समं पुत्रेण भामिनी॥५०॥

तदनन्तर पर्वतराज हिमालय ने अपनी पत्नी मेना को बुलवाया। वह कल्याणी भामिनी अपने पुत्र सहित वहाँ आईं।

साऽभिवन्द्य ऋषीणां च चरणांश्च तपस्विनी।
सर्वान्ज्ञातीन्समाभाष्य विवेश ससुता ततः॥५१॥

उस पुण्यशालिनी ने समस्त ऋषियों के चरणों में नमस्कार करने तथा समस्त संबंधियों से संबोधित होकर अपनी पुत्री सहित सभा में प्रवेश किया।

ततोऽद्रिषु महाशैल उपविष्टेषु नारद।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वानाभाष्य सुस्वरम्॥५२॥

हे नारद! समस्त पर्वतों के आसीन होने पर वाचस्पति महाशैल (हिमालय) ने सबको संबोधित करके अत्यंत मधुर स्वर में कहा—

हिमवानुवाच

इमे सप्तर्षयः पुण्या याचितारः सुतां मम।
महेश्वरार्थं कन्यां तु तद्यावेद्यं भवत्सु वै॥५३॥

हिमवान ने कहा— मुझे आप सब से यह निवेदन करना है कि ये पवित्र सप्तर्षि मेरी कन्या 'उमा' को 'महेश्वर शिव' के निमित्त माँग रहे हैं।

तद्वदध्वं यथा प्रज्ञं ज्ञातयो यूयमेव मे।
नोल्लङ्घ्य युष्मान्दास्यामि तत्क्षमं वक्तुमर्हथ॥५४॥

ऐसे में आप सब को जो उचित लगे वह कहें। आप सब मेरे संबंधी हैं। मैं आप के विचार का उल्लंघन करके उन्हें अपनी कन्या नहीं दूँगा। इसलिए आप सब अपना विचार बताएँ।

पुलस्त्य उवाच

हिमवद्वचनं श्रुत्वा मेर्वाद्याः स्थावरोत्तमाः।
सर्व एवाब्रुवन् वाक्यं स्थिताः स्वेष्वासनेषु ते॥५५॥

पुलस्त्य ने कहा— हिमालय के वचन को सुनकर, पर्वतश्रेष्ठ मेरु आदि ने अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए ही कहा—

याचिताश्च मुनयो वरस्त्रिपुरहा हरः।
दीयतां शैल कालीयं जामाताऽभिमतो हि नः॥५६॥

जब सप्तर्षि याचक हैं तथा त्रिपुरनाशक हर वर हैं, तो आपको अपनी पुत्री काली उन्हें दे देनी चाहिये। जामाता के रूप में हर से हम सब सहमत हैं।

मेनाप्यथाह भर्त्तारं श्रृणु शैलेन्द्र मद्वचः।
पितॄनाराध्य दवैस्तैर्दत्ताऽनेनैव हेतुना॥५७॥

मेना ने भी अपने पति से कहा— हे शैलेन्द्र! मेरे वचनों को सुनिये! वस्तुतः देवताओं ने पितरों की आराधना करके इसी उद्देश्य से इसे हमें दिया है।

यस्त्वस्यां भूतपतिना पुत्रो जातो भविष्यति।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा॥५८॥

भूतपति शिव के द्वारा इस 'उमा' से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह निश्चय ही दैत्येन्द्र 'तारक' का वध करेगा।

इत्येवं मेनया प्रोक्तः शैलैः शैलेश्वरः सुताम्।
प्रोवाच पुत्रि दत्ताऽसि शर्वाय त्वं मयाऽधुना॥५९॥
ऋषीनुवाच कालीयं मम पुत्री तपोधनाः।
प्रणामं शङ्करवधूर्भक्तिनम्रा करोति वः॥६०॥

पर्वतों एवं मेना के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पर्वतराज ने अपनी पुत्री से कहा— हे पुत्री! अब से मैं तुम्हें शिव को अर्पण करता हूँ।

ततोऽप्यरुन्धती कालीमङ्कमारोप्य चाटुकैः।
विलज्जमानामाश्वास्य हरनामोदितैः शुभैः॥६१॥

तदनन्तर अरुन्धती सलज्ज काली को अपनी अंक में लेकर प्रिय और मधुर 'शिव' नाम से युक्त वचनों से प्रसन्न करने लगी।

ततः सप्तर्षयः प्रोचुः शैलराज निशामय।
जामित्रगुणसंयुक्तां तिथिं पुण्यां सुमङ्गलाम्॥६२॥
उत्तराफाल्गुनीयोगं तृतीयेऽह्नि हिमांशुमान्।
गमिष्यति च तत्रोक्तो मुहूर्तो मैत्रनामकः॥६३॥
तस्यां तिथ्यां हरः पाणिं ग्रहीष्यति समन्त्रकम्।
तव पुत्र्या वयं यामस्तदनुज्ञातुमर्हसि॥६४॥

तदनन्तर सप्तर्षियों ने कहा— हे शैलराज! सुनिये। जामित्रगुणों से युक्त तिथि पुण्य और मांगलिक है। फाल्गुन मास के उत्तर (शुक्ल पक्ष) में तृतीय दिवस पर मैत्र नामक मुहुर्त्त होता है, ऐसा कहा गया है। हे हिमांशुमान्! उस तिथि को शिव मंत्रों के साथ तुम्हारी पुत्री का पाणिग्रहण करेंगें। अब हम चलते हैं, आप हमें आज्ञा दें।

ततः संपूज्य विधिना फलमूलादिभिः शुभैः।
विसर्जयामास शनैः शैलराड् ऋषिपुंगवान्॥६५॥

इसके पश्चात् पर्वतराज ने सुन्दर फलमूलों से विधिपूर्वक सत्कार करके उन श्रेष्ठ ऋषियों को विदा किया।

तेऽप्याजग्मुर्महावेगात्त्वाक्रम्य मरुदालयम्।
आसाद्य मन्दरगिरिं भूयोऽपश्यन्त शङ्करम्॥६६॥

वे सब आकाशमार्ग से अत्यंत शीघ्रता के साथ मन्दगिरि पर पहुँचकर पुनः शिव की वंदना करने लगे।

प्रणम्योचुर्महेशानं भवान् भर्ताऽद्रिजा वधूः।
सब्रह्मकास्त्रयो लोका द्रक्ष्यन्ति घनवाहनम्॥६७॥

उन्होंने शिव से प्रणाम करके कहा— आप वर तथा पर्वतपुत्री उमा वधू होंगी। ब्रह्मा सहित तीनों लोक आपका विवाह देखेंगे।

ततो महेश्वरः प्रीतो मुनीन् सर्वाननुक्रमात्।
पूजयामास विधिना अरुन्धत्या समं हरः॥६८॥

तदनन्तर शिव ने प्रसन्न होकर अरुन्धतीसहित समस्त मुनियों की क्रमशः विधिपूर्वक अर्चना की।

ततः संपूजिता जग्मुः सुराणां मन्त्रणाय ते।
तेऽप्याजग्मुर्हरं द्रष्टुं ब्रह्मविष्ण्विन्द्रभास्कराः॥६९॥

इस प्रकार शिव द्वारा संपूजित वे ऋषिगण देवताओं से मंत्रणा करने के लिए चले गए। इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य भी शिव के दर्शनों के लिए आ पहुँचे।

गेहं ततोऽभ्येत्य महेश्वरस्य
कृतप्रणामा विविशुर्महर्षे।
सस्मार नन्दिप्रमुखांश्च सर्वा-
नभ्येत्य ते वन्द्य हरं निषण्णाः॥६८॥

हे महर्षि! महेश्वर के भवन में पहुँचकर वे सब प्रणाम करके वहाँ बैठ गए। तब शिव ने नन्दी इत्यादि सब को बुलाया। वे सब शिव की वंदना करके बैठ गए।

देवैर्गणैश्चापि वृतो गिरीशः
स शोभते मुक्तजटाग्रभारः।
यथा वने सर्ज्जकदम्बमध्ये
प्ररोहमूलोऽथ वनस्पतिर्वै॥६९॥

देवताओं और गणों से घिरे हुए तथा अपनी जटाओं को खोलकर बैठे हुये शिव उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार सर्ज और कदम्ब के मध्य विशाल जटाओं वाला वृक्ष सुशोभित होता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उमासंभवे
गौरीविवाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

(गोरी विवाह)

पुलस्त्य उवाच

समागतान्सुरान्दृष्ट्वा नन्दिराख्यातवान्विभोः।
अथोत्थाय हरिं भक्त्या परिष्वज्य न्यपीडयत्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— समागत देवताओं को देखकर नन्दी ने (शिव) स्वामी से यह वृत्तान्त निवेदित किया। शङ्कर ने उठ कर विष्णु को अत्यंत भक्ति से गले लगाया।

ब्रह्माणं शिरसा नत्वा समाभाष्य शतक्रतुम्।
आलोक्यान्यान् सुरगणान् संभावयत् स शङ्करः॥२॥

ब्रह्मा को सिर से नमस्कार करके, इन्द्र का सम्मान-पूर्वक अभिवादन करके तथा अन्य देवताओं पर दृष्टिपात करके शङ्कर ने सब का विधिवत् आदर-सत्कार किया।

गणाश्च जय देवेति वीरभद्रपुरोगमाः।
शैवाः पाशुपताद्याश्च विविशुर्मन्दराचलम्॥३॥

वीरभद्र के नेतृत्व में चलने वाले शैव तथा पाशुपत आदि गणों ने 'देव की विजय हो' कहते हुए मंदराचल में प्रवेश किया।

ततस्तस्मान्महाशैलं कैलासं सह दैवतैः।
जगाम भगवान् शर्वः कर्तुं वैवाहिकं विधिम्॥४॥

तदनन्तर भगवान् शिव वहाँ से समस्त देवों सहित वैवाहिक रीतियाँ सम्पन्न करने के लिए महाशैल कैलास पर जा पहुँचे।

ततस्तस्मिन् महाशैले देवमाताऽदितिः शुभा।
सुरभिः सुरमा चान्याश्चक्रुर्मण्डनमाकुलाः॥५॥

तदनन्तर उस पर्वत पर देवमाता कल्याणी अदिति, सुरभि और सुरसा तथा अन्य स्त्रियाँ उनके शृंगार में व्यस्त हो गईं।

महास्थिशेखरी चारुरोचनातिलको हरः।
सिंहाजिनी चालिनीलभुजंगकृतकुण्डलः॥६॥
महाहिरत्नवलयो हारकेयूरनूपुरः।
समुन्नतजटाभारो वृषभस्थो विराजते॥७॥

शिव ने महा अस्थि की मुकुट, चारुरोचन का तिलक सिंहचर्म का वस्त्र, कृष्णमधुमक्खी के समान काले सर्प के कुण्डल, महासर्पों की मणियों से सुसज्जित कंगन, हार और नूपुर धारण किये। समुन्नत जटाओं से सुसज्जित एवं वृषभ पर स्थित शिव बहुत सुशोभित हो रहे थे।

तस्याग्रतो गणाः स्वैः स्वैरारूढा यान्ति वाहनैः।
देवाश्च पृष्ठतो जग्मुर्हुताशनपुरोगमाः॥८॥

उनके आगे गण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो कर चल रहे थे तथा उनके पीछे अग्नि के नेतृत्व में समस्त देवतागण जा रहे थे।

वैनतेयं समारूढः सह लक्ष्म्या जनार्दनः।
प्र याति देवपार्श्वस्थो हंसेन च पितामहः॥९॥

लक्ष्मी के साथ जनार्दन गरुड़ पर सवार होकर चल रहे थे तथा शिव के बराबर में ब्रह्मा हंस पर आसीन होकर चल रहे थे।

गजाधिरूढो देवेन्द्रश्छत्रं शुक्लपटं विभुः।
धारयामास विततं शच्या सह सहस्रदृक्॥१०॥

शची के साथ सहस्र नेत्रों वाले विभु देवेन्द्र शुक्लपट का छत्र धारण किये हुए ऐरावत हाथी पर सवार थे।

यमुना सरितां श्रेष्ठा बालव्यजनमुत्तमम्।
श्वेतं प्रगृह्य हस्तेन कच्छपे संस्थिता ययौ॥११॥

सरिताओं में श्रेष्ठ यमुना उत्तम श्वेत बालव्यजन को हाथ में धारण किये हुए कछुए पर स्थित होकर चल रही थीं।

हंसकुन्देन्दुसङ्काशं बालव्यजनमुत्तमम्।
सरस्वती सरिच्छ्रेष्ठा गजारूढा समादधे॥१२॥

हंस तथा श्वेतकमल के सदृश श्वेत दुपट्टा को धारण करके नदीश्रेष्ठ सरस्वती गज पर आरूढ़ होकर चल रही थी।

ऋतवः षट् समादाय कुसुमं गन्धसंयुतम्।
पञ्चवर्णं महेशानं जग्मुस्ते कामचारिणः॥१३॥

इच्छाचारी षड्ऋतुएँ सुगंधित पंचवर्ण के पुष्प को लेकर महेश्वर के सामने उपस्थित हुई।

मत्तमैरावतनिभं गजमारुह्य वेगवान्।
अनुलेपनमादाय ययौ तत्र पृथूदकः॥ १४॥

वेगवान् पृथूदक ऐरावत के समान सुशोभित मदमस्त गज पर आरूढ़ होकर अनुलेपन लेकर वहाँ आए।

गन्धर्वास्तुम्बरुमुखा गायन्तो मधुरस्वरम्।
अनुजग्मुर्महादेवं वादयन्तश्च किंनराः॥ १५॥

तुम्बरुमुख वाले गंधर्व मधुर स्वर में गान करते हुए तथा विभिन्न वाद्य बजाते हुए किन्नर महादेव के पीछे चलने लगे।

नृत्यन्त्योऽप्सरसश्चैव स्तुवन्तो मुनयश्च तम्।
गन्धर्वा यान्ति देवेशं त्रिणेत्रं शूलपाणिनम्॥ १६॥

नृत्य करती हुई अप्सराएँ तथा उनकी स्तुति करते हुए मुनिगण, गंधर्व, देवेश, त्रिनेत्र, शूलपाणि शिव के पीछे चल रहे थे।

एकादश तथा कोट्यो रुद्राणां तत्र वै ययुः।
द्वादशैवादितेयानामष्टौ कोट्यो वसूनपि॥ १७॥
सप्तषष्टिस्तथा कोट्यो गणानामृषिसत्तम।
चतुर्विंशत्तथा जग्मुर्ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्॥ १८॥

ग्यारह करोड़ रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, सड़सठ गण तथा चालीस अत्यंत तेजस्वी ऋषिगण शिव का अनुगमन कर रहे थे।

असंख्यातानि यूथानि यक्षकिन्नररक्षसाम्।
अनुजग्मुर्महेशानं विवाहाय समाकुलाः॥ १९॥

यक्ष, किन्नर और राक्षसों के असंख्य समूह विवाह के लिए एकत्रित होकर शिव के पीछे चलने लगे।

ततः क्षणेन देवेशः क्ष्माधराधिपतेस्तलम्।
संप्राप्तस्त्वागमन् शैलाः कुञ्जरस्थाः समन्ततः॥ २०॥

क्षणमात्र में ही देवेश शिव पर्वतराज हिमालय के द्वार पर जा पहुँचे। चारों ओर से हाथी पर स्थित हुये पर्वत उनके स्वागत के लिए उपस्थित हो गए।

ततो ननाम भगवांस्त्रिणेत्रः स्थावराधिपम्।
शैलाः प्रणेमुरीशानं ततोऽसौ मुदितोऽभवत्॥ २१॥

तदनन्तर त्रिनेत्र भगवान् शिव ने नगाधिपति हिमालय को नमस्कार किया और समस्त पर्वतों ने भगवान् शिव को प्रणाम किया जिससे शिव अत्यंत प्रसन्न हुए।

समं सुरैः पार्षदैश्च विवेश वृषकेतनः।
नन्दिना दर्शिते मार्गे शैलराजपुरं महत्॥ २२॥

वृषकेतन शिव सुरों और पार्षदों के साथ नंदी के द्वारा मार्ग दर्शन किये जाते हुए विशाल शैलराजपुर में प्रविष्ट हुए।

जीमूतकेतुरायात इत्येवं नगरस्त्रियः।
निजं कर्म परित्यज्य दर्शनव्यापृताभवन्॥ २३॥

नगर की स्त्रियाँ 'जीमूतकेतु आ पहुँचे' यह कहती हुई अपने-अपने कामों को छोड़कर उन्हें देखने के लिए चारों ओर एकत्रित हो गयीं।

माल्यर्द्धमन्या चादाय करेणैकेन भामिनी।
केशपाशं द्वितीयेन शङ्कराभिमुखी गता॥ २४॥

उनमें से एक स्त्री एक हाथ में अधगुंथी माला लेकर तथा दूसरे हाथ से अपने बालों को संभालती हुई शङ्कर की ओर चल पड़ी।

अन्याऽलक्तकरागाढ्यं पादं कृत्वाकुलेक्षणा।
अनलक्तकमेकं हि हरं द्रष्टुमुपागता॥ २५॥

एक अन्य व्याकुलनेत्रा स्त्री एक पैर अलतासे अनुरंजित तथा दूसरे पैर को अननुरंजित ही लिए शिव के दर्शन के लिए दौड़ पड़ी।

एकेनाक्ष्णाऽञ्जितेनैव श्रुत्वा भीममुपागतम्।
साञ्जनां च प्रगृह्यान्या शलाकां सुष्ठु धावति॥ २६॥

'शिव आ पहुँचे' यह सुन कर एक अन्य स्त्री एक आंख में काजल लगाए हुए तथा (दूसरी आंख में काजल लगाने के लिए) सुरमे से भरी शलाका हाथ में लेकर दौड़ पड़ी।

अन्या सरसनं वासः पाणिनादाय सुन्दरी।
उन्मत्तेवागमन्नग्ना हरदर्शनलालसा॥ २७॥

एक अन्य सुन्दरी शिव के दर्शनों की लालसा से उन्मत्त-सी होकर मेखला और वस्त्रों को हाथ में ही पकड़े हुये नग्नावस्था में ही दौड़ पड़ी।

अन्याऽतिक्रान्तमीशानं श्रुत्वा स्तनभरालसा।
अनिन्दत रुषा बाला यौवनं स्वं कृशोदरी॥ २८॥

एक अन्य स्त्री 'शिव आकर चले गए हैं' ऐसा सुनकर क्रोध में अपने यौवन की निंदा करने लगी।

इत्थं स नागरस्त्रीणां क्षोभं संजनयन् हरः।
जगाम वृषभारूढो दिव्यं श्वशुरमन्दिरम्॥ २९॥

इस प्रकार से वर 'शिव' स्त्रियों के मनों में विभिन्न उद्भावनाओं को जगाते हुए वृषभारूढ होकर अपने श्वसुर हिमालय के भवन में पहुँचे।

ततः प्रविष्टं प्रसमीक्ष्य शंभुं
शैलेन्द्रवेश्मन्यबला ब्रुवन्ति।
स्थाने तपो दुश्चरमम्बिकाया-
श्चीर्णं महानेष सुरस्तु शंभुः॥ ३०॥

शैलेन्द्र के भवन में प्रविष्ट शंभु को देख के स्त्रियाँ कहने लगीं —निश्चय ही अम्बिका ने उचित ही इतना दुष्कर तप किया है, शंभु वास्तव में महान् देव हैं।

स एष येनाङ्गमनङ्गतां कृतं
कन्दर्पनाम्नः कुसुमायुधस्य।
क्रतोः क्षयी दक्षविनाशकर्त्ता
भगाक्षिहा शूलधरः पिनाकी॥ ३१॥

यह वही हैं जिन्होंने कुसुमों के आयुध वाले कन्दर्प नामक अङ्ग को अनङ्ग बना दिया था, जो पिनाकधारी तथा त्रिशूलधारी हैं, जिन्होंने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर उसका नाश कर दिया था और जिन्होंने सूर्य की आंख का विनाश कर दिया था।

नमो नमः शङ्कर शूलपाणे
मृगारिचर्माम्बर कालशत्रो।
महाहिहाराङ्गितकुण्डलाय
नमो नमः पार्वतिवल्लभाय॥ ३२॥

व्याघ्रचर्मधारी, कालजयी, शूलपाणि शङ्कर को पुनः-पुनः नमस्कार है। महान् सर्प के सुन्दर कुण्डल और माला धारण करने वाले पार्वतीवल्लभ शिव को पुनः-पुनः नमस्कार है।

इत्थं संस्तूयमानः सुरपतिविधृतेनातपत्रेण शंभुः
सिद्धैर्वन्द्यः सयक्षैरहिकृतवलयी चारुभस्मोपलिप्तः।
अग्रस्थेनाग्रजेन प्रमुदितमनसा विष्णुना चानुगेन
वैवाहीं मङ्गलाढ्यां हुतवहमुदितामारुरोहाथ वेदीम्॥

इस प्रकार संस्तूयमान शंभु प्रज्वलित अग्नि से पवित्र एवं मांगलिक विवाह वेदी पर आए। उनके सिर पर इन्द्र ने छत्र से छाया की हुई थी। सिद्ध और यक्ष उनकी निरन्तर स्तुति कर रहे थे। उन्होंने सर्पो के कंकण धारण किये हुए थे। चारु भस्म का अनुलेपन किया हुआ था। मुदित मन वाले ब्रह्मा उनके आगे तथा विष्णु उनके पीछे चल रहे थे।

आयाति त्रिपुरान्तके सहचरैः सार्धं च सप्तर्षिभि
र्व्यग्रोऽभूद्गिरिराजवेश्मनि जनः काल्याः समालंकृतौ।
व्याकुल्यं समुपागताश्च गिरयः पूजादिना देवताः
प्रायो व्याकुलिता भवन्ति सुहृदः कन्याविवाहोत्सुकाः॥

त्रिपुरान्तक शिव अपने सहचरों और सप्तर्षियों के साथ जैसे ही वहाँ आए वैसे ही वहाँ की स्त्रियाँ 'काली' के शृंगार में और भी अधिक व्यग्रता से व्यस्त हो गयीं तथा समस्त पर्वतगण देवताओं की पूजा-सत्कार में सायास व्यस्त हो गए। कन्या के विवाह पर सुहृद्गण तथा संबधी लोग प्रायः व्याकुल और उत्सुक हो ही जाते हैं।

प्रसाध्य देवीं गिरिजां ततः स्त्रियो
दुकूलशुक्लाभिवृताङ्गयष्टिकाम्।
भ्रात्रा सुनाभेन तदोत्सवे कृते
सा शङ्कराभ्याशमथोपपादिता॥ ३५॥

स्त्रियों के द्वारा शृंगार-प्रसाधन किये जाने के उपरांत शुभ्र रेशमी वस्त्र में परिवेष्टित गिरिजा को उनका भ्राता सुनाभ शङ्कर के समीप ले आया। वहाँ उन्होंने वैवाहिक विधियाँ और रीतियाँ सम्पन्न की।

ततः शुभे हर्म्यतले हिरण्मये
स्थिताः सुराः शङ्करकालिचेष्टितम्।
पश्यन्ति देवोऽपि समं कृशाङ्ग्या
लोकानुजुष्टं पदमाससाद॥ ३६॥

तदनन्तर शुभ, उज्ज्वल तथा स्वर्णिम प्रासाद में स्थित समस्त देवगण शङ्कर और काली की वैवाहिक विधियों को देखने लगे। वहाँ कृशाङ्गी पार्वती के साथ शिव आवश्यक एवं प्रचलित वैवाहिक रीतियाँ सम्पन्न करने लगे।

यत्र क्रीडा विचित्राः सुकुसुमतरवो वारिणो बिन्दुपातै-
र्गन्धाढ्यैर्गन्धचूर्णैः प्रविरलमवनौ गुण्ठितौ गुण्डिकायाम्।
मुक्तादामैः प्रकामं हरगिरितनया क्रीडनार्थं तदाऽघ्नत्
पश्चात् सिन्दूरपुञ्जैरविरतविततैश्चक्रतुः क्ष्मां सुरक्ताम्॥ ३७

जहाँ सुन्दर पुष्पों से युक्त वृक्षों से सुशोभित भूमि के घेरे में क्रीडा करते हुए शिव और पार्वती सुगन्धित जलबिन्दुओं और गन्धचूर्णों से एक दूसरे पर अविरल वर्षा करने लगे। तदनन्तर उन दोनों ने क्रीडनार्थ एक दूसरे को मुक्ता-दाम से मारा। फिर सिन्दूरपुञ्ज से अविरत वर्षा करके पृथ्वी को रक्त बना दिया।

एवं क्रीडां हरः कृत्वा समं च गिरिकन्यया।
आगच्छद् दक्षिणां वेदिमृषिभिः सेवितां दृढाम्॥ ३८॥

इस प्रकार गिरिजा के साथ विभिन्न विवाहोपचार संपन्न करके शिव ऋषियों के द्वारा विशेष रूप से प्रतिष्ठित दक्षिण वेदी पर आए।

अथाजगाम हिमवान् शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
पवित्रपाणिरादाय मधुपर्कमथोज्ज्वलम्॥ ३९॥

तदनन्तर शुभ्रवेशधारी पवित्र हिमालय शुद्ध दूर्वा घास और उज्ज्वल मधुपर्क हाथ में लिए आ पहुँचे।

उपविष्टस्त्रिनेत्रस्तु शाक्रीं दिशमपश्यत।
सप्तर्षिकांश्च शैलेन्द्रः सूपविष्टोऽवलोकयन्॥ ४०॥

त्रिनेत्रधारी शिव पूर्व-दिशाभिमुख होकर बैठे तथा शैलेन्द्र हिमालय सप्तर्षियों की ओर मुँह करके बैठे।

सुखासीनस्य शर्वस्य कृताञ्जलिपुटो गिरिः।
प्रोवाच वचनं श्रीमान् धर्मसाधनमात्मनः॥ ४१॥

शिव के सुखपूर्वक बैठने पर श्रीमान् पर्वत हिमालय ने हाथ जोड़कर निम्न धर्मयुक्त वचन कहे—

हिमवानुवाच

मत्पुत्रीं भगवान् कालीं पौत्रीं च पुलहाग्रजे।
पितृणामपि दौहित्रीं प्रतीच्छेमां मयोदिताम्॥ ४२॥

हिमवान के कहा— हे भगवन्! पुलह के अग्रज की पौत्री एवं पितरों की दौहित्री मेरे द्वारा अर्पित इस मेरी पुत्री काली को स्वीकार कीजिए।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रो हस्तं हस्तेन योजयन्।
प्रादात् प्रतीच्छ भगवन् इदमुच्चैरुदीरयन्॥ ४३॥

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा कहकर पर्वतराज ने वधू के हाथ को वर के हाथ से जोड़कर उच्च स्वर में कहा— भगवन्! मेरी पुत्री को स्वीकार करें।

हर उवाच

न मेऽस्ति माता न पिता तथैव
न ज्ञातयो वाऽपि च बान्धवाद्याः।
निराश्रयोऽहं गिरिशृङ्गवासी
सुतां प्रतीच्छामि तवाद्रिराज॥ ४४॥

शिव ने कहा— न मेरी माता है और न पिता, न मेरे कोई सम्बन्धी है और न कोई बंधु-बांधव। पर्वत शिखरों पर निवास करने वाला मैं निराश्रय हूँ। हे पर्वतराज! मैं आपकी पुत्री को विवाह में स्वीकार करता हूँ।

इत्येवमुक्त्वा वरदोऽवपीडयत्
करं करेणादिकुमारिकायाः।
सा चापि संस्पर्शमवाप्य शंभोः
परां मुदं लब्धवती सुरर्षे॥ ४५॥

ऐसा कहकर वरदाता शिव ने अद्रिकुमारिका उमा के हाथ को अपने हाथ में कसकर पकड़ लिया। हे नारद! उमा भी शिव के स्पर्श को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुई।

तथाऽधिरूढो वरदोऽथ वेदिं
सहाद्रिपुत्र्या मधुपर्कमश्नन्।
दत्त्वा च लाजान् कलमस्य शुक्लां-
स्ततो विरञ्ची गिरिजामुवाच॥ ४६॥

वरदाता शिव मधुपर्क चखकर तथा शुभ्रलाजों को भेंट कर गिरिराजकन्या के साथ वेदीस्थल पर चढ़ गए। तदनन्तर ब्रह्मा ने उमा से कहा—

कालि पश्यस्व वदनं भर्तुः शशधरप्रभम्।
समदृष्टिः स्थिरा भूत्वा कुरुष्वाग्नेः प्रदक्षिणम्॥ ४७॥

हे काली! चन्द्रमा की प्रभा के समान मुख वाले अपने स्वामी को देखो और समदृष्टि तथा स्थिर होकर अग्नि की प्रदक्षिणा करो।

ततोऽम्बिका हरमुखे दृष्टे शैत्यमुपागता।
यथाऽर्करश्मिसंतप्ता प्राप्य वृष्टिमिवावनी॥४८॥

अम्बिका हर के मुख का दर्शन करके उसी प्रकार शीतल (हर्षित) हुई जिस प्रकार सूर्यकिरणों से संतप्त भूमि वर्षा की प्रथम बौछारों से शीतल (हर्षित) हो जाती है।

भूयः प्राह विभोर्वक्त्रमीक्षस्वेति पितामहः।
लज्जया साऽपि दृष्टेति शनैर्ब्रह्माणमब्रवीत्॥४९॥

पितामह ने पुनः कहा— स्वामी के मुख को देखो। और लज्ञावश उसने भी ब्रह्मा से कहा 'देख लिया'।

समं गिरिजया तेन हुताशस्त्रिःप्रदक्षिणम्।
कृतो लाजाश्च हविषा समं क्षिप्ता हुताशने॥५०॥

शिव ने गिरिजा के साथ अग्नि की तीन प्रदक्षिणा की और अग्नि में हवि के साथ लाजा अर्पित की।

ततो हराङ्घ्रिर्मालिन्या गृहीतो दायकारणात्।
किं याचसि च दास्यामि मुञ्चस्वेति हरोऽब्रवीत्॥५१॥

तदनन्तर मालिनी ने उपहार की इच्छा से हर के चरण पकड़ लिए। तब हर ने कहा—तुम जो चाहती हो वह मैं तुम्हें दूँगा मेरे चरण छोड़ दो।

मालिनी शङ्करं प्राह मत्सख्या देहि शङ्कर।
सौभाग्यं निजगोत्रीयं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥५२॥

मालिनी ने शङ्कर से कहा— हे शङ्कर! मेरी सखी के लिए अपने गोत्र का सौभाग्य दें तभी आप मोक्ष प्राप्त कर सकते हो (मुझसे छूट सकते हो।)

अथोवाच महादेवो दत्तं मालिनि मुञ्च माम्।
सौभाग्यं निजगोत्रीयं योऽस्यास्तं शृणु वच्मि ते॥५३॥

तब महादेव ने कहा— अच्छा दे दिया, मालिनी, मुझे छोड़ दो। मेरे गोत्र का जो सौभाग्य है वह इस गिरिजा का है, उस के बारे में सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ।

योऽसौ पीताम्बरधरः शङ्खधृङ् मधुसूदनः।
एतदीयो हि सौभाग्यो दत्तोऽमन्नोत्रमेव हि॥५४॥

जो यह पीताम्बरधारी शङ्ख धारण करने वाले मधुसूदन विष्णु हैं इनका सौभाग्य मेरे गोत्र के सौभाग्य के रूप में (तुम्हारी सखी के लिए) दे दिया।

इत्येवमुक्ते वचने प्रमुमोच वृषध्वजम्।
मालिनी निजगोत्रस्य शुभचारित्रमालिनी॥५५॥

इस प्रकार वचन कहने पर अपने कुल की शुभ सच्चिरित्रता माला धारण करने वाली मालिनी ने वृषध्वज को छोड़ दिया।

यदा हरो हि मालिन्या गृहीतश्चरणे शुभे।
तदा कालीमुखं ब्रह्मा ददर्श शशिनोऽधिकम्॥५६॥

जब मालिनी ने शिव के चरण पकड़ रखे थे तब ब्रह्मा ने काली के चन्द्रमा से भी अधिक सुंदर मुख को देखा।

तद् दृष्ट्वा क्षोभमगमत् शुक्रच्युतिमवाप च।
तच्छुक्रं बालुकायां च खिलीचक्रे ससाध्वसः॥५७॥

यह देखकर वह क्षुब्ध हो गए। फलतः उनका शुक्र च्युत हो गया। तब व्यग्र होकर उन्होंने उसे बालू में निस्तेज कर दिया।

ततोऽब्रवीद्धरो ब्रह्मन्न द्विजान् हन्तुमर्हसि।
अमी महर्षयो धन्या बालखिल्याः पितामह॥५८॥

तब शिव ने कहा— हे ब्रह्मा! तुम ब्राह्मणों की हत्या नहीं कर सकते। हे पितामह! महर्षि बालखिल्य अत्यंत पवित्र हैं।

ततो महेशवाक्यान्ते समुत्तस्थुस्तपस्विनः।
अष्टाशीतिसहस्राणि बालखिल्या इति स्मृताः॥५९॥

शिव के वाक्य के समाप्त होते ही वे सब तपस्वी उठ खड़े हुए। वे अठासी हजार ऋषि बालखिल्य नाम से जाने गये।

ततो विवाहे निर्वृत्ते प्रविष्टः कौतुकं हरः।
रेमे सहोमया रात्रिं प्रभाते पुनरुत्थितः॥६०॥

वैवाहिक रीतियाँ समाप्त होने के पश्चात् शिव ने रात्रि में उमा के साथ रमण किया और प्रातः होने पर जग गये।

ततोऽद्रिपुत्रीं समवाप्य शंभुः
सुरैः समं भूतगणैश्च हृष्टः।
संपूजितः पर्वतपार्थिवेन
स मन्दरं शीघ्रमुपाजगाम॥६१॥

उमा को पत्नीरूप में प्राप्त करके शिव देवताओं और

भूतगणों सहित अत्यंत प्रसन्न थे। पर्वतराज हिमालय के द्वारा संपूजित होकर वे शीघ्र ही मंदर पर्वत को चले गए।

ततः सुरान् ब्रह्महरीन्द्रमुख्यान्
प्रणम्य संपूज्य यथाविभागम्।
विसृज्य भूतैः सहितो महीध्र-
मध्यावसन्मन्दरमष्टमूर्तिः॥६२॥

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य देवताओं की क्रमशः अभ्यर्चना करके तथा उन्हें विदा करके शिव भूतगणों सहित मंदराचल पर रहने लगे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उमासंभवे
गौरीविवाहो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(विनायक की उत्पत्ति)

पुलस्त्य उवाच

ततो गिरौ वसन् रुद्रः स्वेच्छया विचरन् मुने।
विश्वकर्माणमाहूय प्रवोच कुरु मे गृहम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा– हे मुनि! पर्वत पर निवास करते हुए स्वेच्छाचारी शिव ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा— मेरे लिए घर का निर्माण कीजिए।

ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्तिकलक्षणम्।
योजनानि चतुःषष्टिः प्रमाणेन हिरण्मयम्॥२॥

तब विश्वकर्मा ने शिव के लिए चौंसठ योजन परिमाण वाले एवं समस्त शुभ लक्षणों से परिपूर्ण स्वर्णिम गृह का निर्माण किया।

दन्ततोरणनिर्व्यूहं मुक्ताजालान्तरं शुभम्।
शुद्धस्फटिकसोपानं वैडूर्यकृतरूपकम्॥३॥

उस गृह में तोरण तथा बुर्ज हाथी के दांत के बने थे। जालीदार झरोखे मोतियों से जड़े हुए थे। शुद्ध स्फटिक के सोपान थे; तथा उसमें वैदूर्य (मूंगे) से बने भित्तिचित्र लगे थे।

सप्तकक्षं सुविस्तीर्णं सर्वैः समुदितं गुणैः।
ततो देवपतिश्चक्रे यज्ञं गार्हस्थ्यलक्षणम्॥४॥

उस घर में सुविस्तीर्ण तथा समस्त सुसाधनों से सुसज्जित सात कक्ष थे। देवपति शङ्कर ने उसमें गृहस्थ धर्मोचित यज्ञ किया।

तं पूर्वचरितं मार्गमनुयाति स्म शङ्करः।
तथा सतस्त्रिनेत्रस्य महान् कालोऽभ्यगान्मुने॥५॥

इस प्रकार शङ्कर ने गृहस्थोचित (पूर्वचरित–सर्वप्रसिद्ध) मार्ग का अनुसरण करते हुए सती के साथ उस अवस्था में बहुत समय व्यतीत किया।

रमतः सह पार्वत्या धर्मापेक्षी जगत्पतिः।
ततः कदाचिन्नर्मार्थं कालीत्युक्ता भवेन हि॥६॥

पार्वती के साथ धर्मानुसार रमण करते हुए शिव ने एक बार उपहास में ही पार्वती को 'काली' कहा।

पार्वती मन्युनाविष्टा शङ्करं वाक्यमब्रवीत्।
संरोहतीषुणा विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम्॥७॥

इस (संबोधन) से क्रुद्ध पार्वती ने शिव से कहा— बाणों से विद्ध अथवा कुल्हाड़े से काटा हुआ वृक्ष भी पुनः जीवित हो जाता है, परंतु दुर्वाणी अत्यंत क्षतिकारक होंती है, वाणी से आहत मनुष्य कभी पुनर्जीवित नहीं होता।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
तैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
न तान्विमुञ्चेत हि पण्डितो जन-
स्तमद्य धर्मं वितथं त्वया कृतम्॥८॥

वाणीरूपी सायक मुख से गिरते हैं और उनसे आहत व्यक्ति दिन–रात दुखी होता है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को वाग्–बाण नहीं छोड़ने चाहिये। आपने आज धर्मविरुद्ध व्यवहार किया है।

तस्माद्व्रजामि देवेश तपस्तप्तुमनुत्तमम्।
तथा यतिष्ये न यथा भवान् कालीति वक्ष्यति॥९॥

हे देवेश! इसलिए मैं कठोर तपस्या के लिए जा रही हूँ और मैं ऐसी तपस्या करूँगी कि आप मुझे फिर से 'काली' न कह सकें।

इत्येवमुक्त्वा गिरिजा प्रणम्य च महेश्वरम्।
अनुज्ञाता त्रिणेत्रेण दिवमेवोत्पपात ह॥१०॥

ऐसा कहकर गिरिजा पार्वती ने शिव को प्रणाम किया और उनकी अनुमति लेकर वह आकाशमार्ग से ही उड़ गई।

समुत्पत्य च वेगेन हिमाद्रिशिखरं शिवम्।
टङ्कच्छिन्नं प्रयत्नेन विधात्रा निर्मितं यथा॥ ११॥

वह वेगपूर्वक हिमालय के पवित्र पर्वतशिखर पर उतरीं। उस पर्वतशिखर को विधाता ने मानो प्रयत्नपूर्वक टंकित करके बनाया था।

ततोऽवतीर्य सस्मार जयां च विजयां तथा।
जयन्तीं च महापुण्यां चतुर्थीमपराजिताम्॥ १२॥

वहाँ उतर कर उन्होंने जया, विजया, महापुण्या जयन्ती तथा चौथी-अपराजिता का स्मरण किया।

ताः संस्मृताः समाजग्मुः कालीं द्रष्टुं हि देवताः।
अनुज्ञातास्तथा देव्याः शुश्रूषां चक्रिरे शुभाः॥ १३॥

वे देवताएँ तुरंत ही काली के दर्शन के लिए आ पहुँचीं, और काली से आज्ञा पाकर वे सौभाग्यशालिनी देवी की सेवा करने लगीं।

ततस्तपसि पार्वत्यां स्थितायां हिमवद्वनात्।
समाजगाम तं देशं व्याघ्रो द्रंष्ट्रानखायुधः॥ १४॥

जब देवी पार्वती वहाँ कठोर तपस्या कर रही थीं उस समय हिमालय के जंगल से वहाँ तीव्र नखों और दाढ़ों वाला एक व्याघ्र आ गया।

एकपादस्थितायां तु देव्यां व्याघ्रस्त्वचिन्तयत्।
यदा पतिष्यते चेयं तदादास्यामि वै अहम्॥ १५॥

एक पैर पर स्थित देवी को देखकर व्याघ्र ने सोचा- यदि यह गिरेगी तो मैं इसे ले लूँगा (खा लूँगा)।

इत्येवं चिन्तयन्नेव दत्तदृष्टिर्मृगाधिपः।
पश्यमानस्तु वदनमेकदृष्टिरजायत॥ १६॥

इस प्रकार सोचता हुआ वह व्याघ्र पार्वती के मुख की ओर एकटक देखने लगा।

ततो वर्षशतं देवी गृणन्ती ब्रह्मणः पदम्।
तपोऽतप्यत्ततोऽभ्यागाद् ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः॥ १७॥

देवी पार्वती ने ब्रह्मा को उद्देश्य बनाकर सौ वर्षों तक कठोर तप किया। तब त्रिभुवनेश्वर ब्रह्मा वहाँ आए।

पितामहस्ततोवाच देवीं प्रीतोऽस्मि शाश्वते।
तपसा धूतपापाऽसि वरं वृणु यथेप्सितम्॥ १८॥

ब्रह्मा ने देवी गिरिजा से कहा— हे शाश्वती! तुम तपस्या से सर्वथा निष्पाप हो गई हो; तुम अपना अभीप्सित वर मांगो।

अथोवाच वचः काली व्याघ्रस्य कमलोद्भव।
वरदो भव तेनाहं यास्ये प्रीतिमनुत्तमाम्॥ १९॥

तदनन्तर काली ने कहा— हे कमलोद्भव! इस व्याघ्र को वर दीजिए। मुझे इससे अति प्रसन्नता होगी।

ततः प्रादाद्वरं ब्रह्मा व्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः।
गाणपत्यं विभौ भक्तिमजेयत्वं च धर्मिताम्॥ २०॥

तब ब्रह्मा ने उस अद्भुत व्याघ्र को गणेश की भक्ति पूजा, दुर्जेयता तथा धर्मपरायणता का वर प्रदान किया।

वरं व्याघ्राय दत्त्वैवं शिवकान्तामथाब्रवीत्।
वृणीष्व वरमव्यग्रा वरं दास्ये तवाम्बिके॥ २१॥

व्याघ्र को वर देकर ब्रह्मा ने पुनः शिवप्रिया से कहा— हे अचला! तुम वर मांगो! मैं तुम्हें वरदान देता हूँ।

ततो वरं गिरिसुता प्राह देवी पितामहम्।
वरः प्रदीयतां मह्यं वर्णं कनकसंनिभम्॥ २२॥

तदनन्तर गिरिजा ने ब्रह्मा से वर मांगते हुये कहा। मुझे वर दीजिए कि मेरा वर्ण स्वर्णसदृश हो जाए।

तथेत्युक्त्वा गतो ब्रह्मा पार्वती चाभवत्ततः।
कोशं कृष्णं परित्यज्य पद्मकिञ्जल्कसन्निभा॥ २३॥

'ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्मा चले गए और पार्वती वैसी स्वर्णसदृश वर्ण वाली हो गई। उन्होंने अपनी कृष्ण चर्म को त्यागकर कमलनाल के समान शोभा वाले वर्ण को धारण कर लिया।

तस्मात् कोशाच्च संजाता भूयः कात्यायनी मुने।
तामभ्येत्य सहस्राक्षः प्रतिजग्राह दक्षिणाम्।
प्रोवाच गिरिजां देवो वाक्यं स्वार्थाय वासवः॥ २४॥

हे मुनि! उस कोश से कात्यायनी उत्पन्न हुई। उसे इन्द्र ने दक्षिणा के रूप में ग्रहण कर लिया और देवी गिरिजा से उसे अपने लिए मांग लिया।

इन्द्र उवाच

इयं प्रदीयतां मह्यं भगिनी मेऽस्तु कौशिकी।
त्वत्कोशसंभवा चेयं कौशिकी कौशिकोऽप्यहम्॥ २५॥

इन्द्र बोले— इसे मुझे दे दीजिए। यह कौशिकी मेरी बहन होगी। आपके कोश से उत्पन्न होने के कारण यह कौशिकी है तथा मैं भी (इसका भाई होने से) कौशिक हो जाऊँगा।

तां प्रादादिति संश्रुत्य कौशिकीं रूपसंयुताम्।
सहस्राक्षोऽपि तां गृह्य विन्ध्यं वेगाज्जगाम च॥ २६॥

'इसको दे दिया' गिरिजा द्वारा कथित इस वचन को सुनकर इन्द्र उस रूपवती कौशिकी को लेकर वेगपूर्वक विन्ध्य पर्वत की ओर चल पड़े।

तत्र गत्वा त्वथोवाच तिष्ठस्वात्र महाचले।
पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना ख्याता त्वं विन्ध्यवासिनी॥ २७॥

वहाँ जाकर उन्होंने कहा— हे महाबलशालिनी! तुम यहाँ निवास करो। तुम देवताओं के द्वारा संपूजित होकर विन्ध्यवासिनी नाम से प्रसिद्ध हो जाओगी।

तत्र स्थाप्य हरिर्देवीं दत्त्वा सिंहं च वाहनम्।
भवामरारिहन्त्रीति उक्त्वा स्वर्गमुपागमत्॥ २८॥

वहाँ देवी की प्रतिष्ठा करके, सिंह को उनके वाहन के रूप में देकर 'तुम देवताओं के शत्रुओं का नाश करो' यह कहकर इन्द्र स्वर्गलोक को चले गये।

उमाऽपि तं वरं लब्ध्वा मन्दरं पुनरेत्य च।
प्रणम्य च महेशानं स्थिता सविनयं मुने॥ २९॥

हे मुनि! उमा भी उस वर को पाकर मन्दर पर्वत पर पहुँचकर शिव को प्रणाम करके सविनय खड़ी हो गई।

ततोऽमरगुरुः श्रीमान् पार्वत्या सहितोऽव्ययः।
तस्थौ वर्षसहस्रं हि महामोहनके मुने॥ ३०॥

हे मुनि! तदनन्तर देवगुरु श्रीमान् अव्यय शिव ने पार्वती के साथ सहस्रवर्षों तक विषयभोग में रमण किया।

महामोहस्थिते रुद्रे भुवनाश्चेलुरुद्धताः।
चुक्षुभुः सागराः सप्त देवाश्च भयमागमन्॥ ३१॥

रुद्र के विषयभोग में मग्न होने पर समस्त लोक कांपने लगा, सातों महासागर विक्षुब्ध हो गए तथा देवतागण भयभीत हो गए।

ततः सुरा सहेन्द्रेण ब्रह्मणः सदनं गताः।
प्रणम्योचुर्महेशानं जगत् क्षुब्धं तु किं त्विदम्॥ ३२॥

तदनन्तर समस्त देवतागण इन्द्र के साथ ब्रह्मा के भवन में गए। ब्रह्मा को प्रणाम करके उन्होंने कहा— जगत् अत्यंत क्षुब्ध हो रहा है, ऐसा क्यों हैं?

तानुवाच भवो नूनं महामोहनके स्थितः।
तेनाक्रान्तास्त्विमे लोका जग्मुः क्षोभं दुरत्ययम्॥ ३३॥

उन्होंने उन सब से कहा— महादेव निश्चित रूप से महामोहनक हैं। उसी से आक्रान्त होकर ये लोग अत्यधिक क्षुब्ध हो रहे हैं।

इत्युक्त्वा सोऽभवत्तूष्णीं ततोऽप्यूचुः सुरा हरिम्।
आगच्छ शक्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते॥ ३४॥

यह कहकर वे मौन हो गए। तदनन्तर देवताओं ने हरि से (इन्द्र) से कहा— इन्द्र आओ, हम सब वहाँ चलते हैं, जब तक वह महामोहनक समाप्त नहीं हो जाता।

समाप्ते मोहने बालो यः समुत्पत्स्यतेऽव्ययः।
स नूनं देवराजस्य पदमैन्द्रं हरिष्यति॥ ३५॥

मोह समाप्त होने पर जो अविनाशी बालक उत्पन्न होगा वह निश्चय ही देवराज इन्द्र के पद को छीन लेगा।

ततोऽमराणां वचनाद् विवेको बलघातिनः।
भयाज्ज्ञानं ततो नष्टं भाविकर्मप्रचोदनात्॥ ३६॥
ततः शक्रः सुरैः सार्धं वह्निना च सहस्रदृक्।
जगाम मन्दरगिरिं तच्छृङ्गे न्यविशत्तम॥ ३७॥

तब देवताओं के वचन को सुनकर भवितव्यता की प्रेरणा से विवेक तथा भय के कारण इन्द्र का ज्ञान नष्ट हो गया। इसलिये सहस्रनेत्र इन्द्र अग्नि आदि देवताओं को साथ लेकर मन्दराचल पर पहुँचा और उसने उसके शिखर पर डेरा जमाया।

अशक्ताः सर्व एवैते प्रवेष्टुं तद्भवाजिरम्।
चिन्तयित्वा तु सुचिरं पावकं ते व्यसर्जयन्॥ ३८॥

परंतु देवतागण शक्तिविहीन होने के कारण भव के आंगन में प्रवेश करने में असमर्थ रहे। देर तक विचार करने के उपरान्त उन्होंने अग्नि को भेजा।

स चाभ्येत्य सुरश्रेष्ठो दृष्ट्वा द्वारे च नन्दिनम्।
दुष्प्रवेशं च तं मत्वा चिन्तां वह्निः परां गतः॥३९॥

श्रेष्ठ देवता अग्नि ने प्रवेश द्वार पर जब नन्दी को देखा तो भीतर जाना अत्यंत दुष्कर मानकर वह अत्यंत चिंतित हो गए।

स तु चिन्तार्णवे मग्नः प्रापश्यच्छंभुसद्मनः।
निष्क्रामन्तीं महापङ्क्ति हंसानां विमलां तथा॥४०॥

चिन्तासागर में मग्न अग्नि ने शंभु के भवन से निकलती हुई विशाल हंसपंक्ति को देखा।

असावुपाय इत्युक्त्वा हंसरूपो हुताशनः।
वञ्चयित्वा प्रतीहारं प्रविवेश हराजिरम्॥४१॥

'यही उपाय है' कहकर अग्नि ने हंसरूप धारण किया और द्वारपाल को ठगी देकर शंभु के आंगन में प्रवेश कर लिया।

प्रविश्य सूक्ष्ममूर्त्तिश्च शिरोदेशे कपर्दिनः।
प्राह प्रहस्य गम्भीरं देवा द्वारि स्थिता इति॥४२॥

सूक्ष्मरूप में प्रवेश करके शिव के सिर पर उड़ते हुए अग्नि ने प्रसन्न किंतु गंभीर वाणी में कहा— 'देवता द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय परित्यज्य गिरेः सुताम्।
विनिष्क्रान्तोऽजिराच्छर्वो वह्निना सह नारद॥४३॥

हे नारद! यह सुनकर शंभु तुरंत उठे और गिरिजा को छोड़कर अग्नि के साथ आंगन से बाहर चल पड़े।

विनिष्क्रान्ते सुरपतौ देवा मुदितमानसाः।
शिरोभिरवनीं जग्मुः सेन्द्रार्कशशिपावकाः॥४४॥

सुरपति शंभु के बाहर आने पर देवतागण अत्यंत प्रसन्न हुए और इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इत्यादि देवताओं ने सिर से भूमि पर झुककर उन्हें प्रणाम किया।

ततः प्रीत्या सुरानाह वदध्वं कार्यमाशु मे।
प्रणामावनतानां वो दास्येऽहं वरमुत्तमम्॥४५॥

तदनन्तर शिव ने प्रसन्न होकर कहा— मुझसे जो कार्य है, शीघ्र कहो! मैं प्रणाम करते हुए आपको निश्चय ही उत्तम वर दूँगा।

देवा ऊचुः

यदि तुष्टोऽसि देवानां वरं दातुमिहेच्छसि।
तदिह त्यज्यतां तावन्महामैथुनमीश्वर॥४६॥

देवताओं ने कहा—हे स्वामी! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो इस महामैथुन को छोड़ दीजिए।

ईश्वर उवाच

एवं भवतु संत्यक्तो मया भावोऽमरोत्तमाः।
ममेदं तेज उद्रिक्तं कश्चिद् देव प्रतीच्छतु॥४७॥

हे देवो! शिव ने कहा— ऐसा ही हो, इसे छोड़ दिया। मेरे इस बहते हुए तेज को कोई देवता स्वीकार करे।

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्ताः शंभुना देवाः सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः।
असीदन्त यथा मग्नाः पङ्के वृन्दारका उव॥४८॥

पुलस्त्य ने कहा— शिव के इस प्रकार कहने पर इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि देवता उसी प्रकार व्याकुल हो गए जिस प्रकार दलदल में फंसा हाथी व्याकुल होता है।

सीदत्सु दैवतेष्वेवं हुताशोऽभ्येत्य शङ्करम्।
प्रोवाच मुञ्च तेजस्त्वं प्रतीच्छाम्येष शङ्कर॥४९॥

देवताओं के इस प्रकार दुःखी होने पर अग्नि ने शङ्कर के पास जाकर कहा— हे शिव! अपने तेज को छोड़िये; मैं इसे ग्रहण करता हूँ।

ततो मुमोच भगवांस्तद्रेतः स्कन्नमेव तु।
जलं तृषान्ते वै यद्वत्तैलपानं पिपासितः॥५०॥

तदनन्तर भगवान् ने अपने बढ़ते हुए तेज को छोड़ दिया। उस तेज को अग्नि ने उसी प्रकार ग्रहण किया जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति तैलपान कर जाता है।

ततः पीते तेतसि वै शार्वे देवेन वह्निना।
स्वस्थाः सुराः समामन्त्र्य हरं जग्मुस्त्रिविष्टपम्॥५१॥

जैसे ही अग्नि ने शंभु के तेज का पान किया वैसे ही समस्त देवतागण प्रसन्न होकर शिव को नमस्कार करके द्युलोक को चले गए।

संप्रयातेषु देवेषु हरोऽपि निजमन्दिरम्।
समभ्येत्य महादेवीमिदं वचनमब्रवीत्॥५२॥

देवताओं के चले जाने पर शिव भी अपने भवन में जाकर महादेवी से इस प्रकार वचन कहने लगे।

देवि देवैरिहाभ्येत्य यत्नात् प्रेष्य हुताशनम्।
नीतः प्रोक्तो निषिद्धस्तु पुत्रोत्पत्तिं तवोदरात्॥५३॥

हे देवी! देवताओं ने यहाँ आकर, प्रयत्नपूर्वक अग्नि को भेजकर, मुझसे तुम्हारे गर्भ से पुत्रोत्पत्ति न करने को कहा।

साऽपि भर्तुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धा रक्तान्तलोचना।
शशाप दैवतान् सर्वान् नष्टपुत्रोद्भवा शिवा॥५४॥

स्वामी के वचनों को सुनकर गिरिजा क्रोध से रक्तनेत्रा हो गई और समस्त देवताओं को शाप दिया कि वे सब भी निष्पुत्र हो जाएँ।

यस्मान्नेच्छन्ति ते दुष्टा मम पुत्रमथौरसम्।
तस्मात्ते न जनिष्यन्ति स्वासु योषित्सु पुत्रकान्॥५५॥

क्योंकि, वे दुष्ट देवतागण मेरा औरस पुत्र नहीं चाहते; इस कारण वे सब भी अपनी पत्नियों से पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकेंगे।

एवं शप्त्वा सुरान्गौरी शौचशालामुपागमत्।
आहूय मालिनीं स्नातुं मतिं चक्रे तपोधन॥५६॥

इस प्रकार देवताओं को शाप देकर गौरी स्नानगृह में गई। तपस्विनी गिरिजा ने मालिनी को बुलाकर स्नान करने का विचार किया।

मालिनी सुरभिं गृह्य श्लक्ष्णमुद्वर्तनं शुभा।
देव्यङ्गमुद्वर्तयते कराभ्यां कनकप्रभम्।
तत्स्वेदं पार्वती चैव मेने कीदृग्गुणेन हि॥५७॥

सुन्दरी मालिनी सुगंधित अनुलेपन आदि लेकर हाथों से देवी के कनकप्रभायुक्त अङ्गों का मार्जन करने लगी। पार्वती उस स्वेद के गुण के विषय में विचार करने लगी।

मालिनी तूर्णमगमद्गृहं स्नानस्य कारणात्।
तस्यां गतायां शैलेयी मलाच्चक्रे गजाननम्॥५८॥

जैसे ही मालिनी स्नान करने के लिए स्नानगृह में गयी वैसे ही शैलजा ने उस स्वेद से 'गजानन' बना लिया।

चतुर्भुजं पीनवक्षं पुरुषं लक्षणान्वितम्।
कृत्वोत्ससर्ज भूम्यां च स्थिता भद्रासने पुनः॥५९॥

वह गजानन चतुर्भुज, पुष्ट वक्षस्थल वाला तथा पुरुष के समस्त लक्षणों से युक्त था। गजानन का निर्माण करके उन्होंने उसे भूमि पर रख दिया और स्वयं पुनः आसन पर बैठ गयी।

मालिनी तच्छिरःस्नानं ददौ विहसती तदा।
ईषद्धासामुमां दृष्ट्वा मालिनीं प्राह नारद॥६०॥

हे नारद! मुस्कराती हुई मालिनी उमा के बाल धो रही थी कि धीमे-धीमे मुस्कराती हुई मालिनी को देखकर पार्वती बोली-

किमर्थं भीरु शनकैर्हससि त्वमतीव च।
साऽथोवाच हसाम्येवं भवत्यास्तनयः किल॥६१॥
भविष्यतीति देवेन प्रोक्तो नन्दी गणाधिपः।
तच्छुत्वा मम हासोऽयं संजातोऽद्य कृशोदरि॥६२॥

हे भीरु! तुम धीरे-धीरे और लगातार क्यों हंस रही हो? ऐसा पूछने पर उसने कहा— 'आपका पुत्र उत्पन्न होगा' ऐसा देव शंभु ने स्वयं गणाधिप नंदी से कहा है। हे कृशोदरी! यह सुनकर मुझे हंसी आ गई है।

यस्माद् देवैः पुत्रकामः शंकरो विनिवारितः।
एतच्छुत्वा वचो देवी सस्नौ तत्र विधानतः॥६३॥

पुत्रेच्छुक देव शिव को देवताओं ने पुत्र-प्राप्ति से वंचित कर दिया है। यह सुनकर देवी विधिपूर्वक स्नान करने लगीं।

स्नात्वाऽर्च्य शङ्करं भक्त्या समभ्यागाद् गृहं प्रति।
ततः शंभुः समागत्य तस्मिन् भद्रासने त्वपि॥६४॥
स्नातस्तस्य ततोऽधस्तात् स्थितः स मलपूरुषः।
उमास्वेदं भवस्वेदं जलभूतिसमन्वितम्॥६५॥
तत्संपर्कात् समुत्तस्थौ फूत्कृत्य करमुत्तमम्।
अपत्यं हि विदित्वा च प्रीतिमान् भुवनेश्वरः॥६६॥

स्नान करने के अनंतर भक्तिपूर्वक शङ्कर की आराधना करके देवी कक्ष की ओर लौट आई। तदनन्तर शंभु आकर उसी आसन पर बैठकर स्नान करने लगे। उसी आसन के नीचे पार्वती द्वारा निर्मित वह स्वेदपुरुष रखा हुआ था। जैसे ही गीली भूमि पर उमा के स्वेद से शंभु के स्वेद का सम्मिश्रण हुआ वैसे ही उस संपर्क से अपनी सूंड से हवा में फूंफकार करता हुआ वह पुरुष उठ खड़ा हुआ। उसे अपना पुत्र जानकर भुवनेश्वर शिव अत्यंत प्रसन्न हुए।

तं चादाय हरो नन्दिमुवाच भगनेत्रहा।

रुद्रः स्नात्वाऽर्च्य देवादीन् वाग्भिरद्भिः पितृनपि॥६७

उसको लेकर भगनेत्र के नाशक शिव ने नंदी से कहा— यह मेरा पुत्र है। रुद्र ने स्नान करके के पश्चात् स्तुतियों से देवताओं की तथा जल से पितरों की अर्चना की।

जप्त्वा सहस्त्रनामानमुमापार्श्वमुपागतः।

समेत्य देवीं विहसन् शङ्करः शूलधृग् वचः॥६८॥

प्राह त्वं पश्य शैलेयि स्वसुतं गुणसंयुतम्।

इत्युक्ता पर्वतसुता समेत्यापश्यदद्भुतम्॥६९॥

यत्तदङ्गमलाद्दिव्यः कृतो गजमुखं नरम्।

ततः प्रीता गिरिसुता तं पुत्रं परिषष्वजे॥७०॥

शिव सहस्रनामावलि मंत्र का जाप करते हुए उमा के समीप पहुँचे। उनके समीप आकर शूलधारी शङ्कर ने हंसते हुए कहा— हे शैलजा! तुम अपने सर्वगुणसंपन्न पुत्र को देखो! यह कहने पर गिरिजा ने समीप आकर उस अद्भुत पुरुष को देखा जिसे उसने अपने अङ्गों के मैल (स्वेद) से जो गजमुख वाला दिव्य पुरुष बनाया था, उसे प्रसन्न गिरिजा ने गले से लगा लिया।

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय ततः शर्वोऽब्रवीदुमाम्।

नायकेन विना देवि मया भूतोऽपि पुत्रकः॥७१॥

यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः।

एष विघ्नसहस्राणि सुरादीनां करिष्यति॥७२॥

उसे माथे पर सूंघकर शिव ने उमा से कहा— हे देवी! आपका पुत्र नायक (पति) के बिना उत्पन्न हुआ है इसलिए इसका नाम (विनायक) प्रसिद्ध होगा। यह देवताओं के लिए अनेक विघ्नों का कारण होगा।

पूजयिष्यन्ति चैवास्य लोका देवि चराचकराः।

इत्येवमुक्त्वा देव्यास्तु दत्तवांस्तनयाय हि॥७३॥

सहायं तु गणश्रेष्ठं नाम्ना ख्यातं घटोदरम्।

तथा मातृगणा घोरा भूता विघ्नकराश्च ये॥७४॥

हे देवी! समस्त चराचर के लोक इसकी पूजा करेंगे। यह कहकर देवी के पुत्र के लिए घटोदर नाम से विख्यात श्रेष्ठ गण को, मातृगण तथा भयानक विघ्नकारी भूतों को उसके सहायक के रूप में दिया।

ते सर्वे परमेशेन देव्याः प्रीत्योपपादिताः।

देवी च स्वसुतं दृष्ट्वा परां मुदमवाप च॥७५॥

वे सब परमेश्वर शिव के द्वारा देवी की प्रसन्नता के लिए नियुक्त किए गए। देवी अपने पुत्र को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई।

रेमेऽथ शंभुना सार्द्धं मन्दिरे चारुकन्दरे।

एवं भूयोऽभवद्देवी इयं कात्यायनी विभो।

या जघान महादैत्यौ पुरा शुम्भनिशुम्भकौ॥७६॥

देवी ने तदनन्तर शिव के साथ चारु कंदराओं वाले मंदराचल पर दीर्घ काल तक रमण किया। बाद में देवी कात्यायनी के रूप में प्रकट हुई और महान् दैत्यों शुम्भ और निशुम्भ का नाश किया।

एतत्तवोक्तं वचनं शुभाख्यं
यथोद्भवं पर्वततो मृडान्याः।
स्वर्ग्यं यशस्यं च तथाऽघहारि
आख्यानमूर्जस्करमद्रिपुत्र्याः॥७८॥

पर्वतकुमारी उमा का यह शुभ वचनों वाला वृत्तात तुम्हें सुनाया गया। यह स्वर्ग और यश देने वाला है। यह पापनाशक तथा महान् शक्ति देने वाला है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उमासंभवे
विनायकोत्पत्तिर्नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(चण्ड-मुण्ड का वध)

पुलस्त्य उवाच

कश्यपस्य दनुर्नामा भार्यासीद् द्विजसत्तम।

तस्याः पुत्रत्रयं चासीत् सहस्राक्षाद् बलाधिकम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! कश्यप की दनु नामक पत्नी थी। उसके तीन पुत्र थे जो बल में इन्द्र से भी अधिक थे।

ज्येष्ठः शुम्भ इति ख्यातो निशुम्भश्चापरोऽसुरः।

तृतीयो नमुचिर्नाम महाबलसमन्वितः॥२॥

उन पुत्रों में से ज्येष्ठ शुम्भ नाम से प्रख्यात था, दूसरा निशुम्भ नामक असुर था, और तीसरा नमुचि नामक था

जो महाबलशाली था।

योऽसौ नमुचिरित्येवं ख्यातो दनुसुतोऽसुरः।
तं हन्तुमिच्छति हरिः प्रगृह्य कुलिशं करे॥३॥

वह जो नमुचि नामक दनुसुत असुर था, उसे हाथ में वज्र धारण करके इन्द्र मारना चाहता था।

त्रिदिवेशं समायान्तं नमुचिस्तद्भयादथ।
प्रविवेश रथं भानोस्ततो नाशकदच्युतः॥४॥

त्रिलोक के स्वामी इन्द्र को आते हुये देखकर नमुचि भय से सूर्य के रथ में प्रवेश कर गया जिस कारण इन्द्र उसे मार न सका।

शक्रस्तेनाथ समयं चक्रे सह महात्मना।
अवध्यत्वं वरं प्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्च नारद॥५॥

हे नारद! उस समय इन्द्र ने उस नमुचि के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार वह अस्त्रों एवं शस्त्रों से नहीं मारा जा सकता था।

ततोऽवध्यत्वमाज्ञाय शस्त्रादस्त्राच्च नारदः।
संत्यज्य भास्कररथं पातालमुदयादथ॥६॥

स्वयं को अस्त्रों एवं शस्त्रों से अवध्य जानकर नमुचि सूर्य के रथ को छोड़ पाताल लोक को चला गया।

स निमज्जन्नपि जले सामुद्रं फेनमुत्तमम्।
ददृशे दानवपतिस्तं प्रगृह्येदमब्रवीत्॥७॥

एक बार जब वह जल में स्नान कर रहा था तब नमुचि ने अत्यंत उत्कृष्ट समुद्री फेन को देखा। उस फेन को पकड़कर उस दानवपति ने कहा-

यदुक्तं देवपतिना वासवेन वचोऽस्तु तत्।
अयं स्पृशतु मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः॥८॥
मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्ज्ज यथेच्छया।
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद् वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः॥९॥

देवपति इन्द्र ने जो कुछ वचन कहा वह सब सत्य हो; यह फेन मुझे स्पर्श करे। दोनों हाथों से उस फेन को पकड़कर वह दानव (नमुचि) भलीभाँति अपना मुँह, नाक, आँख, कान इत्यादि धोने लगा। उस फेन में इन्द्र ने वज्रशक्ति को छुपाकर पैदा कर दिया था।

तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च।
समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्धरिम्॥१०॥

इस कारण से उसका मुख तथा नाक टुकड़े-टुकड़े हो गए और वह गिर कर मर गया। समझौते को भंग करने के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लग गया।

स वै तीर्थं समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत।
ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ॥११॥

उसने विभिन्न तीर्थों में जाकर स्नान किया जिस कारण वह उस पाप से मुक्त हो गया। इस घटना से उसके दो वीर भ्राता शुम्भ और निशुम्भ अत्यंत क्रुद्ध हो उठे।

उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान् बाधितुमागतौ।
सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः॥१२॥

वे बड़ी तैयारी के साथ देवताओं पर आक्रमण करने के लिए आ गए। देवता भी इन्द्र के नेतृत्व में उनका मुकाबला करने के लिए वहाँ उपस्थित हो गए।

जितास्त्वाक्रम्य दैत्याभ्यां सबलाः सपदानुगाः।
शक्रस्याहत्य च गजं याम्यं च महिषं बलात्॥१३॥

उन दो दैत्यों ने आक्रमण करके उन समस्त देवगणों को उनके समस्त बल और अनुयायियों के साथ जीत लिया और इन्द्र के हाथी तथा यम के महिष को बलपूर्वक छीन लिया।

वरुणस्य मणिच्छत्रं गदां वै मारुतस्य च।
निधयः पद्मशङ्खाद्या हतास्त्वाक्रम्य दानवैः॥१४॥

दानवों ने आक्रमण करके वरुण का मणिछत्र, मरुत् की गदा तथा पद्म-शङ्ख आदि निधियों को भी छीन लिया।

त्रैलोक्यं वशगं चास्ते ताभ्यां नारद सर्वतः।
तदाजग्मुर्महीपृष्ठं ददृशुस्ते महासुरम्॥१५॥
रक्तबीजमथोचुस्ते को भवानिति सोऽब्रवीत्।
स चाह दैत्योऽस्मि विभो सचिवो महिषस्य तु॥१६॥

हे नारद! उन दोनों ने समस्त त्रैलोक्य को सर्वतः अपने वश में कर लिया। तदनन्तर वे दोनों भूलोक में गए और वहाँ महासुर रक्तबीज को देखा। उन्होंने उससे पूछा-आप कौन हैं? उसने कहा— मैं असुर हूँ और महापराक्रमी महिष का सचिव हूँ।

रक्तबीजेति विख्यातो महावीर्यो महाभुजः।
अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ॥ १७॥
तावास्तां सलिले मग्नौ भयाद्देव्या महाभुजौ।
यस्त्वासीत् प्रभुरस्माकं महिषो नाम दानवः॥ १८॥
निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्तृते।
भवन्तौ कस्य तनयौ कौ वा नाम्ना परिश्रुतौ।
किंवीर्यौ किंप्रभावौ च एतच्छंसितुमर्हथः॥ १९॥

महापराक्रमी एवं महाशक्तिशाली मैं रक्तबीज नाम से विख्यात हूँ। महिष के 'चण्ड और मुण्ड' नामक दो पराक्रमी और वीर मंत्री थे। वे दोनों महाबलशाली देवी के भय से जल में छुप गए। वह जो हमारा स्वामी महिष नामक दानव था। वह सुविस्तृत विन्ध्याचल पर महादेवी के द्वारा मार दिया गया। आप दोनों किस के पुत्र हैं? किस नाम से प्रसिद्ध हैं? अपने बल, पराक्रम तथा शौर्य के विषय में आप हमें बताइये।

शुम्भनिशुम्भावूचतुः

अहं शुम्भ इति ख्यातो दनोः पुत्रस्तथौरसः।
निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयान् शत्रुपूगहा॥ २०॥

शुम्भ और निशुम्भ ने कहा— मैं दनु का औरस पुत्र हूँ और शुम्भ नाम से जाना जाता हूँ। यह मेरा कनिष्ठ भ्राता निशुम्भ है जो शत्रुओं का नाशक है।

अनेन बहुशो देवाः सेन्द्ररुद्रदिवाकराः।
समेत्य निर्जिता वीरा येऽन्ये च बलवत्तराः॥ २१॥

अत्यंत बलशाली तथा एकत्रित होकर आए हुए अपने से भी अधिक बलशाली इन्द्र, रुद्र तथा सूर्यादि देवताओं को भी इसने जीत लिया।

तदुच्यतां कया दैत्यो निहतो महिषासुरः।
यावत्तां घातयिष्याव: स्वसैन्यपरिवारितौ॥ २२॥

इसलिये बताइये कि महिषासुर का वध किसने किया, जिससे अपनी सेना की सहायता से हम उसका वध कर सकें।

इत्थं तयोस्तु वदतोर्नर्मदायास्तटे मुने।
जलवासाद्विनिष्क्रान्तौ चण्डमुण्डौ च दानवौ॥ २३॥

हे नारद! जब वह तीनों नर्मदा के तट पर आपस में इस प्रकार बातचीत कर रहे थे तब चण्ड और मुण्ड नामक दो दानव जल से निकले।

ततोऽभ्येत्यासुरश्रेष्ठौ रक्तबीजं समाश्रितौ।
ऊचतुर्वचनं श्लक्ष्णं कोऽयं तव पुरस्सरः॥ २४॥
स चोभौ प्राह दैत्योऽसौ शुम्भो नाम सुरार्दनः।
कनीयानस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भकः॥ २५॥

वे दोनों सुरश्रेष्ठ रक्तबीज के पास स्नेहपूर्वक जाकर बोले- यह आपके सामने कौन खड़ा है? उसने उन दोनों से कहा— यह देवताओं का शत्रु शुम्भ नामक दैत्य है और यह दूसरा इसका छोटा भाई निशुम्भ है।

एतावाश्रित्य तां दुष्टां महिषघ्नीं न संशयः।
अहं विवाहयिष्यामि रत्नभूतां जगत्त्रये॥ २६॥

इन दोनों की सहायता लेकर मैं निश्चय ही उस दुष्ट एवं त्रिलोक की रत्नस्वरूपा महिषघातिनी से विवाह करूँगा।

चण्ड उवाच

न सम्यगुक्तं भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम्।
यं प्रभुः स्यात्स रत्नार्हस्तस्माच्छुम्भाय योज्यताम्॥ २७

चण्ड ने कहा— आपने उचित नहीं कहा। आप उस रत्न के योग्य नहीं हैं। निश्चय ही उसका स्वामी ही उस रत्न के योग्य है इसीलिए इसे शुम्भ को दीजिए।

तदाचचक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम्।
भूयोऽपि तद्विधां जातां कौशिकीं रूपशालिनीम्॥ २८॥

तदनन्तर उसने शुम्भ और निशुम्भ से कौशिकी के विषय में निवेदन किया। उसने कहा कि वह रूप एवं गुण से संयुक्ता कौशिकी के रूप में देवी पुनः उत्पन्न हुई है।

ततः शुम्भो निजं दूतं सुग्रीवं नाम दानवम्।
दैत्यं च प्रेषयामास सकाशं विन्ध्यवासिनीम्॥ २९॥

तदनन्तर शुम्भ ने अपने सुग्रीव नामक दैत्य दूत को विन्ध्यवासिनी के पास भेजा।

स गत्वा तद्वचः श्रुत्वा देव्यागत्य महासुरः।
निशुम्भशुम्भावाहेदं मन्युनाभिपरिप्लुतः॥ ३०॥

वह महासुर वहाँ गया और देवी के वचनों को सुनकर

अत्यंत क्रुद्ध हुआ। उसने आकर शुम्भ और निशुम्भ से कहा—

सुग्रीव उवाच

युवयोर्वचनाद्देवीं प्रदेष्टुं दैत्यनायकौ।
गतवानहमद्यैव तामहं वाक्यमब्रुवम्॥ ३१॥
यथा शुम्भोऽतिविख्यातः ककुदी दानवेष्वपि।
स त्वां प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये॥ ३२॥
यानि स्वर्गे महीपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि।
रत्नानि सन्ति तावन्ति मम वेश्मनि नित्यशः॥ ३३॥
त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्यां रत्नभूता कृशोदरि।
तस्माद्भजस्व मां वा त्वं निशुम्भं वा ममानुजम्॥ ३४॥
त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्यां रत्नभूता कृशोदरी।

सुग्रीव ने कहा— हे दैत्यनायकों! आप दोनों के वचनों के अनुसार मैं देवी के पास गया और मैंने उनसे यह कहा— शुम्भ अत्यंत विख्यात तथा दानवों में विशिष्ट है। उसने आप के लिये संदेश भेजा है और कहा है कि हे महाभागे! मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। हे सुन्दरी! स्वर्गलोक, भूतल और पाताल लोक में जितने भी रत्न हैं वह सब मेरे भवन में नित्य उपस्थित हैं। हे कृशोदरी! चण्ड और मुण्ड के अनुसार तुम रत्नस्वरूपा हो। इसलिए तुम मेरे या मेरे छोटे भाई निशुम्भ के पास आ जाओ।

सा चाह मां विहसती शृणु सुग्रीव मद्वचः।
सत्यमुक्तं त्रिलोकेशः शुम्भो रत्नार्ह एव च॥ ३५॥

उस देवी ने हसंते हुए मुझसे कहा— हे सुग्रीव! मेरी बात सुनो! तुमने ठीक ही कहा है कि शुम्भ निश्चय ही त्रिलोक का स्वामी है तथा रत्न के योग्य है।

किं त्वस्ति दुर्विनीताया हृदये मे मनोरथः।
यो मां विजयते युद्धे स भर्ता स्यान्महासुर॥ ३६॥

हे महासुर! किंतु मैं अत्यंत हठी हूँ और मेरी यह इच्छा है कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा वही मेरा स्वामी होगा।

मया चोक्ताऽवलिप्ताऽसि यो जयेत् ससुरासुरान्।
स त्वां कथं न जयते सा त्वमुत्तिष्ठ भामिनि॥ ३७॥

मैंने कहा— हे सुन्दरी! तुम निश्चय ही अभिमानी हो। जिसने समस्त सुर और असुरों को जीत लिया है वह क्या तुम्हें नहीं जीत सकेगा।

साऽथ मां प्राह किं कुर्मि यदनालोचितः कृतः।
मनोरथस्तु तद्गच्छ शुम्भाय त्वं निवेदय॥ ३८॥

तदनन्तर देवी ने मुझसे कहा— मैं क्या करूँ? मैंने यह विशिष्ट प्रण ले लिया है; इसलिए तुम जाओ और शुम्भ से कह दो (जो मैंने तुम्हें कहा है)।

तयैवमुक्तस्त्वभ्यागां त्वत्सकाशं महासुरः।
सा चाग्निकोटिसदृशी मत्वैवं कुरु यत्क्षमम्॥ ३९॥

उस देवी के द्वारा इस प्रकार कहने पर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। वह करोड़ों अग्नियों के सदृश तेजस्विनी है। हे महासुर! यह जानकर जो उचित हो आप वह करें।

पुलस्त्य उवाच

इति सुग्रीववचनं निशम्य स महासुरः।
प्राह दूरस्थितं शुम्भो दानवं धूम्रलोचनम्॥ ४०॥

पुलस्त्य ने कहा— सुग्रीव के इस प्रकार वचन को सुनकर उस महासुर शुम्भ ने कुछ दूर स्थित धूम्रलोचन नामक दानव को संदेश भेजा।

शुम्भ उवाच

धूम्राक्ष गच्छ तां दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्।
सापराधां यथा दासीं कृत्वा शीघ्रमिहानय॥ ४१॥

शुम्भ ने कहा— धूम्राक्ष! जाओ! उस दुष्ट देवी को केशों से खींचते हुए अपमानित करके यहाँ ऐसे लेकर आओ जैसे किसी अपराधिनी दासी को लाया जाता है।

यश्चास्याः पक्षकृत् कश्चिद्भविष्यति महाबलः।
स हन्तव्योऽविचार्यैव यदि हि स्यात्पितामहः॥ ४२॥

यदि कोई महाबलशाली इसका पक्ष ले तो बिना विचारे उसका वध कर देना; चाहे वह स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हो।

स एवमुक्तः शुम्भेन धूम्राक्षोऽक्षौहिणीशतैः।
वृतः षड्भिर्महातेजा विन्ध्यं गिरिमुपाद्रवत्॥ ४३॥

शुम्भ के द्वारा इस प्रकार कहने पर महातेजस्वी धूम्राक्ष छः सौ अक्षौहिणी सेना के साथ विन्ध्याचल की ओर चल पड़ा।

स तत्र दृष्ट्वा तां दुर्गा भ्रान्तदृष्टिरुवाच ह।
एह्येहि मूढे भर्तारं शुम्भमिच्छस्व कौशिकि।
न चेद् बलान्नयिष्यामि केशाकर्षणविह्वलाम्॥४४॥

वहाँ दुर्गा को देखकर उसकी दृष्टि विभ्रान्त हो गई और वह बोला- हे मूर्ख कौशिकी! इधर आओ और शुम्भ को पति के रूप में स्वीकार करो। अन्यथा मैं केशाकर्षण से अपमानित करके तुम्हें बलपूर्वक ले जाऊँगा।

श्रीदेव्युवाच

प्रेषितोऽसीह शुम्भेन बलान्नेतुं हि मां किल।
तत्र किं ह्यवला कुर्याद्यथेच्छसि तथा कुरु॥४५॥

श्रीदेवी ने कहा— तो शुम्भ ने तुम्हें मुझे बलपूर्वक ले आने के लिए यहाँ भेजा है। इस विषय में यह अबला क्या करे, इसलिए जैसा तुमको अभीष्ट हो, वैसा करो।

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्तो विभावर्या बलवान् धूम्रलोचनः।
समभ्यधावत् त्वरितो गदामादाय वीर्यवान्॥४६॥

पुलस्त्य ने कहा— विभावरी (दुर्गा देवी) के द्वारा ऐसा कहने पर बलवान् तेजस्वी धूम्रलोचन गदा लेकर देवी की ओर शीघ्रता से दौड़ा।

तमापतन्तं सगदं हुंकारेणैव कौशिकी।
सबलं भस्मसाच्चक्रे शुष्कमग्निरिवेन्धनम्॥४७॥

गदासहित आते हुए सेनासहित उस धूम्रलोचन को कौशिकी ने हुंकारमात्र से उस प्रकार भस्मसात् कर दिया जिस प्रकार अग्नि शुष्क ईंधन को भस्मासात् कर देती है।

ततो हाहाकृतमभूज्जगत्यस्मिंश्चराचरे।
सबलं भस्मसान्नीतं कौशिक्या वीक्ष्य दानवम्॥४८॥

कौशिकी के द्वारा सेनासहित धूम्रलोचन को भस्मसात् हुआ देखकर समस्त चराचर जगत् में हाहाकार मच गया।

तच्च शुम्भोऽपि शुश्राव महच्छब्दमुदीरितम्।
अथादिदेश बलिनौ चण्डमुण्डौ महासुरौ॥४९॥
रुरुं च बलिनां श्रेष्ठं तथा जग्मुर्मुदाऽन्विताः।
तेषां च सैन्यमतुलं गजाश्वरथसंकुलम्॥५०॥
समाजगाम सहसा यत्रास्ते कोशसंभवा।

तदनन्तर शुम्भ ने भी उस उद्घोषित महान् शब्द को सुना। उसने महादानव चण्ड, मुण्ड तथा दानवों में श्रेष्ठ रुरु को विन्ध्याचल की ओर जाने का आदेश दिया। अत्यधिक प्रसन्न होकर वे विन्ध्याचल की ओर चल पड़े। उनका गज, अश्व और रथों से युक्त सैन्यसमूह अतुलनीय था। सहसा वे वहाँ जा पहुँचे जहाँ कोशसंभवा दुर्गादेवी थीं।

तदायान्तं रिपुबलं दृष्ट्वा कोटिशतावरम्॥५१॥
सिंहोऽद्रवद् धुतसटः पाटयन् दानवान् रणे।
कांश्चित् करप्रहारेण कांश्चिदास्येन लीलया॥५२॥
नखरैः कांश्चिदाक्रम्य उरसा प्रममाथ च।
ते वध्यमानाः सिंहेन गिरिकन्दरवासिना॥५३॥

सौ करोड़ परिनिर्मित वाले सैन्य समूह को आते हुये देखकर सिंह अपना अयाल समूह धुनते हुए दौड़ा और युद्ध में दानवों को नष्ट करते हुए उसने कुछ को पंजे के प्रहार से, कुछ को मुख से, कुछ को नखों से तथा कुछ को वक्षस्थल से आक्रमण करके गिरा दिया।

भूतैश्च देव्यनुचरैश्चण्डमुण्डौ समाश्रयन्।
तावार्त्तं स्वबलं दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधरौ॥५४॥

गिरिकन्दरा में निवास करने वाले सिंह, भूतों तथा देवी के अनुचरों द्वारा मारे जाते हुए उन राक्षसों ने चण्ड और मुण्ड का आश्रय लिया।

समाद्रवेतां दुर्गां वै पतङ्गाविव पावकम्।
तावापतन्तौ रौद्रौ वै दृष्ट्वा क्रोधपरिप्लुता॥५५॥

अपनी सेना को आते देखकर क्रोध से स्फुरित ओष्ठ वाले वे दोनों देवी दुर्गा की ओर उसी प्रकार दौड़े जैसे पतंगे अग्नि की ओर दौड़ते हैं।

त्रिशिखां भ्रुकुटीं वक्त्रे चकार परमेश्वरी।
भ्रुकुटीकुटिलाद्देव्या ललाटफलकाद् द्रुतम्।
काली करालवदना निःसृता योगिनी शुभा॥५६॥

उन दोनों क्रोधित रौद्ररूपधारी दानवों को अपनी ओर आते देखकर दुर्गा ने क्रोधित होकर भृकुटि तान ली। कुटिल भृकुटि वाली देवी के ललाट से भयंकर मुख वाली शुभ योगिनी काली निकली।

खट्वाङ्गमादाय करेण रौद्र-
मसिञ्च कालाञ्जनकोशमुग्रम्।
संशुष्कगात्रा रुधिराप्लुताङ्गी
नरेन्द्र मूर्ध्ना स्रजमुद्वहन्ती॥५७॥
कांश्चित् खड्गेन चिच्छेद खट्वाङ्गेन परान् रणे।
न्यषूदयद् भृशं क्रुद्धा सरथाश्वगजान् रिपून्॥५८॥

हाथ में भयंकर कपाल धारण करने वाली, काल के समान भयंकर काले वर्ण वाली, कृशकाय, रुधिर से आप्लावित अङ्गों वाली तथा अनेक राजाओं के कपालों की माला को धारण करने वाली देवीं ने कुछ को अपने खड्ग से और अन्य कुछ को कपाल से मार डाला। अत्यंत क्रोधित देवी ने शत्रुओं को उनके रथों, अश्वों और गजों के साथ नष्ट कर दिया।

चर्माङ्कुशं मुद्गरं च सधनुष्कं सघण्टिकम्।
कुञ्जरं सह यन्त्रेण प्रचिक्षेप मुखेऽम्बिका॥५९॥

अम्बिका ने चर्म, अंकुश, मुद्गर, धनुष तथा घंटियों के सहित हाथी को अपने मुख में ठूँस लिया।

सचक्रकूबररथं ससारथितुरङ्गमम्।
समं योधेन वदने क्षिप्य चर्वयतेऽम्बिका॥६०॥

अम्विका ने रथों को उनके चक्रों, सारथी, तुरंग तथा योधाओं के साथ मुख में रखकर अपने दाँतों से चबा डाला।

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामपरं तथा।
पादेनाक्रम्य चैवान्यं प्रेषयामास मृत्यवे॥६१॥

अम्बिका ने कुछ को केशों से, तो कुछ को ग्रीवा से पकड़कर तथा अन्यों को पैरों से कुचल कर मृत्युलोक में पहुँचा दिया।

ततस्तु तद्बलं देव्या भक्षितं सबलाधिपम्।
रुरुर्दृष्ट्वा प्रदुद्राव तं चण्डी ददृशे स्वयम्॥६२॥

तदनन्तर देवी ने समस्त सेना का उसके नायकों सहित भक्षण कर डाला। यह देखकर 'रुरु' भाग खड़ा हुआ। उसे भागते हुए देवी ने स्वयं देखा।

आजघानाथ शिरसि खट्वाङ्गेन महासुरम्।
स पपात हतो भूम्यां छिन्नमूल इव द्रुमः॥६३॥

तदनन्तर देवी ने कपाल मुख वाले अपने खड्ग से उसके सिर पर वार किया। जिससे आहत होकर वह भूमि पर कटे हुए वृक्ष की भाँति गिर पड़ा।

ततस्तं पतितं दृष्ट्वा पशोरिव विभावरी।
कोशमुत्कर्तयामास कर्णादिचरणान्तिकम्॥६४॥

उसको गिरा हुआ देखकर देवी ने उसकी काली कोशिका को कान से लेकर चरण तक एक पशु की भांति चीर डाला।

सा च कोशं समादाय बबन्ध विमला जटाः।
एका न बन्धमगमत्तामुत्पाट्याक्षिपद्भुवि॥६५॥

उस कोशिका को लेकर देवी ने अपनी जटाओं को बांधा। उन जटाओं में से एक बंधी नहीं तो उसे उखाड़कर देवी ने भूमि पर फेंक दिया।

सा जाता सुतरां रौद्री तैलाभ्यक्तशिरोरुहा।
कृष्णार्धमर्धशुक्लं च धारयन्ती स्वकं वपुः॥६६॥

वह जटा तुरंत ही भयंकर रूप वाली हो गई, जिसके बाल तेल में भीगे हुए थे तथा जिसका शरीर आधा कृष्णवर्णी तथा श्वेतवर्णी था।

साऽब्रवीद्वरमेकं तु मारयामि महासुरम्।
तस्या नाम तदा चक्रे चण्डमारीति विश्रुतम्॥६७॥

उसने कहा— मैं निश्चय ही एक महासुर का वध करूँगी, इसीलिए वह 'चण्डमारी' नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

प्राह गच्छस्व सुभगे चण्डमुण्डाविहानय।
स्वयं हि मारयिष्यामि तावानेतुं त्वमर्हसि॥६८॥

देवी ने उसे कहा— जाओ! चण्ड और मुण्ड को यहाँ लेकर आओ। मैं स्वयं ही उनका वध करूँगी। तुम तो केवल उन्हें लेकर आओ।

श्रुत्वैवं वचनं देव्याः साऽभ्यद्रवत तावुभौ।
प्रदुद्रुवतुर्भयात्तौ दिशमाश्रित्य दक्षिणाम्॥६९॥

देवी के इस प्रकार के वचन को सुनकर वह दोनों के पीछे दौड़ी। यह देखकर वह दोनों भयातुर होकर दक्षिण दिशा की ओर भागे।

ततस्तावपि वेगेन प्राधावत्त्यक्त्वाससौ।
साऽधिरुह्य महावेगं रासभं गरुडोपमम्॥७०॥

यतो गतौ च तौ दैत्यौ तत्रैवानुययौ शिवा।
सा ददर्श तदा पौण्ड्रं महिषं वै यमस्य च॥७१॥

वे दोनों अपने वस्त्रों को भी छोड़ते हुए अत्यंत तेजी से भागे। देवी ने गरुड़ के समान तीव्रगामी गर्दभ पर सवार होकर, जहाँ-जहाँ वे गए, वहाँ-वहाँ उनका पीछा किया। तदनन्तर देवी ने यम के महिष पौण्ड्र को देखा।

सा तस्योत्पाटयामास विषाणं भुजगाकृतिम्।
तं प्रगृह्य करेणैव दानवानन्वगाज्जवात्॥७२॥

देवी ने उसकी सर्पाकृति वाले सींग को उखाड़ दिया। उसे हाथ में पकड़ कर देवी ने उन दानवों का पीछा किया।

तौ चापि भूमिं संत्यज्य जग्मतुर्गगनं तदा।
वेगेनाभिसृता सा च रासभेन महेश्वरी॥७३॥

वे दोनों भूमि को छोड़कर आकाशमार्ग पर पहुँच गए। देवी वहाँ भी गर्दभ पर सवार होकर वेगपूर्वक उनके पीछे जा पहुँची।

ततो ददर्श गरुडं पन्नगेन्द्रं चिषादिषुम्।
कर्कोटकं स दृष्ट्वैव ऊर्ध्वरोमा व्यजायत॥७४॥

तदनन्तर उसने सर्पराज -कर्कोटक को खाने के लिये आतुर गरुड़ को देखा। देवी को देखकर गरुड़ भयभीत हो गया।

भयान्मार्याश्च गरुडो मांसपिण्डोपमो बभौ।
न्यपतंस्तस्य पत्राणि रौद्राणि हि पतत्रिणः॥७५॥

चण्डमारी के भय के कारण गरुड़ मांसपिण्ड के समान हो गया और उसके भयानक पंख पत्तों के समान गिरने लगे।

खगेन्द्रपत्राण्यादाय नागं कर्कोटकं तथा।
वेगेनानुसरद्देवी चण्डमुण्डौ भयातुरौ॥७६॥

गरुड़ के पंखों तथा कर्कोटक को लेकर देवी ने भयातुर चण्ड और मुण्ड का पीछा किया।

संप्राप्तौ च तदा देव्या चण्डमुण्डौ महासुरौ।
बद्धौ कर्कोटकेनैव बद्ध्वा विन्ध्यमुपागमत्॥७७॥

उन दोनों महासुरों चण्ड और मुण्ड को पकड़कर देवी उन्हें कर्कोटक से बांध कर विन्ध्य पर्वत पर ले गई।

निवेदयित्वा कौशिक्यैः कोशमादाय भैरवम्।
शिरोभिर्दानवेन्द्राणां तार्क्ष्यपत्रैश्च शोभनैः॥७८॥
कृत्वा स्रजमनौपम्यां चण्डिकायै न्यवेदयत्।
घर्घरां च मृगेन्द्रस्य चर्मणः सा समार्पयत्॥७९॥

भयानक कोश को देवी ने कौशिकी को भेंट किया, दानवेन्द्रों के सिरों तथा गरुड़ पंखों से सुशोभित अनुपम माला बनाकर चण्डिका को निवेदन किया तथा सिंहचर्म से बनी मेखला भी देवी को समर्पण की।

स्रजमन्यैः खगेन्द्रस्य पत्रैर्मूर्ध्नि निबध्य च।
आत्मना सा पपौ पानं रुधिरं दानवेष्वपि॥८०॥

गरुड़ के अन्य पंखों से बनी माला को अपने मस्तक पर बांधकर देवी ने स्वयं दानवों के मध्य उनके रुधिर का पान किया।

चण्डा त्वादाय चण्डं च मुण्डं चासुरनायकम्।
चकार कुपिता दुर्गा विशिरस्कौ महासुरौ॥८१॥

क्रोधित और रौद्ररूपधारिणी दुर्गा ने असुरनायक चण्ड और मुण्ड को पकड़कर उन्हें शीर्षविहीन कर दिया।

तयोरेवाहिना देवी शेखरं शुष्करेवती।
कृत्वा जगाम कौशिक्याः सकाशं मार्यया सह॥८२॥

उन दोनों के सर्पों द्वारा मुकुट बनाकर देवी शुष्करेवती चण्डमारी के साथ कौशिकी के पास पहुँची।

समेत्य साऽब्रवीद्देवि गृह्यतां शेखरोत्तमः।
ग्रथितो दैत्यशीर्षाभ्यां नागराजेन वेष्टितः॥८३॥

वहाँ पहुँचकर उसने कहा— देवी! दोनों दैत्यों के शीर्ष से बने तथा नागराज कर्कोटक से गूंथे हुए इस अद्भुत मुकुट को स्वीकार कीजिए।

तं शेखरं शिवा गृह्य चणडाया मूर्ध्नि विस्तृतम्।
बबन्ध प्राह चैवैनां कृतं कर्म सुदारुणम्॥८४॥
शेखरं चण्डमुण्डाभ्यां यस्माद्धारयसे शुभम्।
तस्माल्लोके तव ख्यातिश्चामुण्डेति भविष्यति॥८३॥

उस अद्भुत मुकुट को लेकर दुर्गा ने उसे चण्डमारी के विस्तृत शीर्ष पर प्रतिष्ठित कर दिया और कहा— तुमने यह अद्भुत कार्य किया है। क्योंकि तुमने चण्ड और मुण्ड के शीर्ष से बने अद्भुत एवं विशिष्ट मुकुट को धारण

किया है अतः तुम समस्त लोक में चामुण्डा नाम से विख्यात होओगी।

इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्रा
सा चण्डमुण्डस्त्रजधारिणीं वै।
दिग्वाससं चाभ्यवदत् प्रतीता
निषूदय स्वारिबलान्यमूनि॥८४॥

इस प्रकार कहकर देवी दुर्गा ने चण्ड और मुण्ड के शीर्ष की माला को धारण करने वाली दिग्वासा से आश्वस्त स्वर में कहा— अपने शत्रु की समस्त सेना का नाश कर दो।

सा त्वेवमुक्ताऽथ विषाणकोट्या
सुवेगयुक्तेन च रासनेन।
निषूदयन्ती रिपुसैन्यमुग्रं
चचार चान्यानसुरांश्चखाद॥८५॥

इस प्रकार कहे जाने पर चामुण्डा ने तीव्रगामी गर्दभ तथा नुकीलें सींगों से प्रबल शत्रुसैन्य का नाश कर डाला तथा अवशिष्ट दैत्यों का भक्षण कर डाला।

ततोऽम्बिकायास्त्वथ चर्ममुण्डा
मार्या च सिंहेन च भूतसंघैः।
निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते
ककुद्मिनं शुम्भमुपाश्रयन्तम्॥८६॥

देवी के सिंह, भूतों तथा चर्ममुण्ड के द्वारा नष्ट किये जाते हुए उन राक्षसों ने अपने नायक शुम्भ की शरण ली।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(रक्तबीज का वध)

पुलस्त्य उवाच

चण्डमुण्डौ च निहतौ दृष्ट्वा सैन्यं च विद्रुतम्।
समादिदेशातिबलं रक्तबीजं महासुरम्।
अक्षौहिणीनां त्रिंशद्भिः कोटिभिः परिवारितम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— चण्ड और मुण्ड को मरा तथा अपनी समस्त सेना को पलायित देखकर शुम्भ ने अत्यंत बलशाली महासुर रक्तबीज को युद्ध के लिए आदेश दिया। वह तीस करोड़ की अक्षौहिणी सेना से युक्त था।

तमापतन्तं दैत्यानां बलं दृष्ट्वैव चण्डिका॥२॥
मुमोच सिंहनादं वै ताभ्यां सह महेश्वरी।

रक्तबीज तथा उसके विशाल दैत्यसैन्य को आते हुए देखकर चण्डिका महेश्वरी ने घोर सिंहनाद किया।

निनदत्यास्ततो देव्या ब्रह्माणी मुखतोऽभवत्।
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः॥३॥
माहेश्वरी त्रिनेत्रा च वृषारूढा त्रिशूलिनी।
महाहिवलया रौद्रा जाता कुण्डलिनी क्षणात्॥४॥

सिंहगर्जना करती हुई देवी दुर्गा के मुख से तत्क्षण ही हंसयुक्त विमान पर प्रतिष्ठित, कमलनाल तथा कमण्डल धारण करने वाली ब्रह्माणी और त्रिनेत्रा, त्रिशूलधारिणी, वृष पर आरूढ़, महासर्पो के वलय और कुण्डल धारण किये हुए माहेश्वरी प्रकट हुई।

कण्ठादथ च कौमारी बर्हिपत्रा च शक्तिनी
समुद्भूता च देवर्षे मयूरवरवाहना॥५॥

हे देवर्षि! तदनन्तर देवी के कंठ से मयूरपंख धारण किये श्रेष्ठमयूर पर आरूढ़ हाथ में शक्ति लिये हुए कौमारी प्रकट हुई।

बाहुभ्यां गरुडारूढा शङ्खचक्रगदासिनी।
शार्ङ्गबाणधरा जाता वैष्णवी रूपशालिनी॥६॥

देवी की भुजाओं से शङ्ख, चक्र, गदा, तलवार, श्रृंग एवं बाण धारण किए हुए गरुड़ पर आसीन अत्यंत रूपवती 'वैष्णवी' प्रकट हुई।

महोग्रमुशला रौद्रा दंष्ट्रोल्लिखितभूतला।
वाराही पृष्ठतो जाता शेषनागोपरि स्थिता॥७॥

उनके पृष्ठभाग से अत्यंत रौद्र रूप वाली शेषनाग पर आसीन वाराही प्रकट हुई। वह अत्यंत भयंकर मूसल धारण किये हुए थीं तथा अपनी विकराल दाढों से भूमि को खरोंच रही थीं।

वज्राङ्कुशोद्यतरा नानालंकारभूषिता।
जाता गजेन्द्रपृष्ठस्था माहेन्द्री स्तनमण्डलात्॥८॥

देवी के स्तनमण्डल से गजेन्द्र की पीठ पर आसीन माहेन्द्री प्रकट हुई जो हाथ में वज्र तथा अंकुश धारण किये हुए थी तथा नाना अलंकारों से विभूषित थी।

विक्षिपन्ती सटाक्षैपैर्ग्रहनक्षत्रतारकाः।
नखिनी हृदयाज्जाता नारसिंही सुदारुणा॥ ९॥

देवी के हृदय से अत्यंत भयंकर विशाल नेत्रों वाली नारसिंही प्रकट हुई जो अपने अयालसमूह के आक्षेप से ग्रह-नक्षत्र और तारागणों को छिन्न-भिन्न कर रही थी।

ताभिर्निपात्यमानं तु निरीक्ष्य बलमासुरम्।
ननाद भूयो नादान्वै चण्डिका निर्भया रिपून्।
तन्निनादं महच्छ्रुत्वा त्रैलोक्यप्रतिपूरकम्॥ १०॥
समाजगाम देवेशः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।

उन सब के द्वारा शत्रुबल को ध्वस्त होते देखकर निर्भय चण्डिका ने पुनः शत्रुओं पर भयंकर निनाद किया। त्रैलोक्य को पूरित करने वाले उस भयंकर निनाद को सुनकर शूलपाणि त्रिलोचन देवेश शङ्कर आ पहुँचे।

अभ्येत्य वन्द्य चैवैनां प्राह वाक्यं तदाऽम्बिके॥ ११॥
समायातोऽस्मि वै दुर्गे देह्याज्ञां किं करोमि ते।
तद्वाक्यसमकालं च देव्या देहोद्भवा शिवा॥ १२॥
जाता सा चाह देवेशं गच्छ दौत्येन शङ्कर।
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च यदि जीवितुमिच्छथ॥ १३॥
तद्गच्छध्वं दुराचाराः सप्तमं हि रसातलम्।
वासवो लभतां स्वर्गं देवाः सन्तु गतव्यथाः॥ १४॥

वहाँ पहुँचकर तथा देवी की वंदना करके शिव ने कहा— हे अम्बिके! मैं यहाँ आ गया हूँ। हे दुर्गे! मुझे आज्ञा दो; मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ? उस वाक्य के उच्चारण के समकाल ही देवी के शरीर से उत्पन्न 'शिवा' प्रकट हो गई और उसने शिव से कहा— हे शङ्कर! आप दूत बनकर जाएँ और शुम्भ और निशुम्भ को कहें- हे दुराचारियों! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो सातवें रसातल को चले जाओ, जिससे इन्द्र पुनः स्वर्ग की प्राप्ति कर लें तथा समस्त देवता प्रसन्न हो जाएँ।

यजन्तु ब्राह्मणाद्यामी वर्णा यज्ञांश्च साम्प्रतम्।
नोचेद्बलावलेपेन भवन्तो योद्धुमिच्छथ॥ १५॥
तदागच्छध्वमव्यग्रा एषाऽहं विनिषूदये।
यतस्तु सा शिवं दौत्ये न्ययोजयत नारद॥ १६॥
ततो नाम महादेव्याः शिवदूतीत्यजायत।
ते चापि शङ्करवचः श्रुत्वा गर्वसमन्वितम्।
हुंकृत्वाऽभ्यद्रवन्सर्वे यत्र कात्यायनी स्थिता॥ १७॥

ब्राह्मण तथा अन्य वर्ण अब यज्ञादि का संपादन कर सकें। अगर बल के मद के कारण तुम युद्ध की इच्छा करते हो तो आ जाओ! बैचेन मैं तुम सब को नष्ट कर डालूँगी। हे नारद! क्योंकि देवी ने शिव को दूत बनाकर नियुक्त किया था इसलिए महादेवी का नाम 'शिवदूती' पड़ा। वे दोनों शङ्कर के गर्वयुक्त वचन को सुनकर हुंकार करते हुए उस ओर दौड़े जहाँ कात्यायनी स्थित थीं।

ततः शरैः शक्तिभिरङ्कुशैर्वरैः
परश्वधैः शूलभुशुण्डिपट्टिशैः।
प्रासैः सुतीक्ष्णैः परिघैश्च विस्तृतै-
र्ववर्षतुर्दैत्यवरौ सुरेश्वरीम्॥ १८॥

तदनन्तर उन दोनों दैत्यों ने देवी पर बाणों, भालों, अंकुशों, तलवारों, त्रिशूलों, भुशुण्डि, पट्टिश, प्रासों तथा परिघाओं की वर्षा प्रारम्भ कर दी।

सा चापि बाणैर्वरकार्मुकच्युतैश्
चिच्छेद शस्त्राण्यथ बाहुभिः सह।
जघान चान्यान् रणचण्डविक्रमा
महासुरान् बाणशतैर्महेश्वरी॥ १९॥

देवी ने भी श्रेष्ठ धनुष से छोड़े हुए बाणों से दानवों की भुजाओं सहित उनके अस्त्रों का छेदन कर डाला। साथ ही प्रचण्ड पराक्रम वाली उस देवी माहेश्वरी ने अपने सहस्रों बाणों से अन्य महासुरों का भी वध कर डाला।

मारी त्रिशूलेन जघान चान्यान्
खट्वाङ्गपातैरपरांश्च कौशिकी।
महाजलक्षेपहतप्रभावान्
ब्राह्मी तथान्यानसुरांश्चकार॥ २०॥

चण्डमारी ने त्रिशूल से अन्य महासुरों को मार डाला। कौशिकी ने सर्वाङ्ग के प्रहार से अन्यों को तथा ब्राह्मी ने महाजल के प्रहार से अन्य असुरों को निष्प्रभ कर डाला।

माहेश्वरी शूलविदारितोरसश्
चकार दग्धानपरांश्च वैष्णवी।
शक्त्या कुमारी कुलिशेन चैन्द्री
तुण्डेन चक्रेण वराहरूपिणी॥ २१॥
नखैर्विभिन्नानपि नारसिंही
अट्टाट्टहासैरपि रुद्रदूती।
रुद्रस्त्रिशूलेन तथैव चान्यान्
विनायकश्चापि परश्वधेन॥ २२॥
एवं हि देव्या विविधैस्तु रूपै-
र्निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते।
पेतुः पृथिव्याः भुवि चापि भूतै-
स्ते भक्ष्यमाणाः प्रलयं प्रजग्मुः॥ २३॥

माहेश्वरी ने अपने त्रिशूल से उनकी छाती विदीर्ण कर दी। वैष्णवी ने अन्यों को भस्मसात् कर दिया। कुमारी ने अपनी शक्ति से, ऐन्द्री ने अपने कुलिश से तथा वराहरूपिणी ने अपने तुण्ड और चक्र से, नारसिंही ने अनेकों को अपने नखों से, रुद्रदूती ने अपने अट्टहासों से, अन्यों को रुद्र ने अपने त्रिशूल से तथा विनायक ने अपने कुल्हाड़े से असुरों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार देवी के द्वारा विविध रूपों से नष्ट किये जाते हुए वह महासुर पृथ्वी पर गिर पड़ा और लगभग गिरते ही भूतगणों के द्वारा भक्षण किये जाते हुए वह नष्ट हो गए।

ते वध्यमानास्त्वथ देवताभि-
र्महासुरा मातृभिराकुलाश्च।
विमुक्तकेशास्तरलेक्षणा भयात्
ते रक्तबीजं शरणं हि जग्मुः॥ २४॥

देवताओं और माताओं के द्वारा मारे जाते हुए वे दोनों व्याकुल, बिखरे हुए बालों वाले और अस्थिर दृष्टि वाले होकर रक्तबीज की शरण में पहुँचे।

स रक्तबीजः सहसाऽभ्युपेत्य
वरास्त्रमादाय च मातृमण्डलम्।
विद्रावयन् भूतगणान् समन्ताद्
विवेश कोपात् स्फुरिताधरश्च॥ २५॥

क्रोध से स्फुरित ओष्ठ वाला रक्तबीज अत्यंत उत्कृष्ट आयुध से सहसा आक्रमण करते हुए मातृमण्डल और भूतगणों को चारों ओर से प्रताड़ित करने लगा।

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य मातरः
शस्त्रैः शिताग्रैर्दितिजं ववर्षुः।
यो रक्तबिन्दुर्न्यपतत्पृथिव्यां
स तत्प्रमाणस्त्वपरोऽपि जज्ञे॥ २६॥

उस रक्तबीज को आक्रमण करते हुए देखकर माताओं ने उस पर अत्यंत तीक्ष्ण नोंक वाले आयुधों की वर्षा की। रक्तबीज का जो भी रक्तबिंदु पृथिवी पर गिरता था उससे उसके ही समान एक और असुर उत्पन्न हो जाता था।

ततस्तदाश्चर्यमयं निरीक्ष्य
सा कौशिकी केशिनिमभ्युवाच।
पिबस्व चण्डे रुधिरं त्वराते-
र्वितत्य वक्त्रं वडवानलाभम्॥ २७॥

उस आश्चर्य को देखकर कौशिकी ने केशिनी से कहा— हे चण्डी! वडवानल के समान अपने मुख को फैला करके शत्रु के रक्त का पान करो।

सा त्वेवमुक्ता वरदाऽम्बिका हि
वितत्य वक्त्रं विकरालमुग्रम्।
ओष्ठं नभस्पृक् न्पृथिवीं स्पृशन्तं
कृत्वाऽधरं तिष्ठति चर्ममुण्डा॥ २८॥

ऐसा कहे जाने पर वरदात्री अम्बिका ने अपने विकराल मुख को फैलाया। उस समय चर्ममुण्डा का ओष्ठ नभ का तथा अधर पृथिवी का स्पर्श कर रहा था।

ततोऽम्बिका केशविकर्षणाकुलं
कृत्वा रिपुं प्राक्षिपत स्ववक्त्रे।
बिभेद शूलेन तथाऽप्युरस्तः
क्षतोद्भवान्ये न्यपतंश्च वक्त्रे॥ २९॥

उस व्याकुल शत्रु को केशों से खींचते हुए अम्बिका ने अपने मुख में खींच लिया और शूल से उसके वक्षस्थल का छेदन कर डाला। उसके घाव से निकला रक्त भवानी के मुख में गिरने लगा।

ततस्तु शोषं प्रजगाम रक्तं
रक्तक्षये हीनबलो बभूव।

तं हीनवीर्यं शतधा चकार
चक्रेण चामीकरभूषितेन॥३०॥

तदनन्तर दानव का रक्त सूख गया। रक्तक्षय होने पर वह शक्तिहीन हो गया। उस शक्तिहीन दानव को अम्बिका ने अपने स्वर्णभूषित चक्र से सैंकड़ों टुकड़ों में विभक्त कर डाला।

तस्मिन् विशस्ते दनुसैन्यनाथे
ते दानवा दीनतरं विनेदुः।
हा तात हा भ्रातरिति ब्रुवन्तः
क्व यासि तिष्ठस्व मुहूर्त्तमेहि॥३१॥

दानवसेनापति के नष्ट होते ही वह समस्त दानवसेना अत्यंत दुखी हो गई और "हे तात! कहाँ जाते हो! हे भ्राता! क्षण भर तो ठहरो!" इस प्रकार पुकारने लगी।

तथाऽपरे विलुलितकेशपाशा
विशीर्णवर्माभरणा दिगम्बराः।
निपातिता धरणितले मृडान्या
प्रदुद्रुवुर्गिरिवरमुह्य दैत्याः॥३२॥

बिखरे हुए बालों वाले, वस्त्र, आयुधों और आभूषणों से विहीन उन दैत्यों को मृडानी ने भूमितल पर गिरा दिया। वे दैत्य पर्वतशिखर को छोड़-छोड़ कर भागने लगे।

विशीर्णवर्मायुधभूषणं तत्
बलं निरीक्ष्यैव हि दानवेन्द्रः।
विकीर्णचक्राक्षरथे निशुम्भः
क्रोधान्मृडानीं समुपाजगाम॥३३॥

अपने सैन्य बल को ढाल, आयुध और आभूषणों से च्युत देखकर विशीर्ण रथचक्र और धुरी वाला वह दानवेन्द्र निशुम्भ क्रोध में भरकर मृडानी की ओर दौड़ा।

खड्गं समादाय च चर्म भास्वरं
धुन्वन् शिरः प्रेक्ष्य च रूपमस्याः।
संस्तम्भमोहज्वरपीडितोऽथ
चित्रे यथाऽसौ लिखितो बभूव॥३४॥

चमचमाती हुई ढाल और तलवार लेकर सिर को धुनते हुए उसने जैसे ही मृडानी के अद्भुत रूप को देखा वह मोहज्वर से ग्रस्त होकर स्तम्भित और चित्रलिखित सा हो गया।

तं स्तम्भितं वीक्ष्य सुरारिमग्रे
प्रोवाच देवी वचनं विहस्य।
अनेन वीर्येण सुरास्त्वया जिता
अनेन मां प्रार्थयसे बलेन॥३५॥

अपने समक्ष स्तम्भित उस सुरशत्रु निशुम्भ को देखकर देवी ने हंस कर कहा— इसी पराक्रम से तुमने देवताओं को जीता है और अब इसी शौर्य के सहारे तुम मुझे जीतना चाहते हो।

श्रुत्वा तु वाक्यं कौशिक्या दानवः सुचिरादिव।
प्रोवाच चिन्तयित्वाऽथ वचनं वदतां वरः॥३६॥

कौशिकी के वचन सुनकर वह श्रेष्ठ वक्ता दानव कुछ देर सोचकर बोला-

सुकुमारशरीरोऽयं मच्छस्त्रपतनादपि।
शतधा यास्यते भीरु आमपात्रमिवाम्भसि॥३७॥

मेरे शस्त्रप्रहार करते ही यह तुम्हारा सुकोमल शरीर उसी प्रकार नष्ट हो जाएगा जिस प्रकार बिना पका मिट्टी का पात्र जल में डालते ही नष्ट हो जाता है।

एतद् विचिन्तयन्नर्थं त्वां प्रहर्त्तुं न सुन्दरि।
करोमि बुद्धिं तस्मात्त्वं मां भजस्वायतेक्षणे॥३८॥

हे सुन्दरी! हे विशाल नेत्रों वाली! इसलिए यह सोचकर मैं तुम पर प्रहार न करने का सोच रहा हूँ। तुम मुझे भजो (स्वीकार कर लो)।

मम खड्गनिपातं हि नेन्द्रो धारयितुं क्षमः।
निवर्त्तय मतिं युद्धाद्भार्या मे भव साम्प्रतम्॥३९॥

इन्द्र भी मेरे खड्ग के प्रहार को सहन करने में असमर्थ है। इसलिए युद्ध का विचार छोड़कर तुम मेरी भार्या बन जाओ।

इत्थं निशुम्भवचनं श्रुत्वा योगीश्वरी मुने।
विहस्य भावगम्भीरं निशुम्भं वाक्यमब्रवीत्॥४०॥

हे मुनि! निशुम्भ के इन वचनों को सुनकर योगीश्वरी ने हंसकर निशुम्भ से गंभीर वाणी में इस प्रकार कहा।

नाजिताऽहं रणे वीर भवे भार्या हि कस्यचित्।
भवान्यदीह भार्यार्थी ततो मां जय संयुगे॥४१॥

हे वीर! मैं युद्ध में पराजित हुए बिना किसी की भार्या नहीं बनूँगी। तुम मुझे यदि अपनी भार्या बनाना चाहते हो तो पहले युद्ध में मुझ पर विजय प्राप्त करो।

इत्येवमुक्ते वचने खड्गमुद्यम्य दानवः।
प्रचिक्षेप तदा वेगात्कौशिकीं प्रति नारद॥४२॥

हे नारद! इस प्रकार कहे जाने पर निशुम्भ ने खड्ग उठाकर अत्यंत वेग से कौशिकी की ओर फेंका।

तमापतन्तं निस्त्रिंशं षड्भिर्बर्हणराजितैः।
चिच्छेद चर्मणा सार्द्धं तदद्भुतमिवाभवत्॥४३॥

वेग से आते हुए उस ढालसहित खड्ग को देवी ने छः बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया। वह दृश्य अत्यंत अद्भुत था।

खड्गे सचर्मणि छिन्ने गदां गृह्य महासुरः।
समाद्रवत् कोशभवां वायुवेगसमो जवे॥४४॥

ढालसहित खड्ग के छिन्न-भिन्न हो जाने पर वह महादानव गदा लेकर वायु के समान वेग से कौशिकी के पीछे दौड़ा।

तस्यापतत एवाशु करौ श्लिष्टौ समौ दृढौ।
गदया सह चिच्छेद क्षुरप्रेण रणेऽम्बिका॥४५॥

पीछे आते हुए उस दानव के दोनों विशाल और सुदृढ़ भुजाओं को अम्बिका ने युद्ध में छुरे से काट डाला।

तस्मिन्निपतिते रौद्रे सुरशत्रौ भंयकरे।
चण्डाद्या मातरो हृष्टाश्चक्रुः किलकिलाध्वनिम्॥४६॥

उस भयानक और विराट् सुरशत्रु के गिरते ही चण्डी आदि मातृगण प्रसन्न होकर किलकिला ध्वनि करने लगीं।

गगनस्थास्ततो देवाः शतक्रतुपुरोगमाः।
जयस्व विजयेत्यूचुर्हृष्टाः शत्रौ निपातिते॥४७॥

शत्रु के गिरते ही आकाशस्थ देवता इन्द्र के नेतृत्व में प्रसन्नचित्त होकर 'हे विजया! तुम्हारी जय हो' इस प्रकार कहने लगे।

ततस्तूर्याण्यवाद्यन्त भूतसंघैः समन्ततः।
पुष्पवृष्टिं च मुमुचुः सुराः कात्यायनीं प्रति॥४८॥

तदनन्तर भूतगण चारों ओर से विजयवाद्य बजाने लगे तथा देवतागण कात्यायनी पर पुष्पवृष्टि करने लगे।

निशुम्भं पतितं दृष्ट्वा शुम्भः क्रोधान्महामुने।
वृन्दारकं समारुह्य पाशपाणिः समभ्यगात्॥४९॥

हे महामुनि! निशुम्भ को नष्ट देखकर क्रोधित शुम्भ वृन्दारक पर सवार होकर तथा हाथ में पाश लेकर वहाँ पहुँचा।

तमापतन्तं दृष्ट्वाऽथ सगजं दानवेश्वरम्।
जग्राह चतुरो बाणांश्चन्द्रार्धाकारवर्चसः॥५०॥

हाथी पर सवार उस दानेश्वर को आते हुए देखकर अर्धचन्द्राकार के देवी ने चार बाणों को लिया।

क्षुरप्राभ्यां समं पादौ द्वौ चिच्छेद द्विपस्य सा।
द्वाभ्यां कुम्भे जघानाथ हसन्ती लीलयाऽम्बिका॥५१॥

देवी ने दो छुरों से हाथी के दोनों पैरों को काट डाला तथा अम्बिका ने हंसते हुए क्रीडावश ही उन दो छुरों से हाथी के मस्तक पर प्रहार किया।

निकृत्ताभ्यां गजः पद्भ्यां निपपात यथेच्छया।
शक्रवज्रसमाक्रान्तं शैलराजशिरो यथा॥५२॥

पैरों के कटते ही हाथी अनायास उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से आहत होकर पर्वतशिखर गिर पड़ा था।

तस्यावर्जितनागस्य शुम्भस्याप्युत्पतिष्यतः।
शिरश्चिच्छेद बाणेन कुण्डलालंकृतं शिवा॥५३॥

हाथी के गिरते ही तथा शुम्भ के उस हाथी पर से च्युत होते ही शिवा ने बाण से उसके कुण्डलों से अलंकृत सिर को काट डाला।

छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रो निपपात सकुञ्जरः।
यथा समहिषः क्रौञ्चो महासेनसमाहतः॥५४॥

सिर के कटते ही वह दैत्येन्द्र हाथी सहित उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कार्तिकेय के द्वारा आहत होकर क्रौञ्च महिष के साथ गिर पड़ा था।

श्रुत्वा सुराः सुररिपू निहतौ मृडान्या
सेन्द्राः ससूर्यमरुदश्विवसुप्रधानाः।
आगत्य तं गिरिवरं विनयावनम्रा
देव्यास्तदा स्तुतिपदं त्विदमीरयन्तः॥५५॥

दोनों महान् रिपु शुम्भ और निशुम्भ देवी के द्वारा मारे

गए हैं यह सुनकर इन्द्र, सूर्य, वायु, अश्विनी सहित समस्त देवतागण वहाँ पर्वत पर आ पहुँचे और विनय से विनत होकर देवी की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवा ऊचुः

नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशिनि
नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनि।
नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनि
नमोऽस्तु ते मखभुजकार्यकारिणि॥५६॥

देवों ने कहा— हे भगवति! आपको हमारा नमस्कार है। आप पापों का नाश करने वाली हैं तथा देवों के शत्रुओं के दर्प का शातन करने वाली हैं। हरि और हर को राज्य प्रदान वाली आपको नमस्कार है। हे देवों के कार्य को करने वाली! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयंकरि
नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते।
नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणि
नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते॥५७॥

हे देवशत्रुओं का क्षय करने वाली! आपको नमस्कार है। हे इन्द्र के द्वारा वन्द्यमान चरण वाली! आपको नमस्कार है। हे महिषासुर को मारने वाली! आपको नमस्कार है। हे हरिहर भास्कर के द्वारा स्तुत होने वाली! आपको प्रणाम है।

नमोऽस्तु तेऽष्टादशबाहुशालिनि
नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनि।
नमोऽस्तु ते चार्त्तिहरे त्रिशूलिनि
नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि॥५८॥

अष्टादश भुजाओं से सुशोभित! आपको नमस्कार है। हे शुम्भ-निशुम्भ का घात करने वाली ! आपको नमस्कार है। हे आर्तिहरे! हे त्रिशूलिनि! हे नारायणि! हे चक्रधारिणी! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे
त्वां नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे
नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनि॥५९॥

हे वाराहि! हे सदा धरा को धारण करने वाली! आपको नमस्कार है। हे नारसिंहि! आपको हम प्रणत हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रधारिणि! हे गजध्वजे! आपको नमस्कार है। हे कौमारि! हे मयूरवाहिनि! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु पैतामहहंसवाहने
नमोऽस्तु मालाविकटे सुकेशिनि।
नमोऽस्तु ते रासभपृष्ठवाहनि
नमोऽस्तु सर्वार्त्तिहरे जगन्मये॥६०॥

हे ब्रह्मा के हंस पर विराजमान! आपको नमस्कार है। हे विकटमाला धारण करने वाली! हे सुन्दर केशों वाली! आपको नमस्कार है। हे गर्दभ की पीठ पर बैठने वाली! आपको नमस्कार है। हे समस्त क्लेशों का नाश करने वाली! हे जगन्मये! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
निषूदयारीन् द्विजदेवतानाम्।
नमोऽस्तु ते सर्वमयि त्रिनेत्रे
नमो नमस्ते वरदे प्रसीद॥६१॥

हे विश्वेश्वरि! आपको नमस्कार है। आप विश्व की रक्षा करें तथा ब्राह्मणों और देवताओं के शत्रुओं का संहार करें। हे त्रिनेत्र! हे सर्वमयि! आपको नमस्कार है। हे वरदे! आपको बारम्बार नमस्कार, आप प्रसन्न हों।

ब्रह्माणी त्वं मृडानी वरशिखिगमना शक्तिहस्ता कुमारी
वाराही त्वं सुवक्त्रा खगपतिगमना वैष्णवी त्वं सशार्ङ्गी।
दुर्दृश्या नारसिंही घुरघुरितरवा त्वं तथैन्द्री सवज्रा
त्वं मारी चर्ममुण्डा शवगमनरता योगिनीयोगसिद्धा॥६२

आप ब्रह्माणी और मृडानी हैं। आप ही सुन्दर मयूर पर चलने वाली और हाथ में शक्ति धारण करने वाली कुमारी हैं। सुन्दर मुखवाली वाराही आप ही हैं तथा गरुड़ से चलने वाली, शार्ङ्गधनुष धारिणी वैष्णवी हैं। घुर-घुर ध्वनि करने वाली, देखने में भयंकर नारसिंहि आप ही हैं। आप ही वज्रधारिणी ऐन्द्री एवं महामारी चर्ममुण्डा हैं। शवों पर गमन करने वाली तथा योगसिद्धा योगिनी भी आप ही हैं।

नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तवचरणानुषिता
ये अहरहर्विनतशिरसोऽवनताः।
नहि नहि परिभवमस्त्यशुभं च
स्तुतिबलकुसुमकराः सततं ये॥ ६३॥

हे त्रिनेत्रा भगवति! आपको नमस्कार है। आपके चरणों के आश्रित होकर जो प्रतिदिन विनयपूर्वक अपना सिर झुकाकर स्थित हैं, और जो आपके लिए स्तुतिरूप बलि एवं पुष्पों को हाथ में लिये सर्वदा स्थित हैं, उनका कोई परिभव और अशुभ नहीं होता।

एवं स्तुता सुरवरैः सुरशत्रुनाशी
प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षिवर्यान्।
प्राप्तो मयाऽद्भुततमो भवतां प्रसादात्
संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमर्दात्॥ ६४॥

देवताओं के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सुरशत्रुनाशिनी दुर्गा हंसकर देवताओं, सिद्धों और ऋषियों से बोली— आप सब की कृपा से ही मैंने युद्ध में इतने अद्भुतरूप से दानवों का संहार किया है।

इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा
भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो
वरस्तथाऽन्यो व्रियतामभीप्सितः॥ ६५॥

आप सब के द्वारा अनुकीर्तित इस स्तुति का जो भी भक्तियुक्त होकर उच्चारण करेगा उसके दुःस्वप्नों का निश्चय ही विनाश हो जायेगा। आप कोई अन्य अभीप्सित वर मांगें।

देवा ऊचुः

यदि वरदा भवती त्रिदशानां
द्विजशिशुगोषु यतस्व हिताय।
पुनरपि देवरिपूनपरांस्त्वं
प्रदह हुताशनतुल्यशरीरे॥ ६६॥

देवताओं ने कहा— यदि आप देवों को वर देना चाहती हैं, तो द्विज, शिशु और गौ के हित के लिए प्रयत्न करें और देवताओं के अन्य शत्रुओं को भी आप अपने अग्नितुल्य शरीर से नष्ट कर दें।

देव्युवाच

भूयो भविष्याम्यसृगुक्षिताानना
हराननस्वेदजलोद्भवा सुराः।
अन्धासुरस्याप्रतिपोषणो रता
नाम्ना प्रसिद्धा भुवनेषु चर्चिका॥ ६७॥

देवी ने कहा— हे देवों! मैं पुनः शङ्कर के मुखस्वेद से जन्म लूँगी तथा मेरा मुख रक्त से अवलिप्त होगा। तब मैं अंधासुर का नाश करूँगी। उस समय मेरा नाम चर्चिका होगा।

भूयो वधिष्यामि सुरारिमुत्तमं
संभूय नन्दस्य गृहे यशोदया।
तं विप्रचित्तिं लवणं तथाऽपरौ
शुम्भं निशुम्भं दशनप्रहारिणी॥ ६८॥

मैं नंद के घर में यशोदा से उत्पन्न होकर पुनः विशाल राक्षसों- लवण, शुम्भ और निशुम्भ का अपने दांतों के प्रहार से नाश करूँगी।

भूयः सुरास्तिष्ययुगे निराशनी
निरीक्ष्य मारी च गृहे शतक्रतोः।
संभूय देव्याऽमितसत्यधामया
सुरा भरिष्यामि च शाकम्भरी वै॥ ६९॥

हे देवों! पुनः कलियुग में देवों को भूख से व्याकुल देखकर मैं इन्द्र के घर में मारी के रूप में अवतरित होऊँगी और देवी सत्यधामा की सहायता से देवताओं का पोषण करूँगी। तब मेरा नाम 'शाकम्भरी' होगा।

भूयो विपक्षक्षपणाय देवा
विन्ध्ये भविष्याम्यृषिरक्षणार्थम्।
दुर्वृत्तचेष्टान्विनिहत्य दैत्यान्
भूयः समेष्यामि सुरालयं हि॥ ६९॥

हे देवों! पुनः शत्रुओं के नाश के लिए और ऋषियों की रक्षा के लिए मैं विन्ध्य में जन्म लूँगी और दुष्टवृत्ति वाले राक्षसों का नाश करके पुनः स्वर्ग में आऊँगी।

यदाऽरुणाक्षो भविता महासुरः
तदा भविष्यामि हिताय देवताः।
महालिरूपेण विनष्टजीवितं
कृत्वा समेष्यामि पुनस्त्रिविष्टपम्॥ ७०॥

जब दैत्य अरुणाक्ष उत्पन्न होगा तब मैं पुनः सबके कल्याण के लिए जन्म लूँगी। मैं एक विशाल भक्षिका का रूप धारण करके उसका नाश करूँगी और पुनः स्वर्ग में वापस आऊँगी।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वरदा सुराणां
कृत्वा प्रणामं द्विजपुंगवानाम्।
विसृज्य भूतानि जगाम देवी
खं सिद्धसंघैरनुगम्यमाना॥७१॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार कहकर महान् ब्राह्मणों को प्रणाम करके समस्त भूतगणों का विसर्जन करके वरदात्री देवी सिद्धगणों के द्वारा अनुगम्यमान होकर स्वर्ग को चली गई।

इदं पुराणं परमं पवित्रं
देव्या जयं मङ्गलदायि पुंसाम्।
श्रोतव्यमेतन्नियतैः सदैव
रक्षोघ्नमेतद्भगवानुवाच॥७२॥

देवी का यह पवित्र एवं पुरातन विजयवृत्तांत मनुष्यों के लिए जयकारी और मंगलकारी है। सुनने मात्र से ही समस्त राक्षसों का नाश करने वाले इस वृत्तांत का नित्य नियमपूर्वक सावधानी से श्रवण करना चाहिये। ऐसा भगवान् स्वयं कहते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भवधो नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(कार्तिकेय की उत्पत्ति)

नारद उवाच

कथं समहिषः क्रौञ्चो भिन्नः स्कन्देन सुव्रत।
एतन्मे विस्तराद् ब्रह्मन् कथयस्वामितद्युते॥१॥

नारद ने कहा— हे सुव्रत! स्कन्द ने क्रौञ्च पर्वत का भेदन क्यों और कैसे किया? हे अमित तेज से सम्पन्न ब्राह्मण! यह मुझे विस्तार से बताइये।

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि कथां पुण्यां पुरातनीम्।
यशोवृद्धिं कुमारस्य कार्तिकेयस्य नारद॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— मैं पवित्र पुरातन कथा को कहता हूँ। हे नारद! कुमार कार्तिकेय के पाश को बढ़ाने वाली इस कथा को आप सुनिये।

यत्तत्पीतं हुताशेन स्कन्नं शुक्रं पिनाकिनः।
तेनाक्रान्तोऽभवद् ब्रह्मन् मन्दतेजा हुताशनः॥३॥

हे ब्रह्मा! अग्नि ने शिव के शुक्र का पान किया तो उससे आक्रान्त होने के कारण वह तेजहीन हो गया।

ततो जगाम देवानां सकाशममितद्युतिः।
तैश्चापि प्रहितस्तूर्णं ब्रह्मलोकं जगाम ह॥४॥

अपरिमित तेज वाला वह अग्नि देवताओं के पास गया और उनके द्वारा निर्देश पाकर वह शीघ्र ही ब्रह्मलोक जा पहुँचा।

स गच्छन्कुटिलां देवीं ददर्श पथि पावकः।
तां दृष्ट्वा प्राह कुटिले तेज एतत्सुदुर्द्धरम्॥५॥

ब्रह्मलोक जाते हुए अग्नि ने रास्ते में देवी कुटिला को देखा और उसको देखकर उससे कहा— हे कुटिले! शिव के तेज को धारण करना अत्यंत दुष्कर कार्य है।

महेश्वरेण संत्यक्तं निर्दहेद् भुवनान्यपि।
तस्मात् प्रतीच्छ पुत्रोऽयं तव धन्यो भविष्यति॥६॥

महेश्वर के द्वारा त्यक्त यह तेज तीनों लोकों को भस्मसात् कर देगा। अतः इसे (पुत्र के लिए) स्वीकार करो, तुम्हारा पुत्र धन्य होगा।

इत्यग्निना सा कुटिला स्मृत्वा स्वमतमुत्तमम्।
प्रक्षिपस्वाम्भसि मम प्राह वह्निं महापगा॥७॥

अग्नि के ऐसा कहने पर कुटिला ने अपनी भी विशिष्ट प्रतिज्ञा का स्मरण किया तथा अग्नि से कहा— उस तेज को मेरे जल में डाल दीजिए।

ततस्त्वधारयद्देवी शार्वं तेजस्त्वपूपुषत्।
हुताशनोऽपि भगवान् कामचारी परिभ्रमन्॥८॥

जल में तेज के प्रक्षेपण के पश्चात् नदी ने शिव के उस तेज को धारण किया और उसका पोषण किया। पूजनीय अग्नि भी बंधनरहित होकर स्वतन्त्रतया भ्रमण करने लगा।

पञ्चवर्षसहस्राणि धृतवान् हव्यभुक्ततः।
मांसमस्थीनि रुधिरं मेदोन्त्ररेतसीत्वचः ॥९॥
रोमश्मश्र्वक्षिकेशाद्याः सर्वे जाता हिरण्मयाः।
हिरण्यरेता लोकेषु तेन गीतश्च पावकः॥१०॥

अग्नि ने पाँच सहस्र वर्षों तक शिव के तेज को धारण किया। उस तेज के अत्यंत उग्र प्रभाव के कारण अग्नि का मांस, अस्थियाँ, रक्त, मज्जा, आँतड़ी, शुक्र, त्वचा, रोम, सिर तथा आँखें सब हिरण्यमय हो गये जिससे तीनों लोकों में अग्नि का नाम 'हिरण्यरेतस्' प्रसिद्ध हो गया।

पञ्चवर्षसहस्राणि कुटिला ज्वलनोपमम्।
धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणः स्थानमागता॥११॥

तदनन्तर पाँच सहस्र वर्षों तक अग्निसदृश उस गर्भ को धारण किये हुए कुटिला ब्रह्मा के स्थान पर पहुँची।

तां दृष्ट्वान् पद्मजन्मा संतप्यन्तीं महापगाम्।
दृष्ट्वा पप्रच्छ केनायं तव गर्भः समाहितः॥१२॥

ब्रह्मा ने जब उस विशिष्ट कुटिला नदी को अत्यंत संतप्त अवस्था में देखा तो पूछा— तुम किसके द्वारा गर्भवती हुई हो?

सा चाह शाङ्करं यत्तच्छुक्रं पीतं हि वह्निना।
तदशक्तेन तेनाद्य निक्षिप्तं मयि सत्तम॥१३॥

हे ब्रह्मा! अग्नि ने शिव के तेज का पान किया था परंतु उसे धारण करने में असमर्थ होकर अग्नि ने उसे मेरे जल में डाल दिया।

पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्या पितामह।
गर्भस्य वर्त्तते कालो नायं पपात च कर्हिचित्॥१४॥

हे पितामह! पांच सहस्र वर्षों से धारण किये हुए इस गर्भ में अभी कुछ और समय शेष है। इसीलिए यह कहीं भी गिर नहीं रहा है।

तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छ त्वमुदयं गिरिम्।
तत्रास्ति योजनशतं रौद्रं शरवणं महत्॥१५॥

यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा— तुम 'उदयगिरि' पर जाओ। वहाँ सौ योजन में फैला हुआ अत्यंत घना सरपतनो का महान् वन है।

तत्रैनं क्षिप सुश्रोणि विस्तीर्णे गिरिसानुनि।
दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति॥१६॥

हे सुन्दरी! वहाँ विस्तृत एवं सघन पर्वत के ढलान पर इस तेज को छोड़ दो। दशसहस्र वर्षों के बाद यह एक बालक बन जाएगा।

सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं रूपणी गिरिमागता।
आगत्य गर्भं तत्याज मुखेनैवाद्रिनन्दिनी॥१७॥

ब्रह्मा के वाक्य को सुनकर वह सुन्दरी पर्वतसुता उदयगिरि पर आई और अपने मुख से उस गर्भ का त्याग कर दिया।

सा तु संत्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहसाऽगमत्।
आपोमयी मन्त्रवशात्संजाता कुटिला सती॥१८॥

वहाँ उस गर्भ का त्याग कर वह ब्रह्मा के पास पहुँची और पवित्र 'कुटिला' मंत्रों के प्रभाव से पुनः जलमयी हो गई।

तेजसा चापि शार्वेण रौक्मं शरवणं महत्।
तन्निवासरताश्चान्ये पादपा मृगपक्षिणः॥१९॥

शिव के महान् तेज के प्रभाव से वह विस्तृत सरपत वन स्वर्णिम बन गया। वहाँ उगने वाले पेड़ पौधे तथा वहाँ रहने वाले पशुपक्षी भी स्वर्णिम हो गये।

ततो दशसु पूर्णेषु शरद्दशशतेष्वथ।
बालार्कदीप्तिः संजातो बालः कमललोचनः॥२०॥

तदनन्तर दशसहस्र शरदों के पूर्ण होने पर वहाँ उगते हुए सूर्य की आभा के समान शोभायमान एक कमल-नयन बालक का जन्म हुआ।

उत्तानशायी भगवान्दिव्ये शरवणे स्थितः।
मुखेऽङ्गुष्ठं समाक्षिप्य रुरोद घनराडिव॥२१॥

आकाश की ओर मुँह करके सोये हुए और दिव्य शरवन में स्थित उस बालक ने मुँह में अँगूठा डालकर घन के समान गर्जना की।

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः कृत्तिकाः षट् सुतेजसः।
ददृशुः स्वेच्छया यान्त्यो बालं शरवणे स्थितम्॥२२॥

इसी समय अत्यंत तेजस्वी तथा स्वेच्छाचारी घूमते हुये छः कृत्तिकाओं ने शरवन में स्थित उस बालक को देखा।

कृपायुक्ताः समाजग्मुः यत्र स्कन्दः स्थितोऽभवत्।
अहं पूर्वमहं पूर्वं तस्मै स्तन्ये विचुक्रुशुः॥ २३॥

उस बालक पर दयाशील होकर वे जहाँ 'स्कन्द' स्थित था, वहाँ पहुँचीं और वहाँ पहुँचकर ''मैं पहले-मैं पहले'' कहते हुये उसे स्तनपान कराने लगीं।

विवदन्तीः स ता दृष्ट्वा षण्मुखः समजायत।
अबीभरंश्च ताः सर्वाः शिशुं स्नेहाद्य कृत्तिकाः॥ २४॥

उनको इस प्रकार विवाद करते हुए देखकर वह बालक स्कन्द 'षण्मुख' (छः मुखों की आकृति वाला) हो गया और वे छः कृत्तिकाएँ स्नेहवश उसका पोषण करने लगीं।

भ्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने।
कार्त्तिकेयेति विख्यातो जातः स बलिनां वरः॥ २५॥

हे मुनि! उनके द्वारा पोषित वह बालक बड़ा होकर अत्यंत बलशाली हो गया और कार्तिकेय नाम से विख्यात हुआ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्पावकं प्राह पद्मजः।
कियत्प्रमाणः पुत्रस्ते वर्त्तते साम्प्रतं गुहः॥ २६॥

उसी समय ब्रह्मा ने अग्नि से पूछा-आपका पुत्र 'गुह' कितना बड़ा हो गया।

स तद्वचनमाकर्ण्य अजानंस्तं हरात्मजम्।
प्रोवाच पुत्रं देवेश न वेद्मि कतमो गुहः॥ २७॥

उनके शब्दों को सुनकर तथा अपने पुत्र के विषय में अनभिज्ञ अग्नि ने ब्रह्मा से कहा— मैं नहीं जानता, 'गुह' कौन है?

तं प्राह भगवान् यत्तु तेजः पीतं पुरा त्वया।
त्रैयम्बकं त्रिलोकेश जातः शरवणे शिशुः॥ २८॥

ब्रह्मा ने अग्नि से कहा— आपने पहले शिव के तेज का जो पान किया था, उससे शरवन में तीनों लोकों का स्वामी शिशु उत्पन्न हुआ है।

श्रुत्वा पितामहवचः पावकस्त्वरितोऽभ्यगात्।
वेगिनं मेषमारुह्य कुटिला तं ददर्श ह॥ २९॥

पितामह ब्रह्मा के वचन को सुनकर अग्नि तीव्रता से एक वेगवान् महिष पर सवार होकर चल पड़ा। तब कुटिला ने उसे देखा।

ततः पप्रच्छ कुटिला शीघ्रं क्व व्रजसे कवे।
सोऽब्रवीत् पुत्रदृष्ट्यर्थं जातः शरवणे शिशुम्॥ ३०॥

तदनन्तर कुटिला ने पूछा— हे कवि! इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हो? उसने कहा— शरवन में उत्पन्न बालक को देखने के लिए जा रहा हूँ।

साऽब्रवीत्तनयो मह्यं ममेत्याह च पावकः।
विवदन्तौ ददर्शाथ स्वेच्छाचारी जनार्दनः॥ ३१॥

कुटिला ने कहा— वह मेरा पुत्र है; अग्नि ने कहा मेरा है। उनको इस प्रकार विवाद करते हुए स्वेच्छाचारी भगवान् विष्णु ने देखा।

तौ पप्रच्छ किमर्थं वा विवादमिह चक्रथः।
तावूचतुः पुत्रहेतो रुद्रशुक्रोद्भवाय हि॥ ३२॥

उन्होंने उन से पूछा-तुम दोनों में यह विवाद क्यों हो रहा है? उन दोनों ने उत्तर दिया— शिव के तेज से उत्पन्न पुत्र को लेकर हम दोनों में विवाद है।

तावुवाच हरिर्देवो गच्छ तं त्रिपुरान्तकम्।
स यद्वक्ष्यति देवेशस्तत्कुरुध्वमसंशयम्॥ ३३॥

भगवान् विष्णु ने उन दोनों से कहा— शिव के पास जाओ और वे देवेश जैसा कहें निस्संशय होकर वैसा ही करो।

इत्युक्तौ वासुदेवेन कुटिलाग्नी हरान्तिकम्।
समभ्येत्योचतुस्तथ्यं कस्य पुत्रेति नारद॥ ३४॥

हे नारद! विष्णु के इस प्रकार कहने पर कुटिला और अग्नि, दोनों हर के पास पहुँचे और बोले— बताइये! यह वस्तुतः किसका पुत्र है?

रुद्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य हर्षनिर्भरमानसः।
दिष्ट्या दिष्ट्येति गिरिजां प्रोद्धूतपुलकोऽब्रवीत्॥ ३५॥

शिव यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और पुलकित पार्वती से बोले शुभ! शुभ!।

ततोऽम्बिका प्राह हरं देव गच्छाव तं शिशुम्।
प्रष्टुं समाश्रयेद्यं स तस्य पुत्रो भविष्यति॥ ३६॥

तदनन्तर पार्वती ने शिव से कहा— स्वामी! उस शिशु के पास चलते हैं; वह स्वतः जिसकी गोद में आयेगा, वह उसका ही पुत्र होगा।

बाढमित्येव भगवान् समुत्तस्थौ वृषध्वजः।
सहोमयाम कुटिलया पावकेन च धीमता॥ ३७॥

इससे सहमत होकर शिव ने कहा— ठीक है! और वे उमा, कुटिला तथा बुद्धिमान् अग्नि के साथ चल पड़े।

संप्राप्तास्ते शरवणं हराग्निकुटिलाम्बिकाः।
ददृशुः शिशुकं तं च कृत्तिकोत्सङ्गशायिनम्॥ ३८॥

शिव, अग्नि, कुटिला तथा अम्बिका शरवन में पहुँच गये और उन्होंने कृत्तिकाओं की गोद में सोते हुए शिशु को देखा।

ततः स बालकस्तेषां मत्वा चिन्तितमादरात्।
योगी चतुर्मूर्तिरभूत् षण्मुखः स शिशुस्त्वपि॥ ३९॥

तदनन्तर उनके स्नेहानुराग को देखकर आदरवश वह योगी षण्मुख बालक चार रूपों वाला हो गया।

कुमारः शङ्करमगाद्विशाखो गौरिमागमत्।
कुटिलामगमच्छाखो महासेनोऽऽग्निमभ्ययात्॥ ४०॥

वह कुमार के रूप में शङ्कर के पास गया; विशाख के रूप में गौरी के पास गया; 'शाख' के रूप में 'कुटिला' के पास गया तथा महासेन के रूप में अग्नि के समीप गया।

ततः प्रीतियुतो रुद्र उमा च कुटिला तथा।
पावकश्चापि देवेशः परां मुदमवाप च॥ ४१॥

इससे प्रीतियुक्त रुद्र, उमा, कुटिला तथा अग्नि अत्यंत प्रसन्न हुए।

ततोऽब्रुवन् कृत्तिकास्ताः षण्मुखः किं हरात्मजः।
ता अब्रवीद्धरः प्रीत्या विधिवद् वचनं मुने॥ ४२॥

तदनन्तर कृत्तिकाओं ने कहा— क्या यह षण्मुख बालक शिवपुत्र है? हे नारद! तब शिव ने प्रसन्न होकर यह उद्घोषणा की।

नाम्ना तु कार्त्तिकेयो हि युष्माकं च तनयस्त्वसौ।
कुटिलायाः कुमारेति पुत्रोऽयं भविताऽव्ययः॥ ४३॥
स्कन्द इत्येव विख्यातो गौरीपुत्रो भवत्वसौ।
गुह इत्येव नाम्ना च ममासौ तनयः स्मृतः॥ ४४॥
महासेन इति ख्यातो हुताशस्यास्तु पुत्रकः।
शारद्वत इति ख्यातः सुतः शरवणस्य च॥ ४५॥
एवमेष महायोगी पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति।
षडास्यत्वान् महाबाहुः षण्मुखो नाम गीयते॥ ४६॥

कार्त्तिकेय के रूप में विख्यात यह तुम्हारा (कृत्तिकाओं का) पुत्र होगा, 'कुमार' के रूप में ज्ञात यह कुटिला का अविनाशी पुत्र होगा; पार्वतीपुत्र के रूप में यह 'स्कन्द' नाम से जाना जाएगा; 'गुह' नाम से यह मेरा (शिव का) पुत्र होगा। अग्नि के पुत्र के रूप में यह 'महासेन' नाम से प्रसिद्ध होगा; तथा शरसमूह से उत्पन्न होने के कारण 'शारद्वत' नाम वाला होगा। इस प्रकार यह योगी समस्त विश्व में प्रसिद्ध होगा। महाबलशाली यह छः मुखों वाला होने के कारण षण्मुख नाम से जाना जायेगा।

इत्येवमुक्त्वा भगवान् शूलपाणिः पितामहम्।
सस्मार दैवतैः सार्द्धं तेऽप्याजग्मुस्त्वरान्विताः॥ ४७॥

ऐसा कहकर भगवान् शूलपाणि ने पितामह ब्रह्मा को समस्त देवताओं के साथ बुलवाया। वे सब शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचे।

प्रणिपत्य च कामारिमुमां च गिरिनन्दिनीम्।
दृष्ट्वा हुताशनं प्रीत्या कुटिलां कृत्तिकास्तथा॥ ४८॥
ददृशुर्बालमत्युग्रं षण्मुखं सूर्यसन्निभम्।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि तेजसा स्वेन देवताः॥ ४९॥

काम के शत्रु (शिव) तथा गिरिजा उमा को प्रणाम करके स्नेहपूर्वक अग्नि, कुटिला तथा कृत्तिकाओं को देखकर उन्होंने सूर्य के समान आभा वाले अत्यंत तेजस्वी षण्मुख बालक को देखा जो अपने तेज से देवताओं के नेत्रों को चकाचौंध कर रहा था।

कौतुकाभिवृताः सर्वे एवमूचुः सुरोत्तमाः।
देवकार्यं त्वया देव कृतं दिव्याऽग्निना तथा॥ ५०॥

कौतुकाभिभूत होकर समस्त देवतागण इस प्रकार कहने लगे-हे भगवन्! आपने, अग्निदेव ने तथा तथा देवी कुटिला ने देवताओं का अत्यंत उपकार किया है।

तदुत्तिष्ठ व्रजामोऽद्य तीर्थमौजसमव्ययम्।
कुरुक्षेत्रं सरस्वत्यामभिषिञ्चाम षण्मुखम्॥ ५१॥

तो आइये-हम सब अनश्वर और तेजस्वी तीर्थ कुरुक्षेत्र में जाते हैं और वहाँ जाकर सरस्वती में षडानन को स्नान कराते हैं।

सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिंनराः।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम्॥५२॥

यह देवताओं, गंधर्वों और किन्नरों की सेना का नायक होगा और भयंकर असुर महिष और तारक का नाश करेगा।

बाढमित्यब्रवीच्छर्वः समुत्तस्थुः सुरास्ततः।
कुमारसहिता जग्मुः कुरुक्षेत्रं महाफलम्॥५३॥

शिव ने 'अच्छा' कहा और समस्त देवतागण उठकर चल पड़े और वे कुमारसहित महान् फलदायक कुरुक्षेत्र में जा पहुँचे।

तत्रैव देवताः सेन्द्रा रुद्रब्रह्मजनार्दनाः।
यत्नमस्याभिषेकार्थं चक्रुर्मुनिगणैः सह॥५४॥

वहाँ इन्द्रसहित रुद्र, ब्रह्मा एवं विष्णु आदि समस्त देवतागण मुनियों के साथ षडानन के अभिषेक की तैयारी करने लगे।

ततोऽम्बुना सप्तसमुद्रवाहिना
नदीजलेनापि महाफलेन।
वरौषधीभिश्च सहस्रमूर्तिभि-
स्तदाभ्यषिञ्चन् गुहमच्युताद्याः॥५५॥

तदनन्तर अच्युतादि समस्त देवतागण सात समुद्रों की ओर जाने वाली नदियों के अत्यंत पवित्र जल से तथा सहस्रों प्रकार की श्रेष्ठ औषधियों से गुह का अभिषेक करने लगे।

अभिषिञ्चति सेनान्यां कुमारे दिव्यरूपिणि।
जगुर्गन्धर्वपतयोपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥५६॥

दिव्य रूप वाले 'कुमार' षडानन का सेनानायक के रूप में अभिषेक होने पर गंधर्व एवं ऋषि उनका गुणगान करने लगे तथा अप्सरागण नृत्य करने लगीं।

अभिषिक्तं कुमारं च गिरिपुत्री निरीक्ष्य हि।
स्नेहादुत्सङ्गगं स्कन्दं मूर्ध्न्यजिघ्रन्मुहुर्मुहुः॥५७॥

गिरिजा उमा उस अभिषिक्त स्कन्द कुमार को देखकर स्नेहवश 'उसे' गोद में लेकर पुनः पुनः उसका माथा चूमने लगीं।

जिघ्रती कार्त्तिकेयस्य अभिषेकार्द्रमाननम्।
भात्यद्रिजा यथेन्द्रस्य देवमाताऽदितिः पुरा॥५८॥

अभिषेक से भीगे हुए कार्तिकेय के माथे को चूमती हुई पार्वती उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार प्राचीन काल में देवमाता अदिति इन्द्र के माथे को चूमती हुये सुशोभित हुईं थीं।

तदाभिषिक्तं तनयं दृष्ट्वा शर्वो मुदं ययौ।
पावकः कृत्तिकाश्चैव कुटिला च यशस्विनी॥५९॥

अभिषिक्त पुत्र को देखकर शिव, अग्नि, कृत्तिकाएँ तथा यशस्विनी कुटिला सब अत्यंत प्रसन्न हुए।

ततोऽभिषिक्तस्य हरः सेनापत्ये गुहस्य तु।
प्रमथांश्चतुरः प्रादाच्छक्रतुल्यपराक्रमान्॥६०॥
घण्टाकर्णं लोहिताक्षं नन्दिसेनं च दारुणम्।
चतुर्थं बलिनां मुख्यं ख्यातं कुमुदमालिनम्॥६१॥

तदनन्तर गुह के सेनापति के रूप में अभिषेक हो जाने पर शिव ने उन्हें इन्द्र के समान पराक्रमी चार प्रमथ प्रदान किये। घण्टाकर्ण, लोहिताक्ष, भयानक नंदीसेन तथा चतुर्थ बलशालियों में विशेष रूप से प्रसिद्ध कुमुदमाली नामक ये चार प्रमथ शिव ने उन्हें प्रदान किये थे।

हरदत्तान् गणान् दृष्ट्वा देवाः स्कन्दस्य नारद।
प्रददुः प्रमथान् स्वान् स्वान् सर्वे ब्रह्मपुरोगमाः॥६२॥

हे नारद! स्कन्द के लिए शिव के द्वारा दिये गए गणों को देखकर ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं ने अपने-अपने प्रमथों को प्रदान किया।

स्थाणुं ब्रह्मा गणं प्रादाद्विष्णुः प्रादाद्गणत्रयम्।
संक्रमं विक्रमं चैव तृतीयं च पराक्रमम्॥६३॥

ब्रह्मा ने उसे अपना गण स्थाणु को दिया तथा विष्णु ने संक्रम, विक्रम तथा पराक्रम नामक तीन गण प्रदान किये।

उत्केश पङ्कज शक्रो रविर्दण्डकपिङ्गलौ।
चन्द्रो मणिं वसुमणिमश्विनौ वत्सनन्दिनौ॥६४॥
ज्योतिर्हुताशनः प्रादाज्ज्वलज्जिह्वं तथा पुरम्।
कुन्दं मुकुन्दं कुसुमं त्रीन् धाताऽनुचरान्ददौ॥६५॥

इन्द्र ने उत्केश एवं पंकज, सूर्य ने दण्ड एवं कपिंगल, चन्द्रमा ने मणि एवं वसुमणि, दोनों अश्विनियों ने वत्स

एवं नन्दी, हुताशन अग्नि ने ज्वलजिह्वा तथा धाता ने कुन्द, मुकुन्द एवं कुसुम ये तीन अनुचर प्रदान किये।

चक्रानुचक्रौ त्वष्टा च वेधातिस्थिरसुस्थिरौ।
पाणित्यजं कालकञ्च प्रादात् पूषा महाबलौ॥६६॥

त्वष्टा ने चक्र और अनुचक्र, वेधा ने अतिस्थिर और सुस्थिर, पूषा ने महाबलशाली पाणित्यज और कालक को प्रदान किया।

स्वर्णमालं घनाह्वं च हिमवान्प्रमथोत्तमौ।
प्रादाद्वेवोच्छ्रितो विन्ध्यस्त्वतिश्रृङ्गं च पार्षदम्॥६७॥

हिमवान् ने समस्त गणों में श्रेष्ठ स्वर्णमास और घनाह्व प्रदान किया, उच्च विन्ध्य ने अतिश्रृंग नामक पार्षद प्रदान किया।

सुवर्चसं च वरुणः प्रददौ चातिवर्चसम्।
संग्रहं विग्रहं चाब्धिर्नागा जयमहाजयौ॥६८॥

वरुण ने सुवर्चा एवं अतिवर्चा, समुद्र ने संग्रह तथा विग्रह एवं नागों ने जय तथा महाराज प्रदान किये।

उन्मादं शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथाऽम्बिका।
घसं चातिघसं वायुः प्रादादनुचरावुभौ॥६९॥

अम्बिका ने उन्माद शंकुवर्ण तथा पुष्पदत्त एवं वायु ने घस और अतिघस नामक दो अनुचर प्रदान किये।

परिघं चटकं भीमं दाहातिदहनौ तथा।
प्रददावंशुमान्पञ्च प्रमथान्षण्मुखाय हि॥७०॥

सूर्य ने परिघ, चटक, भीम, दह, तथा अतिदहन नामक पाँच प्रमथ षडानन को प्रदान किये।

यमः प्रमाथमुन्माथं कालसेनं महामुखम्।
तालपत्रं नाडिजङ्घं षडेवानुचरान्ददौ॥७१॥

यम ने प्रमाथ, उन्माथ, कालसेन, महामुख, तालपत्र तथा नाडिजंघ नामक छः अनुचर प्रदान किये।

सुप्रभं च सुकर्माणं ददौ धाता गणेश्वरौ।
सुव्रतं सत्यसन्धं च मित्रः प्रादाद्विजोत्तम॥७२॥

हे द्विजोत्तम! धाता ने सुप्रभ एवं सुकर्मा नामक दो गणपति प्रदान किये तथा मित्र ने सुव्रत एवं सत्यसन्ध नामक गण दिये।

अनन्तः शङ्कुपीठश्च निकुम्भः कुमुदोऽम्बुजः।
एकाक्षः कुनटी चक्षुः किरीटी कलशोदरः॥७३॥
सूचीवक्त्रः कोकनदः प्रहासः प्रियकोऽच्युतः।
गणाः पञ्चदशैते हि यक्षैर्दत्ता गुहस्य तु॥७४॥

यक्ष ने अनंत, शंकुपीठ, निकुम्भ, कुमुद, अम्बुज, एकाक्ष, कुनटी, चक्षु, किरीटी, कलशोदर, सूचीवक्त्र, कोकनद, प्रहास, प्रियक तथा अच्युत- ये पंद्रह गण प्रदान किये।

कालिन्द्या कलकन्दश्च नर्मदाया रणोत्कटः।
गोदावर्याः सिद्धयात्रस्तमसायाद्रिकम्पकौ॥७५॥
सहस्रबाहुः सीताया वञ्जुलायाः सितोदरः।
मन्दाकिन्यास्तथा गन्दो विपाशायाः प्रियंकरः॥७६॥

कालिन्दी का कालकंद, नर्मदा का रणोत्कट, गोदावरी का सिद्धयात्र, तमसा का अद्रि और कम्पक, सीता का सहस्रबाहु, वञ्जुला का सितोदर, मन्दाकिनी का नन्द तथा विपाशा का प्रियंकर नामक गण था।

ऐरावत्याश्चतुर्दंष्ट्रः षोडशाक्षो वितस्तया।
मार्जारं कौशिकी प्रादात्क्रथक्रौञ्चौ च गौतमी॥७७॥

ऐरावती ने चतुर्दंष्ट्र, वितस्ता ने षोडशाक्ष, कौशिकी ने मार्जार तथा गौतमी ने क्रथ एवं क्रौञ्च प्रदान किये।

बाहुदा शतशीर्षं च वाहा गोनन्दनन्दिकौ।
भीमं भीमरथी प्रादाद्वेगारिं सरयूर्ददौ॥७८॥

बाहुदा ने शतशीर्ष, वाहा ने गोनंद एवं नन्दिक, भीमरथी ने भीम तथा सरयू ने वेगारि प्रदान किये।

अष्टबाहुं ददौ काशी सुबाहुमपि गण्डकी।
महानदी चित्रदेवं चित्रा चित्ररथं ददौ॥७९॥

काशी ने अष्टबाहु, गण्डकी ने सुबाहु, महानदी ने चित्रदेव तथा चित्रा ने चित्ररथ दिया।

कुहूः कुवलयं प्रादान्मधुवर्णं मधूदका।
जम्बूकं धूतपापा च वेणा श्वेताननं ददौ॥८०॥

कुहू ने कुवलय, मधूदका ने मधुवर्ण, धूतपापा ने जम्बूक तथा वेणा ने श्वेतानन को दिया।

श्रुतवर्णं च पर्णासा रेवा सागरवेगिनम्।
प्रभावाऽर्थ सहं प्रादात् काञ्चना कनकेक्षणम्॥८१॥

पर्णासा ने श्रुतवर्ण, रेवा ने सागरवेगी, प्रभावा ने अर्थ और सह तथा काञ्चना ने कनकेक्षण को दिया!

गृध्रपत्रं च विमला चारुवक्त्रं मनोहरा।

धूतपापा महारावं कर्णा विद्रुमसन्निभम्॥८२॥

विमला ने गृध्रपत्र, मनोहरा ने चारुवक्त्र, धूतपापा ने महाराव तथा कर्णा ने विद्रुम एवं सन्निभ को दिया।

सुप्रसादं सुवेणुश्च जिष्णुमोघवती ददौ।

यज्ञवाहुं विशाला च सरस्वत्यो ददुर्गणान्॥८३॥

सुवेणु ने सुप्रसाद, ओघवती ने जिष्णु तथा विशाला ने यज्ञबाहु को, और विभिन्न नदियों ने अपने-अपने गणों को दिया।

कुटिला तनयास्यादाद् दश शक्रबलान् गणान्।

करालं सितकेशं च कृष्णकेशं जटाधराम्॥८४॥

मेघनादं चतुर्दंष्ट्रं विद्युज्जिह्वं दशाननम्।

सोमाप्यायनमेवोग्रं देवयाजिनमेव च॥८५॥

कुटिला ने अपने पुत्र को इन्द्र के समान बलशाली निम्न दस गण प्रदान किये -कराल, सितकेश, कृष्णकेश, जटाधर, मेघनाद, चतुर्दंष्ट्र, विद्युज्जिह्व, दशानन, सोमाप्यायन तथा उग्र देवयाजी।

हंसास्यं कुण्डजठरं बहुग्रीवं हयाननम्।

कूर्मग्रीवं च पञ्चैतान्ददुः पुत्राय कृत्तिकाः॥८६॥

कृत्तिकाओं ने हंसास्य, कुण्डजठर, बहुग्रीव, हयानन तथा कूर्मग्रीव— ये पाँच गण अपने पुत्र को प्रदान किये।

स्थाणुजङ्घं कुम्भवक्त्रं लोहजङ्घं महाननम्।

पिण्डाकारं च पञ्चैतान्ददुः स्कन्दाय चर्षयः॥८७॥

ऋषियों ने स्थाणुजंघा, कुम्भवक्त्र, लोहजंघ, महान्न तथा पिण्डानन ये पांच गण स्कन्द को प्रदान किये।

नागजिह्वं चन्द्रभासं पाणिकूर्मशशिक्षकम्।

चाषवक्त्रं च जम्बूकं ददौ तीर्थः पृथूदकः॥८८॥

पृथूदक तीर्थ ने नागजिह्वा, चन्द्रमास, पाणिकूर्य, शशीक्षक, चापवक्त्र, तथा जम्बूक.नामक गण दिया।

चक्रतीर्थं सुचक्राक्षं मकराक्षं गयाशिरः।

गणं पञ्चशिवं नाम ददौ कनखलं स्वकम्॥८९॥

कनखल ने चक्रतीर्थ, सुचक्राक्ष, मकराक्ष, गयाशिर, तथा अपने पंचशिखा नामक गण को दिया।

वन्धुदत्तं वाजिशिरा बाहुशालं च पुष्करम्।

सर्वौजसं माहिषकं मानसः पिङ्गलं तथा॥९०॥

पुष्कर ने बन्धुदत्त, वाजिशिर, बाहुशाल तथा मानस तीर्थ ने सर्वौजस, माहिषक तथा पिंगल नामक गण प्रदान किये।

रुद्रमौशनसः प्रादात्ततोऽन्यान्मातरो ददुः।

वसुदामां सोमतीर्थः प्रभासो नन्दिनीमपि॥९१॥

इन्द्रतीर्थं विशोकां च उदपानो घनस्वनाम्।

सप्तसारस्वतः प्रादान्मातरश्चतुरोऽद्भुताः॥९२॥

गीतप्रियां माधवीं च तीर्थनेमिं स्मिताननाम्।

एकचूडां नागतीर्थः कुरुक्षेत्रं पलासदाम्॥९३॥

उशनस तीर्थ ने रुद्र तथा मातृगणों ने अन्य गणों को दिया। सोमतीर्थ ने वसुदामा तथा प्रभास ने नंदिनी को दिया। इन्द्रतीर्थ ने विशोका, उदयान ने घनस्वान, तथा सप्तसारस्वत तीर्थ ने अद्भुत चार मातृगण प्रदान किये। गीतप्रिया, माधवी, तीर्थनेमि तथा स्मितानन नागतीर्थ ने एकचूड़ा तथा कुरुक्षेत्र ने पलासदा को दिया।

ब्रह्मयोनिश्चण्डशिलां भद्रकालीं त्रिविष्टपः।

चौण्डीं भैण्डीं योगभैण्डीं प्रादाच्चरणपावनः॥९४॥

ब्रह्मयोनि ने चण्डशिला, त्रिविष्टप ने भद्रकाली, चरणपावन ने चौण्डी, भैण्डी तथा योगभैण्डी को दिया।

सोपानीयां मही प्रादाच्छालिकां मानसो ह्रदः।

शतघण्टां शतानन्दां तथोलूखलमेखलाम्॥९५॥

पद्मावतीं माधवीं च ददौ बदरिकाश्रमः।

सुषमामेकचूडां च देवी धमधमां तथा॥९६॥

तत्क्राथिनी वेदमित्रां केदारो मातरो ददौ।

सुनक्षत्रां कद्रूलां च सुप्रभातं सुमङ्गलाम्॥९७॥

देवमित्रां चित्रसेनां ददौ रुद्रमहालयः।

कोटरामूर्द्धवेणीं च श्रीमती बहुपुत्रिकाम्॥९८॥

पलितां कमलाक्षीं च प्रयागो मातरो ददौ।

सुपलां मधुकुम्भां च ख्यातिं दहदहां पराम्॥९९॥

प्रादात् खटकटां चान्यां सर्वपापविमोचनः।

संतानिकां विकलिकां क्रमश्चत्वरवासिनीम्॥१००॥

मही ने सोपानिया तथा मानस सरोवर ने शालिका, शतघण्टा, शतानन्दा तथा उलूखमेखला को दिया।

बद्रिकाश्रम ने पद्मावती और माधवी को तथा सुषमा एकचूड़ा तथा देवी धमधमा को दिया। केदार तीर्थ ने उत्क्राथनी, वेदमित्रा, सुनक्षत्रा, कद्रूला सुप्रभाता तथा सुमंगला मातृगणों को दिया। रुद्रमहालय ने देवमित्रा, चित्रसेना, कोटरा, ऊर्ध्ववेणी तथा सौभाग्यशाली पुत्रिका को दिया। प्रयाग ने पलिता, कमलाक्षी, सूपला, मधुकुम्भा, ख्याति, दहदहा तथा परा मातृगणों को दिया। सर्वपापविमोचन ने खटकटा, संतानिका, विकलिका तथा त्वरवासिनी को दिया।

जलेश्वरीं कुक्कुटिकां सुदामां लोहमेखलाम्।
वपुष्मत्युल्मुकाक्षी च कोकनामा महाशनी।
रौद्राकर्कटिकातुण्डा श्वेततीर्थो ददौ त्विमाः॥१०१॥

श्वेततीर्थ ने जलेश्वरी, कुक्कुटिका, सुदामा, लोहमेखला, वपुष्मती, उल्मुकाक्षी, कोकनामा, महाशनी, रौद्राकर्कटिका, तुण्डा इन सब को दिया।

एतानि भूतानि गणांश्च मातरो
दृष्ट्वा महात्मा विनतातनूजः।
ददौ मयूरं स्वसुतं महाजवं
तथाऽरुणस्ताम्रचूडं च पुत्रम्॥१०२॥

इन भूतों, गणों तथा मातरों को देखकर विनतापुत्र गरुड़ ने अपने वेगवान् पुत्र मयूर तथा अरुण ने अपने पुत्र ताम्रचूड़ को दिया।

शक्तिं हुताशोऽद्रिसुता च वस्त्रं
दण्डं गुरुः सा कुटिला कमण्डलुम्।
मालां हरिः शूलधरः पताकं
कण्ठे च हारं मघवानुरस्तः॥१०३॥

अग्नि ने शक्ति दी; अद्रिसुता ने वस्त्र दिया; गुरु वृहस्पति ने दण्ड तथा कुटिला ने कमण्डल दिया। हरि ने माला दी; शूलधारी शिव ने पताका दी तथा इन्द्र ने अपने गले से माला दी।

गणैर्वृतो मातृभिरन्वयातो
मयूरसंस्थो वरशक्तिपाणिः।
सैनाधिपत्ये स कृतो भवेन
रराज सूर्येव महावपुष्मान्॥१०४॥

गणों से घिरा हुआ, मातृगणों से अनुगत, मयूर पर स्थित, हाथ में श्रेष्ठ शक्ति को धारण किये हुए तथा शिव के द्वारा सेनाधिपति के रूप में प्रतिष्ठित वह महाशरीरधारी षडानन कार्तिकेय सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे कार्त्तिकेयोत्पत्तौ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(तारक तथा महिषासुर का वध)

पुलस्त्य उवाच

सेनापत्येऽभिषिक्तस्तु कुमारो दैवतैरथ।
प्रणिपत्य भवं भक्त्या गिरिजां पावकं शुचिम्॥१॥
षट् कृत्तिकाश्च शिरसां प्रणम्य कुटिलामपि।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य इदं वचनमब्रवीत्॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— देवताओं के द्वारा सेनापति के रूप में अभिषिक्त किये जाने पर कुमार ने भक्तिपूर्वक गिरिजा को नमस्कार किया तथा पवित्र अग्नि, छः कृत्तिकाओं, तथा कुटिला को प्रणाम करके एवं ब्रह्मा को नमस्कार करके उसने इस प्रकार के वचन कहे—

कुमार उवाच

नमोऽस्तु भवतां देवा ओं नमोऽस्तु तपोधनाः।
युष्मत्प्रसादाज्जेष्यामि शत्रू महिषतारकौ॥३॥

कुमार ने कहा— हे देवताओं! आप को नमस्कार है। हे तपोधनों! आप सब को नमस्कार है। आप की कृपा से मैं निश्चय ही महिष और तारक दोनों शत्रुओं को जीत लूँगा।

शिशुरस्मि न जानामि वक्तुं किंचन देवताः।
दीयतां ब्रह्मणा सार्द्धमनुज्ञा मम साम्प्रतम्॥४॥

हे देवगण! मैं शिशु हूँ; अतः नहीं जानता कि आपसे किस प्रकार बोलना चाहिये। इसलिए ब्रह्मा के सहित आप सब मुझे अब आज्ञा प्रदान कीजिए।

इत्येवमुक्ते वचने कुमारेण महात्मना।
मुखं निरीक्षन्ति सुराः सर्वे विगतसाध्वसाः॥५॥

महानुभाव कुमार के इस प्रकार कहने पर समस्त देवतागण भयहीन होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

शङ्करोऽपि सुतस्नेहात् समुत्थाय प्रजापतिम्।
आदाय दक्षिणे पाणौ स्कन्दान्तिकमुपागमत्॥६॥

शिव भी पुत्रस्नेहवश उठकर ब्रह्मा को अपने दाहिने हाथ से साथ लेकर स्कन्द के पास पहुँच गए।

अथोमा प्राह तनयं पुत्र एह्येहि शत्रुहन्।
वन्दस्व चरणौ दिव्यौ विष्णोर्लोकनमस्कृतौ॥७॥

तदनन्तर उमा ने कहा— हे मेरे शत्रुविनाशक पुत्र! यहाँ आओ, यहाँ आओ। विष्णु के समस्त लोकों के वंदनीय चरणों में नमस्कार करो।

ततो विहस्याह गुहः कोऽयं मातर्वदस्व माम्।
यस्यादरात् प्रणामोऽयं क्रियते मद्विधैर्जनैः॥८॥

तदनन्तर गुह ने हँसकर कहा— हे माता! मुझे बताइये! यह कौन है जिसके लिए मेरे जैसे जन आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं?

तं माता प्राह वचनं कृते कर्मणि पद्मभूः।
वक्ष्यते तव योऽयं हि महात्मा गरुडध्वजः॥९॥

गुह से माता ने कहा— जो कार्य तुम्हें कहा गया है उसे तुम जब सम्पन्न कर लोंगे तब ब्रह्मा तुम्हें बताएँगे कि यह महातमा गरुडध्वज कौन हैं?

केवलं त्विह मां देवस्त्वत्पिता प्राह शङ्करः।
नान्यः परतरोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः॥१०॥

मुझे तुम्हारे पिता शिव ने केवल इतना ही बताया है कि इनसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है; न ही हम और न ही अन्य कोई देहधारी!

पार्वत्या गदिते स्कन्दः प्रणिपत्य जनार्दनम्।
तस्थौ कृताञ्जलिपुटस्त्वाज्ञां प्रार्थयतेऽच्युतात्॥११॥

पार्वती के इस प्रकार कहने पर स्कन्द विष्णु को प्रणाम करते हुये दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए तथा उनसे आज्ञा देने के लिए प्रार्थना करने लगे।

कृताञ्जलिपुटं स्कन्दं भगवान् भूतभावनः।
कृत्वा स्वस्त्ययनं देवो ह्यनुज्ञां प्रददौ ततः॥१२॥

हाथ जोड़कर आदरपूर्वक खड़े हुए स्कन्द को भगवान् भूतभावन विष्णु ने आशीर्वाद देकर इस प्रकार आज्ञा दी-

नारद उवाच

यत्तत् स्वस्त्ययनं पुण्यं कृतवान् गरुडध्वजः।
शिखिध्वजाय विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१३॥

नारद ने कहा— हे ब्रह्मर्षि! गरुड़ध्वज विष्णु ने शिखिध्वज (स्कन्द) को जो पुण्य आशीर्वाद दिया उसके विषय में आप मुझे विस्तार से बताइये!

पुलस्त्य उवाच

शृणु स्वस्त्ययनं पुण्यं यत्प्राह भगवान्हरिः।
स्कन्दस्य विजयार्थाय महिषस्य वधाय च॥१४॥

पुलस्त्य ने कहा— भगवान् हरि ने स्कन्द के विजय तथा महिष के संहार के लिए जो पुण्य आशीर्वचन कहे- उसे सुनिये!

स्वस्ति ते कुरुतां ब्रह्मा पद्मयोनी रजोगुणः।
स्वस्ति चक्राङ्कितकरो विष्णुस्ते विदधात्वजः॥१५॥

पद्मयोनि रजोगुणी ब्रह्मा तुम्हारा कल्याण करें; अजन्मा चक्रपाणि विष्णु तुम्हारा कल्याण करें!

स्वस्ति ते शङ्करो भक्त्या सपत्नीको वृषध्वजः।
पावकः स्वस्ति तुभ्यं च करोतु शिखिवाहनः॥१६॥

भक्तियुक्त उमा से सपत्नीक बने वृषध्वज शङ्कर तुम्हारा कल्याण करें; शिखिवाहन अग्नि तुम्हारा कल्याण करें!

दिवाकरः स्वस्ति करोस्तु तुभ्यं
सोमः सभौमः सबुधो गुरुश्च।
काव्यः सदा स्वस्तिकरोतु तुभ्यं
शनैश्चरः स्वस्त्ययनं करोतु॥१७॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध एवं बृहस्पति तुम्हारा कल्याण करें। शुक्र सदैव तुम्हारा कल्याण करें तथा शनि सदैव तुम्हें आशीर्वाद दे।

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः
क्रतुर्वसिष्ठो भृगुरङ्गिराश्च।
मृकण्डुजस्ते कुरुतां हि स्वस्ति
स्वस्ति सदा सप्त महर्षयश्च॥१८॥

मरिचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु वसिष्ठ, भृगु अंगिरा तथा मार्कण्डेय ये सप्तर्षि सदैव तुम्हारा कल्याण करें।

विश्वेऽश्विनौ साध्यमरुद्गणाग्नयो
दिवाकराः शूलधरा महेश्वराः।
यक्षाः पिशाचा वसवोऽथ किन्नराः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदोद्यतास्त्वमी॥ १९॥

विश्वेदेवा, दोनों अश्विनी, साध्य, मरुद्गण, अग्नि, आदित्यगण, शूलधारी रुद्रगण, यक्ष, पिशाच, वसु तथा किन्नर सदैव तुम्हारा कल्याण करने के लिए तत्पर रहें।

नागाः सुपर्णाः सरितः सरांसि
तीर्थानि पुण्यायतनाः समुद्राः।
महावला भूतगणा गणेन्द्राः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदा समुद्यताः॥ २०॥

नाग, सुपर्ण, सरिताएँ, सरोवर, तीर्थ, पुण्यविस्तार वाले समुद्र, महाबलशाली भूतगण तथा गणेन्द्र सदैव तुम्हारा कल्याण करने के लिए उद्यत रहें।

स्वस्ति द्विपादिकेभ्यस्ते चतुष्पादेभ्य एव च।
स्वस्ति ते बहुपादेभ्यस्त्वपादेभ्योऽप्यनामयम्॥ २१॥

द्विपदधारियों से तुम्हारी रक्षा हो; चतुष्पादों से तुम्हारा कल्याण हो, बहुपादों से तुम्हारा कल्याण हो; तथा निष्पादों से तुम्हारा अजस्र कल्याण हो!

प्राचीं दिग् रक्षतां वज्री दक्षिणां दण्डनायकः।
पाशी प्रतीचीं रक्षतु लक्ष्मांशुः पातु चोत्तराम्॥ २२॥

इन्द्र तुम्हारी पूर्व दिशा की रक्षा करें; दण्डनायक दक्षिण की, पाशधरी वरुण पश्चिमी दिशा की तथा चन्द्रमा उत्तर दिशा की रक्षा करें।

वह्निर्दक्षिणपूर्वां च कुबेरो दक्षिणापराम्।
प्रतीचीमुत्तरां वायुः शिवः पूर्वोत्तरामपि॥ २३॥

अग्नि दक्षिणपूर्व की, कुबेर दक्षिणपश्चिम की, वायु पश्चिमोत्तर की तथा शिव उत्तरपूर्व की रक्षा करें।

उपरिष्टाद् ध्रुवः पातु अधस्ताच्च धराधरः।
मुसली लाङ्गली चक्री धनुष्मानन्तरेषु च्॥ २४॥

ऊपरी क्षेत्र की रक्षा ध्रुव तथा नीचे के क्षेत्र की रक्षा धराधर (शेष) करें; तथा मूसल, लाङ्गल वज्र तथा धनुपधारी मध्य से रक्षा करें।

वाराहोऽम्बुनिधौ पातु दुर्गे पातु नृकेसरी।
सामवेदध्वनिः श्रीमान् सर्वतः पातु माधवः॥ २५॥

वराह तुम्हारी समुद्र में रक्षा करें; नृकेसरी तुम्हारी दुर्ग में रक्षा करें। सामवेदध्वनिरूप श्रीमान् माधव सब ओर से तुम्हारी रक्षा करें।

पुलस्त्य उवाच

एवं कृतस्वस्त्ययनो गुहः शक्तिधरोऽग्रणीः।
प्रणिपत्य सुरान् सर्वान् समुत्पतत भूतलात्॥ २६॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार आशीर्वाद दिए जाने पर वे शक्तिधारी समस्त अग्रणी, देवताओं को नमस्कार करके भूमि से उठ खड़े हुए।

तमन्वेव गणाः सर्वे दत्ता ये मुदितै सुरैः।
अनुजग्मुः कुमारं ते कामरूपा विहङ्गमाः॥ २७॥

प्रसन्नचित्त देवताओं ने जो गण उन्हें प्रदान किये थे वे उनका अनुगमन कर रहे थे; तथा स्वेच्छा रूपधारी पक्षी उनके पीछे चल रहे थे।

मातरश्च तथा सर्वाः समुत्पेतुर्नभस्तलम्।
समं स्कन्देन बलिना हन्तुकामा महासुरान्॥ २८॥

महान् असुरों का वध करने के लिये तत्पर समस्त माताएँ बलशाली स्कन्द के साथ आकाशमार्ग में उड़ रही थीं।

ततः सुदीर्घमध्वानं गत्वा स्कन्दोऽब्रवीद्गणान्।
भूम्यां तूर्णं महावीर्याः कुरुध्वमवतारणम्॥ २९॥

पर्याप्त मार्ग तय करने के पश्चात् कार्तिकेय ने बलशाली गणों को भूमि पर उतरने का आदेश दिया।

गणा गुहवचः श्रुत्वा अवतीर्य महीतलम्।
आरात् पतन्तस्तद्देशं नादं चक्रुर्भयंकरम्॥ ३०॥

गुह के वचन को सुनकर गणों ने पृथ्वी पर उतरकर उस प्रदेश के समीप पहुँचते हुए भयंकर नाद किया।

तन्निनादो महीं सर्वामापूर्य च नभस्तलम्।
विवेशार्णवरन्ध्रेण पातालं दानवालयम्॥ ३१॥

वह भयंकर गर्जना समस्त पृथ्वी तथा नभमण्डल को परिपूर्ण करके समुद्ररन्ध्र से पाताललोक में दानवों के निवास तक पहुँच गई।

श्रुतः स महिषेणाथ तारकेण च धीमता।
विरोचनेन जम्भेन कुजम्भेनासुरेण च॥ ३२॥

वह गर्जना महिष ने, बुद्धिमान् तारक ने, विरोचन ने, जम्भ ने तथा कुजम्भ असुर ने सुनी।

ते श्रुत्वा सहसा नादं वज्रपातोपमं दृढम्।
किमेतदिति संचिन्त्य तूर्णं जग्मुस्तदान्धकम्॥ ३३॥

वज्रपात के समान भयंकर गर्जना को सुनकर वे सब 'यह क्या है?' इस प्रकार सोचते हुए शीघ्र ही अन्धक के पास पहुँचे।

ते समेत्यान्धकेनैव समं दानवपुंगवाः।
मन्त्रयामासुरुद्विग्नास्तं शब्दं प्रति नारद॥ ३४॥

हे नारद! उद्विग्न मानस वाले वे समस्त श्रेष्ठ दानव उस गर्जना के विषय में अन्धक के साथ मन्त्रणा करने लगे।

मन्त्रयत्सु च दैत्येषु भूतलात् सूकराननः।
पातालकेतुर्दैत्येन्द्रः संप्राप्तोऽथ रसातलम्॥ ३५॥

जब दैत्यगण मन्त्रणा में लीन थे तभी सूकर के मुख वाला दैत्येन्द्र पातालकेतु भूमितल से रसातल को पहुँचा।

स बाणविद्धो व्यथितः कम्पमानो मुहुर्मुहुः।
अब्रवीद्वचनं दीनं समभ्येत्यान्धकासुरम्॥ ३६॥

बाणों से आविद्ध, अत्यंत दुःखी तथा पुनः-पुनः काँपता हुआ पातालकेतु अन्धकासुर के पास पहुँचकर अत्यंत दीन वचन कहने लगा—

पातालकेतुरुवाच

गतोऽहमासं दैत्येन्द्र गालवस्याश्रमं प्रति।
तं विध्वंसयितुं यत्नः समारब्धं बलान्मया॥ ३७॥

हे दानवराज! मैं ऋषि गालव के आश्रम में गया था। वहाँ मैं बलपूर्वक उसका विध्वंस करने के लिये प्रयत्न करने लगा।

यावत्सूकररूपेण प्रविशामि तमाश्रमम्।
न जाने तं नरं राजन्येन मे प्रहितः शरः॥ ३८॥

हे राजन्! जब मैं सूकर के वेश में उस आश्रम में प्रवेश कर रहा था, तभी एक अज्ञात व्यक्ति का बाण मुझ पर आ गिरा।

शरसंभिन्नजत्रुश्च भयात् तस्य महाजवः।
प्रणष्ट आश्रमात्तस्मात्स च मां पृष्ठतोऽन्वगात्॥ ३९॥

उस बाण से मेरे गले की हड्डी टूट गई। भय के कारण मैं आश्रम से निकल पड़ा और वह व्यक्ति भी अत्यंत वेग से मेरे पीछे आया।

तुरङ्गखुरनिर्घोषः श्रूयते परमोऽसुर।
तिष्ठ तिष्ठेति वदतस्तस्य शूरस्य च पृष्ठतः।
तद्भयादस्मि जलधिं संप्राप्तो दक्षिणार्णवम्॥ ४०॥

पातालकेतु ने कहा— हे व्यक्ति रुक-जाओ, रुक जाओ, इस प्रकार चिल्लाते हुई मेरा पीछा कर रहा था। उस व्यक्ति के भय के कारण मैं समुद्रतट पर आ पहुँचा। वह दक्षिण समुद्र था।

यावत्पश्यामि तत्रस्थान्नानावेषाकृतीन्नरान्।
केचिद्गर्जन्ति घनवत् प्रतिगर्जन्ति चापरे॥ ४१॥

जब मैंने उस स्थान तथा वहाँ पर रहने वाले विभिन्न वेषधारी लोगों को देखा तो वह कुछ घनघोर बादलों के समान गर्जना कर रहे थे तथा कुछ अन्य उस गर्जना के उत्तर में प्रतिगर्जना कर रहे थे।

अन्ये चोचुर्वयं नूनं निघ्नामो महिषासुरम्।
तारकं घातयामोऽद्य वदन्त्यन्ये सुतेजसः॥ ४२॥

कुछ अन्य कह रहे थे— हम निश्चय ही महिषासुर को मार डालेंगे। कुछ अन्य महान् तेजस्वी कह रहे थे— हम आज ही तारकासुर को मार डालेंगे।

तच्छ्रुत्वा सुतरां त्रासो मम जातोऽसुरेश्वर।
महार्णवं परित्यज्य पतितोऽस्मि भयातुरः॥ ४३॥
धरण्यां विवृतं गर्तं स मामन्वपतद्बली।
तद्भयात् संपरित्यज्य हिरण्यपुरमात्मनः॥ ४४॥

हे असुरेश्वर! यह सुनकर मैं अत्यंत भयभीत हो गया। महासागर को छोड़कर मैं भूमि के एक विस्तृत विवर में गिर पड़ा। उस बलशाली ने गिरते हुए भी मेरा पीछा किया। मैंने उसके भय के कारण हिरण्यपुर को छोड़ दिया।

तवान्तिकमनुप्राप्तः प्रसादं कर्तुमर्हसि।
तच्छ्रुत्वा चान्धको वाक्यं प्राह मेघस्वनं वचः॥ ४५॥
न भेतव्यं त्वया तस्मात् सत्यं गोप्तास्मि दानव।
महिषस्तारकश्चोभौ बाणश्च बलिनां वरः॥ ४६॥

अनाख्यायैव ते वीरास्त्वन्धकं महिषादयः।
स्वपरिग्रहसंयुक्ता भूमिं युद्धाय निर्ययुः॥४७॥

हिरण्यपुर को छोड़कर आपके पास आ पहुँचा। अब आप मुझ पर कृपा कीजिए। यह सुनकर अन्धक ने मेघगर्जना के समान निम्न वचन कहे। हे दानव! भयभीत न होओ; मैं निश्चय ही तुम्हारी रक्षा करूँगा। महिष और तारक दोनों बलशालियों में श्रेष्ठ बाण मुझ अन्धक को बताए बिना ही महिषादि वीर अपने अनुयायियों और मित्रों सहित भूमि पर युद्ध के लिये जा चुके हैं।

यत्र ते दारुणाकारा गणाश्चक्रुर्महास्वनम्।
तत्र दैत्याः समाजग्मुः सायुधाः सबला मुने॥४८॥

हे मुनि! षडानन के वे भयानक आकृति वाले गण जहाँ भयंकर गर्जना कर रहे थे वहीं पर अपने सैनिकों तथा आयुधों सहित ये दैत्यगण भी आ पहुँचे।

दैत्यानापततो दृष्ट्वा कार्त्तिकेयगणास्ततः।
अभ्यद्रवन्त सहसा स चोग्रो मातृमण्डलः॥४९॥

तदनन्तर दैत्यों को आते देखकर कार्तिकेय के गण तथा भयानक मातृमण्डल उनकी ओर दौड़ पड़े।

तेषां पुरस्सरः स्थाणुः प्रगृह्य परिघं बली।
निपूदयत् परबलं क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव॥५०॥

उनमें सबसे आगे बलशाली स्थाणु था जिसने एक परिघ को लेकर समस्त शत्रुसैन्य को उसी प्रकार नष्ट कर दिया था, जिस प्रकार क्रुद्ध रुद्र पशुओं को नष्ट करते हैं।

तं निघ्नन्तं महादेवं निरीक्ष्य कलशोदरः।
कुठारं पाणिनादाय हन्ति सर्वान् महासुरान्॥५१॥

उस बलशाली महादेव स्थाणु को इस प्रकार मारते हुए देखकर कालशोदर हाथ में कुठार लेकर अनेक महासुरों को मारने लगा।

ज्वालामुखो भयंकरः करेणादाय चासुरम्।
सरथं सगजं साश्वं विस्तृते वदनेऽक्षिपत्॥५२॥

भयंकर ज्वालामुख हाथ से एक असुर को पकड़कर उसे उसके रथ, गज और अश्व सहित अपने मुँह में भरने लगा।

दण्डकश्चापि संक्रुद्धः प्रासपाणिर्महासुरम्।
सवाहनं प्रक्षिपति समुत्पाट्य महार्णवे॥५३॥

क्रोधित दण्डक ने भी प्रास को हाथ में लेकर महासुर को वाहन सहित खींचकर महासमुद्र में फेंक दिया।

शङ्कुकर्णश्च मुसली हलेनाकृष्य दानवान्।
संचूर्णयति मन्त्रीव राजानं प्रासभृद् वशी॥५४॥

मूसलधारी शंकुकर्ण हल से दानवों को खींचकर उसी प्रकार उनके टुकड़े-२ करने लगा जिस प्रकार प्रासधारी बलशाली व्यक्ति अङ्गों सहित राजा के टुकड़े-२ कर देता है।

खड्गचर्मधरो वीरः पुष्पदन्तो गणेश्वरः।
द्विधा त्रिधा च बहुधा चक्रे दैतेयदानवान्॥५५॥

खड्गचर्मधारी वीर गणेश्वर पुष्पदन्त दानवों के दो, तीन, और अनेक टुकड़े करने लगा।

पिङ्गलो दण्डमुद्यम्य यत्र यत्र प्रधावति।
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते राशयः शावदानवैः॥५६॥

पिंगल अपना दण्ड उठाकर जिस-जिस दिशा में दौड़ता था, उस उस दिशा में दानवों के शवों का ढेर दिखाई देता थे।

सहस्रनयनः शूलं भ्रामयन्वै गणाग्रणीः।
निजघानासुरान्वीरः सवाजिरथकुञ्जरान्॥५७॥

गणों के अग्रणी वीर सहस्रनयन ने अपने शूल को घुमाते हुए अनेक असुरों को उनके घोड़ों, रथों और हाथियों सहित मार डाला।

भीमो भीमशिलावर्षैः स पुरस्सरतोऽसुरान्।
निजघान यथैवेन्द्रो वज्रवृष्ट्या नगोत्तमान्॥५८॥

भीम ने भयंकर शिलाओं की वर्षा करते हुए अनेक असुरों को उसी प्रकार मार डाला जिस प्रकार इन्द्र ने वज्रवृष्टि से पर्वतों को नष्ट कर दिया था।

रौद्रः शकटचक्राक्षो गणः पञ्चशिखो बली।
भ्रामयन्मुद्गरं वेगान्निजघान बलाद्रिपून्॥५९॥

शकटचक्र नामक पाँच शिखओं वाले बलशाली गण ने मुद्गर घूमाते हुये शत्रुओं को बलपूर्वक मार डाला।

गिरिभेदी तलेनैव सारोहं कुञ्जरं रणे।
भस्म चक्रे महावेगो रथं च रथिना सह॥६०॥

महावेगशाली गिरिभेदी ने युद्धभूमि में हाथी को उसके

सवार सहित और रथ को उसके रथी सहित हाथ की हथेली से ही भस्मसात कर दिया।

नाडीजङ्घोऽङ्घ्रिपातैश्च मुष्टिभिर्जानुनाऽसुरान्।
कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जघान बलवान्मुने॥६१॥

हे मुनि! बलवान् नाडीजंघ ने अपने वज्रतुल्य कीलप्रहारों, मुक्कों, घुटनों तथा अंघ्रिप्रहारों से अनेक असुरों को मार डाला।

कूर्मग्रीवो ग्रीवयैव शिरसा चरणेन च।
लुण्ठनेन तदा दैत्यान्निजघान सवाहनान्॥६२॥

कूर्मग्रीव ने अपनी ग्रीवा, सिर तथा चरणों के प्रहारों से अनेक दैत्यों को उनके वाहन सहित नष्ट कर दिया।

पिण्डाकरस्तु तुण्डेन शृङ्गाभ्यां च कलिप्रिय।
विदारयति संग्रामे दानवान् समरोद्धतान्॥६३॥

हे नारद! पिण्डारक ने अपनी सूँड तथा सींगों से युद्ध के लिये उद्धत होकर आए हुये अनेक दानवों को नष्ट कर डाला।

ततो दृष्ट्वैव वध्यमानं गणेश्वरैः।
प्रदुद्रावाथ महिषस्तारकश्च गणाग्रणीः॥६४॥

अपने अतुलनीय सैन्यबल को गणेश्वरों के द्वारा नष्ट किये जाते हुए देखकर सेनानायक महिष और तारक ने गणसेना का पीछा किया!

ते हन्यमानाः प्रमथा दानवाभ्यां वरायुधैः।
परिवार्य समन्तात्ते युयुधुः कुपितास्तदा॥६५॥

जब दोनों दानवों ने अपने श्रेष्ठ आयुधों से प्रमथों पर भयानक प्रहार किया तो वे क्रोधित होकर इकट्ठे उनसे युद्ध करने लगे।

हंसास्यः पट्टिशेनाथ जघान महिषासुरम्।
षोडशास्यस्त्रिशूलेन शतशीर्षो वरासिना॥६६॥

हंसास्य ने पट्टिश से, षोडशाक्ष ने त्रिशूल से और शतशीर्ष ने भयानक तलवार से महिषासुर पर प्रहार किया ।

श्रुतायुधस्तु गदया विशोको मुसलेन तु।
बन्धुदत्तस्तु शूलेन मूर्ध्नि दैत्यमताडयत्॥६७॥

श्रुतायुध ने गदा से, विशोक ने मूसल से तथा बंधुदत्त ने शूल से दैत्य के सिर पर मारा।

तथान्यैः पार्षदैर्युद्धे शूलशक्त्यृष्टिपट्टिशैः।
नाकम्पत् ताड्यमानोऽपि मैनाक इव पर्वतः॥६८॥

तारको भद्रकाल्या च तथोलूखलया रणे।
वध्यते चैकचूडाया दार्यते परमायुधैः॥६९॥

इसी प्रकार अन्य पार्षदों द्वारा युद्ध में शूल, शक्ति, ऋष्टि एवं पट्टिशों से ताडित होने पर भी वह मैनाक पर्वत के सदृश अडिग रहा। रण में भद्रकाली, उलूखला एवं एकचूडा ने श्रेष्ठ आयुधों से तारक के ऊपर प्रहार किया।

तौ ताड्यमानौ प्रमथैर्मातृभिश्च महासुरौ।
न क्षोभं जग्मतुर्वीरौ क्षोभयन्तौ गणानपि॥७०॥

प्रमथों और मातृगणों के द्वारा निरन्तर प्रहार किये जाने पर भी वे दोनों महासुर तनिक भी विचलित नहीं हुए; अपितु दोनों वीर निरन्तर गणों को ही क्षुब्ध करते रहे।

महिषो गदया तूर्णं प्रहारैः प्रमथानथ।
पराजित्य प्राधावत् कुमारं प्रति सायुधः॥७१॥

गदा के भयंकर प्रहारों से प्रमथों को पराजित करके आयुधधारी महिष कुमार षडानन की ओर दौड़ा।

तमापतन्तं महिषं सुचक्राक्षो निरीक्ष्य हि।
चक्रमुद्यम्य संक्रुद्धो रुरोध दनुनन्दनम्॥७२॥

सुचक्राक्ष ने आक्रमण करने के लिये आते हुए महिष को देखा और अत्यंत क्रुद्ध होकर चक्र उठाकर दनुनंदन महिषासुर को रोका।

गदाचक्राङ्कितकरौ गणासुरमहारथौ।
अयुध्येतां तदा ब्रह्मन् लघु चित्रं च सुष्ठु च॥७३॥

गदा और चक्र हाथ में लिये हुए महारथी गण तथा असुर अत्यंत दर्शनीय, सहज तथा सुष्ठु युद्ध लड़ रहे थे।

गदां मुमोच महिषः समाविध्य गणाय तु।
सुचक्राक्षो निजं चक्रमुत्सर्जासुरं प्रति॥७४॥

महिषासुर ने गण की ओर लक्ष्य करके गदा को छोड़ा और उसके प्रतिकार में सुचक्राक्ष ने अपने चक्र को असुर की ओर छोड़ा।

गदां छित्त्वा सुतीक्ष्णारं चक्रं महिषमाद्रवत्।
तत उच्चुक्रुशुर्दैत्यास हा हतो महिषस्त्विति॥७५॥

गदा को छिन्न-भिन्न करके अत्यंत तीक्ष्ण अरों वाला

चक्र महिपासुर की ओर दौड़ा। तदनन्तर दैत्य चिल्लाने लगे— हाय! महिष मारा गया।

तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवद्बाणः प्रासमाविध्य वेगवान्।
जघान चक्रं रक्ताक्षः पञ्चमुष्टिशतेन हि॥७६॥

यह सुनकर अत्यंत वेगवान् बाण अपनी तलवार को सुचक्राक्ष को लक्ष्य करके उसकी ओर दौड़ा। उस रक्ताक्ष ने अपनी मुष्टि के पांच सौ प्रहारों से चक्र को नष्ट कर दिया।

पञ्चबाहुशतेनापि सुचक्राक्षं बबन्ध सः।
वलवानपि बाणेन निष्प्रयत्न गतिः कृतः॥७७॥

अपनी पांच सौ भुजाओं से उसने सुचक्राक्ष को बांध लिया। अत्यंत शक्तिशाली होने पर भी सुचक्राक्ष बाण के द्वारा निष्क्रिय कर दिया गया।

सुचक्राक्षं सचक्रं हि बद्धं बाणासुरेण हि।
दृष्ट्वाऽद्रवद्गदापाणिर्मकराक्षो महाबलः॥७८॥

बाण के द्वारा सुचक्राक्ष एवं उसके चक्र को निष्क्रिय किये जाते हुए देखकर गदा हाथ में लिये हुए बलशाली मकराक्ष उसकी ओर दौड़ा।

गदया मूर्ध्नि बाणं हि निजघान महाबलः।
वेदनार्त्तो मुमोचाथ सुचक्राक्षं महासुरः।
स चापि तेन संयुक्तो व्रीडायुक्तो महामनाः॥७९॥
स संग्रामं परित्यज्य सालिग्राममुपाययौ।
बाणोऽपि मकाराक्षेण ताडितोऽभूत्पराङ्मुखः॥८०॥

महाबलशाली मकराक्ष ने गदा से बाणासुर के सिर पर प्रहार किया। वेदना से पीड़ित होकर उस महासुर ने सुचक्राक्ष को छोड़ दिया। परंतु मकराक्ष का सामना होने के कारण लज्जित होकर वह शालिग्राम की ओर चला गया। मकराक्ष के द्वारा आहत बाण भी युद्धभूमि से भाग खड़ा हुआ।

अभज्यत बलं सर्वं दैत्यानां सुरतापस।
ततः स्वबलमीक्ष्यैव प्रभग्नं तारको बली।
खड्गोद्यतकरो दैत्यः प्रदुद्राव गणेश्वरान्॥८१॥

हे नारद! दैत्यों का समस्त सैन्यबल नष्ट हो गया। अपने सैन्यबल को छिन्न-भिन्न देखकर बलशाली तारक हाथ में खड्ग उठाकर गणेश्वर के पीछे भागा।

ततस्तु तेनाप्रतिमेन सासिना
ते हंसवक्त्रप्रमुखा गणेश्वराः।
समातरश्चापि पराजिता रणे
स्कन्दं भयार्त्ताः शरणं प्रपेदिरे॥८२॥

खड्ग धारण किये हुए उस अनुपम योद्धा (तारकासुर) के द्वारा पराजित हंसवक्त्रादि गणेश्वर तथा मातृगण भयभीत होकर षडानन की शरण में जा पहुँचे।

भग्नान् गणान् वीक्ष्य महेश्वरात्मज
स्तं तारकं सासिनमापतन्तम्।
दृष्ट्वैव शक्त्या हृदये बिभेद
स भिन्नमर्मा न्यपतत् पृथिव्याम्॥८३॥

महेश्वरपुत्र षडानन ने अपने गणों को व्याकुल तथा तारकासुर को खड्गधारण करके आक्रमण के लिए आते हुए देखकर शक्ति से उसके हृदय को विदीर्णकर दिया। वह तारकासुर मर्माहत होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

तस्मिन्हते भ्रातरि भग्नदर्पो
भयातुरोऽभून्महिषो महर्षे।
संत्यज्य संग्रामशिरो दुरात्मा
जगाम शैलं स हिमाचलाख्यम्॥८५॥

हे महर्षि! अपने भ्राता के मारे जाने पर महिषासुर का गर्व चूर-चूर हो गया। भयभीत होकर वह दुष्ट युद्धभूमि को छोड़कर हिमालय पर्वत की ओर भाग खड़ा हुआ।

बाणोऽपि वीरे निहतेऽथ तारके
गते हिमाद्रिं महिषे भयार्त्ते।
भयाद्विवेशोग्रमपां निधानं
गणैर्बले वध्यति सापराधे॥८६॥

अनन्तर वीर तारक के मारे जाने पर, भयभीत महिष के हिमालय पर्वत पर भाग जाने एवं गणों द्वारा अपराधी सेना का वध किये जाने पर बाण भी भयवश उग्र (गम्भीर) समुद्र में प्रविष्ट हो गया।

हत्वा कुमारो रणमूर्ध्नि तारकं
प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन।
मयूरमारुह्य शिखण्डमण्डितं
ययौ निहन्तुं महिषासुरस्य ॥८७॥

युद्धभूमि में तारक का वध करने के पश्चात् कुमार षडानन शक्ति को धारण करके, सुन्दर शिखण्ड वाले मयूर पर सवार होकर महिषासुर को मारने के लिये अत्यंत वेगपूर्वक चल पड़ा।

स पृष्ठतः प्रेक्ष्य शिखण्डिकेतनं
समापतन्तं वरशक्तिपाणिनम्।
कैलासमुत्सृज्य हिमाचलं तथा
क्रौञ्चं समभ्येत्य गुहां विवेश॥८८॥

वह महिषासुर मयूर पर सवार तथा उत्कृष्ट शक्ति को हाथ में लिये हुए षडानन को अपने पीछे आते हुए देखकर कैलास को छोड़कर क्रौञ्च में पहुँचकर गुफा में घुस गया।

दैत्यं प्रविष्टं स पिनाकिसूनु-
र्जुगोप यत्नाद्भगवान् गुहोऽपि।
स्वबन्धुहन्ता भविता कथं त्वहं
संचिन्तयन्नेव ततः स्थितोऽभूत्॥८९॥

दैत्य के गुफा में प्रवेश कर जाने पर पिनाकी के पुत्र भगवान् गुह ने भी उसकी भली-प्रकार रक्षा की। मैं अपने बंधु का हत्यारा कैसे हो सकता हूँ? यह सोचते हुए वह वहीं खड़ा हो गया।

ततोऽभ्यगात् पुष्करसंभवस्तु
हरो मुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च।
अभ्येत्य चोचुर्महिषं सशैलं
भिन्दस्व शक्त्या कुरु देवकार्यम्॥९०॥

तभी ब्रह्मा, शिव, विष्णु एवं इन्द्र वहाँ आ पहुँचे; और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उससे कहा— शक्ति से शैलसहित महिषासुर का भेदन कर दो और देवताओं का कार्य संपन्न करो।

तत् कार्तिकेयः प्रियमेव तथ्यं
श्रुत्वा वचः प्राह सुरान्विहस्य।
कथं हि मातामहनप्तृकं वधे
स्वभ्रातरं भ्रातृसुतं च मातुः॥९१॥

उनके वचन को सुनकर कार्तिकेय ने हंसकर देवताओं से कहा— मैं अपने नाना के दोहते, अपने भाई तथा अपनी माँ के भतीजे का किस प्रकार वध कर सकता हूँ।

एषा श्रुतिश्चापि पुरातनी किल
गायन्ति यां वेदविदो महर्षयः।
कृत्वा च यस्यां मतमुत्तमाया:
स्वर्गं व्रजन्ति त्वतिपापिनोऽपि॥९२॥

यह प्राचीन वैदिक प्रथा है, जिसका वेदविद् महर्षियों ने गुणगान किया है तथा जिसका पालन करते हुए अत्यंत पापी भी स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेते हैं।

गां ब्राह्मणं वृद्धमथाप्तवाक्यं
बालं स्वबन्धुं ललनामदुष्टाम्।
कृतापराधा अपि नैव वध्या
आचार्यमुख्या गुरवस्तथैव॥९३॥

गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, आप्तवाक्य (अपनी बात पर अटल रहने वाले) बालक, अपने बंधु, सुयोग्य सती पत्नी, पूजनीय गुरु, माता-पिता तथा अन्य माननीय व्यक्तियों का अपराधी होने पर भी कभी वध नहीं करना चाहिये।

एवं जानन्धर्ममग्र्यं सुरेन्द्रा
नाहं हन्यां भ्रातरं मातुलेयम्।
यथा दैत्यो निर्गमिष्यद् गुहान्तः
तदा शक्त्या घातयिष्यामि शत्रुम्॥९४॥

हे देवताओं! इस प्रकार धर्म को जानते हुए मैं अपने ममेरे भाई की हत्या नहीं करूँगा। जब यह दैत्य गुफा से निकलेगा तब शक्ति से मैं इसका भेदन करूँगा।

श्रुत्वा कुमारवचनं भगवान्महर्षे
कृत्वा मतिं स्वहृदये गुहमाह शक्रः।
मत्तो भवान्न मतिमान् वदसे किमर्थं
वाक्यं शृणुष्व हरिणा गदितं हि पूर्वम्॥९५॥

हे महर्षि! कुमार के वचन को सुनकर इन्द्र ने विचार करते हुए उससे कहा— तुम मुझसे अधिक बुद्धिमान् नहीं हो; फिर इस प्रकार क्यों बोल रहे हो? भगवान् विष्णु ने जो कुछ पहले कहा था उसे सुनो!

नैकस्यार्थे बहून् हन्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः।
एकं हन्याद्बहुभ्योऽर्थे न पापी तेन जायते॥९६॥

शास्त्रों का निश्चय है कि एक के लिये अनेकों का वध नहीं करना चाहिये; किंतु अनेकों के लिये एक का वध किया जा सकता है। इससे व्यक्ति पापी नहीं होता।

एतच्छुत्वा मया पूर्वं समयस्थेन चाग्निज।
निहतो नमुचिः पूर्वं सोदरोऽपि ममानुजः॥ ९७॥

हे अग्निपुत्र! प्राचीनकाल में यह सुनकर ही मैंने दृढप्रतिज्ञ होकर अपने सहोदर अनुज 'नमुचि' का वध कर दिया था।

तस्माद्बहूनामर्थाय सक्रौञ्चं महिषासुरम्।
घातयस्व पदाक्रम्य शक्त्या पावकदत्तया॥ ९८॥

इसलिये अनेकों के कल्याण के लिए अग्नि के द्वारा दी गई शक्ति से क्रौञ्चसहित महिषासुर का पराक्रमपूर्वक वध कर डालो।

पुरंदरवचः श्रुत्वा क्रोधादारक्तलोचनः।
कुमारः प्राह वचनं कम्पमानः शतक्रतुम्॥ ९९॥

इन्द्र के वचन को सुनकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले कुमार षडानन ने कांपते हुए इन्द्र से कहा—

मूढ किं ते बलं बाह्वोः शारीरं चापि वृत्रहन्।
येनाधिक्षिपसे मां त्वं ध्रुवं न मतिमानसि॥ १००॥

हे मूर्ख! हे वृत्रहन्ता! तुम्हारी भुजाओं और शरीर में कितना बल है जो तुम मेरा अपमान कर रहे हो? निश्चय ही तुम बुद्धिमान् नहीं हो!

तमुवाच सहस्राक्षस्त्वत्तोऽहं बलवान्गुह।
तं गुहः प्राह एह्येहि युद्ध्यस्व बलवान्यदि॥ १०१॥

इन्द्र ने उससे कहा— हे गुह! मैं तुमसे अधिक बलवान् हूँ। तब गुह ने कहा— यदि बलवान् हो तो आओ और मुझसे युद्ध करो।

शक्रः प्राहाथ बलवान् ज्ञायते कृत्तिकासुत।
प्रदक्षिणं शीघ्रतरं यः कुर्यात्क्रौञ्चमेव हि॥ १०२॥

इन्द्र ने कहा— हे कार्तिकेय! वही बलवान् माना जायेगा जो क्रौञ्च की प्रदक्षिणा शीघ्रता से कर सकेगा।

श्रुत्वा तद्वचनं स्कन्दो मयूरं प्रोह्य वेगवान्।
प्रदक्षिणं पादचारी कर्तुं तूर्णतरोऽभ्यगात्॥ १०३॥

उसके वचन को सुनकर वेगवान् स्कन्द मयूर से उतरकर प्रदक्षिणा करने के लिए पैदल ही अत्यंत तीव्रगति से चल पड़ा।

शक्रोऽवतीर्य नागेन्द्रात् पादेनाथ प्रदक्षिणाम्।
कृत्वा तस्थौ गुहोऽभ्येत्य मूढं किं संस्थितो भवान्॥

इन्द्र भी अपने ऐरावत से उतरकर पैदल प्रदक्षिणा करने के लिए चला किंतु वहीं खड़ा रह गया। गुह वहाँ पहुँचकर बोला-तुम खड़े क्यों हों?

तमिन्द्रः प्राह कौटिल्यं मया पूर्वं प्रदक्षिणः।
कृताऽस्य न त्वया पूर्वं कुमारः शक्रमब्रवीत्॥ १०५॥

इन्द्र ने उसको कहा— मैंने प्रदक्षिणा पहले पूरी की है। कुमार ने इन्द्र से कहा— तुम मुझसे पहले प्रदक्षिणा पूरी नहीं कर सकते।

मया पूर्वं मया पूर्वं विवदन्तौ परस्परम्।
प्राप्योचतुर्महेशाय ब्रह्मणे माधवाय च॥ १०६॥

मैंने पहले की, मैंने पहले की- इस प्रकार कहते हुये वे परस्पर झगड़ने लगे और विवाद करते हुए शिव, ब्रह्मा और विष्णु के पास पहुँचे।

अथोवाच हरिः स्कन्दं प्रष्टुमर्हसि पर्वतम्।
योऽयं वक्ष्यति पूर्वं स भविष्यति महाबलः॥ १०७॥

तब विष्णु ने कार्तिकेय से कहा— तुम स्वयं पर्वत से ही पूछो, पर्वत स्वयं जिसको प्रथम कहेगा, वही महाबलशाली माना जाएगा।

तन्माधववचः श्रुत्वा क्रौञ्चमभ्येत्य पावकिः।
पप्रच्छाद्रिमिदं केन कृतं पूर्वं प्रदक्षिणम्॥ १०८॥

विष्णु के वचन को सुनकर तब अग्निपुत्र कार्तिकेय ने क्रौञ्च के समीप पहुँचकर पूछा-हम दोनों में से किसने प्रदक्षिणा की?

इत्येवमुक्तः क्रौञ्चस्तु प्राह पूर्वं महामतिः।
चकार गोत्रभित् पश्चात्त्वया कृतमथो गुह॥ १०९॥

इस प्रकार पूछे जाने पर बुद्धिमान् क्रौञ्च ने कहा— इन्द्र ने प्रदक्षिणा पहले पूरी की तथा हे गुह! तुमने बाद में की है।

एवं ब्रुवन्तं क्रौञ्चं स क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः।
बिभेद शक्त्या कौटिल्यो महिषेण समं तदा॥ ११०॥

क्रौञ्च के इस प्रकार कहने पर क्रोध से स्फुरित अधर वाले कौटिल्य ने अपनी शक्ति से महिषासुर के साथ क्रौञ्च का भी वध कर दिया।

तस्मिन्हतेऽथ तनये बलवान् सुनाभो
वेगेन भूमिधरपार्थिवजस्तथाऽगात्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदश्विवसुप्रधाना
जग्मुर्दिवं महिषमीक्ष्य हतं गुहेन॥ १११॥

अपने पुत्र के मारे जाते ही पर्वतराज हिमालय का बलशाली पुत्र 'सुनाम' तीव्रता से वहाँ आ पहुँचा। साथ ही कार्तिकेय के द्वारा महिषासुर को मारा गया देखकर ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, मरुत्, अश्विनीकुमार तथा वसु द्युलोक में जा पहुँचे।

स्वमातुलं वीक्ष्य बली कुमारः
शक्तिं समुत्पाट्य निहन्तुकामः।
निवारितश्चक्रधरेण वेगा-
दालिङ्ग्य दोर्भ्यां गुरुरित्युदीर्य॥ ११२॥

महाबलशाली कार्तिकेय ने जब अपने मामा को देखा तो वह अपनी शक्ति को उठाकर उन्हें भी मारने के लिये उद्यत हुआ। नारायण ने तुरंत ही अपनी भुजाएँ पसार कर उन्हें पकड़ लिया और चिल्लाते हुए कहा— ये तुम्हारे गुरु हैं।

सुनाभमभ्येत्य हिमाचलस्तु
प्रगृह्य हस्तेऽन्यत एव नीतवान्।
हरिः कुमारं सशिखण्डिनं
नयद्वेगाद्दिवं पन्नगशत्रुपत्रः॥ ११३॥

तभी हिमाचल भी वहाँ पहुँचकर सुनाम को हाथ से पकड़कर अन्यत्र ले गए। गरुड़वाहन विष्णु भी कार्तिकेय को उनके वाहन मयूरसहित स्वर्गलोक ले गए।

ततो गुहः प्राह हरिं सुरेशं
मोहेन नष्टो भगवन्विवेकः।
भ्राता मया मातुलेयो निरस्त-
स्तस्मात्करिष्ये स्वशरीरशोषम्॥ ११४॥

तब गुह ने भगवान् विष्णु से कहा— हे भगवन्! क्रोधवश मूढ़ता से मेरा विवेक नष्ट हो गया और मैंने अपने ममेरे भाई का वध कर दिया। इसलिये मैं अपना शरीर समाप्त कर दूँगा।

तं प्राह विष्णुर्व्रज तीर्थवर्यं
पृथूदकं पापतरोः कुठारम्।
स्नात्वौघवत्यां हरमीक्ष्य भक्त्या
भविष्यसे सूर्यसमप्रभावः॥ ११५॥

विष्णु ने कार्तिकेय से कहा— तीर्थों में श्रेष्ठ पृथूदक तीर्थ में जाओ। वह तीर्थ पापरूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ी के समान है। ओघवती नदी में स्नान करके भक्तिपूर्वक शिव के दर्शनों से तुम सूर्य के समान प्रभावान् हो जाओगे।

इत्येवमुक्तो हरिणा कुमार-
स्त्वभ्येत्य तीर्थं प्रसमीक्ष्य शंभुम्।
स्नात्वाऽर्च्य देवान्स रविप्रकाशो
जगाम शैलं सदनं हरस्य॥ ११६॥

विष्णु के इस प्रकार कहने पर कार्तिकेय ने पृथूदक तीर्थ में आकर, ओघवती में स्नान तथा शिव का दर्शन किया। तदनन्तर देवों का पूजन करके वह सूर्य के समान प्रभावान् होकर शिव के सदन कैलाशपर्वत पर चला गया।

सुचक्रनेत्रोऽपि महाश्रमे तप-
श्चचार शैले पवनाशनस्तु।
आराधयामास वृषध्वजं तदा
हरोऽस्य तुष्टो वरदो बभूव॥ ११७॥

सुचक्राक्ष ने भी पर्वत पर आश्रम में रहते हुए केवल वायु पर जीवित रह कर महान् तप करके शिव की आराधना की; जिससे शिव प्रसन्न हुए और उसको वरदान दिया।

देवात् स वव्रे वरमायुधार्थे
चक्रं तथा वै रिपुबाहुखण्डम्।
छिन्द्याद्यथा त्वत्प्रतिमं करेण
बाणस्य तन्मे भगवान् ददातु॥ ११८॥

शिव से सुचक्राक्ष ने श्रेष्ठ आयुध के लिए वर मांगते हुए कहा— मुझे ऐसा अद्भुत चक्र प्रदान करें जिससे मैं बाणासुर की असंख्य भुजाओं का छेदन कर सकूँ।

तमाह शंभुर्व्रज दत्तमेतद्
वरं हि चक्रस्य तवायुधस्य।
बाणस्य तद्बाहुवनं प्रवृद्धं
संछेत्स्यसे नात्र विचावणाऽस्ति॥ ११२॥

शिव ने उसको कहा— जाओ! मैंने तुम्हें वररूप में ऐसा अद्भुत चक्र प्रदान किया है जिससे बाणासुर की बढ़ती हुई शक्तिशाली भुजाओं का तुम निस्संदेह छेदन कर सकोगे।

वरे प्रदत्ते त्रिपुरान्तकेन
गणेश्वरः स्कन्दमुपाजगाम।
निपत्य पादौ प्रतिवन्द्य हृष्टो
निवेदयामास हरप्रसादम्॥

शिव के द्वारा वर प्रदान किये जाने पर गणेश्वर चक्राक्ष स्कन्द के पास पहुँचा। स्कन्द के चरणों पर गिरकर प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उसने स्कन्द से शिव की कृपा के विषय में बताया।

एवं तवोक्तं महिषासुरस्य
वधं त्रिनेत्रात्मजशक्तिभेदात्।
क्रौञ्चस्य मृत्युः शरणागतार्थं
पापापहं पुण्यविवर्धनं च॥ १२१॥

इस प्रकार मैंने तुम्हें त्रिनेत्र शिव के पुत्र स्कंद की शक्ति के द्वारा महिषासुर का वध तथा उस महिषासुर को शरण देने के कारण क्रौञ्च के वध का पापनाशक तथा पुण्यकारी वृत्तांत सुनाया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे
महिषासुरतारकवधोपाख्याने क्रौञ्चभेदनं
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

नवपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(अंधकासुर की पराजय)

नारद उवाच

योऽसौ मन्त्रयतां प्राप्तो दैत्यानां शरताडितः।
स केन वद निर्भिन्नः शरेण दितिजेश्वरः॥ १॥

नारद ने कहा— आप यह बतलायें कि दैत्यगण जब मन्त्रणा कर रहे थे, उस समय आने वाले बाण से आहत दैत्यश्रेष्ठ को किसने मारा था?

पुलस्त्य उवाच

आसीन्नृपो रघुकुले रिपुजिन्महर्षे
तस्यात्मजो गुणगणैकनिधिर्महात्मा।
शूरोऽरिसैन्यदमनो बलवान् सुहृत्सु
विप्रान्धदीनकृपणेषु समानभावः॥ २॥

हे महर्षि! रघुकुल में रिपुजित् नाम का राजा था। उसका एक पुत्र था जो संपूर्ण गुणों की खान, महात्मा, शूरवीर, शत्रु का दमन करने वाला, बलवान् तथा मैत्री भावना से ओतप्रोत था। वह ब्राह्मण, नेत्रहीन, दीन तथा कृपण पर समान रूप से प्रेमभाव रखने वाला था।

ऋतध्वजो नाम महान् महीयान्
स गालवार्थे तुरगाधिरूढः।
पातालकेतुं निजघान पृष्ठे
बाणेन चन्द्रार्धनिभेन वेगात्॥ ३॥

उस महान् राजकुमार का नाम ऋतध्वज था। उसने गालव ऋषि के लिये घोड़े पर सवार होकर अर्धचन्द्र के समान बाण से वेगपूर्वक पीछे से पातालकेतु का वध कर दिया।

नारद उवाच

किमर्थं गालवस्यासौ साधयामास सत्तम।
येनासौ पत्रिणा दैत्यं निजघान नृपात्मजः॥ ४॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! राजकुमार ने बाण से जो दैत्य का वध कर दिया था उससे गालव ऋषि का क्या उद्देश्य सिद्ध हुआ?

पुलस्त्य उवाच

पुरा तपस्तप्यति गालवर्षि-
र्महाश्रमे स्वे सततं निविष्टे।
पातालकेतुस्तपसोऽस्य विघ्नं
करोति मौढ्यात् स समाधिभङ्गम्॥ ५॥

प्राचीनकाल में गालव ऋषि अपने आश्रम में अत्यंत घोर तप कर रहे थे। तब इस पातालकेतु ने मूढ़तावश उनकी समाधि भंग करके उनकी तपस्या में विघ्न डाल दिया था।

न चेष्यतेऽसौ तपसो व्ययं हि
शक्तोऽपि कर्तुं त्वथ भस्मसात्तम्।
आकाशमीक्ष्याथ स दीर्घमुष्णं
मुमोच निःश्वासमनुत्तमं हि॥ ६॥

यद्यपि ऋषि उसे भस्मसात् करने में समर्थ थे किन्तु वह अपनी तपस्या को व्यर्थ गंवाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने आकाश की ओर देखते हुए अत्यंत दीर्घ नि:श्वास लिया।

ततोऽम्बराद्वाजिवरः पपात
बभूव वाणी त्वशरीरिणी च।
असौ तुरङ्गो बलवान्क्रमेत
अह्ना सहस्राणि तु योजनानाम्॥७॥

तदनन्तर आकाश से एक अत्यंत श्रेष्ठ घोड़ा नीचे गिरा और एक अदृश्य वाणी सुनाई दी कि यह अश्व अत्यंत बलवान् है और एक दिन में सहस्र योजन पार कर सकता है।

स तं प्रगृह्याश्ववरं नरेन्द्रं
ऋतध्वजं योज्य तदात्तशस्त्रम्।
स्थितस्तपस्येव ततो महर्षि-
दैत्यं समेत्य विशिखैर्नृपजो बिभेद॥८॥

ऋषि ने उस श्रेष्ठ अश्व को लेकर दैत्यवध के लिये शस्त्रधारी राजकुमार ऋतध्वज को नियुक्त किया और स्वयं तपस्या में लीन हो गए। राजकुमार ने बाणों से दैत्य का वध कर डाला।

नारद उवाच

केनाम्बरतलाद्वाजी निसृष्टो वद सुव्रत।
वाक्कस्याऽदेहिनी जाता परं कौतूहलं मम॥९॥

नारद बोले—हे सुव्रत! आकाश से अश्व को किसने गिराया था? वह अदृश्य वाणी किसकी थी? कृपया मुझे बताइये; मुझे अत्यधिक कौतूहल है।

पुलस्त्य उवाच

विश्वावसुर्नाम महेन्द्रगायनो
गन्धर्वराजो बलवान्यशस्वी।
निसृष्टवान् भूवलये तुरङ्गं
ऋतध्वजस्यैव सुतार्थमाशु॥१०॥

पुलस्त्य ने कहा— इन्द्रसभा के प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली संगीतकार गन्धर्वराज विश्वावसु ने अपनी पुत्री के उद्देश्य से ऋतध्वज के लिये वह घोड़ा पृथ्वी पर गिराया था।

नारद उवाच

कोऽर्थो गन्धर्वराजस्य येनाप्रैषीन्महाजवम्।
राज्ञः कुवलायाश्वस्य कोऽर्थो नृपसुतस्य च॥११॥

नारद ने कहा— गंधर्वराज ने किस उद्देश्य से उस अत्यंत वेगवान् अश्व को पृथ्वी पर भेजा था? तथा राजा कुवलयाश्व का राजकुमार से क्या प्रयोजन था?

पुलस्त्य उवाच

विश्वावसोः शीलगुणोपपन्ना
आसीत्पुरन्ध्रीषु वरा त्रिलोके।
लावण्यराशिः शशिकान्तितुल्या
मदालसा नाम मदालसैव॥१२॥

पुलस्त्य ने कहा— विश्वावसु की मदालसा नामक एक पुत्री थी। वह अत्यंत शीलवती, समस्त गुणों से संपन्न, तीनों लोकों की सुंदरियों में श्रेष्ठ, लावण्य की राशि, चंद्रमा के समान कान्तियुक्त तथा मद के कारण अलसगामिनी थी।

तां नन्दनो देवरिपुस्तरस्वी
संक्रीडन्तीं रूपवतीं ददर्श।
पातालकेतुस्तु जहार तन्वीं
तस्यार्थतः सोऽश्ववरः प्रदत्तः॥१३॥

नंदनवन में खेलती हुई उस रूपवती मदालसा को उस देवशत्रु ने देखा। पातलकेतु उस तन्वी मदालसा को बलपूर्वक उठा ले गया। उसे बचाने के लिए वह श्रेष्ठ अश्व दिया गया।

हत्वा च दैत्यं नृपतेस्तनूजो
लब्ध्वा वरोरूमपि संस्थितोऽभूत्।
दृष्टो यथा देवपतिर्महेन्द्रः
शच्या तथा राजसुतो मृगाक्ष्या॥१४॥

दैत्य का वध करके तथा उस सुंदरी मदालसा को पाकर राजकुमार ऋतध्वज उस मृगाक्षी के साथ इसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे देवराज इन्द्र शची के साथ सुशोभित होते हैं।

नारद उवाच

एवं निरस्ते महिषे तारके च महासुरे।
हिरण्याक्षसुतो धीमान्किमचेष्टत वै पुनः॥१५॥

नारद ने कहा— महासुर तारक और महिष के नष्ट हो जाने पर हिरण्याक्ष का बुद्धिमान् पुत्र किस व्यवहार में व्यस्त रहा?

पुलस्त्य उवाच

तारकं निहतं दृष्ट्वा महिषं च रणेऽन्धकः।
क्रोधं चक्रे सुदुर्बुद्धिर्देवानां देवसैन्यहा॥ १६॥

युद्ध में तारक और महिष को निहत देखकर देवताओं के सैन्यबल का नाशक वह अत्यधिक दुर्बुद्धिसम्पन्न अन्धक देवताओं पर क्रुद्ध हुआ।

ततः स्वल्पपरीवारः प्रगृह्य परिघं करे।
निर्जगामाथ पातालाद्विचचार च मेदिनीम्॥ १७॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर कुछ अनुचरों से युक्त वह हाथ में परिघ को लेकर पाताललोक से निकला और पृथिवी पर घूमने लगा।

ततो विचरता तेन मन्दरे चारुकन्दरे।
दृष्टा गौरी च गिरिजा सखीमध्ये स्थिता शुभा॥ १८॥

सुंदर कंदराओं वाले मेरु पर्वत पर घूमते हुए उस अन्धक ने गिरिराजसुता गौरी को सखियों के साथ देखा।

ततोऽभूत् कामबाणार्त्तः सहसैवान्धकोसुरः।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं गिरिराजसुतां वने॥ १९॥

वन में उस सर्वांगसुंदरी गिरिराजसुता को देखकर अंधकासुर कामबाणाभिभूत हो गया।

अथोवाचासुरो मूढो वचनं मन्मथान्धकः।
कस्येयं चारुसर्वाङ्गी वने चरति सुन्दरी॥ २०॥

उस कामान्ध एवं मूर्ख अन्धक ने कहा— वन में विचरती यह सर्वांग सुंदरी कौन है?

इयं यदि भवेन्नैव ममान्तःपुरवासिनी।
तन्मदीयेन जीवेन क्रियते निष्फलेन किम्॥ २१॥

यह सुंदरी यदि मेरे अन्तःपुर में न आई तो मेरा जीवन निष्फल है। ऐसे जीवन का क्या लाभ?

यदस्यास्तनुमध्याया न परिष्वङ्गवानहम्।
अतो धिङ् मम रूपेण किं स्थिरेण प्रयोजनम्॥ २२॥

मैंने यदि इस तन्वंगी का आलिङ्गन नहीं किया तो मेरे रूप और यौवन को धिक्कार है!

स मे बन्धुः स सचिवः स भ्राता साम्परायिकः।
यो मामसितकेशीं तां योजयेन् मृगलोचनाम्॥ २३॥

जो इस मृगाक्षी एवं सुंदर बालों वाली सुंदरी से मेरा मिलन कराएगा वह ही मेरा बंधु है, वही मेरा सचिव है, वही मेरा भ्राता है और वही मेरा कुटुम्बी है।

इत्थं वदति दैत्येन्द्रे प्रह्लादो बुद्धिसागरः।
पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां शिरःकम्पं वचोऽब्रवीत्॥ २४॥

दैत्येन्द्र अन्धक के इस प्रकार कहने पर बुद्धिसागर प्रह्लाद ने कानों पर हाथ रखकर कांपते हुए सिर से निम्न वचन कहे—

मा मैवं वद दैत्येन्द्र जगतो जननी त्वियम्।
लोकनाथस्य भार्येयं शङ्करस्य त्रिशूलिनः॥ २५॥

हे दैत्येन्द्र! ऐसा मत कहो! यह जगज्जननी है तथा समस्त लोकों के स्वामी त्रिशूलधारी शङ्कर की भार्या है।

मा कुरुष्व सुदुर्बुद्धिं सद्यः कुलविनाशिनीम्।
भवतः परदारेयं मा निमज्ज रसातले॥ २६॥

ऐसा कोई विचार मत करो जो तुम्हारे समस्त कुल का शीघ्र ही विनाश करने वाला हो। तुम्हारे लिए यह परस्त्री है। तुम रसातल में डूबने का कार्य न करो।

सत्सु कुत्सितमेवं हि असत्स्वपि हि कुत्सितम्।
शत्रवस्ते प्रकुर्वन्तु परदारावगाहनम्॥ २७॥

यह कार्य सज्जनों में तो निंदनीय है ही, साथ ही दुष्टों में भी निंदनीय है। परदारावगमन जैसा निंदनीय कार्य तुम्हारे शत्रु करें; तुम नहीं।

किंचित् त्वया न श्रुतं दैत्यनाथ
गीतः श्लोकं गाधिना पार्थिवेन।
दृष्ट्वा सैन्यं विप्रधेनुप्रसक्तं
तथ्यं पथ्यं सर्वलोके हितं च॥ २८॥

हे दैत्यनाथ! सैन्यबल को ब्राह्मणों की गायों के लिये ललचाते हुए देखकर गाधिनरेश ने समस्त विश्व के लिये यथार्थ, वंदनीय एवं सारयुक्त जो श्लोक कहे वह तुमने नहीं सुने क्या?

वरं प्राणास्त्याज्या न च पिशुनवादेष्वभिरतिः
वरं मौनं कार्यं न वचनमुक्तं यदनृतम्।

वरं क्लीवैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं
वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनास्वादमसकृत्॥२९

प्राणों का त्याग उचित है परंतु दुराचार में अभिरति उचित नहीं। मौन रहना उचित है परंतु असत्य बोलना उचित नहीं। नपुंसक रहना उचित है परंतु किसी परस्त्रीगमन उचित नहीं। भिक्षा पर जीवनयापन उचित है परंतु किसी दूसरे के धन का अनधिकृत उपयोग उचित नहीं।

स प्रह्लादवचः श्रुत्वा क्रोधान्धो मदनार्दितः।
इयं सा शत्रु जननीत्येवमुक्त्वा प्रदुद्रुवे॥३०॥

प्रह्लाद के वचन को सुनकर कामाभिभूत तथा क्रोध से मूढ़ वह अन्धक 'यही मेरे शत्रु की माता है' कहकर दौड़ पड़ा।

ततोऽन्वधावन् दैतेया यन्त्रमुक्ता इवोपलाः।
तान् रुरोध बलान्नन्दी वज्रोद्यतकरोऽव्ययः॥३१॥

उसके पीछे अन्य दैत्य यंत्र से छोड़े गए तीर के समान तीव्रगति से दौड़ पड़े? हाथ में वज्र उठाकर शक्तिशाली नंदी ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया।

मयतारपुरोगास्ते वारिता द्राविताास्तथा।
कुलिशेनाहतास्तूर्णं जग्मुर्भीता दिशो दश॥३२॥

मय और तारक के नेतृत्व में आने वाले वे राक्षस नंदी के द्वारा रोक लिए गए और भगा दिए गए। उसके वज्र से आहत होकर वे भयभीत हुये और विभिन्न दिशाओं में भाग खड़े हुए।

तानर्दितान्रणे दृष्ट्वा नन्दिनाऽन्धकदानवः।
परिघेण समाहत्य पातयामास नन्दिनम्॥३३॥

युद्ध में अपने साथियों को नंदी के द्वारा पराजित देखकर अंधक दानव ने गदा से वार करके नंदी को गिरा दिया।

शैलादिं पतितं दृष्ट्वा धावमानं तथाऽन्धकम्।
शतरूपाऽभवद्गौरी भयात्तस्य दुरात्मनः॥३४॥

नंदी को गिरता हुआ तथा अन्धक को अपने पीछे दौड़ता हुआ देखकर गौरी उस दुष्ट के भय से शतरूपा हो गई।

ततः स देवीगणमध्यसंस्थितः
परिभ्रमन् भाति महासुरेन्द्रः।
यथा वने मत्तकरी परिभ्रमन्
करेणुमध्ये मदलोलदृष्टिः॥३५॥

देवी के सैंकड़ों रूपों के मध्य दर्वोन्मत्त वह महासुर ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वन में हथिनियों के समूह के मध्य मद के प्रवाह से अवरुद्ध दृष्टि वाला मदोन्मत्त हाथी।

न परिज्ञातवांस्तत्र का तु सा गिरिकन्यका।
नात्राश्चर्यं न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि॥३६॥

उन सब में से गिरिराजकुमारी कौन है; वह यह देख नहीं पाया और इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है; क्योंकि निम्न चार व्यक्ति निश्चय ही देख नहीं पाते।

न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति।
सोऽपश्यमानो गिरिजां पश्यन्नपि तदाऽन्धकः॥३७॥

जन्म से अंधा नहीं देख पाता वैसे ही उत्कट काम से अंधा भी नहीं देख पाता। मदोन्मत्त नहीं देख पाता तथा लोभाविष्ट नहीं देख पाता। इसी प्रकार गिरिजा को देखकर भी वह अंधक देख नहीं पाया।

प्रहारं नाददत्तासां युवत्य इति चिन्तयन्।
ततो देव्या स दुष्टात्मा शतावर्या निराकृतः॥३८॥

यह सब युवांगनाएँ हैं—यह सोचकर उसने देवी के सैंकड़ों रूपों पर प्रहार नहीं किया। उसी समय शतरूपा देवी ने उस दुष्ट का वध कर दिया।

कुट्टितः प्रवरैः शस्त्रैर्निपपात महीतले।
वीक्ष्यान्धकं निपतितं शतरूपा विभावरी॥३९॥
तस्मात् स्थानादपाक्रम्य गताऽन्तर्धानमम्बिका।
पतितं चान्धकं दृष्ट्वा दैत्यदानवयूथपाः॥४०॥
कुर्वन्तः सुमहाशब्दं प्राद्रवन्त रणार्थिनः।
तेषामापततां शब्दं श्रुत्वा तस्थौ गणेश्वरः॥४१॥

शक्तिशाली शस्त्रों से आहत होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अंधक को गिरा हुआ देखकर शतरूपधारिणी अम्बिका उस स्थान से जाकर अन्तर्धान हो गई। अन्धक

को नष्ट हुआ देखकर युद्ध के लिए तत्पर अन्य दानव-प्रमुख महागर्जना करते हुए दौड़ पड़े। आक्रमण के लिए आते हुए उनकी गर्जना को सुनकर गणेश्वर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

आदाय वज्रं बलवान् मघवानिव कोपितः।
दानवान् समयान् वीरः पराजित्य गणेश्वरः॥४२॥
समभ्येत्याम्बिकां दृष्ट्वा ववन्दे चरणौ शुभौ।
देवी च ता निजा मूर्तीः प्राह गच्छध्वमिच्छया॥४३॥
विहरध्वं महीपृष्ठे पूज्यमाना नरैरिह।
वसतिर्भवतीनां च उद्यानेषु वनेषु च॥४४॥

इन्द्र के समान वज्र को हाथ में लेकर उस क्रोधित शक्तिशाली वीर गणेश ने भययुक्त दानवों को पराजित कर दिया और देवी अम्बिका के समीप पहुँचकर उनके शुभ चरणों में नमस्कार किया। देवी ने अपनी प्रतिमूर्तियों से कहा— इच्छानुसार जाओ और मनुष्यों के द्वारा आदरणीय होकर पृथ्वी पर भ्रमण करो। उद्यानों और वनों में तुम्हारा निवास हो।

वनस्पतिषु वृक्षेषु गच्छध्वं विगतज्वराः।
तास्त्वेवमुक्ताः शैलेय्या प्रणिपत्याम्बिकां क्रमात्॥४५॥
दिक्षु सर्वासु जग्मुस्ताः स्तूयमानाश्च किन्नरैः।

निश्चिन्त होकर वृक्षों और वनस्पतियों में निवास करो। अम्बिका के इस प्रकार कहने पर वे सब प्रतिमूर्तियाँ अम्बिका को प्रणाम करके किन्नरों के द्वारा स्तुत्यमान होकर विभिन्न दिशाओं में चली गईं।

अन्धकोऽपि स्मृतिं लब्ध्वा अपश्यन्नद्रिनन्दिनीम्।
स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा ततः पातालमाद्रवत्॥४६॥

पुनः होश में आने पर अन्धक ने जब गिरिजा को नहीं देखा तथा अपने सैन्यबल को पराभूत देखा तो वह पाताललोक में भाग गया।

ततो दुरात्मा स तदाऽन्धको मुने
पातालमभ्येत्य दिवा न भुङ्क्ते।
रात्रौ न शेते मदनेपुताडितो
गौरीं स्मरन्कामबलाभिपन्नः॥४७॥

हे मुनि! तब से लेकर पाताललोक में पहुँचने के पश्चात् कामाभिभूत वह दुष्ट अन्धक गौरी को याद करता हुआ न दिन को खाता है और न रात को सोता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे नवपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

(मुरदानव का चरित्र)

नारद उवाच

क्व गतः शङ्करो ह्यासीद्येनाम्बा नन्दिना सह।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तुमर्हसि॥१॥

नारद ने कहा— कृपा करके बताइये कि शङ्कर कहाँ गए थे, जो गिरिजा को नंदी के साथ अन्धक से युद्ध करना पड़ा।

पुलस्त्य उवाच

यदा वर्षसहस्रं तु महामोहे स्थितोऽभवत्।
तदाप्रभृति निस्तेजाः क्षीणवीर्यः प्रदृश्यते॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— जब से शिव एक हजार वर्ष तक महामोह में स्थित थे, तब से वे निस्तेज और क्षीणवीर्य हो गए।

स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोऽशं महेश्वरः।
तपोऽर्थाय तदा चक्रे मतिं मतिमतां वरः॥३॥

स्वयं को और अपने अङ्गों को निस्तेज जानकर महाबुद्धिमान् शिव ने तपस्या करने का निश्चय किया।

स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्वास्याम्बिकां विभुः।
शैलादिं स्थाप्य गोप्तारं विचचार महीतले॥४॥

महातप का व्रत लेकर अम्बिका को आश्वासन देने के पश्चात् नंदी को उनका रक्षक नियुक्त करके शिव पृथ्वी पर घूमने लगे।

महामुद्रार्पितग्रीवो महाहिकृतकुण्डलः।
धारयाणः कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम्॥५॥
कपालं दक्षिणे हस्ते सव्ये गृह्य कमण्डलुम्।
एकाहवासी वृक्षे हि शैलसानुनदीष्वटन् ॥६॥
स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः।
वाय्वाहारस्तथा तस्थौ नववर्षशतं क्रमात्॥७॥

ग्रीवा पार महामुद्रा, कानों में महाहिकुण्डल, कटिप्रदेश

में कपालों की मेखला, दाहिने हाथ में कपाल तथा बाएँ हाथ में कमण्डल लेकर वृक्षों, पर्वतों और नदियों में एक दिन से अधिक निवास न करते हुए, तीनों लोकों में घूमते हुए, पहले केवल जल और कन्दमूल पर और बाद में केवल वायु पर ही निर्वाह करने वाले शिव नौ वर्षों तक घूमते रहे।

ततो वीटां मुखे क्षिप्य निरुच्छ्वासोऽभवद् यतिः।
विस्तृते हिमवत्पृष्ठे रम्ये समशिलातले॥८॥

तदनन्तर उस तपस्वी ने एक सुपारी को मुंह में रखकर सुंदर शिलाओं वाले रमणीय हिमालय के भूतल पर एक निःश्वास छोड़ा।

ततो वीटां विदार्यैव कपालं परमेष्ठिनः।
साऽर्चिष्मती जटामध्यान्निषण्णा धरणीतले॥९॥

वह सुपारी परमेष्ठी शिव के कपाल को विदीर्ण करती हुई उनकी जटाओं के मध्य से निकली और अत्यंत तेजयुक्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारितः क्ष्मासमोऽभवत्।
जातस्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुतः॥१०॥

उस सुपारी के गिरने से पर्वत विदीर्ण हो गया और एक मैदान में परिवर्तित हो गया। वही मैदान पुण्यशाली एवं श्रेष्ठ तीर्थ 'केदार' है— ऐसा सुना जाता है।

ततो हरो वरं प्रादात् केदाराय वृषभध्वजः।
पुण्यवृद्धिकरं ब्रह्मन् पापघ्नं मोक्षसाधनम्॥११॥

हे ब्राह्मण! तब वृषध्वज शिव ने केदार तीर्थ को पुण्यवर्धक, पापनाशक तथा मोक्षसाधक वर प्रदान किया।

ये जलं तावके तीर्थे पीत्वा संयमिनो नराः।
मधुमांसनिवृत्ता ये ब्रह्मचारिव्रते स्थिताः॥१२॥
षण्मासाद्धारयिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः।
तेषां हृत्पङ्कजेष्वेव मल्लिङ्गं भविता ध्रुवम्॥१३॥

जो संयमव्रती मनुष्य तुम्हारे तीर्थ में जल पीकर मांस-मदिरा का त्याग, ब्रह्मचारी व्रत का पालन तथा दूसरों के द्वारा बनाए हुए भोजन का त्याग करेंगे (अर्थात् स्वयं पकाएंगे) उनके हृदय-कमल में मेरे लिंग का सदैव निस्संदेह निवास होगा।

न चास्य पापेऽभिरतिर्भविष्यति कदाचन।
पितृणामक्षयं श्राद्धं भविष्यति न संशयः॥१४॥

निश्चय ही उस व्यक्ति की कभी किसी पापकर्म में अभिरति नहीं होगी। उसके पितरों का अक्षय श्राद्ध होगा— इसमें कोई संशय नहीं है।

स्नानदानतपांसीह होमजप्यादिकाः क्रियाः।
भविष्यन्त्यक्षया नृणां मृतानामपुनर्भवः॥१५॥

यहाँ मनुष्यों की स्नान, दान, तप, होम, जप इत्यादि क्रियाएँ अजस्र फलदायक होंगी तथा मरने के बाद उनका पुनर्जन्म नहीं होगा।

एतद्वरं हरात्तीर्थं प्राप्य पुष्णाति देवताः।
पुनाति पुंसां केदारस्त्रिनेत्रवचनं यथा॥१६॥

इस प्रकार शिव से वर प्राप्त करके केदार त्रिनेत्र शिव के वचनानुसार देवताओं को पुष्ट करता है तथा मनुष्यों को पवित्र करता है।

केदाराय वरं दत्त्वा जगाम त्वरितो हरः।
स्नातुं भानुसुतां देवीं कालिन्दीं पापनाशिनीम्॥१७॥

केदार को वर देकर शिव तीव्रतापूर्वक पापनाशिनी भानुसुता यमुना में स्नान करने के लिए चल पड़े।

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जगामाथ सरस्वतीम्।
वृतां तीर्थशतैः पुण्यैः प्लक्षजां पापनाशिनीम्॥१८॥
अवतीर्णस्ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि।
द्रुपदां नाम गायत्रीं जजापान्तर्जले हरः॥१९॥

वहाँ स्नान द्वारा पवित्र होकर शिव कैलाश वृक्ष से उत्पन्न पापनाशिनी और सैंकड़ों तीर्थों से आवृत्त सरस्वती नदी की ओर चल पड़े। वहाँ जल में उतर कर शिव सरस्वती के पवित्र जल में निमग्न हो गए। शिव ने वहाँ जल के भीतर ही द्रुपद नामक गायत्री का जप किया।

निमग्ने शङ्करे देव्यां सरस्वत्यां कलिप्रिय।
साग्रः संवत्सरो जातो न चोन्मज्जत्त ईश्वरः॥२०॥

हे नारद! देवी सरस्वती के जल में निमग्न हो जाने पर शिव को एक वर्ष हो गया, परंतु ईश्वर (शिव) ऊपर नहीं आए।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भुवनाः सप्त सार्णवाः।
चेलुः पेतुर्धरण्यां न नक्षत्रास्तारकैः सह॥२१॥

ऐसा होने पर सातों भुवन महासागरों सहित चलायमान हो गए और समस्त नक्षत्र तारागणों सहित पृथ्वी पर गिर पड़े।

आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः॥ २२॥

इन्द्र सहित समस्त देवता अपने-अपने आसनों से विचलित हो गए। समस्त महर्षिगण सकल लोकों की कल्याण की कामना से जप करने लगे।

ततः क्षुब्धेषु लोकेषु देवा ब्रह्माणमागमन्।
दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः संशयमागताः॥ २३॥

समस्त लोकों के इस प्रकार क्षुब्ध होने पर समस्त देवतागण ब्रह्मा के पास पहुँचे और उन्हें देखकर बोले-हे देव! यह समस्त लोक किस कारण से क्षुब्ध होकर काँप रहे हैं?

तानाह पद्मसंभूतो नैतद् वेद्मि च कारणम्।
तदागच्छत वो युक्तं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्॥ २४॥

पद्मसंभूत ब्रह्मा ने कहा— मैं यह कारण नहीं जानता, इसलिए हमारे लिए उचित है कि चक्रगदाधारी विष्णु के पास चलें।

पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः।
पितामहं पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः॥ २५॥

पितामह ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार कहने पर इन्द्र के अनुयायी समस्त देवतागण पितामह के पीछे-पीछे मुरारि के प्रासाद में पहुँचे।

नारद उवाच

कोऽसौ मुरारिर्देवर्षे देवो यक्षो नु किंनरः।
दैत्यो राक्षसो वापि पार्थिवो वा तदुच्यताम्॥ २६॥

नारद ने कहा— हे देवर्षि! यह मुरारि कौन है? यह यक्ष है, किन्नर है, दैत्य है, राक्षस है या फिर मनुष्य है? कृपया बताइये।

पुलस्त्य उवाच

योऽसौ रजःसत्त्वमयो गुणवांश्च तमोमयः।
निर्गुणः सर्वगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः॥ २७॥

पुलस्त्य ने कहा— वह जो सत्त्व, रजस् और तमस्– तीनों गुणों से युक्त है, परन्तु फिर भी निर्गुण है, जो सर्वकालिक तथा सर्वव्यापी है— वही मुर का शत्रु मुरारि है तथा मधु का नाशक मधुसूदन है।

नारद उवाच

योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते।
कथं च निहतः संख्ये विष्णुना तद्वदस्व मे॥ २८॥

नारद ने कहा— मुर नाम से प्रसिद्ध यह किसका पुत्र है तथा युद्ध में वह विष्णु के द्वारा किस प्रकार मारा गया? कृपया मुझे बताइये।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि मुरासुरनिबर्हणम्।
विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम्॥ २९॥

पुलस्त्य ने कहा— देवासुर संग्राम के इस पुण्यकारी तथा पापनाशक विचित्र आख्यान को मैं कहता हूँ; सुनो।

कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनूद्भवः।
स ददर्श रणे शस्तान् दितिपुत्रान् सुरोत्तमैः॥ ३०॥

मुर दनु से उत्पन्न कश्यप का औरस पुत्र था। उसने देवों के द्वारा दानवों को युद्ध में पराजित देखा।

ततः स मरणाद्भीतस्तप्त्वा वर्षगणान्बहून्।
आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम्॥ ३१॥

तदनन्तर मरने से भयभीत होकर उसने बहुत वर्षों तक तपस्या की तथा शक्तिशाली व अपराजित ब्रह्मा की आराधना की।

ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु।
स च वव्रे वरं दैत्यो वरमेनं पितामहात्॥ ३२॥

उसकी तपस्या से ब्रह्मा संतुष्ट हुये और वर देते हुए उन्होंने कहा— वत्स! वर मांगो। उससे तब दैत्य ने पितामह से यह वर मांगा।

यं यं करतलेनाहं स्पृशेयं समरे विभो।
स स मद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि मरत्वतः॥ ३३॥

हे विभु! जिसे भी मैं युद्ध में करतल से स्पर्श कर दूँ वह अमर होने पर भी मेरे करतल के स्पर्शमात्र से मर जाए।

वाढमित्याह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिं बली॥ ३४॥

लोकपितामह ब्रह्मा ने कहा— 'ऐसा ही हो'। तदनन्तर महातेजस्वी बलशाली मुर देवगिरि की ओर चल पड़ा।

समेत्याह्वयते देवं यक्षं किन्नरमेव वा।
न कश्चिद्युयुधे तेन समं दैत्येन नारद॥ ३५॥

वहाँ पहुँचकर उसने सब को युद्ध के लिए ललकारा— चाहे वह देवता हो, यक्ष हो या किन्नर। परंतु हे नारद! उसके साथ किसी ने भी युद्ध नहीं किया।

ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत्।
न चास्य सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः॥ ३६॥

तदनन्तर क्रोधित होकर वह अमरावती पहुँचा और वहाँ उसने इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा। परंतु इन्द्र भी उससे युद्ध करने का साहस न कर सका।

ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम्।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत्॥ ३७॥

तदनन्तर हाथ उठाकर वह अमरावती में प्रवेश कर गया। प्रवेश करते हुए उस मुर को रोकने का कोई भी साहस नहीं कर सका।

स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा।
देहि युद्धं सहस्राक्ष नो चेत् स्वर्गं परित्यज॥ ३८॥

तदनन्तर वह मुर इन्द्र के प्रासाद में जाकर इन्द्र से बोला— हे सहस्राक्ष! मुझसे युद्ध करो; अन्यथा स्वर्ग को छोड़ दो।

इत्येवमुक्तो मुरुणा ब्रह्मन् हरिहयस्तदा।
स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत॥ ३९॥

हे ब्राह्मण! इस प्रकार कहे जाने पर इन्द्र स्वर्ग का परित्याग करके पृथ्वी पर विचरण करने लगा।

ततो गजेन्द्रकुलिशौ हतौ शक्रस्य शत्रुणा।
सकलत्रो महातेजा देवैः सह सुतेन च॥ ४०॥
कालिन्द्या दक्षिणे कूले निवेश्य स्वपुरं स्थितः।
मुरश्चापि महाभोगान् बुभुजे स्वर्गसंस्थितः॥ ४१॥

तदनन्तर शत्रु मुर ने इन्द्र के गजेन्द्र (ऐरावत) तथा वज्र को छीन लिया और वह महातेजस्वी अपनी पत्नी, पुत्र तथा देवताओं के साथ कालिन्दी के दक्षिणी किनारे पर निवास करने लगा। मुर भी स्वर्ग में निवास करता हुआ महान् भोगों को भोगने लगा।

दानवाश्चापरे रौद्रा मयतारपुरोगमाः।
मुरमासाद्य मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा॥ ४२॥

मय और तारक सहित दूसरे भयानक राक्षस मुर के पास पहुँचकर स्वर्ग में उसी प्रकार रमण करने लगे जिस प्रकार देवता रमण करते थे।

स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः।
एकाकी कुञ्जरारूढः सरयूं निम्नगां प्रति॥ ४३॥

वह महासुर मुर एक बार अकेले ही हाथी पर सवार होकर पृथ्वी पर घूमता हुआ सरयू नदी पर पहुँचा गया।

स सरय्वास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम्।
ददृशे रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि॥ ४४॥

सरयू नदी के तट पर उसने सूर्यवंशी वीर राजा 'रघु' को यज्ञकर्म करने में तत्पर देखा।

तमुपेत्याब्रवीद्दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति।
नो चेन्निवर्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया॥ ४५॥

वह दैत्य उस राजा के समीप पहुँचकर बोला–मुझसे युद्ध करो अथवा यज्ञकर्म से निवृत्त होओ। तुम देवताओं को पुष्ट नहीं कर सकते।

तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः।
प्रोवाच बुद्धिमान् ब्रह्मन् वसिष्ठस्तपतां वरः॥ ४६॥

मित्र और वरुण के पुत्र, तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ, बुद्धिमान् ब्राह्मण वसिष्ठ ने उसके पास आकर कहा—

किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजिताननुशासय।
प्रहर्तुमिच्छसि यदि तं निवारय चान्तकम्॥ ४७॥

हे दैत्य! मनुष्यों को हराकर क्या लाभ? जो अविजित हैं, जाकर उन पर विजय प्राप्त करो! यदि युद्ध करना ही चाहते हो तो यम के पास जाओ।

स बली शासनं तुभ्यं न करोति महासुर।
तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वं मन्यस्व भूतलम्॥ ४८॥

हे महासुर! वह यम शक्तिशाली है; इसलिए वह तुम्हारा शासन नहीं स्वीकारेगा। यदि तुम उसे जीत पाओ तो समस्त भूतल को जीता हुआ मान सकते हो!

स तद्वसिष्ठवचनं निशम्य दनुपुंगवः।
जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम्॥ ४९॥

वसिष्ठ के वचन को सुनकर वह शक्तिशाली दानव दण्डपाणि धर्मराज को जीतने के लिए चल पड़ा।

तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवध्यं च संयुगे।
स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत्॥ ५०॥

उसके आगमन के विषय में सुनकर तथा युद्ध में उसे अविजित जानकर यम अपने महिष पर सवार होकर केशव के पास जा पहुँचा।

समेत्य चाभिवाद्यैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम्।
स चाह गच्छ मामद्य प्रेषयस्व महासुरम्॥ ५१॥

वहाँ पहुँचकर अभिवादन करके यम ने मुर के विषय में उन्हें समस्त वृत्तांत सुनाया। तब विष्णु ने कहा— जाओ और महासुर को मेरे पास भेज दो।

स वासुदेववचनं श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः संप्राप्तो नगरीं मुरः॥ ५२॥

वासुदेव के वचन को सुनकर वह शीघ्रता से वापस आ गया। इतने में ही राक्षस मुर भी यम की नगरी में पहुँच गया।

तमागतं यमः प्राह किं मुरे कर्त्तुमिच्छसि।
वदस्व वचनं कर्त्ता त्वदीयं दानवेश्वर॥ ५३॥

उसको आया हुआ देखकर यम ने कहा— हे मुर! तुम क्या करना चाहते हो। हे दानवेश्वर! कहिये! मैं आपका आज्ञापालक हूँ।

मुर उवाच

यम प्रजासंयमनान्निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि।
नो चेत् तवाद्य छित्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि॥ ५४॥

मुर ने कहा— हे यम! प्राणियों का नियमन बंद करो; अन्यथा तुम्हारा सिर काटकर मैं पृथ्वी पर फेंक दूँगा।

तमाह धर्मराड् ब्रह्मन् यदि मां संयमाद् भवान्।
गोपियति मुरो सत्यं करिष्ये वचनं तव॥ ५५॥

हे ब्राह्मण! धर्मराज ने मुर से कहा— यदि आप मेरे स्वामी से मेरी रक्षा करें तो मैं अवश्य ही आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

मुरस्तमाह भवतः कः संयन्ता वदस्व माम्।
अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः॥ ५६॥

मुर ने यम से कहा— तुम्हारा स्वामी कौन है; मुझे कहो। मैं उसको पराजित करके हटा दूँगा-इसमें संशय नहीं है।

यमस्तं प्राह मां विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः।
श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽव्ययः॥ ५७॥

यम ने मुर से कहा— चक्र और गदा को धारण करने वाले अविनाशी विष्णुदेव। जो श्वेतद्वीप में निवास करते हैं, वे ही मेरे स्वामी हैं।

तमाह दैत्यशार्दूलः क्वासौ वसति दुर्जयः।
स्वयं तत्र गमिष्यामि तस्य संयमनोद्यतः॥ ५८॥

वह दानवराज यम से बोला-वह दुर्जेय विष्णु कहाँ रहता है? उसके निवारण के लिये मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा।

तमुवाच यमो गच्छ क्षीरोदं नाम सागरम्।
तत्रास्ते भगवान्विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः॥ ५९॥

यम ने उसको कहा— क्षीरोद नामक समुद्र में जाओ। वहीं वे जगत्पालक समस्त लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु हैं।

मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम्।
किंतु तु त्वया न तावद्धि संयम्या धर्म मानवाः॥ ६०॥

उसके वचन को सुनकर मुर ने कहा— हे धर्मराज! मैं केशव के पास जाता हूँ, परंतु तुम तब तक मनुष्यों का नियमन नहीं करोगे।

स प्राह गच्छ त्वत्तो वा प्रवर्त्तिष्ये जयं प्रति।
संयन्तुर्वा यथा स्याद्धि ततो युद्धं समाचर॥ ६१॥

यम ने कहा— तुम जाओ! तब तक मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करुँगा। इस प्रकार युद्ध करो कि तुम मेरे शासक बन जाओ (मेरे शासक पर विजय प्राप्त कर लो)।

इत्येवमुक्त्वा वचनं दुग्धाब्धिमगमन्मुरः।
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः॥ ६२॥

इस प्रकार कहकर वह दानव क्षीरसागर की ओर चल पड़ा, जहाँ शेषनाग की गोद में वह चतुर्मूर्ति जनार्दन विराजमान थे।

नारद उवाच

चतुर्मूर्त्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते।
सर्वगत्वात्कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद॥६३॥

नारद ने कहा— वह विष्णु एक ही होने पर भी चतुर्मूर्ति क्यों कहे जाते हैं? सर्वव्यापक होने के कारण अथवा अव्यक्त होने के कारण? कृपया बताइये।

पुलस्त्य उवाच

अव्यक्तः सर्वगोऽपीह एक एव महामुने।
चतुमूर्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मंस्तथा शृणु॥६४॥

पुलस्त्य ने कहा—वह अव्यक्त और सर्वव्यापक होने पर भी एक ही हैं। हे ब्राह्मण! वह जगन्नाथ चतुर्मूर्ति कैसे हैं-यह सुनिये।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं शुक्लं शान्तं परं पदम्।
वासुदेवाख्यमव्यक्तं स्मृतं द्वादशपत्रकम्॥६५॥

वह सर्वथा अग्राह्य, अनिर्देश्य, शुक्ल, शान्त, परमपद, वासुदेव नाम से विख्यात द्वादशपत्रक के रूप में जाने जाते हैं।

नारद उवाच

कथं शुक्लं कथं शान्तमप्रतर्क्यमनिन्दितम्।
कान्यस्य द्वादशैवोक्ता पत्रका तानि मे वद॥६६॥

नारद ने कहा— वह श्वेत कैसे हैं, शान्त कैसे हैं? वे अग्राह्य एवं अनिंदित कैसे हैं? उनका वह द्वादश पत्रक क्या है? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व गुह्यं परमं परमेष्ठिप्रभाषितम्।
श्रुतं सनत्कुमारेण तेनाख्यातं च यन्मम॥६७॥

पुलस्त्य ने कहा— उस परम गुह्यतम वृत्तांत को सुनो जिसे ब्रह्मा ने सनत्कुमारों को सुनाया था तथा सनत्कुमार से मैंने सुना था।

नारद उवाच

कोऽयं सनत्कुमारेति य ब्रह्मणः स्वयम्।
तवापि तेन गदितं वद मामनुपूर्वशः॥६८॥

नारद ने कहा— यह सनत्कुमार कौन है जिन्हें ब्रह्मा ने स्वयं यह गुह्यतम वृत्तांत सुनाया तथा जिसने आपको सुनाया? मुझे प्रारम्भ से बताइये।

पुलस्त्य उवाच

धर्मस्य भार्याऽहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम्।
संजातं मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम्॥६९॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुनिशार्दूल! धर्म की अहिंसा नामक पत्नी थी जिससे योगशास्त्रविचारक चार पुत्र उत्पन्न हुए।

ज्येष्ठः सनत्कुमारोऽभूद् द्वितीयश्च सनातनः।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः॥७०॥

ज्येष्ठ का नाम सनत्कुमार, द्वितीय का सनातन, तृतीय का सनक तथा चतुर्थ का सनन्दन था।

सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं वोढुमासुरिम्।
दृष्ट्वा पञ्चशिखं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम्॥७१॥
ज्ञानयोगं न ते दद्युर्ज्यार्यसोऽपि कनीयसम्।
मानमुक्तं महायोगं कपिलादीनुपासतः॥७२॥

इसके अतिरिक्त सांख्यवेत्ता कपिल, वोढु, पञ्चशिख तथा योगयुक्त तपोनिधि को देखकर उनके पास गये। बड़ा होने पर भी उन लोगों ने अपने से छोटों को ज्ञानयोग का उपदेश नहीं दिया। कपिलादि की उपासना करने वालों को महायोग का परिमाण मात्र बतलाया गया।

सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
अपृच्छद् योगविज्ञानं तमुवाच प्रजापतिः॥७३॥

सनत्कुमार ने कमलोद्भव ब्रह्मा के पास जाकर उनसे योगविज्ञान के विषय में पूछा। प्रजापति ने उनसे कहा—

ब्रह्मोवाच

कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रत्वमिच्छसि।
यस्य कस्य न वक्तव्य तत्सत्यं नान्यथेति हि॥७४॥

ब्रह्मा बोले- हे साध्य! मैं तुम्हें अवश्य बताऊँगा, अगर तुम मेरे पुत्र बनोगे तो, परंतु जो सत्य है वह तुम किसी को नहीं बताओगे। यह वचन अन्यथा नहीं होना चाहिये।

सनत्कुमार उवाच

पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो।
न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह॥७५॥

सनत्कुमार बोले-हे देवेश! हे विभो! चूंकि मैं आपका शिष्य ही हूँ अतः आपका पुत्र ही हूँ। क्योंकि हे पितामह! पुत्र और शिष्य में कोई अन्तर नहीं होता।

ब्रह्मोवाच

विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन।
धर्मकर्मसमायोगे तथापि गदतः शृणु॥७६॥

हे धर्मपुत्र! धर्म और कर्म के निर्वाह में शिष्य और पुत्र में अन्तर है। सुनो! मैं तुम्हें बताता हूँ।

पुन्नाम्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते।
शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥७७॥

पुत्र 'पुत्' नामक नरक से बचाता है इसलिए 'पुत्र' नाम से जाना जाता है तथा शिष्य अवशिष्ट पापों से वचाता है इसलिए 'शिष्य' नाम से जाना जाता है। ऐसा वेदों में कहा जाता है।

सनत्कुमार उवाच

कोऽयं पुन्नामको देव नरकात् त्राति पुत्रकः।
कस्माच्छेषं ततः पापं हरेच्छिष्यश्च तद्वद॥७८॥

सनत्कुमार बोले-यह 'पुत्' नामक नरक क्या है जिस से पुत्र रक्षा करता है तथा वह अवशिष्ट पाप जिससे शिष्य रक्षा करता है, कृपया यह बताइये।

ब्रह्मोवाच

एतत् पुराणं परमं महर्षे
योगाङ्गयुक्तं च सदैव यच्च।
तथैव चोग्रं भयहारि मानवं
वदामि ते साध्य निशामयैनम्॥७९॥

ब्रह्मा बोले-हे महर्षि! यह परम प्राचीन तथा सदा योग के अङ्गोंपांगों से युक्त, वृत्तांत है। मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इसे ध्यान से सुनो। यह अत्यंत उग्र है, परंतु फिर भी पापों का महानाशक है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

नामैकषष्टितमोऽध्यायः

(मुरदानव का वध)

ब्रह्मोवाच

परदाराभिगमनं पापीयांसोपसेवनम।
पारुष्यं सर्वभूतानां प्रथमं नरकं मतम्॥१॥

ब्रह्मा ने कहा— परदाराभिगमन, पापियों की संगति, तथा प्राणिमात्र के प्रति कठोरता को प्रथम नरक माना गया है।

फलस्तेयं महापापं फलहीनं तथाऽटनम्।
छेदनं वृक्षजातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम्॥२॥

फलों की चोरी महापाप है, निरुद्देश्य इधर उधर घूमना तथा वृक्षसमूह का छेदन करना दूसरा नरक माना गया है।

वर्ज्यादानं तथा दुष्टमवध्यवधबन्धनम्।
विवादमर्थहेतूत्थं तृतीयं नरकं स्मतम्॥३॥

वर्जित वस्तुओं का आदान, अवध्य प्राणियों का वध और बन्धन तथा धन के हेतु विवाद को तृतीय नरक माना गया है।

भयदं सर्वसत्त्वानां भवभूतिविनाशनम्।
भ्रंशनं निजधर्माणां चतुर्थं नरकं स्मृतम्॥४॥

सांसारिक समृद्धि के विनाश के लिये प्रयत्नशील अतएव समस्त प्राणियों के लिये भयकारी रहना तथा अपने कर्तव्य से च्युति चतुर्थ नरक (का कारण) माना गया है।

मारणं मित्रकौटिल्यं मिथ्याभिशपनं च यत्।
मिष्टैकाशनमित्युक्तं पञ्चमं तु नृपाचनम्॥५॥

मारण (तपस्या की शक्ति से शत्रु का नाश), मित्र के प्रति कुटिलता, झूठी शपथ लेना, अकेले मिष्टान्न का भोजन करना पंचम नरक है।

यन्त्रः फलादिहरणं यमनं योगनाशनम्।
यानयुग्मस्य हरणं षष्ठमुक्तं नृपाचनम्॥६॥

(किसी के विरुद्ध) षड्यन्त्र करना, फल इत्यादि की चोरी करना, किसी अन्य पर प्रतिबन्ध लगाना, किसी की

तपस्या को भंग करना तथा वाहन आदि का अपहरण करना छठा नरक माना गया है।

राजभागहरं मूढं राजजायानिषेवणम्।
राज्ये त्वहितकारित्वं सप्तमं निरयं स्मृतम्॥७॥

राजा की संपत्ति का अपहरण, राजा की पत्नी अथवा संबंधी से मूर्खतापूर्ण अनैतिक संबंध, तथा राजा अथवा राज्य का अहित करना सातवाँ नरक माना गया है।

लुब्धत्वं लोलुपत्वं च लब्धधर्मार्थनाशनम्।
लालासंकीर्णमेवोक्तमष्टमं नरकं स्मृतम्॥८॥

लालच, लोलुपता, प्राप्त हुये धर्म और अर्थ का विनाश करना, बात करते हुए (लालचवश) राल टपकाना, आठवाँ नरक माना गया है।

विप्रोष्यं ब्रह्महरणं ब्राह्मणानां विनिन्दनम्।
विरोधं बन्धुभिश्चोक्तं नवमं नरपाचनम्॥९॥

ब्राह्मणों के निवास का नाश करना, ब्राह्मणों का अपहरण तथा विरोध, ब्राह्मणों की निन्दा एवं बंधुओं के साथ विरोध नौवाँ नरक माना गया है।

शिष्टाचारविनाशं च शिष्टद्वेषं शिशोर्वधम्।
शास्त्रस्तेयं धर्मनाशं दशमं परिकीर्त्तितम्॥१०॥

शिष्टाचार का अतिक्रमण, सज्जनों से द्वेष, शिशु का वध, शास्त्रों की चोरी तथा धर्मनाशक चेष्टा दसवाँ नरक माना गया है।

षडङ्गनिधनं घोरं षाड्गुण्यप्रतिषेधनम्।
एकादशमेवोक्तं नरकं सद्भिरुत्तमम्॥११॥

किसी को तड़पा-तड़पा कर मारना तथा किसी भी व्यक्ति के लिये निर्दिष्ट छः गुणों के विकास में बाधा डालने को विद्वानों ने ग्यारहवाँ नरक बताया है।

सत्सु निन्दा सदा वैरमनाचारमसत्क्रिया।
संस्कारपरिहीनत्वमिदं द्वादशमं स्मृतम्॥१२॥

सज्जनों के प्रति नित्य वैरभाव, असत् आचार, असत् कर्म, संस्कार तथा हीनता को बारहवाँ नरक माना गया है।

हानिर्धमार्थकामानामपवर्गस्य हारणम्।
संभेदः संविदामेतत् त्रयोदशममुच्यते॥१३॥

धर्म, अर्थ और काम का नाश करने वाले तथा अपवर्ग का नाश करने वाले कार्य का करना तथा सज्जनों में मतभेद कराना तेरहवाँ नरक माना गया है।

कृपणं धर्महीनं च यद्वर्ज्यं यच्च वह्निदम्।
चतुर्दशमेवोक्तं नरकं तद्विगर्हितम्॥१४॥

कृपणता, धर्महीनता, वर्जित आचार एवं आगजनी को (आग लगाना, लूटपाट करना) चौदहवाँ भयानक नरक माना गया है।

अज्ञानं चाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम्।
स्मृतं तत्पञ्चदशकमसत्यवचनानि च॥१५॥

अज्ञान, असूया (द्वेषभाव), अपवित्रता, अशुभ व्यवहार में लगना तथा झूठ बोलने को पंद्रहवाँ नरक माना गया है।

आलस्यं वै षोडशममाक्रोशं च विशेषतः।
सर्वस्य चाततायित्वमावासेष्वग्निदीपनम्॥१६॥

आलस्य तथा विशेष रूप से आक्रोश, समस्त प्राणियों के प्रति दुष्टता तथा प्राणियों के निवास को अग्निदीपन-जलाना सोलहवाँ नरक माना गया है।

इच्छा च परदारेषु नरकाय निगद्यते।
ईर्ष्याभावश्च सत्येषु उद्धत्तं तु विगर्हितम्॥१७॥

दूसरे की पत्नी के लिये लालसा नरक में ले जाने वाली मानी गई है तथा सत्य के प्रति ईर्ष्याभाव घिनौने नरक का कारण माना गया है।

एतैस्तु पापैः पुरुषः पुन्नामाद्यैर्न संशयः।
संयुक्तः प्रीणयेद्देवं संतत्या जगतः पतिम्॥१८॥

'पुत्' नाम से जाने जाने वाले इन सब पापों से युक्त व्यक्ति को चाहिए कि वह संतान के माध्यम से जगत्पति परमात्मा को प्रसन्न करे।

प्रीतः सृष्ट्या तु शुभया सपापाद्येन मुच्यते।
पुंनामनरकं घोरं विनाशयति सर्वतः॥१९॥

अपनी शुभ संतान से प्रसन्न होकर वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा उसके 'पुम्' नामक घोर नरक का सर्वतः विनाश हो जाता है।

एतस्मात् कारणात् साध्य सुतः पुत्रेति गद्यते।
अतः परं प्रवक्ष्यामि शेषपापस्य लक्षणम्॥२०॥

इसी कारण से 'सुत' को 'पुत्र' कहा जाता है। इसके पश्चात् मैं तुम्हें 'शेष' पाप के लक्षण बताऊँगा।

ऋणं देवर्षिभूतानां मनुष्याणां विशेषतः।
पितॄणां च द्विजश्रेष्ठ सर्ववर्णेषु चैकता॥ २१॥
ओंकारादपि निर्वृतिः पापकार्यकृतश्च यः।
मत्स्यादश्च महापापमगम्यागमनं तथा॥ २२॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! देवताओं का ऋण, मनुष्यों का ऋण तथा विशेषरूप से पितरों का ऋण तथा वर्णसंकर, ओंकार से निवृत्ति, पापमय कर्मों में प्रवृत्ति, मछली आदि का भक्षण, (आचारसंहिता के द्वारा निषिद्ध) अगम्य स्त्रियों में अभिगमन महापाप है।

घृतादिविक्रयं घोरं चण्डालादिपरिग्रहः।
स्वदोषच्छादनं पापं परदोषप्रकाशनम्॥ २३॥
मत्सरित्वं वाग्दुष्टत्वं निष्ठुरत्वं तथा परम्।
टोकित्वं तालवादित्वं नाम्ना वाचाऽप्यधर्मजम्॥ २४॥

घृत इत्यादि पवित्र पदार्थों का पापयुक्त विक्रय, चाण्डालादि निम्न जातियों में परिग्रह (विवाह), अपने दोषों को छिपाना तथा दूसरे के दोषों को प्रकाशित करना, ईर्ष्या, वाणी की दुष्टता, अत्यंत कठोरतापूर्ण व्यक्तित्व (दुष्ट व्यक्ति के नामोच्चारण मात्र से हुई अपवित्रता) तथा तालवादित्व (दुष्ट व्यक्ति के साथ बोलचाल का व्यवहार करने से हुई अपवित्रता) केवल नाम तथा वाणी दोनों से ही पाप माना गया है।

दारुणत्वमधार्मित्वं नरकावहमुच्यते।
एतैश्च पापैः संयुक्तः प्रीणयेद्यदि शङ्करम्॥ २५॥
ज्ञानाधिकमशेषेण शेषं पापं जयेत्ततः।
शारीरं वाचिकं यत्तु मानसं कायिकं तथा॥ २६॥
पितृमातृकृतं यच्च कृतं यच्चाश्रितैर्नरैः।
भ्रातृभिर्बान्धवैश्चापि तस्मिञ्जन्मनि धर्मज॥ २७॥

कठोरता तथा धर्महीनता नरकों में ले जाने वाली मानी गई हैं। इन सब पापों से युक्त व्यक्ति यदि इस जन्म में परमज्ञानी शिव को प्रसन्न करे तो हे धर्मज! वह 'शेष' पाप से मुक्त हो जाता है चाहे वह पाप शारीरिक हो, वाचिक हो अथवा मानसिक हो; चाहे वह माता-पिता के द्वारा किया गया हो और आश्रित पुत्रादि के द्वारा किया गया हो, और चाहे बंधु-बांधवों के द्वारा किया गया हो।

तत्सर्वं विलयं याति स धर्मः सुतशिष्ययोः।
विपरीते भवेत्साध्य विपरीतः पदक्रमः॥ २८॥

पुत्र और शिष्य के होने पर समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः पाप से रक्षा करना पुत्र और शिष्य का धर्म है। हे साध्य! इसके विपरीत होने पर (पुत्र और शिष्य के न होने पर) विपरीत ही होता है (अर्थात् व्यक्ति के पाप नष्ट नहीं होते)।

तस्माच्च पुत्रश्च शिष्यश्च हि विधातव्यौ विपश्चिता।
एतदर्थमभिध्याय शिष्याच्छ्रेष्ठतरः सुतः।
शेषात् तारयते शिष्यः सर्वतोऽपि हि पुत्रकः॥ २९॥

इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को पुत्र तथा शिष्य की प्राप्ति करनी चाहिये। इस विषय को (नरक से परित्राण) ध्यान में रखते हुए पुत्र शिष्य से श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि शिष्य केवल 'शेष' नामक पाप से बचाता है जबकि पुत्र समस्त पापों से रक्षा करता है।

पुलस्त्य उवाच

पितामहवचः श्रुत्वा साध्यः प्राह तपोधनः।
त्रिः सत्यं तव पुत्रोऽहं देव योगं वदस्व मे॥ ३०॥

पुलस्त्य ने कहा— पितामह ब्रह्मा के वचन को सुनकर तपस्वी साध्य (सनत्कुमार) ने कहा— देव! मैं आपका पुत्र होने के लिए तीन बार प्रतिज्ञा करता हूँ। मुझे योग की शिक्षा प्रदान करें।

तमुवाच महायोगी त्वन्मातापितरौ यदि।
दास्येते च ततः सूनर्दायादो मेऽसि पुत्रक॥ ३१॥

ब्रह्मा ने उस (सनत्कुमार) को कहा— यदि तुम्हारे माता-पिता तुम्हें मुझे दे दें तभी तुम मेरे पुत्र एवं उत्तराधिकारी होओगे!

सनत्कुमारः प्रोवाच दायादपरिकल्पना।
येयं हि भवता प्रोक्ता तां मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३२॥

सनत्कुमार ने कहा— यह जो आपने उत्तराधिकारी का उल्लेख किया है, उसके विषय में मुझे विस्तार से बताइये!

तदुक्तं साध्यमुख्येन वाक्यं श्रुत्वा पितामहः।
प्राह प्रहस्य भगवाञ्छृणु वत्सेति नारद॥ ३३॥

हे नारद! मुख्य साध्य (सनत्कुमार) के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पितामह भगवान् ब्रह्मा ने हंसकर कहा— वत्स! सुनो।

ब्रह्मोवाच

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवास्तु षट्॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा— औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न एवं उपविद्ध— ये छः दायाद संबंधी माने गए हैं।

अमीषु षट्सु पुत्रेषु ऋणपिण्डधनक्रियाः।
गोत्रसाम्यं कुले वृत्तिः प्रतिष्ठा शाश्वती तथा॥३५॥

इन छः पुत्रों में ऋणदान, पिण्डदान, धन, धार्मिक क्रियाएँ, गोत्रसाम्य, कुल का शाश्वत व्यवहार एवं परम्परा अधिकृत होती है; अर्थात् ये इसके अधिकारी होते हैं।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयं दत्तः पारशवः षट् दायादबान्धवाः॥३६॥

इनके अतिरिक्त ये छः अदायाद बंधु मान गए हैं— कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त तथा पारशव।

अमीभिर्ऋणपिण्डादिकथा नैवेह विद्यते।
नामधारक एवेह न गोत्रकुलसंमतः॥३७॥

इन सबको ऋण अथवा पिण्डदानादि क्रियाओं का अधिकार नहीं होता। ये केवल नामधारी होते हैं तथा कुलपरम्परा का वहन नहीं करते।

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः सनकाग्रजः।
उवाचैषां विशेषं मे ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि॥३८॥

ब्रह्मा का यह वचन सुनकर सनकाग्रज ने कहा— हे ब्राह्मण! कृपया इनकी विशेषताएँ मुझे बताइये।

ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्विशेषं शृणु पुत्रक।
औरसो यः स्वयं जातः प्रतिबिम्बमिवात्मनः॥३९॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा— हे पुत्र! सुनो! 'औरस' पुत्र स्वयं से उत्पन्न पुत्र है जो अपने प्रतिबिम्ब के ही समान होता है।

क्लीबोन्मत्ते व्यसनिनि पत्यौ तस्याज्ञया तु यः।
भार्या ह्यनातुरा पुत्रं जनयेत्क्षेत्रजस्तु सः॥४०॥

पति के नपुंसक, पागल अथवा दुराचारी होने पर पत्नी अपने पति की आज्ञा से ही जिस पुत्र को जन्म देती है वह 'क्षेत्रज' कहलाता है।

मातापितृभ्यां यो दत्तः स दत्तः परिगीयते।
मित्रपुत्रं मित्रदत्तं कृत्रिमं प्राहुरुत्तमाः॥४१॥

माता-पिता के द्वारा जो किसी अन्य को गोद दे दिया जाय, वह 'दत्त' पुत्र कहा गया है। तथा मित्र का पुत्र अथवा मित्र के द्वारा दिया गया पुत्र को विद्वानों ने 'कृत्रिम' कहा है।

न ज्ञायते गृहे केन जातस्त्विति स गूढकः।
बाह्यतः स्वयमानीतः सोऽपविद्धः प्रकीर्तितः॥४२॥

घर में यदि यह ज्ञान न हो कि यह किस से उत्पन्न हुआ है-तो वह पुत्र 'गूढक; माना गया है, जबकि बाहर से स्वयं लाया गया पुत्र 'अपविद्ध' माना गया है।

कन्याजातस्तु कानीनः सगर्भोढः सहोढकः।
मूल्यैर्गृहीतः क्रीतः स्याद्द्विविधः स्यात्पुनर्भवः॥४३॥

कुंवारी कन्या से उत्पन्न पुत्र को कानीन तथा विवाहपूर्व गर्भवती से उत्पन्न पुत्र को सरोढज कहा गया है। मूल्य से लिया गया 'क्रीत' होता है तथा पुनर्भव दो प्रकार का होता है।

दत्त्वैकस्य या कन्या हत्वाऽन्यस्य प्रदीयते।
तज्जातस्तनयो ज्ञेयो लोके पौनर्भवः स्मृतः॥४४॥

किसी कुंवारी कन्या का पहले किसी से विवाह हो ओर पश्चात् उससे छीनकर उसे यदि किसी और को दे दिया जाए तो उससे उत्पन्न पुत्र को पुनर्भव माना जाता है।

दुर्भिक्षे व्यसने चापि येनात्मा विनिवेदितः।
स स्वयंदत्त इत्युक्तस्तथान्यः कारणान्तरैः॥४५॥

जो दुर्भिक्ष अथवा अन्य किसी विकट परिस्थिति में अपनी सेवाएँ स्वयं समर्पित करे उसे स्वयंदत्त माना गया है।

ब्राह्मणस्य सुतः शूद्र्यां जायते यस्तु सुव्रत।
ऊढायां वाप्यनूढायां स पारशव उच्यते॥४६॥

ब्राह्मण का पुत्र यदि शूद्र स्त्री से उत्पन्न हो तो स्त्री चाहे विवाहिता हो या अविवाहिता, वह पुत्र पारशव

कहलाता है।

एतस्मात् कारणात् पुत्र न स्वयं दातुमर्हसि।
स्वमात्मानं गच्छ शीघ्रं पितरौ समुपाह्वय॥४७॥

हे पुत्र! इन सब कारणों से तुम स्वयं को पुत्ररूप में नहीं दे सकते। इसलिए शीघ्र जाओ और अपने माता-पिता को ले आओ।

ततः स मातापितरौ सस्मार वचनाद्विभोः।
तावाजग्मतुरीशानं द्रष्टुं वै दम्पती मुने॥४८॥

हे मुनि! इस प्रकार प्रभु के परामर्श से उस ने अपने माता-पिता को बुलाया और वे दोनों दम्पती ब्रह्मा के दर्शन के लिये शीघ्र ही आ पहुँचे।

धर्मोऽहिंसा च देवेशं प्रणिपत्य न्यषीदताम्।
उपविष्टौ सुखासीनौ साध्यो वचनमब्रवीत्॥४९॥

देवेश को प्रणाम करके धर्म और अहिंसा बैठ गए। उनके आराम से बैठ जाने पर 'साध्य' ने कहा—

सनत्कुमार उवाच

योगं जिगमिषुस्तात ब्रह्माणं समचूचुदम्।
स चोक्त्वान् मां पुत्रार्थे तस्मात्त्वं दातुमर्हसि॥५०॥

सनत्कुमार ने कहा— हे तात! योग के रहस्यों को जानने के लिए मैंने ब्रह्मा से निवेदन किया था और उन्होंने मुझसे उनका पुत्र हो जाने के लिए कहा। इसलिए कृपा कर आप मुझे ब्रह्मा को दे दीजिए।

तावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम्।
उक्तवन्तौ प्रभोऽयं हि आवयोस्तनयस्तव॥५१॥

अपने पुत्र के ऐसा कहने पर उन दोनों ने योगाचार्य पितामह ब्रह्मा से कहा— हे प्रभु! हमारा यह पुत्र आपका हुआ।

अद्यप्रभृत्ययं पुत्रस्तव ब्रह्मन्भविष्यति।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तूर्णं येनैवाभ्यागतौ यथा॥५२॥

हे ब्रह्मा! आज से लेकर यह आपका पुत्र होगा- ऐसा कह कर वे दोनों शीघ्र ही जहाँ से आए थे वहीं चले गए।

पितामहोऽपि तं पुत्रं साध्यं सद्विनयान्वितम्।
सनत्कुमारं प्रोवाच योगं द्वादशपत्रकम्॥५३॥

पितामह ब्रह्मा ने भी अपने उस विनयान्वित पुत्र साध्य सनत्कुमार को द्वादशपत्रक योग की शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी।

शिखासंस्थं तु ओंकारं मेषोऽस्य शिरसि स्थितः।
मासो वैशाखमासा च प्रथमं पत्रकं स्मृतम्॥५४॥

ओ३म् शिखा पर प्रतिष्ठित है। मेष इसके सिर पर निवास करता है और मास का नाम है वैशाख जो प्रथम पत्रक माना गया है।

नकारो मुखसंस्थो हि वृषस्तत्र प्रकीर्तितः।
ज्येष्ठमासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥५५॥

'नकार' मुख पर स्थित है जहां वृष का निवास है, मास का नाम है- ज्येष्ठ, जो द्वितीय पत्रक माना गया है।

मोकारो भुजयोर्युग्मं मिथुनस्तत्र संस्थितः।
मासो आषाढनामा तृतीयं पत्रकं स्मृतम्॥५६॥

'मकार' बाहुयुग्म पर स्थित है जहाँ मिथुन का निवास है, मास का नाम है- आषाढ़। वह तृतीय पत्रक माना गया है।

भकारं नेत्रयुगलं तत्र कर्कटकः स्थितः।
मासः श्रावण इत्युक्तश्चतुर्थं पत्रकं स्मृतम्॥५७॥

'भकार' नेत्रयुगल पर स्थित है जहाँ कर्कटक स्थित है। मास श्रावण है वह चतुर्थ पत्रक कहा गया है।

गकारं हृदयं प्रोक्तं सिंहो वसति तत्र च।
मासो भाद्रस्तथाः प्रोक्तः पञ्चमं पत्रकं स्मृतम्॥५८॥

'गकार' को हृदय कहा गया है जहाँ सिंह निवास करता है। मास भाद्र है तथा वह पंचम पत्रक माना गया है।

वकारं कवचं विद्यात् कन्या तत्र प्रतिष्ठिता।
मासश्चाश्वयुजो नाम षष्ठं तत्पत्रकं स्मृतम्॥५९॥

'वकार' कवच होता है जहाँ कन्या प्रतिष्ठित है। मास अश्वयुज है तथा वह छठा पत्रक माना गया है।

तेकारमस्त्रग्रामं च तुलाराशिः कृताश्रयः।
मासश्च कार्त्तिको नाम सप्तमं पत्रकं स्मृतम्॥६०॥

'तेकार' भुजाओं का प्रतीक है जिसकी राशि तुला है। मास है कार्तिक तथा वह सप्तम पत्रक माना गया है।

वाकारं नाभिसंयुक्तं स्थितस्तत्र तु वृश्चिकः।
मासो मार्गशिरा नाम त्वष्टकं पत्रकं स्मृतम्॥६१॥

'वाकार' नाभियुक्त है जहाँ वृश्चिक स्थित है। मास है 'मार्गशिर' तथा वह आठवाँ पत्रक माना गया है।

सुकारं जघनं प्रोक्तं तत्रस्थश्च धनुर्धरः।
पौषेति दितो मासो नवमं परिकीर्तितम्॥६२॥

'सुकार' कटिप्रदेश है जिस पर धनुर्धर का निवास है पौष नामक मास नवाँ पत्रक कहा गया है।

देकारश्चोरुयुगलं मकरोऽप्यत्र संस्थितः।
माघो निगदितो मासः पत्रकं दशमं स्मृतम्॥६३॥

'देकार' उरुयुगल जंघाएँ हैं जहाँ मकर स्थित है। माघ नामक मास दसवाँ पत्रक कहा गया है।

वाकारो जानुयुग्मं च कुम्भस्तत्रादिसंस्थितः।
पत्रकं फाल्गुनः प्रोक्तं तदेकादशमुत्तमम्॥६४॥

'वाकार' दोनों जानु (घुटने) हैं 'कुम्भ' जहाँ स्थित है। मास फाल्गुन है तथा वह ग्यारहवाँ पत्रक माना गया है।

पादौ यकारौ मीनोऽपि स चैत्रे वसते मुने।
इदं द्वादशमं प्रोक्तं पत्रं वै केशवस्य हि॥६५॥

हे मुनि! पैरों में यकार है जहाँ मीन का निवास है। मास चैत्र है तथा वह केशव का बारहवाँ पत्रक माना गया है।

द्वादशारं तथा चक्रं षण्णाभि द्वियुतं तथा।
त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः॥६६॥

केशव का चक्र बारह अरों तथा बारह धुरी वाला है यद्यपि वह विष्णु तीन रूपधारी हैं परंतु वह परमेश्वर एकमूर्ति माने गए हैं।

एतत् तवोक्तं देवस्य रूपं द्वादशपत्रकम्।
यस्मिन् ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं लभेत्॥६७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस द्वादश पत्रकों वाले देवेश के स्वरूप के विषय के मैंने तुम्हें सुनाया जिसको जान कर पुनः मरण नहीं होता।

द्वितीयमुक्तं सत्त्वाढ्यं चतुर्वर्णं चतुर्मुखम्।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं श्रीवत्सधरमव्ययम्॥६८॥

उनका द्वितीय रूप सत्वबहुल माना गया है। वह चार मुख चार वर्ण, चार भुजाओं तथा उदार अङ्गों वाला है। यह अव्यय तथा श्रीवत्सधारी है।

तृतीयस्तामसो नाम शेषमूर्तिः सहस्रपात्।
सहस्रवदनः श्रीमान् प्रजाप्रलयकारकः॥६९॥

तृतीय रूप शेषमूर्ति है जो तमोबहुल तथा सहस्रों, सहस्र मुखों वाला है, श्रीमान् तथा प्रलयंकारी है।

चतुर्थो राजसो नाम रक्तवर्णश्चतुर्मुखः।
द्विभुजो धारयन् मालां सृष्टिकृच्चादिपूरुषः॥७०॥

चतुर्थ रूप रजोबहुल है। यह चतुर्मुख रक्तवर्ण, दो भुजाओं वाला, माला को धारण करने वाला, सृष्टिकर्ता तथा आदिपुरुष है।

अव्यक्तात् संभवन्त्येते त्रयो व्यक्ता महामुने।
अतो मरीचिप्रमुखास्तथाऽन्येऽपि सहस्रशः॥७१॥

हे महामुनि! अव्यक्त से ये तीनों व्यक्त रूप में उत्पन्न होते हैं। उसी से मरीचि इत्यादि तथा अन्य सहस्ररूप भी प्रकट होते हैं।

एतत् तवोक्तं मुनिवर्य रूपं
विभोः पुराणं मतिपुष्टिवर्धनम्।
चतुर्भुजं चापि मुरुर्दुरात्मा
कृतान्तवाक्यात् पुनराससाद॥७२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! प्रभु के पुरातन स्वरूप के विषय में मैंने तुम्हें बताया। यह बुद्धि और शरीर की पुष्टि को बढ़ाने वाला है। वह दुरात्मा मुर यम के वाक्यों से प्रभावित होकर चतुर्भुज विष्णु के पास आया।

तमागतं प्राह मुने मधुघ्नः
प्राप्तोऽसि केनासुरकारणेन।
स प्राह योद्धुं सह वै त्वयाऽद्य
तं प्राह भूयः सुरशत्रुहन्ता॥७३॥

हे मुनि! मुर के आने पर मधु नामक दैत्य का नाश करने वाले विष्णु ने उससे पूछा-हे असुर! तुम किस कारण से यहाँ आए हो? उसने कहा— आपके साथ युद्ध करने के लिये!

यदीह मां योद्धुमुपागतोऽसि
तत्कम्पते ते हृदयं किमर्थम्।

ज्वरातुरस्येव मुहुर्मुहुर्वै
तन्नास्मि योत्स्ये सह कातरेण॥७४॥

पुनः सुरशत्रुनाशक विष्णु ने उसे कहा— यदि तुम यहाँ मुझसे युद्ध करने के लिए आए हो तो तुम्हारा हृदय ज्वरग्रस्त व्यक्ति की तरह पुनः-पुनः अत्यधिक कंपित क्यों हो रहा है? कातर व्यक्ति के साथ मैं युद्ध नहीं करूँगा।

इत्येवमुक्तो मधुसूदनेन
मुरस्तदा स्वे हृदये स्वहस्तम्।
कथं क्व कस्येति मुहुरस्तथोक्त्वा
निपातयामास विपन्नबुद्धिः॥७५॥

मधुसूदन के ऐसा कहने पर उद्विग्न मति वाले मुर ने कहा-कहाँ! कौन! किसका! पुनः-पुनः इस प्रकार कहते हुए उसने अपने हृदय पर हाथ रखा।

हरिश्च चक्रं मृदुलाघवेन
मुमोच तद्धृत्कमलस्य शत्रोः।
चिच्छेद देवास्तु गतव्यथाभवन्
देवं प्रशंसन्ति च पद्मनाभम्॥७६॥

उसके हृदय पर हाथ रखते ही हरि ने चुपके से चतुराई पूर्वक उस शत्रु की ओर अपना चक्र छोड़ दिया जिससे मुर का हृदय विदीर्ण हो गया। इससे निःशोक होकर देवतागण पद्मनाभ विष्णु की प्रशंसा करने लगे।

एतत्तवोक्तं मुरदैत्यनाशनं
कृतं हि युक्त्या शितचक्रपाणिना।
अतः प्रसिद्धं समुपाजगाम
मुरारिरित्येव विभुर्नृसिंहः॥७७॥

यह मुर नामक दैत्य के नाश का वृत्तांत तुम्हें सुनाया गया। इसे तीक्ष्णचक्रधारी विष्णु ने अत्यंत चतुराई से किया अतएव प्रभु नरसिंह 'मुरारि' नाम से प्रसिद्ध हुए।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे
मुरवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

(विष्णु-हृदय में शिव का स्थान)

पुलस्त्य उवाच

ततो मुरारिभुवनं समभ्येत्य सुरास्ततः।
ऊचुर्देवं नमस्कृत्य जगत्संक्षुब्धिकारणम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर समस्त देवतागण मुरारि के भवन में पहुँचकर प्रभु को नमस्कार करके जगत् की क्षुब्धता का कारण क्या है? इस विषय में पूछने लगे।

तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह गच्छामो हरमन्दिरम्।
स वेत्स्यति महाज्ञानी जगत्क्षुब्धं चराचरम्॥२॥

यह सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा— हर के भवन में चलते हैं। वह महाज्ञानी इस चराचर जगत् की क्षुब्धता के कारण को जानते हैं।

तथोक्ता वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः।
जनार्दनं पुरस्कृत्य प्रजग्मुर्मन्दरं गिरिम्।
न तत्र देवं वृषं न देवीं न च नन्दिनम्॥३॥

वासुदेव के इस प्रकार कहने पर इन्द्र के अनुयायी समस्त देवतागण वासुदेव के नेतृत्व में 'मन्दर' पर्वत पर जा पहुँचे। परंतु न वहाँ भगवान् शिव थे, न वृष; न देवी थीं और न नन्दी।

शून्यं गिरिमपश्यन्त अज्ञानतिमिरावृताः।
तान् मूढदृष्टीन् संप्रेक्ष्य देवो विष्णुर्महाद्युतिः॥४॥
प्रोवाच किं न पश्यध्वं महेशं पुरतः स्थितम्।
तमूचुर्नैव देवेशं पश्यामो गिरिजापतिम्॥५॥

अज्ञान-अंधकार से आवृत्त उन देवों ने पर्वत को शून्य पाया। मूढ़ दृष्टि वाले उन देवताओं को देखकर महाद्युतिमान् विष्णु ने कहा— क्या आप सामने अवस्थित 'महेश' को नहीं देख रहे? तब देवों ने उनसे कहा— हम गिरिजापति शिव को नहीं देख रहे हैं।

न विद्मः कारणं तच्च येन दृष्टिर्हता हि नः।
तानुवाच जगन्मूर्त्तिर्यूयं देवस्य सागसः॥६॥
पापिष्ठा गर्भहन्तारो मृडान्याः स्वार्थतत्पराः।
तेन ज्ञानविवेको वै हतो देवेन शूलिना॥७॥

हम उस कारण को नहीं जान पाते जिससे हमारी दृष्टि अपहत हो गई है। जगन्मूर्ति विष्णु ने उनसे कहा— आप सब देव के अपराधी हैं। स्वार्थ के लिए तत्पर आप सब पापी और मृडानी के गर्भहन्ता हैं। इसलिए आप सब का ज्ञान और विवेक शूलधारी भगवान् शङ्कर ने हर लिया।

येनाग्रतः स्थितमपि पश्यन्तोऽपि न पश्यथ।
तस्मात् कायविशुद्ध्यर्थं देवदृष्ट्यर्थमादरात्॥ ८॥
तप्तकृच्छ्रेण संशुद्धाः कुरुध्वं स्नानमीश्वरे।
क्षीरस्नाने प्रयुञ्जीत सार्द्धं कुम्भशतं पुरा॥ ९॥

इसी कारण अपने सम्मुख स्थित देव शङ्कर को आप देखते हुए भी नहीं देख रहे। इसी कारण अपने शरीर की संशुद्धि के लिए, जिससे आप देव शङ्कर को देख सकें- आप 'तप्तकृच्छ्र' तप से अपने आप को संशुद्ध करें तथा देव को स्नान कराएँ, जिसके लिए एक सौ पचास दूध के कुम्भ का प्रयोग करें।

दधिस्नाने चतुःषष्टिर्द्वात्रिंशद्धविषोऽर्हणे।
पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य कुम्भाः षोडश कीर्तिताः॥ १०॥

दही से स्नान के लिए चौसठ कुंभ प्रयोग करें, घी से स्नान के लिए बत्तीस कुंभ प्रयोग करें। तथा पंचगव्य (दूध, दही, घी, गोबर एवं गोमूत्र) के सोलह कुंभ प्रयोग किए जाएँ।

मधुनोऽष्टौ जलस्योक्ताः सर्वे ते द्विगुणाः सुराः।
ततो रोचनया देवमष्टोत्तरशतेन हि॥ ११॥
अनुलिम्पेत् कुङ्कुमेन चन्दनेन च भक्तितः।
बिल्वपत्रैः सकमलैः धत्तूरसुरचन्दनैः॥ १२॥
मन्दारैः पारिजातैश्च अतिमुक्तैस्थाऽर्चयेत्।
अगुरुं सह कालेयं चन्दनेनापि धूपयेत्॥ १३॥

शहद से स्नान के लिए आठ कुंभ तथा क्रमशः प्रत्येक की दुगुनी संख्या से जल से स्नान कराया जाए। तदनन्तर देव का रोचन से एक सौ आठ बार अनुलेपन किया जाए। पुनः भक्तिपूर्वक कुंकुम और चंदन का अनुलेपन किया जाए। तदनन्तर बिल्वपत्र और कमलपुष्पों से देव की पूजा की जाय। तदनन्तर धतूरा, दिव्य चंदन, मंदार, पारिजात और अतिमुक्त फूलों से पूजा की जाए। तदनन्तर सुगंधित अगर को काले चंदन से मिलाकर पूजा की जाए।

जप्तव्यं शतरुद्रीयं ऋग्वेदोक्तैः पदक्रमैः।
एवं कृते तु देवेशं पश्यध्वं नेतरेण च॥ १४॥

तदनन्तर ऋग्वेदोक्त पदक्रम के अनुसार रुद्रशतक का निरन्तर जप करना चाहिए। इस प्रकार उपासना करने से ही आप देव का दर्शन कर सकते हैं; किसी अन्य प्रकार से नहीं।

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः केशवमब्रुवन्।
विधानं तप्तकृच्छ्रस्य कथ्यतां मधुसूदन।
यस्मिंश्चीर्णे कायशुद्धिर्भवते सार्वकालिकी॥ १५॥

वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर देवताओं ने केशव से कहा— हे मधुसूदन! तप्तकृच्छ्र के विधान के विषय में बताइये, जिसके अनुष्ठान से हमें देह की निरन्तर शुद्धि प्राप्त हो जाए।

वासुदेव उवाच

त्र्यहमुष्णं पिबेदापः त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम्॥ १६॥

वासुदेव ने कहा— तीन दिवस तक केवल गर्म जल तथा तीन दिन तक केवल गर्म दूध पीना चाहिये। तदनन्तर तीन दिन तक केवल गर्म घी पीएँ और तत्पश्चात् तीन दिन तक केवल वायु का सेवन करना चाहिए।

पला द्वादश तोयस्य पलाष्टौ पयसः सुराः।
षट्पलं सर्पिषः प्रोक्तं दिवसे दिवसे पिबेत्॥ १७॥

हे देवों! बारह पल परिमाण में जल, ८ पल परिमाण में दूध, ६ पल परिमाण में घी क्रमशः दिनों में पीना चाहिए।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने सुराः कायविशुद्धये।
तप्तकृच्छ्ररहस्यं वै चक्रुः शक्रपुरोगमाः॥ १८॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार कहे जाने पर समस्त देवताओं ने देहसंशुद्धि के लिए इन्द्र के नेतृत्व में रहस्यमय 'तप्तकृच्छ्र' व्रत का अनुष्ठान किया।

ततो व्रते सुराश्चीर्णे विमुक्ताः पापतोऽभवन्।
विमुक्तपापा देवेशं वासुदेवमथाब्रुवन्॥ १९॥

उस व्रत के सम्पन्न होने पर देवतागण पाप से मुक्त हो गए। पाप से मुक्त देवताओं ने वासुदेव से कहा—

क्वासौ वद जगन्नाथ शंभुस्तिष्ठति केशव।

यं क्षीराद्यभिषेकेण स्नापयामो विधानतः॥ २०॥

हे जगन्नाथ! हे केशव! बताइये, ये शंभु कहाँ निवास करते हैं; जिन्हें क्षीरादि अभिषेक के द्वारा हम विधिपूर्वक स्नान करा सकें।

अथोवाच सुरान्विष्णुरेष तिष्ठति शङ्करः।

मद्देहे किं न पश्यध्वं योगंश्चायं प्रतिष्ठितः॥ २१॥

तदनन्तर विष्णु ने देवताओं से कहा— यह शङ्कर मुझसे संयुक्त मेरी देह में ही निवास करते हैं-क्या आप नहीं उन्हें देख पाते?

तमूचुर्नैव पश्यामस्त्वत्तो वै त्रिपुरान्तकम्।

सत्यं वद सुरेशान महेशानः क्व तिष्ठति॥ २२॥

देवताओं ने उन्हें कहा— हम निश्चय ही आप के शरीर में त्रिपुरान्तक (शिव) को नहीं देख पाते। हमसे प्रसन्न होकर हमें बताइये कि महेश कहाँ निवास करते हैं।

ततोऽव्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पङ्कजशायिनम्।

दर्शयामास देवानां मुरारिर्लिङ्गमैश्वरम्॥ २३॥

तदनन्तर अव्ययात्मा हरि मुरारि ने देवताओं को अपने हृदय कमल में प्रतिष्ठित शिव को दिखाया।

ततः सुराः क्रमेणैव क्षीरादिभिरनन्तरम्।

स्नापयांचक्रिरे लिङ्गं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्॥ २४॥

तदनन्तर देवताओं ने शाश्वत, ध्रुव एवं अव्यय लिंग को क्रमशः क्षीरादि से स्नान कराया।

गोरोचनया त्वालिप्य चन्दनेन सुगन्धिना।

बिल्वपत्राम्बुजैर्देवं पूजयामासुरञ्जसा॥ २५॥

तदनन्तर लिंग का गोरोचन तथा चंदन से अनुलेपन करके देवताओं ने बिल्वपत्र तथा कमल से शिव की विधिवत् पूजा की।

प्रधूप्यागुरुणा भक्त्या निवेद्य परमौषधीः।

जप्त्वाऽष्टशतनामानं प्रणामं चक्रिरे ततः॥ २६॥

तदनन्तर अगर से सुगंधित करके तथा भक्तिपूर्वक परमौषधी का निवेदन करके शिव के एक सौ आठ नामों का जप करके उन्होंने शिव को प्रणाम किया।

नारद उवाच

इत्येवं चिन्तयन्तश्च देवावेतौ हरीश्वरौ।

कथं योगत्वमापन्नौ सत्त्वान्धतमसोद्भवौ॥ २७॥

तब देवताओं ने विचार किया कि विष्णु और शङ्कर ये दो देव जो क्रमशः सत्व और तमस् रूप हैं किस प्रकार परस्पर संयुक्त हुए हैं।

पुलस्त्य उवाच

सुराणां चिन्तितं ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः।

सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वायुधधरोऽव्ययः॥ २८॥

देवताओं को इस प्रकार विचारमग्न जानकर अव्यय प्रभु विष्णु ने समस्त लक्षणों से संयुक्त तथा समस्त आयुधों को धारण किये हुए विश्वमूर्ति रूप को धारण कर लिया।

सार्धं त्रिनेत्रं कनकाहिकुण्डलं

जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम्।

समाधवं हारभुजङ्गवक्षसं

पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम्॥ २९॥

तब शङ्करयुक्त माधव का स्वरूप प्रकट हुआ। उसमें तीन नेत्र दृष्टिगोचर हो रहे थे। उसने सर्प तथा कमल के कुण्डल धारण किये हुए थे। वे जटा, गरुड़ तथा वृषभ से चिह्नित थे। वक्षस्थल पर हार तथा सर्प सुशोभित थे, तथा कटिप्रदेश पीताम्बर और मृगचर्म से सुशोभित थे।

चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं

पिनाकशूलाजगवान्वितं च।

कपर्दखट्वाङ्गकपालघण्टा-

सशङ्खटङ्काररवं महर्षे॥ ३०॥

हे महर्षि! उनके हाथ में चक्र तथा खड्ग थे तथा भुजाओं में हल और धनुष थे, साथ ही पिनाक, त्रिशूल और अजगव धारण किये हुए थे, वह स्वरूप कपर्द, खट्वाङ्ग, कपाल, घण्टा तथा शङ्ख की ध्वनि से ध्वनित हो रहा था।

दृष्ट्वैव देवा हरिशङ्करं तं

नमोऽस्तु ते सर्वगताव्ययेति।

प्रोक्त्वा प्रणामं कमलासनाद्या-

श्चक्रुर्मतिं चैकतरां नियुज्य॥ ३१॥

इस प्रकार हरि से संयुक्त शङ्कर के रूप को देखकर ब्रह्मा सहित समस्त देवतागण- हे अव्यय! हे सर्वव्यापी! आप को प्रणाम है, आपको नमस्कार है, इस प्रकार कहते हुये-वह दोनों एक ही हैं-इस प्रकार विचार करने लगे।

तानेकचित्तान् विज्ञाय देवान् देवपतिर्हरिः।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्तूर्णं कुरुक्षेत्रं स्वमाश्रमम्॥३२॥

उन देवों को एकमत वाले (विष्णु और शङ्कर में भेद न करने वाला) जानकर देवपति हरि उनको शीघ्रतापूर्वक अपने आश्रम कुरुक्षेत्र की ओर ले गए।

ततोऽपश्यन्त देवेशं स्थाणुभूतं जले शुचिम्।
दृष्ट्वा नमः स्थाणवेति प्रोक्त्वा सर्वेऽह्युपाविशन्॥३३॥

वहाँ उन देवताओं ने देवेश शिव को जल में पवित्र स्थाणुरूप में प्रतिष्ठित देखा और देखकर वे सब 'हे स्थाणुदेव! आप को नमस्कार है'— इस प्रकार कहकर वहाँ बैठ गए।

ततोऽब्रवीत् सुरपतिरेह्येहि दीयतां वरः।
क्षुब्धं जगज्जगन्नाथ उन्मज्जस्व प्रियातिथे॥३४॥

तदनन्तर सुरपति विष्णु ने कहा— हे स्थाणु! आइये, आइये और वरदान दीजिए। हे जगन्नाथ! यह समस्त संसार क्षुब्ध हो रहा है। हे अतिथिप्रिय! जल से बाहर आइये।

ततस्तां मधुरां वाणीं शुश्राव वृषभध्वजः।
श्रुत्वोत्तस्थौ च वेगेन सर्वव्यापी निरञ्जनः॥३५॥

वृषभध्वज शिव ने विष्णु की सुमधुर वाणी को सुना; और वह सर्वव्यापी निरंजन (स्थाणु) वेगपूर्वक जल से ऊपर उठने लगे।

नमोऽस्तु सर्वदेवेभ्यः प्रोवाच प्रहसन्हरः।
स चागतः सुरैः सेन्द्रैः प्रणतो विनयान्वितैः॥३६॥

हंसते हुए शिव ने कहा-समस्त देवताओं को नमस्कार है। उपस्थित शिव को इन्द्रसहित समस्त देवताओं ने विनयान्वित होकर नमस्कार किया।

तमूचुर्देवताः सर्वास्त्यज्यतां शङ्कर द्रुतम्।
महाव्रतं त्रयो लोकाः क्षुब्धास्त्वत्तेजसावृताः॥३७॥

समस्त देवताओं ने शिव से कहा— हे शङ्कर! अपने महान् व्रत का त्याग कीजिए। क्योंकि आपके तेज से आवृत होने से तीनों लोक क्षुब्ध हो रहे हैं।

अथोवाच महादेवो मया त्यक्तो महाव्रतः।
ततः सुरा दिवं जग्मुर्हृष्टाः प्रयतमानसाः॥३८॥

तब महादेव शिव ने कहा— मैंने अपना महान् व्रत त्याग दिया है। तब समस्त देवतागण मन ही मन शिव के आभारी होकर प्रसन्न होते हुए स्वर्ग की ओर लौट गए।

ततोऽपि कम्पते पृथ्वी साब्धिद्वीपाचला मुने।
ततोऽभिचिन्तयद्रुद्रः किमर्थं क्षुभिता मही॥३९॥

हे मुनि! महासागरों, पृथ्वी तल और पर्वतशृंखलाओं के सहित पृथ्वी फिर भी कंपायमान होती रही। तब रुद्र ने सोचा-पृथिवी क्षुब्ध किस कारण से है?

ततः पर्यचरच्छूली कुरुक्षेत्रं समन्ततः।
ददर्शौघवतीतीरे उशनसं तपोनिधिम्॥४०॥

तदनन्तर शूलधारी शिव कुरुक्षेत्र में चारों ओर विचरण करने लगे। वहाँ उन्होंने 'ओघवती' नदी के किनारे महान् तपस्वी उशनस् (शुक्र) को देखा।

ततोऽब्रवीत्सुरपतिः किमर्थं तप्यते तपः।
जगत्क्षोभकरं विप्र तच्छीघ्रं कथ्यतां मम॥४१॥

तदनन्तर सुरपति शिव ने कहा— हे विप्र! आप समस्त जगत् को क्षुब्ध करने वाला यह महान् तप क्यों कर रहे हैं? मुझे शीघ्र ही बताइये।

उशना उवाच

तवाराधनकामार्थं तप्यते हि महत्तपः।
संजीविनीं शुभां विद्यां ज्ञातुमिच्छे त्रिलोचन॥४२॥

उशना ने कहा— हे त्रिलोचन! आप को प्रसन्न करने के लिए मैं यह महान् तपस्या कर रहा हूँ। मैं कल्याणकारी संजीवनी विद्या को जानना चाहता हूँ।

हर उवाच

तपसा परितुष्टोऽस्मि सुतप्तेन तपोधन।
तस्मात्संजीविनीं विद्या भवान् ज्ञास्यति तत्त्वतः॥४३॥

हर ने कहा— हे तपोधन! विधिवत् किये गये आपके घोर तप से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। इसलिए आप संपूर्ण विस्तार से संजीवनी विद्या को जान लेंगे।

वरं लब्ध्वा ततः शुक्रस्तपसः संन्यवर्त्तत।
तथापि चलते पृथ्वी साब्धिभूभृन्नगावृता॥४४॥

तदनन्तर वर प्राप्त करके शुक्र तप से निवृत्त हो गए। परन्तु महासागर, पर्वत तथा वृक्षों सहित पृथ्वी फिर भी कम्पायमान होती रही।

ततोऽगमन्महादेवः सप्तसारस्वतं शुचि।
ददर्श नृत्यमानं च ऋषिं मङ्कणसंज्ञितम्॥४५॥

तदनन्तर महादेव पवित्र सप्तसारस्वत पहुँचे जहाँ उन्होंने मङ्कण नामक ऋषि को नृत्य करते हुए देखा।

भावेन पोप्लूयति बालवत् स
भुजौ प्रसार्यैव ननर्त्त वेगात्।
तस्यैव वेगेन समाहता तु
चचाल भूर्भूमिधरैः सहैव॥४६॥

वह एक बालक की भांति भावविभोर होकर अपनी भुजाओं को पसार-पसार कर वेगपूर्वक नृत्य कर रहे थे। उनके वेग से प्रभावित होकर पृथ्वी पर्वतों सहित कम्पायमान हो रही थी।

तं शङ्करोऽभ्येत्य करे निगृह्य
प्रोवाच वाक्यं प्रहसन् महर्षे।
किं भावितो नृत्यसि केन हेतुना
वदस्व मामेत्य किमत्र तुष्टिः॥४७॥

· हे महर्षि! शङ्कर उसके समीप पहुँचे और उसके हाथ को पकड़ कर हंसते हुए उससे पूछा— आप किस भावना से प्रभावित होकर भावविभोर नृत्य कर रहे हो। मेरे समीप आकर अपने भावविभोर होने का कारण बताइये।

स ब्राह्मणः प्राह ममाद्य तुष्टि-
र्येनेह जाता शृणु तद्विजेन्द्र।
वहून् गणान् वै मम तप्यतस्तपः
संवत्सराः कायविशोषणार्थम्॥४८॥

उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया— हे द्विजेन्द्र! मुझे जिस कारण से अत्यंत प्रसन्नता एवं संतुष्टि हो रही है वह सुनिये! मुझे शरीर को शोषित करने वाला तप करते हुए बहुत वर्ष व्यतीत हो गए।

ततोऽनु पश्यामि करात् क्षतोत्थं
निर्गच्छते शाकरसं ममेह।
तेनाद्य तुष्टोऽस्मि भृशं द्विजेन्द्र
येनास्मि नृत्यामि सुभावितात्मा॥४९॥

आज मैंने देखा कि मेरे घावयुक्त हाथ से शाकरस बह रहा है। हे द्विजेन्द्र! इसलिए मैं आज अत्यधिक संतुष्ट हूँ और इसी कारण भावविभोर होकर नृत्य कर रहा हूँ।

तं प्राह शंभुर्द्विज पश्य मह्यं
भस्म प्रवृत्तोऽङ्गुलितोऽतिशुक्लम्।
संताडनादेव न च प्रहर्षो
ममास्ति नूनं हि भवान्प्रमत्तः॥५०॥

शंभु ने उससे कहा— हे द्विज! देखो केवल संताड़न मात्र से मेरी अङ्गुली से अत्यंत श्वेत भस्म निकल रही है; पर मैं तो विशेष प्रसन्न या उत्सुक नहीं हूँ; फिर तुम इतने उन्मत्त क्यों हो रहे हो?

श्रुत्वाऽथ वाक्यं वृषभध्वजस्य
मत्वा मुनिर्मङ्कणको महर्षे।
नृत्यं परित्यज्य सुविस्मितोऽथ
ववन्द पादौ विनयावनम्रः॥५१॥

वृषभध्वज शिव के वचन को सुनकर उस पर विचार करके मंकणक अत्यंत विस्मित हुए और उन्होंने नृत्य छोड़कर विनयावनत होकर शिव के चरणों में प्रणाम किया।

तमाह शंभुर्द्विज गच्छ लोकं
तं ब्रह्मणो दुर्गममव्ययस्य।
इदं च तीर्थं प्रवरं पृथिव्यां
पृथूदकस्यास्तु समं फलेन॥५२॥

शंभु ने उनसे कहा— हे द्विज! आप नित्य ब्रह्मा के दुर्गम और अविनाशी लोक में जाओ। यह तीर्थ भी पृथ्वी पर अतिश्रेष्ठ होगा तथा पृथूदक के समान फलदायक होगा।

सांनिध्यमत्रैव सुरासुराणां
गन्धर्वविद्याधरकिंनराणाम्।
सदाऽस्तु धर्मस्य निधानमग्र्यं
सारस्वतं पापमलापहारि॥५३॥

यह सारस्वत तीर्थ पाप और मल का अपहरण करने वाला होगा। यह सदैव धर्म का प्रतिष्ठान होगा। यहाँ सुर, असुर, गंधर्व, किन्नर, एवं विद्याधरों का निरन्तर सामीप्य होगा।

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च सुवेणुर्विमलोदका।
महोदरा चौघवती विशाला च सरस्वती॥५४॥
एताः सप्त सरस्वत्यो निवसिष्यन्ति नित्यशः।
सोमपानफलं सर्वाः प्रयच्छन्ति सुपुण्यदाः॥५५॥

सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, निर्मलजल वाली सुवेणु, मनोहरा, ओघवती, विशाला और सरस्वती ये सात सरस्वतियाँ (नदियाँ) यहाँ नित्य प्रवाहित होंगी तथा अत्यंत पुण्यदायक सोमपान के फल को देने वाली होंगी।

भवानपि कुरुक्षेत्रं मूर्त्तिं स्थाप्य गरीयसीम्।
गमिष्यति महापुण्यं ब्रह्मलोकं सुदुर्गमम्॥५६॥

आप भी कुरुक्षेत्र में अपनी विशाल प्रतिभा स्थापित करके महान् पुण्यशाली तथा अत्यंत दुर्गम ब्रह्मलोक में चले जाएँ।

इत्येवमुक्तो देवेन शङ्करेण तपोधनः।
मूर्त्तिं स्थाप्य कुरुक्षेत्रे ब्रह्मलोकमगाद्वशी॥५७॥

देव शङ्कर के इस प्रकार कहने पर वह संयमी तपस्वी कुरुक्षेत्र में मूर्ति की स्थापना करके ब्रह्मलोक को चला गया।

गते मङ्कणके पृथ्वी निश्चला समजायत।
अथागान्मन्दरं शंभुर्निर्जनावसथं शुचि॥५८॥

मङ्कणक के चले जाने पर पृथ्वी शान्त एवं निश्चल हो गई तथा पवित्र शङ्कर भी अपने निवास मन्दर को चले गये।

एतत् तवोक्तं द्विज शङ्करस्तु
गतस्तदासीत् तपसेऽथ शैले।
शून्येऽभ्ययादद्रष्टुमतिर्हि देव्या
संयोधितो येन हि कारणेन॥५९॥

हे द्विज! यह वृत्तांत मैंने आप को यह बताने के लिए सुनाया कि शङ्कर पर्वत पर तपस्या में क्यों प्रवृत्त हुए, और दुष्टमति अंधक शून्य में क्यों चला गया, तथा किस कारण से वह देवी के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

(दण्ड राजा का उपाख्यान)

नारद उवाच

गतोऽधकस्तु पाताले किमचेष्टत दानवः।
शङ्करो मन्दरस्थोऽपि यच्चकार तदुच्यताम्॥१॥

नारद ने कहा— पाताल में जानकर राक्षस अंधक ने क्या किया तथा मंदर पर्वत पर निवास करते हुए शङ्कर ने क्या किया? कृपया बताइये।

पुलस्त्य उवाच

पातालस्थोऽन्धको ब्रह्मन् बाध्यते मदनाग्निना।
संतप्तविग्रहः सर्वान् दानवानिदमब्रवीत्॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्राह्मण! पातालस्थ अन्धक कामाग्नि से पीड़ित हो गया। काम से उत्तेजित होकर तब उसने समस्त दानवों से कहा—

स मे सुहृत्स मे बन्धुः स भ्राता स पिता मम।
यस्तामद्रिसुतां शीघ्रं ममान्तिकमुपानयेत्॥३॥

जो उस 'पर्वतसुता' पार्वती को शीघ्रातिशीघ्र मेरे समीप लायेगा वही मेरा मित्र है; वही सखा है; वही मेरा भ्राता और वही मेरा पिता है

एवं बुवति दैत्येन्द्रे अन्धके मदनान्धके।
मेघगम्भीरनिर्घोषं प्रह्लादो वाक्यमब्रवीत्॥४॥

कामातुर दैत्येन्द्र अन्धक के ऐसा कहने पर प्रह्लाद ने मेघ के समान गंभीर वाणी में कहा-

येयं गिरिसुता वीर सा माता धर्मतस्तव।
पिता त्रिनयनो देवः श्रूयतामत्र कारणम्॥५॥

हे वीर! यह गिरिसुता है, धर्म से तुम्हारी माता तथा त्रिनेत्र देवशङ्कर तुम्हारे पिता हैं— मेरे ऐसा कहने में क्या कारण है-वह सुनो।

तव पित्रा ह्यपुत्रेण धर्मनित्येन दानव।
आराधितो महादेवः पुत्रार्थाय पुरा किल॥६॥

हे दानव! प्राचीन काल में तुम्हारे पिता धर्माचरण में

तत्पर थे। पुत्ररहित होने के कारण उन्होंने एक बार पुत्रप्राप्ति के लिए महादेव की आराधना की।

तस्मै त्रिलोचनेनासीद्दत्तोऽन्धोऽप्येव दानवः।
पुत्रकः पुत्रकामस्य प्रोक्त्वेत्थं वचनं विभो॥७॥

हे दानव! तब त्रिलोचन ने तुम्हारे पुत्रेच्छुक पिता को यह कहते हुए एक अंधे पुत्र का वरदान दिया।

नेत्रत्रयं हिरण्याक्ष नर्मार्थमुमया मम।
पिहितं योगसंस्थस्य ततोऽध्वमभवत्तमः॥८॥

हे हिरण्याक्ष! एक बार जब मैं समाधिस्थ था तब क्रीडावश उमा ने मेरे तीनों नेत्र ढँक दिए थे जिससे घोर अंधकार हो गया था।

तस्माच्च तमसो जातो भूतो नीलघनस्वनः।
तदिदं गृह्यतां दैत्य तवौपयिकमात्मजम्॥९॥

हे दैत्य! उस अंधकार से एक नीलघन की गर्जना युक्त 'भूत' उत्पन्न हुआ। तुम इसे ग्रहण करो; यह तुम्हारे पुत्र के लिये अत्यन्त उपयुक्त पुत्र है।

यदा तु लोकविद्विष्टं दुष्टं कर्म करिष्यति।
त्रैलोक्यजननीं चापि अभिवाञ्छिष्यतेऽधमः॥१०॥
घातयिष्यति वा विप्रं यदा प्रक्षिप्य चासुरान्।
तदाऽस्य स्वयमेवाहं करिष्ये कायशोधनम्॥११॥

जब यह अधम लोकनिन्दित एवं दुष्ट कर्म करेगा, अथवा कामवश त्रैलोक्यजननी की इच्छा करेगा अथवा असुरों को नियुक्त कर ब्राह्मण का वध करेगा, उस समय मैं स्वयं इसकी शरीरसंशुद्धि करूँगा।

एवमुक्त्वा गतः शंभुः स्वस्थानं मन्दराचलम्।
त्वत्पिताऽपि समभ्यागात्त्वामादाय रसातलम्॥१२॥

यह कहकर शंभु अपने स्थान मन्दराचल को चले गए और तुम्हारे पिता भी तुम्हें लेकर रसातल आ गए।

एतेन कारणेनाम्बा शैलेयी भविता तव।
सर्वस्यापीह जगतो गुरुः शंभुः पिता ध्रुवम्॥१३॥

इस कारण निश्चय ही गिरिराज कुमारी तुम्हारी माता हुई और जगत्पिता शंभु तुम्हारे जनक हैं।

भवानपि तपोयुक्तः शास्त्रवेत्ता गुणाप्लुतः।
नेदृशे पापसंकल्पे मतिं कुर्याद्भवद्विधः॥१४॥

तुम भी तपोधनी वे शास्त्र तथा गुणयुक्त हो। तुम्हारे जैसे व्यक्ति को इस तरह के पापसंकल्प के विषय में विचार नहीं करना चाहिये।

त्रैलोक्यप्रभुरव्यक्तो भवः सर्वैर्नमस्कृतः।
अजेयस्तस्य भार्येयं न त्वमर्होऽमरार्दन॥१५॥

हे देवशत्रु! त्रैलोक्य के स्वामी अव्यक्त शिव सब के द्वारा नमस्कृत (पूजनीय) और अजेय हैं। तुम उनकी पत्नी के योग्य नहीं हो।

न चापि शक्तः प्राप्तुं ता भवाञ्शैलनृपात्मजाम्।
अजित्वा सगणं रुद्रं स च कामोऽथ दुर्लभः॥१६॥

फिर तुम गणों सहित शिव को पराजित किए बिना पर्वतराज की पुत्री को प्राप्त नहीं कर सकते। इस इच्छा का पूर्ण होना पूर्णतः दुर्लभ है।

यस्तरेत्सागरं दोर्भ्यां पातयेद्भुवि भास्करम्।
मेरुमुत्पाटयेद्वापि स जयेच्छूलपाणिनम्॥१७॥

जो व्यक्ति अपनी दोनों भुजाओं से सागर को पार कर सके, सूर्य को पृथ्वी पर ला सके, अथवा मेरु पर्वत को उखाड़ सके वही शूलपाणि शिव पर विजय प्राप्त कर सकता है।

उताहोस्विदिमां शक्याः क्रियां कर्तुं नरैर्बलात्।
न च शक्यो हरो जेतुं सत्यं सत्यं मयोदितम्॥१८॥

यह कार्य बहुत से शक्तिशाली व्यक्ति मिलकर करें; तो भी शिव को जीता नहीं जा सकता। यह मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ।

किं त्वया न श्रुतं दैत्य यथा दण्डो महीपतिः।
परस्त्रीकामवान् मूढः सराष्ट्रो नाशमाप्तवान्॥१९॥

हे दैत्य! क्या तुमने नहीं सुना है कि किस प्रकार राजा दण्ड ने परस्त्री की कामना की और इस कारण वह मूर्ख अपने संपूर्ण राष्ट्र सहित नष्ट हो गया।

आसीद्दण्डो नाम नृपः प्रभूतबलवाहनः।
स च वव्रे महातेजाः पौरोहित्याय भार्गवम्॥२०॥

दण्ड नामक वह राजा सैन्यबल और धन-संपत्ति में अत्यंत समृद्ध था। उसने महातेजस्वी भार्गव (शुक्र) को अपना पुरोहित नियुक्त किया था।

ईजे च विविधैर्यज्ञैर्नृपतिः शुक्रपालितः।
शुक्रस्यासीच्च दुहिता अरजा नाम नामतः॥ २१॥

उस शुक्र की अध्यक्षता में उस राजा दण्ड ने अनेक यज्ञ संपादित किये। शुक्र की एक 'अरजा' नाम से प्रसिद्ध कन्या थी।

शुक्रः कदाचिदगमद् वृषपर्वाणमासुरम्।
तेनार्चितश्चिरं तत्र तस्थौ भार्गवसत्तमः॥ २२॥

शुक्र एक बार वृषपर्वा नामक असुर के पास गए। उसके द्वारा सम्मान प्राप्त करते हुये वे महातपस्वी भार्गव चिरकाल तक वहीं ठहर गए।

अरजाः स्वगृहे वह्निं शुश्रूषन्ती महासुर।
अतिष्ठत सुचार्वङ्गी ततोऽभ्यागान्नराधिपः॥ २३॥

हे महासुर! सुन्दर अङ्गों वाली अरजा (एक दिन) अपने घर में ही यज्ञाग्नि की सेवा कर रही थी तभी वहाँ राजा आ पहुँचा।

स पप्रच्छ क्व शुक्रेति तमूचुः परिचारिकाः।
गतः स भगवान् शुक्रो याजनाय दनोः सुतम्॥ २४॥

उसने पूछा-शुक्र कहाँ हैं? परिचारिकाओं ने उत्तर देते हुये कहा कि वे असुर वृषपर्वा के घर यज्ञ के लिये गए हैं।

पप्रच्छ नृपतिः का तु तिष्ठते भार्गवाश्रमे।
तास्तमूचुर्गुरोः पुत्री संतिष्ठत्यरजा नृप॥ २५॥

राजा ने पूछा-भार्गव के आश्रम में इस समय कौन है? परिचारिकाओं ने राजा से कहा— हे नृप! गुरु (शुक्र) की पुत्री 'अरजा' है।

तामाश्रमे शुक्रसुतां द्रष्टुमिक्ष्वाकुनन्दनः।
प्रविवेश महाबाहुर्ददर्शारजसं ततः॥ २६॥

शुक्रसुता को देखने के लिए वह महाबाहु इक्ष्वाकुनन्दन (दण्ड) आश्रम में प्रविष्ट हुआ और वहाँ उसने अरजा को देखा।

तां दृष्ट्वा कामसंतप्तस्तत्क्षणादेव पार्थिवः।
संजातोऽन्धक दण्डस्तु कृतान्तबलचोदितः॥ २७॥

हे अन्धक! उसको देखकर विधि के विधान से प्रेरित राजा उसी क्षण कामसंतप्त हो गया।

ततो विसर्जयामास भृत्यान् भ्रातृन् सुहत्तमान्।
शुक्रशिष्यानपि बली एकाकी नृप आव्रजत्॥ २८॥

तदनन्तर राजा ने अपने सेवकों, भाइयों और मित्रों, और यहाँ तक कि शुक्र के शिष्यों को भी आश्रम के बाहर भेज दिया और अकेले ही आश्रम में अरजा की ओर जाने लगा।

तमागतं शुक्रसुता प्रत्युत्थाय यशस्विनी।
पूजयामास संहृष्टा भ्रातृभावेन दानव॥ २९॥

हे दानव! दण्ड को आते हुये देखकर यशस्विनी शुक्रसुता ने उठकर प्रसन्नतापूर्वक भ्रातृभाव से उसका अभिनंदन किया।

ततस्तामाह नृपतिर्बाले कामाग्नितापितम्।
मां समाह्लादयस्वाद्य स्वपरिष्वङ्गवारिणा॥ ३०॥

राजा ने उससे कहा— हे सुन्दरी! मैं कामाग्नि से संतप्त हूँ। मुझको अपने आलिङ्गनरूपी जल से शान्त करो।

साऽपि प्राह नृपश्रेष्ठ मा विनीनश आतुरः।
पिता मम महाक्रोधात् त्रिदशानपि निर्दहेत्॥ ३१॥

शुक्रसुता ने कहा— हे नृपश्रेष्ठ! तुम अनियंत्रित हो रहे हो। अपने आप को नष्ट मत करो। मेरे पिता अपने महाक्रोध से देवताओं को भी जला सकते हैं।

मूढबुद्धे भवान्भ्राता ममापि त्वनयाप्लुतः।
भगिनी धर्मतस्तेऽहं भवाञ्शिष्यः पितुर्मम॥ ३२॥

हे विनष्टबुद्धि! तुम इस समय मूर्खतापूर्वक व्यवहार कर रहे हो। तुम मेरे भाई हो; और धर्मतः मैं तुम्हारी बहन हूँ; क्योंकि तुम मेरे पिता के शिष्य हो।

सोऽब्रवीद्भीरु मां शुक्रः कालेन परिधक्ष्यति।
कामाग्निर्निर्दहति मामद्यैव तनुमध्यमे॥ ३३॥

राजा ने कहा— हे भीरु! शुक्र तो मुझे कुछ समय बाद ही जलाएँगे। परंतु हे तन्वंगी! कामाग्नि तो मुझे इसी समय जला रही है।

सा प्राह दण्डं नृपतिं मुहूर्तं परिपालय।
तमेव याचस्व गुरुं स ते दास्यत्यसंशयम्॥ ३४॥

उसने राजा दण्ड से कहा— क्षण भर रुको और मेरे

पिता से प्रार्थना करो। वह निश्चय ही तुम्हें क्षमा कर देंगे।

दण्डोऽब्रवीत्सुतन्वङ्गि कालक्षेपो न मे क्षमः।
च्युतावसरकर्तृत्वे विघ्नो जायेत सुन्दरि॥ ३५॥

दण्ड ने कहा— हे कृशांगी! मैं क्षण भर भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि समय निकल जाने पर निश्चय ही मनोकामना में व्यवधान उपस्थित हो जाते हैं।

ततोऽब्रवीच्च विरजा नाहं त्वां पार्थिवात्मज।
दातुं शक्ता स्वमात्मानं स्वतन्त्रता न हि योषितः॥ ३६॥

तदनन्तर विरजा ने कहा— हे राजा! मैं स्वयं अपने आप को देने में समर्थ नहीं हूँ। क्योंकि स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं होती।

किं वा ते बहुनोक्तेन मा त्वं नाशं नराधिप।
गच्छस्व शुक्रशापेन सभृत्यज्ञातिबान्धवः॥ ३७॥

हे राजन्! और अधिक क्या कहें? कहीं शुक्र के शाप से आप अपने अनुचरों, संबंधियों और मित्रों सहित समूल नष्ट न हो जाएँ!

ततोऽब्रवीन्नरपतिः सुतनु श्रृणु चेष्टितम्।
चित्राङ्गदाया यद् वृत्तं पुरा देवयुगे शुभे॥ ३८॥

तब राजा ने कहा— हे कृशांगी! चित्रांगदा का वृत्तांत सुनो जो पवित्र प्राचीनकाल में घटित हुआ था।

विश्वकर्मसुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत्।
रूपयौवनसंपन्ना पद्महीनेव पद्मिनी॥ ३९॥

विश्वकर्मा की चित्रांगदा नामक अत्यंत सुशील कन्या थी। वह रूपयौवनसम्पन्ना एवं मानो पद्म-विहीन 'पद्मिनी' थी।

सा कदाचिन्महारण्यं सखीभिः परिवारिता।
जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना॥ ४०॥

एक बार वह कमलनयनी अपनी सखियों के साथ नैमिष नामक महान् अरण्य में स्नान के लिए गई।

सा स्नातुमवतीर्णा च अथाभ्यागान्नरेश्वरः।
सुदेवतनयो धीमान्सुरथो नाम नामतः।
ता ददर्श च तन्वङ्गीं शुभाङ्गो मदनातुरः॥ ४१॥

जब वह स्नान के लिये उतरी तो वहाँ सुदेवपुत्र बुद्धिमान् सुरथ नाम से प्रसिद्ध राजा आ गया। वह सुदर्शन राजा उस तन्वंगी को देखकर कामातुर हो गया।

तं दृष्ट्वा सा सखीराह वचनं सत्त्वसंयुतम्।
असौ नराधिपसुतो मदनेन कदर्थ्यते॥ ४२॥
मदर्थे च क्षमं मेऽस्य स्वप्रदानं सुरूपिणः।
सख्यस्तामब्रुवन् बाला न प्रगल्भाऽसि सुन्दरि॥ ४३॥
अस्वातन्त्र्यं तवास्तीह प्रदाने स्वात्मनोऽनघे।
पिता तवास्ति धर्मिष्ठः सर्वशिल्पविशारदः॥ ४४॥

उस राजा को देखकर उस (चित्रांगदा) ने यथार्थ वचन कहे-यह राजा मेरे कारण कामाहत हो गया है। इसलिए मुझे स्वयं को इस सुदर्शन पुरुष के लिए निवेदित कर देना चाहिये। तब उसकी सखियों ने उससे कहा— हे सुन्दरी! हे निष्पाप! इतना प्रगल्भ व्यवहार तुम्हारे लिए उचित नहीं है। क्योंकि तुम स्वयं को प्रदान करने में स्वतंत्र नहीं हो। समस्त शिल्पकला में विशारद तुम्हारे पिता अत्यंत धर्मनिष्ठ हैं। ऐसे में तुम्हारा अपने आप ही इसलिए स्वयं को राजा के लिए निवेदन कर देना उचित नहीं है।

न ते युक्तमिहात्मानं दातुं नरपतेः स्वयम्।
एतस्मिन्नन्तरे राजा सुरथः सत्यवाकः सुधीः॥ ४५॥
समभ्येत्याऽब्रवीदेनां कन्दर्पशरपीडितः।
त्वं मुग्धे मोहयसि मां दृष्ट्वैव मदिरेक्षणे॥ ४६॥
त्वदृष्टिशरपातेन स्मरेणाभ्येत्य ताडितः।
तन्मां कुचतले तल्पे अभिशाययितुमर्हसि॥ ४७॥

इसके पश्चात् सत्यवक्ता, बुद्धिमान् कामबाण से आहत राजा सुरथ समीप आकर उस (चित्रांगदा) से इस प्रकार बोला-हे सुन्दरी! हे सम्मोहिनी नेत्रों वाली! तुम अपने दृष्टिपात से ही मुझे मोहित कर रही हो, तुम्हारे नयनों के बाण के प्रहार से ही कामदेव मुझे आहत कर रहा है। इसलिये तुम्हें अपनी वक्ष-शय्या पर मुझे शयन कराना चाहिये।

नो चेत् प्रधक्ष्यते कामो भूयो भूयोऽतिदर्शनात्।
ततः सा चारुसर्वाङ्गी राज्ञो राजीवलोचना॥ ४८॥
वार्यमाणा सखीभिस्तु प्रादादात्मानमात्मना।
एवं पुरा तया तन्व्या परित्रातः स भूपतिः॥ ४९॥

अन्यथा पुनः-पुनः तुम्हारी ओर देखने के कारण कामदेव मुझे भस्म ही कर देगा। तदनन्तर उस सर्वांग सुंदरी कमलनयना (चित्रांगदा) ने सखियों के द्वारा पुनः पुनः रोके जाने पर भी स्वयं को अपनी सम्मति से राजा को समर्पित कर दिया। इस प्रकार प्राचीनकाल में उस सुन्दरी ने राजा को बचा लिया।

तस्मात्त्वमपि सुश्रोणि मां परित्रातुमर्हसि।
अरजस्काऽब्रवीद्दण्डं तस्या यद् वृतमुत्तरम्॥५०॥
किं त्वया न परिज्ञातं तस्मात् ते कथयाम्यहम्।
तदा तया तु तन्वङ्ग्या सुरथस्य महीपतेः॥५१॥
आत्मा प्रदत्तः स्वातन्त्र्यात्ततस्तामशपत्पिता।
यस्माद्धर्मं परित्यज्य स्त्रीभावान्मन्दचेतसे॥५२॥
आत्मा प्रदत्तस्तस्माद्धि न विवाहो भविष्यति।
विवाहरहिता नैव सुखं लस्यसि भर्तृतः॥५३॥

इसलिये, हे सुश्रोणी! तुम्हें भी मेरी रक्षा करनी चाहिये। तब अरजा ने दण्ड से कहा— उसका जो आगे का वृत्तांत है वह क्या तुम्हें पता नहीं है। इसी कारण तुम मुझसे ऐसा कह रहे हो। जब उस तन्वंगी ने स्वयं को स्वतंत्रतापूर्वक राजा सुरथ को समर्पित कर दिया तब उसके पिता ने उसे शाप दिया- हे दुष्टपुत्री! क्योंकि तुमने स्त्रियोचित धर्म को छोड़कर अपने आप को समर्पित किया है; इसलिए तुम्हारा विवाह नहीं होगा और विवाहरहित होने के कारण तुम्हें अपने स्वामी से कभी सुख प्राप्त नहीं होगा।

न च पुत्रफलं नैव पतिना योगमेष्यसि।
उत्सृष्टमात्रे शापे तु ह्यपोवाह सरस्वती॥५४॥
अकृतार्थं नरपतिं योजनानि त्रयोदश।
अपकृष्टे नरपतौ साऽपि मोहमुपागता॥५५॥

तुम्हें कभी पुत्रप्राप्ति नहीं होगी तथा अपने पति से तुम्हारा संयोग भी नहीं होगा। शाप के उत्सर्जन मात्र से ही सरस्वती उस अकृतार्थ राजा को तेरह योजन दूर बहाकर ले गई तथा राजा के चले जाने पर वह (चित्रांगदा) मूर्छित हो गई।

ततस्ताः सिषिचुः सख्यः सरस्वत्या जलेन हि।
सा सिच्यमाना सुतरां शिशिरेणाप्यथांम्भसा॥५६॥
मृतकल्पा महाबाहो विश्वकर्मसुताऽभवत्।
तां मृतामिव विज्ञाय जग्मुः सख्यस्त्वरान्विताः॥५७॥

तदनन्तर उसकी सखियों ने सरस्वती के जल को उस पर छिड़का और हे राजन्! सरस्वती के शीतल जल के अत्यधिक छिड़के जाने पर वह विश्वकर्मा की पुत्री मृतप्राय ही हो गई। उसकी सखियाँ उसे मरा हुआ समझकर तीव्रता से चली गईं।

काष्ठान्याहर्त्तुमपरा वह्निमानेतुमाकुलाः।
सा च तास्वपि सर्वासु गतासु वनमुत्तमम्॥५८॥
संज्ञां लेभे सुचार्वङ्गी दिशश्चाप्यवलोकयत्।
अपश्यन्ती नरपतिं तथा स्निग्धं सखीजनम्॥५९॥
निपपात सरस्वत्याः पयोसि स्फुरितेक्षणा।
तां वेगात् काञ्चनाक्षी तु महानद्यां नरेश्वर॥६०॥
गोमत्यां च प्ररिचिक्षेप तरङ्गकुटिले जले।
तयाऽपि तस्यास्तद्भाव्यं विदित्वाऽथ विशांपते॥६१॥
महावन परिक्षिप्ता सिंहव्याघ्रभयाकुले।
एवं तस्याः स्वतन्त्राया एषाऽवस्था श्रुता मया॥६२॥

कुछ (चिता के लिये) लकड़ी लाने तथा कुछ व्याकुल होकर अग्नि लाने चली गईं। उन सब के घने जंगल में जाने के बाद वह सर्वांगसुंदरी भी होश में आ गई और उसने सब ओर देखा परंतु राजा को और अपनी स्नेहिल सखी-समूह को न देख पाने के कारण उस चंचल नेत्रों वाली चित्रांगदा ने स्वयं को सरस्वती नदी में गिरा दिया। हे राजन्! काञ्चनाक्षी सरस्वती ने उसे भयंकर लहरों वाली गोमती महानदी में फेंक दिया। हे राजन्! उस गोमती नदी ने भी उस की भवितव्यता को जानकर उसे सिंह और व्याघ्रों से भयानक घोर जंगल में फेंक दिया। इस प्रकार स्वच्छन्दचारिणी स्वेच्छाचारिणी उस चित्रांगदा की ऐसी दशा हुई; ऐसा मैंने सुना है।

तस्मान्न दास्याम्यात्मानं रक्षन्ती शीलमुत्तमम्।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दण्डः शक्रसमो बली।
विहस्य त्वरजां प्राह स्वार्थमर्थक्षयंकरम्॥६३॥

इस कारण अपने शील की रक्षा करने के कारण मैं स्वयं को तुम्हें नहीं दूँगी। उस अरजा के वचनों को सुनकर इन्द्र के समान बलशाली राजा ने हंसकर अरजा से इस प्रकार धर्म से रहित वचन कहे-

दण्ड उवाच

तस्या यदुत्तरं वृत्तं तत्पितुश्च कृशोदरि।
सुरथस्य तथा राज्ञस्तच्छ्रोतुं मतिमादध॥ ६४॥

दण्ड ने कहा— हे कृशोदरी! उस चित्रांगदा का, उसके पिता का तथा राजा सुरथ का जो पश्चाद्वर्ती वृत्तांत है उसे भी सुनो!

यदाऽवकृष्टे नृपतौ पतिता सा महावने।
तदा गगनसंचारी दृष्टवान् गुह्यकोऽञ्जनः॥ ६५॥

जब राजा को वहाँ से हटा दिया गया और वह चित्रांगदा घनघोर जंगल में फेंक दी गई, तब गगनचारी गुह्यक अंजन ने उसे देखा।

ततः सोऽभ्येत्य तां बालां परिसान्त्व्य प्रयत्नतः।
प्राह मा गच्छ सुभगे विषादं सुरथं प्रति॥ ६६॥

तदनन्तर वह समीप आया और उस सुन्दरी को प्रयासपूर्वक सांत्वना देकर बोला- हे सुन्दरी! सुरथ के लिये दुःखी मत होओ।

ध्रुवमेष्यसि तेन त्वं संयोगमसितेक्षणे।
तस्माद्गच्छस्व शीघ्रं त्वं दुष्टुं श्रीकण्ठमीश्वरम्॥ ६७॥

हे सुंदर नेत्रों वाली! सुरथ से तुम्हारा मिलन अवश्य होगा। इसीलिये तुम शीघ्र ही भगवान् श्रीकण्ठ के दर्शनों के लिए चले जाओ।

इत्येवमुक्ता सा तेन गुह्यकेन सुलोचना।
श्रीकण्ठमागता तूर्णं कालिन्द्या दक्षिणे तटे॥ ६८॥

उस गुह्य के इस प्रकार कहने पर वह सुंदरी शीघ्र ही कालिन्दी नदी के दक्षिण तट पर श्रीकण्ठ के पास आ पहुँची।

दृष्ट्वा महेशं श्रीकण्ठं स्नात्वा रविसुताजले।
अतिष्ठत शिरोनम्रा यावन्मध्यस्थितो रविः॥ ६९॥

सूर्य-पुत्री कालिन्दी के जल में स्नान करने के पश्चात् महेश श्रीकण्ठ के दर्शन करके वह चित्रांगदा सिर झुका कर बैठी रही जब तक कि सूर्य आकाश के मध्य आ गया।

अथाजगाम देवस्य स्नानं कर्तुं तपोधनः।
शुभः पाशुपताचार्यः सामवेदी ऋतुध्वजः॥ ७०॥

तभी वहाँ पर तपस्वी, सामवेदी, पाशुपत के आचार्य श्रीमान् ऋतध्वज स्नान करने के लिये आ पहुँचे।

ददर्श तत्र तन्वङ्गी मुनिश्चित्राङ्गदां शुभाम्।
रतीमिव स्थितां पुण्यामनङ्गपरिवर्जिताम्॥ ७१॥

वहाँ मुनि ने सुन्दरी कल्याणी चित्रांगदा को देखा-वह उसी प्रकार बैठी थी जैसे कामदेव के द्वारा परित्यक्ता सुन्दरी रति।

तां दृष्ट्वा स मुनिर्ध्यानमगमत् केयमित्युत।
अथ सा तमृषिं वन्द्य कृताञ्जलिरुपस्थिता॥ ७२॥

उस को देखकर उस मुनि ने ध्यान किया-यह कौन है? और वह (चित्रांगदा) उन ऋषि को नमस्कार करके हाथ जोड़ कर बैठ गई।

तां प्राह पुत्रि कस्यासि सुता सुरसुतोपमा।
किमर्थमागताऽसीह निर्मनुष्यमृगे वने॥ ७३॥

मुनि ने उसे कहा— हे पुत्री! दिव्य राजकुमारी के सदृश तुम किस की पुत्री हो? तथा इस मनुष्य और पशु से रहित इस निर्जन वन में किसलिए आई हो?

ततः सा प्राह तमृषिं याथा तथ्यं कृशोदरी।
श्रुत्वार्षिः कोपमगमदशपच्छिल्पिनां वरम्॥ ७४॥

तदनन्तर उस कृशोदरी ने उन ऋषि को समस्त वृत्तांत यथार्थतः सुना दिया, जिसे सुनकर ऋषि क्रोधित हो गए और उन्होंने शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा को शाप दे दिया।

यस्मात् स्वतनुजातेयं परदेयाऽपि पापिना।
योजिता नैव पतिना तस्माच्छाखामृगोऽस्तु सः॥ ७५॥

क्योंकि इस पापी (विश्वकर्मा) ने अपनी पुत्री के 'परदेया' होने पर भी अपने पति से उसका संयोग नहीं होने दिया अतएव वह बंदर हो जाए।

इत्युक्त्वा स महायोगी भूयः स्नात्वा विधानतः।
उपास्य पश्चिमां संध्यां पूजयामास शङ्करम्॥ ७६॥

यह कहकर उस महायोगी ने पुनः विधानपूर्वक स्नान करके सांध्यकालीन उपासना के साथ शिव की पूजा की।

संपूज्य देवदेवेशं यथोक्तविधिना हरम्।
उवाचागम्यतां सुभ्रूं रुदन्तीं पतिलालसाम्॥ ७७॥

यथोक्तविधिपूर्वक देवदेवेश शिव की पूजा करके,

ऋषि ने सुंदर भ्रू वाली, सुन्दर दातों वाली तथा पति से संयोग के लिये लालायित उस (चित्रांगदा) से कहा—

गच्छस्व सुभगे देशं सप्तगोदावरं शुभम्।
तत्रोपास्य महादेवं महान्तं हाटकेश्वरम्॥७८॥

हे सुन्दरी! तुम स्वप्नगोदावरी वाले कल्याण प्रदेश में जाकर महादेव हाटकेश्वर की उपासना करो।

तत्र स्थिताया रम्भोरु ख्याता देववती शुभा।
आगमिष्यति दैत्यस्य पुत्री कन्दरमालिनः॥७९॥

हे सुचारुजंघा वाली! तुम्हारे वहाँ निवास करते हुए होने पर दैत्य कन्दरमाली की पुत्री सुन्दरी देववती वहाँ आयेगी।

तथाऽन्या गुह्यकसुता नन्दयन्तीति विश्रुता।
अञ्जनस्यापि तत्रापि समेष्यति तपस्विनी।
तथाऽपरा वेदवती पर्जन्यदुहिता शुभा॥८०॥

तभी गुह्यक अंजन की पुत्री तपस्विनी नन्दयन्ती तथा पर्जन्य की पवित्र पुत्री वेदवती वहाँ पहुँचेगीं।

यदा तिस्त्रः समेष्यन्ति सप्तगोदावरे जले।
हाटकाख्ये महादेवे तदा संयोगमेष्यसि॥८१॥

जब ये तीनों महादेव हाटकेश्वर की ओर बहने वाले सप्तगोदावरी के जल में एक साथ मिल जायेंगी तभी तुम्हारा अपने पति से संयोग होगा।

इत्येवमुक्ता मुनिना बाला चित्राङ्गदा तदा।
सप्तगोदावरं तीर्थमगमत्त्वरिता ततः॥८२॥

मुनि के इस प्रकार कहने पर वह सुन्दरी चित्रांगदा शीघ्रतापूर्वक सप्तगोदावरी तीर्थ की ओर चली गई।

संप्राप्य तत्र देवेशं पूजयन्ती त्रिलोचनम्।
समध्यास्ते शुचिपरा फलमूलाशनाऽभवत्॥८३॥

वहाँ पहुँचने के पश्चात् उसने केवल फल और कंदमूल ही खाते हुए त्रिलोचन देवेश शिव की पूजा में रत रहकर अत्यंत पवित्र जीवन व्यतीत किया।

स चर्षिर्ज्ञानसंपन्नः श्रीकण्ठायतनेऽलिखत्।
श्लोकमेकं महाख्यानं तस्याश्च प्रियकाम्यया॥८४॥

उस ज्ञानी ऋषि ने उस सुन्दरी की प्रियकामना करते हुए श्रीकण्ठ के विग्रह पर महावृत्तांत का आख्यान करने वाला एक श्लोक लिखा।

न सोस्ति कान्त् त्रिदशोऽसुरो वा
यक्षोऽथ मर्त्यो रजनीचरो वा।
इदं हि दुःखं मृगशावनेत्र्या
निमार्जयेद्यः स्वपराक्रमेण॥८५॥

ऐसा कोई भी देवता, असुर, यक्ष, मनुष्य अथवा राक्षस नहीं है जो अपने पराक्रम से इस मृगनयनी के दुःख का परिमार्जन कर सके।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम
दष्टुं विभुं पुष्करनाथमीड्यम्।
नन्दीं पयोष्णीं मुनिवृन्दवन्द्यां
संचिन्तयन्नेव विशालनेनाम्॥८६॥

ऐसा कहकर वह मुनि उस विशालनेत्रा के विषय में सोचते हुए वन्दनायोग्य स्वामी पुष्करनाथ एवं मुनिवृंद के द्वारा वंदनीय पयोष्णी नदी के दर्शन के लिये चले गये।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे दण्डोपाख्याने त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

(जाबालि की मुक्ति)

दण्ड उवाच

चित्राङ्गदायास्त्वरजे तत्र सत्या यथासुखम्।
स्मरन्त्याः सुरथं वीरं महान्कालः समभ्यगात्॥१॥

दण्ड ने कहा— हे अरजा! इस प्रकार चित्रांगदा ने वीर सुरथ को स्मरण करते हुए सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत कर दिया।

विश्वकर्माऽपि मुनिना शप्तो वानरतां गतः।
न्यपतन्मेरुशिखराद्भूपृष्ठं विधिचोदितः॥२॥

मुनि के द्वारा प्रदत्त शाप के कारण विश्वकर्मा भी बंदर बन गए और दुर्भाग्यवशात् मेरु के शिखर से पृथ्वी पर गिर पड़े।

वनं घोरं सुगुल्माढ्यं नदीं शालूकिनीमनु।
शाल्वेयं पर्वतश्रेष्ठं समावसति सुन्दरि॥३॥

हे सुन्दरी! तत्पश्चात् उन्होंने शालूकिनी नदी के समीप

घनी झाड़ियों से युक्त घनघोर जंगल में पर्वतश्रेष्ठ शाल्वेय पर निवास किया।

तत्रासतोऽस्य सुचिरं फलमूलान्यथाश्नतः।
कालोऽत्यगाद्वरारोहे बहुवर्षगणो वने॥ ४॥

हे सुन्दर कटिप्रदेश वाली! उन्होंने फलमूल खाकर वन में निवास करते हुये वहाँ बहुत वर्ष व्यतीत किये।

एकदा दैत्यशार्दूलः कन्दराख्यः सुतां प्रियाम्।
प्रतिगृह्य समभ्यागातख्यातां देववतीमिति॥ ५॥

एक बार कन्दर नामक श्रेष्ठ दानव 'देववती' नामक अपनी प्रिय पुत्री के साथ वहाँ आया।

तां च तद्वनमायान्तीं समं पित्रा वराननाम्।
ददर्श वानरश्रेष्ठः प्रजग्राह बलात्करे॥ ६॥

अपने पिता के साथ आई हुई उस सुमुखी को उस वानरश्रेष्ठ ने देखा और वह उसके हाथ को बलपूर्वक पकड़कर उसे ले जाने लगा।

ततो गृहीतां कपिना स दैत्यः स्वसुतां शुभे।
कन्दरो वीक्ष्य संक्रुद्धः खड्गमुद्यम्य चाद्रवत्॥ ७॥

हे कल्याणी! कपि के द्वारा अपनी पुत्री को पकड़े हुए देखकर कन्दर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और वह तलवार उठाकर उसकी ओर दौड़ पड़ा।

तमापतन्तं दैत्येन्द्रं दृष्ट्वा शाखामृगो बली।
तथैव सह चार्वङ्ग्या हिमाचलमुपागमतः॥ ८॥

दैत्येन्द्र को आते हुए देखकर वह बलशाली बंदर उस सुन्दरी को अपने साथ ही लेकर हिमालय की ओर दौड़ गया।

ददर्श च महादेवं श्रीकण्ठं यमुनातटे।
तस्याविदूरे गहनमाश्रमं ऋषिवर्जितम्॥ ९॥
तस्मिन्महाश्रमे पुण्ये स्थाप्य देववतीं कपिः।
न्यमज्जत स कालिन्द्यां पश्यतो दानवस्य हि॥ १०॥

वहाँ उसने यमुना के किनारे महादेव श्रीकण्ठ को देखा। वहाँ समीप ही ऋषियों से रहित एक गहन आश्रम था। उस महान् आश्रम में देववती को रखकर वह कपि दानव के देखते-देखते ही कालिन्दी में डूब गया।

सोऽजानत् तां मृतां पुत्रीं समं शाखामृगेण हि।
जगाम च महातेजाः पातालं निलयं निजम्॥ ११॥

दैत्य ने समझा कि बंदर के साथ ही उनकी पुत्री भी जल में डूबकर मृत्यु को प्राप्त हो गई है और यह समझकर वह महातेजस्वी पाताल लोक में अपने घर को चला गया।

स चापि वानरो देव्या कालिन्द्या वेगतो हतः।
नीतः शिवीति विख्यातं देशं शुभजनावृतम्॥ १२॥

कालिन्दी के जल का तेज प्रवाह उस वानर को भी पवित्र जनों से आवृत 'शिवी' नामक प्रदेश में ले गया।

ततस्तीर्त्वाऽथ वेगेन स कपिः पर्वतं प्रति।
गन्तुकामो महातेजा यत्र न्यस्ता सुलोचना॥ १३॥

उस महातेजस्वी वानर को नदी पार करके शीघ्रता से उस पर्वत की ओर जाने की इच्छा हुई जहाँ उसने उस सुनयना देववती को रखा था।

अथापश्यत् समायान्तमञ्जनं गुह्यकोत्तमम्।
नन्दयन्त्या समं पुत्र्या गत्वा जिगमिषुः कपिः॥ १४॥

तदनन्तर वापस जाने के इच्छुक उस वानर ने यक्षश्रेष्ठ अञ्जन को अपनी पुत्री 'नन्दयती' के साथ आते देखा।

तां दृष्ट्वाऽमन्यत श्रीमान्सेयं देववती ध्रुवम्।
तन्मे वृथा श्रमो जातो जलमज्जनसंभवः॥ १५॥

तब उस श्रीमान् वानर ने सोचा कि यह देववती ही है; अतः जल में डूबने का मेरा प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो गया है।

इति संचिन्तयन्नेव समाद्रवत सुन्दरीम्।
सा तद्भयाच्च न्यपतन्नदीं चैव हिरण्वतीम्॥ १६॥

यह सोचते हुए वह उस सुन्दरी के पीछे भागा। ऐसी स्थिति में वह दमयन्ती भयाक्रान्त होकर हिरण्यवती नदी में कूद गई।

गुह्यको वीक्ष्य तनयां पतितामापगाजले।
दुःखशोकसमाक्रान्तो जगामाञ्जनपर्वतम्॥ १७॥

अपनी पुत्री को नदी के जलप्रवाह में गिरी देखकर वह यक्ष दुःख और शोक से संतप्त होकर अञ्जन पर्वत को चला गया।

तत्रासौ तप आस्थाय मौनव्रतधरः शुचिः।
समास्ते वै महातेजाः संवत्सरगणान्बहून्॥ १८॥

उस पर्वत पर उस महान् तेजस्वीं ने मौनव्रत धारण किया और तपस्या करते हुए पवित्रतापूर्वक बहुत से वर्ष व्यतीत कर दिए।

नन्दयन्त्यपि वेगेन हिरण्वत्याऽपवाहिता।
नीता देशं महापुण्यं कोशलं साधुभिर्युतम्॥ १९॥

'दमयन्ती' को भी हिरण्वती नदी का तेज प्रवाह बहाकर महापुण्यशाली तथा साधुजन संकुल कोशलदेश को ले गया।

गच्छन्ती सा च रुदती ददृशे वटपादम्।
प्ररोहप्रावृततनुं जटाधरमिवेश्वरम्॥ २०॥

रोते हुए चलते-चलते उसने विशाल जटाओं से युक्त एक वटवृक्ष को देखा जो जटावेशधारी भगवान् शिव जैसा प्रतीत हो रहा था।

तं दृष्ट्वा विपुलच्छायं विशश्राम वरानना।
उपविष्टा शिलापट्टे ततो वाचं प्रशुश्रवे॥ २१॥

घनी छाया वाले उस महावृक्ष को देखकर सुन्दर मुख वाली उस दमयन्ती ने वहाँ विश्राम किया। वह शिलापट्ट पर बैठी हुइ थी कि उसने ये वचन सुने—

न सोऽस्ति पुरुषः कश्चिद्यस्तं बूयात्तपोधनम्।
यथा सतनयस्तुभ्यमुद्बद्धो वटपादपे॥ २२॥

हाय! ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो उन तपस्वी ऋतध्वज को यह बता सके कि उनका पुत्र यहाँ उस वटवृक्ष से बंधा हुआ है।

सा श्रुत्वा तां तदा वाणीं विस्पष्टाक्षरसंयुताम्।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव समन्तादवलोकयन्॥ २३॥

उस सर्वथा स्पष्ट वाणी को सुनकर दमयन्ती ने ऊपर नीचे चारों ओर देखा।

ददृशे वृक्षशिखरे शिशुं पञ्चाब्दिकं स्थितम्।
पिङ्गलाभिर्जटाभिसतु उद्बद्धं यलतः शुभे॥ २४॥

हे कल्याणी! वहाँ उसने अपनी कोमल जटाओं से वृक्ष के शिखर पर बंधे हुए एक पंचवर्षीय बालक को देखा।

तं विब्रुवन्तं दृष्ट्वैव नन्दयन्ती सुदुःखिता।
प्राह केनासि बद्धस्त्वं पापिना वद बालक॥ २५॥

इस प्रकार बोलते हुए उस बालक को देखकर अत्यंत दुःखी दमयन्ती ने कहा— हे बालक! बताओ, किस पापी ने तुम्हें यहाँ बाँधा है?

सतामाह महाभागे बद्धोऽस्मि कपिना वटे।
जटास्वेवं सुदुष्टेन जीवामि तपसो बलात्॥ २६॥

बालक ने उससे कहा— हे सौभाग्यशालिनी! मुझे एक दुष्ट वानर ने मेरी जटाओं से यहाँ बांधा है; अब मैं तपस्या के बल पर ही यहाँ जीवित हूँ।

पुरोन्मत्तपुरेत्येव तत्र देवो महेश्वरः।
तत्रास्ति तपसो राशिः पिता मम ऋतध्वजः॥ २७॥

महेश्वर शिव का निवास पुरोन्मत्तपुर नामक स्थान पर है। वहाँ मेरे तपोधनी पिता ऋतध्वज रहते हैं।

तस्यास्मि जपमानस्य महायोगं महात्मनः।
जातोऽलिवृन्दसंयुक्तः सर्वशास्त्रविशारदः॥ २८॥

महायोग की साधना में निरत होकर वे ऋषि जब तपस्यामग्न थे तब मैं उत्पन्न हुआ था। मैं जन्म के समय ही समस्त शास्त्रों में पारंगत था तथा उस समय भ्रमरसमूह से संयुक्त था।

ततो मामब्रवीत्तातो नामकृत्वा शुभानने।
जाबालीति परिख्याय तच्छृणुष्व शुभानने॥ २९॥

हे शुभानना! तब मेरे पिता ने मेरा नाम 'जाबालि' रखा। तदनन्तर, हे शुभानने! मेरे पिता ने मुझसे जो कहा, वह आप सुनो।

पञ्चवर्षसहस्राणि बाल एव भविष्यसि।
दशवर्षसहस्राणि कुमारत्वे चरिष्यसि॥ ३०॥

पांच सहस्र वर्षो तक तुम बालक ही बने रहोगे और दस सहस्र वर्षो तक तुम कौमार्य का सेवन करोगे।

विंशतिं यौवनस्थायी वीर्येण द्विगुणं ततः।
पञ्चवर्षशतान् बालो भोक्ष्यसे बन्धनं दृढम्॥ ३१॥

तुम्हारा शक्तिशाली यौवन पूर्वावस्था से दुगना अर्थात् बीस हजार वर्षो तक बना रहेगा। अपने बचपन के पाँच सौ वर्ष तुम दृढ़ बंधन में व्यतीत करोगे।

दशवर्षशतान्येव कौमारे कायपीडनम्।
यौवने परमान् भोगान्द्विसहस्रसमास्तथा॥ ३२॥

अपनी कौमार्यावस्था के दस सौ (एक हजार) वर्ष तुम शारीरिक रोग में व्यतीत करोगे तथा यौवन में दो सहस्र वर्षों तक तुम परम भोगों का सेवन करोगे।

चत्वारिंशच्छतान्येव वार्धके क्लेशमुत्तमम्।
लप्स्यसे भूमिशय्याढ्यं कदन्नाशनभोजनम्॥३३॥

वृद्धावस्था के चालीस सौ (चार हजार) वर्ष तुम भूमिशय्या पर सोते हुए तथा कच्चा भोजन करते हुये महान् पीड़ा के साथ बिताओगे।

इत्येवमुक्तः पित्राऽहं बालः पञ्चाब्ददेशिकः।
विचरामि महीपृष्ठं गच्छन् स्नातुं हिरण्वतीम्॥३४॥

पिता के द्वारा ऐसा कहने पर मैं पाँच वर्षीय बालक हिरण्वती नदी में स्नान करने के लिए भूमि पर चल पड़ा।

ततोऽपश्यं कपिवरं सोऽवदन्मां क्व यास्यसि।
इमां देववतीं गृह्य मूढ न्यस्तां महाश्रमे॥३५॥

तब मैंने उस कपिश्रेष्ठ को देखा। उसने मुझसे कहा— हे मूर्ख! इस देववती को लेकर तुम कहाँ जा रहे हो? इसे तो मैंने उस विशाल आश्रम में रखा था।

ततोऽसौ मां समादाय विस्फुरन्तं प्रयत्नतः।
वटाग्रेऽस्मिन्नुद्बवन्ध जटाभिरपि सुन्दरि॥३६॥

हे सुन्दरी! तब काँपते हुए मुझे उसने बलपूर्वक पकड़ लिया और इस वटवृक्ष के शिखर पर मेरी जटाओं से बाँध दिया।

तथा च रक्षा कपिना कृता भीरु निरन्तरैः।
लतापाशैर्महायन्त्रमध्स्ताद् दुष्टबुद्धिना॥३७॥

हे भीरु! उस दुष्ट बुद्धि वाले वानर ने लता-पाशों से नीचे से भी मुझे निरन्तर बांध दिया है।

अभेद्योऽयमनाक्रम्य उपरिष्टात्तथाप्यधः।
दिशां मुखेपु सर्वेपु कृतं यन्त्रं लतामयम्॥३८॥

सब ओर से लतापाशों से बंधे हुए इस बन्धन से ऊपर, नीचे, सब ओर कहीं भी किसी प्रकार भी निकलना सर्वथा असम्भव है।

संयम्य मां कपिवरः प्रयातोऽमरपर्वतम्।
यथेच्छया मया दृष्टमेतत्ते गदितं शुभे॥३९॥

मुझे यहाँ बांधकर वह वानरश्रेष्ठ अपनी इच्छा से अमरपर्वत को चला गया। हे कल्याणी! जैसा मैंने देखा था वैसा मैंने तुम्हें कह दिया है।

भवती का महारण्ये ललना परिवर्जिता।
समायाता सुचार्वङ्गी केन सार्थेन मां वद॥४०॥

हे देवी! हे सुन्दर अंगो वाली! इस भयंकर वन में संबंधियों से रहित एकाकी तुम किस कारण और किसके साथ आई हो? बताओ!

साऽब्रवीदञ्जनो नाम गुह्यकेन्द्रः पिता मम।
नन्दयन्तीति मे नाम प्रम्लोचागर्भसंभवा॥४१॥

उसने कहा— अंजन नामक यक्षराज मेरे पिता हैं; प्रम्लोचा मेरी माता है तथा मेरा नाम दमयन्ती है।

तत्र मे जातके प्रोक्तमृषिणा मुद्गलेन हि।
इयं नरेन्द्रमहिषी भविष्यति न संशयः॥४२॥

मेरे जन्म के समय ऋषि मुद्गल ने भविष्यवाणी करते हुये कहा था— यह निश्चय ही महाराज की पत्नी होगी; इसमें कोई संशय नहीं है।

तद्वाक्यसमकालं च व्यनदद् देवदुन्दुभिः।
शिवा चाशिवनिर्घोषा ततो भूयोऽब्रवीन्मुनिः॥४३॥

जब ऋषि भविष्यवाणी कर रहे थे उसी समय देव-दुन्दुभि बज उठीं और उससे शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देने लगी। तब मुनि ने पुनः कहा—

न संदेहो नरपतेर्महाराज्ञी भविष्यति।
महान्तं संशयं घोरं कन्याभावे गमिष्यसि।
ततो जगाम स ऋषिरेवमुक्त्वा वचोऽद्भुतम्॥४४॥

यह महाराजा की सम्राज्ञी होगी- इसमें संशय नहीं है; परन्तु यह अपने कन्याभाव के कारण अत्यंत संकटपूर्ण परिस्थिति में रहेगी। इस प्रकार अद्भुत वचन कहकर वह ऋषि चले गए।

पिता मामपि चादाय समागन्तुमथैच्छत।
तीर्थं ततो हिरण्वत्यास्तीरात् कपिरथोत्पतत्॥४५॥

मेरे पिता मुझे लेकर तीर्थ को जाना ही चाहते थे कि हिरण्वती के किनारे से वह वानर कूद पड़ा।

तद्भयाच्च मया ह्यात्मा क्षिप्तः सागरगाजले।
तयाऽस्मि देशमानीता इमं मानुषवर्जितम्॥४६॥

उसके भय से मैं नदी के जल में गिर पड़ी और वह नदी का जलप्रवाह मुझे इस मनुष्यवर्जित प्रदेश में ले आया।

श्रुत्वा जाबालिरथ तद्वचनं वै तयोदितम्।
प्राह सुन्दरि गच्छस्व श्रीकण्ठं यमुनातटे।।४७।।

उसके द्वारा कहे गए वचनों को सुनकर जाबालि ने कहा—हे सुन्दरी! यमुनातट पर श्रीकण्ठ के समीप जाओ।

तत्रागच्छति मध्याह्ने मत्पिता शिवमर्चितुम्।
तस्मै निवेदयात्मानं ततः श्रेयोऽधिलप्स्यसे।।४८।।

मध्याह्न के समय मेरे पिता वहाँ शिव की पूजा करने के लिये आते हैं; उन्हें अपने आप को सौंप दो। वहाँ तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा।

ततस्तु त्वरिता काले नन्दयन्ती तपोनिधिम्।
परित्राणार्थमगमद्धिमाद्रेर्यमुनां नदीम्।।४९।।

तदनन्तर दमयन्ती शीघ्र ही अपने कल्याण के लिये हिमाद्रि के किनारे यमुना नदी की ओर तपोधनी के पास चल पड़ी।

सात्वदीर्घेण कालेन कन्दमूलफलाशना।
संप्राप्ता शङ्करस्थानं यत्रागच्छति तापसः।।५०।।

कन्दमूल तथा फल खाकर निर्वाह करती हुई वह दीर्घकाल के पश्चात् शिव के उस स्थान पर पहुँची जहाँ वह तपस्वी नित्य आते थे।

ततः सा देवदेवेशं श्रीकण्ठं लोकवन्दितम्।
प्रतिवन्द्य ततोऽपश्यदक्षरांस्तान्महामुनें।।५१।।

हे महामुनि! तब वहाँ उसने समस्त देवों के भी देव तथा समस्त लोक के द्वारा वन्दित भगवान् श्रीकण्ठ की वंदना की। तत्पश्चात् उसने उन लिखे अक्षरों को देखा।

तेषामर्थं हि विज्ञाय सा तदा चारुहासिनी।
तज्जाबाल्युदितं श्लोकमलिखच्चान्यमात्मनः।।५२।।

उनके अर्थ को समझकर उस सुहासिनी ने वहाँ जाबालि के द्वारा कहे गए श्लोक को तथा एक अन्य अपने श्लोक को भी लिख दिया।

मुद्गलेनास्मि गदिता राजपत्नी भविष्यति।
सा चावस्थामिमां प्राप्ता कश्चिन्मां त्रातुमीश्वरः।।५३।।

मुद्‌गल ऋषि ने मेरे विषय में भविष्यवाणी करते हुये कहा था कि तुम राजपत्नी बनोगी—परन्तु आज मैं इस अवस्था को प्राप्त हो गई हूँ; कोई ऐसा शक्तिशाली है, जो मेरी रक्षा कर सके ?

इत्युल्लिख्य शिलापट्टे गता स्नातुं यमस्वसाम्।
ददृशे चाश्रमवरं मत्तकोकिलनादितम्।।५४।।

शिलापट्ट पर यह लिखकर वह यमुना में स्नान करने के लिए चली गई। वहाँ पर उसने मत्तकोकिलाओं से निनादित एक महान् आश्रम को देखा।

ततोऽमन्यत सात्रर्षिर्नूनं तिष्ठति सत्तमः।
इत्येवं चिन्तयन्ती सा संप्रविष्टा महाश्रमम्।।५५।।

उसने सोचा— वह श्रेष्ठ ऋषि निश्चय ही इस आश्रम में ही स्थित हैं। यह सोचते हुये वह उस आश्रम में प्रविष्ट हो गई।

ततो ददर्श देवाभां स्थितां देववतीं शुभाम्।
संशुष्कास्यां चलन्नेत्रां परिम्लानामिवाब्जिनीम्।।५६

वहाँ उसने दैवी द्युति से युक्त कृशकाय और सूखे हुए मुख वाली एवं चंचल नेत्रों वाली कल्याणी देववती को देखा।

सा चापतन्तीं ददृशे यक्षजां दैत्यनन्दिनी।
केयमित्येव संचिन्त्य समुत्थाय स्थिताऽभवत्।।५७।।

उस दैत्यपुत्री ने यक्षपुत्री को आते हुए देखा और यह सोचते हुये कि यह कौन है, वह उठ कर खडी हो गई।

ततोऽन्योन्यं समालिङ्ग्य गाढं गाढं सुहत्तया।
पप्रच्छतुस्तथान्योऽन्यं कथयामासतुस्तदा।।५८।।

तदनन्तर सखीभाव से एक दूसरे का प्रगाढ़ आलिङ्गन करते हुये वे एक दूसरे का हाल कहने और पूछने लगीं।

ते परिज्ञाततत्त्वार्थे अन्योन्यं ललनोत्तमे।
समासीने कथाभिस्ते नानारूपाभिरादरात्।।५९।।

वहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए उन सुन्दरियों ने अनेक प्रकार की बातचीत करते हुए एक दूसरे के विषय में जाना।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः श्रीकण्ठ स्नातुमादरात्।
स तत्त्वज्ञो मुनिश्रेष्ठो अक्षराण्यवलोकयन्।।६०।।

इसी समय वहाँ पर श्रद्धापूर्वक स्नान करने के लिए

वह तत्त्वज्ञ ऋषि श्रीकण्ठ में आ पहुँचे और उन्होंने (शिलाङ्ग पर लिखे) अक्षरों को देखा।

स दृष्ट्वा वाचयित्वा च तदर्थमधिगम्य च।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय व्यजानाच्च तपोनिधिः॥६१॥

उन अक्षरों को देखकर, पढ़कर और उनका अर्थ समझकर एक क्षण के लिए ध्यानमग्न हुये। वे तपस्वी शीघ्र ही सब कुछ समझ गए।

ततः संपूज्य देवेशं त्वरया स ऋतध्वजः।
अयोध्यामगमत्क्षिप्रं द्रष्टुमिक्ष्वाकुमीश्वरम्॥६२॥

तदनन्तर ऋतध्वज शीघ्रतापूर्वक देवेश श्रीकण्ठ की अराधना करके यथाशीघ्र स्वामी ईक्ष्वाकु के दर्शन के लिए अयोध्या पहुँचे।

तं दृष्ट्वा नृपतिश्रेष्ठं तापसो वाक्यमब्रवीत्।
श्रूयतां नरशार्दूल विज्ञप्तिर्मम पार्थिव॥६३॥

नृपश्रेष्ठ को देखकर तपस्वी ने यह वचन कहा— हे राजन्! मेरा वृत्तांत सुनिये।

मम पुत्रो गुणैर्युक्तः सर्वशास्त्रविशारदः।
उद्बद्धः कपिना राजन् विषयान्ते तवैव हि॥६४॥

मेरा पुत्र जो कि समस्त शास्त्रों में पारंगत तथा संपूर्ण गुणों से युक्त है, वह पुत्र तुम्हारे राज्य के सीमान्त में एक बंदर के द्वारा बंदी बना लिया गया है।

तं हि मोचयितुं नान्यः शक्तस्त्वत्तनयादृते।
शकुनिर्नाम राजेन्द्र स ह्यस्त्रविधिपारगः॥६५॥

हे राजेन्द्र! आपके पुत्र के अतिरिक्त और कोई उसे मुक्त नहीं करा सकता। क्योंकि आपका पुत्र समस्त शस्त्र-विधि में निष्णात है।

तन्मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य पिता मम कृशोदरि।
आदिदेश प्रियं पुत्रं शकुनिं तापसान्वये॥६६॥

हे कृशोदरी! उन मुनि के वचनों को सुनकर मेरे पिता ने अपने पुत्र शकुनि को तपस्वी का अनुगमन करने का आदेश दिया।

ततः स प्रहितः पित्रा भ्राता मम महाभुजः।
संप्राप्तो बन्धनोद्देशं समं हि परमर्षिणा॥६७॥

पिता के द्वारा प्रेषित मेरा महाबाहु भाई ऋषि के साथ उस बंधनप्रदेश में जा पहुँचा।

दृष्ट्वा न्यग्रोधमत्युच्चं प्ररोहास्तृतदिङ्मुखम्।
ददर्श वृक्षशिखरे उद्बद्धमृषिपुत्रकम्॥६८॥

वहाँ उसने चारों ओर फैली विस्तृत जटाओं वाले विशाल वटवृक्ष को और वृक्षशिखर पर उस ऋषिपुत्र को देखा।

तांश्च सर्वाल्लतापाशान् दृष्टवान्स समन्ततः।
दृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं स्वजटासंयतं वटे॥६९॥
धनुरादाय बलवानधिज्यं स चकार ह।
लाघवादृषिपुत्रं तं रक्षंश्चिच्छेदमार्गणैः॥७०॥
कपिना यत्कृतं सर्वं लतापाशं चतुर्दिशम्।
पञ्चवर्षशते काले गते शक्तस्तदा शरैः॥७१॥

वहाँ उसने चारों ओर से बंधे लता-पाशों को देखा। फिर उसने वटवृक्ष पर अपनी ही जटा से बंधे हुए उस मुनिपुत्र को देखा। उसने धनुष उठाकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। तदनन्तर अत्यंत कुशलता से ऋषिपुत्र की रक्षा करते हुए उसने बाणों से उन समस्त लतापाशों को काट दिया जिन्हें वानर ने चारों ओर से बांध रखा था। तब तक पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

लताच्छन्नं ततस्तूर्णमारुरोह मुनिर्वटम्।
प्राप्तं स्वपितरं दृष्ट्वा जाबालिः संयतोऽपि सन्॥७२॥
आदरात् पितरं मूर्ध्ना ववन्दत विधानतः।
संपरिष्वज्य सु मुनिर्मूर्ध्न्याघ्राय सुतं ततः॥७३॥
उन्मोचयितुमारब्धो न शशाक सुसंयतम्।
ततस्तूर्णं धनुर्न्यस्य बाणांश्च शकुनिर्बली॥७४॥
आरुरोह वटं तूर्णं जटा मोचयितुं तदा।
न च शक्नोति संच्छन्नं दृढं कपिवरेण हि॥७५॥

तदनन्तर मुनि लताओं से परिच्छिन्न वृक्ष पर चढ़ गये। अपने पिता को समागत देखकर बंधा हुआ होने पर भी जाबालि ने आदर से अपने पिता का विधिपूर्वक अभिनंदन किया। तदनन्तर मुनि ने पुत्र का आलिङ्गन कर उसके माथे को सूँघा और उस अपने पुत्र को खोलने का प्रयत्न किया। परंतु दृढ़ता से बंधे पुत्र को वह खोल न सका। तदनन्तर बलशाली शकुनि धनुष और बाणों को रखकर बालक को जटाओं से मुक्त करने के लिये शीघ्रता से वृक्ष पर चढ़ गया। परन्तु वानर के द्वारा दृढ़ता से बांधे गये बालक को वह न छुड़ा सका।

यदा न शकिता स्तेन संप्रमोचयितुं जटाः।
तदाऽवतीर्णः शकुनिः सहितः परमर्षिणा॥७६॥

जब राजकुमार शकुनि जटाओं से बालक को न छुड़ा सका तो वह ऋषि के साथ पेड़ से उतर आया।

जग्राह च धनुर्वाणांश्चकार शरमण्डपम्।
लाघवादर्द्धचन्द्रैस्तां शाखां चिच्छेद स त्रिधा॥७७॥

उसने धनुष बाण उठाया और बाणों से शरमण्डप बनाया। उन अर्धचन्द्राकार बाणों के द्वारा उसने कुशलता से शाखा को तीन भागों में काट दिया।

शाखया कृत्तया चासौ भारवाही तपोधनः।
शरसोपानमार्गेण अवतीर्णोऽथ पादपात्॥७८॥

वह तपस्वी कटी हुई शाखा से बाणों से बनी हुई सीढ़ियों के सहारे वृक्ष से उतर आया।

तस्मिंस्तदा स्वे तनये ऋतध्वज-
स्त्रातो नरेन्द्रस्य सुतेन धन्विना।
जावालिना भारवहेन संयुतः
समाजगामाथ नदीं स सूर्यजाम्॥७९॥

इस प्रकार धनुर्धारी राजकुमार के द्वारा अपने पुत्र की रक्षा किये जाने पर भारयुक्त जाबालि के साथ ऋतध्वज सूर्यपुत्री यमुना की ओर चल पड़ा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे
चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

(चित्राङ्गदा का विवाह)

दण्डक उवाच

एतस्मिन्नन्तरे बाले यक्षासुरसुते मुने।
समागते हरं द्रष्टुं श्रीकण्ठं योगिनां वरम्॥१॥

दण्डक ने कहा— इसके पश्चात् यक्ष और असुर की वे दो कल्याणी कन्याएँ वहाँ योगीश्वर श्रीकण्ठ शिव के दर्शन के लिए आईं।

ददृशाते परिम्लानसंशुष्ककुसुमं विभुम्।
बहुनिर्माल्यसंयुक्तं गते तस्मिन् ऋतध्वजे॥२॥

वहाँ से ऋतध्वज के चले जाने पर उन दोनों ने सूखे और मुरझाएँ हुए फूलों से युक्त बहुमालाधारी स्वामी श्रीकण्ठ को देखा।

ततस्तं वीक्ष्य देवेशं ते उभे अपि कन्यके।
स्नापयेते विधानेन पूजयेतामहर्निशम्॥३॥

देवेश श्रीकण्ठ को देखकर उन दोनों कन्याओं ने उन्हें स्नान कराया और विधिपूर्वक दिन-रात उनकी पूजा की।

ताभ्यां स्थिताभ्यां तत्रैव ऋषिरभ्यागमद्वनम्।
द्रष्टुं श्रीकण्ठमव्यक्तं गालवो नाम नामतः॥४॥

जब वे दो कन्याएँ वहाँ रह रही थीं तभी गालव नामक एक ऋषि अव्यक्त भगवान् श्रीकण्ठ के दर्शनों के लिये वहाँ वन में आ पहुँचे।

स दृष्ट्वा कन्यकायुग्मं कस्येदमिति चिन्तयन्।
प्रविवेशं शुचिः स्नात्वा कालिन्द्या विमले जले॥५॥

उस कन्यायुगल को देखकर वे पवित्रात्मा ऋषि 'ये किसकी कन्याएँ हैं' यह सोचते हुए स्नान के लिये कालिन्दी के निर्मल जल में प्रवेश कर गये।

ततोऽनुपूजयामास श्रीकण्ठं गालवो मुनिः।
गायेते सुस्वरं गीतं यक्षासुरसुते ततः॥६॥

स्नानान्तर जब गालव मुनि ने श्रीकण्ठ की पूजा की तो वे दो यक्ष और असुर कन्याएँ सुमधुर स्वर से गीत गाने लगीं।

ततः स्वरं समाकर्ण्य गालवस्ते अजानत।
गन्धर्वकन्यके चैते संदेहो नात्र विद्यते॥७॥

उस स्वर को सुनकर गालव ने सोचा कि "ये दोनों गंधर्व-कन्याएँ ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं है"।

संपूज्य देवमीशानं गालवस्तु विधानतः।
कृतजप्यः समध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादितः॥८॥

स्वामी श्रीकण्ठ की विधिपूर्वक पूजा करने के पश्चात् गालव ऋषि जप करते हुए उन दो कन्याओं के द्वारा संपूजित होकर वहीं बैठ गए।

ततः पप्रच्छ स मुनिः कन्यके कस्य कथ्यताम्।
कुलालङ्कारकरणे भक्तियुक्ते भवस्य हि॥९॥

मुनि ने उनसे कहा— तुम दोनों अपने कुल के अलंकरण तथा शङ्कर के प्रति भक्तिभाव से युक्त हो, तुम दोनों किस की पुत्री हो? कहो।

तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं याथातथ्यं शुभानने।
जातो विदितवृत्तान्तो गालवस्तपतां वरः॥ १०॥

हे शुभानने! तब उन दोनों ने मुनिश्रेष्ठ को समस्त वृत्तांत कह सुनाया। तपस्वियों में श्रेष्ठ गालव मुनि को भी संपूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ।

समुष्य तत्र रजनीं ताभ्यां संपूजितो मुनिः।
प्रातरुत्थाय गौरीशं संपूज्य च विधानतः॥ ११॥
ते उपेत्याब्रवीद्यास्ये पुष्करारण्यमुत्तमम्।
आमन्त्रयामि वां कन्ये समनुज्ञातुमर्हथः॥ १२॥

उन दोनों के द्वारा संपूजित मुनि ने वहाँ रात्रि व्यतीत की। प्रातः उठकर विधिपूर्वक गौरीश शिव की पूजा करने के पश्चात् उन दोनों कन्याओं के समीप पहुँचकर उन्होंने कहा— हे कन्याओं! मैं पुष्कर नामक उत्तम अरण्य की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। मैं तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ; मुझे जाने की अनुमति दो।

ततस्ते ऊचतुर्ब्रह्मन्दुर्लभं दर्शनं तव।
किमर्थं पुष्करारण्यं भवान्यास्यत्यथादरात्॥ १३॥

तदनन्तर उन दोनों ने आदरपूर्वक कहा— हे ब्राह्मण! आपके दर्शन अत्यंत दुर्लभ हैं। आप किस प्रयोजन से पुष्कर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।

ते उवाच महातेजा महत्कार्यसमन्वितः।
कार्तिकी पुण्यदा भाविमासान्ते पुष्करेषु हि॥ १४॥

तब उन अत्यंत तेजस्वी और कर्तव्यपरायण मुनि ने उनसे कहा— आने वाले मास के अंत में कीर्तिकी पूर्णिमा आ रही है। वह पुष्कर में अत्यंत पुण्यशाली होती है।

ते ऊचतुर्वयं यामो भवान्यत्र गमिष्यति।
न त्वया स्म विना ब्रह्मन्निह स्थातुं हि शक्नुवः॥ १५॥

उन दोनों ने कहा— हे ब्राह्मण! जहाँ आप जाएँगे, हम दोनों भी वहीं जाएँगी। क्योंकि हम दोनों आपके बिना नहीं रह सकतीं।

वाढमाह मुनिश्रेष्ठस्ततो नत्वा महेश्वरम्।
गते च ऋषिणा सार्द्धं पुष्करारण्यमादरात्॥ १६॥

ऋषिकण्ठ ने कहा— ठीक है! तदनन्तर महेश्वर को नमस्कार करके वे दोनों ऋषि के साथ आदरपूर्वक पुष्कर की ओर चल पड़ीं।

तथाऽन्ये ऋषयस्तत्र समायाताः सहस्रशः।
पार्थिवा जानपद्याश्च मुक्त्वैकं तमृतध्वजम्॥ १७॥

वहाँ सहस्रों ऋषिगण, राजागण तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति विभिन्न जनपदों से आए थे; परन्तु ऋतध्वज नहीं आए थे।

ततः स्नाताश्च कार्त्तिक्यामृषयः पुष्करेष्वथ।
राजानश्च महाभागा नाभागेक्ष्वाकुसंयुताः॥ १८॥

कार्तिकी पूर्णिमा को अनेक ऋषियों के साथ ही नाभाग और ईक्ष्वाकु सहित अनेक राजाओं ने भी पुष्कर में स्नान किया।

गालवोऽपि समं ताभ्यां कन्यकाभ्यामवातरत्।
स्नातुं स पुष्करे तीर्थे मध्यमे धनुषाकृतौ॥ १९॥

गालव भी उन दो कन्याओं के साथ मध्यम धनुष की आकृति वाले उस पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के लिये उतरे।

निमग्नश्चापि ददृशे महामत्स्यं जलेशयम्।
बह्वीभिर्मत्स्यकन्याभिः प्रीयमाणं पुनः पुनः॥ २०॥

जल-निमग्न होने पर उन्होंने जल में स्थित एक महा मत्स्य को देखा जिसे अनेक मत्स्यकन्याएँ पुनः-पुनः प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहीं थीं।

स ताश्चाह तिमिर्मुग्धाः यूयं धर्मं न जानथ।
जनापवादं घोरं हि न शक्तः सोढुमुल्बणम्॥ २१॥

महामत्स्य ने उन मछलियों से कहा— तुम सब मुग्ध हो; अतः धर्म को नहीं जानतीं। मैं तीक्ष्ण और भयंकर जनापवाद को नहीं सह सकता।

तास्तामूचुर्महामत्स्यं किं न पश्यसि गालवम्।
तापसं कन्यकाभ्यां वै विचरन्तं यथेच्छया॥ २२॥

तब उन मछलियों ने उस महामत्स्य से कहा— क्या आप दो कन्याओं के साथ यथेच्छ विहार करते हुए गालव ऋषि को नहीं देख रहे हो?

यद्यसावपि धर्मात्मा न बिभेति तपोधनः।
जनापवादात्तत्किं त्वं बिभेषि जलमध्यगः॥ २३॥

यदि ये तपस्वी महात्मा जनापवाद से नहीं डरते तो जल में रहने वाले होकर भी आप क्यों डरते हो?

ततस्ताश्चाह स तिमिर्नैष वेत्ति तपोधनः।
रागान्धो नापि च भयं विजानाति सुबालिशः॥ २४॥

तब उस मत्स्य ने उनसे कहा— यह मूढ़ तपस्वी राग के कारण अंधा हो गया है; इसलिये बालक के समान आचरण करने वाला होकर यह भय का अनुभव नहीं कर पा रहा है।

तच्छ्रुत्वा मत्स्यवचनं गालवो व्रीडया युतः।
नोत्ततार निमग्नोऽपि तस्थौ स विजितेन्द्रियः॥ २५॥

मत्स्य के वचनों को सुनकर गालव ऋषि अत्यंत लज्जित हुए और अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करके वे जल में ही निमग्न रहे और ऊपर आये ही नहीं।

स्नात्वा ते अपि रम्भोरू समुत्तीर्य तटे स्थिते।
प्रतीक्षन्त्यौ मुनिवरं तद्दर्शनसमुत्सुके॥ २६॥

सुंदर जंघाओं वाली वे दो कन्याएँ स्नान करके जल से बाहर आ गईं और तट पर स्थित होकर दोनों उन ऋषि के दर्शन के व्याकुलता से उनकी प्रतीक्षा करती रहीं।

वृत्ता च पुष्करे यात्रा गता लोका यथागतम्।
ऋषयः पार्थिवाश्चान्ये नाना जानपदास्तदा॥ २७॥

पुष्कर पर्व के व्यतीत हो जाने पर सभी व्यक्ति, ऋषि, राजा तथा अन्य नागरिक जहाँ से आए थे वहीं चले गए।

तत्र स्थितैका सुदती विश्वकर्मतनूरुहा।
चित्राङ्गदा सुचार्वङ्गी वीक्षन्ती तनुमध्यमे॥ २८॥

हे कृशांगी! सुन्दर अङ्गों तथा सुंदर दांतो वाली पुत्री चित्रांगदा उन दोनों कन्याओं की प्रतीक्षा करती हुई वहाँ खड़ी थी।

ते स्थिते चापि वीक्षन्त्यौ प्रतीक्षन्त्यौ च गालवम्।
संस्थिते निर्जने तीर्थे गालवोऽन्तर्जले तथा॥ २९॥

वे दोनों कन्याएँ भी उस निर्जन तीर्थ पर खड़ी हुई गालव की प्रतीक्षा कर रही थीं, जबकि गालव जल के अंदर ही स्थित थे।

ततोऽभ्यगाद्वेदवती नाम्ना गन्धर्वकन्यका।
पर्जन्यतनया साध्वी घृताचीगर्भसंभवा॥ ३०॥

तभी वहाँ वेदवती नामक एक गंधर्वकन्या आ पहुँची। वह पर्जन्य और घृताची की साध्वी पुत्री थी।

सा चाभ्येत्य जले पुण्ये स्नात्वा मध्यमपुष्करे।
ददर्श कन्यात्रितयमुभयोस्तटयोः स्थितम्॥ ३१॥

वहाँ पहुँचकर तथा पवित्र पुष्कर के जल में स्नान करने के पश्चात् उसने किनारों पर स्थित उन तीनों कन्याओं को देखा।

चित्राङ्गदामथाभ्येत्य पर्यपृच्छदनिष्ठुरम्।
कासि केन च कार्येण निर्जने स्थितवत्यसि॥ ३२॥

वह चित्रांगदा के पास पहुँची और कोमलता के साथ उस से बोली— तुम कौन हो? इस निर्जन तीर्थ में क्यों खड़ी हो?

सा तामुवाच पुत्रीं मां विन्दस्व सुरवर्धकेः।
चित्राङ्गदेति सुश्रोणि विख्याता विश्वकर्मणः॥ ३३॥

चित्रांगदा ने उससे कहा— हे सुश्रोणी! मैं देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा की पुत्री चित्रांगदा नाम से विख्यात हूँ।

साहमभ्यागता भद्रे स्नातुं पुण्यां सरस्वतीम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षीं तु विख्यातां धर्ममातरम्॥ ३४॥

हे कल्याणी! मैं नैमिषारण्य में काञ्चनाक्षी नाम से प्रसिद्ध सरस्वती नदी में स्नान करने के लिये यहाँ आई थी।

तत्रागताथ राज्ञाऽहं दृष्टा वैदर्भकेण हि।
सुरथेन स कामार्तो मामेव शरणं गतः॥ ३५॥

वहाँ आने पर विदर्भ देश के राजा सुरथ ने मुझे देखा और कामार्त्त होकर वह मेरे पास आया।

मयात्मा तस्य दत्तश्च सखीभिर्वार्यमाणया।
ततः शप्ताऽस्मि तातेन वियुक्ताऽस्मि च भूभुजा॥ ३६॥

सखियों के द्वारा रोके जाने पर भी मैंने स्वयं को उन्हें सौंप दिया। उस कारण मेरे पिता ने मुझे शाप दे दिया और फलतः मैं राजा सुरथ से वियुक्त हो गई।

मर्तुं कृतमतिर्भद्रे वारिता गुह्यकेन च।
श्रीकण्ठमगमं द्रष्टुं ततो गोदावरं जलम्॥ ३७॥

हे भद्रे! तब मैं आत्महत्या के लिए तत्पर हो गई थी। परन्तु मुझे एक गुह्य ने रोक लिया। तब मैं गोदावरी के जल में श्रीकण्ठ के दर्शन के लिए गई।

तस्मादिमं समायाता तीर्थप्रवरमुत्तमम्।
न चापि दृष्टः सुरथः स मनोह्लादनः पतिः॥३८॥

वहाँ से मैं यहाँ तीर्थश्रेष्ठ पुष्कर में आई; परन्तु यहाँ भी मैंने अपने मनोह्लादक पति सुरथ को नहीं देखा।

भवती चात्र का बाले वृत्ते यात्राफलेऽधुना।
समागता हि तच्छंस मम सत्येन भामिनि॥३९॥

हे सुन्दरी! पुष्कर का अवसर व्यतीत हो जाने पर अब आप यहाँ क्यों आई हो— यह मुझे सत्य-सत्य बताओ।

साब्रवीच्छूयतां याऽस्मि मन्दभाग्या कृशोदरी।
यथा यात्राफले वृत्ते समायाताऽस्मि पुष्करम्॥४०॥

उसने कहा— हे कृशोदरी! मैं मंदभागिनी कौन हूँ तथा पुष्कर का वृत्तांत व्यतीत हो जाने पर यहाँ क्यों आई हूँ; सुनो!

पर्जन्यस्य घृताच्यां तु जाता वेदवतीति हि।
रममाणा वनोद्देशे दृष्टाऽस्मि कपिना सखि॥४१॥

पर्जन्य और घृताची से उत्पन्न मैं वेदवती हूँ। हे सखी! वन प्रदेश में घूमते हुए मुझे एक वानर ने देखा।

स चाभ्येत्याब्रवीन् का त्वं यासि देववतीति हि।
आनीतास्याश्रमात्केन भूपृष्ठान्मेरुपर्वतम्॥४२॥

वह मेरे समीप आकर बोला- देववती! तुम कहाँ जा रही हो? पृथ्वी पर स्थित आश्रम से तुम्हें यहाँ मेरु पर्वत पर कौन लाया।

ततो मयोक्तो नैवास्मि कपे देववतीत्यहम्।
नाम्ना वेदवतीत्येवं मेरोरपि कृताश्रया॥४३॥

इस पर मैंने कहा— हे कपि! मैं देववती नहीं हूँ। अपितु मैं वेदवती हूँ तथा मेरु पर्वत पर रहती हूँ।

ततस्तेनातिदुष्टेन वानरेण ह्यभिद्रुता।
समारूढास्मि सहसा वन्धुजीवं नगोत्तमम्॥४४॥

तदनन्तर उस दुष्ट वानर ने सहसा मुझ पर आक्रमण कर दिया। ऐसे में मैं बंधुजीव के विशाल वृक्ष पर चढ़ गई।

तेनापि वृक्षस्तरसा पादाक्रान्तस्त्वभज्यत।
ततोस्य विपुलां शाखां समालिङ्ग्य स्थिता त्वहम्॥४५

तब उसने वृक्ष पर भी आक्रमण कर दिया; उसके भयानक आक्रमण से वृक्ष टुकड़े-टुकड़े हो गया। तब मैं उसकी एक विशाल शाखा पर ही चिपकी हुई लटक गई।

ततः प्लवङ्गमो वृक्षं प्राक्षिपत् सागराम्भसि।
सह तेनैव वृक्षेण पतितास्म्यहमाकुला॥४६॥

उस वानर ने उस वृक्ष को सागर के जल में फेंक दिया। मैं भी भयभीत थी उस वृक्ष के साथ-साथ मैं भी जल में गिर पड़ी।

ततोम्बरतलाद् वृक्षं निपतन्तं यदृच्छया।
ददृशुः सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥४७॥

समस्त स्थावर तथा जंगम प्राणियों ने आकाश से भूमि पर गिरते हुए उस विशाल वृक्ष को विस्मय से देखा।

ततो हाहाकृतं लोकैर्मां पतन्तीं निरीक्ष्य हि।
ऊचुश्च सिद्धगन्धर्वाः कष्टं सेयं महात्मनः॥४८॥

वृक्ष के साथ मुझे भी गिरते हुए देखकर समस्त लोक हाहाकार करने लगा। सिद्ध, गंधर्व और महात्मा सब कहने लगे— हाय! यह अत्यंत दुःख की बात है!

इन्द्रद्युम्नस्य महिषी गदिता ब्रह्मणा स्वयम्।
मनोः पुत्रस्य वीरस्य सहस्रक्रतुयाजिनः॥४९॥

ब्रह्मा ने स्वयं कहा था कि यह कन्या सहस्र यज्ञों का संपादन करने वाले मनु के वीर पुत्र इन्द्रद्युम्न की पत्नी होगी।

तां वाणीं मधुरां श्रुत्वा मोहमस्यागता ततः।
न च जाने स केनापि वृक्षश्छिन्नः सहस्रधा॥५०॥

उस मधुर वाणी को सुनकर मैं मूर्छित हो गई। मुझे पता नहीं चला कि वृक्ष को किसने सहस्रों टुकड़ों में काट डाला।

ततोऽस्मि वेगात् बलिना हतानलसखेन हि।
समानीतास्म्यहमिमं त्वं दृष्टा चाद्य सुन्दरि॥५१॥

तदनन्तर अग्नि के बलशाली मित्र वायु मुझे बलपूर्वक यहाँ ले आये जहाँ तुमने मुझे देखा है।

तदुत्तिष्ठस्व गच्छावः पृच्छावः क इमे स्थिते।
कन्यके अनुपश्ये हि पुष्करस्योत्तरे तटे॥५२॥

तो उठो! हम दोनों चलती हैं और पूछती हैं कि पुष्कर के उत्तरी तट पर खड़ी ये दो कन्याएँ कौन हैं?

एवमुक्त्वा वराङ्गी सा तया सुतनुकन्यया।
जगाम कन्यके द्रष्टु प्रष्टुं कार्यसमुत्सुका।।५३।।

ऐसा कहकर वह सुन्दर अंगों वाली कन्या उस कृशांगी कन्या के साथ कौतुकवशात् उन दो कन्याओं को देखने और उनके कुशलक्षेम को जानने के लिये वहाँ चली गईं।

ततः गत्वा पर्यपृच्छत् ऊचतुरुभे अपि।
यातातथ्यं तयोस्ताभ्यां स्वमात्मानं निवेदितम्।।५४।।

वहाँ जाकर उन दोनों ने उनसे उनके कुशलक्षेम के बारे में पूछा। उन दोनों कन्याओं ने भी उन से अपना समस्त वृत्तांत यथागत रूप से वर्णित कर दिया।

ततस्ताश्चतुरोऽपीह सप्तगोदावरं जलम्।
संप्राप्य तीरे तिष्ठन्ति अर्चन्त्यो हाटकेश्वरम्।।५५।।

तदनन्तर वे चारों सप्त गोदावरी के पवित्र जल की ओर चल पडीं तथा वहाँ तीर्थ में हाटकेश्वर की पूजा करते हुए रहने लगीं।

ततो बहून् वर्षगणान् बभ्रमुस्ते जनास्त्रयः।
तासामर्थाय शकुनिर्जाबालिः सऋतध्वजः।।५६।।

इन वर्षों में शकुनि, जाबालि और ऋतध्वज, ये तीनों व्यक्ति उन स्त्रियों को खोजते हुए घूमते रहे।

भारवाही ततो खिन्नो दशाब्दशतिके गते।
काले जगाम निर्वेदात्समं पित्रा तु शाकलम्।।५७।।

एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भार वहन करने वाला अतएव अत्यंत दुःखी जाबालि अपने पिता के साथ शाकल जनपद में पहुँचा।

तस्मिन्नरपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्नो मनोः सुतः।
समध्यास्ते स विज्ञाय सार्घपात्रो विनिर्ययौ।।५८।।

वहाँ मनुपुत्र राजा श्रीमान् इन्द्रद्युम्न निवास कर रहे हैं, यह जानकर वह अर्घ के पात्र के साथ उस स्थान पर आया।

सम्यक्संपूजितस्तेन सजाबालिर्ऋतध्वजः।
स चेक्ष्वाकुसुतो धीमान् शकुनिर्भ्रातृजोऽर्चितः।।५९।।

उसने ऋतध्वज तथा जाबालि का विधिपूर्वक संपूजन किया। उसने इक्ष्वाकुपुत्र बुद्धिमान् भ्रातृव्य शकुनि का सम्यक् भी आदर किया।

ततो वाक्यं मुनिः प्राह इन्द्रद्युम्नं ऋतध्वजः।
राजन्नष्टाऽबलाऽस्माकं नन्दयन्तीति विश्रुता।।६०।।

तदनन्तर मुनि ऋतध्वज ने इन्द्रद्युम्न से कहा— हे राजन्! हमारी पुत्री दमयन्ती कहीं खो गई है।

तस्यार्थे चैव वसुधा अस्माभिरटिता नृप।
तस्मादुत्तिष्ठ मार्गस्व साहाय्यं कर्तुमर्हसि।।६१।।

हे नृप! उसको खोजने के लिए हम समस्त पृथ्वी पर घूम चुके हैं। इसलिये कृपया उठिये और हमारी सहायता कीजिए।

अथोवाच नृपो ब्रह्मन् ममापि ललनोत्तमा।
नष्टा कृतश्रमस्यापि कस्याहं कथयामि ताम्।।६२।।

इस पर राजा ने कहा— हे ब्राह्मण! मेरी सुन्दर प्रियतमा भी कहीं खो गई है, जिसे ढूँढने के लिये मेरे सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए हैं, मैं उसके विषय में किससे कहूँ!

आकाशात् पर्वताकारः पतमानो नगोत्तमः।
सिद्धानां वाक्यमाकर्ण्य बाणैश्छिन्नः सहस्रधा।।६३।।

सिद्धों के वाक्यों को सुनकर आकाश से गिरते हुये पर्वताकार एक विशाल वृक्ष को मैंने अपने बाणों से हजारों टुकड़ों में काट डाला।

न चैव सा वरारोहा विभिन्ना लाघवान्मया।
न च जानामि सा कुत्र तस्माद्गच्छामि मार्गितुम्।।६४।।

किंतु (बाणकला में) कुशलता के कारण वह सुन्दर जङ्घाओं वाली सुन्दरी (जो उस पर लटकी थी) आहत नहीं हुई। मैं नहीं जानता कि वह कहाँ है। तब से मैं उसे ढूँढ रहा हूँ।

इत्येवमुक्त्वा स नृपः समुत्थाय त्वरान्वितः।
स्यन्दनानि द्विजाभ्यां स भ्रातृपुत्राय चार्पयत्।।६५।।

इतना कहकर राजा ने शीघ्रता से उठकर अपने रथ को ब्राह्मणों और भ्रातृपुत्र को दे दिया।

तेऽधिरूह्य रथांस्तूर्णं मार्गन्ते वसुधां क्रमात्।
बदर्याश्रममासाद्य ददृशुस्तपसां निधिम्।।६६।।

वे सब रथ पर चढ़कर तीव्रता से पृथ्वी का भ्रमण करने लगे और घूमते-घूमते बदरी-आश्रम पहुँचे, जहाँ उन्होंने एक महान् तपस्वी को देखा।

तपसा कर्शितं दीनं मलपङ्कजटाधरम्।
निःश्वासायासपरमं प्रथमे वयसि स्थितम्॥६७॥

वे तपस्वी तपस्या के कारण कृश-काय अत्यन्त दीन दिखाई दे रहे थे। उन्होंने मिट्टी से युक्त जटाओं को धारण किया हुआ था। वे कठिनता से साँस लेते हुये तथा अवस्था के प्रथम चरण (बाल्यकाल) में स्थित थे।

तमुपेत्याब्रवीद्राजा इन्द्रद्युम्नो महाभुजः।
तपस्विन् यौवने घोरमास्थितोऽसि सुदुश्चरम्॥६८॥

उनके समीप आकर विशाल भुजाओं वाले इन्द्रद्युम्न ने कहा— हे तपस्वी! युवावस्था में ही तुम यह घोर तपस्या क्यों कर रहे हो?

तपः किमर्थं तच्छंस किमभिप्रेतमुच्यताम्।
सोऽब्रवीत्को भवान्ब्रूहि ममात्मानं सुहृत्तया॥६९॥
परिपृच्छसि शोकार्तं परिखिन्नं तपोन्वितम्।
स प्राह राजाऽस्मि विभो तपस्विन्शाकले पुरे॥७०॥

तुम्हारे तप का क्या कारण है? कृपा करके बताइये। उन्होंने कहा— आप कौन हैं तथा मुझ दुःखी क्लान्त तपस्वी के विषय में स्नेह से क्यों पूछ रहे हैं? उसने कहा— हे विभु तपस्वी! मैं शाकल देश का राजा हूँ।

मनोः पुत्रः प्रियो भ्राता इक्ष्वाकोः कथितं तव।
स चास्मै पूर्वचरितं सर्वं कथितवान्नृपः॥७१॥

मैं मनु का पुत्र हूँ तथा ईक्ष्वाकु का प्रिय भ्राता हूँ। राजा ने अपने पूर्वजन्म का समस्त वृत्तांत उसे कह सुनाया।

श्रुत्वा प्रोवाच राजर्षिर्मा मुञ्चस्व कलेवरम्।
आगच्छ यामि तन्वङ्गीं विचेतुं भ्रातृजोऽसि मे॥७२॥

यह सुनकर राजर्षि ने कहा— अपना शरीर मत छोड़ो (जीवन त्याग मत करो)! आओ, हम उस तन्वी को ढूँढने के लिये जाते हैं; तुम मेरे भाई के पुत्र हो।

इत्युक्त्वा संपरिष्वज्य नृपं धमनिसंततम्।
समारोप्य रथं तूर्णं तापसाभ्यां न्यवेदयत्॥७३॥

यह कहकर उस पिंजरमात्र (कृशकाय) राजा का आलिङ्गन करके उसे रथ पर चढ़ाकर शीघ्रता से दो तपस्वियों के पास ले गया।

ऋतध्वजः सपुत्रस्तु तं दृष्ट्वा पृथिवीपतिम्।
प्रोवाच राजन्नेह्येहि करिष्यामि तव प्रियम्॥७४॥

पुत्र सहित ऋतध्वज ने उस राजा को देखकर कहा— राजन्! यहाँ आओ, मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा-(मैं तुम्हें प्रसन्न करूँगा)।

याऽसौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे।
सप्तगोदावरं तीर्थं सा मयैव विसर्जिता॥७५॥

जो चित्रांगदा नामक सुन्दरी तुमने नैमिषारण्य में देखी थी, उसे मैंने ही सप्तगोदावरी के पवित्र जल में फेंका था।

तदागच्छथ गच्छामः सौदेवस्यैव कारणात्।
तत्रास्माकं समेष्यन्ति कन्यास्तिस्रस्तथापराः॥७६॥

तो आओ, हम सब सुदेव के पुत्र के लिये चलते हैं जिससे हम उन तीनों कन्याओं तथा अन्यों से मिलेंगे।

इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य सुदेवजाम्।
शकुनिं पुरतः कृत्वा सेन्द्रद्युम्नः सपुत्रकः॥७७॥
स्यन्दनेनाश्वयुक्तेन गन्तुं समुपचक्रमे।
सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः॥७८॥

ऐसा कहकर सुदेव के पुत्र को समाश्वासित करके इन्द्रद्युम्न अपने पुत्र सहित शकुनि को साथ लेकर अश्वयुक्त रथ से वहाँ सप्तगोदावरी तीर्थ में जाने को तैयार हो गया, जहाँ वे कन्याएँ गई थीं।

एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकसंयुता।
विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती सुतां निजाम्॥७९॥

इस समय में शोकाकुल तन्वी घृताची अपनी पुत्री को खोजती हुई उदयगिरि पर घूम रही थी।

तमाससाद च कपिं पर्यपृच्छत् तथाप्सराः।
किं बाला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व मां॥८०॥

उस अप्सरा ने वहाँ सामने आए हुए वानर से पूछा— हे कपि! सत्य बताओ, क्या तुमने मेरी पुत्री को देखा है?

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स कपिः प्राह बालिकाम्।
दृष्टा देववती नाम्ना मा न्यस्ता महाश्रमे॥८१॥

उसके इस वचन को सुनकर वानर ने उस सुन्दरी से कहा— देववती नामक बालिका को मैंने देखा है और मैंने ही उसे महान् आश्रम में रखा है।

कालिन्द्या विमले तीर्थे मृगपक्षिसमन्विते।
श्रीकण्ठायतनस्याग्रे मया सत्यं तवोदितम्॥८२॥

श्रीकण्ठ के मन्दिर के सम्मुख मृगपक्षियों से युक्त कालिन्दी के निर्मल तीर्थ में मैंने आपसे सर्वथा सत्य कहा है।

सा प्राह वानरपते नाम्ना वेदवतीति सा।
न हि देववती ख्याता तदागच्छ व्रजावहे॥८३॥

उसने कहा— हे वानरपति! मेरी पुत्री का नाम वेदवती है न कि देववती! तो आइये, हम दोनों चलते हैं।

घृताच्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानरस्त्वरितक्रमः।
पृष्ठतोऽस्याः समागच्छन्नदीमन्वेव कौशिकीम्॥८४॥

घृताची के उस वचन को सुनकर वानर तीव्र कदमों से उसका अनुगमन करते हुए कौशिकी नदी के समीप पहुँच गया।

ते चापि कौशिकीं प्राप्ता राजर्षिप्रवरास्त्रयः।
द्वितयं तापसाभ्यां च रथैः परमवेगिभिः॥८५॥

वे तीनों श्रेष्ठ राजर्षि भी उन दो तपस्वियों के साथ वेगवान् रथों से कौशिकी नदी पर पहुँच गए।

अवतीर्य रथेभ्यस्ते स्नातुमभ्यागमन्नदीम्।
घृताच्यपि नदीं स्नातुं सुपुण्यमाजगाम ह॥८६॥

रथों से उतरकर वे सब स्नान के लिए नदी की ओर चल पड़े। घृताची भी स्नान करने के लिए पुण्य नदी की ओर चल पड़ी।

तामन्वेव कपिः प्रायाद्दृष्टो जाबालिना तथा।
दृष्ट्वैव पितरं प्राह पार्थिवं च महाबलम्॥८७॥

उसके पीछे-पीछे आते हुए कपि को जाबालि ने देखा और अपने महाशक्तिशाली राजा पिता से कहा।

स एव पुनरायाति वानरस्तात वेगवान्।
पूर्वं जटास्वेव बलाद्येन बद्धोऽस्मि पादपे॥८८॥

तात! वह शक्तिशाली वानर, जिसने बलपूर्वक मेरी जटाओं से मुझे वृक्ष से बांध दिया था, पुनः आ रहा है।

तज्जाबालिवचः श्रुत्वा शकुनिः क्रोधसंयुतः।
सशरं धनुरादाय इदं वचनमब्रवीत्॥८९॥

जाबालि के वचनों को सुनकर क्रोधित शकुनि ने शरसहित धनुष को उठाकर वचन कहे—

ब्रह्मन्प्रदीयतां मह्यमाज्ञा तात वदस्व माम्।
यावदेनं निहन्म्यद्य शरेणैकेन वानरम्॥९०॥

हे ब्राह्मण! हे तात! आप मुझे कहें और आज्ञा दें; एक ही बाण से इस वानर का वध कर दूँ!

इत्येवमुक्ते वचने सर्वभूतहिते रतः।
महर्षिः शकुनिं प्राह हेतुयुक्तं वचो महत्॥९१॥

इस प्रकार कहे जाने पर समस्त प्राणियों के हित में तत्पर महर्षि ने शकुनि से सारगर्भित व कोमल शब्दों में इस प्रकार कहा—

न कश्चित्तात केनापि बध्यते हन्यतेऽपि वा।
वधबन्धौ पूर्वकर्मवश्यौ नृपतिनन्दन॥९२॥

हे पुत्र! न तो कोई किसी को मार सकता है और न ही बन्धन में डाल सकता है। हे राजकुमार! इस प्रकार वध एवं बन्धन पूर्वकर्मों के वशीभूत होते हैं।

इत्येवमुक्त्वा शकुनिमृषिर्वानरमब्रवीत्।
एह्येहि वानरास्माकं साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥९३॥

शकुनि से इस प्रकार के वचन कहकर ऋषि ने वानर से कहा— हे वानर! यहाँ आओ, और हमारी सहायता करो!

इत्येवमुक्तो मुनिना बाले स कपिकुञ्जरः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्॥
ममाज्ञा दीयतां ब्रह्मन्शाधि किं करवाण्यहम्॥९४॥

मुनि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह श्रेष्ठ वानर हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोला— हे ब्राह्मण! मुझे आज्ञा दीजिए और निर्दिष्ट कीजिए कि मैं क्या करूँ।

इत्युक्ते प्राह स मुनिस्तं वानरपतिं वचः।
मम पुत्रस्त्वयोद्बद्धो जटासु वटपादपे॥९५॥

इस प्रकार कहे जाने पर मुनि ने उस वानरपति से कहा— मेरा पुत्र आपके द्वारा वटवृक्ष पर जटाओं से बांध दिया गया था।

न चेन्मोचयितुं वृक्षाच्छक्नुयामोऽपि यत्नतः।
तदनेन नरेन्द्रेण त्रिधा कृत्वा तु शाखिनः॥९६॥
शाखां वहति मत्सूनुः शिरसा तां विमोचय।
दशवर्षशतान्यस्य शाखां वै वहतोऽगमन्॥९७॥

न च सोऽस्ति पुमान् कश्चिद्यो ह्युन्मोचयितुं क्षमः।
स ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य कपिर्जाबालिनो जटाः॥ ९८॥
शनैरुन्मोचयामास क्षणादुन्मोचिताश्च ताः।
ततः प्रीतो मुनिश्रेष्ठो वरदोभूदृतध्वजः॥ ९९॥
कपिं प्राह वृणीष्व त्वं वरं यन्मनसेप्सितम्।
ऋत्ध्वजवचः श्रुत्वा इमं वरमयाचत॥ १००॥
विश्वकर्मा महातेजाः कपित्वे प्रतिसंस्थितः।
ब्रह्मन्भवान्वरं मह्यं यदि दातुमिहेच्छति॥ १०१॥
तत्स्वदत्तो महाघोरो मम शापो निवर्त्यताम्।
चित्राङ्गदायाः पितरं मां त्वष्टारं तपोधन॥ १०२॥
अभिजानीहि भवतः शापाद्वानरतां गतम्।
सुबहूनि च पापानि मया यानि कृतानि हि॥ १०३॥
कपिचापल्यदोषेण तानि मे यान्तु संक्षयम्।
ततो ऋतध्वजः प्राह शापस्यान्तो भविष्यति॥ १०४॥
यदा घृताच्यां तनयं जनिष्यसि महाबलम्।
इत्येवमुक्तः संहृष्टः स तथा कपिकुञ्जरः॥ १०५॥
स्नातुं तूर्णं महानद्यामवतीर्णः कृशोदरि।
ततस्तु सर्वे क्रमशः स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः॥ १०६॥

हम अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी वृक्ष से उसे नहीं छुड़ा सके तो इस राजा ने उस वृक्ष के तीन टुकड़े कर डाले। मेरा पुत्र अपने सिर पर उन शाखाओं को ढो रहा है- उसे आप उस शाखा से वियुक्त कीजिए। शाखाओं को ढोते हुए उसे एक हजार वर्ष व्यतीत हो गए हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो उसे छुड़ाने में समर्थ है। ऋषि के वचन को सुनकर वह कपि जावालि की जटाएँ धीरे-धीरे खोलने लगा और क्षण भर में ही वह खुल गई।

तब प्रसन्न मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वज ने वर देना चाहा और कपि से कहा– तुम मुझसे मनचाहा वर मांग लो। ऋतध्वज के वचन को सुनकर कपि ने यह वर मांगा– देवशिल्पी महातेजस्वी विश्वकर्मा कपित्व को प्राप्त हो गए (बंदर बन गए) हैं। हे ब्राह्मण! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे दिए हुए अपने घोर शाप को लौटा लीजिए। हे तपस्वी! मैं चित्रांगदा का पिता शिल्पी विश्वकर्मा हूँ जो आपके शाप के कारण वानरता को प्राप्त हो गया (वानर बन गया) हूँ। । और वानर-चापल्य के कारण मैंने और भी जो बहुत से पाप किए गए हैं उन्हें भी क्षमा कीजिए। तब ऋतध्वज ने कहा- इस शाप का अन्त तब होगा जब घृताची से तुम एक बलशाली पुत्र उत्पन्न करोगे। हे कृशोदरी! इस प्रकार कहे जाने पर प्रसन्न होकर वह वानरश्रेष्ठ स्नान करने के शीघ्रता से नदी में उतर गया। इसके पश्चात् स्नान करके तथा अपने पितरों की अर्चना करके प्रसन्न वे सब रथ से चले गए। घृताची ने द्युलोक को प्रस्थान किया। तीव्रगामी उस कपिश्रेष्ठ ने भी उसका अनुगमन किया।

जग्मुर्हृष्टा रथेभ्यस्ते घृताची दिवमुत्पतत्।
तामन्वेव महावेगः स कपिः प्लवतां वरः॥ १०७॥
ददृशे रूपसंपन्नां घृताचीं च प्लवङ्गमः।
सापि तं बलिनां श्रेष्ठं दृष्ट्वैव कपिकुञ्जरम्॥ १०८॥

उस वानरश्रेष्ठ ने रूपवती घृताची को देखा। घृताची को भी बलशालियों में उस कपिकुंजर को देखा। उसे विश्वकर्मा जानकर वह सुन्दरी उसकी कामना करने लगी। तदनन्तर वे दोनों प्रख्यात पर्वत कोलाहल पर चले गए।

ज्ञात्वाऽथ विश्वकर्माणं कामयामास कामिनी।
ततोऽनुपर्वतश्रेष्ठे ख्याते कोलाहले कपिः॥ १०९॥
रमयामास तां तन्वीं सा च तं वानरोत्तमम्।
एवं रमन्तौ सुचिरं प्राप्तौ तौ विन्ध्यपर्वतम्॥ ११०॥

वहाँ वानर ने उस तन्वी घृताची के साथ तथा तन्वी घृताची वानर के साथ रमण किया। इस प्रकार दीर्घकाल तक रमण करते हुए वे दोनों विन्ध्य पर्वत पर पहुँच गए।

रथैः पञ्चापि तत्तीर्थं संप्राप्तास्ते नरोत्तमाः।
मध्याह्नसमये प्रीताः सप्तगोदावरं जलं१११॥
प्राप्य विश्रामहेत्वर्थमवतेरुस्त्वरान्विताः।
तेषां सारथयश्चाश्वान् स्नात्वा पीतोदकाप्लुतान्॥ ११२
रमणीये वनोद्देशे प्रचारार्थे समुत्सृजन्।
शाड्वलाढ्येषु देशेषु मुहूर्त्तादिव वाजिनः॥ ११३॥
तृप्ताः समाद्रवन्सर्वे देवायतनमुत्तमम्।
तुरङ्गखुरनिर्घोषं श्रुत्वा ता योषितां वराः॥ ११४॥
किमेतदिति चोक्त्वैव प्रजग्मुर्हाटकेश्वरम्।
आरुह्य बलभीं तास्तु समुदैक्षन्त सर्वशः॥ ११५॥

वे पाँच (ऋतध्वज आदि) राजा भी रथों से उस

तीर्थस्थल पर पहुँच गए। प्रसन्नचित्त होकर वे सब मध्याह्न में सप्तगोदावरी के जल के समीप पहुँचकर विश्राम करने के लिये शीघ्रतापूर्वक रथों से उतर गए। उनके वाहनचालकों ने भी वहाँ स्नान किया और उन्होंने अश्वों को स्नान कराकर तथा पानी पिलाकर जंगल के रमणीय प्रदेश में चरने के लिये छोड़ दिया। उस प्रचुर हरितिका वाले प्रदेश में घोड़े क्षण भर में ही संतुष्ट हो गए और श्रेष्ठ देवायतन की ओर दौड़ पड़े। अश्वो के खुरों के स्वर को सुनकर वे सुन्दरियाँ बोल पड़ीं– यह क्या है? और वे हाटकेश्वर के मंदिर के अंदर चली गईं तथा चौबारे पर चढ़कर चारों ओर देखने लगीं।

अपश्यंस्तीर्थसलिले स्नायमानान् नरोत्तमान्।
ततश्चित्राङ्गदा दृष्ट्वा जटामण्डलधारिणम्।
सुरथं हसती प्राह संरोहत्पुलका सखीम्॥ ११६॥

योऽसौ युवा नीलघनप्रकाशः
संलक्ष्यते दीर्घभुजः सुरूपः।
स एव नूनं नरदेवसूनु-
र्वृतो मया पूर्वपतरं पतिर्यः॥ ११७॥

वहाँ से उन्होंने जल में स्नान करते हुए महान् पुरुषों को देखा। तदनन्तर चित्रांगदा ने महामण्डलधारी सुरथ को देखा और रोमांचित होकर उसने अपनी सखी से कहा– यह जो रूपवान् दीर्घबाहु और नीलघन के सदृश आभावान् युवक दिखाई दे रहा है वह निश्चय ही राजकुमार है जिसे मैंने पहले पतिरूप में वरण किया था।

यश्चैष जाम्बूनदतुल्यवर्णः
श्वेतं जटाभारमधारयिष्यत्।
स एष नूनं तपतां वरिष्ठो
ऋतध्वजो नात्र विचारमस्ति॥ ११८॥

और जो स्वर्ग के समान आभा वाले तथा श्वेत जटासमूह को सिर पर धारण किये है वे निश्चय ही तपस्वियों में श्रेष्ठ ऋतध्वज हैं इसमें संशय नहीं है।

ततोऽब्रवीदथो हृष्टा नन्दयन्ती सखीजनम्।
एषोऽपरोऽस्यैव सुतो जाबालिर्नात्र संशयः॥ ११९॥

तदनन्तर दमयन्ती ने प्रसन्नचित्त अपनी सखियों से कहा– यह दूसरा व्यक्ति इसका ही पुत्र जाबालि है, इसमें कोई संशय नहीं है।

इत्येवमुक्त्वा वचनं बलभ्या अवतीर्य च।
समासताग्रतः शंभोर्गायन्त्यो गीतिकां शुभाम्॥ १२०॥

इस प्रकार कहकर वह चौबारे से उतरीं। वह मंगलकारी गीतों को गाते हुये शंभु के सम्मुख आईं।

नमोऽस्तु शर्व शंभो त्रिनेत्र चारुगात्र त्रैलोक्यनाथ उमापते दक्षयज्ञविध्वंसकर कामाङ्गनाशन घोरपापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्त्ते सर्वसत्त्वक्षयंकर शुभंकर महेश्वर त्रिशूलधारिन् स्मरारे गुहावासिन् दिग्वासः महाचन्द्रशेखर जटाधर कपालमालाविभूषितशरीर वामचक्षुः वामदेव प्रजाध्यक्ष भगाक्ष्णोः क्षयंकर भीमसेन महासेननाथ पशुपते कामाङ्गदहन चत्वरवासिन् शिव महादेव ईशान शङ्कर भीम भव वृषभध्वज जटिल प्रौढ महानाट्येश्वर भूरिरत्न अविमुक्तक रुद्र रुद्रेश्वर स्थाणो एकलिङ्ग कालिन्दीप्रिय श्रीकण्ठ नीलकण्ठ अपराजित रिपुभयंकर संतोषपते वामदेव अघोर तत्पुरुष महाघोर अघोरमूर्त्ते शान्त सरस्वतीकान्त कोनाट सहस्रमूर्ते महोद्भव विभो कालाग्निरुद्र रुद्र हर महीधरप्रिय सर्वतीर्थाधिवास हंस कामेश्वर केदाराधिपते परिपूर्ण मुचुकुन्द मधुनिवासिन् कृपाणपाणे भयंकर विद्याराज सोमराज कामराज रञ्जक अञ्जनराजकन्या-हृदचलवसते समुद्रशायिन् गजमुख घण्टेश्वर गोकर्ण ब्रह्मयोने सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नमस्तेऽस्तु ते॥

— स्तुति—

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः सर्व एवर्षिपार्थिवाः।
द्रष्टुं त्रैलोक्यकर्तारं त्र्यम्बकं हाटकेश्वरम्॥ १२१॥

इसी बीच सभी राजा और ऋषिगण त्रिलोककर्ता त्रिनेत्र हाटकेश्वर के दर्शन के लिए वहाँ आ पहुँचे।

समारूढाश्च सुस्नाता ददृशुर्योषितश्च ताः।
स्थितास्तु पुरतस्तस्य गायन्त्यो गेयमुत्तमम्॥ १२२॥

उन्होंने वहाँ भलीभाँति स्नान किया। स्नान के पश्चात् पवित्र होकर आराम से बैठे हुए थे कि उन्होंने अपने सामने खड़ी होकर शिवस्तुति गाती हुई उन स्त्रियों को देखा।

ततः सुदेवतनयो विश्वकर्मसुतां प्रियाम्।
दृष्ट्वा हर्षितचित्तस्तु संरोहत्पुलको बभौ॥ १२३॥

तदनन्तर सुदेवपुत्र सुरथ अपनी प्रिया चित्रांगदा को देखकर मन से अत्यंत प्रसन्न तथा रोमांचित हो गया।

ऋतध्वजोऽपि तन्वङ्गीं दृष्ट्वा चित्राङ्गदां स्थिताम्।
प्रत्यभिज्ञाय योगात्मा बभौ मुदितमानसः॥ १२४॥

योगी ऋतध्वज भी सामने खड़ी तन्वंगी चित्रांगदा को देखकर और पहचान कर अत्यंत प्रसन्न हो गए।

ततस्तु सहसाऽभ्येत्य देवेशं हाटकेश्वरम्।
संपूजयन्तस्त्र्यक्षं ते स्तुवन्तः संस्थिताः क्रमात्॥ १२५

तब वे भी स्वामी हाटकेश्वर के समीप पहुँचकर क्रमशः खड़े हुए और त्र्यम्बक की पूजा करते हुए स्तुति करने लगे।

चित्राङ्गदापि तान्दृष्ट्वा ऋतध्वजपुरोगमान्।
समं ताभिः कृशाङ्गीभिरभ्युत्थायाभ्यवादयत्॥ १२६॥

चित्रांगदा ने भी ऋतध्वज के साथ. आए हुये उन सब को देखा और अन्य कृशांगी सुन्दरियों के साथ उनके समीप जाकर उनका अभिवादन किया।

स च ताः प्रतिनन्द्यैव समं पुत्रेण तापसः।
समं नृपतिभिर्हृष्टः संविवेश यथासुखम्॥ १२७॥

वे तपस्वी भी उन सुन्दरियों को बधाई देते हुए अपने पुत्र तथा अन्य राजाओं के साथ वहाँ आराम से बैठ गए।

ततः कपिवरः प्राप्तो घृताच्या सह सुन्दरि।
स्नात्वा गोदावरीतीर्थे दिदृक्षुर्हाटकेश्वरम्॥ १२८॥

हे सुन्दरी! तदनन्तर घृताची के साथ वह कपिश्रेष्ठ, जो गोदावरी तीर्थ में स्नान के पश्चात् हाटकेश्वर के दर्शन करना चाहता था, वहाँ आ पहुँचा।

ततोऽपश्यत् सुतां तन्वीं घृताची शुभदर्शनाम्।
साऽपि तां मातरं दृष्ट्वा हृष्टाऽभूद्वरवर्णिनी॥ १२९॥

तदनन्तर घृताची ने अपनी तन्वी एवं रूपवती पुत्री को देखा और वह सुवर्णा भी अपनी माता को देखकर हर्षित हुई।

ततो घृताची स्वां पुत्रीं परिष्वज्य न्यपीडयत्।
स्नेहात् सबाष्पनयना मुहुस्तां परिजिघ्रती॥ १३०॥

तदनन्तर घृताची ने अपनी पुत्री का स्नेहपूर्वक प्रगाढ़ आलिङ्गन किया और उस सजल नेत्रों वाली अपनी पुत्री को पुनः पुनः चूमा।

ततो ऋतध्वजः श्रीमान्कपिं वचनमब्रवीत्।
गच्छानेतुं गुह्यकं त्वमञ्जनाद्रौ महाञ्जनम्॥ १३१॥

तदनन्तर श्रीमान् ऋतध्वज ने वानर से कहा— तुम अञ्जन पर्वत पर गुह्य महाञ्जन को लाने के लिए जाओ!

पातालादपि दैत्येशं वीरं कन्दरमालिनम्।
स्वर्गाद्गन्धर्वराजानं पर्जन्यं शीघ्रमानय॥ १३२॥

पाताल से दैत्येश वीर कन्दरमाली को तथा स्वर्ग से गंधर्वराज पर्जन्य को शीघ्र ले आओ!

इत्येवमुक्ते मुनिना प्राह देववती कपिम्।
गालवं वानरश्रेष्ठ इहानेतुं त्वमर्हसि॥ १३३॥

मुनि के द्वारा इस प्रकार कहने पर देववती ने कपि से कहा—हे वानरश्रेष्ठ! आप गालव को भी यहाँ ला सकते हैं।

इत्येवमुक्ते वचने कपिर्मारुतविक्रमः।
गत्वाऽञ्जनं समामन्त्र्य जगामामरपर्वतम्॥ १३४॥

इस प्रकार कहे जाने पर वायु के समान पराक्रमी वह वानर अञ्जन के पास गया और उसे आमन्त्रित करके देवपर्वत की ओर चला गया।

पर्जन्यं तत्र चामन्त्र्य प्रेषयित्वा महाश्रमे।
सप्तगोदावरे तीर्थे पातालमगमत् कपिः॥ १३५॥

वहाँ उस वानर ने पर्जन्य को आमंत्रित किया और उसे सप्तगोदावरी तीर्थ में महा-आश्रम में भेजकर स्वयं पाताललोक में जा चला गया।

तत्रामन्त्र्य महावीर्यं कपिः कन्दरमालिनम्।
पातालादभिनिष्क्रम्य महीं पर्यचरज्जवी॥ १३६॥

वहाँ महाबलशाली कन्दरमाली को आमंत्रित करके वह पाताल से निकला और वेगपूर्वक भूमि का परिभ्रमण करने लगा।

गालवं तपसो योनिं दृष्ट्वा माहिष्मतीमनु।
समुत्पत्यानयच्छीघ्रं सप्तगोदावरं जलम्॥ १३७॥

उसने महिष्मती के समीप तपस्वियों के मूल गालव

को देखा और तुरन्त उनके पास जाकर शीघ्रता के साथ उन्हें सप्तगोदावरी नदी के समीप ले आया।

तत्र स्नात्वा विधानेन संप्राप्तो हाटकेश्वरम्।
ददृशे नन्दयन्तीं चं स्थितां देववतीमपि॥ १३८॥

वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके वह हाटकेश्वर पहुँच गया। वहाँ उसने दमयन्ती तथा देववती को स्थित देखा।

तं दृष्ट्वा गालवं चैव समुत्थायाभ्यवादयन्।
स चार्चिष्यन्महादेवं महर्षीनभ्यवादयत्।
ते चापि नृपतिश्रेष्ठास्तं संपूज्य तपोधनम्॥ १३९॥
प्रहर्षमतुलं गत्वा उपविष्टा यथासुखम्।
तेषूपविष्टेषु तदा वानरोपनिमन्त्रिताः॥ १४०॥
समायाता महात्मानो यक्षगन्धर्वदानवाः।
तानागतान् समीक्ष्यैव पुत्र्यस्ताः पृथुलोचनाः॥ १४१॥
स्नेहार्द्रनयनाः सर्वास्तदा सस्वजिरे पितॄन्।
नन्दयन्त्यादिका दृष्ट्वा सपितृका वरानना॥ १४२॥
सबाष्पनयना जाता विश्वकर्मसुता तदा।
अथ तामाह स मुनिः सत्यं सत्यध्वजो वचः॥ १४३॥

गालव को देखकर उन दोनों ने उठकर उनका अभिवादन किया। उन्होंने भी महादेव की अभ्यर्चना करके महर्षियों का अभिवादन किया। वे श्रेष्ठ राजागण भी उस तपस्वी का पूजन कर अत्यंत प्रसन्न मन से वहाँ आसीन हो गए। उनके बैठ जाने पर वानर के द्वारा आमन्त्रित महानुभाव यक्ष, गंधर्व और दानव वहाँ आ पहुँचे। आए हुए उन (महानुभावों) को देखकर विशालाक्षी (उनकी) पुत्रियों ने स्नेहवश आर्द्रनेत्र वाली होकर अपने पिताओं का आलिङ्गन किया। नन्दयन्ती आदि को अपने पिता के साथ देखकर वह शुभानना विश्व पुत्री चित्रांगदा के नेत्र आर्द्र हो गए। तब तपस्वी ऋतध्वज ने उसे ये सत्यवचन कहे।

मा विषादं कृथाः पुत्रि पिताऽयं तव वानरः।
सा तद्वचनमाकर्ण्य व्रीडोपहतचेतना॥ १४४॥

हे पुत्री! दुःखी मत होओ, यह वानर तुम्हारा पिता है। यह वचन सुनकर वह लज्जा से मूर्च्छित हो गई।

कथं तु विश्वकर्माऽसौ वानरत्वं गतोऽधुना।
दुष्पुत्र्यां मयि जातायां तस्मात्त्यक्षे कलेवरम्॥ १४५॥

यह विश्वकर्मा क्यों वानरत्व को प्राप्त हो गए हैं ? संभवतः मेरे जैसी अमंगल पुत्री के कारण ये वानर बन गये हैं, अतएव मुझे शरीर त्याग देना चाहिए!

इति संचिन्त्य मनसा ऋतध्वजमुवाच ह।
परित्रायस्व मां ब्रह्मन् पापोपहतचेतनाम्॥ १४६॥
पितृघ्नी मर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि।
अथोवाच मुनिस्तन्वीं मा विषादं कृथाधुना॥ १४७॥
भाव्यस्य नैव नाशोऽस्ति तन्मा त्याक्षीः कलेवरम्।
भविष्यति पिता तुभ्यं भूयोऽप्यमरवर्द्धकिः॥ १४८॥
जातोऽपत्ये घृताच्यां तु नात्र कार्या विचारणा।
इत्येवमुक्ते वचने मुनिना भावितात्मना॥ १४९॥
घृताची तां समभ्येत्य प्राह चित्राङ्गदां वचः।
पुत्रि त्यजस्व शोकं त्वं मासैर्दशभिरात्मज॥ १५०॥
भविष्यति पितुस्तुभ्यं मत्सकाशान्न संशयः।
इत्येवमुक्ता संहृष्टा बभौ चित्राङ्गदा तदा॥ १५१॥

अपने मन में इस प्रकार विचार करती हुई उसने ऋतध्वज से कहा— हे ब्राह्मण! पाप के द्वारा नष्ट चेतना वाली मेरी रक्षा कीजिए। मैं पितृघातक हूँ, अतः मैं मरना चाहती हूँ; इसलिये मुझे आज्ञा दीजिए। तब मुनि ने उस तन्वंगी को कहा— तुम अब विषाद मत करो! भवितव्यता का कभी नाश नहीं होता (होनी अवश्यंभावी होती है) इसलिये तुम्हें शरीर-त्याग नहीं करना चाहिए। तुम्हारे पिता पुनः देवशिल्पी होंगे, जब उन्हें घृताची से एक पुत्र उत्पन्न होगा; इस विषय में कोई संदेह नहीं है। तपस्या से पवित्र आत्मा वाले मुनि के द्वारा इस प्रकार कहने पर घृताची ने चित्रांगदा के पास आकर कहा - पुत्री! शोक छोड़ दो। दस महीने के भीतर ही तुम्हारे पिता का पुत्र मुझसे उत्पन्न होगा, इसमें संशय नहीं है। ऐसा कहने पर चित्रांगदा प्रसन्न हो गई।

प्रतीक्षन्ती सुचार्वङ्गी विवाहे पितृदर्शनम्।
सर्वास्ता अपि तावन्तं कालं सुतनुकन्यकाः॥ १५२॥
प्रत्यैक्षन्त विवाहं हि तस्या एव प्रियेप्सया।
ततो दशसु मासेषु समतीतेष्वथाप्सराः॥ १५३॥
तस्मिन् गोदावरीतीर्थे प्रसूता तनयं नलम्।
जातेऽपत्ये कपित्वाच्च विश्वकर्माऽप्यमुच्यत॥ १५४॥

वह सुन्दर अङ्गों वाली विवाह के समय तक अपने पिता के दर्शनों की आशा करने लगी। और वह अन्य सुन्दरियाँ, जो उसकी खुशी के लिये अत्यंत उत्सुक थीं— उस समय के बीच उसके विवाह की प्रतीक्षा करने लगीं। दस मास व्यतीत हो जाने पर अप्सरा ने गोदावरी तीर्थ में नल नामक एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के उत्पन्न होने पर विश्वकर्मा भी कपित्व से मुक्त हो गया।

समभ्येत्य प्रियां पुत्रीं पर्यष्वजत चादरात्।
ततः प्रीतेन मनसा सस्मार सुरवर्द्धकिः॥ १५५॥
सुराणामधिपं शक्रं सहैव सुरकिन्नरैः।
त्वष्ट्राऽथ संस्मृतः शक्रो मरुद्गणवृस्तदा॥ १५६॥
सुरैः सरुद्रैः संप्राप्तस्तत्तीर्थं हाटकाह्वयम्।
समायातेषु देवेषु गन्धर्वेष्वप्सरस्सु च॥ १५७॥
इन्द्रद्युम्नो मुनिश्रेष्ठमृतध्वजमुवाच ह।
जावालेर्दीयतां ब्रह्मन् सुता कन्दरमालिनः॥ १५८॥

देवशिल्पी ने अपनी प्रिया पुत्री के समीप जाकर स्नेहपूर्वक उसका आलिङ्गन किया। तदनन्तर प्रसन्न मन से उस ने सुरकिन्नरों सहित सुरपति इन्द्र का स्मरण किया। शिल्पी विश्वकर्मा के द्वारा स्मरण किये जाने पर इन्द्र मरुद्गण से घिरा हुआ, देवताओं तथा रुद्रों सहित हाटक तीर्थ पर आ पहुँचा। देवताओं, गन्धर्वो और अप्सराओं के वहाँ आने पर इन्द्रद्युम्न ने ऋषिश्रेष्ठ ऋतध्वज से कहा— हे ब्राह्मण! कन्दरमाली की पुत्री को जाबालि के लिये दीजिये।

गृह्णातु विधिवत्पाणिं दैतेय्यास्तनयस्तव।
नन्दयन्तीं च शकुनिः परिणेतुं स्वरूपवान्॥ १५९॥
ममेयं वेदवत्यस्तु त्वाष्ट्रेयी सुरथस्य च।
वाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मुनिर्मनुसुतं नृपम्॥ १६०॥
ततोऽनुचक्रुः संहृष्टा विवाहविधिमुत्तमम्।
ऋत्विजोऽभूद् गालवस्तु हुत्वा हव्यं विधानतः॥ १६१॥
ततोऽनुजह्नुस्तं हृष्टा विवाहविधिमुत्तमम्।
ऋत्विजो गालवाद्याश्च हुत्वा हव्यं विधानतः॥ १६०॥

आपका पुत्र विधिवत् दैत्यसुता का पाणिग्रहण करे तथा रूपवान् शकुनि नन्दयन्ती का परिणय करे। यह वेदवती मेरी तथा त्वष्ट्री की पुत्री (चित्रांगदा) सुरथ की पत्नी हो। प्रसन्नचित्त मुनि ने मनु-पुत्र नृप से कहा— अच्छा, ऐसा ही हो! अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्होंने विवाह की तैयारी की जिसमें गालव ने ऋत्विक होकर विधिपूर्वक विवाह की आहुति प्रदान की।

गायन्ते तत्र गन्धर्वा नृत्यन्तेऽप्सरसस्तथा।
आदौ जावालिनः पाणिर्गृहीतो दैत्यकन्यया॥ १६२॥

वहाँ गंधर्व गान कर रहे थे तथा अप्सराएँ नृत्य कर रहीं थीं। सर्वप्रथम जाबालि का दैत्यकन्या से पाणिग्रहण हुआ।

इन्द्रद्युम्नेन तदनु वेदवत्या विधानतः।
ततः शकुनिना पाणिर्गृहीतो यक्षकन्यया॥ १६३॥

इसके पश्चात् इन्द्रद्युम्न के साथ वेदवती का विधिवत् पाणिग्रहण हुआ। तदनन्तर शकुनि के साथ यक्षकन्या का पाणिग्रहण हुआ।

चित्राङ्गदायाः कल्याणि सुरथः पाणिमग्रहीत्।
एवं क्रमाद्विवाहस्तु निर्वृत्तस्तनुमध्यमे॥ १६४॥

हे कल्याणी! सुरथ ने चित्रांगदा का पाणिग्रहण किया। हे पतली कमर वाली! इस प्रकार क्रम से विवाह संपन्न हुए।

वृत्ते मुनिर्विवाहे तु शक्रादीन्प्राह दैवतान्।
अस्मिंस्तीर्थे भवद्भिस्तु सप्तगोदावरे सदा॥ १६५॥
स्थेयं विशेषतो मासमिमं माधवमुत्तमम्।
बाढमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा दिवं क्रमात्॥ १६६॥

विवाह संपन्न हो जाने पर मुनि ने इन्द्रादि देवों से कहा— यहाँ सप्तगोदावरी तीर्थ पर आप सब निवास करें। विशेष रूप से वैशाख के इस उत्तम मास में आप सब यहाँ अवश्य रहें। देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा; अच्छा और वे क्रमशः एक के बाद स्वर्गलोग को चले गये।

मुनयो मुनिमादाय सपुत्रं जग्मुरादरात्।
भार्याश्चादाय राजानः स्वं स्वं नगरमागताः॥ १६७॥

मुनिगण अपने तपस्वी पुत्र को लेकर लौट गए तथा सभी राजा अपनी पत्नियों के साथ अपने-अपने नगर को लौट गए।

प्रहृष्टाः सुखिनस्तस्थुः भुञ्जते विषयान् प्रियान्।
चित्राङ्गदायाः कल्याणि एवं वृत्तं पुरा किल।

तन्मां कमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे॥ १६८॥

वे अत्यंत प्रसन्नता के साथ सुखपूर्वक निवास करते हुए अनेक भोगों का उपभोग करने लगे। हे कल्याणी! यह चित्रांगदा का अतीत वृत्तांत है। इसलिए, हे सुन्दर कन्या! हे कमलनयनी! तुम मुझे आनंदित करो।

इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनु-
स्तां भूमिदेवस्य सुतां वरोरुम्।
स्तुवन्मृगाक्षीं मृदुना क्रमेण
सा चापि वाक्यं नृपतिं बभाषे॥ १६९॥

जब राजकुमार ने उस सुंदर जङ्घाओं वाली मृगाक्षी ब्राह्मणकन्या की प्रशंसा की तो उस कन्या ने राजा से क्रमशः कोमल शब्दों में इस प्रकार कहा—

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे
पञ्चषष्टितमोऽध्याय:॥ ६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्याय:

(दण्ड राजा का भस्म होना)

अरजा उवाच

नात्मानं तव दास्यामि बहुनोक्तेन किं तव।
रक्षन्ती भवतः शापादात्मानं च महीपते॥ १॥

अरजा से कहा— हे राजन्! अधिक कहने से क्या! मैं स्वयं को आप को समर्पित नहीं करूँगी, क्योंकि मैं आप को और स्वयं को शाप से बचाना चाहती हूँ।

प्रह्लाद उवाच

इत्थं विवदमानां तां भार्गवेन्द्रसुतां बलात्।
कामोपहतचित्तात्मा व्यध्वंसयत मन्दधीः॥ २॥

प्रह्लाद ने कहा— काम के द्वारा विनष्ट चेतना वाले उस मन्दबुद्धि ने इस प्रकार विवाद करती हुई उस शुक्रसुता का बलपूर्वक बलात्कार किया।

तां कृत्वा च्युतचारित्रां मदान्धः पृथिवीपतिः।
निश्चक्रामाश्रमात् तस्माद् गतश्च नगरं निजम्॥ ३॥

उसको चरित्रभ्रष्ट करके वह मदान्ध राजा उस आश्रम से निकल गया और अपने नगर की ओर चला गया।

साऽपि शुक्रसुता तन्वी अरजा रजसाप्लुता।
आश्रमादथ निर्गत्य बहिस्तस्थावधोमुखी॥ ४॥
चिन्तयन्ती स्वपितरं रुदती च मुहुर्मुहुः।
महाग्रहोपतप्तेव रोहिणी शशिनः प्रिया॥ ५॥

वह शुक्रसुता तन्वी अरजा भी रजस् से ओत-प्रोत हुई आश्रम से निकलकर सर झुकाकर बाहर बैठ गई। वह अपने पिता के विषय में सोचती हुई और बार-बार रोती हुई वहाँ वैसे ही बैठी थी जैसे शशि की प्रिया रोहिणी महाग्रह राहु से आक्रान्त होकर बैठती है।

ततो बहुतिथे काले समाप्ते यज्ञकर्मणि।
पातालादागमच्छुक्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः॥ ६॥

बहुत समय के पश्चात् यज्ञकर्म के समाप्त होने पर मुनि शुक्र पाताललोक से अपने आश्रम में आए।

आश्रमान्ते च ददृशे सुतां दैत्य रजस्वलाम्।
मेघलेखामिवाकाशे संध्यारागेण रञ्जिताम्॥ ७॥

हे दैत्य! वहाँ उन्होंने आश्रम के बाहर बैठी हुई अपनी रजस्वला पुत्री को देखा जो आकाश में सांध्यकालीन लालिमा से रञ्जित मेघमाला के समान लग रही थी।

तां दृष्ट्वा परिपप्रच्छ पुत्रि केनासि धर्षिता।
कः क्रीडति सरोषेण सममाशीविषेण हि॥ ८॥

उसको देखकर मुनि ने उससे पूछा— पुत्री! तुम्हारा शील किसने भंग किया है। कौन है जो विषधारी क्रोधित सर्प से खेलने का प्रयास कर रहा है?

कोऽद्यैव याम्यां नगरीं गमिष्यति सुदुर्मतिः।
यस्त्वां शुद्धसमाचारां विध्वंसयति पापकृत्॥ ९॥

वह कौन दुर्बुद्धि है जो आज ही यमपुरी जाना चाहता है जिस पापी ने निर्मलशीलचारिणी तुम्हारा शील भंग किया है?

ततः स्वपितरं दृष्ट्वा कम्पमाना पुनः पुनः।
रुदन्ती व्रीडयोपेता मन्दं मन्दमुवाच ह॥ १०॥

तदनन्तर अपने पिता को देखकर बार-बार कांपती और रोती हुई वह लज्जाग्रस्त अरजा धीमे-धीमे कहने लगी—

तव शिष्येण दण्डेन वार्यमाणेन चासकृत्।
बलादनाथा रुदती नीताऽहं वचनीयताम्॥ ११॥

आपके शिष्य दण्ड ने मेरे द्वारा पुनः पुनः रोके जाने पर भी अनाथ और रोती हुई मुझ अबला को बलपूर्वक इस लज्जास्पद स्थिति में पहुँचा दिया।

एतत् पुत्र्या वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ १२॥

इस प्रकार पुत्री के वचनों को सुनकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले मुनि आचमन से पवित्र हुये और बोले—

यस्मात् तेनाविनीतेन मत्तो ह्यभयमुत्तमम्।
गौरवं च तिरस्कृत्य च्युतधर्माऽरजा कृता॥ १३॥
तस्मात् सराष्ट्रः सबलः सभृत्यो वाहनैः सह।
सप्तरात्रान्तराद् भस्म ग्राववृष्ट्या भविष्यति॥ १४॥

क्योंकि उस विनयविहीन ने मेरे द्वारा आश्वासित निर्भयता तथा प्रदर्शित आदर का तिरस्कार करके मेरी पुत्री अरजा का शील भंग किया है। इसलिये वह अपने राष्ट्र, सेना, परिचारकगण तथा वाहनों सहित सात रातों के भीतर ही कंकड़ियों की वृष्टि से भस्मसात् हो जाएगा।

इत्येवमुक्त्वा मुनिपुङ्गवोऽसौ
शप्त्वा स दण्डं स्वसुतामुवाच।
त्वं पापमोक्षार्थमिहैव पुत्रि
तिष्ठस्व कल्याणी तपश्चरन्ती॥ १५॥

उन मुनिश्रेष्ठ ने इस प्रकार दण्ड को शाप देकर अपनी पुत्री से कहा— हे पुत्री! हे कल्याणी! इस पाप से मुक्ति पाने के लिए तुम यहीं रहकर तपस्या करो!

शप्त्वेत्थं भगवान् शुक्रो दण्डमिक्ष्वाकुनन्दनम्।
जगाम शिष्यसहितः पातालं दानवालयम्॥ १६॥

इस प्रकार से ईक्ष्वाकुनंदन दण्ड को शाप देकर भगवान् शुक्र अपने शिष्यों सहित दानवलोक पाताल को चले गए।

दण्डोऽपि भस्मसाद्भूतः सराष्ट्रबलवाहनः।
महता ग्राववर्षेण सप्तरात्रान्तरे तदा॥ १७॥

भयंकर उपलवर्षा से दण्ड भी अपने राष्ट्रबल तथा वाहन सहित भस्मसात् हो गया।

एवं तद्दण्डकारण्यं परित्यज्यन्ति देवताः।
आलयं राक्षसानां तु कृतं देवेन शंभुना॥ १८॥

इसी कारण देवतागण उस दण्डकारण्य (दण्ड का अरण्य) का परित्याग करते हैं। देव शम्भु ने इसीलिये इस अरण्य को राक्षसों का निवासस्थल बना दिया है।

एवं परकलत्राणि नयन्ति सुकृतीनपि।
भस्मभूतान् प्राकृतांस्तु महान्तं च पराभवम्॥ १९॥

इस प्रकार वरस्त्रियाँ सज्जन व्यक्तियों को भी भस्मसात् कर देती हैं तथा उनके महान् पराभव का कारण हो जाती हैं।

तस्मादन्धक दुर्बुद्धिर्न कार्या भवता त्वियम्।
प्राकृताऽपि दहेन्नारी किमुताहोद्रिनन्दिनी॥ २०॥

हे अन्धक! इस कारण तुम्हें इस प्रकार की दुर्बद्धि नहीं करनी चाहिये। साधारण नारी भी जलाकर भस्मसात् कर सकती है; फिर अद्रिसुता गौरी का तो कहना ही क्या!

शङ्करोऽपि न दैत्येश शक्यो जेतुं सुरासुरैः।
द्रष्टुमप्यमितौजस्कः किमु योधयितुं रणे॥ २१॥

हे दैत्येश! शिव को सुर अथवा असुर कोई भी जीत नहीं सकता। वे असीम बलशाली हैं। उनके सम्मुख कोई ठहर भी नहीं सकता। फिर युद्ध में उनसे मुकाबला तो करना ही क्या!

इत्येवमुक्ते वचने क्रुद्धस्ताम्रेक्षणः श्वसन्।
वाक्यमाह महातेजाः प्रह्लादं चान्धकासुरः॥ २२॥

इस प्रकार कहे जाने पर क्रोधित व रक्त नेत्रों वाले उस महातेजस्वी अन्धकासुर ने निश्वास लेकर प्रह्लाद से कहा—

पुलस्त्य उवाच–

किं ममासौ रणे योद्धुं शक्तस्त्रिणयनोऽसुर।
एकाकी धर्मरहितो भस्मारुणितविग्रहः॥ २३॥

हे दैत्य! वह एकाकी, त्रिनेत्रधारी, अपवित्र तथा भस्म से रक्त हुये शरीर वाला शिव क्या मुझसे युद्ध करने में समर्थ है?

नान्धको बिभियादिन्द्रान्नामरेभ्यः कथंचन।
स कथं वृषपत्राक्षाद् बिभेति स्त्रीमुखेक्षकात्॥ २४॥

अन्धक इन्द्र से अथवा किसी भी देवताओं से कभी

नहीं डर सकता। फिर वह वृषपत्र के समान नेत्रों वाले तथा स्त्री के मुख की ओर देखने वाले शङ्कर से क्यों डरेगा?

तच्छुत्वाऽस्य वचो घोरं प्रह्लादः प्राह नारद।
न सम्यगुक्तं भवता विरुद्धं धर्मतोऽर्थतः॥२५॥

हे नारद! उसके भीषण वचनों को सुनकर प्रह्लाद ने कहा— तुमने ठीक नहीं कहा तथा (तुम्हारे वचन) धर्म और अर्थ दोनों से ही विरुद्ध है।

हुताशनपतङ्गाभ्यां सिंहक्रोष्टुकयोरिव।
गजेन्द्रमशकाभ्यां च रुक्मपाषाणयोरिव॥२६॥
एतेषामेभिरुदितं यावदन्तरमन्धक।
तावदेवान्तरं चारि: भवतो वा हरस्य च॥२७॥

हे अन्धक! जितना अग्नि और पतङ्गे में, जितना सिंह और श्रृगाल में, जितना हाथी और मच्छर में तथा जितना स्वर्ण और पत्थर में अन्तर कहा गया है, तुम्हारे और शिव के बीच में उतना ही अन्तर है।

वारितोऽसि मया वीर भूयो भूयश्च वार्यसे।
श्रृणुष्व वाक्यं देवर्षेरसितस्य महात्मनः॥२८॥

हे वीर! मैं तुमको पहले ही सावधान कर चुका हूँ। मैं तुम्हें फिर बार-बार सावधान करता हूँ। महात्मा देवर्षि असित के वचनों को सुनो—

यो धर्मशीलो जितमानरोषो
विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जी
न तस्य लोके भयमस्ति किंचित्॥२९॥

जो धर्मपरायण है, जो क्रोध और अहंकार पर विजय करने वाला है, जो विद्या से विनयशील हो गया है, जो किसी को संताप देने वाला है तथा जो अपनी पत्नी से ही संतुष्ट रहकर परस्त्री का वर्जन करता है, उसको इस लोक में कोई भय नहीं है।

यो धर्महीनः कलहप्रियः सदा
परोपतापी श्रुतिशास्त्रवर्जितः।
परार्थदारेप्सुरवर्णसंगमी
सुखं न विन्देत परत्र चेह॥३०॥

जो धर्महीन है, कलहप्रिय है, सदैव दूसरों को संताप देने वाला है, वेद-शास्त्रों से रहित है, दूसरों की स्त्री तथा वैभव का इच्छुक है तथा वर्णसंकर है वह इस लोक और परलोक कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

धर्मान्वितोऽभूद् भगवान् प्रभाकरः
संत्यक्तरोषश्च मुनिः स वारुणिः।
विद्याऽन्वितोऽभून्मनुरर्कपुत्रः
स्वदारसंतुष्टमनास्त्वगस्त्यः॥३१॥

भगवान् सूर्य धर्मपरायण थे, मुनि वारुणि क्रोध त्यागी थे, सूर्यपुत्र मनु विद्यान्वित थे तथा अगस्त्य अपनी पत्नी से संतुष्ट मन वाले थे।

एतानि पुण्यानि कृतान्यमीभि-
र्मया निबद्धानि कुलक्रमोक्त्या।
तेजोन्विताः शापवरक्षमाश्च
जातास्तु सर्वे सुरसिद्धपूज्याः॥३२॥

इन सब ने ये पुण्य कार्य किये जिसका कुलक्रम से मैंने वर्णन किया है। इन्हीं पुण्यकृत्यों से वे तेजस्वी हुये तथा शाप एवं वर देने में सक्षम हुए और समस्त देवों और सिद्धों के पूजनीय हुए।

अधर्मयुक्तोऽङ्गसुतो बभूव
विभुश्च नित्यं कलहप्रियोऽभूत्।
परोपतापी नमुचिर्दुरात्मा
पराबलेप्सुर्नहुषश्च राजा॥३३॥

अङ्गपुत्र अधर्मपरायण था, विभु अत्यन्त कलहप्रिय था, दुष्ट नमुचि परोपतापी था तथा राजा नहुष दूसरों की पत्नी का इच्छुक था।

परार्थलिप्सुर्दितिजो हिरण्यदृक्
मूर्खस्तु तस्याप्यनुजः सुदुर्मतिः।
अवर्णसङ्गी यदुरुत्तमौजा
एते विनष्टास्त्वनयात् पुरा हि॥३४॥

दितिपुत्र हिरण्याक्ष दूसरों की धनसंपति का लालची था, उसका अनुज यदु दुर्बद्धि, मूर्ख तथा अत्यन्त तेजस्वी था जो परवर्ण का संग करता था। प्राचीन काल में ये सभी अपनी दुर्नीति के कारण नष्ट हो गए।

तस्माद् धर्मो न संत्याज्यो धर्मो हि परमा गतिः।
धर्महीना नरा यान्ति रौरवं नरकं महत्॥ ३५॥

इसलिये धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म ही परम गति है। धर्महीन व्यक्ति रौरव नामक नरक को प्राप्त होता है।

धर्मस्तु गदितः पुंभिस्तारणे दिवि चेह च।
पतनाय तथाऽधर्म इह लोके परत्र च॥ ३६॥

श्रेष्ठ व्यक्तियों ने धर्म को ही इहलोक और परलोक दोनों में तारक तथा अधर्म को ही इस लोक और परलोक दोनों में पतन का हेतु कहा है।

त्याज्यं धर्मान्वितैर्नित्यं परदारोपसेवनम्।
नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम्।
सर्वेषामपि वर्णानामेष धर्मो ध्रुवोऽन्धक॥ ३७॥

धर्मपरायण व्यक्तियों को परदारोपसेवन का नित्य त्याग करना चाहिए; क्योंकि परस्त्रीसेवन इक्कीस नरकों में ले जाने वाला कर्म होता है। हे अन्धक! समस्त वर्णो का यही नित्य और सनातन धर्म है।

परार्थपरदारेषु यदा वाञ्छां करिष्यति।
स याति नरकं घोरं रौरवं बहुलाः समाः॥ ३८॥

जो परदारोपसेवन की इच्छा करेगा वह बहुत समय तक घोर रौरव नामक नरक में जाता है।

एवं पुराऽसुरपते देवर्षिरसितोऽव्ययः।
प्राह धर्मव्यवस्थानं खगेन्द्रायारुणाय हि॥ ३९॥

हे असुरपति! इस तरह प्राचीन काल में अव्यय देवर्षि असित ने खगेन्द्र तथा अरुण के लिये धर्मव्यवस्था का व्याख्यान किया था।

तस्मात् सुदूरतो वर्जेत् परदारान् विचक्षणः।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥ ४०॥

इस कारण विचक्षण व्यक्ति को दूर से ही परस्त्री का वर्जन करना चाहिये; क्योंकि परस्त्रियाँ मन्दबुद्धि व्यक्ति को पराभव प्राप्त करा देती हैं।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने प्रह्लादं प्राह चान्धकः।
भवान् धर्मपरस्त्वेको नाहं धर्मं समाचरे॥ ४१॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार कहे जाने पर अन्धक ने प्रह्लाद से कहा— एक आप ही धर्मपरायण हैं। मैं धर्म का आचरण नहीं करता।

इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादमन्धकः प्राह शम्बरम्।
गच्छ शम्बर शैलेन्द्रं मन्दरं वद शङ्करम्॥ ४२॥

प्रह्लाद को इस प्रकार के वचन कहकर अन्धक ने शम्बर से कहा— हे शम्बर! तुम मन्दर पर्वत में जाओ और शङ्कर से कहो—

भिक्षो किमर्थं शैलेन्द्रं स्वर्गोपम्यं सकन्दरम्।
परिभुञ्जसि केनाद्य तव दत्तो वदस्व माम्॥ ४३॥

हे भिक्षु! सुंदर कंदराओं से युक्त स्वर्ग के समान रमणीय शैलेन्द्र (मंदर) का सेवन तुम कैसे कर रहे हो? तुम्हें यह किसने दिया? मुझे कहो।

तिष्ठन्ति शासने मह्यं देवाः शक्रपुरोगमाः।
तत् किमर्थं निवससे मामनादृत्य मन्दरे॥ ४४॥

इन्द्रादि के अनुयायी समस्त देवतागण मेरे शासन में रहते हैं। फिर तुम मेरी अपेक्षा करके मन्दर पर्वत पर क्यों निवास कर रहे हो?

यदीष्टस्तव शैलेन्द्रः क्रियतां वचनं मम।
येयं हि भवतः पत्नी सा मे शीघ्रं प्रदीयताम्॥ ४५॥

यदि यह शैलेन्द्र तुम्हें अभीष्ट है तो मेरी आज्ञा का पालन करो; और यह जो तुम्हारी पत्नी है। उसे शीघ्र ही मुझे सौंप दो।

इत्युक्तः स तदा तेन शम्बरो मन्दरं द्रुतम्।
जगाम तत्र यत्रास्ते सह देव्या पिनाकधृक्॥ ४६॥

उस (अन्धक) के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह शम्बर तीव्र गति से मन्दर की ओर जा पहुँचा जहाँ पिनाकधारी शिव देवी पार्वती के साथ निवास कर रहे थे।

गत्वोवाचान्धकवचो याथातथ्यं दनोः सुतः।
तमुत्तरं हरः प्राह शृण्वत्या गिरिकन्यया॥ ४७॥

वहाँ जाकर उस दानवपुत्र ने अन्धक के वचनों को यथावत् प्रकार से कह दिया। शिव ने उसे उत्तर दिया। गिरिजा उस वार्तालाप को सुनती रहीं।

ममायं मन्दरो दत्तः सहस्राक्षेण धीमता।
तन्न शक्नोभ्यहं त्यक्तुं विनाज्ञां वृत्रवैरिणः॥४८॥

बुद्धिमान् सहस्राक्ष इन्द्र ने यह मन्दर मुझे दिया है। अतएव वृत्रशत्रु की आज्ञा के बिना मैं इसे नहीं छोड़ सकता।

यच्चाब्रवीद् दीयतां मे गिरिपुत्रीति दानवः।
तदेषा यातु स्वं कामं नाहं वारयितुं क्षमः॥४९॥

और जो दानव ने कहा है कि गिरिजा उसे सौंप दो तो मेरा कहना है कि पार्वती उसके पास जाने के लिये स्वतन्त्र है—मैं इन्हें नहीं रोक सकता!

ततोऽब्रवीत् गिरिसुता शम्बरं मुनिसत्तम।
ब्रूहि गत्वाऽन्धकं वीर मम वाक्यं विपश्चितम्॥५०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब गिरिजा ने शम्बर से कहा— हे वीर! जाकर मेरा यह वाक्य बुद्धिमान् अन्धक से कहो—

अहं पताका संग्रामे भवानीश्च देविनौ।
प्राणद्यूतं परिस्तीर्य यो जेष्यति स लप्स्यते॥५१॥

मैं युद्ध में विजयपताका हूँ। तुम और भगवान् शङ्कर जीवनरूपी-पट्ट पर जुआरी हो। तुम दोनों में से जो जीतेगा वही मुझे प्राप्त करेगा।

इत्येवमुक्तो मतिमान् शम्बरोऽन्धकमागमत्।
समागम्याब्रवीद् वाक्यं शर्वगौर्योश्च भाषितम्॥५२॥

इस प्रकार कहे जाने पर वह बुद्धिमान् शम्बर अन्धक के पास आया और उससे शिव और गौरी के द्वारा कहे वचन बोला—

तच्छ्रुत्वा दानवपतिः क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन्।
समाहूयाब्रवीद् वाक्यं दुर्योधनमिदं वचः॥५३॥

यह सुनकर क्रोध से लाल नेत्रों वाले उस दानवपति ने श्वास लिया और दुर्योधन को बुलाकर इस प्रकार कहा—

गच्छ शीघ्रं महावाहो भेरीं सान्नाहिकीं दृढाम्।
ताडयस्व सुविश्रब्धं दुःशीलामिव योषितम्॥५४॥

हे महाबाहु! शीघ्र जाओ और निःशंक होकर युद्ध के नगाड़े को उसी प्रकार दृढ़ता से पीटो जैसे दुश्चरित्र स्त्री को पीटा जाता है।

समादिष्टोन्धकेनाथ भेरीं दुर्योधनो बलात्।
ताडयामास वेगेन यथाप्राणेन भूयसा॥५५॥

अन्धक के द्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त करके दुर्योधन ने यथासंभव शक्ति से बलपूर्वक युद्धभेरी को बजाया।

सा ताडिता बलवता भेरी दुर्योधनेन हि।
सत्वरं भैरवं रावं रुराव सुरभी यथा॥५६॥

बलशाली दुर्योधन के द्वारा ताडित वह भेरी भयंकर तीव्र स्वर से सुरभि के समान बज उठी।

तस्यास्तं स्वरमाकर्ण्य सर्व एव महासुराः।
समायाताः सभां तूर्णं किमेतदिति वादिनः॥५७॥

उस भेरी के स्वर को सुनकर समस्त महासुर तुरन्त सभा में एकत्रित हो गए और कहने लगे— यह क्या है?

याथातथ्यं च तान् सर्वानाह सेनापतिर्बली।
ते चापि वलिनां श्रेष्ठाः सन्नद्धा युद्धकाङ्क्षिणः॥५८॥

बलशाली सेनापति ने उन्हें सब यथावत् बता दिया। वे बलशालियों में श्रेष्ठ महासुरगण युद्धाकांक्षी होकर युद्ध के लिये तैयार हो गए।

सहान्धका निर्ययुस्ते गजैरुष्ट्रैर्हयै रथैः।
अन्धको रथमास्थाय पञ्चनल्वप्रमाणतः॥५९॥

त्र्यम्बकं स पराजेतुं कृतबुद्धिर्विनिर्ययौ।
जम्भः कुजम्भो हुण्डश्च तुहुण्डः शम्बरो बलिः॥६०॥

अन्धक के साथ वे सब हाथी, ऊँट, घोड़ों और रथों पर निकल पड़े। अन्धक पञ्चनल्व प्रमाण वाले रथ में बैठकर शिव को परास्त करने का निश्चय करके चल पड़ा। उसके साथ जम्भ, कुजम्भ, हुण्ड, तुहुण्ड, शम्बर और बलि थे।

बाणः कार्तस्वरो हस्ती सूर्यशत्रुर्महोदरः।
अयः शङ्कुः शिबिः शाल्वो वृषपर्वा विरोचनः॥६१

उसके साथ बाण, कार्तस्वर, हस्ती, सूर्यशत्रु, महोदर, अयःशंकु, शिवि, शाल्व, वृषपर्वा तथा विरोचन भी थे।

हयग्रीवः कालनेमिः संह्लादः कालनाशनः।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्॥६२॥

उसके साथ हयग्रीव, कालनेमि, संह्लाद, कालनाशन; शरभ, शलभ तथा शक्तिशाली विप्रचित्ति भी चल रहे थे।

दुर्योधनश्च पाकश्च विपाकः कालशम्बरौ।
एते चान्ये च बहवो महावीर्या महाबलाः।
प्रजग्मुरुत्सुका योद्धुं नानायुधधरा रणे॥६३॥

दुर्योधन, पाक और विपाक, काल और शम्बर, ये सब तथा अन्य अनेक महाबलशाली और महातेजस्वी योद्धागण विविध प्रकार के अस्त्रों को धारण करके युद्ध के लिये तत्पर होकर चल पड़े।

इत्थं दुरात्मा दनुसैन्यपाल-
स्तदान्धको योद्धुमना हरेण।
महाचलं मन्दरमभ्युपेयिवान्
स कालपाशावसितो हि मन्दधीः॥ ६४॥

इस प्रकार वह दानवसेनापति दुरात्मा अन्धक मन्दबुद्धि तथा कालपाश के वश में होकर शिव से युद्ध करने का निश्चय करके महान् पर्वत मन्दर की ओर चल पड़ा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे अन्धकसैन्यनिर्गमनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

(सदाशिव का दर्शन)

पुलस्त्य उवाच

हरोऽपि शम्बरे याते समाहूयाथ नन्दिनम्।
प्राहामन्त्रय शैलादे ये स्थितास्तव शासने॥ १॥

शम्बर के जाने के बाद शिव ने भी नन्दी को बुलाकर कहा— हे शैलादि! जो भी तुम्हारे अधीन हैं उन सब को बुलाओ।

ततो महेशवचनान्नन्दी तूर्णतरं गतः।
उपस्पृश्य जलं श्रीमान् सस्मार गणनायकान्॥ २॥

शिव की आज्ञा प्राप्त करके नन्दी अत्यंत तीव्रता से चले गए। तदनन्तर जल से आचमन करके उस श्रीमान् ने गणनायकों का स्मरण किया।

नन्दिना संस्मृताः सर्वे गणनाथाः सहस्रशः।
समुत्पत्य त्वरायुक्ताः प्रणतास्त्रिदशेश्वरम्॥ ३॥

नन्दी के द्वारा संस्मृत उन सब गणनायकों ने सहस्रों की संख्या में अत्यंत शीघ्रता से आकर सुरपति को नमस्कार किया।

आगतांश्च गणान्नन्दी कृताञ्जलिपुटोऽव्ययः।
सर्वान् निवेदयामास शङ्कराय महात्मने॥ ४॥

अक्षय नन्दी ने हाथ जोड़कर आये हुये समस्त गणों को महानुभाव शङ्कर के समक्ष निवेदित किया।

नन्द्युवाच

यानेतान् पश्यसे शंभो त्रिनेत्राञ्जटिलाञ्शुचीन्।
एते रुद्रा इति ख्याताः कोट्य एकादशैव तु॥ ५॥

नन्दी ने कहा—हे शंभु! ये जो तीन नेत्रों वाले, जटाधारी तथा पवित्र गणों को आप देख रहे हैं, ये रुद्र के नाम से जाने जाते हैं। ये संख्या में ग्यारह करोड़ हैं।

वानरास्यान् पश्यसे यान् शार्दूलसमविक्रमान्।
एतेषां द्वारपालास्ते मन्नामानो यशोधनाः॥ ६॥

आप व्याघ्र के समान मुख और पराक्रम वाले जिन व्यक्तियों को देख रहे हैं, वे इन रुद्रों के द्वारपाल हैं। वे मेरा नाम धारण करते हैं और यशोधनी हैं।

षण्मुखान् पश्यसे यांश्च शक्तिपाणीञ्शिखिध्वजान्।
षट् च षष्टिस्तथा कोट्यः स्कन्दनाम्नः कुमारकान्॥ ७॥

जिन छः मुख वाले व्यक्तियों को आप देख रहे हैं जिन्होंने हाथ में शक्ति धारण कर रखी है तथा मोर की ध्वजा वाले हैं, वे छयासठ करोड़ संख्या में हैं। ये स्कन्द नामक कुमार हैं।

एतावत्यस्तथा कोट्यः शाखा नाम षडाननाः।
विशाखास्तावदेवोक्ता नैगमेयाश्च शङ्कर॥ ८॥

हे शिव! शाखा नामक षडानन भी इतनी ही संख्या (छयासठ करोड़) वाले हैं। विशाखा तथा नैगमेय भी संख्या में इतने ही हैं।

सप्तकोटिशतं शंभो अमी वै प्रमथोत्तमाः।
एकैकं प्रति देवेश तावत्यो ह्यपि मातरः॥ ९॥

हे शंभु! ये जो श्रेष्ठ प्रमथ हैं, वे संख्या में सात सौ करोड़ हैं; तथा हे देवेश! प्रत्येक प्रमथ की एक-एक माता होने से उनकी भी संख्या उतनी ही है।

भस्मारुणितदेहाश्च त्रिनेत्राः शूलपाणयः।
एते शैवा इति प्रोक्तास्तव भक्ता गणेश्वराः॥ १०॥

भस्म से रंजित देह वाले, त्रिनेत्रधारी तथा शूलपाणि— ये सब शैव कहे जाते हैं। ये आपके भक्त तथा गणेश्वर हैं।

तथा पाशुपताश्चान्ये भस्मप्रहरणा विभो।

एते गणास्त्वसंख्याता: साहायार्थं समागता:॥ ११॥

हे सर्वव्यापक प्रभु! भस्म को आयुध रूप में धारण करने वाले, पाशुपत नामक ये गण असंख्य हैं। ये सहायता के लिये यहाँ आ पहुँचे हैं।

पिनाकधारिणो रौद्रा गणा: कालमुखापरे।

तव भक्ता: समायाता जटामण्डलिनोद्धुता॥ १२॥

कालमुख नामक आठ अन्य गण जो पिनाकधारी, अत्यंत भयंकर, जटाधारी तथा आपके अद्भुत भक्त हैं, वे भी यहाँ आ पहुँचे हैं।

खट्वाङ्गयोधिनो वीरा रक्तचर्मसमावृता:।

इमे प्राप्ता गणा योद्धुं महाव्रतिन उत्तमा:॥ १३॥

खट्वाङ्ग नामक आयुध को धारण करने वाले, वीर रक्तचर्मधारी तथा युद्ध के लिए अत्यंत तत्पर उत्तम गण भी आ पहुँचे हैं।

दिग्वाससो मौनिनश्च घण्टाप्रहरणास्तथा।

निराश्रया नाम गणा: समायाता जगद्गुरो॥ १४॥

हे जगद्गुरु! दिगम्बर, मौन व्रतधारी तथा घण्टा को आयुध के रूप में धारण वाले ये निराश्रय नामक गण भी आ पहुँचे हैं।

सार्धद्विनेत्रा: पद्माक्षा: श्रीवत्साङ्कितवक्षस:।

समायाता: खगारूढा वृषभध्वजिनोऽव्यया:॥ १५॥

ढाई आँख वाले, कमल के समान नेत्रों वाले, श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल वाले, खगारूढ़, वृषभध्वज, अव्यय ये दूसरे गण भी आ पहुँचे हैं।

महापाशुपता नाम चक्रशूलधरास्तथा।

भैरवो विष्णुना सार्द्धमभेदेनार्चितो हि यै:॥ १६॥

चक्र एवं त्रिशूल धारण करने वाले ये महापशुपत नाम से जाने जाते हैं। मैं विष्णु के साथ-साथ भैरव की भी समान भाव से अर्चना करते हैं।

इमे मृगेन्द्रवदना: शूलबाणधनुर्धरा:।

गणास्त्वद्रोमसंभूता वीरभद्रपुरोगमा:॥ १७॥

सिंह, मुखवाले, शूल के समान बाण तथा धनुष धारण करने वाले, वीरभद्र के अनुयायी ये गण आपके रोम से उत्पन्न हैं।

एते चान्ये च बहव: शतशोऽथ सहस्रश:।

साहायार्थं तवायाता यथा प्रीत्यादिशस्व तान्॥ १८॥

ये सब और अन्य बहुत से सैकड़ों हजारों गण आपकी सहायता के लिए आए हैं। इनको इच्छानुसार आज्ञा दीजिए।

ततोऽभ्येत्य गणा: सर्वे प्रणेमुर्वृषभध्वजम्।

तान् करेणैव भगवान् समाश्वास्योपवेशयत्॥ १९॥

तदनन्तर वहाँ पहुँचकर समस्त गणों ने वृषभध्वज को प्रणाम किया। भगवान् शिव ने हाथ से ही उन्हें आशीर्वाद दिया और उन सबको बिठाया।

महापाशुपतान् दृष्ट्वा समुत्थाय महेश्वर:।

संपरिष्वजताध्यक्षांस्ते प्रणेमुर्महेश्वरम्॥ २०॥

महापाशुपतों को देखकर शिव ने उठकर उनके अध्यक्षों का आलिङ्गन किया। उन्होंने भी शिव को प्रणाम किया।

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा सर्वे गणेश्वरा:।

सुचिरं विस्मिताक्षाश्च वैलक्ष्यमगमत् परम्॥ २१॥

उस अत्यधिक अद्भुत दृश्य को देखकर समस्त गणेश्वर चिरकाल तक विस्मित नेत्रों वाले होकर अत्यधिक अचम्भित हुए।

विस्मिताक्षान् गणान् दृष्ट्वा शैलादिर्योगिनां वर:।

प्राह प्रहस्य देवेशं शूलपाणिं गणाधिपम्॥ २२॥

विस्मित नेत्र गणों को देखकर योगिश्रेष्ठ शैलादि ने हंसते हुये गणाधिपति शूलपाणि देवेश शिव से कहा—

विस्मितामि गणा देव सर्व एव महेश्वर।

महापाशुपतानां हि यत् त्वयालिङ्गनं कृतम्॥ २३॥

हे देव! सब के स्वामी! यह सब गण अत्यंत विस्मित हैं जो कि आपने इन महापाशुपतों का आलिङ्गन किया है।

तदेतेषां महादेव स्फुटं त्रैलोक्यविन्दकम्।

रूपं ज्ञानं विवेकं च वदस्व स्वेच्छया विभो॥ २४॥

हे विभु! हे महादेव! इनके प्रकट त्रैलोक्याभिज्ञात रूप, ज्ञान और विवेक के बारे में इच्छापूर्वक बताइये!

प्रमथाधिपतेर्वाक्यं विदित्वा भूतभावन:।

बभाषे तान् गणान् सर्वान् भावाभावविचारिण:॥ २५॥

प्रमथाधिपति के वाक्यगत अभिप्राय को जानकर भूतभावन भगवान् शिव भाव तथा अभाव का विचार करने वाले उन समस्त गणों से बोले—

रुद्र उवाच

भवद्भिर्भक्तिसंयुक्तैर्हरो भावेन पूजितः।
अहंकारविमूढैश्च निन्दद्भिर्वैष्णवं पदम्॥ २६॥

रुद्र ने कहा— आप सब भक्ति से ओतप्रोत होकर अत्यंत भावपूर्वक शिव की पूजा करते हैं; परंतु अहंकार के द्वारा विमूढ़ व्यक्ति ही विष्णु के चरणों की निन्दा करते हैं।

तेनाज्ञानेन भवतोऽनादृत्यानुविरोधिता।
योऽहं स भगवान् विष्णुर्विष्णुर्यः सोऽहमव्ययः॥ २७॥

उस अज्ञान के कारण ही अनादरपूर्वक आपका विरोध किया जाता है। जो मैं हूँ वह भगवान् विष्णु है तथा जो विष्णु हैं वह अव्यय मैं हूँ।

नावयोर्वै वै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता।
तदमीभिर्नरव्याघ्रैर्भक्तिभावयुतैर्गणैः॥ २८॥
यथाहं वै परिज्ञातो न भवद्भिस्तथा हरिः।
येनाहं निन्दितो नित्यं भवद्भिर्मूढबुद्धिभिः॥ २९॥
तेन ज्ञानं हि वै नष्टं नातस्त्वालिङ्गिता मया।
इत्येवमुक्ते वचने गणाः प्रोचुर्महेश्वरम्॥ ३०॥

हम दोनों में कोई भेद नहीं है। एक ही मूर्ति दो रूप में से स्थित हैं। तो भक्तिभाव से युक्त गुणों वाले इन नरसिंहों ने जिस प्रकार मुझे जाना उस प्रकार आप लोगों ने नहीं, आप मूढ़ बुद्धि वालों ने नित्य मेरी निन्दा की। क्योंकि आप का ज्ञान विनष्ट हो गया है इसलिए मेरे द्वारा आप का आलिङ्गन नहीं किया गया। इस प्रकार कहने पर गणों ने शिव से कहा—

कथं भवान्यथैक्येन संस्थितोऽस्ति जनार्दनः।
भवान् हि निर्मलः शुद्धः शान्तः शुक्लो निरञ्जनः॥
स चाप्यञ्जनसङ्काशः कथं तेनेह युज्यते।
तेषां वचनमर्थाढ्यं श्रुत्वा जीमूतवाहनः॥ ३२॥
विहस्य मेघगम्भीरं गणानिदमुवाच ह।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये स्वयशोवर्द्धनं वचः॥ ३३॥

आप और जनार्दन विष्णु एकमूर्ति होकर कैसे स्थित हैं? आप तो निर्मल, शान्त, शुद्ध, शुक्लवर्ण तथा अञ्जनरहित (कालेपन से परे) हैं जबकि विष्णु अंजन के समान श्यामवर्ण हैं इसलिए यह कैसे उचित हैं? उनके सारगर्भित वचनों को सुनकर जीमूतवाहन शिव हँस दिये और गणों से मेघ के समान गंभीर वचनों साथ इस प्रकार बोले- सुनिये; मैं आप सब को अपना यशवर्धक वृत्तांत सुनाता हूँ।

न त्वेव योग्या यूयं हि महाज्ञानस्य कर्हिचित्।
अपवादभयाद्गुह्यं भवतां हि प्रकाशये॥ ३४॥

यद्यपि आप सब इस महान् ज्ञान के कदापि योग्य नहीं हूँ; परन्तु अपवाद के भय से मैं यह गुह्य ज्ञान आप को बताता हूँ।

प्रियध्वमपि चैतेन यन्मचित्तास्तु नित्यशः।
एकरूपात्मकं देहं कुरुध्वं यत्नमास्थिताः॥ ३५॥

इस बात से आप सब प्रसन्न हों कि आप का चित्त नित्यरूप से मुझ में संलग्न हैं; किन्तु यत्नपूर्वक आचरण करके आप सब शारीरिक रूप से भी मुझ में संलग्न हो जाएँ।

पयसा हविषाद्यैश्च स्नपनेन प्रयत्नतः।
चन्दनादिभिरेकाग्रैर्न मे प्रीतिः प्रजायते॥ ३६॥

न तो दूध तथा हविषादि से प्रयत्नपूर्वक कराये गये स्नान से मैं प्रसन्न होता हूँ और न ही चन्दनादि के लेंपन से।

यत्नात्क्रकचमादाय छिन्दध्वं मम विग्रहम्।
नरकार्हा भवद्भक्ता रक्षामि स्वयशोऽर्थतः॥ ३७॥

कुल्हाड़ी लाओ और प्रयत्नपूर्वक मेरे शरीर के टुकड़े कर डालो फिर भी मैं नरक के योग्य अपने भक्तों की भी अपने यश के लिए रक्षा करता हूँ।

माऽयं वदिष्यते लोको महान्तमपवादिनम्।
यथा पतन्ति नरके हरभक्तास्तपस्विनः॥ ३८॥

क्योंकि यह लोक मुझे इस प्रकार का महान् अपवादी न कहे कि तपस्वी शङ्कर के भक्त नरक में गिर रहे हैं।

व्रजन्ति नरकं घोरं इत्येवं परिवादिनः।
अतोऽर्थं न क्षिपाम्यद्य भवतो नरकेऽद्भुते॥ ३९॥

इस प्रकार की भर्त्सना करने वाले इस तरह से घोर नरक में पड़ते हैं। इस कारण मैं तुम्हें घोर नरक में नहीं फेंक रहा हूँ।

यन्निन्दध्वं जगन्नाथं पुष्कराक्षं च मन्मयम्।
स चैव भगवाञ्छर्वः सर्वव्यापी गणेश्वरः॥४०॥

जो तुम मेरे ही स्वरूप पुष्कराक्ष ज़गनाथ विष्णु की निन्दा करते हो, तो (समझो कि) वे सर्वव्यापी गणेश्वर भगवान् शर्व शङ्कर ही हैं।

न तस्य सदृशो लोके विद्यते सचराचरे।
श्वेतमूर्तिः स भगवान्पीतो रक्तोऽञ्जनप्रभः॥४१॥

उनके सदृश इस समस्त चराचर जगत् में कोई नहीं है। श्वेतमूर्ति वे भगवान् पीतवर्ण भी हैं, रक्तवर्ण भी हैं तथा श्यामवर्ण भी हैं।

तस्मात्परतरं लोके नान्यद् धर्मं हि विद्यते।
सात्त्विकं राजसं चैव तामसं मिश्रकं तथा॥४२॥
स एव धत्ते भगवान्सर्वपूज्यः सदाशिवः।

उनसे बढकर इस लोक में और कोई अन्य धर्म नहीं है। वे सर्वपूज्य भगवान् सदाशिव सत्व, रजस्, तमस् तथा इनके मिश्रण को धारण करते हैं।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा शैवाद्याः प्रमथोत्तमाः॥४३॥
प्रत्यूचुर्भगवन्ब्रूहि सदाशिवविशेषणम्।

शङ्कर के वचनों को सुनकर शैलादि उत्तम प्रमथों ने प्रत्युत्तर दिया— भगवन्! हमें सदाशिव की विशेषताओं के बारे में बताइये।

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा प्रमथानामथेश्वरः।
दर्शयामास तद्रूपं सदाशैवं निरञ्जनम्॥४४॥

उनके द्वारा कथित वचन को सुनकर प्रमथनाथ शिव ने सदा निरञ्जन अपने शैवरूप को प्रदर्शित किया।

ततः पश्यन्ति हि गणाः तमीशं वै सहस्रशः।
सहस्रवक्त्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम्॥४५॥

तब उन गणों ने उन भगवान् शिव को सहस्र मुख और चरणों वाले, सहस्र भुजाओं वाले और सहस्रधा रूप में देखा।

दण्डपाणिं सुदुर्दृश्यं लोकैर्व्याप्तं समन्ततः।
दण्डसंस्थाऽस्य दृश्यन्ते देवप्रहरणास्तथा॥४६॥

उनका वह स्वरूप हाथ में दण्डधारण किये हुए था, सर्वथा दुर्दृश्य था, चारों ओर से समस्त लोकों से व्याप्त था तथा दण्ड के साथ-साथ इनके हाथ में अन्य दिव्य आयुध भी दृष्टिगोचर हो रहे थे।

तत एकमुखं भूयो ददृशुः शङ्करं गणाः।
रौद्रैश्च वैष्णवैश्चैव धृतं चिह्नैः सहस्रशः॥४७॥
अर्द्धेन वैष्णववपुरर्द्धेन हरविग्रहः।
खगध्वजं वृषारूढं खगारूढं वृषध्वजम्॥४८॥

तदनन्तर गणों ने शिव को पुनः 'एकमुख' वाले रूप में देखा। उनका वह रूप रुद्र और विष्णु के अनेकों चिह्नों से सहस्रधा चिह्नित था। उस स्वरूप का आधा भाग विष्णु शरीर था तथा आधा हरवपु था, जो खगध्वज, वृषारूढ, खगारूढ़ और वृषध्वज था।

यथा यथा त्रिनयनो रूपं धत्ते गुणाग्रणीः।
तथा तथा त्वजायन्त महापाशुपता गणाः॥४९॥

जैसे ही उत्तम गुणों से पूर्ण त्रिनेत्रधारी शिव विविध रूप धारण करते गये वैसे ही महापाशुपत नामक गण उत्पन्न होने लगे।

ततोऽभवच्चैकरूपी शङ्करो बहुरूपवान्।
द्विरूपश्चाभवद् योगी एकरूपीऽप्यरूप्यवान्।
क्षणाच्छ्वेतः क्षणाद्रक्तः पीतो नीलः क्षणादपि॥५०॥
मिश्रको वर्णहीनश्च महापाशुपतस्तथा।
क्षणाद्भवति रुद्रेन्द्रः क्षणाच्छम्भुः प्रभाकरः॥५१॥
क्षणार्द्धाच्छङ्करो विष्णुः क्षणाच्छर्वः पितामहः।

तदनन्तर बहुरूपवान् शङ्कर एकरूपी हो गए, फिर वे द्विरूप हो गए। वस्तुतः एकरूपी स्वरूपरहित हो गए। क्षण भर में श्वेत, क्षणभर में रक्त, क्षणभर में पीतवर्ण तथा क्षणभर में नीलवर्ण हो गए। रुद्रपति क्षणभर में ही मिश्रितवर्ण, वर्णहीन और महापाशुपत हो गए। क्षणभर में ही वे शंभु सूर्य हो गए। आधे क्षण भर में वे शङ्कर विष्णु हो गए तथा क्षणभर में पितामह ब्रह्मा हो गए।

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा शैवादयो गणाः॥५२॥
अजानन्त तदैक्येन ब्रह्मविष्णवीशभास्करान्।
यदाऽभिन्नममन्यन्त देवदेवं सदाशिवम्॥५३॥

तदा निर्धूतपापास्ते समजायन्त पार्षदाः।
तेष्वेवं धूतपापेषु अभिन्नेषु हरीश्वरः॥५४॥
प्रीतात्मा विबभौ शंभुः प्रीत्या युक्तोऽब्रवीद्वचः।

उस अद्भुततम दृश्य को देखकर शैलादि गणों ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य के एकत्व को जाना। उन्होंने देवाधिदेव सदाशिव को अन्य देवों से अभिन्न जानकर नमन किया तब निर्धूतपाप होकर वे सब पार्षद हो गए। उन सब के धूतपाप तथा अभिन्न हो जाने पर हरिहर ने प्रसन्न होकर शंभु-शिव ने निम्न वचन कहे—

परितुष्टोऽस्मि सर्वेषां ज्ञानेनानेन सुव्रताः॥५५॥
वृणुध्वं वरमानन्त्यं दास्ये वो मनसेप्सितम्।
ऊचुस्ते देहि भगवन्वरमस्माकमीश्वर।
भिन्नदृष्ट्युद्भवं पापं यत्तदभ्रंशं प्रयातु नः॥५६॥

हे सुव्रतो! तुम सबके इस ज्ञान से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। तुम मनोभिलषित अनन्त वर को मांगों; मैं दूंगा। उन्होंने कहा— हे भगवन्! हे स्वामी! हमें वर दीजिए; हम उस पाप से मुक्त हो जाएँ जिस भेद-बुद्धि के कारण हम जिनसे ग्रस्त थे।

पुलस्त्य उवाच

बाढमित्यब्रवीच्छर्वश्चक्रे निर्धूतकल्मषान्।
संपर्यष्वजताव्यक्तस्तान्सर्वान्गणयूथपान्॥५७॥

पुलस्त्य बोले— शिव ने कहा- अच्छा! तदनन्तर शिव ने कहा उनको निष्पाप कर दिया। तदनन्तर अव्यक्त शिव ने उन सब गणयूथों का परिष्वजन किया।

इति विभुना प्रणतार्तिहरेण
गणपतयो वृषमेघरथेन।
श्रुतिगदितानुगमेनेव मन्दरं
गिरिमवत्य समध्यवसन्तम्॥५८॥

सर्वव्यापी, कष्टनिवारक वृष और मेघ पर सवार स्वामी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह समस्त गणाधिपति वेदोक्त क्रम के अनुसार मन्दर पर्वत पर सब ओर फैल कर निवास करने लगे।

आच्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्घनाभै-
राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः।
नीलाजिनातततनुः शरदभ्रवर्णो
यद्वद्विभाति बलवान्वृषभो हरस्य॥५९॥

मेघवर्णी प्रमथों के द्वारा आवृत्त श्वेतवर्णी पर्वत (मन्दर) शिवचरणों से सेवित होकर उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे शरद्कालीन मेघ के समान वर्ण वाला नील चर्म से आवृत शिव का शक्तिशाली वृष।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे
सदाशिवदर्शनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः
(अन्धक सेना की पराजय का वर्णन)

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः समं दैत्यैस्तथाऽन्धकः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकन्दरम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— इतने में ही उन समस्त दैत्यों के साथ वह अन्धक प्रमथों के द्वारा आश्रित कंदराओं वाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दर पर आ पहुँचा।

प्रमथा दानवान्दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम्।
प्रमथाश्चापि संरब्धा जघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः॥२॥

दानवो को देखकर प्रमथों ने किलकिला ध्वनि की। उसके प्रतिरोध में प्रमथों ने भी अनेक प्रकार से युद्धतुर्यों को बजाना प्रारम्भ कर दिया।

स चावृणोन्महानादो रोदसी प्रलयोपमः।
शुश्राव वायुमार्गस्थो विघ्ननाथो विनायकः॥३॥

प्रलय के समान भयंकर उस महानाद ने आकाश और पृथ्वी दोनों को व्याप्त कर दिया। वायुमार्ग में स्थित विघ्नों के स्वामी विनायक ने उस महानाद को सुना।

समभ्ययात् सुसंक्रुद्धः प्रमथैरभिसंवृतः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं ददृशे पितरं तथा॥४॥

प्रमथों से परिवृत अत्यंत क्रुद्ध वह पर्वतश्रेष्ठ मन्दर पर पहुँचा। वहाँ उसने अपने पिता के दर्शन किये।

प्रणिपत्य तथा भक्त्या वाक्यमाह महेश्वरम्।
किं तिष्ठसि जगन्नाथ समुत्तिष्ठ रणोत्सुकः॥५॥

भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उसने महेश्वर से कहा— हे जगन्नाथ! बैठे क्यों हैं? युद्ध के लिये तत्पर होकर उठिये।

ततो विघ्नेशवचनाञ्जगन्नाथोऽम्बिकां वचः।
प्राह यास्येऽन्धकं हन्तुं स्थेयमेवाप्रमत्तया॥ ६॥

तदनन्तर विघ्नेश के कहने पर जगन्नाथ ने अम्बिका से कहा— मैं अन्धक का नाश करने के लिये जा रहा हूँ; तुम सावधानी के साथ रहना।

ततो गिरिसुता देवं समालिङ्ग्य पुनः पुनः।
समीक्ष्य सस्नेहहरं प्राह गच्छ जन्यान्धकम्॥ ७॥

गिरिसुता ने तब अनेक बार देव शिव का आलिङ्गन किया और स्नेहपूर्वक शिव को देखकर कहा— जाइये, अन्धक पर विजय प्राप्त कीजिए।

ततोऽमरगुरोर्गौरी चन्दनं रोचनाञ्जनम्।
प्रतिवन्द्य सुसंप्रीता पादावेवाभ्यवन्दत॥ ८॥

तदनन्तर गौरी ने अमरगुरु शिव को अत्यंत आदरपूर्वक चन्दन, रोचन और अंजन भेंट किया और अत्यंत प्रसन्नता के साथ उनके चरणों की पूजा की।

ततो हरः प्राह वचो यशस्यं मालिनीमपि।
जयां च विजयां चैव जयन्तीं चापराजिताम्॥ ९॥

तदनन्तर शिव ने मालिनी, जया, विजया, जयन्ती और अपराजिता को निम्न सराहनीय वचन कहे—

युष्माभिरप्रमत्ताभिः स्थेयं गेहे सुरक्षिते।
रक्षणीया प्रयत्नेन गिरिपुत्री प्रमादतः॥ १०॥

तुम सब सावधान होकर घर में सुरक्षित रहना और प्रयत्नपूर्वक गिरिजा को प्रमाद से बचाना।

इति संदिश्य ताः सर्वाः समारुह्य वृषं प्रभुः।
निर्जगाम गृहात् तुष्टो जयेप्सुः शूलधृग् वली॥ ११॥

इस प्रकार उन सबको आदेश देकर प्रभु शिव वृष पर सवार होकर विजय की इच्छा करते हुए शूलधारण करके घर से चल पड़े।

निर्गच्छतस्तु भवनादीश्वरस्य गणाधिपाः।
समन्तात् परिवार्यैव जयशब्दांश्च चक्रिरे॥ १२॥

घर से निकलते हुए स्वामी के गणाधिपगण उन्हें चारों ओर से घेरकर जयघोष करने लगे।

रणाय निर्गच्छति लोकपाले
महेश्वरे शूलधरे महर्षे।
शुभानि सौम्यानि सुमङ्गलानि
जातानि चिह्नानि जयाय शंभोः॥ १३॥

हे महर्षि! लोकपालक शूलधारी महेश्वर के युद्ध के लिये प्रस्थान करते ही शंभु की विजय के शुभ और सौम्य सुमंगल चिह्न (शकुन) उत्पन्न होने लगे।

शिवा स्थिता वामतरेऽथ भागे
प्रयाति चाग्रे स्वनमुन्नदन्ती।
क्रव्यादसंघाश्च तथामिषैषिणः
प्रयान्ति हृष्टास्तृषितासृगर्थे॥ १४॥

शिव के वाम ओर एक गीदड़ी ऊँची आवाज से शोर करती हुई उनके आगे-आगे चल रही थी। मांसभक्षी, रक्तपिपासु क्रव्याद पक्षी मांसभक्षण की आशा से उनके आगे-आगे चल रहे थे।

दक्षिणाङ्गं नखान्तं वै समकम्पत शूलिनः।
शकुनिश्चापि हारीतो मौनी याति पराङ्मुखः॥ १५॥

शूलधारी के दाहिने अङ्गों के नखाग्रभाग फड़क रहे थे। एक हारीत पक्षी भी मुँह परे करके चुपचाप जा रहा था।

निमित्तनीदृशान् दृष्ट्वा भूतभव्यभवो विभुः।
शैलादिं प्राह वचनं सस्मितं शशिशेखरः॥ १६॥

इस प्रकार के शुभ शकुनों को देखकर भूतभव्यभव के स्वामी शशिशेखर मुस्कराते हुए शैलादि से बोले—

हर उवाच

नन्दिन् जयोऽद्य मे भावी न कथंचित् पराजयः।
निमित्तानीह दृश्यन्ते संभूतानि गणेश्वर॥ १७॥

हर ने कहा— हे गणेश्वर नन्दी! आज मेरी विजय निश्चित है, मेरी पराजय किसी तरह नहीं हो सकती; क्योंकि यहाँ इसी प्रकार के शकुन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

तच्छंभुवचनं श्रुत्वा शैलादिः प्राह शङ्करम्।
कः संदेहो महादेव यत् त्वं जयसि शात्रवान्॥ १८॥

शंभु के उस वचन को सुनकर शैलादि ने शङ्कर से कहा— हे महादेव! इसमें क्या संदेह है कि आप शत्रुओं को जीतेंगे?

इत्येवमुक्त्वा वचनं नन्दी रुद्रगणांस्तथा।
समादिदेश युद्धाय महापाशुपतैः सह॥ १९॥

नन्दी ने ऐसा कहकर रुद्रगणों को महापाशुपतों सहित युद्ध करने का आदेश दिया।

तेऽभ्येत्य दानवबलं मर्दयन्ति स्म वेगिताः।
नानाशस्त्रधरा वीरा वृक्षानशनयो यथा॥ २०॥

वे वीर नाना प्रकार के शस्त्रों को लेकर दानवबल के समीप पहुँचे और उनका उसी प्रकार तीव्रता से मर्दन करने लगे जिस प्रकार बिजली वृक्षों का नाश करती है।

ते वध्यमाना बलिभिः प्रमथैर्दैत्यदानवाः।
प्रवृत्ताः प्रमथान् हन्तुं कूटमुद्गरपाणयः॥ २१॥

बलशाली प्रमथों के द्वारा मारे जाते हुए वे दैत्यों और दानवों का समूह प्रमथों को मारने के लिये हाथ में छिपे मुद्गरों को लेकर युद्ध के लिये प्रवृत्त होने लगा।

ततोऽम्बरतले देवाः सेन्द्रविष्णुपितामहाः।
ससूर्याग्निपुरोगास्तु समायाता दिदृक्षवः॥ २२॥

तदनन्तर इन्द्र, विष्णु तथा पितामह ब्रह्मा सहित समस्त देवतागण सूर्य तथा अग्नि के अनुयायी बनते हुए युद्ध को देखने की इच्छा से अम्बरतलं पर आ पहुँचे।

ततोऽम्बरतले घोषः सस्वनः समजायत।
गीतवाद्यादिसंमिश्रो दुन्दुभीनां कलिप्रिय॥ २३॥

हे नारद! तदनन्तर आकाश में गीतवाद्यादि से संमिश्रित दुन्दुभियों का स्वर गूँजने लगा।

ततः पश्यत्सु देवेषु महापाशुपतादयः।
गणास्तद्दानवं सैन्यं जिघांसन्ति स्म कोपिताः॥ २४॥

देवताओं के देखते-देखते ही महापाशुपतादि क्रोधित गणों ने दानवसैन्य का संहार प्रारम्भ कर दिया।

चतुरङ्गबलं दृष्ट्वा हन्यमानं गणेश्वरैः।
क्रोधान्वितस्तुहुण्डस्तु वेगेनाभिससार ह॥ २५॥

गणाधिपतियों के द्वारा दानवों की चतुरंगिणी सेना का संहार होते हुये देखकर क्रोधान्वित तुहुण्ड वेग से दौड़ा।

आदाय परिघं घोरं पट्टोद्बद्धमयस्मयम्।
राजते राजतेऽर्थ्यमिन्द्रध्वजमिवोच्छ्रितम्॥ २६॥
तं भ्रामयानो बलवान्निजघान रणे गणान्।
रुद्राद्याः स्कन्दपर्यन्तास्तेऽभज्यन्त भयातुराः॥ २७॥

पट्ट से बंधी हुई अयस्मय घोर परिघा, जो इन्द्र की ऊँठी हुई ध्वजा के समान सुशोभित हो रही थी, को लेकर उसे घुमाता हुआ वह बलशाली युद्ध में गणों का संहार करने लगा। रुद्रादि तथा स्कन्दादि गण भी भयातुर होकर इधर-उधर भागने लगे।

तत्रभग्नं बलं दृष्ट्वा गणनाथो विनायकः।
समाद्रवत वेगेन तुहुण्डं दनुपुंगवम्॥ २८॥

गणनाथ विनायक अपने बल को प्रभग्न देखकर वेग से दनुश्रेष्ठ तुहुण्ड के पीछे दौड़ा।

आपतन्तं गणपतिं दृष्ट्वा दैत्यो दुरात्मवान्।
परिघं पातयामास कुम्भपृष्ठे महाबलः॥ २९॥

आक्रमण करने के लिए आते हुए गणपति को देखकर उस दुरात्मा महाबली ने गणपति के कुम्भप्रदेश पर प्रहार किया।

विनायकस्य तत्कुम्भे परिघं वज्रभूषणम्।
शतधा त्वगमद्ब्रह्मन् मेरोः कूट इवाशनिः॥ ३०॥

हे ब्राह्मण! विनायक के कुम्भप्रदेश पर गिरते ही उस वज्रसदृश परिघा के सैकड़ों टुकड़े हो गये। जैसे मेरु पर्वत पर गिर कर बिजली के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

परिघं विफलं दृष्ट्वा समायान्तं च पार्षदम्।
बबन्ध बाहुपाशेन राहू रक्षन् हि मातुलम्॥ ३१॥

परिघा को विफल तथा पार्षद (गणेश) को आते हुए देखकर अपने मामा की रक्षा के उद्देश्य से राहु ने आने वाले पार्षद को बाहुपाश में बाँध लिया।

स बद्धो बाहुपाशेन बलादाकृष्य दानवम्।
समाजघान शिरसि कुठारेण महोदरः॥ ३२॥

बाहुपाश में बंधे उस महोदर ने बलपूर्वक उस दानव को खींचकर उस के सिर पर कुठार से प्रहार किया।

काष्ठवत्स द्विधा भूतो निपपात धरातले।
तथाऽपि नात्यजद् राहुर्बलवान् दानवेश्वरः।
स मोक्षार्थऽकरोद् यत्नं न शशाक च नारद॥ ३३॥

काष्ठ की भांति दो टुकड़े होकर वह भूमि पर गिर पड़ा। किन्तु दानवेश्वर बलवान् राहु ने विनायक को नहीं छोड़ा। उस विनायक ने स्वयं को छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया परंतु हे नारद! वह छुड़ा नहीं सका।

विनायकं संयतमीक्ष्य राहुणा
कुण्डोदरो नाम गणेश्वरोऽथ।
प्रगृह्य तूर्णं मुशलं महात्मा
राहुं दुरात्मानमसौ जघान॥ ३४॥

राहु के द्वारा विनायक को बद्ध देखकर उस कुण्डोदर नामक महाबलशाली गणेश्वर ने तीन मूसलों को लेकर उस दुरात्मा राहु को मारा।

ततो गणेशः कलशध्वजस्तु
प्रासेन राहुं हृदये बिभेद।
घटोदरो वै गदया जघान
खड्गेन रक्षोऽधिपतिः सुकेशी॥ ३५॥

तदनन्तर कलशध्वज गणेश ने भाले से राहु के हृदय में बेंध दिया। घटोदर ने गदा से मारा तथा रक्षाधिपति सुकेशी ने खड्ग से मारा।

स तैश्चतुर्भिः परिताड्यमानो
गणाधिपं राहुरथोत्ससर्ज।
संत्यक्तमात्रोऽथ परश्वधेन
तुहुण्डमूर्द्धानमथो बिभेद॥ ३६॥

उन चारों के द्वारा इस प्रकार प्रहार किये जाने पर राहु ने गणाधिप विनायक को छोड़ दिया। छोड़ते ही विनायक ने कुल्हाड़ी से राहु का सिर काट डाला।

हते तुहुण्डे विमुखे च राहौ
गणेश्वराः क्रोधविषं मुमुक्षवः
पञ्चैककालानलसन्निकाशा
विशन्ति सेनां दनुपुंगवानाम्॥ ३७॥

तुहुण्ड के मरने तथा राहु के विमुख हो जाने के पश्चात् कालाग्नि के समान पञ्च गणेश्वर अपनी क्रोधविष को छोड़ने के लिये दानवश्रेष्ठों की सेना में घुस गए।

तां वध्यमानां स्वचमूं समीक्ष्य
बलिर्बली मारुततुल्यवेगः।
गदां समाविध्य जघान मूर्ध्नि
विनायकं कुम्भतटे करे च॥ ३८॥

अपनी सेना को मारे जाते हुए देखकर बलशाली तथा वायु के समान वेगवान् बलि ने गदा उठाकर विनायक के शीर्षपर और कुम्भप्रदेश पर प्रहार किया।

कुण्डोदरं भग्नकटिं चकार
महोदरं शीर्णशिरःकपालम्।
कुम्भध्वजं चूर्णितसंधिबन्धं
घटोदरं चोरुविपन्नसंधिम्॥ ३९॥

कुण्डोदर को उसने कटि पर प्रहार किया, महोदर के सिर और कपाल पर प्रहार करके उसे तोड़ दिया, कुम्भध्वज के सन्धिबन्ध को चूर-चूर कर डाला, कटोदर के विभिन्न जोड़ों को चूर-चूर कर डाला।

गणाधिपांस्तान्विमुखान् स कृत्वा
बलान्वितो वीरतरोऽसुरेन्द्रः।
समभ्यधावत् त्वरितो निहन्तुं
गणेश्वरान् स्कन्दविशाखमुख्यान्॥ ४०॥

बलशाली और अत्यधिक वीर वह दानवपति उन गणाधिपों को पराङ्मुख करके स्कन्दविशाखादि प्रमुख गणेश्वरों को मारने के लिये तीव्रता से दौड़ा।

तमापतन्तं भगवान् समीक्ष्य
महेश्वरः श्रेष्ठतमं गणानाम्।
शैलादिमामन्त्र्य वचो बभाषे
गच्छस्व दैत्यान् जहि वीर युद्धे॥ ४१॥

उसको आक्रमण के लिए आते हुए देखकर भगवान् शिव ने गणों में सर्वश्रेष्ठ नन्दी को बुलाकर इस प्रकार कहा— हे वीर! जाओ और युद्ध में दैत्यों का वध करो।

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
वज्रं समादाय शिलादसूनुः।
बलिं समभ्येत्य जघान मूर्ध्नि
संमोहितः सोऽवनिमाससाद॥ ४२॥

वृषभध्वज के द्वारा इस प्रकार कहने पर शैलादपुत्र नन्दी वज्र उठाकर बलि के समीप गया और उसके सिर पर प्रहार किया जिससे वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

संमोहितं भ्रातृसुतं विदित्वा
बली कुजम्भो मुसलं प्रगृह्य।
संभ्रामयंस्तूर्णतरं स वेगात्
ससर्ज नन्दिं प्रति जातकोपः॥ ४३॥

अपने भतीजे को मूर्च्छित जानकर बलशाली कुजम्भ ने अत्यंत क्रोध में आकर मूसल धारण किया और उसे अत्यंत वेगपूर्वक घुमाते हुए तेजी से नन्दी की ओर फेंका।

तमापतन्तं मुसलं प्रगृह्य
करेण तूर्णं भगवान् स नन्दी।
जघान तेनैव कुजम्भमाहवे
स प्राणहीनो निपपात भूमौ॥ ४४॥

शक्तिशाली नन्दी ने अपनी ओर आते हुए उस मूसल को हाथ से तीव्रता से पकड़ा और उस मूसल से ही युद्धभूमि में कुजम्भ को मार डाला। वह कुजम्भ प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा।

हत्वा कुजम्भं मुसलेन नन्दी
वज्रेण वीरः शतशो जघान।
ते वध्यमाना गणानायकेन
दुर्योधनं वै शरणं प्रपन्नाः॥ ४५॥

वीर नन्दी ने मूसल से कुजम्भ को मार कर, वज्र से अन्य सैकड़ों (दानवों) को मार डाला। गणनायक नन्दी के द्वारा मारे जाते हुए दानवगण दुर्योधन की शरण में जा पहुँचे।

दुर्योधनः प्रेक्ष्य गणाधिपेन
वज्रप्रहारैर्निहतान्दितीशान्।
प्रासं समाविध्य तडित्प्रकाशं
नन्दिं प्रचिक्षेप हतोऽसि वै ब्रुवन्॥ ४६॥

गणाधिप के द्वारा किये गये वज्रप्रहारों से मारे जाते हुए दानवों को देखकर दुर्योधन ने बिजली के समान चमकते हुये प्रास को उठाया, 'तुम मारे गए' इस प्रकार कहते हुए उसे नन्दी की ओर फेंका।

तमापतन्तं कुलिशेन नन्दी
बिभेद गुह्यं पिशुनो यथा नरः।
तत्प्रासमालक्ष्य तदा निकृत्तं
संवर्त्त्य मुष्टिं गणमाससाद॥ ४७॥

उस आते हुए प्रास को नन्दी ने कुलिश से उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर डाला जैसे चुगलखोर किसी रहस्य को छिन्न-भिन्न कर देता है। उस प्रास को नष्ट हुआ देखकर दुर्योधन मुष्टि तानकर नन्दी की ओर लपका।

ततोऽस्य वज्री कुलिशेन तूर्णं
शिरोऽच्छिनत् तालफलप्रकाशम्।
हतोऽथ भूमौ निपपात वेगाद्
दैत्याश्च भीता विगता दिशो दश॥ ४८॥

तब नन्दी ने तीव्रता के साथ कुलिश से उसका सिर 'तालफल' के समान काट डाला। मरने पर वह अत्यंत वेग से भूमि पर गिर पड़ा जिससे भयभीत होकर दैत्यगण विभिन्न दिशाओं में भाग गये।

ततो हतं स्वं तनयं निरीक्ष्य
हस्ती तदा नन्दिनमाजगाम।
प्रगृह्य बाणासनमुग्रवेगं
बिभेद बाणैर्यमदण्डकल्पैः॥ ४९॥

गणान् सनन्दीन् वृषभध्वजांस्तान्
धाराभिरेवाम्बुधरास्तु शैलान्।
ते छाद्यमानासुरबाणजालै-
र्विनायकाद्या बलिनोऽपि वीराः।
सिंहप्रणुन्ना वृषभा यथैव
भयातुरा दुद्रुविरे समन्तात्॥ ५०॥

तदनन्तर अपने पुत्र को मरा हुआ देखकर हस्ती नन्दी के पास पहुँचा और अत्यंत उग्र वेगवाले बाण और धनुष उठाकर यमपाश के समान बाणों से नन्दीसहित उन वृषभध्वज गणों को उसी प्रकार भेद डाला जिस प्रकार बादल वर्षा से पर्वत को भेदता है। असुर के बाणों से आच्छादित विनायकादि वीर बलशाली होते हुए भी भयातुर होकर चारों ओर उसी प्रकार भागने लगे जिस प्रकार सिंह के द्वारा पीछा किये जाने पर वृषभ इधर-उधर चारों ओर भागता है।

पराङ्मुखान् वीक्ष्य गणान् कुमारः
शक्त्या पृषत्कानथ वारयित्वा।
तूर्णं समभ्येत्य रिपुं समीक्ष्य
प्रगृह्य शक्तिं हृदयं बिभेद॥ ५१॥

गणों को भागते हुए देखकर कुमार ने शक्ति से उन बाणों को रोककर शीघ्रतापूर्वक समीप आते हुए शत्रु को

देखकर उस शक्ति को पकड़ कर उसके हृदय को छेद डाला।

शक्तिनिर्भिन्नहृदयो हस्ती भूम्यां पपात ह।
ममार चारिपृतना जाता भूयः पराङ्मुखी॥५२॥

शक्ति के द्वारा निर्भिन्न हृदय वाला वह हस्ती भूमि पर गिर पड़ा और मर गया, जिससे शत्रुसेनाएँ पुनः भाग खड़ी हुईं।

अमरारिबलं दृष्ट्वा भग्नं क्रुद्धा गणेश्वराः।
पुरतो नन्दिनं कृत्वा जिघांसन्ति स्म दानवान्॥५३॥

देवारि-सैन्यबल को छिन्न-भिन्न देखकर नन्दी के नेतृत्व में क्रुद्ध गणेश्वरों ने दानवों को मार डाला।

ते वध्यमानाः प्रमथैर्दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः।
भूयो निवृत्ता बलिनः कार्त्तस्वरपुरोगमाः॥५४॥

प्रमथों के द्वारा मारे जाते हुए वे पराङ्गमुख व बलशाली दैत्यगण कार्तस्वर के नेतृत्व में पुनः वापस लौट आए।

तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन्।
नन्दिषेणो व्याघ्रमुखो निवृत्तश्चापि वेगवान्॥५५॥

उनको लौटा हुआ देखकर व्याघ्र के समान मुख वाला नन्दीसेन, क्रोध से प्रज्वलित नेत्रों वाला होकर तीव्र साँस लेता हुआ लौट आया।

तस्मिन् निवृत्ते गणपे पट्टिशाग्रकरे तदा।
कार्त्तस्वरो निववृते गदामादाय नारद॥५६॥

हे नारद! अपनी अग्रभुजा में पट्टिश धारण किये हुए उस गणनायक के लौटने पर कार्तस्वर भी हाथ में गदा लिए लौट आया।

तमापतन्तं ज्वलनप्रकाशं
गणः समीक्ष्यैव महासुरेन्द्रम्।
तं पट्टिशं भ्राम्य जघान मूर्ध्नि
कान्तस्वरं विस्वरमुन्नदन्तम्॥५७॥

अग्नि के समान जाज्वल्यमान उस महासुर को आते हुए देखकर गण ने वह पट्टिश घुमाया और अत्यंत तीखे स्वर से चीखते हुए कार्तस्वर के सिर पर प्रहार किया।

तस्मिन्हते भ्रातरि मातुलेये
पाशं समाविध्य तुरङ्गकन्धरः।
बबन्ध वीरं सह पट्टिशेन
गणेश्वरं चाप्यथ नन्दिषेणम्॥५८॥

अपने ममेरे भाई के मारे जाने पर वीर तुरंग कन्धर ने पाश उठाकर पट्टिश सहित गणेश्वर मन्दिसेन को बांध दिया।

नन्दिषेणं तथा बद्धं समीक्ष्य बलिनां वरः।
विशाखः कुपितोऽभ्येत्य शक्तिपाणिरवस्थितः॥५९॥

नन्दिसेन को बंधा हुआ देखकर बलशालियों में श्रेष्ठ अतिक्रुद्ध विशाख वहाँ आया और हाथ में शक्ति लेकर खड़ा हो गया।

तं दृष्ट्वा बलिनां श्रेष्ठः पाशपाणिरयःशिराः।
संयोधयामास बली विशाखं कुक्कुटध्वजम्॥६०॥

उस को देखकर बलशालियों में श्रेष्ठ अयःशिर हाथ में पाश लेकर कुक्कुटध्वज विशाख से युद्ध करने लगा।

विशाखं सन्निरुद्धं वै दृष्ट्वाऽयःशिरसा रणे।
शाखश्च नैगमेयश्च तूर्णमाद्रवतां रिपुम्॥६१॥

युद्ध में अयःशिर के द्वारा विशाख को बंधा हुआ देखकर शाख और नेत्रमेय शीघ्रता से शत्रु की ओर दौड़ पड़े।

एकतो नैगमेयेन भिन्नः शक्त्या त्वयःशिराः।
एकतश्चैव शाखेन विशाखप्रियकाम्यया॥६२॥

एक ओर से अयःशिर पर नैगमेय ने शक्ति से प्रहार किया तथा दूसरी ओर से विशाख के शुभेच्छुक शाख ने प्रहार किया।

स त्रिभिः शङ्करसुतैः पीड्यमानो जहौ रणम्।
ते प्राप्ताः शम्बरं तूर्णं प्रेक्ष्यमाणा गणेश्वराः॥६३॥

तीन शङ्करपुत्रों के द्वारा पीडित होकर वह युद्ध छोड़कर भाग गया। इस प्रकार दानवों के द्वारा देखा जाता हुआ वह गणेश्वर शम्बर के पास पहुँचे।

पाशं शक्त्या समाहत्य चतुर्भिः शङ्करात्मजैः।
जगाम विलयं तूर्णमाकाशादिव भूतलम्॥६४॥

चार शङ्करपुत्रों के द्वारा पाश को शक्ति से आहत करके नष्ट कर दिया गया और वह आकाश से भूमि पर गिर पड़ा।

पाशे निराशतां याते शम्बरः कातरेक्षणः।
दिशोऽथ भेजे देवर्षे कुमारः सैन्यमर्दयत्॥६५॥

पाश के निष्फल हो जाने पर कातर दृष्टि वाला शम्बर दूर दिशा में भाग गया। तदनन्तर हे नारद! कुमार ने शत्रुसेना का मर्दन कर डाला।

तैर्वध्यमाना पृतना महर्षे
सा दानवी रुद्रसुतैर्गणैश्च।
विवर्णरूपा भयविह्वलाङ्गी
जगाम शुक्रं शरणं भयार्ता॥६६॥

रुद्रसुतों और गणों के द्वारा मारी जाती हुई भय से विह्वल अङ्गों वाली तथा उदास मुखों वाली वह दानवसेना भयार्त होकर शुक्र की शरण में जा पहुँची।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे दैत्यपराजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

अथ नवषष्टितमोऽध्यायः

(जम्भ तथा कुजम्भ का वध)

पुलस्त्य उवाच

ततः स्वसैन्यमालक्ष्य निहतं प्रमथैरथ।
अन्धकोऽभ्येत्य शुक्रं तु इदं वचनमब्रवीत्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर प्रमथों के द्वारा अपने सैन्यबल को मारे जाते हुए देखकर अन्धक शुक्र के समीप आया और विनीत होकर बोला—

भगवंस्त्वां समाश्रित्य वयं बाधाम देवताः।
अथान्यानपि विप्रर्षे गन्धर्वसुरकिन्नरान्॥२॥

हे भगवान्! आपका आश्रय लेकर ही हम देवताओं को बाधित करते हैं। हे विप्रर्षि! आपके आश्रय से ही हम गंधर्वों, किन्नरों और सुरों को भी बाधित करते हैं।

तदियं पश्य भगवन् मया गुप्ता वरूथिनी।
अनाथेव यथा नारी प्रमथैरपि काल्यते॥३॥

हे भगवन्! यह देखिये! मेरे द्वारा रक्षित यह सेना प्रमथों के द्वारा उसी प्रकार खदेड़ी जा रही है जिस प्रकार पति के बिना नारी खदेड़ी जाती है।

कुजम्भाद्याश्च निहता भ्रातरो मम भार्गव।
अक्षवाः प्रमथाश्चामी कुरुक्षेत्रफलं यथा॥४॥

हे भार्गव! कुजम्भ आदि मेरे भाई मारे गए पर ये प्रमथ उसी प्रकार अक्षय हो रहे हैं जैसे कुरुक्षेत्र का फल।

तस्मात् कुरुष्व श्रेयो नो न जीयेम यथा परैः।
जयेम च परान् युद्धे तथा त्वं कर्तुमर्हसि॥५॥

इसलिए आप वैसा कीजिए जिससे हमारा कल्याण हो; जिससे शत्रुओं के द्वारा जीते न जाएँ; तथा जिससे युद्ध में हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें।

शुक्रोऽन्धकवचः श्रुत्वा सान्त्वयन् परमाद्भुतम्।
वचनं प्राह देवर्षे ब्रह्मर्षिर्दानवेश्वरम्।
त्वद्धितार्थं यतिष्यामि करिष्यामि तव प्रियम्॥६॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं विद्यां संजीवनीं कविः।
आवर्तयामास तदा विधानेन शुचिव्रतः॥७॥

हे देवर्षि! अन्धक के वचन को सुनकर ब्रह्मर्षि शुक्र ने उस दानवेश्वर को सान्त्वना देते हुए इस प्रकार के परम अद्भुत वचन कहे— 'मैं तुम्हारे हित तथा कल्याण के लिये प्रयत्न करूँगा'। ऐसा कहकर उन पवित्रव्रतधारी मुनि ने पूर्णविधिपूर्वक संजीवनी विद्या का आह्वान किया।

तस्यामावर्त्यमानायां विद्यायामसुरेश्वराः।
ये हताः प्रथमं युद्धे दानवास्ते समुत्थिताः॥८॥

संजीवनी विद्या का आह्वान किये जाने पर वे समस्त असुर और दानव जो युद्ध में मारे गए थे, उठ खड़े हुए।

कुजम्भादिषु दैत्येषु भूय एवोत्थितेष्वथ।
युद्धायाभ्यागतेष्वेव नन्दी शङ्करमब्रवीत्॥९॥

कुजम्भादि दैत्यों के पुनः उठ खड़े होने पर तथा युद्ध के लिए आने पर नन्दी ने शङ्कर से कहा—

महादेव वचो मह्यं शृणु त्वं परमादभुतम्।
अविचिन्त्यमसह्यं च मृतानां जीवनं पुनः॥१०॥

हे महादेव! मेरे अत्यंत अद्भुत वचन सुनिये। मरे हुओं का पुनर्जीवित होना सर्वथा अविश्वसनीय एवं असहनीय है।

ये हताः प्रमथैर्दैत्या यथाशक्त्या रणाजिरे।
ते समुज्जीविता भूयो भार्गवेणाथ विद्यया॥११॥

रणभूमि में जिन दानवों को प्रमथों ने यथाशक्ति नष्ट

कर दिया था वे सब भार्गव के द्वारा संजीवनी विद्या की सहायता से पुनः जीवित कर दिए गए हैं।

तदिदं तैर्महादेव महत्कर्म कृतं रणे।
संजातं स्वल्पमेवेश शुक्रविद्याबलाश्रयात्॥ १२॥

हे महादेव! उन प्रमथों ने रणभूमि में अत्यंत महान् कार्य किया जो शुक्र की विद्या की सहायता से निम्नप्राय हो गया है।

इत्येवमुक्ते वचने नन्दिनं कुलनन्दिनम्।
प्रत्युवाच प्रभुः प्रीत्या स्वार्थसाधनमुत्तमम्॥ १३॥

कुलनन्दी नन्दी के द्वारा इस प्रकार के वचन कहे जाने पर भगवान् शिव ने उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रसन्नतापूर्वक निम्न उत्तर दिया—

गच्छ शुक्रं गणपते ममान्तिकमुपानय।
अहं तं संयमिष्यामि यथायोगं समेत्य हि॥ १४॥

हे गणपति! जाओ और शुक्र को मेरे पास ले आओ। यथा योग का प्रयोग करके मैं उसका संयमन करूँगा।

इत्येवमुक्तो रुद्रेण नन्दी गणपतिस्ततः।
समाजगाम दैत्यानां चमूं शुक्रजिघृक्षया॥ १५॥

रुद्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर गणपति नन्दी शुक्र को पकड़ने की इच्छा से दानवसेना के समीप पहुँचा।

तं ददर्शासुरश्रेष्ठो बलवान् हयकन्धरः।
संरूरोध तदा मार्गं सिंहस्येव पशुर्वने॥ १६॥

उसको एक बलशाली असुरश्रेष्ठ हयकन्धर ने देखा और उसने उसका मार्ग रोकने का प्रयत्न किया, जिस प्रकार पशु वन में सिंह का (मार्ग रोकने का प्रयत्न करता है)।

समुपेत्याहनन्नन्दी वज्रेण शतपर्वणा।
स पपाताथ निःसंज्ञो ययौ नन्दी ततस्त्वरन्॥ १७॥

नन्दी ने समीप आकर शतपर्वण वज्र से उसे मारा जिससे वह संज्ञाहीन होकर गिर पड़ा। तब नन्दी शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा।

ततः कुजम्भो जम्भश्च बलो वृत्रस्त्वयःशिराः।
पञ्चदानवशार्दूला नन्दिनं समुपाद्रवन्॥ १८॥

तब कुजम्भ, जम्भ, बल, वृत्र और अयःशिर— इन पाँच उत्तम दानवों ने नन्दी पर आक्रमण किया।

तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मयह्लादपुरोगमाः।
नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभिद्रवन्॥ १९॥

तदनन्तर मय और ह्लाद के नेतृत्व में अन्य दानवश्रेष्ठों ने विभिन्न आयुधों के साथ गणनायक पर आक्रमण किया।

ततो गणानामधिपं कुट्यमानं महाबलैः।
समपश्यन्त देवास्तं पितामहपुरोगमाः॥ २०॥

ब्रह्मा के अनुयायी देवताओं ने उस गणाधिपति को महाबलशाली दानवों के द्वारा कूटे जाते हुए देखा।

तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा प्राह शुक्रपुरोगमान्।
साहाय्यं क्रियतां शंभोरेतदन्तरमुत्तमम्॥ २१॥

उसको देखकर भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र के अनुयायी देवों से कहा— आप सब शंभु की सहायता कीजिए! यही उचित अवसर है।

पितामहोक्तं वचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः।
समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरात्॥ २२॥

पितामह के द्वारा कहे गए वचनों को सुनकर इन्द्र सहित समस्त देवतागण शीघ्रतापूर्वक अम्बर से शिव की सेना के पास पहुँचे।

तेषामापततां वेगः प्रमथानां बले बभौ।
आपगानां महावेगं पतन्तीनां महार्णवे॥ २३॥

प्रमथों की सेना के समीप आते हुए उन देवताओं का वेग इसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे महासागर में गिरती हुई नदियों का वेग सुशोभित होता है।

ततो हलहलाशब्दः समजायत चोभयोः।
बलयोर्घोरसङ्काशो सुरप्रमथयोरथ॥ २४॥

तदनन्तर देवों और प्रमथों, दोनों की सेना का अत्यंत भयंकर 'हलाहल' शब्द हुआ।

तमन्तरमुपागम्य नन्दी संगृह्य वेगवान्।
रथाद् भार्गवमाक्रामत्सिंहः क्षुद्रमृगं यथा॥ २५॥

उसी समय नन्दी ने समीप आकर भार्गव को जोर से पकड़ा और उस पर उसी प्रकार आक्रमण किया जैसे सिंह किसी समय नगण्य पशु पर आक्रमण करता है।

तमादाय हराभ्याशमागमद्गणनायकः।
निपात्य रक्षिणः सर्वानथ शुक्रं न्यवेदयत्॥ २६॥

समस्त रक्षकों का नाश कर उस शुक्र को पकड़कर नन्दी शिव के समीप आया तथा शुक्र को शिव के सम्मुख प्रस्तुत किया।

तमानीतं कविं शर्वः प्राक्षिपद्वदने प्रभुः।
भार्गवं त्वावृततनुं जठरे स न्यवेशयत्॥ २७॥

लाए हुए उस भार्गव को शक्तिशाली शिव ने मुँह में छिपा लिया तथा विस्तृत शरीर वाले उस भार्गव को अपने पेट में रख लिया।

स शंभुना कविश्रेष्ठो ग्रस्तो जठरमास्थितः।
तुष्टाव भगवन्तं तं मुनिर्वाग्भिरथादरात्॥ २८॥

शंभु के द्वारा पकड़े गए और पेट में रखे गए उस मुनिश्रेष्ठ भार्गव ने अत्यंत आदरपूर्वक उन भगवान् शिव की आराधना करनी प्रारम्भ की—

शुक्र उवाच

वरदाय नमस्तुभ्यं हराय गुणशालिने।
शङ्कराय महेशाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥ २९॥
जीवनाय नमतस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे।
मदनाग्ने कालशत्रो वामदेवाय ते नमः॥ ३०॥

हे गुणशाली वरद हर! आपको नमस्कार है। हे शङ्कर! हे महेश! एवं हे त्र्यम्बक! आपको बार-बार नमस्कार है। हे वृषाकपि! हे लोकनाथ! जीवों के स्वामी! आपको पुन: नमस्कार है, हे मदन को भस्म करने वाले! कालशत्रु, वामदेव आपको नमस्कार है।

स्थाणवे विश्वरूपाय वामनाय सदागते।
महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः॥ ३१॥

स्थाणु, विश्वरूप, वामन, सदागति, महादेव, शर्व, और ईश्वर आपको बार-बार नमस्कार है।

त्रिनयन हर भव शङ्कर उमापते जीमूतकेतो
गुहागृह श्मशाननिरत भूतिविलेपन शूलपाणे
पशुपते गोपते तत्पुरुषसत्तम नमो नमस्ते।

हे त्रिनयन! हे हर! हे भव! हे शङ्कर! हे उमापति! हे जीमूतकेतो! हे गुहागृह! हे श्मशाननिरत! हे भूति-विलेपन! हे शूलपाणे! हे पशुपति! हे गोपति! हे तत्पुरुपसत्तम! आपको बार-बार नमस्कार है।

इत्थं स्तुतः कविवरेण हरोऽथ भक्त्या
प्रीतो वरं वरय दद्मि तवेत्युवाच।
सं प्राह देववर देहि वरं ममाद्य
यद्वै तवैव जठरात् प्रतिनिर्गमोऽस्तु॥ ३२॥

इस प्रकार मुनिवर के द्वारा आदरपूर्वक स्तुति किये जाने पर हर ने प्रसन्न होकर कहा— मैं तुम्हें वर देता हूँ; तुम वर मांगो। उसने कहा— हे देववर! मुझे वर दीजिए कि आपके पेट से मेरा निर्गमन हो जाए।

ततो हरोऽक्षीणि तदा निरुध्य
प्राह द्विजेन्द्राद्य विनिर्गमस्व।
इत्युक्तमात्रो विभुना चचार
देवोदरे भार्गवपुंगवस्तु॥ ३३॥

हर ने आँख मूँदकर कहा— हे द्विजेन्द्र! आज ही निकल जाओ। स्वामी (हर) के इस प्रकार कहने पर वह भार्गवश्रेष्ठ स्वामी के उदर में भ्रमण करने लगा।

परिभ्रमन् ददर्शाथ शंभोरेवोदरे कविः।
भुवनार्णवपातालान् वृतान् स्थावरजङ्गमैः॥ ३४॥

शंभु के उदर में भ्रमण करते हुए ही कपि ने चर और अचर से आवृत्त समस्त भुवनों, महासागरों और पातालों को देखा।

आदित्यान् वसवो रुद्रान् विश्वेदेवान् गणांस्तथा।
यक्षान्किंपुरुषाद्यादीन् गन्धर्वाप्सरसां गणान्॥ ३५॥

भार्गव ने आदित्य, वसुओं, रुद्रों, विश्वेदेवों, गणों, यक्षों, किंपुरुषों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा गणों को देखा।

मुनीन् मनुजसाध्यांश्च पशुकीटपिपीलिकान्।
वृक्षगुल्मान् गिरीन् वल्ल्यः फलमूलौषधानि च॥ ३६॥

भार्गव ने मुनियों, मनुष्यों, साध्यों, पशुकीट-पिपीलिकादियों वृक्ष-समूहों, पर्वतों, लताओं, फलमूलों तथा औषधियों को (देखा)।

स्थलस्थांश्च जलस्थांश्चानिमेषान्निमिषानपि।
चतुष्पदान् सद्विपादन् स्थावरान् जङ्गमानपि॥ ३७॥

भार्गव ने स्थलरथ, जलस्थ, निमिप, अनिमिष, चतुष्पदों, द्विपदों, स्थावर तथा जङ्गमों को देखा।

अव्यक्तांश्चैव व्यक्तांश्च सगुणान्निर्गुणानपि।
स दृष्ट्वा कौतुकाविष्टः परिबभ्राम भार्गवः।
तत्रासतो भार्गवस्य दिव्यः संवत्सरो गतः॥ ३८॥

अव्यक्त और व्यक्त सगुण तथा निर्गुणों को (देखा) यह देखकर कौतुकाविष्ट भार्गव घूमता रहा। इस प्रकार वहाँ निवास करते हुए भार्गव के एक दिव्य वर्ष व्यतीत हो गया।

न चान्तमलभद् ब्रह्मंस्ततः श्रान्तोऽभवत् कविः।
स श्रान्तं वीक्ष्य चात्मानं नालभन्निर्गमं वशी।
भक्तिनम्रो महादेवं शरणनं समुपागमत्॥ ३९॥

हे ब्राह्मण! परंतु वह मुनि उसका पार न पा सका और अत्यंत परिश्रान्त हो गया। उस जितेंद्रिय ने स्वयं को परिश्रान्त देखकर तथा निर्गमन का मार्ग न प्राप्त करते हुए भक्ति एवं विनम्रतापूर्वक महादेव की शरण ली।

शुक्र उवाच

विश्वरूप महारूप विश्वरूपाक्षसूत्रधृक्।
सहस्राक्ष महादेव त्वामहं शरणं गतः॥ ४०॥

शुक्र ने कहा— हे विश्वरूप! महारूप! विश्वरूपाक्ष! सूत्रधारी! सहस्राक्ष! महादेव! मैं आपकी शरण में आया हूँ।

नमोऽस्तु ते शङ्कर शर्व शंभो
सहस्रनेत्राङ्घ्रिभुजङ्गभूषण।
दृष्टैव सर्वान् भुवनांस्तवोदरे
श्रान्तो भवन्तं शरणं प्रपन्नः॥ ४१॥

हे शङ्कर! हे शंभु! हे शर्व! हे सहस्रनेत्र! हे अंध्रिभुजंगभूषणा! आपको नमस्कार है। समस्त लोकों को आपके उदर में देखकर मैं परिश्रान्त होकर आपकी शरण में आया हूँ।

इत्येवमुक्ते वचने महात्मा
शंभुर्वचः प्राह ततो विहस्य।
निर्गच्छ पुत्रोऽसि ममाधुना त्वं
शिश्नेन भो भार्गववंशचन्द्र॥ ४२॥

इस प्रकार के वचन कहे जाने पर महात्मा शंभु ने तब हँस कर कहा— हे भार्गववंशचन्द्र! मेरे जननेन्द्रिय से निकल जाओ। आज से तुम मेरे पुत्र हो।

नाम्ना तु शुक्रेति चराचरास्त्वां
स्तोष्यन्ति नैवात्र विचारमन्यत्।
इत्येवमुक्त्वा भगवान् मुमोच
शिश्नेन शुक्रः स च निर्जगाम॥ ४३॥

समस्त चर और अचर तुम्हें 'शुक्र' नाम से अभिनन्दित करेंगे; इसमें कोई अन्य विचार नहीं है (अर्थात् निश्चय ही तुम्हारी 'शुक्र' नाम से पूजा होगी)। यह कहकर भगवान् ने उसे जननेन्द्रिय से छोड़ दिया और वह बाहर निकल आया।

विनिर्गतो भार्गववंशचन्द्रः
शुक्रत्वमापद्य महानुभावः।
प्रणम्य शंभुं स जगाम तूर्णं
महासुराणां बलमुत्तमौजाः॥ ४४॥

बाहर निकल कर 'शुक्रत्व को प्राप्त' वह महानुभाव भार्गववंशचन्द्र महातेजस्वी शंभु को नमस्कार करके शीघ्रता से महासुरों की सेना की ओर चला गया।

भार्गवे पुनरायाते दानवा मुदिताभवन्।
पुनर्युद्धाय विद्धुर्मतिं सह गणेश्वरैः॥ ४५॥

भार्गव के पुनः आगमन पर दानव अत्यंत प्रसन्न हो गए और उन्होंने गणों के साथ पुनः युद्ध करने का निश्चय किया।

गणेश्वरास्तानसुरान् सहामरगणैरथ।
युयुधुः संकुलं युद्धं सर्व एव जयेप्सवः॥ ४६॥

तदनन्तर देवसमूहों के साथ मिलकर गणेश्वरों ने उन असुरों से भयंकर युद्ध किया। वे सब के सब विजय के इच्छुक थे।

ततोऽसुरगणानां च देवतानां च युध्यताम्।
द्वन्द्वयुद्धं समभवद्घोररूपं तपोधन॥ ४७॥

हे तपोधनी! जब देवसमूह और असुरगण युद्ध कर रहे थे तभी उनका भयंकर द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया।

अन्धको नन्दिनं युद्धे शङ्कुकर्णं त्वयःशिराः।
कुम्भध्वजं बलिर्धीमान्नन्दिषेणं विरोचनः॥ ४८॥

युद्ध में अन्धक ने नन्दी के साथ, अयःशिर ने शंकुवर्ण के साथ, बलि ने कुम्भध्वज के साथ तथा विरोचन ने बुद्धिमान् नन्दीसेन के साथ युद्ध किया।

अश्वग्रीवो विशाखं च शाखो वृत्रमयोधयत्।
वाणस्तथा नैगमेयं बलं राक्षसपुंगवः॥४९॥

अश्वग्रीव ने विशाख के साथ तथा शाख ने वृत्र के साथ युद्ध किया। राक्षसश्रेष्ठ बाण ने निगमपुत्र बल के साथ युद्ध किया।

विनायको महावीर्यः परश्वधधरो रणे।
संक्रुद्धो राक्षसश्रेष्ठं तुहुण्डं समयोधयत्।
दुर्योधनश्च बलिनं घण्टाकर्णमयोधयत्॥५०॥

महाशक्तिशाली विनायक ने परशु को हाथ में धारण किया तथा अत्यंत क्रोधित होकर राक्षसश्रेष्ठ तुहुण्ड के साथ युद्ध किया तथा दुर्योधन ने परम शक्तिशाली घण्टाकर्ण के साथ युद्ध किया।

हस्ती च कुण्डजठरं ह्लादो वीरं घटोदरम्।
एते हि बलिनां श्रेष्ठा दानवाः प्रमथास्तथा।
संयोधयन्ति देवर्षे दिव्याब्दानां शतानि षट्॥५१॥

हस्ती ने कुण्डजठर तथा ह्लाद ने वीर घटोदर के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। हे देवर्षि! बलशालियों में श्रेष्ठ ये दानव और प्रमथ छः सौ दिव्य वर्षों तक युद्ध करते रहे।

शतक्रतुमथायान्तं वज्रपाणिमभिस्थितम्।
वारयामास बलवान् जम्भो नाम महासुरः॥५२॥

बलशाली जम्भ नामक महासुर ने वहाँ आए और समीप खड़े और हाथ में वज्र लिए हुए शतक्रतु (इन्द्र) पर वार किया।

शंभुनामाऽसुरपतिः स ब्रह्माणमयोधयत्।
महौजसं कुजम्भश्च विष्णुं दैत्यान्तकारिणम्॥५३॥

शम्भु नामक असुरपति ब्रह्मा के साथ युद्ध करने लगा तथा कुजम्भ महाशक्तिशाली एवं दानवों के नाशक विष्णु के साथ।

विवस्वन्तं रणे शाल्वो वरुणं त्रिशिरास्तथा।
द्विमूर्धा पवनं सोमं राहुर्मित्रं विरूपधृक्॥५४॥

शाल्व ने विवस्वान को, त्रिशिरा ने वरुण को, द्विमूर्धा ने पवन को, राहु ने चन्द्रमा को तथा विरूपधृक् ने मित्र को युद्ध में ललकारा।

एकदृक् स रणे रौद्रः कालनेमिर्महासुरः।
एकादशैव ये रुद्रास्तानेकोऽपि रणोत्कटः।
योधयामास तेजस्वी विद्युन्माली महासुरः॥५५॥

कालनेमि नामक भयानक महासुर ने तथा एकादश जो रुद्र थे उनको रणोत्कट तेजस्वी विद्युन्माली नामक महासुर ने युद्ध में लगा लिया।

द्वावश्विनौ च नरको भास्करानेव शम्बरः।
साध्यान् मरुद्गणांश्चैव निवातकवचादयः॥५६॥

दोनों अश्विनी को नरक ने, भास्करों को शम्बर ने, साध्यों और मरुद्गणों को निवात और कवच आदि ने युद्ध में लगा लिया।

एवं द्वन्द्वसहस्राणि प्रमथामरदानवैः।
कृतानि च सुराब्दानां दशतीः षट् महामुने॥५७॥

हे महामुनि! इस प्रकार प्रमथ देवगण और दानवों के सहस्रों युगल साठ दिव्य वर्षों तक युद्ध करते रहे।

यदा न शकिता योद्धुं दैवतैरमरादयः।
तदा मायां समाश्रित्य ग्रसन्तः क्रमशोऽव्ययान्॥५८॥

जब दैत्य देवों से युद्ध करने में असमर्थ हो गए तो माया का आश्रय लेकर उन्होंने देवों को क्रमशः ग्रसना आरंभ कर दिया।

ततोऽभवच्छैलपृष्ठं प्रावृडभ्रसमप्रभैः।
आवृतं वर्जितं सर्वैः प्रमथैरमरैरपि॥५९॥

उस समय वर्षाकालीन मेघों की आभा के समान दैत्यों से पर्वत आच्छादित हो गया और प्रमथों और देवों से सर्वथा रहित हो गया।

दृष्ट्वा शून्यं गिरिप्रस्थं ग्रस्तांश्च प्रमथामरान्।
क्रोधादुत्पादयामास रुद्रो जृम्भायिकां वशी॥६०॥

पवर्तस्थल को (दानवों द्वारा ग्रस्त) प्रमथों और देवों से सर्वथा रिक्त होता देखकर वशी रुद्र ने क्रोधवश जम्हाई ली।

तदा स्पृष्टा दनुसुता अलसा मन्दभाषिणः।
वदनं विकृतं कृत्वा मुक्तशस्त्रा विजृम्भिरे॥६१॥

उस जम्हाई के स्पर्श से दानव आलस्ययुक्त और अतएव मन्दभाषी हो गए और मुख खोलकर शस्त्रों को छोड़कर जम्हाई लेने लगे।

विजृम्भमाणेषु च तदा दानवेषु गणेश्वरा:।
सुराश्च निर्ययुस्तूर्णं दैत्यदेहेभ्य आकुला:॥६२॥

जब दानव जम्हाई ले रहे थे तभी व्याकुल गणेश्वर और देवता शीघ्रता से दैत्यों के शरीर से बाहर निकल आए।

मेघप्रभेभ्यो देत्येभ्यो निर्गच्छन्तोऽमरोत्तमा:।
शोभन्ते पद्मपत्राक्षा मेघेभ्य इव विद्युत:॥६३॥

शरीर से काले बादलों के समान दैत्य जब निकल रहे थे तब कमलपत्र के समान नेत्रों वाले देवतागण उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार बादलों में से निकलती हुई विद्युत् चमकती है।

गणामरेषु च समं निर्गतेषु तपोधन।
अयुध्यन्त महात्मानो भूय एवातिकोपिता:॥६४॥

हे तपस्वी! गणों और देवताओं के बाहर आ जाने पर अत्यंत क्रोधित वे महानुभाव पुन: युद्ध करने लगे।

ततस्तु देवै: सगणै: दानवा: शर्वपालितै:।
पराजीयन्त संग्रामे भूयो भूयस्त्वहर्निशम्॥६५॥

शिव के द्वारा प्रतिरक्षित देवताओं और गणों के साथ युद्ध करते हुए दानव रात-दिन पुन: पुन: युद्ध में पराजित होने लगे।

तत्रस्त्रिनेत्र: स्वां संध्यां सप्ताब्दशतिके गते।
कालेऽभ्युपासत तदा सोऽष्टादशभुजोऽव्यय:॥६६॥

तदनन्तर अष्टादश भुजाओं वाले वह अव्यय देव त्रिनेत्र सात सौ वर्षों के पश्चात् संध्या करने लगे।

संस्पृश्याप: सरस्वत्यां स्नात्वा च विधिना हर:।
कृतार्थो भक्तिमान् मूर्ध्ना पुष्पाञ्जलिमुपाक्षिपत्॥६७॥

जल का स्पर्श करके तथा सरस्वती में विधिपूर्वक स्नान करके कृतार्थ हुये भक्तिमान् शिव ने सिर झुका कर पुष्पांजलि अर्पित की।

ततो ननाम शिरसा ततश्चक्रे प्रदक्षिणम्।
हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थे जजाप ह॥६८॥

तदनन्तर उन्होंने सिर झुकाया। फिर प्रदक्षिणा की और तत्पश्चात् आदित्य की 'हिरण्यगर्भादि' से पूजा करके जाप किया।

त्वष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु सम्यगुच्चार्य शूलधृक्।
ननर्त भावगम्भीरं दोर्दण्डं भ्रामयन् बलात्॥६९॥

तदनन्तर शूलधारी शिव ''हे त्वष्टा! आपको बार-बार नमस्कार है'' ऐसा कहते हुये अपनी भुजाओं को बलपूर्वक घुमाते हुए भावविभोर होकर नृत्य करने लगे।

परिनृत्यति देवेशे गणाश्चैवामरास्तथा।
नृत्यन्ते भावसंयुक्ता हरस्यानुविलासिन:॥७०॥

देवेश के इस प्रकार नृत्य करने पर उन के अनुयायी देवता और गण भी भावविभोर होकर नृत्य करने लगे।

संध्यामुपास्य देवेश: परिनृत्य यथेच्छया।
युद्धाय दानवै: सार्द्धं मतिं भूय: समादधे॥७१॥

शिव ने सन्ध्या-उपासना तथा यथेष्ट नृत्य करके दानवों के साथ पुन: युद्ध करने का विचार किया।

ततोऽमरगणै: सर्वैस्त्रिनेत्रभुजपालितै:।
दानवा निर्जिता: सर्वे बलिभिर्भयवर्जितै:॥७२॥

तदनन्तर शिव की भुजाओं से परिरक्षित अतएव निर्भय एवं बलशाली देवताओं ने दानवों को जीत लिया।

स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा मत्वाऽजेयं च शङ्करम्।
अन्धक: सुन्दमाहूय इदं वचनमब्रवीत्॥७३॥

अपनी सेना को हारा हुआ देखकर तथा शिव को अजेय जानकर अन्धक ने सुन्द को बुलाया और उससे इस प्रकार के वचन कहे—

सुन्द भ्राताऽसि मे वीर विश्वास्य: सर्ववस्तुषु।
तद्वदाम्यद्य यद्वाक्यं तच्छ्रुत्वा यत्क्षमं कुरु॥७४॥

हे वीर सुन्द! तुम मेरे भ्राता हो और सब विषयों में मेरे विश्वसनीय हो। तो आज जो मैंने तुमसे कहा है उसे सुनकर जैसा तुम्हारा सामर्थ्य हो वैसा करो। यथासंभव मेरी सहायता करो।

दुर्जयोऽसौ रणपटुर्धर्मात्मा कारणान्तरै:।
समासते हि हृदये पद्माक्षी शैलनन्दिनी॥७५॥

फिर, रणकुशल और धर्मात्मा शिव अनेक कारणों से अजेय हैं। वह पद्माक्षी शैलकुमारी (पार्वती) मेरे हृदय में विराजमान हो गई है।

तदुत्तिष्ठस्व गच्छामो यत्रास्ते चारुहासिनी।
तत्रैनां मोहयिस्यामि हररूपेण दानव॥७६॥

तो, हे दानव! उठो, हम वहीं जाते हैं जहाँ वह चारुहासिनी विराजमान है। वहाँ शिव का रूप धारण कर के उसे भ्रमित करेंगे।

भवान्भवस्यानुचरो भव नन्दी गणेश्वरः।
ततो गत्वाऽथ भुक्त्वा तां जेष्यामि प्रमथान्सुरान्॥७७॥

तुम शिव के अनुचर गणेश्वर नन्दी बन जाओ। वहाँ जाकर उसका उपभोग करके मैं प्रमथों और देवों को जीत लूँगा।

इत्येवमुक्ते वचने बाढं सुन्दोऽभ्यभाषत।
समजायत शैलादिरन्धकः शङ्करोऽप्यभूत्॥७८॥

अन्धक के इस प्रकार कहने पर 'सुन्द' ने इस प्रकार कहा 'अच्छा'। वह नन्दी बन गया और अन्धक शिव बन गया।

नन्दिरुद्रौ ततो भूत्वा महासुरचमूपती।
संप्राप्तौ मन्दरगिरिं प्रहारैः क्षतविग्रहौ॥७९॥

वे दोनों दानवसेनानायक नन्दी और शिव का रूप धारण करके अस्त्रप्रहारों से घायल शरीर वाले बनकर मन्दर पर्वत पर जा पहुँचे।

हस्तमालम्ब्य सुन्दस्य अन्धको हरमन्दिरम्।
विवेश निर्विशङ्केन चित्तेनासुरसत्तमः॥८०॥

सुन्द का हाथ पकड़ कर वह अन्धक पूर्णतः निर्भीक चित्त से शिव के गृह में प्रवेश कर गया।

ततो गिरिसुता दूरादायान्तं वीक्ष्य चान्धकम्।
महेश्वरवपुश्छन्नं प्रहारैर्जर्जरच्छविम्॥८१॥
सुन्दं शैलादिरूपस्थमवष्टभ्याविशत्ततः।
तं दृष्ट्वा मालिनीं प्राह सुययां विजयां जयाम्॥८२॥

तदनन्तर प्रहारों से क्षत-विक्षत शरीर वाले शिव का वेश धारण किये अन्धक को दूर से आते हुये तथा उसके पीछे नन्दी के रूप में सुन्द को देखकर पार्वती शीघ्र ही भीतर प्रविष्ट हुईं तथा उनको देखकर सुयशा, मालिनी जया और विजया से बोलीं—

जये पश्यस्व देवस्य मदर्थे विग्रहं कृतम्।
शत्रुभिर्दानववरैस्तदुत्तिष्ठस्व सत्वरम्॥८३॥
घृतमानय पौराणं बीजिकां लवणं दधि।
व्रणभङ्गं करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः॥८४॥

हे जया! देखो! मेरे लिये स्वामी के शरीर को शत्रु दानवों ने किस प्रकार क्षत-विक्षत कर दिया है। इसीलिए शीघ्र उठो; पुराना घी, वीजिका (जंभीरी), लवण और दही ले आओ। मैं स्वयं पिनाकी के घावों की शुश्रूषा करूँगी।

कुरुष्व शीघ्रं सुयशे स्वभर्तुर्व्रणनाशनम्।
इत्येवमुक्त्वा वचनं समुत्थाय वरासनात्॥८५॥
अभ्युद्ययौ तदा भक्त्या मन्यमाना वृषध्वजम्।
शूलपाणेस्ततः स्थित्वा रूपं चिह्नानि यत्नतः॥८६॥
अन्विवेष ततो ब्रह्मन्नोभौ पार्श्वस्थितौ वृषौ।
सा ज्ञात्वा दानवं रौद्रं मायाच्छादितविग्रहम्॥८७॥
अपयानं तदा चक्रे गिरिराजसुता मुने।
देव्याश्चिन्तितमाज्ञाय सुन्दं त्यक्त्वान्धकोऽसुरः॥८८॥
समाद्रवत वेगेन हरकान्तां विभावरीम्।
समाद्रवत दैतेयो येन मार्गेण साऽगमत्॥८९॥
अपस्कारान्तरं भञ्जन् पादप्लुतिभिराकुलः।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव गिरिजा प्राद्रवद्भयाद्॥९०॥

"हे सुयशा! अपने स्वामी के घावों की शीघ्र शुश्रूषा करो" यह कहकर अपने श्रेष्ठ आसन से उठकर वह उन्हें वृषध्वज समझती हुई भक्तिपूर्वक उसके समीप गयी। तदनन्तर वह शूलपाणि के स्वरूप और चिह्नों को प्रयत्नपूर्वक देखने लगीं। हे ब्राह्मण! हे मुनि! तब माया से प्रच्छन्नस्वरूप वाले उस भयानक दैत्य को जानकर गिरिराज नंदिनी वहाँ से भाग निकलीं। देवी के विचार को जानकर असुर अन्धक सुन्द को छोड़कर रूपवती शिव-भार्या के पीछे भागा। जिस मार्ग से गिरिजा भाग रही थी वह उसी रास्ते से दौड़ा। अत्यंत व्याकुलतावश छलांगे लगाने के कारण अपने पैरों के तलवों को घायल करता हुआ वह उनके पीछे दौड़ा। उसको समीप आया देखकर गिरिजा भयभीत होकर भागने लगीं।

गृहं त्यक्त्वा ह्युपवनं सखिभिः सहिता तदा।
तत्राप्यनुजगामासौ मदान्धो मुनिपुंगव॥९१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर घर को छोड़कर वह सखियों सहित उपवन में जा पहुँचीं। उस मदान्ध अन्धक ने वहाँ भी उनका पीछा किया।

तथापि न शशापैनं तपसो गोपनाय तु।
तद्भयादाविशद्गौरी श्वेतार्ककुसुमं शुचि॥ ९२॥

फिर भी (गिरिजा ने) अपनी तपस्या की रक्षा के लिये उसे शाप नहीं दिया और पवित्र गौरी भयवश श्वेत अर्क पुष्प में प्रवेश कर गईं।

विजयाद्या महागुल्मे संप्रयाता लयं मुने।
नष्टायामथ पार्वत्यां भूयो हैरण्यलोचनिः॥ ९३॥
सुन्दं हस्ते समादाय स्वसैन्यं पुनरागमत्।
अन्धके पुनरायाते स्वबलं मुनिसत्तम॥ ९४॥
प्रावर्तत महायुद्धं प्रमथासुरयोरथ।
ततोऽमरगणश्रेष्ठो विष्णुश्चक्रगदाधरः॥ ९५॥
निजघानासुरबलं शङ्करप्रियकाम्यया।
शार्ङ्गचापच्युतैर्बाणैः संस्यूता दानवर्षभाः॥ ९६॥
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ वा ब्रध्नपादैर्घना इव।
गदया कांश्चिदवधीत् चक्रेणान्यान् जनार्दनः॥ ९७॥

हे मुनि! विजया तथा अन्य सखियाँ भी वृक्ष-समूह के मध्य में छिप गईं। जब पार्वती लुप्त हो गयी, तो हिरण्याक्षपुत्र अन्धक सुन्द का हाथ पकड़कर अपनी सेना के पास चला गया। हे मुनिश्रेष्ठ! अन्धक के अपनी सेना में पुनः श्रेष्ठ देव लौट आने पर प्रमथों और असुरों में भयानक युद्ध हुआ। तब चक्रगदाधारी विष्णु ने शिव की हितेच्छा से दैत्यबल का विनाश कर डाला। शार्ङ्गधनुष से निकले बाणों के द्वारा -पाँच, छह, सात, आठ अनेक श्रेष्ठ दानव मारे गए उसी प्रकार जैसे सूर्य की किरणों से मेघ नष्ट होते हैं। जनार्दन ने कुछ दानवों को गदा से, तो अन्यों को चक्र से मार डाला।

खड्गेन च चकर्तान्यान् दृष्ट्यान्यान् भस्मसाद् व्यधात्।
हलेनाकृष्य चैवान्यान् मुसलेन व्यचूर्णयत्॥ ९८॥

जनार्दन ने कुछ दानवों को खड्ग से काट डाला तो अन्यों को दृष्टिपात से भस्मसात् कर दिया। उन्होंने कुछ को हल से खींचकर मारा, तो अन्यों को मूसल से चूर्ण-चूर्ण कर दिया।

गरुडः पक्षपाताभ्यां तुण्डेनाप्युरसाऽहनत्।
स चादिपुरुषो धाता पुराणः प्रपितामहः॥ ९९॥
भ्रामयन्विपुलं पद्ममभ्यषिञ्चत वारिणा।
संस्पृष्टा ब्रह्मतोयेन सर्वतीर्थमयेन हि॥ १००॥
गणामरगणाश्चासन् नवनागशताधिकाः।
दानवास्तेन तोयेन संस्पृष्टाश्चाघहारिणा॥ १०१॥
सवाहनाः क्षयं जग्मुः कुलिशेनेव पर्वताः।
दृष्ट्वा ब्रह्महरी युद्धे घातयन्तौ महासुरान्॥ १०२॥
शतक्रतुश्च दुद्राव प्रगृह्य कुलिशं बलि।
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बलो दानवसत्तमः॥ १०३॥
मुक्त्वा देवं गदापाणिं विमानस्थं च पद्मजम्।
शक्रमेवाद्रवत् योद्धुं मुष्टिमुद्यम्य नारद।
बलवान् दानवपतिरजेयो देवदानवैः॥ १०४॥

गरुड़ ने अपने पंखों के प्रहार से, चोंच से तथा वक्षस्थल से उन दैत्यों को मारा। आदिपुरुष, धाता एवं पुरातन प्रपितामह ने अपने विशाल कमल को घुमाते हुए देवों पर पवित्र जल छिड़का। उस सर्वतीर्थमय जल की छींटों का स्पर्श पाकर वे गण तथा देवगण सैकड़ों पर्वतों से भी अधिक शक्तिशाली हो गये। उस पापनाशक जल के स्पर्श से अपने वाहनों सहित दैत्यगण उसी प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार वज्र से आहत पर्वत नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा और विष्णु को युद्ध में महान् असुरों का वध करते हुए देखकर बलशाली इन्द्र ने अपना कुलिश उठाकर उन पर आक्रमण किया। हे नारद! उनको आक्रमण के लिए आते देखकर दानवश्रेष्ठ बल ने गदापाणि विष्णु को तथा विमानस्थ ब्रह्मा को छोड़ दिया और मुष्टि उठाकर इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। बलवान् दानवपति देवों और दानवों के द्वारा अजेय था।

तमापतन्तं त्रिदशेश्वरस्तु
दोर्ष्णां सहस्रेण यथाबलेन।
व्रजं परिभ्राम्य बलस्य मूर्ध्नि
चिक्षेप हे मूढ हतोऽस्युदीर्य॥ १०५॥

आक्रमण के लिए आते हुये उसे देखकर त्रिदशेश्वर इन्द्र ने सहस्र भुजाओं से अपनी शक्ति को भरा और "हे मूर्ख! तुम मारे गए" - कहते हुये वज्र को घुमाकर बलि के सिर पर फेंका।

स तस्य मूर्ध्नि प्रवरोऽपि वज्रो
जगाम तूर्णं हि सहस्रधा मुने।
बलोऽद्रवद्देवपतिश्च भीतः
पराङ्मुखोऽभूत्सुमरान्महर्षे॥ १०६॥

हे मुनि! वह श्रेष्ठ वज्र भी उस के सिर पर टकराकर शीघ्र ही सहस्रों टुकड़ों में विभक्त हो गया। बल इन्द्र की ओर दौड़ा; और हे महर्षि! तब देवपति इन्द्र भयभीत होकर युद्ध से पराङ्मुख होकर भाग खड़े हुए।

तं चापि जम्भो विमुखं निरीक्ष्य
भूत्वाऽग्रतः प्राह न युक्तमेतत्॥
तिष्ठस्व राजाऽसि चराचरस्य
न राजधर्मे गदितं पलायनम्॥ १०७॥

उस (इन्द्र) को पराङ्मुख देखकर जम्भ ने सामने आकर कहा— रुक जाओ! यह उचित नहीं है, तुम चराचर के स्वामी हो। राजधर्म में युद्ध से पलायन करना उचित नहीं माना गया है।

सहस्राक्षो जम्भवाक्यं निशम्य
भीतस्तूर्णं विष्णुमागान्महर्षे।
उपेत्याह श्रूयतां वाक्यमीश
त्वं मे नाथो भूतभव्येश विष्णो॥ १०८॥

हे महर्षि! जम्भ के वाक्य को सुनकर भयभीत इन्द्र शीघ्रता से विष्णु के पास पहुँचे और समीप पहुँचकर बोले-हे ईश! हे भूतभव्येश! हे विष्णु! आप मेरे स्वामी हैं। सुनिये!

जम्भस्तर्जयतेऽत्यर्थं मां निरायुधमीक्ष्य हि।
आयुधं देहि भगवन् त्वामहं शरणं गतः॥ १०९॥

मुझे निरायुध (अस्त्रहीन) देखकर जम्भ अत्यधिक डरा रहा है! हे भगवन्! कृपया मुझे आयुध दीजिए; मैं आपकी शरण में हूँ!

तमुवाच हरिः शक्रं त्यक्त्वा दर्पं व्रजाधुना।
प्रार्थयस्वायुधं वह्निं स ते दास्यत्यसंशयम्॥ ११०॥

विष्णु ने इन्द्र से कहा— हे इन्द्र! दर्प को छोड़कर तुम अग्नि के पास जाओ और आयुध के लिए प्रार्थना करो। वे तुम्हें आयुध निश्चय ही दे देंगे।

जनार्दनवचः श्रुत्वा शक्रस्त्वरितविक्रमः।
शरणं पावकमगादिदं चोवाच नारद॥ १११॥

हे नारद! जनार्दन के वचन को सुनकर इन्द्र अत्यंत शीघ्रता से अग्नि की शरण में गया और अग्नि से इस प्रकार बोला—

शक्र उवाच

निघ्नतो मे बलं वज्रं कृशानो शतधा गतम्।
एष चाहूयते जम्भस्तस्मादे ह्यायुधं मम॥ ११२॥

शक्र ने कहा— हे कृशानु! बल पर प्रहार करते हुए मेरा वज्र शत खण्डों में टूट गया है। जम्भ मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है; कृपया मुझे आयुध दीजिए।

पुलस्त्य उवाच

तमाह भगवान्वह्निः प्रीतोऽस्मि तव वासव।
यत्त्वं दर्पं परीत्यज्य मामेव शरणं गतः॥ ११३॥

पुलस्त्य ने कहा— भगवान् अग्नि ने उससे कहा— हे इन्द्र! मैं प्रसन्न हूँ कि तुम दर्प छोड़कर मेरी शरण में आये हो।

इत्युच्चार्य स्वशक्त्यास्तु शक्तिं निष्क्राम्य भावतः।
प्रादादिन्द्राय भगवान्रोचमानो दिवं गतः॥ ११४॥

ऐसा कहकर उसने अपनी शक्ति से प्रेमपूर्वक एक शक्ति निकालकर इन्द्र को दे दिया। भगवान् इन्द्र सुशोभित होते हुए स्वर्गलोक को चल दिये।

तामादाय तदा शक्तिं शतघण्टां सुदारुणाम्।
प्रत्युद्ययौ तदा जम्भं हन्तुकामोऽरिमर्दनः॥ ११५॥

सौ घण्टाओं वाली उस अत्यंत भयंकर शक्ति को लेकर शत्रुनाशक इन्द्र जम्भ को मारने की इच्छा से उसके पास आया।

तयातियशसा दैत्यः सहसैवाभिसंद्रुतः।
क्रोधं चक्रे तदा जम्भो निजघान गजाधिपम्॥ ११६॥

अत्यंत यशस्वी इन्द्र के द्वारा सहसा आक्रमण किये जाने पर जम्भ क्रोधित हो गया और उसने गजाधिप ऐरावत पर प्रहार किया।

जम्भमुष्टिनिपातेन भग्नकुम्भकटो गजः।
निपपात यथा शैलः शक्रवज्रहतः पुरा॥ ११७॥

जम्भ के मुष्टिप्रहार से आहत मस्तक और कनपटी वाला वह गज उसी प्रकार गिर पड़ा जैसे प्राचीनकाल में वज्र से आहत होकर पर्वत गिर पड़ा था।

पतमानाद् द्विपेन्द्रात्तु शक्रश्चाप्लुत्य वेगवान्।
त्यक्त्वैव मन्दरगिरिं पपात वसुधातले॥ ११९॥

गिरते हुए हाथी से इन्द्र वेगपूर्वक उछले और मन्दरगिरि को छोड़कर पृथ्वीतल पर गिरे।

पतमानं हरिं सिद्धाश्चारणाश्च तदाऽब्रुवन्।
मा मा शक्र पतस्वाद्य भूतले तिष्ठ वासव॥ १२०॥

तब सिद्धों और चारणों ने उस गिरते हुए इन्द्र से कहा— हे इन्द्र! भूमि पर मत गिरो! हे इन्द्र! रुक जाओ!

स तेषां वचनं श्रुत्वा योगी तस्थौ क्षणं तदा।
प्राह चैतान् कथं योत्स्ये अपः शत्रुभिः सह॥ १२१॥

उनके वचन को सुनकर योगी इन्द्र क्षण भर के लिये ठहर गये और बोले-मैं वाहनहीन होकर शत्रुओं के साथ किस प्रकार युद्ध करूँ?

तमूचुर्देवगन्धर्वा मा विषादं व्रजेश्वर।
युध्यस्व त्वं समारुह्य प्रेषयिष्याम यद् रथम्॥ १२२॥

देवों और गंधर्वो ने उनसे कहा— हे स्वामी! दुःखी मत होओ, हम जो रथ भेजेंगे उस पर बैठ कर युद्ध करो।

इत्येवमुक्त्वा विपुलं रथं स्वस्तिकलक्षणम्।
वानरध्वजसंयुक्तं हरिभिर्हरिभिर्युतम्॥ १२३॥
शुद्धजाम्बूनदमयं किङ्किणीजालमण्डितम्।
शक्राय प्रेषयामासुर्विश्वावसुपुरोगमाः॥ १२४॥

इस प्रकार कहकर विश्वावसु इत्यादि देवों ने शुभ लक्षणों से युक्त, वानरध्वज से समन्वित, हरित वर्ण के अश्वों से खींचा जाता हुआ, शुद्ध स्वर्ण से मण्डित तथा घंटियों के समूह से सुशोभित एक विशाल रथ इन्द्र के लिए भेजा।

तमागतमुदीक्ष्याथ हीनं सारथिना हरिः।
प्राह योत्स्ये कथं युद्धे संयमिष्ये कथं हयान्॥ १२५॥

सारथि से रहित उस उपस्थित रथ को देखकर इन्द्र बोले— मैं किस प्रकार युद्ध में लड़ूँगा तथा किस प्रकार घोड़ों को नियंत्रित करूँगा?

यदि कश्चिच्च सारथ्यं करिष्यति ममाधुना।
ततोऽहं घातये शत्रून्नान्यथेति कथंचन॥ १२६॥

यदि आज कोई मेरा सारथि बने तो मैं शत्रु को मार सकता हूँ अन्यथा किसी प्रकार नहीं!

ततोऽब्रुवंस्ते गन्धर्वा नास्माकं सारथिर्विभो।
विद्यते स्वयमेवाश्वांस्त्वं संयन्तुमिहार्हसि॥ १२७॥

तब उन गंधर्वों ने कहा— हे विभु! हमारे पास कोई सारथि नहीं है, इसलिए तुम स्वयं ही अपने अश्वों पर नियंत्रण करो।

इत्येवमुक्ते भगवांस्त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
क्ष्मातलं निपपातैव परिभ्रष्टस्रगम्बरः॥ १२८॥
चलन्मौलिर्मुक्तकचं परिभ्रष्टायुधाङ्गदः।
पतमानं सहस्राक्षं दृष्ट्वा भूः समकम्पत॥ १२९॥

ऐसा कहने पर भगवान् इन्द्र उस उत्तम रथ को छोड़कर भूमि पर गिर पड़े। उनकी माला और वस्त्र अस्त व्यस्त हो गए, मुकुट टेढ़ा हो गया, बाल खुल गए, आयुध और आभूषण गिर गए। इन्द्र को गिरते हुए देखकर पृथ्वी काँपने लगी।

पृथिव्यां कम्पमानायां शमीकर्षेस्तपस्विनी।
भार्याऽब्रवीत् प्रभो बालं बहिः कुरु यथासुखम्॥ १३०
स तु शीलावचः श्रुत्वा किमर्थमिति चाब्रवीत्।
सा चाह श्रूयतां नाथ दैवज्ञपरिभाषितम्॥ १३१॥
यदेयं कम्पते भूमिस्तदा प्रक्षिप्यते बहिः।
यद्वाह्यतो मुनिश्रेष्ठ तद्भवेद्द्विगुणं मुने॥ १३२॥

पृथ्वी के काँपने पर शमीक ऋषि की तपस्विनी पत्नी ने कहा— स्वामी! बालक को प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकालिये। उस शालिनी के वचन को सुनकर ऋषि ने कहा— किसलिये? तब पत्नी ने कहा— नाथ! हे मुनिश्रेष्ठ! ज्योतिषियों के कथनानुसार जब यह भूमि काँपती है, तब जो भी बाहर निकाला जाता है वह दो गुना हो जाता है।

एतद्वाक्यं तदा श्रुत्वा बालमादाय पुत्रकम्।
निराशङ्को बहिःशीघ्रं प्राक्षिपत् क्ष्मातले द्विजः॥ १३३॥

इस बात को सुनकर उस ब्राह्मण ने अपने बालक पुत्र को लिया और निःशंक होकर शीघ्र ही बाहर फेंक दिया।

भूयो गोयुगलार्थाय प्रविष्टो भार्यया द्विजः।
निवारितो गता वेला अर्द्धहानिर्भविष्यति॥ १३४॥

पुनः गौ को भी युगल करने के लिये वह घर के भीतर प्रविष्ट होने लगे। परन्तु उनकी पत्नी ने उन्हें (यह कहते हुए) रोक लिया कि अब समय व्यतीत हो चुका है, अब अर्धांश की हानि हो जाएगी।

इत्येवमुक्ते देवर्षिर्वहिर्निर्गम्य वेगवान्।
ददर्श वालद्वितयं समरूपमवस्थितम्॥ १३५॥

हे देवर्षि! इस प्रकार कहने पर वेग के साथ बाहर निकलकर ऋषि ने समान रूप वाले बालयुगल को देखा।

तं दृष्ट्वा देवताः पूज्य भार्यां चाद्धुतदर्शनाम्।
प्राह तत्त्वं न विन्दामि यत्पृच्छामि वदस्व तत्॥ १३६

उस बालक को देखकर देवताओं की पूजा करने के उपरान्त उन्होंने अपनी अद्भुतदर्शना विदुषी पत्नी से कहा— मैं इसका तत्त्व नहीं जान पा रहा हूँ; इसलिये जो पूछता हूँ कृपया बताओ!

वालस्यास्य द्वितीयस्य के भविष्यद् गुणा वद।
भाग्यानि चास्य यच्चोक्तं कर्म तत् कथयाधुना॥ १३७॥

इस दूसरे बालक के क्या गुण होंगे, यह भी बताओ कि इसके भाग्य और कर्म कैसे होंगे?

साऽव्रवीन्नाद्य ते वक्ष्ये वदिष्यामि पुनः प्रभो।
सोऽव्रवीद् वद मेऽद्यैव नोचेन्नाश्नामि भोजनम्॥ १३८

पत्नी ने कहा— हे स्वामी! आज नहीं बताऊँगी। तब वह ऋषि बोले-अभी बताओ! नहीं तो मैं भोजन नहीं करूँगा।

सा प्राह श्रूयतां ब्रह्मन् वदिष्ये वचनं हितम्।
कातरेणाद्य यत्पृष्टं भाव्यं कारुरयं किल॥ १३९॥

उसने कहा— हे ब्राह्मण! सुनिये; हितकारी वचन कहूँगी; आपने कातरभाव से जो पूछा है— यह निश्चय ही शिल्पी होगा।

इत्युक्त्वति वाक्ये तु वाल एव त्वचेतनः।
जगाम साह्यं शक्रस्य कर्तुं सौत्यविशारदः॥ १४०॥

ऐसा कहने पर वह सूतकर्म में निपुण अबोध बालक शीघ्र ही इन्द्र का सौत्यधर्म करने के लिए चला गया।

तं व्रजन्तं हि गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः।
ज्ञात्वेन्द्रस्यैव साहाय्ये तेजसा समवर्धयन्॥ १४१॥

इन्द्र की सहायता के लिये जाते हुए उस बालक को देखकर विश्वावसु आदि ने उसे शक्ति से सम्पन्न कर दिया।

गन्धर्वतेजसा युक्तः शिशुः शक्रं समेत्य हि।
प्रोवाचैह्येहि देवेश प्रियो यन्ता भवामि ते॥ १४२॥

गंधर्वतेज से युक्त वह बालक इन्द्र के समीप जाकर बोला— हे देवेश! मैं आपका प्रिय सारथी बनूँगा!

तच्छुत्वास्य हरिः प्राह कस्य पुत्रोऽसि बालक।
संयन्ताऽसि कथं चाश्वान् संशयः प्रतिभाति मे॥ १४३

यह सुनकर इन्द्र ने कहा— हे बालक! तुम किसके पुत्र हो? और किस प्रकार तुम अश्वों को नियन्त्रित करोगे! इसमें मुझे संशय है।

सोऽब्रवीदृषितेजोत्थं क्ष्माभवं विद्धि वासव।
गन्धर्वतेजसा युक्तं वाजियानविशारदम्॥ १४४॥

उसने कहा— हे इन्द्र! मुझे ऋषि के तेज से उत्थित भूमि से उत्पन्न, गंधर्वतेज से संपन्न तथा सारथिकर्म में विशारद जानिये!

तच्छुत्वा भगवाञ्छक्रः खं भेजे योगिनां वरः।
स चापि विप्रतनयो मातलिर्नामविश्रुतः॥ १४५॥

यह सुनकर योगिश्रेष्ठ इन्द्र आकाश में चले गए। 'मातलि' नाम से विख्यात वह ब्राह्मणपुत्र भी आकाश में चला गया।

ततोऽधिरूढस्तु रथं शक्रस्त्रिदशपुंगवः।
रश्मीन् शमीकतनयो मातलिः प्रगृहीतवान्॥ १४६॥

तदनन्तर सुरश्रेष्ठ इन्द्र रथ पर आरूढ़ हुये जबकि शमीकपुत्र मातलि ने रश्मियों को पकड़ लिया।

ततो मन्दरमागम्य विवेश रिपुवाहिनीम्।
प्रविशन् ददृशे श्रीमान् पतितं कार्मुकं महत्॥ १४७॥

सशरं पञ्चवर्णाभिं सितरक्तासितारुणम्।
पाण्डुच्छायं सुरश्रेष्ठस्तं जग्राह समार्गणम्॥ १४८॥

तदनन्तर मन्दर पर्वत पर पहुँचकर शत्रुसेना में प्रविष्ट हो गये। प्रवेश करते हुए श्रीमान् ने एक विशाल धनुष

को गिरते हुए देखा जो पाँच रंग— श्वेत, रक्त, श्याम, अरुण, एवं पीत के बाणों से युक्त था। सुरश्रेष्ठ ने उस धनुष को बाणों सहित उठा लिया।

ततस्तु मनसा देवान् रज:सत्त्वतमोमयान्।
नमस्कृत्य शरं चापे साधिज्ये विनियोजयत्॥ १४९॥

तदनन्तर मन से रत्व रजस् और तमोमय (ब्रह्मा विष्णु और महेश) देवों को नमस्कार करके प्रत्यञ्चासहित धनुष पर बाण को रखा।

ततो निश्चेरुरत्युग्रां शरा बर्हिणवाससः।
ब्रह्मेशविष्णुनामाङ्का सूदयन्तोऽसुरान् रणे॥ १५०॥

तदनन्तर उससे ब्रह्मा, शिव और विष्णु के नामों से अंकित मयूरपंखो से सुसज्जित अत्यंत भयानक बाण निकले और युद्ध में शत्रु का नाश करने लगे।

आकाशं विदिश: पृथ्वीं दिशश्च स शरोत्करैः।
सहस्राक्षोऽतिपटुभिश्छादयामास नारद॥ १५१॥

हे नारद! सहस्राक्ष इन्द्र ने उस अत्यंत कुशल शर-विन्यास से आकाश, पृथ्वी दिशाओं और उपदिशाओं को आच्छादित कर दिया।

गजो विद्धो हयो भिन्नः पृथिव्यां पतितो रथः।
महामात्रो धरां प्राप्तः सद्यः सीदञ्छरातुरः॥ १५२॥

हाथी का छेदन हो गया, अश्व टूट गया तथा रथी पृथ्वी पर गिर पड़ा और उन शरों से आहत एवं व्याकुल गजवाहक भूमि पर गिर पड़ा।

पदातिः पतितो भूमौ शक्रमार्गणताडितः।
हतप्रधानभूयिष्ठं बलं तदभवद् रिपो॥ १५३॥

इन्द्र के बाणों से आहत होकर पदाति भूमि पर गिर पड़े। शत्रु की अधिकतर सेना नष्ट हो गई।

तं शक्रबाणाभिहतं दुरासदं
सैन्यं समालक्ष्य तदा कुजम्भः।
जम्भासुरश्चापि सुरेशमव्ययं
प्रजग्मतुर्गृह्य गदे सुघोरे॥ १५४॥

तब उस दुर्धर्ष सेना को इन्द्र के बाणों से निहत हुई देखकर असुर कुजम्भ और जम्भ भयंकर गदा लेकर अविनाशी सुरेन्द्र की ओर दौड़े।

तावापतन्तौ भगवान् निरीक्ष्य
सुदर्शनेनारिविनाशनेन।
विष्णुः कुजम्भं निजघान वेगात्
स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः॥ १५५॥

उन दोनों को आक्रमण के लिए आते हुए देखकर भगवान् विष्णु ने शत्रुविनाशक सुदर्शन के द्वारा कुजम्भ पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह प्राणहीन होकर रथ से भूमि पर गिर पड़ा।

तस्मिन्हते भ्रातरि माधवेन
जम्भस्ततः क्रोधवशं जगाम।
क्रोधान्वितः शक्रमुपाद्रवद् रणे
सिंहं यथैणोऽतिविपन्नबुद्धिः॥ १५६॥

माधव के द्वारा अपने भाई के मारे जाने पर जम्भ क्रुद्ध हो उठा और क्रोधान्वित होकर युद्ध में इन्द्र की ओर उसी प्रकार दौड़ा जैसे विपन्नबुद्धि मृग सिंह की ओर दौड़ता है।

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य शक्र-
स्त्यक्त्वैव चापं सशरं महात्मा।
जग्राह शक्तिं यमदण्डकल्पां
तामग्निदत्तां रिपवे ससर्ज॥ १५७॥

उसको आक्रमण के लिए आते हुए देखकर महात्मा इन्द्र ने शरसहित धनुष को छोड़ा और यम के दण्ड के समान शक्ति को धारण किया। फिर अग्निप्रवृत्त उस शक्ति को शत्रु की ओर छोड़ दिया।

शक्तिं सघण्टां कृतनिःस्वनां वै
दृष्ट्वा पतन्तीं गदया जघान।
गदां च कृत्वा सहसैव भस्मसाद्
विभेद जम्भं हृदये च तूर्णम्॥ १५८॥

घोर ध्वनि करती हुई घण्टायुक्त उस शक्ति को आते हुए देखकर जम्भ ने उस पर गदा से प्रहार किया। उस शक्ति गदा को सहसा भस्मसात् करके जम्भ के हृदय को भेद डाला।

शक्त्या स भिन्नो हृदये सुरारिः
पपात भूम्यां विगतासुरेव।

तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
दैत्यास्तु भीता विमुखा बभूवुः॥ १५९॥

शक्ति से छिन्न हृदय वाला वह देवशत्रु प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा। संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिरते हुए जम्भ को देखकर दैत्य भयभीत होकर युद्ध से भाग खड़े हुए।

जम्भे हते दैत्यबले च भग्ने
गणास्तु हृष्टा हरिमर्चयन्तः।
वीर्यं प्रशंसन्ति शतक्रतोश्च
स गोत्रभिच्छर्वमुपेत्य तस्थौ॥ १६०॥

जम्भ के मर जाने पर तथा दैत्यसैन्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर प्रसन्न होकर गण विष्णु की अर्चना करने लगे और शतक्रतु के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। वह गोत्रभिद् (इन्द्र) भी शिव के समीप पहुँच गया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे
जम्भकुजम्भवधो नाम नवषष्टितमोऽध्यायः॥ ६९॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

(अन्धक की पराजय और वर-प्राप्ति)

पुलस्त्य उवाच

तस्मिंस्तदा दैत्यबले च भग्ने
शुक्रोऽब्रवीदन्धकमासुरेन्द्रम्।
एह्येहि वीराद्य गृहं महासुरा
योत्स्याम भूयो हरमेत्य शैलम्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार दैत्य सेना के नष्ट हो जाने पर शुक्र ने असुरेन्द्र अन्धक से कहा— हे महासुर वीर! आओ; आज घर वापस चलते हैं, पर्वत पर आकर शिव से पुनः (कभी और) युद्ध करेंगे।

तमुवाचान्धको ब्रह्मन् न सम्यग्भवतोदितम्।
रणान्नैवापयास्यामि कुलं व्यपदिशन् स्वयम्॥ २॥

अन्धक ने उनसे कहा— हे ब्राह्मण! आपने उचित बात नहीं की। स्वयं को और अपने कुल को कलंकित करते हुए मैं रणभूमि से नहीं भागूँगा।

पश्य त्वं द्विजशार्दूल मम वीर्यं सुदुर्धरम्।
देवदानवगन्धर्वान् जेष्ये सेन्द्रमहेश्वरान्॥ ३॥

हे द्विजोत्तम! आप मेरे दुर्धर्ष पराक्रम को देखिये। इन्द्र और महेश्वर सहित मैं सब देव, दानव और गंधर्वों को जीत लूँगा।

इत्येवमुक्त्वा वचनं हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः।
समाश्वास्याब्रवाच्छंभुं सारथिं मधुराक्षरम्॥ ४॥

हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ने ऐसा कहकर सारथि शंभु को आश्वासन देते हुये निम्न मधुर वचन कहे—

सारथे वाहय रथं हराभ्याशं महाबल।
यावन्निहन्मि बाणौघैः प्रमथामरवाहिनीम्॥ ५॥

हे महाबलशाली सारथि! रथ को शिव के समीप ले चलो! मैं प्रमथों और देवों की सेना का अपने बाण-समूहों से वध करूँगा।

इत्यन्धकवचः श्रुत्वा सारथिस्तुरगांस्तदा।
कृष्णवर्णान् महावेगान् कशयाऽभ्याहनन्मुने॥ ६॥

हे मुनि! तब अन्धक के वचन को सुनकर सारथि ने महावेगवान् कृष्णवर्ण के अश्वों को चाबुक मारा।

ते यत्नतोऽपि तुरगाः प्रेर्यमाणा हरं प्रति।
जघनेष्ववसीदन्तः कृच्छ्रेणोहुश्च तं रथम्॥ ७॥

शिव के प्रति अत्यंत प्रयत्नपूर्वक प्रेरित किए जाने पर भी वे अश्व जंघाओं में घायल होने के कारण उस रथ को अत्यंत कठिनता से ही खींच पा रहे थे।

वहन्तस्तुरगा दैत्यं प्राप्ताः प्रमथवाहिनीम्।
संवत्सरेण साग्रेण वायुवेगसमा अपि॥ ८॥

उस दैत्य को ढोने वाले वे अश्व वायु के समान वेगवान् होने पर भी एक वर्ष से अधिक समय में ही प्रमथों की सेना तक पहुँच पाये।

ततः कार्मुकमानस्य बाणजालैर्गणेश्वरान्।
सुरान् संछादयामास् सेन्द्रोपेन्द्रमहेश्वरान्॥ ९॥

तदनन्तर उसने धनुष को झुकाकर बाणसमूहों से गणेश्वरों तथा इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और महेश्वर सहित सभी देवताओं को आच्छादित कर दिया।

बाणैश्छादितमीक्ष्यैव बलं त्रैलोक्यरक्षिता।
सुरान् प्रोवाच भगवांश्चक्रपाणिर्जनार्दनः॥ १०॥

सेना को बाणों से आच्छादित देखकर त्रिलोक के स्वामी चक्रपाणि भगवान् जनार्दन ने देवताओं से कहा—

विष्णुरुवाच

किं तिष्ठध्वं सुरश्रेष्ठा हतेनानेन वै जयः।
तस्मान्मद्वचनं शीघ्रं क्रियतां वै जयेप्सवः॥ ११॥

विष्णु ने कहा— हे श्रेष्ठ देवों! क्यों (निराश) खड़े हो ? इस (अंधक) के मारे जाने पर ही तुम्हारी विजय होगी। इसलिए विजय के इच्छुक आप सब मेरे वचनों के अनुसार आचरण कीजिए।

शास्यन्तामस्य तुरगाः समं रथकुटुम्बिना।
भज्यतां स्यन्दनश्चापि विरथः क्रियतां रिपुः॥ १२॥

इसके घोड़ों को रथवाहक के साथ मार डालो और रथ को तोड़ कर शत्रु को रथहीन कर डालो।

विरथं तु कृतं पश्चादेनं धक्ष्यति शङ्करः।
नोपेक्ष्यः शत्रुरुद्दिष्टो देवाचार्येण देवताः॥ १३॥

रथहीन करने के अनत्तर इस अन्धक को शिव भस्मसात् कर देंगे। देवाचार्य के अनुसार शत्रु को उपेक्ष्य नहीं समझना चाहिए!

इत्येवमुक्ताः प्रमथा वासुदेवेन सामराः।
चक्रुर्वेगं सहेन्द्रेण समं चक्रधरेण च॥ १४॥

वासुदेव के द्वारा इस प्रकार कहने पर चक्रधारी विष्णु और इन्द्रसहित प्रमथगण तथा देवगण ने वेगपूर्वक आक्रमण किया। ।

तुरगाणां सहस्रं तु मेघाभानां जनार्दनः।
निमिषान्तरमात्रेण गदया विनिपोथयत्॥ १५॥

विष्णु ने क्षणभर में ही मेघ के समान कृष्णवर्ण वाले हजारों अश्वों को गदा से मार डाला।

हताश्वात् स्यन्दनात् स्कन्दः प्रगृह्य रथसारथिम्।
शक्त्या विभिन्न हृदयं गतासुं व्यसृजद्भुवि॥ १६॥

स्कन्द ने मृत अश्वों वाले रथ से सारथि को खींचकर शक्ति से उसका हृदय विदीर्ण कर दिया तथा उसे प्राणहीन करके भूमि पर गिरा दिया।

विनायकाद्याः प्रमथाः समं शक्रेण दैवतैः।
सध्वजाक्षं रथं तूर्णमभञ्जत तपोधनाः॥ १७॥

इन्द्र आदि देवताओं के साथ विनायकादि तपस्वी प्रमथों ने ध्वजा और धुरी सहित उसके रथ को शीघ्रता से तोड़ डाला।

सहसा स महातेजा विरथस्त्यज्य कार्मुकम्।
गदामादाय बलवानभिदुद्राव दैवतान्॥ १८॥

उस रथहीन महातेजस्वी ने अचानक धनुष को छोड़ दिया और गदा उठा ली और देवताओं पर आक्रमण किया।

पदान्यष्टौ ततो गत्वा मेघगम्भीरया गिरा।
स्थित्वा प्रोवाच दैत्येन्द्रो महादेवं स हेतुमत्॥ १९॥

आठ पग चलने के पश्चात् उस दैत्येन्द्र ने मेघ के समान गंभीर वाणी में महादेव से सारगर्भित वचन कहे—

भिक्षो भवान् सहानीकस्त्वसहायोऽस्मि साम्प्रतम्।
तथापि त्वां विजेष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ २०॥

हे भिक्षु! तुम सेनायुक्त हो; जबकि अब मैं असहाय हूँ। तथापि मैं तुम्हें जीत लूँगा। आज मेरा पराक्रम देखो!

तद्वाक्यं शङ्करः श्रुत्वा सेन्द्रासुरगणांस्तदा।
ब्रह्मणा सहितान् सर्वान् स्वशरीरे न्यवेशयत्॥ २१॥

उसके उस वचन को सुनकर शङ्कर ने ब्रह्मा और इन्द्र सहित समस्त देवताओं को अपने शरीर में सन्निविष्ट कर लिया।

शरीरस्थांस्तान् प्रमथान् कृत्वा देवांश्च शङ्करः।
प्राह एह्येहि दुष्टात्मन् अहमेकोऽपि संस्थितः॥ २२॥

समस्त देवों तथा प्रमथों को शरीर में सन्निविष्ट करके शिव ने कहा— हे दुष्टात्मा! आओ देखो! मैं भी अकेला ही खड़ा हूँ।

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सर्वामरगणक्षयम्।
दैत्यः शङ्करमभ्यागाद्गदामादाय वेगवान्॥ २३॥

समस्त देवताओं और गणों के विलयन के उस महान् आश्चर्य को देखकर वह वेगवान् दैत्य शीघ्र ही शङ्कर की ओर दौड़ पड़ा।

तमापतन्तं भगवान्दृष्ट्वा त्यक्त्वा वृषोत्तमम्।
शूलपाणिर्गिरिप्रस्थे पदातिः प्रत्यतिष्ठत॥ २४॥

उसे आक्रमण के लिए आते हुए देखकर भगवान्

शूलपाणि अपने श्रेष्ठ वृषभ को छोड़कर गिरिपृष्ठ पर पैदल ही खड़े हो गए।

वेगेनैवापतन्तं च विभेदोरसि भैरवः।
दारुणं सुमहद् रूपं कृत्वा त्रैलोक्यभीषणः॥ २५॥

विकराल भैरव (शिव) ने त्रिलोक को भयभीत करने वाला विशाल तथा अत्यंत भयानक रूप धारण करके अत्यंत वेगपूर्वक आते हुए उस दैत्य को हृदय से विदीर्ण कर दिया।

दंष्ट्राकरालं रविकोटिसंनिभं
मृगारिचर्माभिवृतं जटाधरम्।
भुजङ्गहारामलकण्ठकन्दरं
विंशार्धबाहुं सषडर्धलोचनम्॥ २६॥

शङ्कर का वह स्वरूप विकराल दाढ़ों वाला, करोड़ों सूर्यों के समान आभायुक्त, मृगचर्माभिवृत, जटाधारी, कण्ठप्रदेश में सर्पों की माला धारण किये हुए, दस भुजाओं वाला तथा तीन नेत्रों वाला था।

एतादृशेन रूपेण भगवान् भूतभावनः।
बिभेद शत्रुं शूलेन शुभदः शाश्वतः शिवः॥ २७॥

इस प्रकार के विकराल स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् भूतभावन शुभदायक, शाश्वत शिव ने त्रिशूल से शत्रु का भेदन किया।

सशूलं भैरवं गृह्य भिन्नेऽप्युरसि दानवः।
विजहारातिवेगेन क्रोशमात्रं महामुने॥ २८॥

हे महामुनि! हृदय विदीर्ण होने पर भी वह दानव त्रिशूलधारी भैरव को पकड़कर उन्हें वेग से एक कोस तक खींच ले गया।

ततः कथंचिद्भगवान् संस्तभ्यात्मानमात्मना।
तूर्णमुत्पाटयामास शूलेन सगदं रिपुम्॥ २९॥

तब किसी प्रकार यत्नपूर्वक भगवान् शिव ने किसी तरह अपने आप को रोका और अपने त्रिशूल से गदासहित उस शत्रु को मार गिराया।

दैत्याधिपस्त्वपि गदां हरमूर्ध्नि न्यपातयत्।
कराभ्यां गृह्य शूलं च समुत्पतत दानवः॥ ३०॥

दैत्याधिपति अन्धक ने फिर भी गदा से शिव के मस्तक पर प्रहार किया और अपने दोनों हाथों से उनके त्रिशूल को पकड़कर उछाला।

संस्थितः स महायोगी सर्वाधारः प्रजापतिः।
गदापातक्षताद्भूरि चतुर्धाऽसृगथापतत्॥ ३१॥

वह महायोगी सर्वाधार प्रजापति शिव उसी अवस्था में खड़े रहे। गदाप्रहार से हुए घाव से निकला रक्त चारों दिशाओं में गिरने लगा।

पूर्वधारासमुद्भूतो भैरवोऽग्निसमप्रभः।
विद्याराजेति विख्यातः पद्ममालाविभूषितः॥ ३२॥

पूर्व की ओर बहने वाली धारा से भैरव उत्पन्न हुआ। वह अग्नि के समान प्रकाशमान कमलमाला से विभूषित होकर 'विद्याराज' नाम से विख्यात हुआ।

तथा दक्षिणधारोत्थो भैरवः प्रेतमण्डितः।
कालराजेति विख्यातः कृष्णाञ्जनसमप्रभः॥ ३३॥

दक्षिण की ओर बहने वाली रक्तधारा से उत्पन्न भैरव काजल के समान प्रभावाला तथा प्रेतमाला से विभूपित था। वह कालराज नाम से विख्यात हुआ।

अथ प्रतीचीधारोत्थो भैरवः पत्रभूषितः।
अतसीकुसुमप्रख्यः कामराजेति विश्रुतः॥ ३४॥

पश्चिम की ओर बहने वाली रक्तधारा से उत्पन्न भैरव पत्रों से सुशोभित था। वह अतसी था, पुष्प के समान आभावाला वह 'कामराज' नाम से विख्यात हुआ।

उदग्धाराभवश्चान्यो भैरवः शूलभूषितः।
सोमराजेति विख्यातश्चक्रमालाविभूषितः॥ ३५॥

उत्तर की ओर बहने वाली रक्तधारा से उत्पन्न भैरव त्रिशूल से सुशोभित था। वह चक्र और माला से सुसज्जित था वह 'सोमराज' नाम से विख्यात हुआ।

क्षतस्य रुधिरात् जातो भैरवः शूलभूषितः।
स्वच्छन्दराजो विख्यातः इन्द्रायुधसमप्रभः॥ ३६॥

घाव के रक्त से उत्पन्न भैरव शूल से सुशोभित था। उसकी आभा इन्द्र के आयुध के समान थी। वह 'स्वच्छन्दराज' नाम से विख्यात हुआ।

भूमिस्थाद् रुधिराज्जातो भैरवः शूलभूषितः।
ख्यातो ललितराजेति सौभाञ्जनसमप्रभः॥ ३७॥

भूमि पर पड़े हुए रक्त से उत्पन्न भैरव शूल से सुशोभित था। उसकी आभा 'सौभाञ्जन' के समान थी। वह 'ललितराज' नाम से प्रख्यात हुआ।

एवं हि सप्तरूपोऽसौ कथ्यते भैरवो मुने।
विघ्नराजोऽष्टमः प्रोक्तो भैरवाष्टकमुच्यते॥ ३८॥

हे मुनि! इस प्रकार भैरव के सात रूप कहे गए हैं। 'विघ्नराज' नामक आठवाँ भैरव माना गया है। इस प्रकार भैरव आठ प्रकार के माने गए हैं।

एवं महात्मना दैत्यः शूलप्रोतो महासुरः।
छत्रवद् धारितो ब्रह्मन् भैरवेण त्रिशूलिना॥ ३९॥

इस प्रकार त्रिशूलधारी महात्मा भैरव ने उस शूलविद्ध महासुर दैत्य को एक छत्र की तरह धारण किया।

तस्यासृगुल्वणं ब्रह्मञ्छूलभेदादवापतत्।
येनाकण्ठं महादेवो निमग्नः सप्तमूर्तिमान्॥ ४०॥

हे ब्रह्मन्! शूल के भेदन से उत्पन्न घाव से प्रचुर रक्त निकला जिसमें ससमूर्तिमान् महादेव आकण्ठ निमग्न हो गए।

ततः स्वेदोऽभवद्भूरि श्रमजः शङ्करस्य तु।
ललाटफलके तस्माज्जाता कन्याऽसृगाप्लुता॥ ४१॥

परिश्रम के कारण शङ्कर के माथे पर बहुत स्वेद उत्पन्न हुआ जिससे एक रक्तरंजित कन्या उत्पन्न हुई।

यद्भूम्यां न्यपतद्विप्र स्वेदबिन्दुः शिवाननात्।
तस्मादङ्गारपुञ्जाभो बालकः समजायत॥ ४२॥

हे ब्राह्मण! शिव के ललाट से जो स्वेदबिन्दु भूमि पर गिर उनसे एक बालक उत्पन्न हुआ। वह बालक अङ्गारसमूह के समान आभावाला था।

स बालस्तृषितोऽत्यर्थं पपौ रुधिरमान्धकम्।
कन्या चोत्कृत्य संजातमसृग्विलिलिहेऽद्भुता॥ ४३॥

वह बालक अत्यधिक प्यासा था। इसलिए उसने अन्धक के रुधिर का पान किया। दूसरी ओर वह अद्भुत कन्या घाव से निकलने वाले रुधिर को चाटने लगी।

ततस्तामाह बालार्कप्रभां भैरवमूर्तिमान्।
शङ्करो वरदो लोके श्रेयोऽर्थाय वचो महत्॥ ४४॥

तदनन्तर जगत् के लिए वरदायक भैरवरूपधारी शङ्कर ने उस कन्या से, जिसकी आभा बालसूर्य (उदीयमान सूर्य) के समान थी, जगत् के कल्याण के लिए निम्न महान् वचन कहे।

त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा ऋषयः पितरोरगाः।
यक्षविद्याधराश्चैव मानावश्च शुभंकरि॥ ४५॥

हे शुभंकरी! देवता, ऋषि, पितृगण, सर्प, यक्ष, विद्याधर एवं मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे।

त्वां स्तोष्यन्ति सदा देवि बलिपुष्पोत्करैः करैः।
चर्चिकेति शुभं नाम यस्माद् रुधिरचर्चिता॥ ४६॥

हे देवी! ये सभी नैवेद्य तथा पुष्पों से परिपूरित हाथों से तुम्हारी अभ्यर्चना करेंगे। क्योंकि तुम रुधिराप्लावित हो, इसलिए तुम्हारा नाम 'चर्चिका' होगा।

इत्येवमुक्ता वरदेन चर्चिका
भूतानुयाता हरिचर्मवासिनी।
महीं समन्ताद्विचचार सुन्दरी
स्थानं गता हैङ्गुलताद्रिमुत्तमम्॥ ४७॥

वरदायक शिव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भूतों की अनुजा वह सुंदरी चर्चिका सिंहचर्म धारण किये हुए भूमि पर चारों ओर घूमने लगी और अन्त में उत्तम हैंगुलता पर्वत पर जा पहुँची।

तस्यां गतायां वरदः कुजस्य
प्रादाद्वरं सर्ववरोत्तमं यत्।
ग्रहाधिपत्यं जगतः शुभाशुभं
भविष्यते त्वद्वशगं महात्मन्॥ ४८॥

उसके चले जाने के पश्चात् वरदायक शिव ने 'कुज' को समस्त वरों में श्रेष्ठ वर दिया कि हे महात्मा! समस्त ग्रहों का आधिपत्य तथा जगत् का शुभ एवं अशुभ तुम्हारे ही वश में होगा।

हरोऽन्धकं वर्षसहस्रमात्रं
दिव्यं स्वनेत्रार्कहुताशनेन।
चकार संशुष्कतनुं त्वशोणितं
त्वगस्थिशेषं भगवान्स भैरवः॥ ४९॥

भगवान् शिव भैरव ने दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त अन्धक को रक्तहीन कर दिया तथा सूर्य और अग्नि रूप अपने

नेत्र से उसके शरीर को सुखा कर उसको अस्थि और त्वचा मात्र वाला बना दिया।

तत्राग्निना नेत्रभवेन शुद्ध
स मुक्तपापोऽसुरराड् बभूव।
ततः प्रजानां वहुरूपमीशं
नाथं हि सर्वस्य चराचरस्य॥५०॥
ज्ञात्वाऽथ सर्वेश्वरमीशमव्ययं
त्रैलोक्यनाथं वरदं वरेण्यम्।
सर्वैः सुराद्यैर्नतमीड्यमाद्यं
ततोऽन्धकः स्तोत्रमिदं चकार॥५१॥

शिव के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से वह असुरराज पवित्र और पापरहित हो गया। तदनन्तर प्रजाओं के स्वामी, विविधरूपधारी, समस्त चराचर जगत् के स्वामी, अव्यय, त्रिलोकनाथ, वरद, वरेण्य, समस्त सुरादि गणों के द्वारा वंदनीय, प्रशंसनीय, आद्य शिव को पहचानकर श्रेष्ठ अन्धक उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा।

अन्धक उवाच

नमोऽस्तु ते भैरव भीममूर्ते
त्रैलोक्यगोप्त्रे शितशूलधारिणे।
विंशार्द्धवाहो भुजगेशहार
त्रिनेत्र मां पाहि विपन्नबुद्धिम्॥५२॥

अन्धक ने कहा— हे भैरव! हे भीम रूपधारी! हे त्रिलोक के रक्षक! हे तीक्ष्ण त्रिशूलधारी! आपको नमस्कार है। हे दस भुजाओं वाले! हे शेषनाग को हाररूप में धारण करने वाले! हे त्रिनेत्र! मुझ विपन्नबुद्धि की रक्षा कीजिए।

जयस्व सर्वेश्वर विश्वमूर्ते
सुरासुरैर्वन्दितपादपीठ।
त्रैलोक्यमातर्गुरवे वृषाङ्क
भीतः शरण्यं शरणागतोऽस्मि॥५३॥

हे सर्वेश्वर! हे विश्वमूर्ति! हे सुर और असुरों के द्वारा वंदनीय चरणकमल वाले! आपकी जय हो! हे वृषाङ्क! हे त्रिलोक की माता के गुरु! हे शरण्य! मैं भयभीत होकर आपकी शरण में आया हूँ।

त्वां नाथ देवाः शिवमीरयन्ति
सिद्धा हरं स्थाणुं महर्षयश्च।
भीमं च यक्षा मनुजा महेश्वरं
भूतानि भूताधिपमामनन्ति॥५४॥

हे नाथ! देवगण आपको शिव कहते हैं। सिद्धगण हर तथा महर्षि स्थाणु कहते हैं। यक्षगण भीम, मनुष्यगण महेश्वर तथा भूतगण आपको भूताधिप मानते हैं।

निशाचरा उग्रमुपार्चयन्ति
भवेति पुण्याः पितरो नमन्ति।
दासोऽस्मि तुभ्यं हर पाहि मह्यं
पापक्षयं मे कुरु लोकनाथ॥५५॥

निशाचर 'उग्र' (रूप में) आपकी अर्चना करते हैं, तथा पवित्र पितृगण 'भव' रूप में आपको नमस्कार करते हैं। हे हर! मैं आँपका दास हूँ, मेरी रक्षा कीजिए! हे लोकनाथ! मेरे पापों का नाश कर दीजिए।

भवांस्त्रिदेवस्त्रियुगस्त्रिधर्मा
त्रिपुष्करश्चासि विभो त्रिनेत्र।
त्रय्यारुणिस्त्रिश्रुतिरव्ययात्मन्
पुनीहि मां त्वां शरणं गतोऽस्मि॥५६॥

हे स्वामी! आप त्रिदेव हैं, तीन युग हैं, तीन धर्म हैं, त्रिनेत्र हैं, त्रिपुष्कर हैं। हे अव्ययात्मा, आप त्रय्यारुणि हैं, त्रिश्रुति हैं, मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण में आया हूँ।

त्रिणाचिकेतस्त्रिपदप्रतिष्ठः
षडङ्गवित् त्वं विषयेष्वलुब्धः।
त्रैलोक्यनाथोऽसि पुनीहि शंभो
दासोऽस्मि भीतः शरणागतस्ते॥५७॥

आप त्रिणाचिकेत हो, त्रिपदप्रतिष्ठा हो, षडङ्ग वेदों के ज्ञाता हो, विषयों से अलिप्त हो, त्रिलोकीनाथ हो! हे शंभु! मुझे पवित्र कीजिए! मैं आपका दास हूँ। मैं भयभीत होकर आपकी शरण में हूँ।

कृतं महाच्छंकर तेऽपराधं
मया महाभूतपते गिरीश।
कामारिणा निर्जितमानसेन
प्रसादये त्वां शिरसा नतोऽस्मि॥५८॥

हे महाभूतपति! हे गिरीश! हे शङ्कर! मैंने कामरूपी शत्रु के द्वारा विजित मानस वाला होकर आपके प्रति महान् अपराध किया है। मैं आपको प्रसन्न करता हूँ। मैं आपके प्रति नतमस्तक हूँ।

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः।
त्राहि मां देव ईशान सर्वपापहरो भव॥५९॥

मैं पापी हूँ, अनेक पापकर्म करने वाला हूँ तथा पाप से ही उत्पन्न हुआ हूँ। हे सर्वसमर्थ स्वामी! मेरी रक्षा कीजिए तथा मेरे पापों का नाश कीजिए।

मा मे क्रुध्यस्व देवेश त्वया चैतादृशोऽस्म्यहम्।
स्पृष्टः पापसमाचारो मे प्रसन्नो भवेश्वर॥६०॥

हे देवेश! मुझ पर क्रोधित न हों, आपने ही मुझे इस प्रकार पापाचरण करने वाले व्यक्ति के रूप में उत्पन्न किया गया है। हे जगत् के स्वामी! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

त्वं कर्त्ता चैव धाता च त्व जयस्त्वं महाजयः।
त्वं मङ्गल्यस्त्वमोंकारस्त्वमीशानो ध्रुवोऽव्ययः॥६१॥

आप ही कर्ता हैं और आप ही धारण करने वाले हैं, आप ही जय हैं; आप ही महाजय हैं, आप ही मंगल हैं, आप ओंकार हैं, आप स्वामी हैं, आप ही ध्रुव और अव्यय हैं।

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृन्नाथस्त्वं विष्णुस्त्वं महेश्वरः।
त्वमिन्द्रस्त्वं वषट्कारो धर्मस्त्वं च सुरोत्तमः॥६२॥

आप ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं, आप ही प्रभु विष्णु हैं, आप ही महेश्वर हैं, आप ही इन्द्र हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही धर्म हैं तथा आप ही सुरोत्तम हैं,

सूक्ष्मस्त्वं व्यक्तरूपस्त्वं त्वमव्यक्तस्त्वमीश्वरः।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥६३॥

आप सूक्ष्म हैं, आप व्यक्तरूप हैं, आप अव्यक्त हैं, तथा आप ईश्वर हैं, आप के द्वारा ही यह समस्त स्थावर और जंगम जगत् व्याप्त है।

त्वमादिरन्तो मध्यश्च त्वमनादिः सहस्रपात्।
विजयस्त्वं सहस्राक्षो विरूपाक्षो महाभुजः॥६४॥

हे सहस्रचरण वाले! आप ही आदि, मध्य, अन्त हैं। आप ही अनादि हैं, आप ही विजय हैं, आप सहस्राक्ष हैं, आप विरूपाक्ष हैं, आप महाभुजाओं वाले हैं।

अनन्तः सर्वगो व्यापी हंसः पुण्याधिपोऽच्युतः।
गीर्वाणपतिरव्यग्रो रुद्रः पशुपतिः शिवः॥६५॥

आप अनन्त हैं, सर्वगामी हैं, आप प्राण हैं, प्राणाधिपति हैं, अच्युत हैं, वाणी के स्वामी हैं, अव्यग्र हैं, रुद्र हैं, पशुपति हैं, शिव हैं।

त्रैविद्यस्त्वं जितक्रोधो जितारिर्विजितेन्द्रियः।
जयश्च शूलपाणिस्त्वं त्राहि मां शरणागतम्॥६६॥

आप त्रिविद्यारूप हैं, क्रोध को जीतने वाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, जय हैं, आप शूलपाणि हैं। आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए।

पुलस्त्य उवाच

इत्थं महेश्वरो ब्रह्मन्स्तुतो दैत्याधिपेन तु।
प्रीतियुक्तः पिङ्गलाक्षो हैरण्याक्षमुवाच ह॥६७॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्राह्मण! दैत्याधिपति के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर प्रसन्न हुए पिंगलाक्ष ने हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक से कहा।

सिद्धोऽसि दानवपते परितुष्टोऽस्मि तेऽन्धक।
वरं वरय भद्रं ते यमिच्छसि विनाऽम्बिकाम्॥६८॥

हे दानवपति! तुम सफल हो गए हो! हे अन्धक! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें जिसकी इच्छा हो, वैसा कल्याणकारी वर मांग लो, केवल अम्बिका के अतिरिक्त।

अन्धक उवाच

अम्बिका जननी मह्यं भगवांस्त्र्यम्बकः पिता।
वन्दामि चरणौ मातुर्वन्दनीया ममाम्बिका॥६९॥

अन्धक ने कहा— अम्बिका मेरी माता है, भगवान् त्र्यम्बक पिता है, मैं माता के चरणों की वंदना करता हूँ। अम्बिका मेरे लिये वंदनीया हैं।

वरदोऽसि यदीशान तद्यातु विलयं मम।
शारीरं मानसं वाग्जं दुष्कृतं दुर्विचिन्तितम्॥७०॥
तथा मे दानवो भावो व्यपयातु महेश्वर।
स्थिराऽस्तु त्वयि भक्तिस्तु वरमेतत् प्रयच्छ मे॥७१॥

हे स्वामी! यदि आप वर देना चाहते हैं, तो कृपया मेरे शारीरिक, मानसिक और वाचिक दुष्कर्मों, दुर्विचारों को

नष्ट कर दीजिए। हे महेश्वर! मेरे दानवी भावों को नष्ट कर दीजिए। आप में मेरी भक्ति स्थिर हो जाए यही वर मुझे दीजिए।

महादेव उवाच

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम्।
मुक्तोऽसि दैत्यभावाच्च भृङ्गी गणपतिर्भव॥७२॥

महादेव ने कहा— हे दैत्येन्द्र! ऐसा ही हो; तुम्हारे पाप नष्ट हो जाएँ; तुम दैत्यभाव सेँ मुक्त हो जाओ और तुम भृंगी गणपति बन जाओ।

इत्येवमुक्त्वा वरदः शूलाग्रादवतार्य तम्।
निर्माज्य निजहस्तेन चक्रे निर्व्रणमन्धकम्॥७३॥

इस प्रकार कहकर वरदाता शिव ने उस अन्धक को शूलाग्र से उतार कर, अपने हाथों से परिमार्जित किया और उसे व्रणरहित कर दिया।

ततः स्वदेहतो देवता ब्रह्मादीनाजुहाव सः।
ते निश्चेरुमर्हात्मानो नमस्यन्तस्त्रिलोचनम्॥७४॥

उसके पश्चात् उन्होंने अपने शरीर में स्थित ब्रह्मादि देवताओं का आह्वान किया। वे सब महात्मा त्रिलोचन की स्तुति करते हुए बाहर निकल आए।

गणान् सनन्दीनाहूय संनिवेश्य तदाग्रतः।
भृङ्गिनं दर्शयामास ब्रुवन्नेषोऽन्धकेति हि॥७५॥

नन्दी सहित सब गणों को बुलाकर तथा उन्हें सामने खड़ा करके, भृंगी को दिखलाते हुये कहा— यह निश्चय ही अन्धक नहीं है।

तं दृष्ट्वा दानवपतिं संशुष्कपिशितं रिपुम्।
गणाधिपत्यमापन्नं प्रशशंसुर्वृषध्वजम्॥७६॥

उस शुष्क मांस वाले शत्रु दानवपति को गणाधिप हुआ देखकर गणों ने वृषध्वज की प्रशंसा की।

ततस्तान् प्राह भगवान्संपरिष्वज्य देवताः।
गच्छध्वं स्वानि धिष्ण्यानि भुञ्जध्वं त्रिदिवं सुखम्॥७७

तदनन्तर भगवान् शिव ने उन देवताओं का आलिङ्गन करके कहा— आप सब अपने-अपने लोकों में जाओ और तीनों लोकों के सुखों का भोग करो।

सहस्राक्षोऽपि संयातु पर्वतं मलयं शुभम्।
तत्र स्वकार्यं कृत्वैव पश्चाद्यातु त्रिविष्टपम्॥७८॥

सहस्राक्ष इन्द्र भी पहले पवित्र मलय पर्वत पर जाएँ और अपना कार्य सम्पन्न करने के पश्चात् स्वर्गलोक में जाएँ।

इत्येवमुक्त्वा त्रिदशान्समाभाष्य व्यसर्जयत्।
पितामहं नमस्कृत्य परिष्वज्य जनार्दनम्॥७९॥

इस प्रकार कहकर शिव ने देवताओं को विदा किया। पितामह को नमस्कार करके तथा विष्णु का आलिङ्गन करके उन्हें विदा किया । इस प्रकार महेश के द्वारा विदा किये गए वे देवता स्वर्गलोक को चले गए।

महेन्द्रो मलयं गत्वा कृत्वा कार्यं दिवं गतः।
गतेषु शक्रप्राग्र्येषु देवेषु भगवाञ्शिवः॥८०॥
विसर्जयामास गणाननुमामन्य यथार्हतः।
गणाश्च शङ्करं दृष्ट्वा स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥८१॥
जग्मुस्ते शुभलोकानि महाभोगानि नारद।
यत्र कामदुघा गावः सर्वकामफलद्रुमाः॥८२॥

महेन्द्र भी मलयपर्वत पर जाकर कार्य संपन्न करके स्वर्ग को प्रस्थान कर गये। इन्द्रादि देवों के जाने पर भगवान् ने पुनः गणों की अभ्यर्चना कर उन्हें विदा किया। हे नारद! गण शङ्कर का दर्शन करके अपने-अपने वाहन वर स्थित होकँर, महान् भोगों वाले शुभ लोकों को चले गए जहाँ की गौएँ इच्छित पदार्थ प्रदान करती थीं तथा वृक्ष सभी अभीप्सित फलों को देने वाले थे।

नद्यस्त्वमृतवाहिन्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः।
स्वां स्वां गतिं प्रयातेषु प्रमथेषु महेश्वरः॥८३॥
समादायान्धकं हस्ते सनन्दिः शैलमभ्यगात्।
द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां पुनरायाद्धरो गृह्यम्॥८४॥
ददृशे च गिरेः पुत्री श्वेतार्ककुसुमस्थिताम्।
समायातं निरीक्ष्यैव सर्वलक्षणसंयुतम्॥८५॥
त्यक्त्वाऽर्कपुष्पं निर्गत्य सखीस्ताः समुपाह्वयत्।
समाहूताश्च देव्या ता जयाद्यास्तूर्णमागमन्॥८६॥

जहाँ नदियों में अमृत बहता था तथा सरोवरों में मिट्टी के रूप में पायस भरा रहता था। जब प्रमथ अपने-अपने लोकों में चले गए तो अन्धक को हाथ में लेकर शिव

नदी के सहित पर्वत पर आ गये। दो सहस्त्र वर्षों के पश्चात् शिव पुनः घर लौटे थे। उन्होंने श्वेत अर्क के पुष्प में स्थित गिरिजा को देखा। समस्त लक्षणों से युक्त शिव को समागत देखकर अर्कपुष्प को छोड़कर पार्वती बाहर आईं और अपनी सखियों को बुलाया। देवी के बुलाने पर जयादि सखियाँ अत्यंत शीघ्रता से वहाँ पहुँच गईं।

ताभिः परिवृता तस्थौ हरदर्शनलालसा।
ततस्त्रिनेत्रो गिरिजां दृष्ट्वा प्रेक्ष्य च दानवम्॥८७॥
नन्दिनं च तथा हर्षादालिङ्गे गिरेः सुताम्।
अथोवाचैष दासस्ते कृतो देवि मयाऽन्धकः॥८८॥
पश्यस्व प्रणतिं यातं स्वसुतं चारुहासिनि।
इत्युच्चार्यान्धकं चैव पुत्र एह्येहि सत्वरम्॥८९॥
व्रजस्व शरणं मातुरेषा श्रेयस्करी तव।
इत्युक्तो विभुना नन्दी अन्धकश्च गणेश्वरः॥९०॥
समागम्याम्बिकापादौ ववन्दतुरुभावपि।

सखियों से घिरी हुई पार्वती शिव के दर्शन की इच्छा से खड़ी थीं। त्रिनेत्र शिव ने गिरिसुता को देखने के बाद असुर (अन्धक) और नन्दी की ओर दृष्टिपात किया और प्रसन्नतापूर्वक गिरिसुता का आलिङ्गन किया और कहा— हे देवी! इस अन्धक को मैंने तुम्हारा दास बना दिया है। हे चारुहा! अपने सम्मुख नतमस्तक इस पुत्र को देखो! ऐसा कहकर अन्धक से कहा— हे पुत्र! शीघ्र आओ तथा अपनी माता की शरण में जाओ; यह तुम्हारा कल्याण करेंगी। सर्वसमर्थ शिव के द्वारा इस प्रकार कहने पर अन्धक तथा गणेश्वर नन्दी ने समीप जाकर अम्बिका के चरणों में वंदन किया।

अन्धकोऽपि तदा गौरीं भक्तिनम्रो महामुने।
स्तुतिं चक्रे महापुण्यां पापघ्नीं श्रुतिसंमताम्॥९१॥

हे महामुनि! तब भक्तिपूर्वक नतमस्तक अन्धक ने गौरी की महापुण्यशाली, पापनाशिनी तथा श्रुतिसम्मत स्तुति की।

अन्धक उवाच

ॐ नमस्तेऽस्तु भवानीं भूतभव्यप्रियां लोकधात्रीं जनित्रीं स्कन्दमातरं महादेवप्रियां धारिणीं स्यन्दिनीं चेतनां त्रैलोक्यमातरं धरित्रीं देवमातरमथेज्यां श्रुतिं स्मृतिं दयां लज्जां कान्तिमग्र्यामसूयां मतिं सदापावनीं दैत्यसैन्यक्षयकरीं माहामायां वैजयन्तीं सुशुभां कालरात्रिं गोविन्दभगिनीं शैलराजपुत्रीं सर्वदेवार्चितां सर्वभूतार्चितां विद्यां सरस्वतीं त्रिनयनमहिषीं नमस्यामि मृडानीं शरण्यां शरणमुपागतोऽहं नमो नमस्ते।

अन्धक ने कहा— ॐ भवानी को प्रणाम है। मैं भूतभव्य-प्रिया, लोकधात्री, जनित्री, कार्तिकेयजननी, महादेवप्रिया, धारिणी, स्यन्दिनी, चेतना, त्रैलोक्यजननी, धरित्री, देवमाता, इज्या, श्रुति, स्मृति, दया, लज्जा, श्रेष्ठकान्ति, असूया, मति, सदापावनी, दैत्यसेना का क्षय करने वाली, माहामाया, वैजयन्ती, अत्यन्तशोभा सम्पन्न, कालरात्रि, गोविन्दभगिनी, शैलराजपुत्री, सर्वदेवार्चिता, सर्वभूतार्चिता, विद्या, सरस्वती, त्रिनयनमहिषी को प्रणाम करता हूँ। मैं शरण्या, मृडानी की शरण में आया हूँ। आपको बार-बार प्रणाम है।

इत्थं स्तुता साऽन्धकेन परितुष्टा विभावरी।
प्राह पुत्र प्रसन्नाऽस्मि वृणुष्व वरमुत्तमम्॥९२॥

अन्धक ने कहा— इस प्रकार अन्धक के द्वारा स्तुत्यमान देवी ने प्रसन्न होकर कहा— पुत्र! मैं प्रसन्न हूँ; तुम उत्तम वर मांगो।

भृङ्गिरुवाच

पापं प्रशममायातु त्रिविधं मम पार्वति।
तथेश्वरे च सततं भक्तिरस्तु ममाम्बिके॥९३॥

भृंगी ने कहा— हे पार्वती! मेरे त्रिविध पाप शान्त हो जाएँ। हे अम्बिके! शिव में मेरी सतत भक्ति बनी रहे।

पुलस्त्य उवाच

बाढमित्यब्रवीद्गौरी हिरण्याक्षसुतं ततः।
स चास्ते पूजयञ्शर्वं गणानामधिपोऽभवत्॥९४॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर गौरी ने हिरण्याक्ष पुत्र से कहा अच्छा! ऐसा ही हो। शिव की पूजा करते हुए वह वहाँ रहकर गणाधिप हो गया।

एवं पुरा दानवसत्तमं तं
महेश्वरेणाथ विरूपदृष्ट्या।

कृत्वैव रूपं भयदं तु भैरवं
भृङ्गित्वमीशेन कृता स्वभक्त्या॥ ९५॥

इस प्रकार विरूप दृष्टि वाले महेश्वर ने उस श्रेष्ठ दानव को भयंकर भैरवरूप धारण करके प्राचीनकाल में अपनी भक्ति से भृंगी बना दिया था ।

एतत्तवोक्तं हरकीर्तिवर्धनं
पुण्यं पवित्रं शुभदं महर्षे।
संकीर्तनीयं द्विजसत्तमेषु
धर्मायुरारोग्यधनैषिणा सदा॥ ९६॥

हे महर्षि! इस प्रकार मैंने शिव की कीर्ति को परिवर्धित करने वाला यह वृत्तांत आपको सुनाया गया। यह वृत्तान्त पुण्य है, पवित्र है, शुभकारी है। धर्म, आयु, आरोग्य तथा धन के इच्छुक व्यक्ति के द्वारा यह श्रेष्ठ ब्राह्मणसमूह में संकीर्तन के योग्य है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भैरवप्रादुर्भावे अन्धकवरप्रदानं नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

(मरुतों की उत्पत्ति)

नारद उवाच–

मलयेऽपि महेन्द्रेण यत्कृतं द्विजसत्तमं।
निष्पादितं स्वकं कार्यं तन्मे त्वं ख्या तुमर्हसि॥ १॥

नारद ने कहा— हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! महेन्द्र ने मलय पर्वत पर भी जो कार्य सम्पन्न किया। उस के विषय में भी मुझे कृपा करके बताइये।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां यन्महेन्द्रेण मलये पर्वतोत्तमे।
कृतं लोकहितं ब्रह्मन्नात्मनश्च तथा हितम्॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्राह्मण! पर्वतश्रेष्ठ मलय पर महेन्द्र ने लोक तथा स्वयं के हित के लिये जो कार्य किया वह सुनिये।

अन्धासुरस्यानुचरा मयतारपुरोगमाः।
ते निर्जिताः सुरगणैः पातालगमनोत्सुकाः॥ ३॥
ददृशुर्मलयं शैलं सिद्धाध्युषितकन्दरम्।
लताविमानसंछन्नं मत्तसत्त्वसमाकुलम्॥ ४॥
चन्दनैरुरगाक्रान्तैः सुशीतैरतिसेवितम्।
माधवीकुसुमामोदं ऋष्यर्चितहरं गिरिम्॥ ५॥

मय, तार के एवं अन्धासुर के अनुचर देवसमूह के द्वारा पराजित हो गए। पाताललोक को जाने के उत्सुक उन (पराजितों) ने सिद्धों के द्वारा सेवित कंदराओं वाले मलय पर्वत को देखा। उस मलय पर लता विटपों का घना वितान दूर-दूर तक फैला हुआ था। मदमस्त पशु-पक्षी प्रचुर संख्या में निवास करते थे। वहाँ अत्यंत शीतल चन्दन के वृक्षों पर सर्पसमूह निवास करता था, वह माधवी पुष्पों से सुगंधित था। वहाँ ऋषिगण हर की अभ्यर्चना करते थे।

तं दृष्ट्वा शीतलच्छायं श्रान्ता व्यायामकर्षिताः।
मयतारपुरोगास्ते निवासं समरोचयन्॥ ६॥

व्यायाम से क्षीण मय और तार के आदि दानवों ने शीतल छाया वाले उस मलय पर निवास करने का विचार किया।

तेषु तत्रोपविष्टेषु प्राणतृप्तिप्रदोऽनिलः।
विवाति शीतः शनकैर्दक्षिणो गन्धसंयुतः॥ ७॥

जब वे वहाँ विश्राम कर रह थे तब शीतल एवं सुगंधित दक्षिण वायु प्रवाहित होने लगा। जो प्राणों को तृप्ति प्रदान करने वाला था।

तत्रैव च रतिं चक्रुः सर्व एव महासुराः।
कुर्वन्तो लोकसंपूज्ये विद्वेषं देवतागणे॥ ८॥

सभी महासुर त्रिलोकपूजनीय देवगणों से विद्वेष करते हुए उसी स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे।

ताञ्ज्ञात्वा शङ्करः शक्रं प्रेषयन्मलये सुरान्।
स चापि ददृशे गच्छन्पथि गोमातरं हरिः॥ ९॥

यह जानकर शिव ने देवराज इन्द्र को मलय पर्वत पर भेजा। इन्द्र ने जाते हुए मार्ग में गोमाता-सुरभि को देखा।

तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम्।
ददृशे दानवान् सर्वान् संहृष्टान् भोगसंयुतान्॥ १०॥

उसकी प्रदक्षिणा करके तथा प्रभा सम्पन्न पर्वत को देखकर इन्द्र ने नाना भोगों में संलिप्त हृष्ट-पुष्ट समस्त दानवों को देखा।

अथाजुहाव बलहा सर्वानिव महासुरान्।
ते चाप्यावयुरव्यग्राः विकिरन्तः शरोत्करान्॥ ११॥

तदनन्तर बल के हन्ता इन्द्र ने समस्त महादानवों को युद्ध के लिए ललकारा। दानव भी अविचलित (निश्चित) रहे और शरों की वर्षा करते हुए आगे आए।

तानागतान् बाणजालैः रथस्थोऽद्धुतदर्शनः।
छादयामास विप्रर्षे गिरिं वृष्ट्या यथा घनः॥ १२॥

हे विप्रर्षि! रथ पर स्थित अद्भुत दर्शन वाले इन्द्र ने आए हुए उन दानवों को बाणसमूहों से उसी प्रकार आच्छादित कर दिया जैसे बादल वर्षा से पर्वत को आच्छादित कर दिया करते हैं।

ततो बाणैरवच्छाद्य मयादीन् दानवान्हरिः।
पाकं जघान तीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैः कङ्कवाससैः॥ १३॥

तदनन्तर इन्द्र ने मय आदि दानवों पर बाणों की वर्षा करके, कंकपक्षयुक्त सुतीक्ष्य बाणों से पाक नामक दानव को मार डाला।

तत्र नाम विभुर्लेभे शासनत्वात् शरैर्दृढैः।
पाकशासनतां शक्रः सर्वामरपतिर्विभुः॥ १४॥

शक्तिशाली बाणों से 'पाक' का वध करने के कारण सर्वसमर्थ इन्द्र को 'पाकशासन' नाम से जाना जाता है।

तथाऽन्यं पुरनामानं बाणा सुरसुतं शरैः।
सुपुङ्खैर्दारयामास ततोऽभूत्स पुरन्दरः॥ १५॥

इन्द्र ने एक अन्य दानव बाणासुर के पुत्र 'पुर' का अपने तीक्ष्ण बाणों से वध किया जिससे वह पुरन्दर हो गया।

हत्वेत्थं समरेऽजैषीद् गोत्रभिद्दानवं बलम्।
तच्चापि विजितं ब्रह्मन् रसातलमुपागमत्॥ १६॥

इस प्रकार गोत्रभिद् इन्द्र ने समस्त दानवसमूह को मार कर युद्ध में विजय प्राप्त कर ली। हे ब्राह्मण! वह विजित दानवबल रसातल को चला गया।

एतदर्थं सहस्राक्षः प्रेषितो मलयाचलम्।
त्र्यम्बकेन मुनिश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी कारण त्र्यम्बक शिव ने इन्द्र को मलयाचल भेजा था। आप और क्या सुनना चाहते हैं?

नारद उवाच

किमर्थं दैवतपतिर्गोत्रभित्कथ्यते हरिः।
एष मे संशयो ब्रह्मन् हृदि संपरिवर्तते॥ १८॥

नारद ने कहा— देवपति इन्द्र को गोत्रभिद् क्यों कहा जाता है? हे ब्राह्मण! मेरे मन में यह संशय घूम रहा है।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां गोत्रभिच्छक्रः कीर्तितो हि यथा मया।
हते हिरण्यकशिपौ यच्चकारारिमर्दनः॥ १९॥

पुलस्त्य ने कहा— इन्द्र को गोत्रभिद् क्यों कहा जाता है? तथा हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर इन्द्र ने क्या किया? यह आप मुझसे सुनिये!

दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं प्राह नारद।
विभो नाथोऽसि मे देहि शक्रहन्तारमात्मजम्॥ २०॥

हे नारद! पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दिति ने कश्यप से कहा— हे सर्वसमर्थ! आप मेरे स्वामी हैं, आप मुझे शक्रहन्ता पुत्र प्रदान करें।

कश्यपस्तामुवाचाथ यदि त्वमसितेक्षणे।
शौचाचारसमायुक्ता स्थास्यसे दशतीर्दश॥ २१॥
संवत्सराणां दिव्यानां ततस्त्रैलोक्यनायकम्।
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये॥ २२॥

कश्यप ने उससे कहा— हे असितेक्षणे! यदि तुम सौ दिव्य वर्षो तक पवित्र आचार से युक्त रहोगी तभी तुम त्रैलोक्य नामक शत्रुहन्ता पुत्र को उत्पन्न करोगी, अन्यथा नहीं।

इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा दितिर्नियममास्थिता।
गर्भाधानं ऋषिः कृत्वा जगामोदयपर्वतम्॥ २३॥

स्वामी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दिति नियम और आचार के साथ रहने लगी तथा ऋषि कश्यप गर्भाधान करके उदयपर्वत की ओर चले गए।

गते तस्मिन् मुनिश्रेष्ठः सहस्राक्षोऽपि सत्वरम्।
तमाश्रममुपागम्य दितिं वचनमब्रवीत्॥ २४॥

मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर सहस्राक्ष इन्द्र शीघ्रतापूर्वक उस आश्रम में आकर दिति से बोले—

करिष्याम्यनुशुश्रूषां भवत्या यदि मन्यसे।
वाढमित्यब्रवीद् देवी भाविकर्मप्रचोदिता॥ २५॥

यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। भवितव्यता से प्रेरित देवी ने भी 'अच्छा' कहा—

समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरंदरः।
विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भुजङ्गवत्॥ २६॥

विनीतात्मा पुरंदर अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त सर्प के समान छिद्रान्वेष करते हुये दिति के लिये समिधा आदि लाने का कार्य करने लगे।

एकदा सा तपोयुक्ता शौचे महति संस्थिता।
दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाता तपस्विनी॥ २७॥
जानुभ्यामुपरिस्थाप्य मुक्तकेशा निजं शिरः।
सुष्वाप केशप्रान्तैस्तु संश्लिष्टचरणाऽभवत्॥ २८॥

सौ वर्षों के व्यतीत हो जाने पर एक दिन महान् पवित्र आचरण में स्थित तपस्विनी वह दिति संपूर्णस्नान के पश्चात् अपने घुटनों पर सिर रखकर सो गई। उस मुक्तकेशिनी के केश उसके पंजों को छू रहे थे।

तमन्तरमशौचस्य ज्ञात्वा देवः सहस्रदृक्।
विवेश मातुरुदरं नासारन्ध्रेण नारद॥ २९॥

हे नारद! उसे उचित अपवित्र अवसर जानकर सहस्रदृक् इन्द्र एक नासिकारन्ध्र से भानु के उदर में प्रवेश कर गया।

प्रविश्य जठरं क्रुद्धो दैत्यमातुः पुरंदरः।
ददर्शोर्ध्वमुखं बालं कटिन्यस्तकरं महत्॥ ३०॥

दैत्यमाता के उदर में प्रवेश करने पर क्रुद्ध इन्द्र ने एक महान् बालक को देखा जिसका मुख ऊपर की ओर था तथा जो अपनी कमर पर हाथ रखे हुए था।

तस्यैवास्येऽथ ददृशे पेशीं मांसस्य वासवः।
शुद्धस्फटिकसङ्काशां कराभ्यां जगृहेऽथ ताम्॥ ३१॥

उसके मुख पर इन्द्र ने एक मांसपेशी को देखा जो स्फटिक के समान चमक रही थी। इन्द्र ने उसे दोनों हाथों से पकड़ लिया।

ततः कोपसमाध्मातो मांसपेशीं शतक्रतुः।
कराभ्यां मर्दयामास ततः सा कठिनाऽभवत्॥ ३२॥

तदनन्तर अत्यंत क्रुद्ध इन्द्र ने अपने दोनों हाथों से उस मांसपेशी को मसल डाला जिससे वह अत्यंत कठोर हो गई।

ऊर्ध्वेनार्धं च ववृधे त्वधोऽर्धं ववृधे तथा।
शतपर्वाऽथ कुलिशः संजातो मांसपेशितः॥ ३३॥

उस पिण्ड का आधा भाग ऊपर की ओर तथा आधा भाग नीचे की ओर बढ़ गया। इस प्रकार उस मांसपेशी से सैकड़ों कोनों वाले वज्र बन गया।

तेनैव गर्भं दितिजं वज्रेण शतपर्वणा।
चिच्छेद सप्तधा ब्रह्मन् स रुरोद च विस्वरम्॥ ३४॥

उस शतपर्ण वज्र से ही इन्द्र ने दिति से उत्पन्न गर्भ को सात भागों में काट डाला। हे ब्राह्मण! तब वह ऊँचे स्वर से रुदन करने लगा।

ततोऽप्यबुध्यत दितिरजानाच्छक्रचेष्टितम्।
शुश्राव वाचं पुत्रस्य रुदमानस्य नारद॥ ३५॥

हे नारद! तब दिति भी जाग गई। जागने पर उसे इन्द्र की चेष्टाओं के विषय में ज्ञात हुआ और उसने अपने रोते हुए पुत्र का स्वर सुना।

शक्रोऽपि प्राह मा मूढ रुदस्वेति सुघर्घरम्।
इत्येवमुक्त्वा चैकैकं भूयश्चिच्छेद सप्तधा॥ ३६॥

इन्द्र ने उससे कहा— हे मूर्ख! इतने ऊँचे स्वर से रुदन मत कर। यह कहकर उसने पुनः एक-एक को सात-सात भागों में काट डाला।

ते जाता मरुतो नाम देवभृत्याः शतक्रतोः।
मातुरेवापचारेण चलन्ते ते पुरस्कृताः॥ ३७॥

वह देवपति इन्द्र के दिव्य अनुचर मरुतों के रूप में उत्पन्न हुए। अपनी माता के अपचार के कारण ही वे (वायु के रूप में) सदैव आगे चलते हैं।

ततः सकुलिशः शक्रो निर्गम्य जठरात् तदा।
दितिं कृताञ्जलिपुटः प्राह भीतस्तु शापतः॥ ३८॥
ममास्ति नापराधोऽयं यच्छस्तस्तनयस्तव।
तवैवापनयाच्छस्तस्तन्मे न क्रोद्धुमर्हसि॥ ३९॥

तदनन्तर वज्रसहित गर्भ से बाहर आकर शाप से भयभीत इन्द्र ने दिति से हाथ जोड़कर कहा— यह मेरा

अपराध नहीं है कि आपका पुत्र मारा गया। वस्तुतः आप के अपचार के कारण ही ऐसा हुआ है; अतः आप मुझ पर क्रोध न करें।

दितिरुवाच

न तवात्रापराधोऽस्ति मन्ये दिष्टमिदं पुरा।
संपूर्णे त्वपि काले वै या शौचत्वमुपागतः॥४०॥

दिति ने कहा— नहीं; यह तुम्हारा अपराध नहीं है; वस्तुतः यह तो पहले से ही निश्चित था। तभी कालावधि समाप्त होने पर भी मैं अपवित्र हो गई।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा तान्बालान्परिसान्त्व्य दितिः स्वयम्।
देवराज्ञा सहैनांस्तु प्रेषयामास भामिनी॥४१॥

पुलस्त्य ने कहा— ऐसा कहकर स्वयं दिति ने उन बालकों को सान्त्वना दिया और उन्हें देवराज इन्द्र के साथ भेज दिया।

एवं पुरा स्वानपि सोदरान् स
गर्भस्थितानुज्झरितं भयार्तः।
बिभेद वज्रेण ततः स गोत्रभित्
ख्यातो महर्षे भगवान् महेन्द्रः॥४२॥

इस प्रकार प्राचीनकाल में भयभीत इन्द्र ने वज्र से अपने ही सहोदरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जब वे गर्भ की अवस्था में ही थे। इसलिए हे महर्षि! वह इन्द्र गोत्रभित् के रूप में प्रख्यात हुआ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे शक्रचरिते
मरुदुत्पत्तिर्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः।

(मरुतों की उत्पत्ति)

नारद उवाच

यदमी भवता प्रोक्ता मरुतो दितिजोत्तमाः।
तत्केन पूर्वमासन् वै मरुन्मार्गेषु कथ्यताम्॥१॥
पूर्वमन्वंतरेष्वव समतीतेषु सत्तम।
के त्वासन्वायुमार्गस्थास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥२॥

नारद ने कहा— दिति के उत्तम पुत्र मरुत् जिनके विषय में आपने बताया— प्राचीन काल में आकाशीय वातावरण में क्यों थे। कृपया यह मुझे बताइये। हे पुरुषोत्तम! प्राचीन मनुओं के समय में आकाशीय वातावरण में कौन था। यह भी मुझे आप विस्तार से बतायें।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां पूर्वमरुतामुत्पत्तिं कथयामि ते।
स्वायंभुवं समारभ्य यावन्मन्वन्तरं त्विदम्॥३॥

पुलस्त्य ने कहा— सुनो, मैं स्वयंभू मनु से लेकर इस मन्वन्तर तक प्राचीन मरुतों की उत्पत्ति के विषय में आपको कहता हूँ।

स्वायंभुवस्य पुत्रोऽभून्मनुर्नाम प्रियव्रतः।
तस्यासीत्सवनो नाम पुत्रस्त्रैलोक्यपूजितः॥४॥

स्वयंभू मनु का प्रियव्रत नाम का पुत्र हुआ। उसका सवन नामक त्रैलोक्यपूजित पुत्र हुआ।

स चानपत्यो देवर्षे नृपः प्रेतगतिं गतः।
ततोऽरुदत्तस्य पत्नी सुवेदा शोकविह्वला॥५॥

हे देवर्षि! वह निस्संतान ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। उनकी मृत्यु पर उसकी पत्नी सुदेवा शोकविह्वल होकर रुदन करने लगी।

न ददाति तथा दग्धुं समालिङ्ग्य स्थिता पतिम्।
नाथ नाथेति बहुशो विलपन्ती त्वनाथवत्॥६॥

उसने अपने पति को जलाने नहीं दिया। उसका आलिङ्गन करके वह 'नाथ-नाथ' कहते हुये अनेक प्रकार से विलाप करती हुई अनाथों के समान उसके पास ही बैठी रही।

तामन्तरिक्षादशरीरिणी वाक्
प्रोवाच मा राजपत्नीह रोदीः।
यद्यस्ति ते सत्यमनुत्तमं तदा
भवत्वयं ते पतिना सहाग्निः॥७॥

उसको अन्तरिक्ष से एक अदृश्य वाणी ने कहा— हे राजपत्नी! यहाँ इस प्रकार से मत रोओ! यदि तुम वस्तुतः सत्यव्रता हो तो अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाओ।

सा तां वाणीमन्तरिक्षान्निशम्य
प्रोवाचेदं राजपुत्री सुवेदा।
शोचाम्येनं पार्थिवं पुत्रहीनं
नैवात्मानं मन्दभाग्यं विहङ्ग॥८॥

अन्तरिक्ष से उस वाणी को सुनकर राजपुत्री सुदेवा ने कहा— मैं इस पुत्रहीन राजा के विषय में शोक कर रही हूँ स्वयं के भाग्यहीन होने के विषय में नहीं।

सोऽथाब्रवीन्मा रुदस्वायताक्षि
पुत्रास्त्वत्तो भूमिपालस्य सप्त।
भविष्यन्ति वह्निमारोह शीघ्रं
सत्यं प्रोक्तं श्रद्दधस्व त्वमद्य॥९॥

उसने फिर कहा— हे विशालाक्षी! रोओ मत! तुमसे राजा के सात पुत्र होंगे। तुम शीघ्र ही अग्नि पर आरूढ़ हो जाओ। जो कहा गया वह निश्चय ही सत्य है; इस पर विश्वास करो।

इत्येवमुक्ता खचरेण बाला
चितौ समारोप्य पतिं वरार्हम्।
हुताशमासाद्य पतिव्रता तं
संचिन्तयन्ती ज्वलनं प्रपन्ना॥१०॥

नभचर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस पतिव्रता राजपुत्री ने अपने पति को चिता पर रखकर उसको अग्नि दे दी तथा स्वयं पति के विषय में सोचती हुई अग्नि में प्रवेश कर गई।

ततो मुहूर्तान्नृपतिः श्रिया युतः
समुत्तस्थौ सहितो भार्ययाऽसौ।
खमुत्पपाताथ स कामचारी
समं महिष्या च सुनाभपुत्र्या॥११॥

तब एक क्षण में ही राजा अपने समस्त वैभव के साथ अपनी पत्नी के साथ उठ खड़ा हुआ। तदनन्तर वह स्वेच्छाचारी होकर सुनाभ की पुत्री अपनी रानी को साथ लेकर आकाश में उड़ गया।

तस्याम्बरे नारद पार्थिवस्य
जाता रजोगा महिषीं तु गच्छतः।
स दिव्ययोगात् प्रतिसंस्थितोऽम्बरे
भार्यासहायो दिवसानि पञ्च॥१२॥

हे नारद! जब राजा आकाश में जा रहे थे तभी उसकी रानी रजस्वला हो गई! दिव्यसंयोग के कारण वह पाँच दिन तक अपनी रानी के साथ अम्बर में ही ठहरा रहा।

ततस्तु षष्ठेऽहनि पार्थिवेन
ऋतुर्न वन्ध्योऽद्य भवेद्विचिन्त्य।
रराम तन्व्या सह कामचारी
ततोऽम्बरात्प्राच्यवतास्य शुक्रम्॥१३॥

तदनन्तर छठे दिन उस स्वेच्छाचारी राजा ने यह सोचकर कि यह रजस्राव निष्फल न हो जाए—अपनी पत्नी के साथ रमण किया। तब आकाश से उसका शुक्र नीचे गिर गया।

शुक्रोत्सर्गावसाने तु नृपतिर्भार्यया सह।
जगाम दिव्यया गत्या ब्रह्मलोकं तपोधन॥१४॥

हे तपोधनी! शुक्र के उत्सर्ग के पश्चात् राजा अपनी पत्नी के साथ दिव्य गति से ब्रह्मलोक में चला गया।

तदम्बरात् प्रचलितमभ्रवर्णं
शुक्रं समाना नलिनी वपुष्यती।
चित्रा विशाला हरितालिनी च
सप्तर्षिपत्न्यो ददृशुर्यथेच्छया॥१५॥

तदनन्तर आकाश से गिरे हुए मेघ वर्ण वाले शुक्र को सप्तर्षि की पत्नियों— समाना, नलिनी, पुष्पमती, चित्रा, विशाला, हरिता एवं अलिनी ने प्रसन्नतापूर्वक देखा।

तदृष्ट्वा पुष्करे न्यस्तं प्रत्यैच्छन्त तपोधन।
मन्यमानास्तदमृतं सदा यौवनलिप्सया॥१६॥

हे तपोधनी! सदैव युवावस्था की इच्छुक उन ऋषिपत्नियों ने कमल पर गिरे हुए उस शुक्र को अमृत समझकर उठा लिया।

ततः स्नात्वा तु विधिवत्संपूज्य तान् निजान् पतीन्।
पतिभिः समनुज्ञाताः पपुः पुष्करसंस्थितम्॥१७॥
तच्छुक्रं पार्थिवेन्द्रस्य मन्यमानास्तदाऽमृतम्।
पीतमात्रेण शुक्रेण पार्थिवेन्द्रोद्भवेन ताः॥१८॥
ब्रह्मतेजोविहीनास्ता जाताः पत्न्यस्तपस्विनाम्।
ततस्तु तत्यजुः सर्वे सदोषास्ताश्च पत्नयः॥१९॥

तदनन्तर स्नान करके तथा क्रमशः अपने पतियों का पूजन कर उनकी आज्ञा से उन्होंने कमल पर गिरे हुए

शुक्र को अमृत समझते हुए पान कर लिया। राजा से उत्पन्न उस शुक्र का पान करते ही वे सब ऋषिपत्नियाँ ब्रह्मतेज से विहीन हो गईं। तदनन्तर सप्तर्षियों ने अपनी दोषयुक्त पत्नियों का परित्याग कर दिया।

सुषुवुः सप्त तनयान् रुदतो भैरवं मुने।
तेषां रुदितशब्देन सर्वमापूरितं जगत्॥ २०॥

हे मुनि! उन्होंने भयंकर रुदन करते हुए सात पुत्रों को जन्म दिया। उनके रुदन के शब्द से समस्त जगत् आपूरित हो गया।

अथाजगाम भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
समभ्येत्याब्रवीद् बालान् मा रुदध्वं महावलाः॥ २१॥
मरुतो नाम यूयं वै भविष्यध्वं वियचराः।
इत्येवमुक्त्वा देवेशो व्रह्मा लोकपितामहः॥ २२॥
तानादाय वियद्यारि मारुतानादिदेश ह।
ते त्वासन्मरुतस्त्वाद्या मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे॥ २३॥

तब लोकपितामह ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने समीप आकर बालकों से कहा-हे महाबलशाली! रोओ मत! तुम आकाश में विचरण करने वाले 'मरुत्' के नाम से जाने जाओगे। ऐसा कहकर लोकपितामह देवेश ब्रह्मा उन्हें आकाश में ले गये और उन्हें आकाश में रहने का आदेश दिया। वे ही स्वयंभू मनु के समय के आदि-मरुत हैं।

स्वारोचिषे तु मरुतो वक्ष्यामि शृणु नारद।
स्वारोचिषस्य पुत्रस्तु श्रीमानासीत् ऋतध्वजः॥ २४॥

हे नारद! मैं स्वारोचिष के समय के मरुत् के विषय में कहूँगा। स्वारोचिष का पुत्र श्रीमान् क्रतुध्वज था।

तस्य पुत्राभवन् सप्त सप्तार्चिः प्रतिमा मुने।
तपोऽर्थं ते गताः शैलं महामेरुं नरेश्वराः॥ २५॥
आराधयन्तो ब्रह्माणं पदमैन्द्रमथेप्सवः।

हे मुनि! उसके सात किरणों के समान सात पुत्र हुए। वे नरेश्वर तपस्या करने के लिए महामेरु पर्वत पर गए जहाँ उन्होंने ब्रह्मा की आराधना करते हुए इन्द्र के पद के लिए कामना की।

ततो विपश्चिन्नामाथ सहस्राक्षो भयातुरः॥ २६॥
पूतनामप्सरोमुख्यां प्राह नारद वाक्यवित्।
गच्छस्व पूतने शैलं महामेरु विशालिनम्॥ २७॥
तत्र तप्यन्ति हि तपः ऋतध्वजसुता महत्।
यथा हि तपसो विघ्नं तेषां भवति सुन्दरि॥ २८॥
तथा कुरुष्व मा तेषां सिद्धिर्भवतु सुन्दरि।

हे विद्वान् नारद! तदनन्तर भयातुर विपश्चित् सहस्राक्ष ने प्रमुख अप्सरा पूतना से कहा— हे पूतना! विशाल पर्वत महामेरु पर जाओ, वहाँ क्रतुध्वज के पुत्र महान् तपस्या कर रहे हैं। हे सुन्दरी! ऐसा कुछ करो जिससे उनकी तपस्या में विघ्न पड़ जाए। हे सुन्दरी! उनकी तपस्या कदापि सफल न हो!

इत्येवमुक्ता शक्रेण पूतना रूपशालिनी॥ २९॥
तत्राजगाम त्वरिता यत्रातप्यन्त ते तपः।
आश्रमस्याविदूरे तु नदी मन्दोदवाहिनी॥ ३०॥
तस्यां स्नातुं समायाताः सर्व एव सहोदराः।
साऽपि स्नातुं सुचार्वङ्गी त्ववतीर्णा महानदीम्॥ ३१॥

इन्द्र के इस प्रकार कहने पर रूपवती पूतना शीघ्रता से वहाँ पहुँची जहाँ वे तपस्या कर रहे थे। आश्रम के समीप ही मन्द जलप्रवाह वाली नदी बह रही थी। उस नदी में स्नान के लिए वे सब भाई वहाँ आए। सुंदर अङ्गों वाली वह (पूतना) भी तब स्नान करने के लिए नदी में उतर गई।

ददृशुस्ते नृपाः स्नातां ततश्चुक्षुभिरे मुने।
तेषां च प्राच्यवच्छुक्रं तत्पपौ जलचारिणी॥ ३२॥
शङ्खिनी ग्राहमुख्यस्य महाशङ्खस्य वल्लभा।
तेऽपि विभ्रष्टतपसो जग्मू राज्यं तु पैतृकम्॥ ३३॥
सा चाप्सराः शक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयत्।

हे मुनि! उन राजाओं ने उस स्नान करती हुई अप्सरा को देखा; जिससे वे उत्तेजित हो गए। उत्तेजित होने के कारण उनका शुक्र गिर पड़ा, जिसे एक जलचारिणी शाङ्खिनी-जो मुख्य ग्रह महाशङ्ख की वल्लभा थी-पी गई। राजकुमार भी भ्रष्ट तपस्या वाले होकर अपने पिता के राज्य में चले गए। उस अप्सरा ने भी इन्द्रलोक में जाकर समस्त वृत्तान्त को यथावत् निवेदन किया।

सा चाप्सराः शक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयत्।
ततो बहुतिथे काले सा ग्राही शङ्खरूपिणी॥ ३४॥

समुद्धृता महाजालैर्मत्स्यबन्धेन मानिनी।
स तां दृष्ट्वा महाशङ्खीं स्थलस्थां मत्स्यजीविक:॥ ३५॥
निवेदयामास तदा ऋतध्वजसुतेषु वै।
तथाऽभ्येत्य महात्मानो योगिनां योगधारिण:॥ ३६॥
नीत्वा स्वमन्दिरं सर्वे पुरवाप्यां समुत्सृजन्।

तदनन्तर बहुत समय पश्चात् उस मानिनी ग्राही को एक मछुआरे ने अपने जाल में पकड़कर निकाल लिया। उस विशाल ग्राही को पृथ्वी पर देखकर मछुआरे ने क्रतुध्वज के पुत्रों को उसके बारे में सूचित किया। वे सब योगधारी महात्मा वहाँ आए और शङ्खिनी को ले जाकर अपने महल के तालाब में छोड़ दिया।

तत: क्रमाच्छङ्खिनी सा सुषुवे सप्त वै शिशून्॥ ३७॥
जातमात्रेषु पुत्रेषु मोक्षभावमगाच्च सा।

तदनन्तर शङ्खिनी ने क्रमशः सात पुत्रों को जन्म दिया। पुत्रों के उत्पन्न होते ही वह मोक्ष को प्राप्त हो गई।

अमातृपितृका बाला जलमध्ये विहारिण:॥ ३८॥
स्तन्यार्थिनो वै रुरुदुरथाभ्यागात्पितामह:।
मा रुदध्वमितीत्याह मरुतो नाम पुत्रका:॥ ३९॥
यूयं देवा भविष्यध्वं वायुस्कन्धविचारिण:।
इत्येवमुक्त्वाथादाय सर्वांस्तान् दैवतान् प्रति॥ ४०॥
नियोज्य च मरुन्मार्गे वैराजं भवनं गत:।

माता-पिता से रहित वे अबोध बालक जल के मध्य माता के दुग्ध के लिए रोने लगे। तब पितामह वहाँ आए और बोले! पुत्रों, रोओ मत! वायु के कंधों पर विचरण करने वाले तुम मरुत् नामक देवता होओगे! ऐसा कहकर ब्रह्मा उन सब को ले गए और उन्हें आकाशमार्ग में देवता के रूप में नियुक्त करके अपने लोक को चले गए।

एवमासंश्च मरुतो मनो: स्वारोचिषेऽन्तरे॥ ४१॥
उत्तमे मरुतो ये च ताञ्छृणुष्व तपोधन।

इस प्रकार स्वारोचिष मनु के समय में मरुत् अस्तित्व में आए। हे तपोधन! अब आप उन मरुतों के विषय में सुनिये जो उत्तम मनु के समय में हुये थे।

उत्तमे मरुतो ये च ताञ्छृणुष्व तपोधन।
उत्तमस्यान्ववाये तु राजासीन्निषधाधिप:॥ ४२॥
वपुष्मानिति विख्यातो वपुषा भास्करोपम:।

उत्तम मनु के कुल में एक वपुष्मान् नामक राजा हुए। वे निषध के अधिपति थे। उनका शरीर सूर्य के समान कांतिमान् था।

तस्य पुत्रो गुणश्रेष्ठो ज्योतिष्मान्धार्मिकोऽभवत्॥ ४३॥
स पुत्रार्थी तपस्तेपे नदीं मन्दाकिनीमनु।
तस्य भार्या च सुश्रोणी देवाचार्यसुता शुभा॥ ४४॥
तपश्चरणयुक्तस्य बभूव परिचारिका।
सा स्वयं फलपुष्पाम्बुसमित्कुशं समाहरत्॥ ४५॥

उसका ज्योतिष्मान् नामक एक अत्यंत गुणवान् तथा धर्मपरायण पुत्र था। उसने पुत्रेच्छा से मंदाकिनी नदी के समीप तपस्या की। उनकी पत्नी देवाचार्य की पुत्री थी। उसका नाम सुश्रोणी था। तपस्या के समय वह उसकी परिचर्या करती थी। वह उसके लिये फल-फूल, जल समिधा और कुशा लाती थी।

चकार पद्मपत्राक्षी सम्यक् चातिथिपूजनम्।
पतिं शुश्रूषमाणा सा कृशा धमनिसंतता॥ ४६॥

कमल के समान सुंदर नेत्रों वाली सुश्रोणी भलीभाँति अतिथि-सत्कार करती थी। पति की निरन्तर सेवा करती हुई वह अत्यंत कृशकाय हो गयी थी। उसके शरीर में शिराएँ प्रकट हो गईं।

तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी दृष्टा सप्तर्षिभिर्वने।
तां तथा चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वाऽथ तपसा कृशाम्॥ ४७॥
पप्रच्छुस्तपसो हेतुं तस्यास्तद्भर्तुरेव च।
साऽब्रवीत्तनयार्थाय आवाभ्यां वै तप:क्रिया॥ ४८॥

सप्तर्षियों ने उस तेजस्विनी सुन्दरी को वन में देखा। तपस्या से कृशकाय उस सर्वांगसुन्दरी को देखकर उन ऋषियों ने उसकी और उसके स्वामी की तपस्या के हेतु के विषय में जानना चाहा। उसने कहा— हम दोनों की तपस्या पुत्र के लिए है।

ते चास्यै वरदा ब्रह्मन् जाता: सप्त महर्षय:।
व्रजध्वं तनया: सप्त भविष्यन्ति न संशय:॥ ४९॥
युवयोर्गुणसंयुक्ता महर्षीणां प्रसादत:।
इत्येवमुक्त्वा जगमुस्ते सर्व एव महर्षय:॥ ५०॥

हे ब्राह्मण! उन सात महर्षियों ने उन्हें वर प्रदान किया। उन्होंनें कहा— तुम जाओ; तुम दोनों के गुणों से

युक्त सात पुत्र होंगे— इसमें संशय नहीं हैं। ऐसा कहकर वे समस्त महर्षिगण वहाँ से चले गए।

स चापि राजर्षिरगात् सभार्यो नगरं निजम्।
ततो बहुतिथे काले सा राज्ञो महिषी प्रिया॥५१॥
अवाप गर्भं तन्वङ्गी तस्मान्नृपतिसत्तमात्।
गुर्विण्यामथ भार्यायां ममारासौ नराधिपः॥५२॥

वह राजर्षि भी अपनी पत्नी के साथ अपने नगर को चला गया। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर राजा की उस तन्वंगी प्रियतमा रानी ने उस नृपश्रेष्ठ से गर्भ धारण किया। भार्या जब गर्भिणी थी तभी उस राजा की मृत्यु हो गई।

सा चाप्यारोढुमिच्छन्ती भर्तारं वै पतिव्रता।
निवारिता तदाऽमात्यैर्न तथाऽपि व्यतिष्ठत॥५३॥

अपने पति की चिता पर चढ़ने के लिए तत्पर उस पतिव्रता को मंत्रिगण ने रोका। परंतु वे उसको रोक न पाए।

समारोप्याथ भर्तारं चितायामारुहद्य सा।
ततोऽग्निमध्यात् सलिले मांसपेश्यपतन्मुने॥५४॥

पति को चिता पर रखकर वह स्वयं भी चिता पर चढ़ गई। हे मुनि! तदनन्तर अग्नि के मध्य से एक मांसपेशी जल में गिर पड़ी।

साऽम्भसा सुखशीतेन संसिक्ता सप्तधाऽभवत।
तेऽजायन्ताथ मरुत उत्तमस्यान्तरे मनोः॥५५॥

वह मांसपेशी शीतल और साफ जल से संसिक्त होकर सात भागों में विभक्त हो गई। ये सात उत्तम मनु के काल में मरुत् हुये।

तामसस्यान्तरे ये च मरुतोप्यभवन्पुरा।
तानहं कीर्तयिष्यामि गीतनृत्यकलिप्रिय॥५६॥

हे गीत, नृत्य तथा कलिप्रिय नारद! अब मैं प्राचीन काल में तामस मनु के समय में जो मनु हुए; उनके विषय में वर्णन करूँगा।

तामसस्य मनोः पुत्रो ऋतध्वज इति श्रुतः।
स पुत्रार्थी जुहावाग्नौ स्वमांसं रुधिरं तथा॥५७॥
अस्थीनि रोमकेशांश्च स्नायुमज्जायकृद्घनम्।
शुक्रं च चित्रगौ राजा सुतार्थी इति नः श्रुतम्॥५८॥

तामस मनु का पुत्र ऋतुध्वज है; ऐसा सुना जाता है। पुत्र की इच्छा से उसने अग्नि में अपने रुधिर और मांस की आहुति दी थी। पुत्र प्राप्ति की इच्छा में उसने अस्थियों; रोमकेशों, स्नायु, मज्जा, यकृद् तथा शुक्र की भी अग्नि में आहुति दी, ऐसा हमने सुना है।

सप्तस्वेवार्चिषु ततः शुक्रपातादनन्तरम्।
मा मा क्षिपस्वेत्यभवच्छब्दः सोऽपि मृतो नृपः॥५९॥

अग्नि की सात अर्चियों पर शुक्रपात होने पर ''मत डालो, मत डालो'' इस प्रकार का शब्द हुआ और वह राजा भी मर गया।

ततस्तस्माद्धुतवहात्सप्तधा तत्तेजसोपमाः।
शिशवः समजायन्त ते रुदन्तोऽभवन् मुने॥६०॥

हे मुनि! तब उस हुतवह अग्नि से उसके समान ही तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हुए। उत्पन्न होते ही वे बालक रुदन करने लगे।

तेषां तु ध्वनिमाकर्ण्य भगवान्पद्मसंभवः।
समागम्य निवार्य्याथ स चक्रे मरुतः सुतान्॥६१॥

उनके रोने की ध्वनि को सुनकर पद्मजन्मा भगवान् (ब्रह्मा) ने वहाँ आकर उन बालकों को रुदन से रोककर मरुत् बना दिया।

ते त्वासन् मरुतो ब्रह्मंस्तामसे देवता गणाः।
येऽभवन्रैवते तांश्च शृणुस्व त्वं तपोधन॥६२॥

ब्राह्मण! तामस मनु के समय में ये मरुत् हुए। हे तपोधन! रैवत मनु के समय में जो मरुत् हुए, अब उनके विषय में सुनिये।

रैवतस्यान्ववाये तु य आसीद्रिपुजिद्धनी।
रिपुजिन्नामतः ख्यातो न तस्यासीत्सुतः किल॥६३॥

रैवत के वंश में रिपुजित् नामक धनी राजा हुआ। वह रिपुजित् नाम से विख्यात था। परंतु उसका पुत्र नहीं था।

स समाराध्य तपसा भास्करं तेजसां निधिम्।
अवाप कन्यां सुरतिं तां प्रगृह्य गृहं ययौ॥६४॥

उसने तप द्वारा समस्त तेज के आकर सूर्य की आराधना करके सुरति नामक एक कन्या को प्राप्त किया। उसको लेकर वह घर चला गया।

तस्यां पितृगृहे ब्रह्मन्वसन्त्यां स पिता मृतः।
साऽपि दुःखपरीताङ्गी स्वां तनुं त्यक्तुमुद्यता॥६५॥

हे ब्राह्मण! वह अपने पिता के घर में निवास कर रही थी कि एक दिन उसके पिता की मृत्यु हो गई! दुःखों से अत्यंत व्याकुल होकर वह भी अपना शरीर छोड़ने के लिए तत्पर हो गई।

ततस्तां वारयामासुर्ऋषयः सप्त मानसाः।
तस्यामासक्तचित्तास्तु सर्व एव तपोधनाः॥६६॥

तब सात मानस ऋषियों ने उसे रोका। वह सब तपोधनी ऋषि उसमें आसक्त चित्त वाले थे।

अपारयन्ती तद्दुःखं प्रज्वाल्याग्निं विवेश ह।
ते चापश्यन्त ऋषयस्तच्चित्ता भावितास्तथा॥६७॥

उस दुःख को सहन करने में असमर्थ होकर वह जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर गई। उन ऋषियों ने भी यह दृश्य देखा जिस कारण उनके चित्त भी उसी मानसिक अवस्था में पहुंच गए।

तां मृतामृषयो दृष्ट्वा कष्टं कष्टेति वादिनः।
प्रजग्मुर्ज्वलनाच्चापि सप्ताजायन्त दारकाः॥६८॥

उस को मृत देखकर वे ऋषिगण 'कष्ट कष्ट' कहते हुए चले गए। उस प्रज्वलित अग्नि से सात पुत्र उत्पन्न हुए।

ते च मात्रा विनाभूता रुरुदुस्तान्पितामहः।
निवारयित्वा कृतवांल्लोकनाथो मरुद्गणान्॥६९॥

माता के बिना उत्पन्न हुये वे बालक रुदन करने लगे। लोकनाथ पितामह ब्रह्मा ने रुदन से रोककर उन्हें मरुद्गण बना दिया।

रैवतस्यान्तरे जाता मरुतोऽमी तपोधन।
शृणुस्व कीर्तयिष्यामि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥७०॥

हे तपोधन! रैवत के वंश में ये मरुत् हुए। अब मैं चाक्षुप मनु के वंश में हुए मरुतों के विषय में कहूँगा, सुनिये।

आसीन्मङ्किरिति ख्यातस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः।
सप्तसारस्वते तीर्थे सोऽतप्यत महत्तपः॥७१॥

एक सत्यवक्ता तथा पवित्र मंकि नामक तपस्वी हुआ करते थे। उन्होंने सप्तसारस्वत तीर्थ में महान् तप किया।

विघ्नार्थं तस्य तुषिता देवाः संप्रेषयन् वपुम्।
सा चाभ्येत्य नदीतीरे क्षोभयामास भामिनी॥७२॥

देवताओं ने उसकी तपस्या में विघ्न के लिये वपु नामक अप्सरा को भेजा। नदी के किनारे आकर उस सुन्दरी ने उस तपस्वी को क्षुब्ध कर दिया।

ततोऽस्य प्राच्यवच्छुक्रं सप्तसारस्वते जले।
तां चैवाप्यशपन्मूढां मुनिर्मङ्कणको वपुम्॥७३॥
गच्छ लब्धाऽसि मूढे त्वं पापस्यास्य महत् फलम्।
विध्वंसयिष्यति हयो भवतीं यज्ञसंसदि॥७४॥

तब सप्तसारस्वत के जल में उनका शुक्र गिर पड़ा और मुनि मङ्कणध ने उस मूर्ख वपु को शाप देते हुये कहा–हे मूर्खा! जाओ! इस पाप का तुम्हें भयंकर फल मिलेगा। यज्ञसमुदाय में एक अश्व तुम्हारा नाश कर देगा।

एवं शप्त्वा ऋषिः श्रीमान् जगामाथ स्वमाश्रमम्।
सरस्वतीभ्यः सप्तभ्यः सप्त वै मरुतोऽभवन्॥७५॥

इस प्रकार शाप देकर वह श्रीमान् ऋषि अपने आश्रम को चले गए तथा सप्त सरस्वतियों से सात मरुत् हुए।

एतत् तवोक्ता मरुतः पुरा यथा
जाता वियद्व्याप्तिकरा महर्षे।
येषां श्रुते जन्मनि पापहानि-
र्भवेच्च धर्माभ्युदयो महान् वै॥७६॥

हे महर्षि! प्राचीन काल में गगनचारी जो मरुत् हुए, उनके विषय में तुम्हें बताया गया। इन ऋषियों के विषय में सुनने से जीवन में पाप का नाश तथा धर्म का महान् अभ्युदय होता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे मरुदुत्पत्तिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

(कालनेमि दैत्यवध)

पुलस्त्य उवाच

एतदर्थं बलिर्दैत्यः कृतो राजा कलिप्रिय।
मन्त्रप्रदाता प्रह्लादः शुक्रश्चासीत्पुरोहितः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— हे कलिप्रिय नारद! इस उद्देश्य से

दैत्य बलि को राजा बनाया गया। प्रह्लाद उसका मन्त्री तथा शुक्र पुरोहित था।

पुलस्त्य उवाच

एतदर्थं वलिर्दैत्यः कृतो राजा कलिप्रिय।
मन्त्रप्रदाता प्रह्लादः शुक्रश्चासीत्पुरोहितः॥ २॥

विरोचनपुत्र दैत्य बलि के राज्याभिषेक के विषय में जानकर समस्त कुलसंबंधी उससे मिलने के लिए आए।

तानागतान्निरीक्ष्यैव पूजयित्वा यथाक्रमम्।
पप्रच्छ कुलजान्सर्वान्किनु श्रेयस्करं मम॥ ३॥

उनको आया देखकर तथा क्रमशः उनका अभिनन्दन करके बलि ने अपने संबंधियों से पूछा— मेरे लिये कल्याणकारी क्या है?

तमूचुः सर्व एवैनं शृणुष्व सुरमर्दन।
यत्ते श्रेयस्करं कर्म यदस्माकं हितं तथा॥ ४॥

उन सब ने बलि से कहा— जो तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है तथा हमारे लिए भी कल्याणकारी है, वह सुनो!

पितामहस्तव बली आसीद् दानवपालकः।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्रोऽभूज्जगत्त्रये॥ ५॥

हे बली! तुम्हारे पितामह दानवपालक हिरण्यकशिपु थे जो अत्यंत वीर थे। वे तीनों जगत् में इन्द्र के समान थे।

पितामहस्तव बली आसीद् दानवपालकः।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्रोऽभूज्जगत्त्रये॥ ५॥

सिंहरूपधारी सुरश्रेष्ठ विष्णु ने उनके समीप आकर अनेक दानवश्रेष्ठों के सम्मुख उन्हें अपने नखों से विदीर्ण कर दिया था।

अपकृष्टं तथा राज्यमन्धकस्य महात्मनः।
तेपामर्थे महाबाहो शङ्करेण त्रिशूलिना॥ ७॥
तथा तव पितृव्योऽपि जम्भः शक्रेण घातितः।
कुजम्भो विष्णुना चापि प्रत्यक्षं पशुवत् तव॥ ८॥

हे महाबाहु! तदनन्तर त्रिशूलधारी शिव ने उन देवताओं के लिए अन्धकासुर का महान् राज्य छीन लिया और तुम्हारे सामने ही तुम्हारे चाचा जम्भ को इन्द्र ने तथा कुजम्भ को विष्णु ने पशु के समान मार डाला।

शम्भुः पाको महेन्द्रेण भ्राता तव सुदर्शनः।
विरोचनस्तव पिता निहतः कथयामि ते॥ ९॥

शम्भु, पाक तथा तुम्हारे भाई सुदर्शन को महेन्द्र ने मारा था। तुम्हारे पिता विरोचन भी मारे गये थे।

श्रुत्वा गोत्रक्षयं ब्रह्मन्कृतं शक्रेण दानवः।
उद्योगं कारयामास सह सर्वैर्महासुरैः॥ १०॥

हे ब्राह्मण! इन्द्र के द्वारा किए गए अपने कुलक्षय के विषय में सुनकर समस्त महासुरों के साथ उस दानव ने अपने सैन्यबल को तैयार किया।

रथैरन्ये गजैरन्ये वाजिभिश्चापरेऽसुराः।
पदातयस्तथैवान्ये जग्मुर्युद्धाय दैवतैः॥ ११॥

कुछ दानव रथों के साथ, कुछ गजों के साथ, कुछ अश्वों के साथ तथा कुछ पैदल ही देवताओं के साथ युद्ध के लिए चल पड़े।

मयोऽग्रे याति बलवान् सेनानाथो भयंकरः।
सैन्यस्य मध्ये च बलि कालनेमिश्च पृष्ठतः॥ १२॥

बलवान् तथा भयंकर सेनानायक मय आगे चल रहा था बलि सैन्य बल के मध्य में तथा कालनेमि पीछे चल रहा था।

वामपार्श्वमवष्टभ्य शाल्वः प्रथितविक्रमः।
प्रयाति दक्षिणं घोरं तारकाख्यो भयंकरः॥ १३॥

सर्वविदित पराक्रम वाला शाल्व बाएँ भाग के सैन्य बल को रक्षित कर चल रहा था। जबकि तारक नामक भयंकर दानव दाहिनी ओर को रक्षित कर चल रहा था।

दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
संप्रयातानि युद्धाय देवैः सह कलिप्रिय॥ १४॥

हे कलिप्रिय नारद! हजारों, लाखों और करोड़ों दानव देवताओं के साथ युद्ध के लिए चल पड़े।

श्रुत्वाऽसुराणामुद्योगं शक्रः सुरपतिः सुरान्।
उवाच योगं दैत्यांस्तान् योद्धुं सबलसंयुतान्॥ १५॥

असुरों के आक्रमण के विषय में सुनकर देवपति इन्द्र ने देवताओं से कहा— सैन्यबल के साथ युद्ध के लिये आए हुए असुरों के साथ हम युद्ध के लिये चलते हैं!

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुरराट् स्यन्दनं बली।
समारुरोह भगवान् यतमातलिवाजिनम्॥ १६॥

ऐसा कहकर सुरराज बलशाली इन्द्र मातलि के द्वारा प्रेरित घोड़ों वाले अपने रथ पर चढ़ गए।

समारूढे सहस्राक्षे स्यन्दनं देवतागणाः।
स्वं स्वं वाहनमारुह्य निश्चेरुर्युद्धकाङ्क्षिणः॥ १७॥

सहस्राक्ष के रथ पर सवार हो जाने पर युद्धाकांक्षी समस्त देवतागण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर चल पड़े।

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा।
विद्याधरा गुह्यकाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः॥ १८॥
राजर्षयस्तथा सिद्धा नानाभूताश्च संहताः।
गजानन्ये रथानन्ये हयानन्ये समारुहन्॥ १९॥
विमानानि च शुभ्राणि पक्षिवाह्यानि नारद।
समारुह्याद्रवन्सर्वे यतो दैत्यबलं स्थितम्॥ २०॥

हे नारद! आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेवा, अश्विनी, विद्याधर, गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, राजर्षि, सिद्ध, अनेक प्रकार के भूतगण, इकट्ठे होकर कुछ हाथियों पर, कुछ रथों पर, कुछ अश्वों पर, कुछ विमानों पर तथा कुछ पक्षिवाहनों पर आरूढ होकर उस ओर दौड़ पड़े जहाँ दैत्य सैन्यबल स्थित था।

एतस्मिन्नन्तरे धीमान्वैनतेयः समागतः।
तस्मिन्विष्णुः सुरश्रेष्ठ अधिरुह्य समभ्यगात्॥ २१॥

इसी समय बुद्धिमान् गरुड़ आ पहुँचे। उस पर आरूढ होकर सुरश्रेष्ठ विष्णु आ पहुँचे।

तमागतं सहस्राक्षस्त्रैलोक्यपतिमव्ययम्।
ववन्द मूर्ध्नाऽवनतः सह सर्वैः सुरोत्तमैः॥ २२॥

उन अविनाशी त्रिलोकपति विष्णु के आने पर समस्त देवताओं सहित सहस्राक्ष ने सिर झुका कर उनकी अभिवंदना की।

ततोऽग्रे देवसैन्यस्य कार्त्तिकेयो गदाधरः।
पालयञ्जघनं विष्णुर्याति मध्ये सहस्रदृक्॥ २३॥

तदनन्तर देवसैन्य के अग्रभाग में गदाधर कार्तिकेय, पृष्ठभाग में विष्णु तथा मध्यभाग में सहस्रदृक् इन्द्र चल रहे थे।

वामं पार्श्वमवष्टभ्य जयन्तो वज्रते मुने।
दक्षिणं वरुणः पार्श्वमवष्टभ्याव्रजद् बली॥ २४॥

हे मुनि! जयन्त सुरसैन्य के बाएँ भाग की रक्षा करते हुए चल रहे थे जबकि बलशाली वरुण दाएँ भाग की रक्षा करते हुए चल रहे थे।

ततोऽमराणां पृतना यशस्विनी
स्कन्देन्द्रविष्णवम्बुपसूर्यपालिता।
नानास्त्रशस्त्रोद्यतदोः समूहा
समाससादारिबलं महीध्रे॥ २५॥

तदनन्तर स्कन्द, इन्द्र, विष्णु, अम्बुक (वरुण) तथा सूर्य के द्वारा नेतृत्व की जाने वाली नाना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित देवताओं की यशस्विनी सेना ने युद्धस्थल में शत्रुसैन्य पर आक्रमण कर दिया।

उदयाद्रितटे रम्ये शुभे समशिलातले।
निर्वृक्षे पक्षिरहिते जातो देवासुरो रणः॥ २६॥

समतल शिलाओं वाले रमणीय एवं पवित्र उदयाद्रि के किनारे पर जहाँ वृक्ष और पक्षिगण नहीं थे देवासुर संग्राम हुआ।

संनिपातततस्तयो रौद्रः सैन्ययोरभवन्मुने।
महीधरोत्तमे पूर्वं यथा वानरहस्तिनोः॥ २७

उस पर्वतश्रेष्ठ पर उन दोनों सेनाओं का उसी प्रकार भयंकर टकराव हुआ जिस प्रकार प्राचीन काल में वानर और हस्ति सेना का टकराव हुआ था।

रणरेणू रथोद्धूतः पिङ्गलो रणमूर्धनि।
संध्यानुरक्तः सदृशो मेघः खे सुरतापस॥ २८॥

हे दिव्य तपस्वी! वहाँ रणभूमि में रथों के द्वारा उडाया गया रक्तवर्णीय रजसमूह संध्याकालीन (किरणों से) अनुरंजित मेघसमूह के समान आकाश में व्याप्त था।

तदासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन।
श्रूयते त्वनिशं शब्दः छिन्धि भिन्धीति सर्वतः॥ २९॥

वहाँ भयंकर युद्ध हो रहा था और कुछ भी ज्ञात न हो पा रहा था। केवल 'काट डालो, छेद डालो' इस प्रकार के शब्द चारों ओर से लगातार सुनाई दे रहे थे।

ततो विशसनो रौद्रो दैत्यानां दैवतैः सह।
जातो रुधिरनिष्यन्दो रजःसंयमनात्मकः॥ ३०॥

तदनन्तर दैत्यों और देवताओं के रुधिर का अत्यंत भयानक निष्यन्द उत्पन्न हुआ जिसने उठे हुए धूलिसमूह को दबा दिया।

शान्ते रजसि देवाद्यास्तद् दानववलं महत्।
अभिद्रवन्ति सहिताः समं स्कन्देन धीमता॥ ३१॥

धूलिसमूह के शान्त हो जाने पर देवता आदि बुद्धिमान् स्कन्द के साथ विशाल दानवसमूह की ओर दौड़े।

शान्ते रजसि देवाद्यास्तद् दानववलं महत्।
अभिद्रवन्ति सहिताः समं स्कन्देन धीमता॥ ३१॥

बलशाली कुमार के नेतृत्व में देवताओं ने दानवों को मार डाला जबकि मय दानव के नेतृत्व में आक्रमणकारी दानवों ने देवों को मार डाला।

ततोऽमृतरसास्वादाद् विना भूताः सुरोत्तमाः।
निर्जिताः समरे दैत्यैः समं स्कन्देन नारद॥ ३३॥

हे नारद! तदनन्तर अमृत रसास्वाद से वंचित स्कन्दसहित देवतागण युद्ध में दैत्यों के द्वारा जीत लिए गए।

विनिर्जितान् सुरान् दृष्ट्वा वैनतेयध्वजोऽरिहा।
शार्ङ्गमानम्य बाणौघैर्निजघान ततस्ततः॥ ३४॥

गरुड़ध्वज शत्रुनाशक विष्णु ने देवों को पराजित देखकर अपने धनुष को खींचकर बाणप्रहारों से इधर-उधर दैत्यों को मार डाला।

ते विष्णुना हन्यमानाः पतत्त्रिभिरयोमुखैः।
दैतेयाः शरणं जग्मुः कालनेमिं महासुरम्॥ ३५॥

विष्णु के द्वारा अयोमुख बाणों से मारे जाते हुए दैत्य महासुर कालनेमि की शरण में पहुँचे।

तेभ्यः स चाभयं दत्त्वा ज्ञात्वाऽजेयं च माधवम्।
विवृद्धिमगमद् ब्रह्मन् यथा व्याधिरुपेक्षितः॥ ३६॥

हे ब्राह्मण! उनको अभयदान प्रदान करके तथा विष्णु को अजेय जानकर वह कालनेमि उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो गया जैसे उपेक्षित व्याधि वृद्धि को प्राप्त हो जाती है।

यं यं करेण स्पृशति देवं यक्षं सकिन्नरम्।
तं तमादाय चिक्षेप विस्तृते वदने बली॥ ३७॥

देव, यक्ष अथवा किन्नर जिस-जिस को भी वह हाथ से छू सकता था उस-उसको उठाकर वह बलशाली अपने विशाल मुख में रख लेता था।

संरम्भाद् दानवेन्द्रो विमृदति दितिजैः संयुतो देवसैन्यं
सेन्द्रं सार्कं सचन्द्रं करचरणनखैरस्त्रहीनोऽपि वेगात्।
चक्रैर्वैश्वानराभैस्त्ववनिगगनयोस्तिर्यगूर्ध्वं समन्तात्
प्राप्तेऽन्ते कालवह्नेर्जगदखिलमिदं रूपमासीद्विक्षोः॥ ३८

दैत्यों सहित उस दैत्येन्द्र ने क्रोधवश निरायुध होते हुए भी अपने हाथों, पैरों और नखों से अत्यंत तीव्रता के साथ इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा से युक्त देवसेना को कुचल दिया। उसका स्वरूप कालाग्नि के समान भयंकर था जो पृथ्वी और आकाश के मध्य अपनी भयानक उठती हुई लपटों से द्युलोक सहित समस्त जगत् को निगल रहा था।

तं दृष्ट्वा वर्द्धमानं रिपुमतिवलिनं देवगन्धर्वमुख्याः
सिद्धाः साध्याश्विमुख्या भयतरलदृशः प्राद्रन् दिक्षु सर्वे
पोप्लूयन्तश्च दैत्या हरिममरगणैरर्चितं चारुमौलिं
नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयशसं चक्रुरुत्सिक्तदर्पाः॥ ३९

उस अत्यंत बलशाली शत्रु को बढ़ते हुए देखकर भयभीत दृष्टि वाले प्रमुख देवता साध्य, गंधर्व तथा अश्विनीकुमार विभिन्न दिशाओं में भागने लगे। उछलते एवं दर्प से फूले हुए दानवों ने देवतासमूह के द्वारा वंदनीय चारुमौलि विष्णु पर नाना अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से उन्हें यशोविहीन कर डाला।

तानित्थं प्रेक्ष्य दैत्यान् मयबलिपुरगान् कालनेमिप्रधानान्
बाणैराकृष्य शार्ङ्गं त्वनवरतमुरोभेदिभिर्वज्रकल्पैः।
कोपादारक्तदृष्टिः सरथगजहयान् दृष्टिनिर्धूतवीर्यान्
नाराचाख्यैःसुपुङ्खैर्जलद इव गिरीन्छादयामास विष्णुः॥

मय, बलि और पुर तथा कालनेमिप्रमुख दानवों को इस प्रकार उत्तेजित और प्रेरित देखकर क्रोध से रक्तरंजित नेत्रों वाले विष्णु ने अपने शार्ङ्ग धनुष को खींचकर अपने उरभेदी, वज्रसमान नाराच नामक बाणों से रथ और अश्वों सहित-(विष्णु की क्रुद्ध) दृष्टि से शक्तिहीन (डरे हुए उन दानवों को) उसी प्रकार आच्छादित कर दिया जैसे-मेघ पर्वत को आच्छादित कर देते हैं।

तानित्थं प्रेक्ष्य दैत्यान् मयबलिपुरगान् कालनेमिप्रधानान्
बाणैराकृष्य शार्ङ्गं त्वनवरतमुरोभेदिभिर्वज्रकल्पैः।
कोपादारक्तदृष्टिः सरथगजहयान् दृष्टिनिर्धूतवीर्यान्
नाराचाख्यैःसुपुङ्खैर्जलद इव गिरीन्छादयामासविष्णुः॥

हरि के करों से छोड़े हुए, कालदण्ड के समान चमकते हुए अर्धचन्द्र की आकृति वाले 'नाराच' बाणों से आच्छादित, बलि और मय के अनुयायी अत्यंत डरे हुए वे दानव सौ मुख वाले दानवेन्द्र कालनेमि के पास जाने लगे। वह कालनेमि उन दानवों को भयभीत देखकर देवसैन्य के स्वामी लोकपति अति बलवान् केशव की ओर बढ़ चला।

तं दृष्ट्वा शतशीर्षमुद्यतगदं शैलेन्द्रश्रृङ्गाकृतिं
विष्णुः शार्ङ्गमपास्य सत्वरमथो जग्राह चक्रं करे।
सोऽप्येनं प्रसमीक्ष्य दैत्यविटपप्रच्छेदनं मानिनं
प्रोवाचाथ विहस्य तं च सुचिरं मेघस्वनो दानवः॥४२॥

उन्नत पर्वतशिखर के सदृश आकृति वाले, हाथ में गदा उठाए, शत शीर्ष वाले उस कालनेमि को देखकर विष्णु ने अपना धनुष फेंका और शीघ्रता से हाथ में चक्र उठा लिया। वह कालनेमि दानव दैत्यविटप का प्रच्छेदन करने वाले माननीय विष्णु को देखकर, हँसते हुये मेघ के समान गंभीर वाणी से इस प्रकार बोला—

अयं स दनुपुत्रसैन्यवित्रासकृद्रिपुः
परमकोपितः स मधोर्विघातकृत्।
हिरण्यनयनान्तकः कुसुमपूजारतिः क्व
याति मम दृष्टिगोचरे निपतितः खलः॥४३॥

यही वह परमकुपित शत्रु है जिसने दैत्यसैन्य को त्रासित किया है, मधु (राक्षस) को मारा है, हिरण्याक्ष का वध किया है तथा जिसे कुसुमों से पूजा करवाना अत्यंत प्रिय है। अब वह दुष्ट मुझे दिखाई दे गया है। अब वह मुझसे बचकर कहाँ जाएगा।

यद्येष सम्प्रति ममाहवमभ्युपैति
नूनं न याति निलयं निजमम्बुजाक्षः।
मन्मुष्टिपिष्टशिथिलाङ्गमुपात्तभस्म
संद्रक्ष्यते सुरजनो भयकातराक्षः॥४४॥

यदि यह कमलनयन अब युद्ध में मुझसे भिड़ जाए तो निश्चय ही अपने घर नहीं लौट पायेगा। मेरे मुष्टिप्रहारों से चूर-चूर तथा शिथिल अङ्गों वाले इस विष्णु को भय से कातर नेत्रों वाले देवतागण धूल चाटता हुआ देखेंगे!

इत्येवमुक्त्वा मधुसूदनं वै
स कालनेमिः स्फुरिताधरोष्ठः।
गदां खगेन्द्रोपरि जातकोपो
मुमोच शैले कुलिशं यथेन्द्रः॥४५॥

मधुसूदन को यह कहकर क्रोधित एवं स्फुरित अधरोष्ठ वाले कालनेमि ने खगेन्द्र पर गदा को उसी प्रकार फेंका जिस प्रकार इन्द्र पर्वत पर वज्र फेंकता है।

तामापतन्तीं प्रसमीक्ष्य विष्णु-
र्घोरां गदां दानवबाहुमुक्ताम्।
चक्रेण चिच्छेद सुदुर्गतस्य
मनोरथं पूर्वकृतेव कर्म॥४६॥

दैत्य की भुजाओं से फेंकी हुई तथा अपनी ओर आती हुई उस भयंकर गदा को विष्णु ने चक्र से उसी प्रकार काट डाला जिस प्रकार पूर्वकृत कर्म घोरदरिद्र व्यक्ति के मनोरथ को छिन्न-भिन्न कर देते हैं।

गदां छित्त्वा दानवाभ्याशमेत्य
भुजौ पीनौ संप्रचिच्छेद वेगात्।
भुजाभ्यां कृत्ताभ्यां दग्धशैलप्रकाशः.
संदृश्येताप्यपरः कालनेमिः॥४७॥

गदा को काटकर विष्णु दानव के समीप गये और उसकी पुष्ट भुजाओं को उन्होंने शीघ्रता से काट डाला। भुजाओं के कट जाने पर दग्ध पर्वत के सदृश वह कालनेमि कोई दूसरा ही (सर्वथा भिन्न) दिखाई दे रहा था।

ततोऽस्य माधवः कोपात् शिरश्चक्रेण भूतले।
छित्त्वा निपातयामास पक्वं तालफलं यथा॥४८॥

तदनन्तर लक्ष्मीपति विष्णु ने क्रोधवश चक्र से उस कालनेमि का सिर काटकर भूमि पर इसी प्रकार गिरा दिया जिस प्रकार पका हुआ ताल फल भूमि पर गिर जाया करता है।

तथा विबाहुर्विशिरा मुण्डतालो यथा वने।
तस्थौ मेरुरिवाकम्प्यः कबन्धः क्ष्माधरेश्वरः॥४९॥

तदनन्तर (शिखररहित कटे-छँटे) वन में मुण्डताल की भाँति सिर और भुजाओं से विहीन वह केवल शरीरमात्र में उसी प्रकार खड़ा रहा जिस प्रकार अचल सुमेरु पर्वत खड़ा रहता है।

तं वैनतेयोऽप्युरसा खगोत्तमो
निपातयामास मुने धरण्याम्।
यथाऽम्वराद् बाहुशिरःप्रणष्टः
वलं महेन्द्रः कुलिशेन भूम्याम्॥५०॥

हे मुनि! उस कालनेमि को पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ ने अपने वक्षस्थल के प्रहारों से भूमि पर गिरा दिया; जैसे नष्टशक्ति वाले बाहुशिरा को इन्द्र ने अपने वज्र द्वारा अम्बर से भूमि पर गिरा दिया था।

तस्मिन्हते दानवसैन्यपाले
संपीड्यमानस्त्रिदशैस्तु दैत्याः।
विमुक्तशस्त्रालकचर्मवस्त्राः
संप्राद्रवन् वाणमृतेऽसुरेन्द्राः॥५१॥

दानवसेनापति के मारे जाने पर बाण के अतिरिक्त अन्य सभी दैत्य देवताओं के द्वारा पीडित होकर भाग खड़े हुए। उनके शस्त्रास्त्र, केश तथा वस्त्र, सभी अस्त-व्यस्त हो रहे थे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे
कालनेमिवधो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद द्वारा राजा बलि को उपदेश)

पुलस्त्य उवाच

संनिवृत्ते ततो बाणे दानवाः सत्वरं पुनः।
निवृत्ता देवतानां सशस्त्रा युद्धलालसाः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर बाण के पुनः युद्धभूमि में लौटने पर दानव भी देवताओं से युद्ध की इच्छा से अस्त्र-शस्त्रों सहित शीघ्रता से युद्धभूमि में लौट आए।

विष्णुरप्यमितौजास्तं ज्ञात्वाऽजेयं बलेः सुतम्।
प्राहामन्त्र्य सुरान्सर्वान्युध्यध्वं विगतज्वराः॥२॥

अमिततेजस्वी विष्णु ने भी बलि के पुत्र को अजेय समझकर समस्त देवताओं को बुलाकर कहा— निर्भयता से युद्ध करो।

विष्णुनाऽथ समादिष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः।
युयुधुर्दानवैः सार्धं विष्णु स्त्वन्तरधीयत॥३॥

विष्णु के द्वारा आदेश प्राप्त करके इन्द्र के अनुगामी देवताओं ने दानवों के साथ युद्ध किया और विष्णु अन्तर्ध्यान हो गए।

माधवं गतमाज्ञाय शुक्रो बलिमुवाच ह।
गोविन्देन सुरास्त्यक्तास्त्वं जयस्वाधुना बले॥४॥

माधव को गया हुआ जानकर शुक्र ने बलि से कहा— हे बलि! गोविन्द देवताओं को छोड़कर चले गए हैं; इसलिए अब तुम विजयी हो जाओ।

स पुरोहितवाक्येन प्रीतो याते जनार्दने।
गदामादाय तेजस्वी देवसैन्यमभिद्रुतः॥५॥

जनार्दन के चले जाने के बाद पुरोहित (शुक्र) के वचनों से प्रसन्न वह तेजस्वी बलि देवसेना की ओर दौड़ पड़ा।

बाणो बाहुसहस्रेण गृह्य प्रहरणान्यथ।
देवसैन्यमभिद्रुत्य निजघान सहस्रशः॥६॥

अपनी सहस्रों भुजाओं में आयुधों को उठाकर बाण ने दैवसैन्य पर आक्रमण करके उन्हें सहस्रों की संख्या में मार गिराया।

मयोऽपि मायामास्थाय तैस्तै रूपान्तरैर्मुने।
योधयामास बलवान् सुराणां च वरूथिनीम्॥७॥

हे मुनि! बलशाली मय ने भी अपनी माया का आश्रय लेकर (अपने) भिन्न-भिन्न रूपों के साथ देवताओं की सेना को युद्ध के लिए प्रेरित किया।

विद्युज्जिह्वः पारिभद्रो वृषपर्वा शतेक्षणः।
विपाको विक्षरः सैन्यं तेऽपि देवानुपाद्रवन्॥८॥

विद्युद्जिह्व, परिभद्र, वृषपर्वा, शतेक्षण, विपाक, विक्षर— इन सब ने भी देवसेना पर आक्रमण कर दिया।

ते हन्यमाना दितिजैर्देवाः शक्रपुरोगमाः।
गते जनार्दने देवे प्रायशो विमुखाऽभवन्॥९॥

विष्णु के चले जाने के बाद इन्द्र के अनुगामी

देवतागण दैत्यों के द्वारा इस प्रकार मारे जाने लगे तो वे युद्ध से प्रायः भाग खड़े हुए।

तान् प्रभग्नान् सुरगणान्बलिबाणपुरोगमाः।
पृष्ठतस्त्वद्रवन्सर्वे त्रैलोक्यविजिगीषवः॥ १०॥

त्रिलोकविजय की इच्छा वाले उन बलि और बाण के अनुगामी दैत्यों ने भागते हुए देवताओं पर पीछे से आक्रमण किया।

संबाध्यमाना दैतेयैर्देवाः सेन्द्रा भयातुराः।
त्रिविष्टपं परित्यज्य ब्रह्मलोकमुपागताः॥ ११॥

दैत्यों के द्वारा सताए जाते हुए इन्द्रसहित अत्यंत भयभीत देवतागण द्युलोक को छोड़कर ब्रह्मलोक में आ पहुँचे।

ब्रह्मलोकं गतेष्वित्थं सेन्द्रेष्वपि सुरेषु वै।
स्वर्गभोक्ता बलिर्जातः सपुत्रभ्रातृबान्धवः॥ १२॥

जब इन्द्रसहित समस्त देवतागण ब्रह्मलोक में चले गये, तो बलि अपने पुत्र और बंधु-बांधवों के साथ स्वर्ग का भोक्ता बन गया।

शक्रोऽभूद् भगवान् ब्रह्मन्बलिर्बाणो यमोऽभवत्।
वरुणोऽभून्मयः सोमो राहुर्ह्लादो हुताशनः॥ १३॥
स्वर्भानुरभवत्सूर्यः शुक्रश्चासीद्बृहस्पतिः।
येऽन्येऽप्यधिकृता देवास्तेषु जाताः सुरारयः॥ १४॥

हे ब्राह्मण! बलशाली बलि इन्द्र बन गया। बाण यम बन गया, मय वरुण बन गया, राहु चन्द्रमा बन गया तथा ह्लाद अग्नि बन गया। स्वर्भानु सूर्य बन गया और शुक्र बृहस्पति बन गया। इस प्रकार वे देव-शत्रु विभिन्न देवों के रूप में अधिकृत हो गए।

पञ्चमस्य कलेरादौ द्वापरान्ते सुदारुणः।
देवासुरोऽभूत्संग्रामो यत्र शक्रोऽप्यभूद्बलिः॥ १५॥

पंचम कलि के प्रारम्भ में तथा द्वापर के अन्त में अत्यंत दारुण देवासुर संग्राम हुआ जहाँ बलि इन्द्र बन बैठा।

पातालाः सप्त तस्यासन् वशे लोकत्रयं तथा।
भूर्भुवःस्वरिति ख्यातं दशलोकाधिपो बलिः॥ १६॥

सातों पाताल तथा भूः भुवः और स्वः ये तीनों लोक उसके वश में थे। इस तरह वह दशलोकाधिपति बन गया था।

स्वर्गे स्वयं निवसति भुञ्जन् भोगान् सुदुर्लभान्।
तत्रोपासत गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः॥ १७॥

वह स्वयं सुदुर्लभ भोगों का भोग करते हुए स्वर्ग में निवास कर रहा था। विश्वावसु के अनुगामी समस्त गंधर्व उसकी उपासना किया करते थे।

तिलोत्तमाद्याप्सरसो नृत्यन्ति सुरतापस।
वादयन्ति च वाद्यानि यक्षविद्याधरादयः॥ १८॥

हे सुरतपस्वी! तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ उसके यहाँ नृत्य करती थीं तथा विद्याधर आदि यक्ष वाद्य बजाते थे।

विविधानपि भोगांश्च भुञ्जन् दैत्येश्वरो बलिः।
सस्मार मनसा ब्रह्मन्प्रह्लादं स्वपितामहम्॥ १९॥

हे ब्राह्मण! इस प्रकार विविध भोगों का उपभोग करते हुए दैत्येश्वर बलि ने अपने मन में अपने पितामह प्रह्लाद का स्मरण किया।

संस्मृतो नप्तृणा चासौ महाभागवतोऽसुरः।
समभ्यागात्त्वरायुक्तः पातालात् स्वर्गमव्ययम्॥ २०॥

अपने पौत्र के द्वारा इस प्रकार संस्मृत वह महाभाग महासुर शीघ्रतापूर्वक पाताललोक से अविनाशी स्वर्ग में पहुँचा गया।

तमागतं समीक्ष्यैव त्यक्त्वा सिंहासनं बलिः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणावुभौ॥ २१॥

उन्हें समागत देखकर बलि ने अपना आसन छोड़ दिया और हाथ जोड़कर उनके दोनों चरणों में नमस्कार किया।

पादयोः पतितं वीरं प्रह्लादस्त्वरितो बलिम्।
समुत्थाप्य परिष्वज्य विवेश परमासने॥ २२॥

चरणों पर गिरे हुए वीर बलि को तुरंत उठाकर प्रह्लाद ने उसका आलिङ्गन किया और स्वयं परम-आसन पर बैठ गए।

तं बलिः प्राह भोस्तात त्वत्प्रसादात्सुरा मया।
निर्जिताः शक्रराज्यं च हृतं वीर्यबलान्मया॥ २३॥

प्रह्लाद से बलि ने कहा— हे तात! आपकी कृपा से मैंने देवताओं को जीत लिया है तथा अपने शक्तिबल से इन्द्र का राज्य भी छीन लिया है।

तदिदं तात मद्वीर्यविनिर्जितसुरोत्तमम्।
त्रैलोक्यराज्यं भुङ्क्ष्व त्वं मयि भृत्ये पुरःस्थिते॥ २४॥

इसलिये, हे तात! मेरी शक्ति से विजित त्रैलोक्य के दिव्य साम्राज्य का आप उपयोग करें। मैं आपके सम्मुख परिचारक के रूप में स्थित रहूँगा।

एतावता पुण्ययुतः स्यामहं तात यत् स्वयम्।
त्वदङ्घ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिष्टान्नभोजनः॥ २५॥

हे तात! आपकी चरणवंदना में अभिरत तथा आपका उच्छिष्ट (झूठा) भोजन करने वाला होकर ही मैं पुण्यशाली होऊँगा।

न सा पालयतो राज्यं धृतिर्भवति सत्तम।
या धृतिर्गुरुशुश्रूषां कुर्वतो जायते विभो॥ २६॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! हे प्रभु! राज्य का पालन करते हुए इतनी संतुष्टि प्राप्त नहीं होती जितनी संतुष्टि अपने गुरुओं की सेवा करके प्राप्त होती है।

ततस्तदुक्तं बलिना वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः।
प्रह्लादः प्राह वचनं धर्मकामार्थसाधनम्॥ २७॥

हे द्विजोत्तम! बलि के कहे गए उन वचनों को सुनकर प्रह्लाद ने धर्म, अर्थ और काम को सिद्ध करने वाले निम्न वचन कहे—

मया कृतं राज्यमकण्टकं पुरा
प्रशासिताभूः सुहृदोऽनुपूजिताः।.
दत्तं यथेष्टं जनितास्तथाऽऽत्मजाः
स्थितो बले सम्प्रति योगसाधकः॥ २८॥

हे बलि! प्राचीनकाल में मैंने अपने राज्य को निष्कंटक (शत्रुरहित) किया था। मैंने पृथ्वी पर शासन किया तथा मित्रों-बंधुओं का आदर-सत्कार किया। मैंने यथेष्ट दान दिया तथा संतानोत्पत्ति से वंशवृद्धि की। अब मैं योग की साधना में स्थित हूँ!

गृहीतं पुत्र विधिवन्मया भूयोऽर्पितं तव।
एवं भव गुरूणां त्वं सदा शुश्रूषणे रतः॥ २९॥

हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा दिए गए राज्य को विधिवत् ग्रहण कर मैंने पुनः तुम्हें ही अर्पित कर दिया है। तुम सदैव इसी प्रकार अपने गुरुजनों की शुश्रूषा में रत रहो।

इत्येवमुक्त्वा वचनं करे त्वादाय दक्षिणे।
शाक्रे सिंहासने ब्रह्मन्बलिं तूर्णं न्यवेशयत्॥ ३०॥

हे ब्राह्मण! ऐसा कहकर प्रह्लाद ने बलि को दाहिने हाथ से पकड़ा और शीघ्र ही उसे इन्द्र के सिंहासन पर बैठा दिया।

सोपविष्टो महेन्द्रस्य सर्वरत्नमये शुभे।
सिंहासने दैत्यपतिः शुशुभे मघवानिव॥ ३१॥

इन्द्र के सर्वरत्नमय पवित्र आसन पर बैठा हुआ वह दैत्यपति बलि इन्द्र की भाँति सुशोभित हो रहा था।

तत्रोपविष्टश्चैवासौ कृताञ्जलिपुटो नतः।
प्रह्लादं प्राह वचनं मेघगम्भीरया गिरा॥ ३२॥

सिंहासन पर बैठे हुए ही हाथ जोड़कर झुके हुए बलि ने मेघ के समान गंभीर वाणी में प्रह्लाद से कहा—

यन्मया तात कर्तव्यं त्रैलोक्यं परिरक्षता।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्तदादिशतु मे भवान्॥ ३३॥

हे तात! त्रिलोक की रक्षा करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए मुझे जो करना चाहिये आप मुझे उसका उपदेश दीजिए।

तद्वाक्यसमकालं च शुक्रः प्रह्लादमब्रवीत्।
यद्युक्तं तन्महाबाहो वदस्वास्योत्तरं वचः॥ ३४॥

बलि के वचनों के साथ ही शुक्र ने भी प्रह्लाद से कहा— हे महाबाहु! जो उपयुक्त है, वही वचन उत्तर में कहें।

वचनं बलिशुक्राभ्यां श्रुत्वा भागवतोऽसुरः।
प्राह धर्मार्थसंयुक्तं प्रह्लादो वाक्यमुत्तमम्॥ ३५॥

यदायत्यां क्षमं राजन् यद्धितं भुवनस्य च।
अविरोधेन धर्मस्य अर्थस्योपार्जनं च यत्॥ ३६॥

सर्वसत्त्वानुगमनं कामवर्गफलं च यत्।
परत्रेह च यच्छ्रेयः पुत्र तत्कर्म आचर॥ ३७॥

बलि और शुक्र के वचनों को सुनकर भगवद्भक्त असुर प्रह्लाद ने इस प्रकार के धर्म और अर्थ से युक्त उत्तम वचन कहे— हे राजन्! जो कर्म भविष्य में भी तुम्हारे साथ रह सके, जो समस्त लोक के हित में हो, जो धर्म से अविरुद्ध हो, जो अर्थोपार्जन में सक्षम हो, जो

समस्त प्राणियो के द्वारा समर्थित तथा अनुकरणीय हो, जो कामनाओं की सिद्धि करने वाले हो तथा जो इस लोक और परलोक में श्रेयस्कर हो; हे पुत्र! तुम ऐसे कार्यों का आचरण करो!

यथा श्लाघ्यं प्रयास्यद्य यथा कीर्तिर्भवेत्तव।
यथा नायशसो योगस्तथा कुरु महामते॥३८॥

हे महाबुद्धिमान्! हे महामति! जो प्रत्येक कदम पर प्रशंसनीय हो, जिससे तुम्हारी कीर्ति हो, जिससे तुम्हारा अपयश न हो तुम उसी प्रकार आचरण करो।

एतदर्थं श्रियं दीप्तां काङ्क्षन्ते पुरुषोत्तमाः।
येनैतानि गृहेऽस्माकं निवसन्ति सुनिर्वृताः॥३९॥
कुलजो व्यसने मग्नः सखा चार्थबहिः कृतः।
वृद्धो ज्ञातिर्गुणी विप्रः कीर्तिश्च यशसा सह॥४०॥

पुरुषोतम इसी कारण समृद्धि और कान्ति की इच्छा करते हैं कि हमारे घर में कुलीन, दुःखी, मित्र, दरिद्र, वृद्ध, संबंधी, गुणी, ब्राह्मण तथा यश सहित कीर्ति नित्य निवास करें।

तस्माद्यथैते निवसन्ति पुत्र
राज्यस्थितस्येह कुलोद्गताद्याः।
तथा यतस्वामलसत्त्वचेष्ट
यथा यशस्वी भविताऽसि लोके॥४१॥

हे पवित्र विचार और चेष्टाओं वाले पुत्र! कुलीनवंशोत्पन्न तथा अन्य ये सब (ऊपर वर्णित) तब तक तुम्हारे राज्य में निवास करें जब तक तुम्हारा राज्य रहें तथा तीनों लोकों में तुम्हारा यश हो।

भूम्यां सदा ब्राह्मणभूषितायां
क्षत्रान्वितायां दृढवापितायाम्।
शुश्रूषणासक्तिसमुद्भवाया-
मृद्धिं प्रयान्तीह नराधिपेन्द्राः॥४२॥

यदि यह भूमि सदैव ब्राह्मणों से सुशोभित रहे, भली भाँति वपन की हुई भूमि क्षत्रियों से युक्त रहे और विभिन्न शुश्रूषा में लगे हुए व्यक्तियों से युक्त रहे तो नराधिपेन्द्र यहाँ निश्चय ही समृद्धि को प्राप्त होंगे।

तस्माद् द्विजाग्र्याः श्रुतिशास्त्रयुक्ता
नराधिपांस्ते प्रतियाजयन्तु।
दिव्यैर्यजन्तु क्रतुभिर्द्विजेन्द्रा
यज्ञाग्निधूमेन नृपस्य शान्तिः॥४३॥

इसलिए वेदवाक्यों में पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम राजाओं की मुख्य धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करो तथा मुख्य ब्राह्मण दिव्ययज्ञों से यजन करें। एक राजा की शान्ति यज्ञाग्नि के धुएँ से ही आती है।

तपोऽध्ययनसंपन्ना याजनाध्यापने रताः।
सन्तु विप्राः बले पूज्यास्त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्य हि॥४४॥

हे बलि! ब्राह्मण तप और अध्ययन में लगे हुए, यज्ञ करने वाले तथा अध्यापन में रत रहते हुये तुम्हारी अनुज्ञा से पूजनीय हों।

स्वाध्याययज्ञनिरता दातारः शस्त्रजीविनः।
क्षत्रियाः सन्तु दैत्येन्द्र प्रजापालनधर्मिणः॥४५॥

हे दैत्येन्द्र! शस्त्रजीवी क्षत्रिय दानी, स्वाध्याय एवं यज्ञ में निरत तथा प्रजापालनरूपी धर्म को अपनाने वाले होकर रहें।

यज्ञाध्ययनसंपन्ना दातारः कृषिकारिणः।
पाशुपाल्यं प्रकुर्वन्तु वैश्या विपणिजीविनः॥४६॥

वैश्यगण यज्ञ और अध्ययन में रत, दानी, कृषिकर्म में लीन, व्यापार में रत, रहकर पशुपालन करते रहें।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सदा शुश्रूषणे रताः।
शूद्राः सन्त्वसुरश्रेष्ठ तवाज्ञाकारिणः सदा॥४७॥

हे असुरश्रेष्ठ! शूद्रगण, सदैव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की शुश्रूषा में रत होकर तुम्हारी आज्ञा का पालन करते रहें।

यदा वर्णाः स्वधर्मस्था भवन्ति दितिजेश्वर।
धर्मवृद्धिस्तदा स्याद्वै धर्मवृद्धौ नृपोदयः॥४८॥

हे असुरराज! जब समस्त वर्ण अपने-अपने धर्म में स्थित होंगें तभी धर्म की वृद्धि होगी और धर्म की वृद्धि होने पर ही राजा का अभ्युदय होता है।

तस्माद्वर्णाः स्वधर्मस्थास्त्वया कार्याः सदा बले।
तद्वृद्धौ भवतो वृद्धिस्तद्धानौ हानिरुच्यते॥४९॥

हे बलि! इसलिए तुम्हें समस्त वर्णों को स्वधर्म में स्थित करना चाहिए। धर्म की वृद्धि में ही वृद्धि तथा धर्म की हानि में ही हानि कही गई है।

इत्थं वचः श्राव्य महासुरेन्द्रो
बलिं महात्मा स बभूव तूष्णीम्।
ततो यदाज्ञापयसे करिष्ये
इत्थं बलिः प्राह वचो महर्षे॥५०॥

बलि को इस प्रकार के वचन कहकर महासुरेन्द्र महात्मा प्रह्लाद मौन हो गए। हे महर्षि! तदनन्तर बलि ने कहा— जैसी अपने आज्ञा दी है, मैं वैसा ही करूँगा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः
(बलि वैभव वर्णन)

पुलस्त्य उवाच

ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मलोकं प्रति द्विज।
त्रैलोक्यं पालयामास बलिर्धर्मान्वितः सदा॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— हे तपोधन! जब देवतागण ब्रह्मलोक को चले गये, तब बलि सदैव धर्मान्वित रहते हुए त्रिलोक का पालन करने लगा।

कलिस्तदा धर्मयुतं जगदृष्ट्वा कृते यथा।
ब्रह्माणं शरणं भेजे स्वभावस्य निषेवणात्॥२॥

सत्ययुग की भाँति जगत् को धर्माचरण में रत देखकर कलि अपने स्वभाव के अनुसार ब्रह्मा की शरण में गया।

गत्वा स ददृशे देवं सेन्द्रैर्देवैः समन्वितम्।
स्वदीप्त्या द्योतयन्तं च स्वदेशं ससुरासुरम्॥३॥

वहाँ जाकर कलि ने इन्द्रादि देवताओं से युक्त, सुर और असुरों से सेवित एवं अपने लोक को स्वयं की कान्ति से प्रकाशित करते हुए ब्रह्मा को देखा।

प्रणिपत्य तमाहाथ तिष्यो ब्रह्माणमीश्वरम्।
मम स्वभावो बलिना नाशितो देवसत्तम॥४॥

उन ईश्वर ब्रह्मा को नमस्कार करके कलि ने कहा— हे देवसत्तम! बलि ने मेरे स्वभाव का नाश कर दिया है।

तं प्राह भगवान् योगी स्वभावं जगतोऽपि हि।
न केवलं हि भवतो हतं तेन बलीयसा॥५॥

भगवान् योगी ने उस कलि से कहा— यह केवल आपका ही नहीं अपितु सारे जगत् का स्वभाव उस बलशाली ने हर लिया है।

पश्यस्व तिष्ठ देवेन्द्रं वरुणं च समारुतम्।
भास्करोऽपि हि दीनत्वं प्रयातो हि बलाद्बलेः॥६॥

हे कलि! देखो देवराज इन्द्र, वरुण, मरुत् तथा सूर्य भी बलि की शक्ति से दीनत्व को प्राप्त हो गए हैं।

न तस्य कश्चित् त्रैलोक्ये प्रतिषेद्धाऽस्ति कर्मणः।
ऋते सहस्रं शिरसं हरिं दशशतङ्घ्रिकम्॥७॥

केवल हजार शिर और हजार चरणों वाले हरि के अतिरिक्त तीनों लोकों में उसको अपने कर्मों से रोकने वाला कोई भी नहीं है।

स भूमिं च तथा नाकं राज्यं लक्ष्मीं यशोऽव्ययः।
समाहरिष्यति बलिः कर्तुः सद्धर्मगोचरम्॥८॥

वह अविनाशी हरि बलि के धार्मिक व्यवहार, भूमि, स्वर्ग, राज्य तथा लक्ष्मी- सब का हरण कर लेगा।

इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मणा कलिरव्ययः।
दीनान्दृष्ट्वा स शक्रादीन्विभीतकवनं गतः॥९॥

देव ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर अविनाशी कलि इन्द्रादि देवताओं को दीन हुआ देखकर बिभीतक वन में चला गया।

कृतः प्रावर्तत तदा कलेर्नासाज् जगत्त्रये।
धर्मोऽभवचतुष्पादश्चातुर्वर्ण्येऽपि नारद॥१०॥

तदनन्तर कलि का लोप हो जाने पर सतयुग लौट आया तथा हे नारद! तीनों लोकों के चारों वर्णों में धर्म अपने चारों चरणों सहित (प्रतिष्ठित) हो गया।

तपोऽहिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दया दानं त्वानृशंस्यं शुश्रूषा यज्ञकर्म च॥११॥
एतानि सर्वजगतः परिव्याप्य स्थितानि हि।
बलिना बलवान् ब्रह्मन् तिष्योऽपि हि कृतः कृतः॥१२

तपस्या, अहिंसा, सत्य, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, दया दान, मृदुता, सेवा तथा यज्ञकर्म सब समस्त जगत् को व्याप्त करके स्थित हो गए। हे ब्राह्मण! (इस प्रकार) बलि के द्वारा बलशाली कलि को भी सत्ययुग में परिणत कर दिया गया।

स्वधर्मस्थायिनो वर्णा ह्याश्रमांश्चाविशन्द्विजाः।
प्रजापालनधर्मस्थाः सदैव मनुजर्षभाः॥ १३॥

चारों वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए स्थित हो गये। ब्राह्मण अपने-अपने आश्रमों में स्थित रहते थे, तथा राजागण अपने प्रजापालन के धर्म का सदैव पालन कर रहे थे।

धर्मोत्तरे वर्तमाने ब्रह्मन्नस्मिञ्जगत्त्रये।
त्रैलोक्यलक्ष्मीर्वरदा त्वायाता दानवेश्वरम्॥ १४॥

हे ब्राह्मण! तीनों लोकों के धर्माचरण में स्थित होने पर त्रैलोक्य की वरदायक लक्ष्मी दानवेश्वर बलि के पास आ गई।

तामागतां निरीक्ष्यैव सहस्राक्षत्रियं बलिः।
पप्रच्छ काऽसि मां ब्रूहि केनास्यर्थेन चागता॥ १५॥

उनको आया देखकर इन्द्र के समान समृद्ध बलि ने पूछा— तुम कौन हो? मुझे बताओ, यहाँ किस कारण से आई हो?

सा तद्वचनमाकर्ण्य प्राह श्रीः पद्ममालिनी।
वले श्रृणुष्व याऽस्मि त्वामायाता महिषी बलात्॥ १६॥

उस वचन को सुनकर पद्ममालिनी लक्ष्मी ने कहा— बलि! सुनो कि मैं कौन हूँ तथा यह कि मुझ महिषी को बलपूर्वक यहाँ क्यों भेजा गया है?

अप्रमेयबलो देवो योऽसौ चक्रगदाधरः।
तेन त्यक्तस्तु मघवा ततोऽहं त्वामिहागता॥ १७॥

जो यह अपरिमित बलशाली चक्रगदाधारी देव विष्णु हैं, उन्होंने इन्द्र का परित्याग कर दिया; इसलिए मैं यहाँ आयी हूँ।

स निर्ममे युवयुवतयश्चतस्रो रूपसंयुताः।
श्वेताम्वरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना॥ १८॥
श्वेतवृन्दारकारूढा सत्त्वाढ्या श्वेतविग्रहा।
रक्ताम्वरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना॥ १९॥
रक्त्वाजिसमारूढा रक्ताङ्गी राजसी हि सा।
पीताम्वरा पीतवर्णा पीतमाल्यानुलेपना॥ २०॥
सौवर्णस्यन्दनचरा तामसं गुणमाश्रिता।
नीलाम्वरा नीलमाल्या नीलगन्धानुलेपना॥ २१॥
नीलवृषसमारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता।
या सा श्वेताम्बरा श्वेता सत्त्वाढ्या कुञ्जरस्थिता॥ २२॥
सा ब्रह्माणं समायाता चन्द्रं चन्द्रानुगानपि।
या सा रक्ता रक्त्वासना वाजिस्था रजसान्विता॥ २३॥
तां प्रादाद्देवराजाय मनवे तत्समेषु च।
पीताम्बरा या सुभगा रथस्था कनकप्रभा॥ २४॥
प्रजापतिभ्यस्तां प्रादाच्छुक्राय च विशःसु च।
नीलवस्त्रालिसदृशी या चतुर्थी वृषस्थिता॥ २५॥
सा दानवान्नैर्ऋतांश्च शूद्रान्विद्याधरानपि।
विप्राद्याः श्वेतरूपां तां कथयन्ति सरस्वतीम्॥ २६॥
स्तुवन्ति ब्रह्मणा सार्धं मखे मन्त्रादिभिः सदा।
क्षत्रिया रक्तवर्णां तां जयश्रीमिति शंसिरे॥ २७॥
सा चेन्द्रेणा सुरश्रेष्ठ मनुना च यशश्विनी।
वैश्यास्तां पीतवसनां कनकाङ्गीं सदैव हि॥ २८॥
स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येवं प्रजापालास्तथैव हि।
शूद्रास्तां नीलवर्णाङ्गीं स्तुवन्ति च सुभक्तितः॥ २९॥
श्रियदेवीति नाम्ना तां समं दैत्यैश्च राक्षसैः।
एवं विभक्तास्ता नार्यस्तेन देवेन चक्रिणा॥ ३०॥

उन्होंने चार रूपवती युवतियों की सृष्टि की। प्रथम श्वेतपरिधानधारिणी, श्वेत अनुलेपन लगाए हुए श्वेतगज पर आरूढ़, श्वेतविग्रहा तथा सत्वगुणप्रधाना थी। (दूसरी) रक्तपरिधानधारिणी, रक्तानुलेपन लगाए हुए, रक्त अश्व पर आरूढ़, रक्तांगी तथा रजसप्रधान थी। (तीसरी) पीताम्बरधारिणी पीतवर्णा, पीतमाला तथा अनुलेपन धारण करने वाली सुवर्णरथ पर आरूढ़ तमोगुण प्रधाना थी। (चौथी) नीलाम्बर वाली, नीली माला तथा नीलगन्धानुलेपनधारिणी, नीले वृष पर आरूढ़ तीनों गुणों वाली कही गई है। वह जो श्वेत वर्णा श्वेताम्बरा कुञ्जरस्थिता तथा सत्वगुणप्रधान थी, वह ब्रह्मा चन्द्रमा तथा चन्द्रमा के अनुयायियों के पास चली गई। जो रक्तवर्णा रक्तवस्त्रा, अश्वपरस्थित तथा रजसगुणयुक्त थी, उसको देवराज मनु तथा उनके साथियों को दे दिया गया। जो पीताम्बरा सौभाग्यशालिनी, रथस्थित तथा स्वर्णप्रभा जैसी थी, उसे प्रजापतियों, शुक्र तथा वैश्यों को दे दिया गया। नीलाम्बरा भौरें के समान आभावाली चौथी

जो वृष पर स्थित थी, उसको दानवों, नैऋतों, शूद्रों तथा विद्याधरों को दे दिया गया। ब्राह्मणादि उस श्वेतरूपा को सरस्वती कहते हैं तथा यज्ञ में मंत्रादि के द्वारा सदैव स्तवन करते हैं। रक्तवर्णा उस (युवती) को क्षत्रिय 'जयश्री' कहते हैं। हे असुरश्रेष्ठ! वह इन्द्र और मनु के साथ यशस्विनी है। वैश्य तथा प्रजापति सदैव उस पीतवसना कनकाङ्गी को 'लक्ष्मी' कहकर पूजा करते हैं। उस नीलवर्णा तथा नीलविग्रहा को शूद्र भक्तिपूर्वक दैत्यों और राक्षसों सहित 'श्रीदेवी' के रूप में स्तवन करते हैं। इस प्रकार चक्रधारी देव विष्णु ने उन नारियों का विभाजन किया।

एतासां च स्वरूपस्थास्तिष्ठन्ति निधयोऽव्ययाः।
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गास्तथोक्तयः॥३१॥
चतुःषष्टिकलाः श्वेता महापद्मो निधिः स्थितः।
मुक्तासुवर्णरजतं रथाश्वजगभूषणम्॥३२॥
शस्त्रास्त्रादिकवस्तूनि रक्ता पद्मो निधिः स्मृतः।
गोमहिष्यः खरोष्ट्रां च सुवर्णाम्बरभूमयः॥३३॥
ओषध्यः पशवः पीता महानीलो निधिः स्थितः।
सर्वासामपि जातीनां जातिरेका प्रतिष्ठिता॥३४॥
अन्येषामपि संहर्त्री नीला शङ्खो निधिः स्थितः।
एतासु संस्थितानां च यानि रूपाणि दानव।
भवन्ति पुरुषाणां वै तान् निबोध वदामि ते॥३५॥

अक्षय समृद्धियाँ इन सब (युवतियों) के स्वरूपस्थ होकर निवास करती हैं। इतिहास, पुराण, साङ्गोपाङ्ग वेद तथा लोकप्रतिश्रुति, चतुःषष्टिकलाएँ श्वेतवर्णा को महापद्मनिधि में स्थित मानती हैं। मोती, स्वर्ण, रजत, रथ, अश्व, गज, आभूषण, शस्त्र, अस्त्र तथा वस्त्रादि रक्तवर्णा की पद्मनिधि मानी गई है। गायें, महिषी, खर, ऊँट, स्वर्ण, आकाश, भूमि तथा समूह, औषधियाँ तथा पशु पीतवर्णा की महानील निधि मानी गई है। समस्त जातियों (की निधि) की एक प्रतिष्ठित जाति वाली जो समस्त निधियाँ के गुणों से युक्त है, ऐसी नीलवर्णा की शङ्ख निधि मानी गई है। हे दानव! इन सब में प्रतिष्ठित पुरुषों के जो स्वरूप होते हैं उनको जानो, मै तुम्हें बताता हूँ।

सत्यशौचाभिसंयुक्ता मखदानोत्सवे रताः।
भवन्ति दानवपते महापद्माश्रिता नराः॥३६॥

हे दानवपति! महापद्माश्रित पुरुष सत्य तथा शौच से निरन्तर युक्त तथा यज्ञ और दान में सदैव रत रहते हैं।

यज्विनो सुभगा दृप्ता मालिनो बहुदक्षिणाः।
सर्वसामान्यसुखिनो नराः पद्माश्रिताः स्थिताः॥३७॥

पद्माश्रित पुरुष, यज्ञकर्मी, सुदर्शन, दर्पयुक्त, मानी, बहुत दक्षिणा देने वाले तथा सर्वसामान्य को सुख देने वाले माने गए हैं।

सत्यानृतसमायुक्ता दानाहरणदक्षिणाः।
न्यायान्यायव्ययोपेता महानीलाश्रिता नराः॥३८॥

महानीलाश्रित पुरुष सत्य तथा असत्य से समान रूप से युक्त, दानसंचय तथा दक्षिणा के स्वभाव वाले तथा न्याय, अन्याय एवं व्यय से युक्त माने गए हैं।

नास्तिकाः शौचरहिताः कृपणा भोगवर्जिताः।
स्तेयानृतकथायुक्ता नराः शङ्खाश्रिता बले॥३९॥

हे बलि! शङ्खाश्रित पुरुष नास्तिक, शौचरहित, कृपण, सुखों से रहित, चोरी तथा झूठे वचनों से युक्त माने गए हैं।

इत्येवं कथितस्तुभ्यं तेषां दानव निर्णयः॥४०॥
अहं सा रागिणी नाम जयश्रीस्त्वामुपागता।
ममास्ति दानवपते प्रतिज्ञा साधुसंमता॥४१॥
समाश्रयामि शौर्याढ्यं न च क्लीबं कथंचन।
न चास्ति भवस्तुल्यो त्रैलोक्येऽपि बलाधिकः॥४२॥

हे दानव! इस प्रकार ये उन पुरुषों के लक्षण तुम्हें बताए गये हैं। मैं वह रागिनी नामक जयश्री तुम्हारे पास आई हूँ। हे दानवपति! मेरी साधुसम्मत प्रतिज्ञा है कि मैं शौर्ययुक्त का ही आश्रय करती हूँ कायर का कदाचित् भी नहीं और तीनों लोकों में तुम्हारे समान बलशाली कोई नहीं है।

त्वया बलविभूत्या हि प्रीतिर्मे जनिता ध्रुवा।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजो विनिर्जितः॥४३॥

तुम्हारी शक्ति विभूति के कारण मेरी अविचल प्रीति उत्पन्न हो गई है, क्योंकि तुमने युद्ध में आक्रमण करके देवराज इन्द्र को पराजित कर दिया है।

अतो मम परा प्रीतिर्जाता दानव शाश्वती।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं सर्वेभ्योऽपि बलाधिकम्॥४४॥

अतएव हे दानव! समस्त बलशालियों से अधिक तुम्हारे परम पराक्रम को देखकर मेरी शाश्वत दिव्य प्रीति उत्पन्न हो गई है।

शौण्डीर्यमानिनं वीरं ततोऽहं स्वयमागता।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले॥४५॥
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्म यदीदृशम्।
विशेषतस्त्वया राजन्दैतेयः प्रपितामहः॥४६॥
विजितं विक्रमाद्येन त्रैलोक्यं वै परैर्हृतम्।
इत्येवमुक्त्वा वचनं दानवेन्द्रं तदा बलिम्॥४७॥
जयश्रीश्चन्द्रवदना प्रविष्टाऽद्योतयच्छुभा।
तस्यां चाथ प्रविष्टायां विधवा इव योषितः॥४८॥
समाश्रयन्ति बलिनं ह्रीश्रीधीधृतिकीर्त्तयः।
प्रभा मतिः क्षमा भूतिर्विद्या नीतिर्दया तथा॥४९॥

तुम्हारे शौर्य पराक्रम वीरता को अभिमानित करने के लिए मैं स्वयं आई हूँ। हे दानवश्रेष्ठ! हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न तुम असुरेन्द्र के इस प्रकार के (प्रशंसनीय) कर्म हैं- इसमें आश्चर्य नहीं है। हे राजन्! प्रपितामह दितिपुत्र को आपने गौरवान्वित किया है क्योंकि अपने शत्रुओं के द्वारा अपहत तीनों लोकों को अपने पराक्रम से जीत लिया है। दानवेन्द्र बलि को इस प्रकार वचन कहकर चन्द्रवदना शुभा जयश्री (उनके महल में) प्रवेश कर गई तथा सर्वत्र प्रकाश कर दिया। जयश्री के (महल में) प्रवेश कर जाने पर ह्री, श्री, धी, धृति, कीर्ति, प्रभा, बुद्धि, क्षमा, भूति, विद्या, नीति तथा दया ने उसी प्रकार बलि का आश्रय ले लिया जिस प्रकार विधवा स्त्रियाँ (शक्तिशाली पुरुष का)।

श्रुतिः स्मृतिर्धृति कीर्तिर्धृतिः शान्तिः क्रियान्विता।
पुष्टिस्तुष्टी रुचिस्त्वन्या तथा सत्त्वश्रिता गुणाः।
ताः सर्वा बलिमाश्रित्य व्यश्राम्यन्त यथासुखम्॥५०॥

श्रुति, स्मृति, धृति, कीर्ति, मूर्ति, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, रुचि तथा सत्वाश्रित गुण— ये सब बलि का आश्रय लेकर सुखपूर्वक विश्राम करने लगे।

एवंगुणोऽभूद्दनुपुंगवोऽसौ
बलिर्महात्मा शुभबुद्धिरात्मवान्।
यज्वा तपस्वी मृदुरेव सत्यवाक्
दाता विभर्ता स्वजनाभिगोप्ता॥५१॥

इस प्रकार वह दानवश्रेष्ठ महात्मा बलि शुभ बुद्धि, आत्मवान्, यज्ञकर्मी, तपस्वी, कोमल, सत्यवक्ता, दाता, बिभर्ता तथा स्वजनपरिरक्षक होकर अत्यंत गुणवान् हो गया।

त्रिविष्टपं शासति दानवेन्द्रे
नासीत्क्षुधार्तो मलिनो न दीनः।
सदोज्ज्वलो धर्मरतोऽथ दान्तः
कामोपभोक्ता मनुजोऽपि जातः॥५२॥

दानवेन्द्र बलि जब स्वर्ग लोक पर शासन कर रहे थे तब कोई भी व्यक्ति क्षुधार्त्त दीन या मलिन नहीं था। समस्त मनुष्य सदा उज्ज्वल चरित्रवाले, धर्मरत, जितेन्द्रिय तथा इच्छानुसार कामनाओं की प्राप्ति करने वाले थे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

(अदिति को वर-प्राप्ति)

पुलस्त्य उवाच

गते त्रैलोक्यराज्ये तु दानवेषु पुरंदरः।
जगाम ब्रह्मसदनं सह देवैः शचीपतिः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— तीनों लोकों के राज्य के दानवों के पास पहुँच जाने पर शचीपति पुरन्दर (इन्द्र) देवताओं के साथ ब्रह्मा के महल में पहुँचा।

तत्रापश्यत् स देवेशं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
ऋषिभिः सार्धमासीनं पितरं स्वं च कश्यपम्॥२॥

वहाँ उन्होंने कमलोद्भव देवेश ब्रह्मा को तथा ऋषियों सहित बैठे हुए अपने पिता कश्यप को देखा।

ततो ननाम शिरसा शक्रः सुरगणैः सह।
ब्रह्माणं कश्यपं चैव तांस्तु सर्वांस्तपोधनान्॥३॥

तब इन्द्र ने देवसमूह सहित ब्रह्मा को, कश्यप को तथा उन समस्त तपस्वियों को सिर झुका कर नमस्कार किया।

प्रोवाचेन्द्रः सुरैः सार्धं देवनाथं पितामहम्।
पितामह हतं राज्यं बलिना बलिना मम॥ ४॥

देवताओं सहित इन्द्र ने देवनाथ पितामह ब्रह्मा से कहा— हे पिनामह! बलि ने बलपूर्वक मेरा राज्य अपहरण कर लिया है।

ब्रह्मा प्रोवाच शक्रैतद्भुज्यते स्वकृतं फलम्।
शक्रः पप्रच्छ भो ब्रूहि किं मया दुष्कृतं कृतम्॥ ५॥

ब्रह्मा ने कहा— यह तुम अपने कर्मों का ही फल भोग रहे हो। इन्द्र ने पूछा— हे भगवन्! बताइये कि मैंने क्या दुष्कार्य किया है?

कश्यपोऽप्याह देवेश भ्रूणहत्या कृता त्वया।
दित्युदरात् त्वया गर्भो कृत्तो वै बहुधा बलात्॥ ६॥

कश्यप ने भी देवेश से कहा— दिति के गर्भ को तुमने बलपूर्वक बहुत से टुकड़ों में काट डाला था इसलिए तुमने भ्रूण हत्या की है।

पितरं प्राह देवेन्द्रः स मातुर्दोषतो विभो।
कृन्तनं प्राप्तवान्गर्भो यदशौचा हि साऽभवत्॥ ७॥

देवेन्द्र ने पिता से कहा— हे स्वामी! माता के दोष के कारण ही उस भ्रूण के टुकड़े-टुकड़े करने पड़े क्योंकि वह माता अपवित्र हो गई थी।

ततोऽब्रवीत् कश्यपस्तु मातुर्दोषः स दासताम्।
गतस्ततो विनिहतो दासोऽपि कुलिशेन भो॥ ८॥

तदनन्तर कश्यप ने कहा— माता के दोष के कारण वह भ्रूण दासत्व को प्राप्त हो गया था परंतु उस दास को भी तुमने अपने वज्र से मार डाला।

तच्छुत्वा कश्यपवचः प्राह शक्रः पितामहम्।
विनाशं पाप्मनो ब्रूहि प्रायश्चित्तं विभो मम॥ ९॥

तदनन्तर कश्यप के वचन को सुनकर इन्द्र ने पितामह से कहा— हे स्वामी! मेरी पापवृत्ति के विनाश तथा प्रायश्चित के विपय में आप मुझे बताइये।

ब्रह्मा प्रोवाच देवेशं वसिष्ठः कश्यपस्तथा।
हितं सर्वस्य जगतः शक्रस्यापि विशेषतः॥ १०॥

तदनन्तर वशिष्ठ, कश्यप तथा ब्रह्मा ने समस्त जगत् के हित और विशेष रूप से इन्द्र के हित के लिये इन्द्र से कहा—

शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवः पुरुषोत्तमः।
तं प्रपद्यस्व शरणं स ते श्रेयो विधास्यति॥ ११॥

शङ्ख, चक्र तथा गदा को हाथ में धारण करने वाले माधव पुरुषोत्तम हैं। तुम उनकी शरण में जाओ, वे तुम्हारा कल्याण करेंगे।

सहस्राक्षोऽपि वचनं गुरूणां स निशम्य वै।
प्रोवाच स्वल्पकालेन कस्मिन् प्राप्यो बहूदयः।
तमूचुर्देवता मर्त्ये स्वल्पकाले महोदयः॥ १२॥

सहस्राक्ष ने गुरुओं के वचन सुनकर कहा— अल्पकाल में ही किस प्रकार अधिक कल्याण किया जा सकता है? देवताओं ने उसे कहा— मृत्युलोक में अल्पकाल में ही महाकल्याण हो सकता है।

इत्येवमुक्तः सुरराड्विरिञ्चिना
मरीचिपुत्रेण च कश्यपेन।
तथैव मित्रावरुणात्मजेन
वेगान्महीपृष्ठमवाप्य तस्थौ॥ १३॥

ब्रह्मा, मरीचिपुत्र कश्यप एवं मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ के द्वारा ऐसा कहे जाने पर सुरराज इन्द्र अतिशीघ्रता से मृत्युलोक में आये और वहीं निवास करने लगे।

कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्य-
स्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः।
कुशस्थलात्पूर्वत एव विश्रुतो
वसोः पुरात्पश्चिमतोऽवतस्थे॥ १४॥

उसने अत्यंत पवित्र एवं प्रसिद्ध स्थान- जो कालिंजर के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में, कुशस्थल के पूर्व में तथा वसुपुर के पश्चिम में था, पर निवास किया।

पूर्वं गयेन नृवरेण यत्र
यष्टोऽश्वमेधः शतकृत्सुदक्षिणः।
मनुष्यमेधः शतकृत्सस्रक्
त्ररेन्द्रसूयश्च सहस्रकृद् वै॥ १५॥

जिस स्थान पर प्राचीनकाल में नृपश्रेष्ठ गय ने सौ बार अनेक प्रकार की दक्षिणाओं से युक्त अश्वमेध यज्ञ का; हजारों बार मनुष्यमेध यज्ञ का; तथा हजारों बार राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

तथा पुरा दुर्यजनः सुरासुरैः
ख्यातो महामेध इति प्रसिद्धः।
यत्रास्य चक्रे भगवान् मुरारिः
वास्तव्यमव्यक्ततनुः खमूर्तिमत्॥
ख्यातिं जगामाथ गदाधरेति
महाघवृक्षस्त शितः कुठारः॥१६॥

गय ने प्राचीनकाल में यहाँ सुर और असुर दोनों से दुष्कर 'महामेध' नामक यज्ञ का संपादन किया था ऐसा प्रसिद्ध है। जहाँ पर मुर का नाश करने वाले अव्यक्तरूप किंतु आकाशरूप में मूर्तिमान् भगवान् विष्णु ने अपना निवास बनाया था और 'गदाधर' इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे तथा जो महान् पापरूपी वृक्ष (को काटने) के लिए तीक्ष्ण कुल्हाड़े के समान है।

यस्मिन्द्विजेन्द्राः श्रुतिशास्त्रवर्जिताः
समत्वमायान्ति पितामहेन।
सकृत् पितृन् यत्र च संप्रपूज्य
भक्त्या त्वनन्येन मानवा।
फलं महामेधमखस्य मानवा
लभन्त्यनन्तं भगवत्प्रसादात्॥१७॥

जहाँ पर निवास करते हुए वेदशास्त्रों से रहित ब्राह्मण भी ब्रह्मा के समरूप हो जाते हैं। जहाँ पर केवल एक बार अपने पितरों का अनन्य मन से भक्तिपूर्वक संपूजन करने मात्र से मनुष्य भगवत्कृपा से महामेध यज्ञ के अनन्त फल को प्राप्त करते हैं।

महानदी यत्र सुरर्षिकन्या
जलापदेशाद्धिमशैलमेत्य।
चक्रे जगत्पापविमुक्तमग्र्यां
संदर्शनप्राशनमज्जनेन॥१८॥

जहाँ देवर्षिकन्या महानदी जलप्रवाह के रूप में हिमशैल की ओर जाकर संदर्शन, प्राशन और मज्जन के द्वारा समस्त जगत् के पापों का विशेषरूप से विनाश कर देती है।

तत्र शक्रः समभ्येत्य महानद्यास्तटेऽद्भुते।
आराधनाय देवस्य कृत्वाश्रममवस्थितः॥१९॥

वहाँ इन्द्र ने महानदी के अद्भुत किनारे पर पहुँचकर देव की आराधना के लिए आश्रम बनाया और निवास करना प्रारम्भ कर दिया।

प्रातःस्नायी त्वधःशायी एकभक्तस्त्वयाचितः।
तपस्तेपे सहस्राक्षः स्तुवन्देवं गदाधरम्॥२०॥

सहस्राक्ष इन्द्र देव गदाधर की स्तुति करते हुए प्रातःकाल स्नान करते थे, पृथ्वी पर शयन करते थे, और केवल एक बार अयाचित आहार करते थे— इस प्रकार उन्होंने वहाँ तप किया।

तस्यैवं तप्यतः सम्यग् जितसर्वेन्द्रियस्य हि।
कामक्रोधविहीनस्य साग्रः संवत्सरो गतः॥२१॥

उन्होंने इस प्रकार सम्यक् जितेन्द्रिय तथा काम क्रोध विहीन होकर तपस्या करते हुए एक वर्ष पूरा व्यतीत कर दिया।

ततो गदाधरः प्रीतो वासवं प्राह नारद।
गच्छ प्रीतोऽस्मि भवतो मुक्तपापोऽसि साम्प्रतम्॥२२॥

हे नारद! तब गदाधर ने प्रसन्न होकर इन्द्र से कहा— जाओ, मैं प्रसन्न हूँ। तुम अब पापरहित हो गए हो!

निजं राज्यं च देवेश प्राप्स्यसे न चिरादिव।
यतिष्यामि तथा शक्र भावि श्रेयो यथा तव॥२३॥

हे देवेश! तुम अत्यंत शीघ्र ही अपना राज्य प्राप्त करोगे। हे शक्र! जिससे तुम्हारा कल्याण हो— मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा।

इत्येवमुक्तोऽथ गदाधरेण
विसर्जितः स्नाप्य मनोहरायाम्।
स्नातस्य देवस्य तदैनसो नरा-
स्तं प्रोचुरस्माननुशासयस्व॥२४॥

गदाधर के द्वारा इस प्रकार कहने पर मनोहरा नदी में स्नान करके निकले हुए इन्द्र के पापों से उत्पन्न पुरुषों ने स्नान किये हुए देव के पास जाकर उनसे कहा— हमें आज्ञा दीजिए।

प्रोवाच तान्भीषणकर्मकारान्
नाम्ना पुलिन्दान्मम पापसंभवाः।

वसध्वमेवान्तरमद्रिमुख्ययो-

हिमाद्रिकालञ्जरयोः पुलिन्दाः॥ २५॥

भीषण कर्म करने वाले पुलिन्द नामक उन पुरुषों से इन्द्र ने कहा— मेरे पापों से उत्पन्न पुलिन्द! आप सब हिमाद्रि और कालिञ्जर इन दो प्रमुख पर्वतों के मध्य में निवास करो।

इत्येवमुक्त्वा सुरराट् पुलिन्दान्

विमुक्तपापोऽमरसिद्धयक्षैः।

संपूज्यमानोऽनुजगाम चाश्रमं

मातुस्तदा धर्मनिवासमीड्यम्॥ २६॥

अब पापरहित हुये सुरराज इन्द्र ने पुलिन्दों को ऐसी आज्ञा प्रदान की और स्वयं देवताओं, सिद्धों और यक्षों के द्वारा अभिनंदित होता हुआ धर्म के पूजनीय निवास अपनी माता के आश्रम की ओर चल पड़ा।

दृष्ट्वाऽदितिं मूर्ध्नि कृताञ्जलिस्तु

विनमन्नमौलिः समुपाजगाम्।

प्रणम्य पादौ कमलोदराभौ

निवेदयामास तपस्तदात्मनः॥ २७॥

अदिति को देखकर सिर पर हाथ जोड़े हुए नतमस्तक वह उनके समीप गया तथा कमल के समान कोमल चरणों में अपना प्रणाम अर्पित करके उन्हें अपनी तपस्या के विषय में बताया।

पप्रच्छ सा कारणमीश्वरं तम्

आघ्राय चालिङ्ग्य सहाश्रुदृष्ट्या।

स चाचचक्षे बलिना रणे जयं

तदात्मनो देवगणैश्च सार्द्धम्॥ २८॥

अदिति ने इन्द्र का मस्तक सूँघा, उसका आलिङ्गन किया, अश्रुरहित दृष्टि से उस ईश्वर (इन्द्र) से उसकी तपस्या का कारण पूछा। तब इन्द्र ने बलि के द्वारा युद्ध में देवगणों सहित अपनी पराजय के विषय में बताया।

श्रुत्वैव सा शोकपरिप्लुताङ्गी

ज्ञात्वा जितं दैत्यसुतैः सुतं तम्।

दुःखान्विता देवमनाद्यमीड्यं

जगाम विष्णुं शरणं वरेण्यम्॥ २९॥

दानवपुत्रों के द्वारा अपने पुत्र को पराजित जानकर वह शोकविह्वल एवं दुःखान्वित हो गई और अनादि, पूजनीय एवं वरणीय देव विष्णु की शरण में जा पहुँची।

नारद उवाच

कस्मिञ्जनित्री सुरसत्तमानां

स्थाने हृषीकेशमनन्तमाद्यम्।

चराचरस्य प्रभवं प्रमाण-

माराधयामास शुभे वद त्वम्॥ ३०॥

नारद ने कहा— हे शुभे! मुझे बताओ कि किस स्थान पर सुरसत्तमों की जननी ने आदि, अनन्त, चराचर जगत् के प्रभव एवं पुरातन भगवान् हृषीकेश की अराधना की।

पुलस्त्य उवाच

सुरारणिः शक्रमवेक्ष्य दीनं

पराजितं दानवनायकेन।

सितेऽथ पक्षे मकरर्क्षगेऽर्के

घृतार्चिषः स्यादथ सप्तमेऽह्नि॥ ३१॥

दृष्ट्वैव देवं त्रिदशाधिपं तं

महोदये शक्रदिशाऽधिरूढम्।

निराशना संयतवाक्सुचित्ता

तदोपतस्थे शरणं सुरेन्द्रम्॥ ३२॥

पुलस्त्य ने कहा— इन्द्र को दीन तथा दानवों के द्वारा पराजित देखकर देवमाता अदिति ने सूर्य के मकरराशिगामी होने पर (माघ मास) शुक्लपक्ष में सूर्य के सातवें दिन में (माघ मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी वाले दिन) पूर्वदिशा में उदित त्रिलोकपति उन सूर्यदेव के दर्शन कर, वाणी का तथा चित्त का संयमन करते हुए निराहार रहते हुए देवाधिपति की शरण ली—

अदितिरुवाच

जयस्व दिव्याम्बुजकोशचौर

जयस्व संसारतरोः कुठार।

जयस्व पापेन्धनजातवेद

स्तघौघसंरोध नमो नमस्ते॥ ३३॥

अदिति ने कहा— हे दिव्य कमल की आभा को चुराने वाले! तुम्हारी जय हो। हे संसारवृक्ष के लिये

कुठारस्वरूप! तुम्हारी जय हो। हे पापरूपी लकड़ी के लिए अग्निस्वरूप! तुम्हारी जय हो। हे अज्ञानरूपी अंधकार समूह के नाशक! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते भास्कर दिव्यमूर्ते
त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकाय ते नमः।
त्वं कारणं सर्वचराचरस्य
नाथोऽसि मां पालय विश्वमूर्ते॥ ३४॥

हे दिव्यमूर्ति सूर्यदेव! आपको नमस्कार है, हे तीनों लोकों की लक्ष्मी के भूषणस्वरूप! आपको नमस्कार है, हे विश्वमूर्ति! आप समस्त चराचर जगत् के कारण हैं, आप स्वामी हैं! मेरी रक्षा कीजिए।

त्वया जगन्नाथ जगन्मयेन
नाथेन शक्रो निजराज्यहानिम्।
अवाप्तवन् शक्रपराभवं च
ततो भवन्तं शरणं प्रपन्ना॥ ३५॥

हे जगन्नाथ! सर्वजगन्मय आप स्वामी के द्वारा ही इन्द्र को अपने राज्य की हानि हुई है और शत्रुओं के द्वारा पराभव प्राप्त हुआ है, इसलिए मैं आपकी शरण में आयी हूँ।

इत्येवमुक्त्वा सुरपूजितं सा
आलिख्य रक्तेन हि चन्देनन।
संपूजयित्वा करवीरपुष्पैः
संधूप्य धूपैः कणमर्कभोज्यम्॥ ३६॥
निवेद्य चैवाज्युयतं महार्ह-
मन्नं महेन्द्रस्य हिताय देवी।
स्तवेन पुण्येन च संस्तुवन्ती
स्थिता निराहारमथोपवासम्॥ ३७॥

देवताओं के द्वारा पूजित देव से इस प्रकार कहकर उसने रक्तचंदन से उनका अनुलेपन किया, करवीरपुष्पों से उनका पूजन किया, धूप से उन्हें धूपित किया तथा आज्ययुक्त बहूमूल्य अन्न का नैवेद्य लगाया, इस प्रकार महेन्द्र के हित के लिए पुण्य स्तुतियों से उनका स्तवन करती हुई उस देवी ने निराहार रहकर उपवास किया।

ततो द्वितीयेऽह्नि कृतप्रणामा
स्नात्वा विधानेन च पूजयित्वा।
दत्त्वा द्विजेभ्यः कणकं तिलाज्यं
ततोऽग्रतः सा प्रयता बभूव॥ ३८॥

दूसरे दिन प्रणाम करके, स्नान के पश्चात् विधिपूर्वक पूजन करके, ब्राह्मणों को स्वर्ण, तिल तथा आज्य का दान देकर वह नतमस्तक स्थित हो गई।

ततः प्रीतोऽभवद्भानुर्घृतार्चिः सूर्यमण्डलात्।
विनिःसृत्याग्रतः स्थित्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ ३९॥

तदनन्तर घृतार्चि भानु प्रसन्न हुए और सूर्यमण्डल से निकलकर सामने आये और बोले—

व्रतेनानेन सुप्रीतस्तवाहं दक्षनन्दिनि।
प्राप्यसे दुर्लभं कामं मत्प्रसादान्न संशयः॥ ४०॥

हे दक्षपुत्री! तुम्हारे इस व्रत से मैं प्रसन्न हूँ। मेरी कृपा से तुम अपनी दुर्लभ कामना को भी प्राप्त करोगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

राज्यं त्वत्तनयानां वै दास्ये देवि सुरारणि।
दानवान् ध्वंसयिष्यामि संभूयैवोदरे तव॥ ४१॥

हे सुरमाता देवी! तुम्हारे ही उदर से उत्पन्न होकर मैं तुम्हारे पुत्रों को राज्य दूँगा तथा दानवों का नाश करूँगा।

तद्वाक्यं वासुदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मन् सुरारणिः।
प्रोवाच जगतां योनिं वेपमाना पुनः पुनः॥ ४२॥

हे ब्राह्मण! वासुदेव के उस वचन को सुनकर देवमाता ने बार-बार काँपते हुए जगत् के विधाता से कहा—

कथं त्वामुदेरणामहं वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्।
यस्योदरे जगत्सर्वं वसेत्स्थावरजङ्गमम्॥ ४३॥

जिसके उदर में यह समस्त चराचर जगत् निवास करता है, ऐसे दुर्धर आपको मैं अपने उदर में वहन करने में कैसे समर्थ हूँ।

कस्त्वां धारयितुं नाथ शक्तस्त्रैलोक्यधार्यसि।
यस्य सप्तार्णवाः कुक्षौ निवसन्ति सहाद्रिभिः॥ ४४॥

हे नाथ! जिसकी कोख में पर्वतों सहित सातों समुद्र निवास करते हैं जो तीनों लोक को धारण करते हैं, ऐसे आप को कौन धारण कर सकता है।

तस्माद्यथा सुरपतिः शक्रः स्यात्सुरराडिह।
यथा च न मम क्लेशस्तथा कुरु जनार्दन॥ ४५॥

इसलिए, हे जनार्दन! आप वैसा ही कीजिए जिससे सुरपति इन्द्र पुनः देवताओं का राजा बन सके तथा मुझे भी दुःख न रहे।

विष्णुरुवाच

सत्यमेतन्महाभागे दुर्धरोऽस्मि सुरासुरैः।
तथापि संभविष्यामि अहं देव्युदरे तव॥ ४६॥
आत्मानं भुवनान् शैलांस्त्वाञ्च देवि सकश्यपाम्।
धारयिष्यामि योगेन मा विषादं कृथाऽम्बिके॥ ४७॥

विष्णु ने कहा— हे सौभाग्यशालिनी! यह सत्य है कि सुर और असुरों के द्वारा मैं सर्वथा दुर्धर हूँ; तथापि हे देवी! मैं तुम्हारे उदर में उत्पन्न होऊँगा। हे देवी! अपनी योगशक्ति से मैं स्वयं को, भुवनों को, पर्वतों को तथा कश्यप सहित आपको धारण करूँगा। इसलिए हे अम्बिका! विषाद मत करो।।

तवोदरेऽहं दाक्षेयि संभविष्यामि वै यदा।
तदा निस्तेजसो दैत्याः संभविष्यन्त्यसंशयम्॥ ४८॥

हे दक्षसुता! जब मैं तुम्हारे उदर में उत्पन्न होऊँगा तब दैत्यगण निस्तेज हो जाएँगे; इसमें कोई संशय नहीं है।

इत्येवमुक्त्वा भगवान् विवेश
तस्याश्च भूयोऽरिगणप्रमर्दी।
स्वतेजसोंऽशेन विवेश देव्याः
तदोदरे शक्रहिताय विप्र॥ ४९॥

हे ब्राह्मण! ऐसा कहकर शत्रुसमूह का भेदन करने वाले भगवान् विष्णु इन्द्र के कल्याण के लिए अपने तेज के एक अंश से उस देवी के उदर में प्रवेश कर गए।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावेऽदितिवरप्रदानं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

अथसप्तसप्ततितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद द्वारा बलि को शिक्षा-दान)

पुलस्त्य उवाच

देवमातुः स्थिते देवे उदरे वामनाकृतौ।
निस्तेजसोऽसुरा जाता यथोक्तं विश्वयोनिना॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— देव विष्णु के वामनाकृति में देवमाता के उदर में स्थित हो जाने पर जैसा कि विश्वयोनि विष्णु ने कहा था— असुर निस्तेज हो गए।

निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा प्रह्लादं दानवेश्वरम्।
बलिर्दानवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत्॥ २॥

दानवों को निस्तेज देखकर दानवश्रेष्ठ बलि ने दानवेश्वर प्रह्लाद को इस प्रकार वचन कहे।

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्याः केन जातास्तु हेतुना।
कथ्यतां परमज्ञोऽसि शुभाशुभविशारद॥ ३॥

बलि ने कहा— हे शुभ और अशुभ को जानने में परम निपुण हे तात! आप अत्यन्त ज्ञानी हैं। आप बताइये कि दानव किस कारण से तेजहीन हो गए हैं।

पुलस्त्य उवाच

तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः।
किमर्थं तेजसो हानिरिति कस्मादतीव वा॥ ४॥

पुलस्त्य ने कहा— पौत्र के वचन को सुनकर प्रह्लाद तेज की हानि किस व्यक्ति के कारण तथा किस उद्देश्य से हुई है- यह जानने के लिए क्षणभर के लिए ध्यानवस्थित हो गए।

स ज्ञात्वा वासुदेवोत्थं भयं दैत्येष्वनुत्तमम्।
चिन्तयामास योगात्मा क्व विष्णुः साम्प्रतं स्थितः॥ ५

योगशक्ति से जानकर कि दैत्यों का भय वासुदेव के कारण है उस योगात्मा प्रह्लाद ने सोचा कि विष्णु इस समय कहाँ अवस्थित होंगे?

अधो नाभेः स पातालान् सप्त संचिन्त्य नारद।
नाभेरुपरि भूरादींल्लोकांश्चतुर्मियाद् वशी॥ ६॥

हे नारद! जितेन्द्रिय प्रह्लाद ने पृथ्वी के नीचे सातों पाताल तथा तदनन्तर पृथ्वी के ऊपर भू आदि लोकों का मानसिक विचरण किया।

भूमिं तां पङ्कजाकारां तन्मध्ये पङ्कजाकृतिम्।
मेरुं ददर्श शैलेन्द्रं शातकुम्भं महर्द्धिमत्॥ ७॥

इस मानसिक यात्रा में उन्होंने कमलाकृति पृथ्वी को तथा उसके मध्य कमलाकृति वाले महावैभवशाली शैलेन्द्र मेरु को देखा।

तस्योपरि महापुर्यस्त्वष्टौ लोकपतींस्तथा।
तेषामुपरि वैराजीं ददृशे ब्रह्मणः पुरीम्॥ ८॥

उसके ऊपर महान् नगरों, आठ लोकपतियों तथा उन सबके ऊपर ब्रह्मा के नगर वैराज को देखा।

तदधस्तान्महापुण्यमाश्रमं सुरपूजितम्।
देवमातुः स ददृशे मृगपक्षिगणैर्वृतम्॥ ९॥

उस नगर के नीचे उसने देवताओं के द्वारा अभिनंदित महापुण्यशाली, एवं पशु-पक्षियों से युक्त देवमाता के आश्रम को देखा।

तां दृष्ट्वा देवजननीं सर्वतेजोऽधिकां मुने।
विवेश दानवपतिरन्वेष्टुं मधुसूदनम्॥ १०॥

हे मुनि! अत्यधिक तेजस्विनी उन देवमाता को देखकर दानवपति प्रह्लाद मधुसूदन को ढूँढने के लिए उनके भीतर प्रवेश कर गए।

स दृष्ट्वाञ्जगन्नाथं माधवं वामनाकृतिम्।
सर्वभूतवरेण्यं तं देवमातुरथोदरे॥ ११॥

उन्होंने देवमाता के उदर में समस्त जगत् के पूजनीय वामनाकृति वाले जगन्नाथ माधव को देखा।

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
सुरासुरगणैः सर्वैः सर्वतो व्याप्तविग्रहम्॥ १२॥
तेनैव क्रमयोगेन योगेन दृष्ट्वा वामनतां गतम्।
दैत्यतेजोहरं विष्णुं प्रकृतिस्थोऽभवत्ततः॥ १३॥

उन पुण्डरीकाक्ष शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले सुर और असुरों के द्वारा परिव्याप्त शरीर वाले दैत्यों के तेज का अपहरण करने वाले विष्णु को वामनता (बौने-पन) को प्राप्त हुआ देखकर प्रह्लाद प्रकृतिस्थ (शान्त) हो गए।

अथोवाच महाबुद्धिर्विरोचनसुतं बलिम्।
प्रह्लादो मधुरं वाक्यं प्रणम्य मधुसूदनम्॥ १४॥

तदनन्तर अत्यंत बुद्धिमान् प्रह्लाद ने मधुसूदन को प्रणाम करके विरोचनपुत्र बलि से निम्न प्रकार के मधुर वचन कहे—

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यतो वो भयमागतम्।
येन निस्तेजसो दैत्या जाता दैत्येन्द्र हेतुना॥ १५॥

प्रह्लाद ने कहा— हे दैत्येन्द्र! सुनो मैं तुम्हें सब कुछ बताता हूँ कि तुम्हारा भय कहाँ से आया हैं और दैत्य किस कारण से निस्तेज हो गए हैं!

भवता निर्जिता देवाः सेन्द्ररुद्रार्कपावकाः।
प्रयाताः शरणं देवं हरिं त्रिभुवनेश्वरम्॥ १६॥

इन्द्र, रुद्र, सूर्य और अग्नि सहित समस्त देवतागण तुमसे पराजित होकर तीनों लोकों के स्वामी हरि की शरण में चले गये।

स तेषामभयं दत्त्वा शक्रादीनां जगद्गुरुः।
अवतीर्णो महाबाहुरदित्या जठरे हरिः॥ १७॥

उन सब इन्द्रादि को अभयदान देकर वह जगद्गुरु महाशक्तिशाली हरि अदिति के उदर में अवतरित हो गए।

हतानि वस्तेन बले तेजांसीति मतिर्मम।
नालं तमो विषहितुं शक्रं सूर्योदयं बले॥ १८॥

हे बलि! उनके द्वारा ही तुम्हारे तेज का अपहरण किया गया है, ऐसा मेरा विचार है। हे बलि! सूर्योदय तथा अंधकार एक साथ अवस्थित नहीं रह सकते!

पुलस्त्य उवाच

प्रह्लादवचनं श्रुत्वा क्रोधे प्रस्फुरिताधरः।
प्रह्लादमाहाथ बलिर्भाविकर्मप्रचोदितः॥ १९॥

पुलस्त्य ने कहा— प्रह्लाद के वचन को सुनकर क्रोध से स्फुरित अधरोष्ठ वाले बलि ने भवितव्यता से प्रेरित होकर प्रह्लाद से कहा।

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ २०॥

बलि ने कहा— हे तात! यह हरि कौन है? जिससे हम भयभीत हो गए हैं मेरे सैकड़ों दैत्य हैं जो वासुदेव से भी अधिक बलशाली हैं।

सहस्रशो यैरमराः सेन्द्ररुद्राग्निमारुताः।
निर्जित्य त्याजिताः स्वर्गं भग्नदर्पा रणाजिरे॥ २१॥

मेरे सहस्रों दैत्य ऐसे हैं जिन्होंने इन्द्र, रुद्र, अग्नि तथा मरुत् सहित देवताओं को पराजित कर युद्धभूमि में

उनका दर्प चूर-चूर कर स्वर्ग से निकाल दिया था।

येन सूर्यरथाद्वेगाच्चक्रं कृष्टं महाजवम्।
स विप्रचित्तिर्बलवान्मम सैन्यपुरस्सरः॥ २२॥

सूर्य के अत्यंत वेगगामी रथ से जिसने महाशक्तिशाली चक्र को खींच लिया था, वह बलवान् विप्रचित्ति मेरा सेनापति है।

अयःशङ्कुः शिवः शंभुरसिलोमा विलोमकृत्।
त्रिशिरा मकराक्षश्च वृषपर्वा नतेक्षणः॥ २३॥
एते चान्ये च बलिनो नानायुधविशारदाः।
येषामेकैकशो विष्णुः कलां नार्हति षोडशीम्॥ २४॥

अयःशंकु, शिव, शंभु, अतिलोभ, विलोमकृत्, त्रिशिरा, मकराक्ष, नतेक्षण— ये सब तथा अन्य नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों में प्रवीण अनेक बलशाली दानव हैं जिनमें से एक-एक से भी विष्णु अपनी सोलह कलाओं से बराबरी नहीं कर सकता।

पुलस्त्य उवाच

पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः।
धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ २५॥
धिक्त्वां पापसमाचार दुष्टवुद्धिं सुबालिश।
हरिं निन्दयतो जिह्वा कथं न पतिता तव॥ २६॥

पुलस्त्य ने कहा— पौत्र (बलि) के इस प्रकार के वचन सुनकर के क्रोध से मूर्च्छित प्रह्लाद ने वैकुण्ठ विष्णु के लिए आक्षेपवचन बोलने वाले बलि से इस प्रकार कहा— धिक्कार है धिक्कार है। दुष्टवचन बोलने वाले, हे दुष्टमति, हे पापाचारिन्! तुम्हें धिक्कार है! हरि की निन्दा करते हुए तुम्हारी जिह्वा क्यों न गिर गई!

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यत्त्रैलोक्यगुरुं विष्णुमभिनिन्दसि दुर्मते॥ २७॥

हे दुर्बुद्धि! तुम साधुसमाज द्वारा निन्दनीय तथा शोचनीय हो। क्योंकि हे दुर्मति! तुम. त्रैलोक्यगुरु विष्णु की निन्दा कर रहे थे!

शोच्यश्चापि न संदेहो येन जातः पिता तव।
यस्य त्वं कर्कशः पुत्र जातो देवावमान्यकः॥ २८॥

मैं भी वस्तुतः शोचनीय हूँ जिसने तुम्हारे पिता को उत्पन्न किया जिससे तुम जैसा देव विष्णु का अपमान करने वाला कर्कश पुत्र उत्पन्न हुआ है।

भवान्किल विजानाति तथा चामी महासुराः।
यथा नान्यः प्रियः कश्चिन्मम तस्माज्जनार्दनात्॥ २९॥

तुम्हें और इन सब महासुरों को यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिये कि मुझे उन जनार्दन के समान और कोई प्रिय नहीं है।

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
सर्वेश्वरेश्वरं देवं कथं निन्दितवानसि॥ ३०॥

तुम यह जान लो कि हरि मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, फिर तुम समस्त देवाधिदेव की निन्दा क्यों कर रहे हो?

गुरुः पूज्यस्तव पिता पूज्यस्तस्याप्यहं गुरुः।
ममापि पूज्यो भगवान्गुरुर्लोकगुरुर्हरिः॥ ३१॥

तुम्हारे पिता बड़े हैं इसीलिये तुम्हारे लिये वे पूजनीय हैं, मैं उनका भी गुरु होने से पूजनीय हूँ तथा तीनों लोकों के गुरु भगवान् विष्णु मेरे भी पूजनीय हैं।

गुरोर्गुरुगुरुर्मूढ पूज्यं पूज्यतमस्तव।
पूज्यं निन्दयसे पाप कथं न पतितोऽस्यधः॥ ३२॥

हे मूर्ख! गुरु के गुरु के गुरु तुम्हारे लिये पूज्य और पूज्यतम हैं। हे पापी! ऐसे पूजनीय की तुम निन्दा कर रहे हो फिर तुम्हारा अधःपतन क्यों नहीं हुआ?

शोचनीया दुराचारा दानवामी कृतास्त्वया।
येषां त्वं कर्कशो राजा वासुदेवस्य निन्दकः॥ ३३॥

इन सब दानवों को तुमने निंदनीय और दुराचारी बना दिया है। क्योंकि इनका राजा वासुदेव की निंदा करने वाला दुष्ट व्यक्ति है।

यस्मात्पूज्योऽर्चनीयश्च भवता निन्दितो हरिः।
तस्मात्पापसमाचार राज्यनाशमवाप्नुहि॥ ३४॥

हे दुष्टवक्ता! क्योंकि तुमने पूजनीय एवं अर्चनीय हरि की निंदा की है इसलिए तुम्हारे राज्य का निश्चय ही नाश होगा।

यथा नान्यत्प्रियतरं विद्यते मम केशवात्।
मनसा कर्मणा वाचा राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ३५॥

क्योंकि मुझे मन, वचन और कर्म से हरि के अतिरिक्त और कोई भी अधिक प्रिय नहीं है, इसलिए हे राज्यभ्रष्ट! तुम्हारा पतन हो जाए।

यथा न तस्मादपरं व्यतिरिक्तं हि विद्यते।
चतुर्दशसु लोकेषु राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ३६॥

क्योंकि चौदह लोकों में उन हरि से बढ़कर कोई नहीं है; इसलिए, हे राज्यभ्रष्ट! तुम्हारा पतन हो जाए!

सर्वेषामपि भूतानां नान्यल्लोके परायणम्।
यथा तथाऽनुपश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ३७॥

क्योंकि समस्त प्राणियों के लिये जगत् में हरि के अतिरिक्त कोई और शरण नहीं है। इसलिए मैं तुम्हें राज्यच्युत देखूँ!

पुलस्त्य उवाच

एवमुच्चरिते वाक्ये बलिः सत्वरितस्तदा।
अवतीर्यासनाद् ब्रह्मन्कृताञ्जलिपुटो बली॥ ३८॥
शिरसा प्रणिपत्याह प्रसादं यातु मे गुरुः।
कृतापराधानपि हि क्षमन्ते गुरवः शिशून्॥ ३९॥

पुलस्त्य ने कहा— हे ब्राह्मण! प्रह्लाद के इस प्रकार कहने पर वह शक्तिशाली बलि शीघ्रतापूर्वक अपने आसन से उतरा और हाथ जोड़कर एवं सिर झुकाकर प्रणाम करके बोला— हे मेरे पूजनीय प्रसन्न हो जाइये! क्योंकि गुरुजन अपने अपराधी बालकों को क्षमा कर दिया करते हैं।

तत्साधु यदहं शप्तो भवता दानवेश्वर।
न बिभेमि परेभ्योऽहं न च राज्यपरिक्षयात्॥ ४०॥

हे दानवेश्वर! आपने मुझे शाप देकर अच्छा ही किया। अन्य मैं किसी से नहीं डरता और न ही राज्यनाश से डरता हूँ।

नैव दुःखं मम विभो यदहं राज्यविच्युतः।
दुःखं कृतापराधत्वाद्भवतो मे महत्तरम्॥ ४१॥

हे स्वामी! न ही मुझे इस बात से कोई दुःख है कि मैं राज्यच्युत हो जाऊँगा; किंतु आपके प्रति अपराध करने के कारण मैं अत्यधिक दुःखी हूँ।

तत् क्षम्यतां तात ममापराधो
वालोऽस्म्यनाथोऽस्मि सुदुर्मतिश्च।
कृतेऽपि दोषे गुरवः शिशूनां
क्षाम्यन्ति दैन्यं समुपागतानाम्॥ ४२॥

इसलिए, हे तात! मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए। मैं दुर्बुद्धि आपका बालक अनाथ हूँ। अपराधी होने पर भी दीनता को प्राप्त हुये अपने बालकों को गुरुजन क्षमा कर देते हैं।

पुलस्त्य उवाच

स एवमुक्तो वचनं महात्मा
विमुक्तमोहो हरिपादभक्तः।
चिरं विचिन्त्याद्भुतमेतदित्थ-
मुवाच पौत्रं मधुरं वचोऽथ॥ ४३॥

पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार कहे जाने पर उन मोहरहित हरिचरणों के भक्त महात्मा प्रह्लाद ने देर तक सोचविचार कर अपने पौत्र से निम्न प्रकार से अद्भुत एवं मधुर वचन कहे—

प्रह्लाद उवाच

तात मोहेन मे ज्ञानं विवेकश्च तिरस्कृतः।
येन सर्वगतं विष्णुं जानंस्त्वां शप्तवाहनम्॥ ४४॥

प्रह्लाद ने कहा— हे तात! मोहवश मेरा ज्ञान और विवेक तिरस्कृत हो गया जिस कारण सर्वव्यापी विष्णु को जानते हुए भी मैंने तुम्हें शाप दे दिया।

नूनमेतेन भाव्यं वै भवतो येन दानव।
ममाविशन्महाबाहो विवेकप्रतिषेधकः॥ ४५॥

हे महाबाहु! हे दानव! निश्चय ही यह भवितव्यता ही थी कि विवेक का अवरोधभाव मुझ में प्रविष्ट हो गया।

तस्माद्राज्यं प्रति विभो न ज्वरं कर्त्तुमर्हसि।
अवश्यंभाविनो ह्यर्था न विनश्यन्ति कर्हिचित्॥ ४६॥

इसलिए, हे राजन्! राज्य के विषय में तुम चिंता न करो। क्योंकि अवश्यम्भावी का विनाश कदाचित् भी नहीं होता।

पुत्रमित्रकलत्रार्थे राज्यभोगधनाय च।
आगमे निर्गमे प्राज्ञो न विषादं समाचरेत्॥ ४७॥

पुत्र, मित्र, स्त्री, संपत्ति, राज्य, भोग तथा धन के आगमन और निर्गमन पर बुद्धिमान् को व्यथित नहीं होना चाहिए।

यथा यथा समायान्ति पूर्वकर्मविधानतः।
सुखदुःखानि दैत्येन्द्र नरस्तानि सहेत्तथा॥ ४८॥

हे दैत्येन्द्र! पूर्वकर्मों के विधान के अनुसार सुख और दुःख जैसे-जैसे आते हैं वैसे-वैसे ही व्यक्ति को उन्हें सहन करना चाहिए।

आपदामामगं दृष्ट्वा न विषण्णो भवेद्वशी।
संपदं च सुविस्तीर्णां प्राप्य नोऽधृतिमान् भवेत्॥ ४९॥

वशी व्यक्तियों को आपदाओं के आगमन पर व्यक्ति नहीं होना चाहिए तथा अत्यधिक संपत्ति को प्राप्त कर धैर्य नहीं खोना चाहिए।

धनक्षये न मुह्यन्ति न हृष्यन्ति धनागमे।
धीराः कार्येषु च सदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः॥ ५०॥

श्रेष्ठ पुरुष धन की हानि होने पर अति विचलित नहीं होते और धन के आगमन पर अति प्रसन्न भी नहीं होते। इस प्रकार समस्त अवस्थाओं में वे धैर्यवान् रहते हैं।

एवं विदित्वा दैत्येन्द्र न विषादं कथंचन।
कर्तुमर्हसि विद्वंस्त्वं पण्डितो नावसीदति॥ ५१॥

हे दैत्येन्द्र! यह जानकर तुम्हें किसी भी प्रकार विषाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि पण्डित दुःखी नहीं होते।

तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम्।
भवतोऽथ तथाऽन्येषां श्रुत्वा तच्च समाचर॥ ५२॥

हे महाबाहु! एक और महत्वपूर्ण बात सुनो, जो तुम्हारे लिए और अन्यों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। इसे सुनकर इसका आचरण करो।

शरण्यं शरणं गच्छ तमेतं पुरुषोत्तमम्।
स ते त्राता भयादस्माद्दानवेन्द्र भविष्यति॥ ५३॥

हे दानवेन्द्र! पूजनीय उन पुरुषोत्तम हरि की शरण में जाओ, वही इस भय से तुम्हारी रक्षा करेंगे।

ये संश्रयन्ति हरिमीशमनादिमध्यं
विष्णुं चराचरगुरुं हरिमीशितारम्।
संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं
नूनं न ते भुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति॥ ५४॥

जो व्यक्ति अनन्त, आदि और मध्य से रहित, पूजनीय, समस्त चराचर जगत् के गुरु, संसारगर्त में गिरे हुए दुःखियों का हाथ पकड़ कर सहारा देने वाले भगवान् विष्णु का आश्रय लेते हैं पृथ्वी पर वे मनुष्य निश्चय ही दुःखी नहीं होते।

तन्मना दानवश्रेष्ठ तद्भक्तश्च भवाधुना।
स एष भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः॥ ५५॥

हे दानवश्रेष्ठ! अब तुम उनमें युक्त चित्तवाले तथा उनके ही भक्त हो जाओ! वह जनार्दन ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

अहं च पापोपशमार्थमीश-
माराध्य यास्ये प्रति तीर्थयात्राम्।
विमुक्तपापश्च तदा गमिष्ये
यत्राच्युतो लोकपतिर्नृसिंहः॥ ५६॥

और मैं अपने पाप के अपशमन के लिए उन ईश की आराधना करके तीर्थयात्रा के लिए जाता हूँ। तदनन्तर पापमुक्त होने पर मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ वह नृसिंह लोकपति अच्युत विष्णु हैं।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमाश्वास्य बलिं महात्मा
संस्मृत्य योगाधिपतिं च विष्णुम्।
आमन्त्र्य सर्वान्दनुयूथपालान्
जगाम कर्तुं त्वथ तीर्थयात्राम्॥ ५७॥

पुलस्त्य ने कहा— इस प्रकार बलि को आश्वासन देकर तथा योगाधिपति विष्णु का संस्मरण करके वह महात्मा समस्त दानवसमूह से विदा लेकर प्रह्लाद तीर्थयात्रा के लिए चल पड़े।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे
बलिशिक्षादानं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

(धुन्धु दानव की पराजय)

नारद उवाच

कानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुजगाम ह।
प्रह्लादतीर्थयात्रां मे सम्यगाख्यातुमर्हसि॥ १॥

नारद ने कहा— हे विपेन्द्र! प्रह्लाद किन-किन तीर्थों में गए? प्रह्लाद की तीर्थयात्रा के विषय में कृपया मुझे बताइये।

पुलस्त्य उवाच

श्रृणु त्वं कथयिष्यामि पापपङ्कप्रणाशिनीम्।
प्रह्लादतीर्थयात्रां ते शुद्धप्रण्यप्रदायिनीम्॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा— सुनो! पापपंक का नाश करने वाली तथा शुद्धपुण्य को प्रदान करने वाली प्रह्लाद की तीर्थयात्रा के विषय में मैं तुम्हें बताता हूँ।

संत्यज्य मेरुं कनकाचलेन्द्र
तीर्थं जगामामरसंघजुष्टम्।
ख्यातं पृथिव्यां शुभदं हि मानसं
यत्र स्थितो मत्स्यवपुः पुरेशः॥ ३॥

पर्वतश्रेष्ठ स्वर्णिम मेरु का परित्याग कर वह पृथ्वी पर अत्यंत प्रसिद्ध, देवसमूह के द्वारा उपवेष्टित, शुभदायक मानस तीर्थ पर पहुँचे जहाँ मत्स्यशरीरधारी विष्णु प्रतिष्ठित थे।

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः।
संपूज्य च जगन्नाथमच्युतं श्रुतिभिर्युतम्॥ ४॥
उपोष्य भूयः संपूज्य देवर्षिपितृमानवान्।
जगाम कच्छपं द्रष्टुं कौशिक्यां पापनाशनम्॥ ५॥

उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान और पितरों व देवताओं का तर्पण कर उन्होंने श्रुतियों से समन्वित अच्युत जगन्नाथ की पूजा की। फिर देवताओं, ऋषियों, पितरों और मानवों की पूजा कर वे पापनाशक कच्छप का दर्शन करने कौशिकी नदी में पहुँचे।

तस्यां स्नात्वा महानद्यां संपूज्य च जगत्पतिम्।
समुपोष्य शुचिर्भूत्वा दत्त्वा विप्रेषु दक्षिणाम्॥ ६॥
नमस्कृत्य जगन्नाथमथो कूर्मवपुर्धरम्।
ततो जगाम कृष्णाख्यं द्रष्टुं वाजिमुखं प्रभुम्।

उस महानदी में स्नान करके, जगत्पति का पूजन करके, उपवास रखकर, पवित्र होकर, ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर, कच्छप का विग्रह धारण करने वाले जगन्नाथ को नमस्कार करके कृष्ण नाम से प्रसिद्ध अश्वविग्रहधारी प्रभु विष्णु का दर्शन करने के लिए गए।

तत्र देवह्रदे स्नात्वा तर्पयित्वा पितॄन्सुरान्॥ ७॥
संपूज्य हयशीर्षं च जगाम गजसाह्वयम्।

वहाँ उन्होंने देवसरोवर में स्नान किया। पितरों और देवों का तर्पण किया और तब हयशीर्ष विष्णु की पूजा करके पवित्र हस्तिनापुर चले गए।

तत्र देवं जगन्नाथं गोविन्दं चक्रपाणिनम्॥ ८॥
स्नात्वा संपूज्य विधिवत् जगाम यमुनां नदीम्।
तस्यां स्नातः शुचिर्भूत्वा संतर्प्यर्षिसुरान्पितॄन्।
ददर्श देवदेवेशं लोकनाथं त्रिविक्रमम्॥ ९॥

वहाँ स्नान करने के पश्चात् चक्रपाणि गोविन्द भगवान् जगन्नाथ की विधिवत् पूजा करके वह यमुना नदी पर पहुँचे। उसमें स्नान करके पवित्र होकर ऋषियों, देवों और पितरों का तर्पण करने के पश्चात् उन्होंने देवदेवेश लोकनाथ त्रिविक्रम (तीन पदों में जगत् को जीतने वाले) विष्णु का दर्शन किया।

नारद उवाच

साम्प्रतं भगवान्विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणं वपुः।
करिष्यति जगत्स्वामी बलेर्बन्धनमीश्वरः॥ १०॥
तत्कथं पूर्वकालेऽपि विभुरासीत्त्रिविक्रमः।
कस्य वा बन्धनं विष्णुः कृतवांस्तच्च मे वद॥ ११॥

नारद ने कहा— अब जगत्पति भगवान् विष्णु त्रिलोक को आक्रान्त करने वाला विग्रह धारण करेंगे तथा वह बलि को बंधन में बाँधेंगे। तो प्राचीनकाल में भी वह स्वामी किस प्रकार त्रिविक्रम (तीन चरणों में जगत् को जीतने वाले) बने थे तथा उन विष्णु ने किस का बंधन किया था? कृपया मुझे बताइये।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि योऽयं प्रोक्तस्त्रिविक्रमः।
यस्मिन्काले संबभूव यं च वञ्चितवानसौ॥ १२॥

पुलस्त्य ने कहा— सुनिये! मैं बताता हूँ कि इन भगवान् को त्रिविक्रम क्यों कहा जाता है, वे किस काल में हुए तथा उन्होंने किस को ठगा।

आसीद्धुन्धुरिति ख्यातः कश्यपस्यौरसः सुतः।
दनोर्गर्भसमुद्भूतो महाबलपराक्रमः॥ १३॥

कश्यप का दनु के गर्भ से उत्पन्न धुन्धु नाम से प्रसिद्ध औरस पुत्र था, वह महापराक्रमशाली था।

स समाराध्य वरदं ब्रह्माणं तपसाऽसुर:।
अवध्यत्वं सुरैः सेन्द्रैः प्रार्थयत् स तु नारद॥ १४॥

हे नारद! उस असुर ने तपस्या के द्वारा वरदाता भगवान् ब्रह्मा की आराधना करके उनसे इन्द्र सहित समस्त देवताओं से अवध्य होने की प्रार्थना की।

तद् वरं तस्य च प्रादात् तपसा पङ्कजोद्भवः।
परितुष्टः स च वली निर्जगाम त्रिविष्टपम्॥ १५॥

उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर कमलोद्भव ब्रह्मा ने उसे यह वर दे दिया। तदनन्तर वह बलशाली अत्यधिक प्रसन्न होकर स्वर्गलोक को चला गया।

चतुर्थस्य कलेरादौ जित्वा देवान्सवासवान्।
धुन्धुः शक्रत्वमकरोद्धिरण्यकशिपौ सति॥ १६॥

चतुर्थ कलि के प्रारम्भ में इन्द्रसहित समस्त देवों पर विजय प्राप्त करके उस धुन्धु ने हिरण्यकशिपु के रहते हुए भी इन्द्रत्व को प्राप्त कर लिया।

तस्मिन्काले स बलवान्हिरण्यकशिपुस्ततः।
चचार मन्दरगिरौ दैत्यो धुन्धुं समाश्रितः॥ १७॥

तब बलवान् हिरण्यकशिपु (भी) धुन्धु के आश्रित होकर मन्दर पर्वत पर विचरण करता था।

ततोऽसुरा यथा कामं विचरन्ति त्रिविष्टपे।
ब्रह्मलोके च त्रिदशा संस्थिता दुःखसंयुताः॥ १८॥

असुरगण तो स्वर्ग में इच्छानुसार विचरण करने लगे और देवतागण दुःखी होकर ब्रह्मलोक में निवास करने लगे।

ततोऽमरान् ब्रह्मसदो निवासिनः
श्रुत्वाऽथ धुन्धुर्दितिजानुवाच।
व्रजाम दैत्या वयमग्रजस्य
सदो विजेतुं त्रिदशान्सशक्रान्॥ १९॥

देवताओं के ब्रह्मलोक में निवास के विषय में सुनकर धुन्धु ने दैत्यों से कहा— हम सब दैत्य इन्द्रसहित देवताओं को जीतने के लिए ब्रह्मलोक में चलते हैं।

ते धुन्धुवाक्यं तु निशम्य दैत्याः
प्रोचुर्न नो विद्यति लोकपाल।
गतिर्यया याम पितामहाजिरं
सुदुर्गमोऽयं परतो हि मार्गः॥ २०॥

धुन्धु के वाक्य को सुनकर उन सब दैत्यों ने कहा— हे लोकपालक! हमारी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि हम ब्रह्मलोक में जा सकें; क्योंकि ब्रह्मलोक का मार्ग अत्यंत लम्बा और दुर्गम है।

इतः सहस्रैर्बहुयोजनाख्यै-
र्लोको महर्नाम महर्षिजुष्टः।
येषां हि दृष्ट्याऽर्पणचोदितेन
दह्यन्ति दैत्याः सहसेक्षितेन॥ २१॥

यहाँ से सहस्रों योजन दूर महर्षियों के द्वारा सेवित महनामक लोक है जिनके सहसा दृष्टिपात मात्र से ही दानव भस्मीभूत हो जाते हैं।

ततोऽपरो योजनकोटिना वै
लोको जनो नाम वसन्ति यत्र।
गोमातरोऽस्मासु विनाशकारि
यासां रजोऽपीह महासुरेन्द्रः॥ २२॥

हे महासुरेन्द्र! वहाँ से भी कोटियोजन दूर एक 'जन' नामक लोक हैं जहाँ गोमाताएँ निवास करती हैं, जिनकी धूलि भी हमारे लिए विनाशकारक है।

ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
षड्भिस्तपो नाम तपस्विजुष्टः।
तिष्ठन्ति यत्रासुर साध्यवर्या
येषां हि निश्वासमरुत् त्वसह्यः॥ २३॥

हे असुर! तदनन्तर छह कोटि योजन दूर 'तपः' नामक तपस्वियों के द्वारा सेवित एक अन्य लोक है। वहाँ श्रेष्ठ तपस्वी निवास करते हैं जिनकी श्वासवायु भी असहनीय है।

ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
त्रिंशद्भिरादित्यसहस्रदीप्तिः।
सत्याभिधानो भगवन्निवासो
वरप्रदोऽभूद्भवतो हि योऽसौ॥ २४॥
यस्य वेदध्वनिं श्रुत्वा विकसन्ति सुरादयः।
संकोचमसुरा यान्ति ये च तेषां सधार्मिणः॥ २५॥

तदनन्तर तीस करोड़ योजन दूर सहस्रों सूर्यों की आभा से दीप्तिमान् 'सत्य' नामक लोक है जहाँ उन देव का निवास है जिन्होंने आपको वर दिया था। जिस लोक

की वेदध्वनि सुनकर देवतागण विकसित (प्रफुल्लित) हो जाते हैं तथा असुरगण और उनके समान प्रवृत्तिवाले संकुचित हो जाते हैं।

तस्मान्मा त्वं महाबाहो मतिमेतां समादधः।
वैराज्यभुवनं धुन्धो दुरारोहं सदा नृभिः॥ २६॥

इसलिए, हे महाबाहू! तुम ऐसा विचार मत करो। हे धुन्धु! ब्रह्मलोक मनुष्यों के लिये सदैव दुर्गम है।

तेषां वचनमाकर्ण्य धुन्धुः प्रोवाच दानवान्।
गन्तुकामः स सदनं ब्रह्मणो जेतुमीश्वरान्॥ २७॥

उनकी बात सुनकर धुन्धु ने दानवों से कहा कि वह देवताओं को जीतने के लिए ब्रह्मलोक को जाना चाहता है।

कथं तु कर्मणा केन गम्यते दानवर्षभाः।
कथं तत्र सहस्राक्षः संप्राप्तः सह दैवतैः॥ २८॥

हे दानवश्रेष्ठों! किस विधि से तथा किस प्रकार वहाँ जाया जा सकता है? देवताओं सहित सहस्राक्ष इन्द्र वहाँ किस प्रकार पहुँचा?

ते धुन्धुना दानवेन्द्राः पृष्टाः प्रोचुर्वचोऽधिपम्।
कर्म तत्र वयं विद्मः शुक्रस्तद्वेत्त्यसंशयम्॥ २९॥

धुन्धु के इस प्रकार पूछने पर उन दानवश्रेष्ठों ने उस राजा से कहा—हम उस कार्य को नहीं जानते, निस्संदेह शुक्र वह विधि जानते होंगें।

दैत्यानांवचनं श्रुत्वा धुन्धुर्दैत्यपुरोहितम्।
पप्रच्छ शुक्रं किं कर्म कृत्वा ब्रह्मसदोगतिः॥ ३०॥

दैत्यों के वचन को सुनकर धुन्धु ने दैत्यों के पुरोहित शुक्र से पूछा— किस कर्म के द्वारा ब्रह्मलोक में जाया जा सकता है?

ततोऽस्मै कथयामास दैत्याचार्यः कलिप्रियः।
शक्रस्य चरितं श्रीमान्पुरा वृत्ररिपोः किल॥ ३१॥
शक्रः शतं तु पुण्यानां क्रतूनामजयत् पुरा।
दैत्येन्द्र वाजिमेधानां तेन ब्रह्मसदो गतः॥ ३२॥

हे कलिप्रिय! तदनन्तर श्रीमान् दैत्याचार्य ने उसे वृत्ररिपु इन्द्र के प्राचीनकालीन वृत्तांत को सुनाया। हे दैत्येन्द्र! प्राचीन काल में इन्द्र ने सौ पुण्यशाली अश्वमेध यज्ञ किये। इस कारण वह ब्रह्मलोक में जा सका।

तद्वाक्यं दानवपतिः श्रुत्वा शुक्रस्य वीर्यवान्।
यष्टुं तुरगमेधानां चकार मतिमुत्तमाम्।
अथामन्त्र्यासुरगुरुं दानवांश्चाप्यनुत्तमान्॥ ३३॥
प्रोवाच यक्ष्येऽहं यज्ञैरश्वमेधैः सुदक्षिणैः।
तदागच्छध्वमवनीं गच्छामो वसुधाधिपान्॥ ३४॥
विजित्य हयमेधान्वै यथाकामगुणान्वितान्।
आहूयन्तां च निधयस्त्वाज्ञाप्यन्तां च गुह्यकाः॥ ३५॥

शुक्र के उस वाक्य को सुनकर उस शक्तिशाली दानवपति ने असुरगुरु शुक्र से तथा अन्य उत्तम दानवों से आमंत्रणा कर अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। वह बोला— मैं दक्षिणाओं सहित अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करूँगा। इसलिए आओ! हम पृथ्वी पर चलते हैं जिससे राजाओं को जीतकर इष्ट प्रदान करने वाले अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न कर सकें। गुह्यकों तथा उनकी समस्त निधियों को बुलाया जाय!

आमन्त्र्यन्तां च ऋषयः प्रयामो देविकातटम्।
सा हि पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा सर्वसिद्धिकरी शुभा।
स्थानं प्राचीनमासाद्य वाजिमेधान् यजामहे॥ ३६॥

ऋषियों को आमंत्रित किया जाय, हम देविका के तट पर चलते हैं; क्योंकि वह श्रेष्ठ नदी शुभ, पुण्यकारी तथा समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली है। उसके पूर्वी किनारे पर पहुँचकर हम अश्वमेध यज्ञों का संपादन करेंगे।

इत्थं सुरारेर्वचनं निशम्यासुरयाजकः।
बाढमित्यब्रवीद् हृष्टो निधयः संदिदेशः सः॥ ३७॥

देवशत्रु के इस प्रकार वचन को सुनकर असुरयाजक शुक्र ने कहा— 'ठीक है' और प्रसन्न होकर उन्होंने संपत्तियों के लिए आदेश दिया।

ततो धुन्धुर्देविकायां प्राचीने पापनाशने।
भार्गवेन्द्रेण शुक्रेण वाजिमेधाय दीक्षितः॥ ३८॥

तदनन्तर भार्गवेन्द्र शुक्र ने देविका के पापनाशक पूर्वी किनारे पर धुन्धु को अश्वमेध के लिए दीक्षित किया।

सदस्या ऋत्विजश्चापि तत्रासन् भार्गवा द्विजाः।
शुक्रस्यानुमते ब्रह्मन् शुक्रशिष्याश्च पण्डिताः॥ ३९॥

हे ब्राह्मण! शुक्र की अनुमति से शुक्र के परिवार के सदस्य ब्राह्मण वहाँ ऋत्विक् थे तथा शुक्र के शिष्य पण्डित थे।

यज्ञभागभुजस्तत्र स्वर्भानुप्रमुखा मुने।
कृताश्चासुरनाथेन शुक्रस्यानुमते सुराः॥४०॥

हे मुनि! शुक्र की अनुमति से असुरनाथ धुन्धु ने राहु इत्यादि प्रमुख असुरों को यज्ञभाग का भोक्ता नियुक्त किया।

ततः प्रवृत्तो यज्ञस्तु समुत्सृष्टस्तथा हयः।
हयस्यानुययौ श्रीमानसिलोमा महासुरः॥४१॥

यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर घोड़ा छोड़ा गया। उस अश्व के पीछे महासुर असिलोम गया।

ततोऽग्निधूमेन मही सशैला
व्याप्ता दिशः खं विदिशश्च पूर्णाः।
तेनोग्रगन्धेन दिवस्पृशेन
मरुद्ववौ ब्रह्मलोके महर्षे॥४२॥

तदनन्तर दिशाएँ, विदिशाएँ, आकाश तथा पर्वत सहित समस्त पृथ्वी उस यज्ञाग्नि के धुएँ से व्याप्त हो गई। हे महर्षि! द्युलोक को छूने वाली उस तीव्र गंध से युक्त वायु ब्रह्मलोक तक पहुँच गई।

तं गन्धमाघ्राय सुरा विषण्णा
जानन्त धुन्धुं हयमेधदीक्षितम्।
ततः शरण्यं शरणं जनार्दनं
जग्मुः सशक्रा जगतः परायणम्॥४३॥

उस गंध को सूँघकर देवताओं ने जाना कि धुन्धु अश्मेधयज्ञ के लिए दीक्षित हुआ है। इससे व्यथित होकर इन्द्रसहित देवतागण जगत् की एकमात्र शरण जनार्दन विष्णु के पास गए।

प्रणम्य वरदं देवं पद्मनाभं जनार्दनम्।
प्रोचुः सर्वे सुरगणा भयगद्गदया गिरा॥४४॥

पद्मनाभ वरदायक देव जनार्दन को प्रणाम करके समस्त सुरगणों ने भय से काँपती हुई वाणी में कहा।

भगवन् देवदेवेश चराचरपरायण।
विज्ञप्तिः श्रूयतां विष्णो सुराणामार्तिनाशन॥४५॥

हे चर और अचर जगत् के शरणरूप! हे भगवन्! देवदेवेश! हे देवों के दुःखों को दूर करने वाले विष्णु! हमारी प्रार्थना सुनिये!

धुन्धुर्नामासुरपतिर्वलवान् वरबृंहितः।
सर्वान्सुरान्विनिर्जित्य त्रैलोक्यमहरद्वलिः॥४६॥

ब्रह्मा के वरदान से पुष्टि को प्राप्त धुन्धु नामक बलशाली असुरपति ने समस्त देवों को जीतकर बलपूर्वक तीनों लोकों का अपहरण कर लिया है।

ऋते पिनाकिनो देवात् त्राताऽस्मान् न यतो हरे।
अतो विवृद्धिमगमद्यथा व्याधिरुपेक्षितः॥४७॥

हे हरि! देव पिनाकी (शिव) के अतिरिक्त हमारा और कोई रक्षक नहीं है, इसलिए, हे देव! उपेक्षित व्याधि के समान वह शत्रु अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया है।

साम्प्रतं ब्रह्मलोकस्थानपि जेतुं समुद्यतः।
शुक्रस्य मतमादाय सोऽश्वमेधाय दीक्षितः॥४८॥

अब वह शुक्र की मंत्रणा से अश्वमेध यज्ञ के लिये दीक्षित होकर ब्रह्मलोक को भी जीतने के लिये तत्पर हो गया है।

शतं क्रतूनामिष्ट्वाऽसौ ब्रह्मलोकं महासुरः।
आरोढुमिच्छति वशी विजेतुं त्रिदशानपि॥४९॥

वह वशी महासुर सौ अश्वमेध यज्ञ करके देवताओं को जीतने के लिए ब्रह्मलोक तक पहुँचना चाहता है।

तस्मादकालहीनं तु चिन्तयस्व जगद्गुरो।
उपायं मखविध्वंसे येन स्याम सुनिर्वृताः॥५०॥

अतएव हे जगद्गुरु! तत्काल ही उसके यज्ञ के विध्वंस का उपाय सोचिए जिससे हम सब निश्चिन्त हो सकें।

श्रुत्वा सुराणां वचनं भगवान्मधुसूदनः।
दत्त्वाऽभयं महाबाहुः प्रेषयामास साम्प्रतम्।
विसृज्य देवताः सर्वा ज्ञात्वाऽजेयं महासुरम्॥५१॥
बन्धनाय मतिं चक्रे धुन्धोर्धर्मध्वजस्य वै।
ततः कृत्वा स भगवान् वामनं रूपमीश्वरः॥५२॥
देहं त्यक्त्वा निरालम्बं काष्ठदेविकाजले।
क्षणान्मज्जंस्तथोन्मज्जन्मुक्तकेशो यदृच्छया॥५३॥

देवताओं के वचन को सुनने के पश्चात् महाबाहु भगवान् मधुसूदन ने देवताओं को अभयदान देकर उन्हें वापस भेज दिया। देवताओं को भेजकर तथा महासुर

धुन्धु को अजेय जानकर उन्होंने धर्म की ध्वजा के लिए (प्रतिष्ठा के लिये) धुन्धु को बाँधने का विचार किया। तदनन्तर भगवान् ने वामन रूप धारण किया और देविका नदी के जल में बिना किसी अवलम्बन के एक लकड़ी के टुकड़े की भाँति अपने शरीर को छोड़ दिया। उनका शरीर पहले क्षण में डूब रहा था, दूसरे क्षण में ऊपर आ रहा था। उनके केश अस्त-व्यस्त और खुले हुए थे।

दृष्टोऽथ दैत्यपतिना दैतेयैश्चान्यैस्तथर्षिभिः।
ततः कर्म परित्यज्य यज्ञियं ब्राह्मणोत्तमाः॥५४॥
समुत्तारयितुं विप्रमाद्रवन्त समाकुलाः।
सदस्या यजमानश्च ऋत्विजोऽथ महौजसः॥५५॥

तदनन्तर दैत्यपति, अन्य दैत्यों तथा ऋषियों ने उस (ब्राह्मण) को देखा तत्पश्चात् यज्ञकर्म को छोड़कर श्रेष्ठ ब्राह्मण व्यस्ततापूर्वक उस ब्राह्मण को निकालने के लिये दौड़े।

निमज्जमानमुज्जह्रुः सर्वे ते वामनं द्विजम्।
समुत्तार्य प्रसन्नास्ते पप्रच्छुः सर्व एव हि।
किमर्थं पतितोऽसीह केनाक्षिप्तोऽसि नो वद॥५६॥

डूबते हुए उस वामन ब्राह्मण को उन सब ने पकड़ लिया। उसे निकालकर अति प्रसन्न उन सब ने पूछा— तुम किस तरह गिर पड़े अथवा किस ने तुम्हें (नदी के जल में) फेंक दिया-हमें बताओ।

तेषामाकर्ण्य वचनं कम्पमानो मुहुर्मुहुः।
प्राह धुन्धुपुरोगांस्ताञ्छ्रूयतामत्र कारणम्॥५७॥

उनके वचनों को सुनकर बार-बार काँपते हुए वामन ने धुन्धु के अनुयायियों से कहा— कारण सुनिये।

ब्राह्मणो गुणवानासीत्प्रभास इति विश्रुतः।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञो गोत्रतश्चापि वारुणः॥५८॥

एक गुणवान् ब्राह्मण था, जो प्रभास नाम से विख्यात था। वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, परम विद्वान् और वरुणगोत्रीय था।

तस्य पुत्रद्वयं जातं मन्दप्रज्ञं सुदुःखितम्।
तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कनीयानपरस्त्वहम्॥५९॥

उसके दो पुत्र हुए। वे मन्दबुद्धि थे एवं अत्यंत दुःखी थे, उनमें से ज्येष्ठ मेरा भाई तथा दूसरा छोटा मैं हूँ।

नेत्रभास इति ख्यातो ज्येष्ठो भ्राता ममासुर।
मम नाम पिता चक्रे गतिभासेति कौतुकात्॥६०॥

हे असुर! मेरा भ्राता नेत्रभास नाम से प्रसिद्ध है तथा पिता ने कौतुकवश मेरा नाम 'गतिभास' रख दिया।

रम्यश्चावसथो बन्धो शुभश्चासीत् पितुर्मम।
त्रिविष्टपगुणैर्युक्तश्चारुरूपो महासुर॥६१॥
ततः कालेन महता आवयोः स पिता मृतः।
तस्यौर्ध्वदेहिकं कृत्वा गृहमावां समागतौ॥६२॥

हे महासुर! मेरे पिता का गृह अत्यंत सुंदर और पवित्र था। वह स्वर्गीय गुणों से युक्त तथा मनोहर रूप वाला था। एक दिन कालवश हमारे पिता की मृत्यु हो गई। उनका दाहसंस्कार कर हम दोनों भाई घर आए।

ततो मयोक्तः स भ्राता विभजाम गृहं वयम्।
तेनोक्तो नैव भवतो विद्यते भाग इत्यहम्॥६३॥

तब मैंने अपने भाई से कहा— हम घर (संपत्ति) का विभाजन कर लेते हैं। इस पर उसने मुझसे कहा— तुम्हारा हिस्सा नहीं है।

कुब्जवामनखञ्जानां क्लीबानां श्वित्रिणामपि।
उन्मत्तानां तथाऽन्धानां धनभागो न विद्यते॥६४॥

कुब्ज, वामन, अङ्गहीन, क्लीब, कुष्ठरोगग्रस्त, उन्मत्त, तथा अन्धे व्यक्ति का संपत्ति में भाग नहीं होता।

शय्यासनस्थानमात्रं स्वेच्छयान्नभुजक्रिया।
एतावद्दीयते तेभ्यो नार्थभागहरा हि ते॥६५॥

उन्हें शय्या, आसन, (रहने का) स्थान तथा अपनी इच्छानुसार भोजनमात्र ही दिया जाता है। वह संपत्ति में भागी नहीं होता।

एवमुक्ते मया सोक्तः किमर्थं पैतृकाद् गृहात्।
धनार्धभागमर्हामि नाहं न्यायेन केन वै॥६६॥

उसके इस प्रकार कहने पर मैंने उससे कहा— किस कारण और किस न्याय से मैं पैतृक संपत्ति में आधे भाग का भागीदार नहीं हूँ?

इत्युक्तवति वाक्येऽसौ भ्राता मे कोपसंयुतः।
समुत्क्षिप्याक्षिपत्रद्यामस्यां मामिति कारणात्॥६७॥
ममास्यां निम्नगायां तु मध्येन प्लवतो गतः।
कालः संवत्सराख्यस्तु युष्माभिरिह चोद्धृतः॥६८॥

ऐसा कहने पर क्रोधित मेरे उस भ्राता ने इस कारण से मुझे उठाकर इस नदी के जल में फेंक दिया। इस नदी के जल में बहते हुए मुझे एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया था। आज आप सब ने मुझे बाहर निकाल लिया है।

के भवन्तोऽत्र संप्राप्ताः सस्नेहा बान्धवा इव।
कोऽयं शक्रप्रतिमो दीक्षितो यो महाभुजः॥६९॥
तन्मे सर्वं समाख्यात याथातथ्यं तपोधनाः।
महर्द्धिसंयुता यूयं सानुकम्पाश्च मे भृशम्॥७०॥

स्नेही बांधवों की भाँति यहाँ एकत्रित आप सब कौन हैं तथा इन्द्र के समान महाबाहु यह कौन है जो यज्ञ के लिये दीक्षित है? हे तपस्वियों! मुझे सब यथार्थ रूप से बताइये। आप सब अत्यंत समृद्धिशाली लगते हैं तथा मुझ पर अत्यधिक अनुकम्पायमान हैं।

तद्वामनवचः श्रुत्वा भार्गवा द्विजसत्तमाः।
प्रोचुर्वयं द्विजा ब्रह्मन् गोत्रतश्चापि भार्गवाः॥७१॥

उस वामन के वचन को सुनकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ भार्गव बोले— हे ब्राह्मण! हम सब ब्राह्मण हैं तथा गोत्र से भार्गव हैं।

असावपि महातेजा धुन्धुर्नाम महासुरः।
दाता भोक्ता विभक्ता च दीक्षितो यज्ञकर्मणि॥७२॥

यह महातेजस्वी धुन्धु नामक महासुर है जो दाता, भोक्ता तथा भर्ता है। यह यज्ञ के लिये दीक्षित है।

इत्येवमुक्त्वा देवेशं वामनं भार्गवास्ततः।
प्रोचुर्दैत्यपतिं सर्वे वामनार्थकरं वचः॥७३॥

उस देवेश वामन से ऐसा कहकर उन सब भार्गवों ने ने दैत्यपति से वामन के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला वचन कहा—

दीयतामस्य दैत्येन्द्र सर्वोपस्करसंयुतम्।
श्रीमदावसथं दास्यो रत्नानि विविधानि च॥७४॥

हे दैत्येन्द्र! इसे समस्त सुविधाओं से युक्त एक समृद्धिशाली निवासस्थान तथा विविध रत्न दीजिए।

इति द्विजानां वचनं श्रुत्वा दैत्यपतिर्वचः।
प्राह द्विजेन्द्र ते दद्मि यावदिच्छसि वै धनम्॥७५॥

ब्राह्मणों के इस प्रकार के वचन को सुनकर दैत्यपति ने कहा— हे द्विजेन्द्र! तुम जितनी इच्छा करो मैं तुम्हें उतना ही धन प्रदान करूँगा।

दास्ये गृहं हिरण्यं च वाजिनः स्यन्दनान् गजान्।
प्रयच्छाम्यद्य भवतो व्रियतामीप्सितं विभो॥७६॥

मैं तुम्हें स्वर्णमय गृह, घोड़े, रथ, तथा हाथी दूँगा। हे स्वामी! आज आप अपना जो कुछ इष्ट है वह सब मांग लीजिए।

तद्वाक्यं दानवपतेः श्रुत्वा देवोऽथ वामनः।
प्राहासुरपतिं धुन्धुं स्वार्थसिद्धिकरं वचः॥७७॥

दानवपति के इस प्रकार के वचन को सुनकर वामन देव ने असुरपति धुन्धु से अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कहा—

सोदरेणापि हि भ्रात्रा ह्रियन्ते यस्य संपदः।
तस्याक्षमस्य यद्दत्तं किमन्यो न हरष्यति॥७८॥

जिस सामर्थ्यरहित व्यक्ति की संपत्ति उसके सहोदर भ्राता ने ही छीन ली है, उस सामर्थ्यहीन को प्रदत्त धन संपत्ति अन्य कौन नहीं छीन लेगा?

दासीदासांश्च भृत्यांश्च गृहं रत्नं परिच्छदम्।
समर्थेषु द्विजेन्द्रेषु प्रयच्छस्व महाभुज॥७९॥

हे महाबाहु! आप दास-दासियाँ, सेवकगण, गृह, रत्न तथा वस्त्रादि समर्थ ब्राह्मणों (उनकी रक्षा करने में समर्थ ब्राह्मणों) को दीजिए।

मम प्रमाणमालोक्य मामकं च पदत्रयम्।
संप्रयच्छस्व दैत्येन्द्र नाधिक रक्षितुं क्षमः॥८०॥

हे दैत्येन्द्र! मेरे प्रमाण को देखकर आप मुझे केवल तीन पद स्थान दीजिए। उससे अधिक की रक्षा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

इत्येवमुक्तं वचनं महात्मना
विहस्य दैत्याधिपतिः सऋत्विजः।
प्रादाद् द्विजेन्द्राय पदत्रयं तदा
यदा स नान्यं प्रगृहाणं किंचित्॥८१॥

महात्मा वामन के द्वारा इस प्रकार कहने पर ऋत्विजों सहित दैत्याधिपति धुन्धु ने हँसकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ को तीन पद (स्थान) दे दिया; क्योंकि वह और कुछ ले नहीं रहा था।

क्रमत्रयं तावदवेक्ष्य दत्तं
महासुरेन्द्रेण विभुर्यशस्वी।
चक्रे ततो लङ्घयितुं त्रिलोकीं
त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः॥८२॥

महासुरेन्द्र के द्वारा 'तीन पद' दिया हुआ देखकर उन सर्वसमर्थ यशस्वी अनन्तशक्ति विष्णु ने तीनों लोकों को लांघने के लिये त्रिविक्रम रूप धारण कर लिया।

कृत्वा च रूपं दितिजांश्च हत्वा
प्रणम्य चर्षीन् प्रथमक्रमेण।
महीं महीध्रैः सहितां सहार्णवां
जहार रत्नाकरपत्तनैर्युताम्॥८३॥

त्रिविक्रम रूप धारण करके उन्होंने दैत्यों का वध किया, ऋषियों को प्रणाम किया। उन्होंने अपने प्रथम पद से रत्नाकरों, महासमुद्रों, पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी का आहरण कर लिया।

भुवं सनाकं त्रिदशाधिवासं
सोमार्कऋक्षैरभिमण्डितं नभः।
देवो द्वितीयेन जहार वेगात्
क्रमेण देवप्रियमीप्सुरीश्वरः॥८४॥

देवताओं के शुभचिंतक स्वामी विष्णु ने दूसरे पद से अत्यंत वेगपूर्वक अपने देवताओं के निवास स्वर्ग सहित द्युलोक तथा सूर्य, चन्द्र एवं तारों से अभिभण्डित आकाश का आहरण कर लिया।

क्रमं तृतीयं न यदाऽस्य पूरितं
तदाऽतिकोपाद्दनुपुङ्गवस्य।
पपात पृष्ठे भगवांस्त्रिविक्रमो
मेरुप्रमाणेन तु विग्रहेण॥८५॥

जब उनका तीसरा पद पूरा न हुआ तो भगवान् त्रिविक्रम ने अपना उठाया हुआ चरण परिमाण में मेरु के समान विग्रह वाले उस दानवश्रेष्ठ की पीठ पर रख दिया।

पतता वासुदेवेन दानवोपरि नारद।
त्रिंशद्योजनसाहस्री भूमिर्गर्ता दृढीकृता॥८६॥
ततो दैत्यं समुत्पाट्य तस्यां प्रक्षिप्य वेगतः।
अवर्षत् सिकतावृष्ट्या तं च गर्तमपूरयत्॥८७॥

हे नारद! तब वासुदेव के दानव के ऊपर गिरने से भूमि में तीस सहस्र योजन का गर्त बन गया। तदनन्तर दैत्य को खींचकर एवं वेगपूर्वक उस गर्त में फेंक कर उन्होंने धूल की वर्षा कर दी और धूल की वर्षा से उस गर्त को भर दिया।

ततः स्वर्गं सहस्राक्षो वासुदेवप्रसादतः।
सुरांश्च सर्वे त्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवाः॥८८॥
भगवानपि दैत्येन्द्रं प्रक्षिप्य सिकतार्णवे।
कालिन्द्या रूपमाधाय तत्रैवान्तरधीयत॥८९॥

इस प्रकार विष्णु की कृपा से सहस्राक्ष इन्द्र ने स्वर्ग को तथा चिंतारहित देवताओं ने तीनों लोकों को प्राप्त किया। तदनन्तर उस धूल के महासमुद्र में उस दैत्येन्द्र को फेंक कर भगवान् विष्णु भी यमुना का रूप धारण कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गए।

एवं पुरा विष्णुरभूच्च वामनो
धुन्धुं विजेतुं च त्रिविक्रमोऽभूत्।
यस्मिन्स दैत्येन्द्रसुतो जगाम
महाश्रमे पुण्ययुतो महर्षे॥९०॥

हे महर्षि प्राचीन काल में इस प्रकार धुन्धु को जीतने के लिये विष्णु ने वामन तथा त्रिविक्रम का रूप धारण किया था। वह पुण्यात्मा दैत्येन्द्र पुत्र प्रह्लाद उसी आश्रम में गया।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे
धुन्धुपराजयो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

(पुरूरवा का उपाख्यान)

पुलस्त्य उवाच

कालिन्दीसलिले स्नात्वा पूजयित्वा त्रिविक्रमम्।
उपोष्य रजनीमेकां लिङ्गभेदं गिरिं ययौ॥१॥
तत्र स्नात्वा च विमले भव दृष्ट्वा भक्तितः।
उपोष्य रजनीमेकां तीर्थं केदारमाव्रजत॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— प्रह्लाद नेन कालिन्दी के जल में स्नान करके त्रिविक्रम की पूजा की तथा एक रात

उपवास करके लिंगभेद पर्वत को चले गए। वहाँ भी निर्मल जल में स्नान करके भक्तिपूर्वक शिव का दर्शन करके तथा एक रात उपवास करके वह केदारतीर्थ को चले गए।

तत्र स्नात्वाऽर्च्य चेशानं माधवं चाप्यभेदतः।
उपित्वा वासरान्सप्त कुब्जाम्रं प्रजगाम ह॥ ३॥

वहाँ स्नान करके तथा शिव और विष्णु की अभेद बुद्धि से अर्चना की तथा सात दिनों तक उपवास करके वह कुब्जाम्र में चले गए।

ततः सुतीर्थे स्नात्वा च सोपवासी जितेन्द्रियः।
हृषीकेशं समभ्यर्च्य ययौ बदरिकाश्रमम्॥ ४॥

वहाँ सुतीर्थ में स्नान करके वह जितेन्द्रिय उपवासी हृषीकेश की अभ्यर्चना करके बदरिकाश्रम में चले गए।

तत्रोष्य नारायणमर्च्य भक्त्या
स्नात्वाऽथ विद्वान्स सरस्वतीजले।
वराहतीर्थे गरुडासनं स
दृष्ट्वाऽथ संपूज्य सुभक्तिमांश्च॥ ५॥

भद्रकर्णे ततो गत्वा जयेशं शशिशेखरम्।
दृष्ट्वा संपूज्य च शिवं विपाशामभितो ययौ॥ ६॥

तदनन्तर उस भक्तियुक्त विद्वान् ने वहाँ निवास करके नारायण की भक्तिपूर्वक अर्चना की, सरस्वती के जल में स्नान किया, वराहतीर्थ में गरुड़ासन विष्णु का दर्शन और पूजन किया, तदनन्तर भद्रकर्ण में जाकर जयेश शशिशेखर शिव का दर्शन और पूजन किया और विपाशा की ओर प्रस्थान किया।

तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य देवदेवं द्विजप्रियम्।
उपवासी इरावत्यां ददर्श परमेश्वरम्॥ ७॥

यमाराध्य द्विजश्रेष्ठ शाकले वै पुरूरवाः।
समवाप परं रूपमैश्वर्यं च सुदुर्लभम्॥ ८॥

विपाशा में स्नान करके द्विजप्रिय देवाधिदेव की समभ्यर्चना करके उपवास करते हुये उन्होंने इरावती में परमेश्वर का दर्शन किया। हे द्विजश्रेष्ठ! जिनकी अराधना करके शाकल में पुरुरवा ने सुदुर्लभ रूप और ऐश्वर्य को प्राप्त किया था, उन्होंने वहाँ उस परमेश्वर का दर्शन किया।

कुष्ठरोगाभिभूतश्च यं समाराध्य वै भृगुः।
आरोग्यमतुलं प्राप संतानमपि चाक्षयम्॥ ९॥

जिनकी आराधना कर कुष्ठरोगाभिभूत भृगु ने अतुलनीय आरोग्य तथा अक्षय संतति को प्राप्त किया था।

नारद उवाच

कथं पुरूरवा विष्णुमाराध्य द्विजसत्तम।
विरूपत्वं समुत्सृज्य रूपं प्राप श्रिया सह॥ १०॥

नारद ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! विष्णु की आराधना करके पुरुरवा ने किस प्रकार अपने कुरूपत्व से मुक्ति तथा श्रीयुक्त रूप को प्राप्त किया?

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
पूर्वं त्रेतायुगस्यादौ यथावृत्तं तपोधन॥ ११॥

मद्रदेश इति ख्यातो देशो वै ब्राह्मणः सुत।
शाकलं नाम नगरं ख्यातं स्थानीयमुत्तमम्॥ १२॥

पुलस्त्य ने कहा— हे तपोधनी! तुम इस पापनाशक वृत्तांत को सुनो, जो प्राचीनकाल में त्रेतायुग के प्रारम्भ में घटित हुआ था। मैं बताता हूँ। हे ब्राह्मणपुत्र! भद्रदेश नाम से प्रसिद्ध एक देश था जिसमें 'शाकल' नाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ नगर था।

तस्मिन्विपणिवृत्तिस्थः सुधर्माख्योऽभवद्वणिक्।
धनाढ्यो गुणवान्भोगी नानाशास्त्रविशारदः॥ १३॥

उसमें व्यापारवृत्ति वाला 'सुधर्म' नामक एक वणिक् हुआ करता था। वह अत्यंत धनवान् गुणवान्, नानाशास्त्रविशारद तथा भोगपरायण था।

स त्वेकदा निजाद् राष्ट्रात् सुराष्ट्रं गन्तुमुद्यतः।
सार्थेन महता युक्तो नानाविपणिपण्यवान्॥ १४॥

एक बार वह व्यापार की विविध वस्तुओं तथा बहुत सी धनसंपत्ति के साथ अपने राष्ट्र से सुराष्ट्र को जाने के लिये तैयार हुआ।

गच्छतः पथि तस्याथ मरुभूमौ कलिप्रिय।
अभवद् दस्युतो रात्रौ स्कन्दोऽतिदुःसहः॥ १५॥

हे नारद! रास्ते में जब वह एक मरुस्थल से निकल रहा था तो रात्रि में दस्युओं ने उस पर भयंकर आक्रमण कर दिया।

ततः स हतसर्वस्वो वणिग्दुःखसमन्वितः।
असहायो मरौ तस्मिंश्चचारोन्मत्तवद्वशी॥ १६॥

तदनन्तर समस्त धनसंपत्ति से रहित अतएव अत्यंत दुःखी एवं असहाय हुआ वह व्यापारी उस मरुभूमि में पागलों के समान घूमने लगा।

चरता तदरण्यं वै दुःखाक्रान्तेन नारद।
आत्मा इव शमीवृक्षो मरावासादितः शुभः॥ १७॥

हे नारद! जंगल में दुःख से आक्रान्त होकर घूमते हुए वह मरुभूमि में एक शमीवृक्ष के पास पहुँचा जो उसके समान ही शुभ था।

तं मृगैः पक्षिभिश्चैव हीनं दृष्ट्वा शमीतरुम्।
श्रान्तः क्षुत्तृट्परीतात्मा तस्याधः समुपाविशत्॥ १८॥

उस पशु-पक्षियों से रहित शमीवृक्ष को देखकर परिश्रान्त, भूख और प्यास से व्याकुल वह उसके नीचे बैठ गया।

सुप्तश्चापि सुविश्रान्तो मध्याह्ने पुनरुत्थितः।
समपश्यदथायान्तं प्रेतं प्रेतशतैर्वृतम्॥ १९॥

अत्यंत थका होने के कारण वह सो गया। वह जब पुनः दोपहर के समय उठा तो उसने सैकड़ों प्रेतों से आवृत वहाँ आए हुए एक प्रेत को देखा।

उह्यमानमथान्येन प्रेतेन प्रेतनायकम्।
पिण्डाशिभिश्च पुरतो धावद्भी रूक्षविग्रहैः॥ २०॥

वह प्रतनायक एक अन्य प्रेत के द्वारा ढोया जा रहा था तथा रुक्ष शरीर वाले पिण्डाशनी प्रेत उसके आगे भाग रहे थे।

अथाजगाम प्रेतोऽसौ पर्यटित्वा वनानि च।
उपगाम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः॥ २१॥

वह प्रेत समस्त जंगल में घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। शमीवृक्ष के नीचे पहुँचकर उसने उस वणिक्पुत्र को देखा।

स्वागतेनाभिवाद्यैनं समाभाष्य परस्परम्।
सुखोपविष्टश्छायायां पृष्ट्वा कुशलमाप्तवान्॥ २२॥

उसने स्वागतवचनों से वणिकपुत्र का अभिवादन किया, परस्पर वार्तालाप किया, तथा आराम से वृक्ष की छाया में बैठकर उसका कुशल समाचार पूछा।

ततः प्रेताधिपतिना पृष्टः स तु वणिक्सखः।
कुतं आगम्यते ब्रूहि क्व साधो वा गमिष्यसि॥ २३॥

तदनन्तर प्रेताधिपति ने उस वणिक्पुत्र से पूछा— हे साधु! बताइये, आप कहाँ से आए हैं तथा कहाँ जाएँगे?

कथं चेदं महारण्यं मृगपक्षिविवर्जितम्।
समापन्नोऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि॥ २४॥

इस पशुपक्षियों से रहित वन में आप किस प्रकार पहुँचे? हे भद्रपुरुष! मुझे सब कुछ बताइये।

एवं प्रेताधिपतिना वणिक्पृष्टः समासतः।
सर्वमाख्यातवान् ब्रह्मन् स्वेदशधनविच्युतिम्॥ २५॥

हे ब्राह्मण! इस प्रकार से प्रेताधिपति के द्वारा सब कुछ पूछे जाने पर व्यापारी ने अपने देश और धन की च्युति के विषय में उसे सब कुछ बताया।

तस्य श्रुत्वा स वृत्तान्तं तस्य दुःखेन दुःखितः।
वणिक्पुत्रं ततः प्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत्॥ २६॥

उसका वृत्तांत सुनकर उसके दुःख से दुःखी हुए उस प्रेतपाल ने वणिक् से बंधु की भाँति कहा—

एवं गतेऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
भूयोऽप्यर्था भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं तव॥ २७॥

हे सुव्रती! इस प्रकार धन चले जाने पर भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योकि यदि तुम्हारे भाग्य में शक्ति है तो धन पुनः प्राप्त हो जाएगा।

भाग्यक्षयेऽर्थाः क्षीयन्ते भवन्त्यभ्युदये पुनः।
क्षीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयो भवेत्॥ २८॥

भाग्य के क्षय से संपत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं तथा भाग्य के अभ्युदय से पुनः संपत्तियों का अभ्युदय हो जाता है। किंतु चिंता के कारण इस शरीर का नाश हो जाय तो फिर उस के पश्चात् फिर उसका अभ्युदय नहीं होता।

इत्युच्चार्य समाहूय स्वान्भृत्यान्वाक्यमब्रवीत्।
अद्यातिथिरयं पूज्यः सदैव स्वजनो मम॥ २९॥

ऐसा कहकर उसने अपने सेवकों को बुलाया और कहा— आज से यह हमारा अतिथि तथा मेरा स्वजन है!

अस्मिन्दृष्टे वणिक्पुत्रे यथा स्वजनदर्शनम्।
अस्मिन्समागते प्रेताः प्रीतिर्जाता ममातुला॥ ३०॥

इस वणिक्पुत्र को देखने पर प्रतीत होता है कि मैंने अपने स्वजन को ही देख लिया है। इसके आने से मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है।

एवं हि वदतस्तस्य मृत्पात्रं सुदृढं नवम्।
दध्योदनेन संपूर्णमाजगाम यथेप्सितम्॥ ३१॥

वह ऐसा बोल ही रहा था कि उसकी इच्छामात्र से एक नया और सुदृढ़ मिट्टी का पात्र जो दही और भात से भरा हुआ था— वहाँ आ पहुँचा।

तथा नवा च सुदृढा संपूर्णा परमाम्भसा।
वारिधानी च संप्राप्ता प्रेतानामग्रतः स्थिता॥ ३२॥

और अत्यंत उत्तम जल से भरा हुआ एक नया और सुदृढ़ घड़ा वहाँ आया और प्रेतों के सम्मुख स्थित हो गया।

तमागतां ससलिलमन्नं वीक्ष्य महामतिः।
प्राहोत्तिष्ठ वणिक्पुत्र त्वमाह्निकमुचापर॥ ३३॥

जलसहित आए हुए अन्न को देखकर उस बुद्धिमान् ने कहा— हे वणिक्पुत्र! उठो और अपनी दैनिक धार्मिक क्रिया करो।

ततस्तु वारिधान्यास्तौ सलिलेन विधानतः।
कृताह्निकावुभौ जातौ वणिक्प्रेतपतिस्तथा॥ ३४॥

तदनन्तर घड़े के जल से उन दोनों— वणिक्पुत्र तथा प्रेतराज ने अपनी दैनिक संध्या सम्पन्न की।

ततो वणिक्सुतायादौ दध्योदनमथेच्छया।
दत्त्वा तेभ्यश्च सर्वेभ्यः प्रेतेभ्यो व्यददात् ततः॥ ३५॥

उसने पहले वणिक्पुत्र को यथेच्छ दहीं-भात दिया, और तदनन्तर सब प्रेतों को दे दिया।

भुक्तवत्सु च सर्वेषु कामतोऽम्भसि सेविते।
अनन्तरं स बुभुजे प्रेतपालो वराशनम्॥ ३६॥

प्रेतों के यथातृप्ति भोजन करने तथा जल का सेवन करने पर ही उस प्रेतराज ने अन्न का ग्रहण किया।

प्रकामतृप्ते प्रेते च वारिधान्योदनं तथा।
अन्तर्धानमगादब्रह्मन्वणिक्पुत्रस्य पश्यतः॥ ३७॥

हे ब्राह्मण! प्रेत के पूर्णतया तृप्त हो जाने पर वह दही, भात एवं जल वणिक्पुत्र के देखते ही देखते अन्तर्ध्यान हो गया।

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा स मतिमान्वणिक्।
पप्रच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमना वशी॥ ३८॥

उस अद्भुत आश्चर्य को देखकर उस बुद्धिमान् वणिक् ने कौतुहलवश उस प्रेतपाल से पूछा—

अरण्ये निर्जने साधो कुतोऽन्नस्य समुद्भवः।
कुतश्च वारिधानीयं संपूर्णा परमाम्भसा॥ ३९॥

हे साधु! इस निर्जन वन में अन्न की उपलब्धि कहाँ से हुई तथा कहाँ से उत्तम जल से भरा हुआ यह घड़ा आ गया?

तथामी तव ये भृत्यास्त्वत्तस्ते वर्णतः कृशाः।
भवानपि च तेजस्वी किंचित्पुष्टवपुः शुभः॥ ४०॥
शुक्लवस्त्रपरीधानो बहूनां परिपालकः।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व को भवान्का शमी त्वियम्॥ ४१॥

आप से देखने में कुछ कृशकाय लगने वाले, आपके ये सेवक कौन हैं? इनसे कुछ पुष्टविग्रह वाले तेजस्वी शुक्लवस्त्रधारी और बहुतों के परिपालक आप स्वयं कौन हैं तथा यह शमी वृक्ष क्या हैं? यह सब मुझे बताइये।

इत्थं वणिक्सुतवचः श्रुत्वा ततोऽसौ प्रेतनायकः।
शशंस सर्वमस्याद्यं यथावृत्तं पुरातनम्॥ ४२॥

इस प्रकार वणिक्पुत्र के वचन सुनकर उस प्रेतनायक ने अपना समस्त प्राचीन वृत्तांत कह सुनाया।

अहमासं पुरा विप्र शाकले नगरोत्तमे।
सोमशर्मेति विख्यातो बहुलागर्भसंभवः॥ ४३॥

प्राचीन काल में उत्तम शाकल नगर में मैं सोमशर्मा नामक ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध था तथा बहुला के गर्भ से उत्पन्न हुआ था (मेरी माता का नाम बहुला था)।

ममास्ति च वणिक् श्रीमान्प्रातिवेश्यो महाधनः।
स तु सोमश्रवा नाम विष्णुभक्तो महायशाः॥ ४४॥

एक अत्यंत घनी श्रीमान् वणिक् मेरा पड़ोसी हुआ करता था। उसका नाम सोमश्रवा था, वह महायशस्वी विष्णु का भक्त था।

सोऽहं कदर्यो मूढात्मा धनेऽपि सति दुर्मतिः।
न ददामि द्विजातिभ्यो न चाश्नाम्यन्नमुत्तमम्॥ ४५॥

वह मैं कंजूस, मूर्ख तथा दुर्बुद्धि था। धन होते हुए भी न तो ब्राह्मणों को दान देता था और न स्वयं अच्छा भोजन करता था।

प्रमादाद्यदि भुञ्जामि दधिक्षीरघृतान्वितम्।
ततो रात्रौ नृभिर् घोरैस्ताड्यते मम विग्रहः॥ ४६॥

यदि मैं प्रमादवश कभी दधि, क्षीर अथवा घृत से युक्त भोजन खा लेता तो रात्रि में भयानक मनुष्यों के द्वारा मेरी पिटाई की जाती।

प्रातर्भवति मे घोरा मृत्युतुल्या विषूचिका।
न च कश्चिन्ममाभ्याशे तत्र तिष्ठति बान्धवः॥ ४७॥

प्रातः होते ही मुझे मृत्युतुल्य हैजा हो जाया करता था। उस समय मेरा कोई भी संबंधी मेरे पास न रहता था।

कथं कथमपि प्राणा मया सम्पतिधारिताः।
एवमेतादृशः पापी निवसाम्यतिनिर्घृणः॥ ४८॥

जिस-किसी प्रकार से मेरे प्राण बच गये। इस प्रकार पापी और निर्लज्ज होकर मैंने अपना जीवन व्यतीत किया।

सौवीरतिलपिण्याकसक्त्रुशाकादिभोजनैः।
क्षपयामि कदन्नाद्यैरात्मानं कालयापनैः॥ ४९॥

अति निम्न भोजन-- निम्न तिल, खट्टा मांड, सत्तू, कंदमूलादि तथा अन्न के द्वारा जीवन-यापन करते हुए मैं अपने आप को ताड़ित कर रहा था।

एवं तत्रासतो मह्यं महान्कालोऽभ्यगादथ।
श्रवणद्वादशी नाम मासि भाद्रपदेऽभवत्॥ ५०॥

इस प्रकार मेरे वहाँ निवास करते हुए बहुत सा समय व्यतीत हो गया। तदनन्तर भाद्रपद मास में श्रावणद्वादशी नामक पर्व आया।

ततो नागरिको लोको गतः स्नातुं हि संगमम्।
इरावत्या नड्वलाया ब्रह्मक्षत्रपुरस्सरः॥ ५१॥

तब ब्राह्मण क्षत्रिय आदि समस्त नागरिक इरावती और नड्वला के संगम पर स्नान करने के लिए गये।

प्रातिवेश्यप्रसङ्गेन तत्राप्यनुगतोऽस्म्यहम्।
कृतोपवासः शुचिमानेकादश्यां यतव्रतः॥ ५२॥

अपने पड़ोसी के साथ मैं भी वहाँ गया। वहाँ पवित्र होकर एकादशी को व्रत रखते हुए मैंने उपवास किया।

ततः संगमतोयेन वारिधानीं दृढां नवाम्।
संपूर्णां वस्तुसंवीतां छत्रोपानहसंयुताम्॥ ५३॥

मृत्पात्रमपि मिष्टस्य पूर्णं दध्योदनस्य वै।
प्रदत्तं ब्राह्मणेन्द्राय शुचये ज्ञानिधर्मिणे॥ ५४॥

तदनन्तर मैंने अनेक वस्तुओं, छाता एवं जूता सहित संगम के जल से पूर्ण नवीन एवं दृढ़ जलपात्र तथा मिष्ठात्र, दधि, एवं ओदन से पूर्ण मिट्टी का पात्र ज्ञान एवं धर्म से युक्त पवित्र श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान किया।

तदेव जीवता दत्तं मया दानं वणिक्सुत।
वर्षाणां सप्ततीनां वै नान्यद्दत्तं हि किंचन॥ ५५॥

हे वणिक्पुत्र! सत्तर वर्षों के जीवन काल में मैंने केवल यही दान दिया। अन्य और कुछ भी नहीं।

मृतः प्रेतत्वमापन्नो दत्त्वा प्रेतान्नमेव हि।
अमी चादत्तदानास्तु मदन्नेनोपजीविनः॥ ५६॥

मरने के पश्चात् मैं प्रेतत्व को प्राप्त हो गया और मुझे प्रेत-अन्न ही दिया गया। ये सब प्रेत जिन्होंने अपने जीवन-काल में कोई दान नहीं दिया, मेरे ही अन्न पर उपजीवित हैं।

एतत्ते कारणं प्रोक्तं यत्तदन्नं मयाऽम्भसा।
दत्तं तदिदमायाति मध्याह्नेऽपि दिने दिने॥ ५७॥

इस प्रकार मैंने तुम्हें बताया कि जो जल सहित अन्न मैंने दिया था वही प्रतिदिन दोपहर के समय मेरे पास आता है।

यावन्नाहं च भुञ्जामि न तावत्क्षयमेति च।
मयि भुक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत्॥ ५८॥

जब तक मैं यह भोजन नहीं खाता तब तक यह खत्म नहीं होता और मेरे खाने-पीने के पश्चात् यह अन्तर्हित हो जाता है।

यच्चातपत्रमददं सोऽयं जातः शमीतरुः।
उपानद्युगले दत्ते प्रेतो मे वाहनोऽभवत्॥ ५९॥

जो छाता मैंने दिया था यही वह शमीवृक्ष है। एक जोड़ी जूता का दान करने से यह प्रेत मुझे वाहन के रूप में मिला है।

इदं तवोक्ता धर्मज्ञ मया कीनाशताऽऽत्मनः।
श्रवणद्वादशी पुण्यं तथोक्तं पुण्यवर्धनम्॥६०॥

हे धर्मज्ञ! इस प्रकार मैंने तुम्हें अपनी कृपणता के विषय में बताया तथा पुण्यवर्धन श्रावणद्वादशी के पुण्य के विषय में भी तुम्हें बताया।

इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रोऽब्रवीद्वचः।
यन्मया तात कर्त्तव्यं तदनुज्ञातुमर्हसि॥६१॥

प्रेत के इस प्रकार कहने पर वणिक्पुत्र ने कहा— हे तात! मेरा जो कर्तव्य है वह मुझे बताइये।

ततस्य वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य नारद।
प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः॥६२॥

हे नारद! उसके उस वचन को सुनकर प्रेतपालक ने अपने भी उद्देश्य की सिद्धि हेतु कहा—

यत्त्वया तात कर्तव्यं मद्धितार्थं महामते।
कथयिष्यामि तत् सम्यक् तव श्रेयस्करं मम॥६३॥

हे बुद्धिमान् तात! मेरे कल्याण और हित के लिए जो तुम्हें करना चाहिए वह मैं तुम्हें बताऊँगा।

गयायां तीर्थजुष्टायां स्नात्वा शौचसमन्वितः।
मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्वपणं कुरु॥६४॥

तुम पुण्यशाली तीर्थ गया में स्नान करो और उससे पवित्र होकर मेरे नामका सम्यक् प्रकार से उच्चारण करके पिण्डदान करो।

तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सखे।
मुक्तस्तु सर्वदातॄणां यास्यामि सहलोकताम्॥६५॥

हे मित्र! गयातीर्थ में पिण्ड-प्रदान करने से मैं प्रेतभाव से मुक्त होकर सर्वदाताओं के लोक में चला जाऊँगा।

यथेयं द्वादशी पुण्या मासि प्रौष्ठपदे सिता।
बुधश्रवणसंयुक्ता साऽतिश्रेयस्करी स्मृता॥६६॥

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में यह पुण्यशालिनी द्वादशी बुध तथा श्रवण से युक्त होने के कारण अत्यंत कल्याणकारिणी मानी गई है।

इत्येवमुक्त्वा वणिजं प्रेतराजोऽनुगैः सह।
स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवाञ्छुचिः॥६७॥

ऐसा कहकर उस पवित्र प्रेत ने अपने अनुयायियों सहित अपने सब नाम यथाक्रम बताए।

प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो मरुमण्डलम्।
रम्येऽथ सूरसेनाख्ये देशे प्राप्तः स वै वणिक्॥६८॥

एक प्रेत के कंधे पर बिठाकर उस वणिक्पुत्र को मरुस्थल के बाहर छोड़ दिया गया तथा वह (वणिक्) सूरसेन नामक एक रमणीय प्रदेश में जा पहुँचा।

स्वकर्मधर्मयोगेन धनमुच्चावचं बहु।
उपार्जयित्वा प्रययौ गयाशीर्षमनुत्तमम्॥६९॥

अपने धर्म-कर्म की सहायता से विभिन्न प्रकार की संपत्ति का उपार्जन कर वह श्रेष्ठ तीर्थ 'गया' को चला गया।

पिण्डनिर्वपणं तत्र प्रेतानामनुपूर्वशः।
चकार स्वपितॄणां च दाया दानामनन्तरम्॥७०॥

तदनन्तर उसने प्रेतों, पितरों और संबंधियों को क्रमिक रूप से पिण्डदान दिया।

आत्मनश्च महाबुद्धिर्महाबोध्यं तिलैर्विना।
पिण्डनिर्वपणं चक्रे तथाऽन्यानपि गोत्रजान्॥७१॥

उस महाबुद्धिमान् ने अपने लिये तथा अपने कुल में उत्पन्न अन्यों के लिये तिल के बिना पिण्डदान किया।

एवं प्रदत्तेष्वथ वै पिण्डेषु प्रेतभावतः।
विमुक्तास्ते द्विजाः प्राप्य ब्रह्मलोकं ततो गताः॥७२॥

हे ब्राह्मण! इस प्रकार पिण्डदान किए जाने पर प्रेतभाव से विमुक्त होकर वह ब्रह्मलोक में चले गए।

स चापि हि वणिक्पुत्रो निजमालयमाव्रजत्।
श्रवणद्वादशीं कृत्वा कालधर्ममुपेयिवान्॥७३॥

वह वणिक्पुत्र भी अपने घर लौट आया तथा श्रावणद्वादशी को मनाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

गन्धर्वलोके सुचिरं भोगान्भुक्त्वा सुदुर्लभान्।
जन्म मानुष्यमासाद्य स बभौशाकले विराट्॥७४॥

गंधर्वलोक में अत्यंत दुर्लभ भोगों को चिरकाल तक भोगने के पश्चात् उसने मनुष्यजन्म प्राप्त किया और विराट शाकल नगर में रहने लगा।

स्वधर्मकर्मवृत्तिस्थः श्रवणद्वादशीरतः।
कालधर्ममवाप्यासौ गुह्यकावासमाश्रयत्॥७५॥

अपने धर्म-कर्म का पालन करता हुआ और

श्रावणद्वादशी का पालन करता हुआ वह कालधर्म को प्राप्त कर गुह्यकों के निवासस्थल पर पहुँचा।

तत्रोष्य सुचिरं कालं भोगान्भुक्त्वाऽथ कामतः।
मर्त्यलोकमनुप्राप्य राजन्यतनयोऽभवत्॥७६॥

वहाँ निवास करके चिरकाल तक इच्छानुसार भोगों का भोग करके, मृत्युलोक में पहुँचकर वह राजकुमार बना।

तत्रापि क्षत्रवृत्तिस्थो दानभोगरतो वशी।
गोग्रहेऽरिगणाञ्जित्वा कालधर्ममुपेयिवान्।
शक्रलोकं स सम्प्राप्य देवैः सर्वैः सुपूजितः॥७७॥

वहाँ भी वह क्षत्रियवृत्ति का पालन करते हुए दान और भोग में लगा रहा। गौओं के लिये युद्धभूमि में शत्रुओं को जीतकर वह जितेन्द्रिय एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो गया। तदनन्तर इन्द्रलोक में पहुँचकर वह समस्त देवों के द्वारा अभिनन्दित हुआ।

पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टः शाकले सोऽभवद्द्विजः।
ततो विकटरूपोऽसौ सर्वशास्त्रार्थपारगः॥७८॥

तदनन्तर पुण्यों के क्षीण हो जाने पर वह स्वर्ग से च्युत हो गया और शाकल में एक ब्राह्मण रूप में उत्पन्न हुआ। वह कुरूप होते हुए भी सर्वशास्त्रविशारद था।

व्यवाहयद्द्विजसुतां रूपेणानुपमां द्विज।
सावमेने च भर्तारं सुशीलमपि भामिनी॥७९॥
विरूपमिति मन्वानस्ततः सोऽभूत्सुदुःखितः।
ततो निर्वेदसंयुक्तो गत्वाऽऽश्रमपदं महत्॥८०॥

हे द्विज! उसने एक अनुपम सौन्दर्यशालिनी ब्राह्मण कन्या से विवाह किया। वह अभिमानिनी कुरूप मान कर अपने उस सुशील पति का भी अनादर करती थी। इस कारण वह अत्यंत दुःखी हुआ तथा दुःखी होकर आश्रम में पहुँचा।

इरावत्यास्तटे श्रीमान्रूपधारिणमासदत्।
तमाराध्य जगन्नाथं नक्षत्रपुरुषेण हि॥८१॥
सुरूपतामवाप्याग्र्यां तस्मिन्नेव च जन्मनि।
ततः प्रियोऽभूद्भार्याया भोगवांश्चाभवद्वशी।
श्रवणद्वादशीभक्तः पूर्वाभ्यासादजायत॥८२॥

श्रीमान् ने इरावती के तट पर परम सौन्दर्यवान् जगन्नाथ विष्णु की नक्षत्रपुरुष व्रत से आराधना की और फलतः उसी जन्म में परम सौन्दर्य को प्राप्त किया। तब वह अपनी पत्नी का प्रिय हो गया। फिर उसने भोगों को भोगा तथा पूर्वाभ्यास से फिर श्रावणद्वादशीभक्त हो गया।

एवं पुराऽसौ द्विजपुङ्गवस्तु
कुरूपरूपो भगवत्प्रसादात्।
अनङ्गरूपप्रतिमो बभूव
मृतश्च राजा स पुरूरवाऽभूत्॥८३॥

इस प्रकार प्राचीनकाल में वह कुरूप होने पर भी भगवत्प्रसाद से अनङ्ग के समान रूपवान हो गया। मरने के पश्चात् वह राजा पुरूरवा हुआ।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे प्रह्लादतीर्थयात्रायां पुरूरवस उपाख्यानं नाम नवसप्ततितमोऽध्यायः॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

(नक्षत्रपुरुष के पूजा की विधि)

नारद उवाच

पुरूरवा द्विजश्रेष्ठ यथा देवं श्रियः पतिम्।
नक्षत्रपुरुषाख्येन आराधयत तद्वद॥१॥

नारद ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ! पुरूरवा ने जिस प्रकार नक्षत्रपुरुष नामक व्रत से श्रीपतिदेव विष्णु की आराधना की उसके विषय में कहिये।

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि नक्षत्रपुरुषव्रतम्।
नक्षत्राङ्गानि देवस्य यानि यानीह नारद॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— हे नारद! सुनो! नक्षत्रपुरुषव्रत तथा देव के जो-जो नक्षत्राङ्ग हैं, उनके विषय में मैं तुम्हें बताता हूँ।

मूलर्क्षं चरणौ विष्णोर्जङ्घे द्वे रोहिणी स्मृते।
द्वे जानुनी तथाऽश्विन्यौ संस्थिते रूपधारिणः॥३॥

मूल नक्षत्र भगवान् विष्णु के दोनों चरण, रोहिणी दोनों जङ्घा एवं अश्विनी दोनों जानुओं का रूप धारण कर

स्थित है।

आषाढे द्वे द्वयं चोर्वोर्गुह्यस्थं फाल्गुनीद्वयम्।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः॥४॥

पूर्वाषाढ एवं उत्तराषाढ नामक दो नक्षत्र वासुदेव के दोनों ऊरु में, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी नामक दोनों नक्षत्र गुह्य प्रदेश में एवं कृत्तिका नक्षत्र कटि में स्थित है।

प्रौष्ठपद्याद्वयं पार्श्वे कुक्षिभ्यां रेवती स्थिता
ऊरःसंस्था त्वनुराधा श्रनिष्ठा पृष्ठसंस्थिता॥५॥

दोनों भाद्रपद पार्श्व में, रेवती उदर में, अनुराधा उरःस्थल में तथा श्रविष्ठा पृष्ठस्थल में प्रतिष्ठित है।

विशाखा भुजयोर्हस्तः करद्वयमुदाहृतम्।
पुनर्वसुरथोङ्गुल्यो नखाः सार्पं तथोच्यते॥६॥

विशाखा दोनों भुजाओं में, हस्त नक्षत्र हाथों में; पुनर्वसु उनकी अङ्गुलियों में तथा आश्लेषा नक्षत्र उनके नाखूनों में प्रतिष्ठित है।

ग्रीवास्थिता तथा ज्येष्ठा श्रवणं कर्णयोः स्थितम्।
मुखसंस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्ताः प्रकीर्तिताः॥७॥

ज्येष्ठा नक्षत्र ग्रीवा में, श्रवण नक्षत्र कानों में, पुष्य नक्षत्र मुख में तथा स्वाति नक्षत्र दाँतों में प्रतिष्ठित माना गया है।

हनू द्वे वारुणश्चोक्तो नासा पैत्र उदाहृतः।
मृगशीर्ष नयनयो रूपधारिणि तिष्ठति॥८॥

दोनों वरुण हनुप्रदेश में, पितृ (माघ) नक्षत्र नासिका में तथा मृगशिरा नक्षत्र रूप धारण करके नयनों में स्थित है।

चित्रा चैव ललाटे तु भरणी तु तथा शिरः।
शिरोरुहस्था चैवार्द्रा नक्षत्राङ्गमिदं हरेः॥९॥

चित्रा नक्षत्र ललाट पर, भरणी नक्षत्र उनके शीर्ष पर तथा आर्द्रा नक्षत्र उनके केशों में स्थित माना गया है। ये हरि के नक्षत्रांग माने गए हैं।

विधानं संप्रवक्ष्यामि यथान्यायेन नारद।
संपूजितो हरिः कामान् विदधाति यथेप्सिनान्॥१०॥

हे नारद! मैं समस्त विधिविधान के विषय में भली-भाँति तुम्हें बताऊँगा जिससे संपूजित हरि अभीप्सित कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

चैत्रमासे सिताष्टम्यां यदा मूलगतः शशी।
तदा तु भगवत्पादौ पूजयेत् तु विधानतः॥
नक्षत्रसन्निधौ दद्याद्विप्रेन्द्राय च भोजनम्॥११॥

चैत्रमास की शुक्लपक्ष की अष्टमी को जब चन्द्रमा मूल नक्षत्र में होता है, तब विधानपूर्वक भगवच्चरणों का पूजन करना चाहिए। तदनन्तर नक्षत्र की सन्निधि में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

जानुनी चाश्विनीयोगे पूजयेदथ भक्तितः।
दोहदे च हविष्यान्नं पूर्ववद् द्विजभोजनम्॥१२॥

जब चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र में स्थित हो, तब घुटनों का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए तथा ब्राह्मण को उत्तम भोजन को यथातृप्ति पूर्ववत् दान करना चाहिए।

आषाढाभ्यां तथा द्वाभ्यां द्वावूरू पूजयेद् बुधः।
सलिलं शिशिरं तत्र दोहदे च प्रकीर्तितम्॥१३॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को दोनों आषाढ़ों में दोनों जंघाओं की पूजा करनी चाहिए तथा शीतल जल का यथातृप्ति दान करना चाहिए।

फाल्गुनीद्वितये गुह्यं पूजनीयं विचक्षणैः।
दोहदे च पयो गव्यं देयं च द्विजभोजनम्॥१४॥

बुद्धिमानों को दोनों फाल्गुनी में विष्णु के गुह्य स्थान की पूजा करनी चाहिए, तथा ब्राह्मण को गाय के दूध तथा भोजन से तृप्त करना चाहिए।

कृत्तिकासु कटिः पूज्या सोपवासो जितेन्द्रियः।
दोहदं च विभोर्देयं सुगन्धं कुसुमोदकम्॥१५॥

कृत्तिकाओं में जितेन्द्रिय व्यक्ति को उपवास करते हुए विष्णु की कटि का पूजन करना चाहिए तथा सुगंधित कुसुम और जल का यथातृप्ति दान करना चाहिए।

पार्श्वौ भाद्रपदायुग्मे पूजयित्वा विधानतः।
गुडं सलेयकं दद्याद्दोहदं देवकीर्तितम्॥१६॥

दोनों भाद्रपदों में देव के पार्श्वों का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए तथा देव का कीर्तन करते हुए शालेयक गुड़ का यथातृप्ति दान करना चाहिए।

द्वे कुक्षी रेवतीयोगे दोहदे मुद्गमोदकाः।
अनुराधासु जठरं षष्टिकान्नं च दोहदे॥ १७॥

रेवती का योग होने पर दो कुक्षियों का पूजन तथा फली से बने लड्डू का यथातृप्ति दान करना चाहिए। अनुराधाओं के योग में जठर का पूजनकर षष्ठिकान्न का यथातृप्ति दान करना चाहिए।

श्रविष्ठायां तथा पृष्ठं शालिभक्तं च दोहदे।
भुजयुग्मं विशाखासु दोहदे परमोदनम्॥ १८॥

श्रविष्ठा में पृष्ठभाग का तथा उबले हुए चावल का यथातृप्ति दान करना चाहिए तथा विशाखाओं में पृष्ठभाग का पूजन तथा उत्तम-भात का दान यथातृप्ति करना चाहिए।

हस्ते हस्तौ तथा पूज्यौ यावकं दोहदे स्मृतम्।
पुनर्वसावङ्गुलीश्च पटोलस्तत्र दोहदे॥ १९॥

हस्त के योग में दोनों हाथ का पूजन करना चाहिये तथा जौ का यथातृप्ति दान करना चाहिए। पुनर्वसुओं में अङ्गुलियों का पूजन करना चाहिए तथा ककड़ी का यथातृप्ति दान करना चाहिए।

आश्लेषासु नखान् पूज्य दोहदे तित्तिरामिषम्।
ज्येष्ठायां पूजयेद्ग्रीवां दोहदे तिलमोदकम्॥ २०॥

आश्लेषा में नखों का पूजन करना चाहिए तथा तीतर का आमिष यथातृप्ति दान करना चाहिए। ज्येष्ठा में ग्रीवा का पूजन करना चाहिये तथा तिल के लड्डू का यथातृप्ति दान करना चाहिये।

श्रवणे श्रवणौ पूज्यौ दधिभक्तं च दोहदे।
पुष्ये मुखं पूजयेत दोहदे घृतपायसम्॥ २१॥

श्रवण के योग में दोनों श्रवणों का पूजन करना चाहिये तथा दहीभात का यथातृप्ति दान करना चाहिये। पुण्य के योग में मुख का पूजन करना चाहिये तथा घृतयुक्त पायस (खीर) का यथातृप्ति दान करना चाहिये।

स्वातियोगे च दशना दोहदे तिलशष्कुली।
दातव्या केशवप्रीत्यै ब्राह्मणस्य च भोजनम्॥ २२॥

स्वाति के योग में दाँतों का पूजन करना चाहिये तथा तिलयुक्त शष्कुली का यथातृप्ति दान करना चाहिये और विष्णु की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण को भोजन देना चाहिये।

हनू शतभिषायोगे पूजयेच्च प्रयत्नतः।
प्रियङ्गुरक्तशाल्यन्नं दोहदं मधुविद्विषः॥ २३॥

शतभिषा नक्षत्र में प्रयत्नपूर्वक भगवान् के ठुड्डी की पूजा करे एवं विष्णु को अतिप्रिय प्रियङ्गु एवं रक्तशालि अन्न का दोहद दे।

मघासु नासिका पूज्या मधु दद्याच्च दोहदे।
मृगोत्तमाङ्गे नयने मृगमांसं च दोहदे॥ २४॥

मघाओं में नासिका का पूजन करना चाहिये तथा मधु का यथातृप्ति दान करना चाहिये। मृगशिरा के योग में दोनों नेत्रों का पूजन कर मृग-मांस का यथातृप्ति दान करना चाहिये।

चित्रायोगे ललाटं च दोहदे चारुभोजनम्।
भरणीषु शिरः पूज्यं चारु भक्तं च दोहदे॥ २५॥

चित्रा के योग में ललाट का पूजन करना चाहिये तथा स्वादिष्ट भोजन का यथातृप्ति दान करना चाहिये। भरणी के योग में सिर का पूजन करना चाहिये तथा स्वादिष्ट भात का यथातृप्ति करना चाहिये।

संपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायोगे शिरोरुहाः।
विप्रांश्च भोजयेद्भक्त्या दोहदे च गुडार्द्रकम्॥ २६॥

आर्द्रा के योग में विद्वानों को उनके बालों का पूजन करना चाहिये, ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये तथा गुणयुक्त अदरक का यथातृप्ति दान करना चाहिये।

नक्षत्रयोगेष्वेतेषु संपूज्य जगतः पतिम्।
पारिते दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसोश्चारुवाससी॥ २७॥

इन सब नक्षत्रों के योग में जगत्पति विष्णु का संपूजन कर उनके पारायण पर स्त्री और पुरुष के लिए सुंदर वस्त्र दक्षिणा में देने चाहिये।

छत्रोपानद्युगं श्वेतयुगं सप्तधानि काञ्चनम्।
घृतपात्रं च मतिमान् ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ २८॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को छाता, एक जोड़ी जूता, एक जोड़ी श्वेत वस्त्र, सात प्रकार के अन्न, सोना तथा घृत-पात्र ब्राह्मण को दान देना चाहिये।

प्रतिनक्षत्रयोगेन पूजनीया द्विजातयः।
नक्षत्रमय एवैष पुरुषः शाश्वतो मतः॥ २९॥

प्रत्येक नक्षत्र के योग में ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये; क्योंकि वह शाश्वत पुरुष विष्णु नक्षत्रमय ही माने गए हैं।

नक्षत्रपुरुपाख्यं हि व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
पूर्वं कृतं हि भृगुणा सर्वपातकनाशनम्॥ ३०॥

नक्षत्रपुरुप नामक व्रत समस्त व्रतों में उत्तम माना गया है। समस्त पापों का नाश करने वाले इस व्रत का पूर्वकाल में भृगु ने संपालन किया था।

अङ्गोपाङ्गानि देवर्षे पूजयित्वा जगद्गुरोः।
सुरूपाण्यभिजायन्ते प्रत्यङ्गाङ्गानि चैव हि॥ ३१॥
सप्तजन्मकृतं पापं कुलसंगागतं च यत्।
पितृमातृसमुत्थं च तत्सर्वं हन्ति केशवः॥ ३२॥

हे देवर्षि! देव विष्णु के अङ्ग-उपांगों का पूजन करके निश्चय ही समस्त अङ्ग-प्रत्यंग (इस व्रत के अनुष्ठान से) पापमुक्त हो जाते हैं। ऐसा करने से केशव उन सब पापों का नाश कर देते है जो सात जन्मों में किए गए हैं जो कुल परम्परा से प्राप्त हो गए हें अथवा जो माता-पिता के द्वारा किए गए हैं।

सर्वाणि भद्राण्याप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम्।
अनन्तां मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम्॥ ३३॥

इस व्रत के अनुष्ठान से व्यक्ति समस्त कल्याणकारी समृद्धि, उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य, मन की असीमित प्रसन्नता तथा अत्यधिक शोभायमान सौन्दर्य को प्राप्त करता है।

वाङ्माधुर्यं तथा कान्तिं यचान्यदभिवाञ्छितम्।
ददाति नक्षत्रपुमान्पूजितस्तु जनार्दनः॥ ३४॥

वाणी की मधुरता, कान्ति तथा जो भी अभिवाञ्छित वस्तु है वह सभी अभिपूजित नक्षत्रपुरुष विष्णु प्रदान करते हैं।

उपोष्य सम्यगेतेषु क्रमेणर्क्षेषु नारद।
अरुन्धती महाभागा ख्यातिमग्र्यां जगाम ह॥ ३५॥

हे नारद! चन्द्रमा के योग में उपवास रखकर क्रमशः इन समस्त नक्षत्रों की भली-भाँति पूजा करके परम सौभाग्यवती अरुन्धती ने श्रेष्ठ ख्याति को प्राप्त किया था।

आदित्यस्तनयार्थाय नक्षत्राङ्गं जनार्दनम्।
संपूजयित्वा गोविन्दं रेवन्तं पुत्रमाप्तवान्॥ ३६॥

पुत्र के उद्देश्य से नक्षत्राङ्ग जनार्दन की पूजा करके आदित्य ने रेवत के रूप में प्राप्त किया।

रम्भारूपमवापांग्र्य वाङ्माधुर्यं च मेनका।
कान्तिं विधुरवापाग्र्यां राज्यं राजा पुरूरवाः॥ ३७॥

रम्भा ने अद्वितीय सौन्दर्य को प्राप्त किया तथा मेनका ने वाणी के माधुर्य को। चन्द्रमा ने श्रेष्ठ कांति को तथा पुरूरवा ने राज्य को प्राप्त किया।

एवं विधानतो ब्रह्मन्नक्षत्राङ्गो जनार्दनः।
पूजितो रूपधारी यैस्तैः प्राप्ता तु सुकामिता॥ ३८॥

हे ब्राह्मण! इस प्रकार नक्षत्राङ्ग स्वरूपधारी जनार्दन की विधिपूर्वक जो पूजा करते हैं वे सब अपनी कामनाओं को प्राप्त कर लेते हैं।

एतत् तवोक्त परमं पवित्रं
धन्यं यशस्यं शुभरूपदायि।
नक्षत्रपुंसः परमं विधानं
शृणुष्व पुण्यामिह तीर्थयात्राम्॥ ३९॥

इस प्रकार धनदायक यशदायक तथा शुभरूप को देने वाले परमपवित्र नक्षत्र-पुरुष के परमविधान के बारे में मैंने तुम्हें बताया। अब पुण्यदायक तीर्थयात्रा के विषय में सुनो!

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे प्रह्लादतीर्थयात्रायां नक्षत्रपुरुषो नामाशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

(जलोद्भव का वध)

पुलस्त्य उवाच

इरावतीमनुप्राप्य पुण्यां तामृषिकन्यकाम्।
स्नात्वा संपूजयामास चैत्राष्टम्यां जनार्दनम्॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— उन्होंने चैत्र मास की अष्टमी को ऋषिकन्या पुण्यशाली इरावती पहुँचकर स्नान करके जनार्दन की पूजा की।

नक्षत्रपुरुषं चीर्त्वा व्रतं पुण्यप्रदं शुचि।
जगाम स कुरुक्षेत्रं प्रह्लादो दानवेश्वरः॥ २॥

तदनन्तर पुण्यप्रदायक नक्षत्रपुरुष का अनुष्ठान करके वह पवित्र दानवेश्वर प्रह्लाद कुरुक्षेत्र को चले गए।

ऐरावतेन मन्त्रेण चक्रतीर्थं सुदर्शनम्।
उपामन्त्र्य ततः सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने॥ ३॥

तदनन्तर, हे मुनि! ऐरावत मंत्र से सुदर्शन चक्रतीर्थ उपमंत्रणा कर वेदोक्तविधि से वहाँ उन्होंने स्नान किया।

उपोष्य क्षणदां भक्त्या पूजयित्वा कुरुध्वजम्।
कृतशौचो जगामाथ द्रष्टुं पुरुषकेसरिम्॥ ४॥

रात्रि में उपवास करके, भक्तिपूर्वक कुरुध्वज की पूजा करने के पश्चात् नित्य शौचक्रिया के पश्चात् वह नृसिंह भगवान् के दर्शन के लिए चले गए।

स्नात्वा तु देविकायां च नृसिंहं प्रतिपूज्य च।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोकर्णं दानवो ययौ॥ ५॥

उसने देविका में स्नान किया, नृसिंह भगवान् की पूजा की और वहाँ एक रात्रि उपवास करके वह दानव गोकर्ण चले गये।

तस्मिन् स्नात्वा तथा प्राचीं पूज्येशं विश्वकर्मिणम्।
प्राचीने चापरे दैत्यो द्रष्टुं कामेश्वरं ययौ॥ ६॥

उन्होंने वहाँ स्नान किया, पूर्व में पूजनीय ईश विश्वकर्मा का पूजन किया तथा दूसरी ओर पश्चिम में कामेश्वर का दर्शन करने के लिए चले गए।

तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च पूजयित्वा च शङ्करम्।
द्रष्टुं ययौ च प्रह्लादः पुण्डीरकं महाम्भसि॥ ७॥

वहाँ स्नान करके तथा शङ्कर का दर्शन एवं पूजन करके प्रह्लाद गहरे जल में पुण्डरीक का दर्शन करने के लिये चले गए।

ततः स्नात्वा च दृष्ट्वा च संतर्प्य पितृदेवताः।
पुण्डीरकं च संपूज्य उवास दिवसत्रयम्॥ ८॥

वहाँ स्नान करके, पितर देवताओं का दर्शन और तर्पण करके तथा पुण्डरीक का संपूजन कर उसने वहाँ तीन दिन तक निवास किया।

विशाखयूपे तदनु दृष्ट्वा देवं तथाजितम्।
स्नात्वा तथा कृष्णतीर्थे त्रिरात्रं न्यवसच्छुचिः॥ ९॥

इसके पश्चात् विशाखयूप में 'अजित' देव का दर्शन करके तथा कृष्णातीर्थ में स्नान करके पवित्र होकर उसने वहाँ तीन रातों तक निवास किया।

ततो हंसपदे हंसं दृष्ट्वा संपूज्य चेश्वरम्।
जगामासौ पयोष्ण्यामखण्डं द्रष्टुमीश्वरम्॥ १०॥

तदनन्तर हंसपद में हंस का दर्शन करने के पश्चात्, ईश्वर का पूजन कर वह पयोष्णी में अखण्ड ईश्वर का दर्शन करने के लिए चले गए।

स्नात्वा पयोष्ण्याः सलिले पूज्याखण्डं जगत्पतिम्।
द्रष्टुं जगाम मतिमान् वितस्तायां कुमारिलम्॥ ११॥

पयोष्णी के जल में स्नान करके और अखण्ड जगत्पति का पूजन करके वह बुद्धिमान् वितस्ता में 'कुमारिल' के दर्शन के लिए चले गए।

तत्र स्नात्वाऽर्च्य देवेशं बालखिल्यैर्मरीचिपैः।
आराध्यमानं यद्यत्र कृतं पापप्रणाशनम्॥ १२॥

वहाँ स्नान करके तथा मरीचियुक्त बालखिल्यों के द्वारा आराध्यमान देवेश की अर्चना करके उन्होंने अपने जहाँ-तहाँ किए गए पापों का नाश कर दिया गया।

यत्र सा सुरभिर्देवी स्वसुतां कपिलां शुभाम्।
देवप्रियार्थमसृजद्धितार्थं जगतस्तथा॥ १३॥

जहाँ पर उस सुरभि देवी ने अपनी पुत्री शुभा कपिला को देवहितार्थ तथा जगत् के कल्याण के लिए जन्म दिया।

तत्र देवह्रदे स्नात्वा शंभुं संपूज्य भक्तितः।
विधिवद्दधि च प्राश्य मणिमन्तं ततो ययौ॥ १४॥

वहाँ देवह्रद में स्नान तथा शंभु की भक्तिपूर्वक पूजा करके वह विधिवत् दही का प्राशन कर वहाँ से मणिमान की ओर चले गए।

तत्र तीर्थवरे स्नात्वा प्राजापत्ये महामतिः।
ददर्श शंभुं ब्रह्माणं देवेशं च प्रजापतिम्॥ १५॥

वहाँ प्रजापति ब्रह्मा के श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करके उन महाबुद्धिमान् ने देवेश शंभु तथा प्रजापति ब्रह्मा का दर्शन किया।

विधानतस्तु तान्देवान्पूजयित्वा तपोधनः।
षड्रात्रं तत्र च स्थित्वा जगाम मधुनन्दिनीम्॥ १६॥

हे तपोधनी! उन देवताओं का विधिपूर्वक पूजन तथा छह रात्रि तक वहाँ निवास करके वह मधुनंदिनी की ओर चले गए।

मधुमत्सलिले स्नात्वा देवं चक्रधरं हरम्।
शूलबाहुं च गोविन्दं ददर्श दनुपुङ्गवः॥ १७॥

मधुमती के जल में स्नान करके उन दानवश्रेष्ठ ने चक्रधारी शिव तथा शूलपाणि गोविन्द का दर्शन किया।

नारद उवाच

किमर्थं भगवाञ्शंभुर्दधाराथ सुदर्शनम्।
शूलं तथा वासुदेवो ममैतद् ब्रूहि पृच्छतः॥ १८॥

नारद ने कहा— किस कारण से भगवान् शिव ने सुदर्शन चक्र तथा भगवान् वासुदेव ने त्रिशूल धारण किया, मैं आपसे यह पूछता हूँ, कृपया मुझे यह बताइये!

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
कथयामास तां विष्णुर्भविष्यमनवे पुरा॥ १९॥

पुलस्त्य ने कहा— सुनो, यह पुरातन कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, जिस कथा को प्राचीनकाल में विष्णु ने भविष्यकालीन मनु को सुनाया था।

जलोद्भवो नाम महासुरेन्द्रो
घोरं स तप्त्वा तप उग्रवीर्यः।
आराधयामास विरञ्चिमारात्
स तस्य तुष्टो वरदो बभूव॥ २०॥

जलोद्भव नामक एक महादानवेन्द्र था। उस महाबलशाली दानव ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा की आराधना की। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे यह वरदान दिया—

देवासुराणामजयो महाहवे
निजैश्च शस्त्रैरमरैरवध्यः।
ब्रह्मर्षिशापैश्च निरीप्सितार्थो
जले च वह्नौ स्वगुणोपहर्त्ता॥ २१॥

महान् युद्ध में तुम देवों और असुरों के द्वारा अजेय होओगे; देवतागण अपने शस्त्रों से तुम्हारा वध नहीं कर पायेंगे। ब्राह्मण तथा ऋषियों का शाप भी तुम पर फलरहित होगा; तथा जल और अग्नि में तुम उनके गुणों के अपहर्त्ता होओगे (तुम पर जल और अग्नि भी निष्फल होंगे)।

एवंप्रभावो दनुपुङ्गवोऽसौ
देवान्महर्षीन्नृपतीन्समग्रान्।
आबाधमानो विचचार भूम्यां
सर्वाः क्रियाः नाशयदुग्रमूर्तिः॥ २२॥

इस प्रकार से प्राप्त वरदान की शक्ति से युक्त वह भयंकर आकृति वाला दानवश्रेष्ठ देवताओं, महर्षियों तथा समस्त राजाओं को परेशान करता हुआ भूमि पर घूमने लगा तथा समस्त धार्मिक क्रियाओं का नाश करने लगा।

ततोऽमरा भूमिभवाः सभूपाः
जग्मुः शरण्यं हरिमीशितारम्।
तैश्चापि सार्धं भगवाञ्जगाम
हिमालयं यत्र हरस्त्रिणेत्रः॥ २३॥

तदनन्तर देवता तथा राजासहित समस्त मनुष्य अभिवंदनीय हरि की शरण में गए। उन सबके साथ भगवान् विष्णु हिमालय पर गए जहाँ त्र्यम्बक शिव विद्यमान थे।

संमन्त्र्य देवर्षिहितं च कार्यं
मतिं च कृत्वा निधनाय शत्रोः।
निजायुधानां च विपर्ययं तौ
देवाधिपौ चक्रतुरुग्रकर्मिणौ॥ २४॥

उन दोनों उग्रकर्मी देवाधिपों ने देवताओं और ऋषियों के हित के लिए अभिमंत्रणा करके शत्रु के निधन पर विचार कर अपने आयुधों का विपर्यय किया।

ततश्चासौ दानवो विष्णुशर्वौ
समायातौ तज्जिघांसु सुरेशौ।
मत्वाऽजेयौ शत्रुभिर्घोररूपौ
भयात्तोये निम्नगायां विवेश॥ २५॥

तदनन्तर मारने की इच्छा से आ रहे देवाधिप शङ्कर एवं विष्णु को देखकर तथा उन भयङ्कर मूर्तिधारियों को शत्रुओं से अजेय जानकर वह दानव भय से नदी के जल में प्रविष्ट हो गया।

ज्ञात्वा प्रविष्टं त्रिदिवेन्द्रशत्रुं
नदीं विशालां मधुमत्सुपुण्याम्।
द्वयोः सशस्त्रौ तटयोर्हरीशौ
प्रच्छन्नमूर्ती सहसा बभूवतुः॥२६॥

वह देवताओं का शत्रु विशाल पुण्यशाली मधुमती नदी में छिप गया है, यह जानकर विष्णु और शिव दोनों अपने-अपने आयुधों सहित नदी के तट पर छिप गए।

जलोद्भवश्चापि जलं विमुच्य
ज्ञात्वा गतौ शङ्करवासुदेवौ।
दिशः समीक्ष्य भयकातराक्षो
दुर्गं हिमाद्रिं च तदारुरोह॥२९॥

शङ्कर और वासुदेव को गया हुआ जानकर वह जलोद्भव भी जल को छोड़कर (नदी से बाहर निकल कर) भय से कातर आंखों से चारों ओर देखते हुए दुर्गम हिमालय पर्वत पर चढ़ गया।

महीध्रशृङ्गोपरि विष्णुशंभू
चञ्चूर्यमाणं स्वरिपुं च दृष्ट्वा।
वेगादुभौ दुद्रुवतुः सशस्त्रौ
विष्णुस्त्रिशूली गिरिशश्च चक्री॥२८॥

तब चक्रधारी विष्णु और त्रिशूलधारी शिव ने हिमालय के शिखर पर निर्बाधित रूप से घूमते हुए अपने शत्रु को देखकर तेजी से उसका पीछा किया।

ताभ्यां स दृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यां
चक्रेण शूलेन च भिन्नदेहः।
पपात शैलात्तपनीयवर्णो
यथाऽन्तरिक्षादि विमला च तारा॥२९॥

उन दोनों श्रेष्ठ देवों ने उसे देखा और चक्र और त्रिशूल से उसका शरीर भेद डाला। वह स्वर्णिम वर्ण वाला जलोद्भव पर्वत से उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार अन्तरिक्ष से चमकता हुआ तारा गिरता है।

एवं त्रिशूलं च दधार विष्णु-
श्चक्रं त्रिनेत्रोऽप्यरिसूदनार्थम्।
यत्राघहन्त्री ह्यभवद् वितस्ता
हराङ्घ्रिपाताच्छिशिराचलात्तु॥३०॥

इस प्रकार शत्रु के नाश के लिए विष्णु ने त्रिशूल और शिव ने चक्र धारण किया। शिव के चरण-प्रहार से हिमालय से निकली वितस्ता अघहन्त्री (पापनाशिनी) हो गई।

तत्प्राप्य तीर्थं त्रिदशाधिपाभ्या
पूजां च कृत्वा हरिशङ्कराभ्याम्।
उपोष्य भक्त्या हिमवन्तमागाद्
द्रष्टुं गिरीशं शिवविष्णुगुप्तम्॥३१॥

उन दोनों देवेशों के तीर्थ में पहुँचकर तथा हरि और शिव की पूजा करके, भक्तिपूर्वक उपवास करके प्रह्लाद शिव और विष्णु के द्वारा अभिरक्षित गिरीश का दर्शन करने के लिए हिमालय की ओर चले आए।

तं समभ्यर्च्य विधिवद्दत्त्वा दानं द्विजातिषु।
वितस्ते हिमवत्पादे भृगुतुङ्गं जगाम सः॥३२॥

यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः
प्रादाद्रथाङ्गप्रवरायुधं वै।
येन प्रचिच्छेद त्रिधैव शङ्करो
जिज्ञासमानोऽस्त्रबलं महात्मा॥३३॥

उनकी विधिवत् अभ्यर्चना करके ब्राह्मणों को दान देकर वह हिमालय की तलहटी में विस्तृत भृगुतुंग की ओर चले गए। जहाँ स्वामी शिव ने श्रेष्ठ देव विष्णु को श्रेष्ठ आयुधचक्र प्रदान किया था तथा महात्मा विष्णु ने जिस आयुध की शक्ति की जाँच करते हुए शङ्कर को तीन भागों में काट डाला था।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे प्रह्लादतीर्थयात्रायां जलोद्भववधो नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

(श्रीदामाचरित्र)

नारद उवाच

भगवँल्लोकनाथाय विष्णवे विषमेक्षणः।
किमर्थमायुधं चक्रं दत्तवाँल्लोकपूजितम्॥१॥

नारद ने कहा— हे भगवन्! विषमेक्षण शिव ने लोकनाथ विष्णु को लोकपूजित आयुध चक्र क्यों प्रदान किया?

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
चक्रप्रदानसंबद्धां शिवमाहात्म्यवर्धिनीम्॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा— चक्रप्रदान से संबद्ध तथा शिव के माहात्म्य को बढ़ाने वाली इस प्राचीन कथा को सावधान होकर सुनो!

आसीद्द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः।
गृहाश्रमी महाभागो वीतमन्युरिति स्मृतः॥ ३॥

वेद-वेदांगों में पारंगत एक महाभाग्यशाली गृहस्थ ब्राह्मण था। वह वीतमन्यु नाम से जाना जाता था।

तस्यात्रेयी महाभागा भार्याऽऽसीच्छीलसंमता।
पतिव्रता पतिप्राणा धमशीलेति विश्रुता॥ ४॥

उसकी आत्रेयी नामक पत्नी थी, जो महासौभाग्यशालिनी, शीलवती, पतिव्रता, पतिपरायणा तथा धर्मशालिनी मानी जाती थी।

तस्यामस्य महर्षेस्तु ऋतुकालाभिगामिनः।
संबभूव सुतः श्रीमान् उपमन्युरिति स्मृतः॥ ५॥

ऋतुकाल में अभिगमन करने वाले उस महर्षि का उस आत्रेयी से एक श्रीमान् पुत्र उत्पन्न हुआ जो उपमन्यु नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तं माता मुनिशार्दूलं शालिपिष्टरसेन वै।
पोषयामास वदती क्षीरमेतत् सुदुर्गता॥ ६॥

हे मुनिशार्दूल! अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त माता पिसे हुये चावल के रस को दूध कहकर उस पुत्र का पालन करती थी।

सोऽजानानोऽथ क्षीरस्य स्वादुतां पय इत्यथ।
संभावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेऽपि हि॥ ७॥

वह चूंकि दूध का स्वाद नहीं जानता था, अतः उसने पिसे हुए चावल को ही दूध मान लिया।

स त्वेकदा समं पित्रा कुत्रिचिद्द्विजवेश्मनि।
क्षीरौदनं च बुभुजे सुस्वादु प्राणपुष्टिदम्॥ ८॥

एक बार उसने अपने पिता के साथ एक ब्राह्मण के घर कहीं पर सुस्वादु एवं पुष्टिदायक दूध-भात (खीर) का भोजन किया।

स लब्ध्वाऽनुपमं स्वादं क्षीरस्य ऋषिदारकः।
मात्रा दत्तं द्वितीयेऽह्नि नादत्ते पिष्टवारि तत्॥ ९॥

अब वह ऋषिपुत्र दूध के अनुपम स्वाद को जान गया था, अतः अगले दिन उसने माता के द्वारा दिए गए पिसे हुए चावल के पानी को ग्रहण नहीं किया।

रुदोदाथ ततो बाल्यात्पयोऽर्थी चातको यथा।
तं माता रुदती प्राह बाष्पगद्गदया गिरा॥ १०॥

वह बाल्यकाल से ही (दूध के लिए) (उसी प्रकार) रोने लगा जिस प्रकार चातक जल के लिए (रोता है)। तब रोती हुई माता ने सिसकी से काँपती हुई वाणी में उससे कहा—

उमापतौ पशुपतौ शूलधारिणि शङ्करे।
अप्रसन्ने विरूपाक्षे कुतः क्षीरेण भोजनम्॥ ११॥

त्रिशूलधारी पशुपति उमापति विरूपाक्ष शङ्कर के अप्रसन्न होने पर दूधयुक्त भोजन का मिलना कहाँ संभव हैं?

यदीच्छसि पयो भोक्तुं सद्यः पुष्टिकरं सुत।
तदाराधय देवेशं विरूपाक्षं त्रिशूलिनम्॥ १२॥

हे पुत्र! यदि तुम शीघ्र पुष्टिकर क्षीर का भोजन करना चाहते हो तो त्रिशूलधारी देवेश विरूपाक्ष की आराधना करो!

तस्मिंस्तुष्टे जगद्धाम्नि सर्वकल्याणदायिनि।
प्राप्यतेऽमृतपायित्वं किं पुनः क्षीरभोजनम्॥ १३॥

जगत् के धाम तथा समस्त कल्याण के प्रदाता शङ्कर के संतुष्ट होने पर व्यक्ति अमृतपान भी प्राप्त कर सकता है; फिर दूध-भोजन की तो बात ही क्या?

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युःसुतोऽब्रवीत्।
कोऽयं विरूपाक्ष इति त्वयाराध्यस्तु कीर्तितः॥ १४॥

अपनी माता के वचन को सुनकर वीतमन्यु का पुत्र (उपमन्यु) बोला— यह विरूपाक्ष कौन है जिसे आपने आराधनीय बताया है?

ततः सुतं धर्मशीला धर्माढ्यं वाक्यमब्रवीत्।
योऽयं विरूपाक्ष इति श्रूयतां कथयामि ते॥ १५॥

तब उस धर्मपरायणा स्त्री ने अपने पुत्र से धर्मयुक्त शब्दों में विरूपाक्ष के विषय में जो कहा वह मैं तुम से

कहता हूँ; सुनो!

आसीन्महासुरपतिः श्रीदाम इति विश्रुतः।
तेनाक्रम्य जगत्सर्वं श्रीर्नीता स्ववशं पुरा॥ १६॥

प्राचीन काल में श्रीदाम नाम से प्रसिद्ध एक महान् दानवपति था। उसने समस्त जगत् पर आक्रमण करके लक्ष्मी को अपने वश में कर लिया था।

निःश्रीकास्तु त्रयो लोकाः कृतास्तेन दुरात्मना।
श्रीवत्सं वासुदेवस्य हर्तुमैच्छन्महाबलः॥ १७॥

उस दुष्टात्मा ने तीनों लोकों को श्रीविहीन कर दिया। तब उस महाबलशाली ने वासुदेव के श्रीवत्स को छीनने की इच्छा की।

तमस्य दुष्टं भगवानभिप्रायं जनार्दनः।
ज्ञात्वा तस्य वधाकाङ्क्षी महेश्वरमुपागमत्॥ १८॥

भगवान् जनार्दन उसके दूपित अभिप्राय को जानकर उसके वध की इच्छा से महेश्वर के पास गए।

एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्योगमूर्तिधरोऽव्ययः।
तस्थौ हिमाचलप्रस्थमाश्रित्य श्लक्ष्णभूतलम्॥ १९॥

उस समय योगमुद्राधारी अविनाशी शिव समतल भूतल वाले हिमालय पर विराजमान थे।

अथाभ्येत्य जगन्नाथ सहस्त्रशिरसं विभुम्।
आराधयामास हरिः स्वयमात्मानमात्मना॥ २०॥

तदनन्तर सहस्त्रशीर्ष सर्वसमर्थ जगन्नाथ के समीप पहुँचकर हरि ने स्वयं ही अपनी आराधना की।

साग्रं वर्षसहस्त्रं तु पादाङ्गुष्ठेन तस्थिवान्।
गृणंस्तत्परमं ब्रह्म योगिज्ञेयमलक्षणम्॥ २१॥

वह केवल योगियों के द्वारा ज्ञेय, सर्वथा अलक्षण (लक्षणों से रहित) उस परम ब्रह्म की प्रशंसा करते हुए एक सहस्त्रवर्ष तक एक पैर के अङ्गूठे पर स्थित रहे।

ततः प्रीतः प्रभुः प्रादाद्विष्णवे परमं पदम्।
प्रत्यक्षं तैजसं श्रीमान् दिव्यं चक्रं सुदर्शनम्॥ २२॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर प्रभु ने विष्णु को प्रत्यक्ष तेज से युक्त श्रीमान् दिव्य सुदर्शन चक्र परम वर के रूप में प्रदान किया।

तद्दत्त्वा देवदेवाय सर्वभूतभयप्रदम्।
कालचक्रनिभं चक्रं शङ्करो विष्णुमब्रवीत्॥ २३॥

तदनन्तर समस्त प्राणियों को भयभीत करने वाले कालचक्र के सदृश भयंकर चक्र को देवाधिदेव विष्णु को देकर शिव विष्णु से बोले—

वरायुधोऽयं देवेश सर्वायुधनिबर्हणः।
सुदर्शनं द्वादशारः षण्णाभिर्द्वियुगो जवी॥ २४॥

हे देवेश! द्वादश अरों, छह नाभियों एवं दो युगों वाला वेगवान् सुदर्शन नामक यह श्रेष्ठ आयुध समस्त आयुधों का नाशक है।

आरासंस्थास्त्वमी चास्य देवा मासाश्च राशयः।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थिता ऋतवश्च षट्॥ २५॥
अग्निः सोमस्तथा मित्रो वरुणोऽथ शचीपतिः।
इन्द्राग्नी चाप्यथो विश्वे प्रजापतय एव च॥ २६॥
हनुमांश्चाथ बलवान् देवो धन्वन्तरिस्तथा।
तपश्चैव तपस्यश्च द्वादशैते प्रतिष्ठिताः।
चैत्राद्याः फाल्गुनान्ताश्च मासास्तत्र प्रतिष्ठिताः॥ २७॥

इसके अरों में देवताओं, मासों और राशियों का निवास है; इसमें फसल की रक्षा के लिए छह ऋतुएँ प्रतिष्ठित हैं; अग्नि, सोम, मित्र और वरुण, इन्द्र, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवा, प्रजापति इसमें प्रतिष्ठित हैं। बलशाली हनुमान्, धन्वन्तरि, तप और तपस्या— ये बारह तथा चैत्र से लेकर फाल्गुन तक के मास इसमें प्रतिष्ठित हैं।

त्वमेवमाधाय विभो वरायुधं
शत्रुं सुराणां जहि मा विशङ्किथाः।
अमोघ एषोऽमरराजपूजितो
धृतो मया नेत्रगतस्तपोबलात्॥ २८॥

हे सर्वसमर्थ! शङ्का न करें। इस श्रेष्ठ आयुध को धारण करके आप शत्रु का नाश करें। देवराज के द्वारा पूजित इस अमोघ चक्र को मैंने अपनी तपस्या के बल से अपने नेत्रों में धारण किया था।

इत्युक्तः शंभुना विष्णुः भवं वचनमब्रवीत्।
कथं शंभो विजानीयाममोघो मोघ एव वा॥ २९॥

शंभु के द्वारा इस प्रकार कहने पर विष्णु ने शिव से कहा— हे शंभु! मैं कैसे जानूँ कि यह अमोघ है या मोघ है?

यद्यमोघो विभो चक्रः सर्वत्राप्रतिघस्तव।
जिज्ञासार्थं तवैवेह प्रेक्षिप्ष्यामि प्रतीच्छ भोः॥ ३०॥

हे सर्वसमर्थ! यदि आपका यह चक्र अमोघ और सर्वत्र अबाधित है तो यह जानने के लिए इसे मैं आपकी ओर ही फेंकता हूँ-आप इसे रोकिए।

तद्वाक्यं वासुदेवस्य निशम्याह पिनाकधृक्।
यद्येवं प्रक्षिपस्वेति निर्विशङ्केन चेतसा॥ ३१॥

वासुदेव के इस वचन को सुनकर पिनाकधारी शिव ने कहा— यदि ऐसा है तो निःशंक चित्त से तुम इसे फेंको!

तन्महेशानवचनं श्रुत्वा विष्णुः सुदर्शनम्।
मुमोच तेजोजिज्ञासुः शङ्करं प्रति वेगवान्॥ ३२॥

सामर्थ्यशाली शिव के वचन को सुनकर विष्णु ने उसकी शक्ति को जाँचने के उद्देश्य से उस सुदर्शन चक्र को अत्यंत वेगपूर्वक शिव की ओर छोड़ा।

मुरारिकरविभ्रष्टं चक्रमभ्येत्य शूलिनम्।
त्रिधा चकार विश्वेशं यज्ञेशं यज्ञयाजकम्॥ ३३॥

मुरारि के हाथ से छोड़े गए चक्र ने त्रिशूलधारी शिव के पास पहुँचकर उन विश्वपति, यज्ञ के स्वामी और यज्ञ के याजक शिव को तीन टुकड़ों में काट डाला।

हरं हरिस्त्रिधाभूतं दृष्ट्वा कृत्तं महाभुजः।
व्रीडोपप्लुतदेहस्तु प्रणिपातपरोऽभवत्॥ ३४॥

शिव को तीन भागों में कटा हुआ देखकर महाबाहु विष्णु लज्जा से युक्त होकर नतमस्तक हो गए।

पादप्रणामावनतं वीक्ष्य दामोदरं भवः।
प्राह प्रीतिपरः श्रीमानुत्तिष्ठेति पुनः पुनः॥ ३५॥

पैरों पर झुके हुए दामोदर को देखकर भव ने अत्यंत प्रसन्न होते हुए बार-बार कहा— 'उठिये'।

प्राकृतोऽयं महाबाहो विकारश्चक्रनेमिना।
निकृत्तो न स्वभावो मे सोऽच्छेद्योऽदाह्य एव च॥ ३६॥

हे महाबाहु! यह विकार (तीन टुकड़ों में विभाजन) केवल प्राकृतिक (शारीरिक) है; चक्रनेमि के द्वारा मैं काटा नहीं गया हूँ; क्योंकि मैं स्वभाव से ही अच्छेद्य तथा अदाह्य हूँ।

तद्यदेतानि चक्रेण त्रीणि भागानि केशव।
कृत्तानि तानि पुण्यानि भविष्यन्ति न संशयः॥ ३७॥

हिरण्याक्षः स्मृतो ह्येकः सुवर्णाक्षस्तथा परः।
तृतीयो विश्वरूपाक्षस्त्रयोऽमी पुण्यदा नृणाम्॥ ३८॥

हे केशव! चक्र के द्वारा किये गये ये तीन भाग निश्चय ही पुण्यवान् होंगे; इसमें संशय नहीं है। इनमें से एक हिरण्याक्ष, दूसरा सुवर्णाक्ष और तीसरा विरूपाक्ष के रूप में जाना जायेगा। ये तीनों ही मनुष्यों के लिए पुण्यदायक होंगें।

उत्तिष्ठ गच्छस्व विभो निहन्तुममरार्दनम्।
श्रीदाम्नि निहते विष्णो नन्दयिष्यन्ति देवताः॥ ३९॥

हे सर्वसमर्थ! उठो और देवताओं के शत्रु को मारने के लिए जाओ! हे विष्णु! श्रीदाम के मरते ही समस्त देवतागण प्रसन्न हो जाएँगे।

इत्येवमुक्तो भगवान्हरेण गरुडध्वजः।
गत्वा सुरगिरिप्रस्थं श्रीदामानं ददर्श ह॥ ४०॥

शिव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भगवान् गरुड़ध्वज ने देवगिरि तट पर जाकर श्रीदाम को देखा।

तं दृष्ट्वा देवदर्पघ्नं दैत्यं देववरो हरिः।
मुमोच चक्रं वेगाढ्यं हतोऽसीति ब्रुवन्मुहुः॥ ४१॥

देवताओं के दर्पमर्दन करने वाले उस दैत्य को देखकर देववर हरि ने पुनः-पुनः 'तुम मारे गए'— कहते हुए अत्यंत वेग से उस चक्र को छोड़ा।

ततस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण
चक्रेण दैत्यस्य शिरो निकृत्तम्।
संछिन्नशीर्षो निपपात शैलाद्
वज्राहतं शैलशिरो यथैव॥ ४२॥

तब अप्रतिमशक्तिशाली उस चक्र ने दैत्य के शीर्ष को काट डाला। कटा हुए सिर वाला वह दैत्य पर्वत से उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार वज्र से आहत पर्वत-शिखर गिर पड़ता है।

तस्मिन्हते देवरिपौ मुरारि-
रीशं समाराध्य विरूपनेत्रम्।
लब्ध्वा च चक्रं प्रवरं महायुधं
जगाम देवो निलयं पयोनिधिम्॥ ४३॥

उस देवशत्रु के मारे जाने पर स्वामी मुरारि ने भगवान् विरूपनेत्र (शिव) की आराधना की और श्रेष्ठ महायुध चक्र को लेकर अपने धाम क्षीरसागर को चले गए।

सोऽयं पुत्र विरूपाक्षो देवदेवो महेश्वरः।
तमाराधय चेत्साधो क्षीरेणेच्छसि भोजनम्॥ ४४॥

हे पुत्र! यह महेश्वर विरूपाक्ष देवाधिदेव हैं। यदि तुम क्षीरयुक्त भोजन की इच्छा करते हो तो उनकी आराधना करो ।

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतो बली।
तमाराध्य विरूपाक्षं प्रातः क्षीरेण भोजनम्॥ ४५॥

माता के उस वचन को सुनकर उस बलशाली पुत्र वीतमन्यु ने उन विरूपाक्ष की आराधना की और क्षीरयुक्त भोजन प्राप्त कर लिया।

एवं तवोक्तं परमं पवित्रं
संछेदनं सर्वतनोः पुरा वै।
तत्तीर्थवर्यं स महासुरो वै
समाससादाथ सुपुण्यहेतोः॥ ४६॥

इस प्रकार शिव के उस परम पवित्र तनु के संछेदन के बारे में तुम्हें बताया गया, वे महासुर प्रह्लाद अत्यंत पुण्य की प्राप्ति के लिये उस श्रेष्ठतम तीर्थ पर पहुँचे।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे श्रीदामचरितं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद की तीर्थयात्रा)

पुलस्त्य उवाच

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं त्रिलोचनम्।
पूजयित्वा सुवर्णाक्षं नैमिषं प्रययौ ततः॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— वहाँ उसने उस तीर्थश्रेष्ठ में स्नान किया और देव त्रिलोचन का दर्शन किया। तदनन्तर सुवर्णाक्ष का पूजन करके वे नैमिष की ओर चले गए।

तत्र तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्पापहराणि च।
गोमत्याः काञ्चनाक्ष्याश्च गुरुदायाश्च मध्यतः॥ २॥

वहाँ गोमती, काञ्चनाक्षी तथा गुरुदा के मध्य तीस हजार पापनाशक तीर्थों का निवास है।

तेषु स्नात्वाऽर्च्य देवेशं पीतवाससमच्युतम्।
ऋषीनपि च संपूज्य नैमिषारण्यवासिनः॥ ३॥
देवदेवं तथेशानं संपूज्य विधिना ततः।
गयायां गोपतिं द्रष्टुं जगाम स महासुरः॥ ४॥

उनमें स्नान करके, पीतवस्त्रधारी देवेश अच्युत की अभ्यर्चना करके, नैमिषारण्यवासी ऋषियों का संपूजन करके तथा देवाधिदेव भगवान् शिव की विधिपूर्वक पूजा करके महासुर गया में गोपति के दर्शन के लिए चले गए।

तत्र ब्रह्मध्वजे स्नात्वा कृत्वा चास्य प्रदक्षिणाम्।
पिण्डनिर्वपणं पुण्यं पितॄणां स चकार ह॥ ५॥

वहाँ ब्रह्मध्वज में स्नान तथा उसकी प्रदक्षिणा करके उन्होंने पितरों का पवित्र पिण्डदानपूर्वक तर्पण किया।

उदपाने तथा स्नात्वा तत्राभ्यर्च्य पितॄन्वशी।
गदापाणिं समभ्यर्च्य गोपतिं चापि शङ्करम्॥ ६॥
इन्द्रतीर्थे तथा स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः।
महानदीजले स्नात्वा सरयूमाजगाम सः॥ ७॥

उन्होंने वहाँ उदपान में स्नान किया और पितरों की अभ्यर्चना की। उस जितेन्द्रिय गदापाणि ने तब गोपति और शङ्कर की अभ्यर्चना की। तदनन्तर इन्द्रतीर्थ में स्नान करने के पश्चात् पितृदेवताओं का संतर्पण और महानदी के जल में स्नान करके वह सरयू की ओर आ पहुँचे।

तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य गोप्रतारं कुशेशयम्।
उपोष्य रजनीमेकां विरजां नगरीं ययौ॥ ८॥

उसमें स्नानकर उन्होंने गोप्रतार में कुशेशय की अभ्यर्चना करके तथा वहाँ एक रात्रि निवास करके वे विरजा नगरी की ओर चले गए।

स्नात्वा विरजसे तीर्थे दत्त्वा पिण्डं पितॄंस्तथा।
दर्शनार्थं ययौ श्रीमान् अजितं पुरुषोत्तमम्॥ ९॥

विरजा तीर्थ में स्नान तथा पितरों का पिण्डदान करके वे श्रीमान् अजित पुरुषोत्तम के दर्शन के लिए चले गए।

तं दृष्ट्वा पुण्डारीकाक्षमक्षरं परमं शुचिः।
षड्रात्रमुष्य तत्रैव महेन्द्रं दक्षिणं ययौ॥ १०॥

पवित्रात्मा उस अक्षर पुण्डरीकाक्ष का दर्शन किया और छह रात्रि तक वहीं निवास किया। तदनन्तर वे दक्षिण में महेन्द्र की ओर चले गए।

तत्र देववरं शुभ्रमर्द्धनारीश्वरं हरम्।
दृष्ट्वार्च्य संपूज्य पितॄन्नमहेन्द्रं चोत्तरं गतः॥ ११॥

वहाँ देववर अर्धनारीश्वर शंभु का दर्शन और अर्चन तथा पितरों का संपूजन करके वे उत्तरी महेन्द्र की ओर चले गए।

तत्र देववरं शंभुं गोपालं सोमपायिनम्।
दृष्ट्वा स्नात्वा सोमतीर्थे सह्याचलमुपागतः॥ १२॥

वहाँ देववर सोमपायी गोपाल-शंभु का दर्शन करके तथा सोमतीर्थ में स्नान करके संध्याचल की ओर चले गए।

तत्र स्नात्वा महोदक्यां वैकुण्ठं चार्च्य भक्तितः।
सुरान्पितॄन् समभ्यर्च्य पारियात्रं गिरिं गतः॥ १३॥

वहाँ महोदकी में स्नान, वैकुण्ठ की भक्तिपूर्वक अर्चना तथा देवों और पितरों की अभ्यर्चना करके पारियात्र पर्वत की ओर चले गए।

तत्र स्नात्वा लाङ्गलिन्यां पूजयित्वाऽपराजितम्।
कशेरुदेशं चाभ्येत्य विश्वरूपं ददर्श सः॥ १४॥

वहाँ लाङ्गलिनी में स्नान तथा देव अपराजित की पूजा करके कशेरूदेश के समीप जाकर उन्होंने विश्वरूप का दर्शन किया।

यत्र देववरः शंभुर्गणानां तु सुपूजितः।
विश्वरूपमथात्मानं दर्शयामास योगवित्॥ १५॥

जहाँ योगेश्वर देववर शंभु ने गणों के द्वारा सुपूजित होने पर अपने विश्वरूप को दिखाया था।

तत्र मङ्कुरणिकातोये स्नात्वाऽभ्यर्च्य महेश्वरम्।
जगामद्रिं स सौगन्धिं प्रह्लादो मलयाचलम्॥ १६॥

वहाँ मकुणिका के जल में स्नान तथा महेश्वर की अभ्यर्चना करके प्रह्लाद सुगन्धियुक्त पर्वत मलयाचल की ओर चले गए।

महाह्रदे ततः स्नात्वा पूजयित्वा च शङ्करम्।
ततो जगाम योगात्मा द्रष्टुं विन्ध्ये सदाशिवम्॥ १७॥

वहाँ महाह्रद में स्नान तथा शङ्कर की पूजा करके योगात्मा विन्ध्य पर्वत पर सदाशिव के दर्शन के लिए गये।

ततो विपाशासलिले स्नात्वाऽभ्यर्च्य सदाशिवम्।
त्रिरात्रं समुपोष्याथ अवन्तीं नगरीं ययौ॥ १८॥

तदनन्तर विपाशा के जल में स्नान तथा सदाशिव की अभ्यर्चना करके उन्होंने तीन रात वहाँ निवास किया। तदन्तर उन्होंने अवन्ती नगरी की ओर प्रस्थान किया।

तत्र शिप्राजले स्नात्वा विष्णुं संपूज्य भक्तितः।
श्मशानस्थं ददर्शाथ महाकालवपुर्धरम्॥ १९॥

वहाँ क्षिप्रा के जल में स्नान तथा भक्तिपूर्वक विष्णु का अच्छी तरह पूजन करके उन्होंने श्मशानस्थित महाकालवपुर्धर शिव का दर्शन किया।

तस्मिन् हि सर्वसत्वानां तेन रूपेण शङ्करः।
तामसं रूपमास्थाय संहारं कुरुते वशी॥ २०॥

वहाँ वशी शिव तामस रूप में स्थित होकर अपने महाकाल रूप से समस्त प्राणियों का संहार करते हैं।

तत्रस्थेन सुरेशेन श्वेतकिर्नाम भूपतिः।
रक्षितस्त्वन्तकं दग्ध्वा सर्वभूतापहारिणम्॥ २१॥

वहाँ स्थित देवेश ने समस्त भूतों का अपहरण करने वाले अन्तक को भस्मीभूत करके श्वेतकि नामक राजा की रक्षा की।

तत्रातिहृष्टो वसति नित्यं शर्वः सहोमया।
वृतः प्रमथकोटीभिर्बहुभिस्त्रिदशार्चितः॥ २२॥

वहाँ देवताओं के द्वारा अभ्यर्चित तथा कोटि-कोटि प्रमथों के द्वारा अर्चित हुये अति प्रसन्न शिव उमा के साथ नित्य निवास करते हैं।

तं दृष्ट्वाऽथ महाकालं कालकालान्तकान्तकम्।
यमसंयमनं मृत्योर्मृत्युं चित्रविचित्रकम्॥ २३॥
श्मशाननिलयं शंभुं भूतनाथं जगत्पतिम्।
पूजयित्वा शूलधरं जगाम निषधान् प्रति॥ २४॥

और काल के भयानक देव के भी नाशक महाकाल यम का भी संयमन करने वाल, मृत्यु की भी मृत्यु, चित्रविचित्र, श्मशाननिवासी, शंभु, भूतनाथ जगत्पति शूलधारी शिव का दर्शन कर निषध की ओर चले गए।

तत्रामरेश्वरं देवं दृष्ट्वा संपूज्य भक्तितः।
महोदयं समभ्येत्य हयग्रीवं ददर्श सः॥ २५॥

अश्वतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा च तुरगाननम्।
श्रीधरं चैव संपूज्य पञ्चालविषयं ययौ॥ २६॥

वहाँ अमरेश्वर देव का दर्शन तथा उनका भक्तिपूर्वक संपूजन करके महोदय के समीप जाकर उन्होंने हयग्रीव का दर्शन किया। तदनन्तर अश्वतीर्थ में स्नान, तुरगानन का दर्शन तथा श्रीधर का संपूजन करके वे पंचाल देश की ओर चले गए।

तत्रेश्वरगुणैर्युक्तं पुत्रमर्थपतेरथ।
पाञ्चालिकं वशी दृष्ट्वा प्रयागं परतो ययौ॥ २७॥

वहाँ ईश्वरीय गुणों से युक्त कुबेर के पुत्र पांचालिक के दर्शन करके वे जितेन्द्रिय प्रयाग की ओर चले गए।

स्नात्वा सन्निहिते तीर्थे यामुने लोकविश्रुते।
दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम्॥ २८॥
द्वावेव भक्तितः पूज्यौ पूजयित्वा महासुरः।
माघमासमथोपोष्य ततो वाराणसीं गतः॥ २९॥

वहाँ यमुना के लोकप्रसिद्ध सन्निहित तीर्थ में स्नान, वटेश्वर रुद्र और योगशायी माधव का दर्शन तथा उन दोनों पूजनीयों का भक्तिपूर्वक पूजन करके वे महासुर वहाँ माघमास पर्यन्त निवास करके वाराणसी की ओर चले गए।

ततोऽस्यां वरणायां च तीर्थेषु च पृथक्पृथक्।
सर्वपापहराह्येषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः॥ ३०॥
प्रदक्षिणीकृत्य पुरीं पूज्याविमुक्तकेशवौ।
लोलं दिवाकरं दृष्ट्वा ततो मधुवनं ययौ॥ ३१॥

तदनन्तर असि और वरणा के पृथक् सर्व पापनाशक तीर्थों में स्नान करके तथा पितृदेवताओं का अर्चन करके, नगर की प्रदक्षिणा करके, पूजनीय अविमुक्त एवं केशव की पूजा कर तथा लोल दिवाकर का दर्शन करके मधुबन की ओर चले गए।

तत्र स्वायंभुवं देवं ददर्शासुरसत्तमः।
तमभ्यर्च्य महातेजाः पुष्करारण्यमागमत्॥ ३२॥
तेपु त्रिष्वपि तीर्थेपु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः।

असुरश्रेष्ठ ने वहाँ स्वयंभू देव का दर्शन किया। उनकी अभ्यर्चना करके वह महातेजस्वी पुष्कर वन में आ गए। फिर वहाँ उन्होंने तीनों तीर्थों में स्नान किया और पितरों तथा देवों का पूजन किया।

एतत्पवित्रं परम पुराणं प्रोक्त त्वगस्त्येन महर्षिणा च।
धन्यं यशस्य बहुपापनाशनं संकीर्तनाच्छ्रणात्संस्मृतेश्च॥

यह परम पवित्र कथा महर्षि अगस्त ने कही थी। इसका कीर्तन, श्रवण और स्मरण करने से मनुष्य भाग्यशाली एवं यशस्वी बनता हैं और उसके पापों का नाश होता हैं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे
प्रह्लादतीर्थयात्रा नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद की तीर्थयात्रा)

पुलस्त्य उवाच

गते च तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे।
कुरुक्षेत्रं समभ्यागादद्रष्टुं वैरोचनो मुने॥ १॥

पुलस्त्य ऋषि ने कहा— हे मुनि! जब दानवेश्वर प्रह्लाद तीर्थयात्रा के लिए गये, तब राजा बलि भी कुरुक्षेत्र का दर्शन के लिए चले गये।

तस्मिन्महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुङ्गवः।
शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवः॥ २॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस महान् धर्मयुक्त तीर्थ में भृगु-पुत्र शुक्राचार्य ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आमंत्रित किया।

भृगुणाऽऽमन्त्र्यमाणस्ते श्रुत्वाऽऽत्रयेसगौतमाः।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्त्वज्ञाः कुरुजाङ्गलम्॥ ३॥
उत्ताराशां प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रवीम्।
शातद्रवे जले स्नात्व विवासं प्रययुस्ततः॥ ४॥

शुक्राचार्य के आमंत्रण पर अत्रि, गौतम, कौशिक, अंगिरा आदि तत्त्वज्ञ ऋषिगण कुरुक्षेत्र जाने के उद्देश्य से उत्तर दिशा की तरफ शतद्रवी नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। वहाँ शतद्रवी नदी के जल में स्नान करके वे ऋषिगण शुक्राचार्य के आश्रम की ओर गये।

विज्ञाय तत्रास्य रतिं स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः।
ततोऽपि किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम्॥ ५॥

शुक्राचार्य का विशेष प्रेम देखकर उन्होंने वहाँ स्नान किया तथा पितृगणों की पूजा करके सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुई किरणा नदी के किनारे गये।

तस्यां स्नात्वा च देवर्षे सर्वं एव महर्षयः।

सुपुण्योदां वेगवतीं स्नात्वा जग्मुरथेश्वरीम्॥६॥

हे देवर्षि! उसके पश्चात् सभी महर्षियों ने उसमें स्नान किया, फिर पुण्यदायिनी वेगवती में स्नान किया तथा ईश्वरी की ओर चल पड़े।

देविकाया जले स्नात्वा पयोष्णायां च तापसाः।

अवतीर्णा मुने स्नातुं माधवाद्याः सुभानवीम्॥७॥

वहाँ पर देविका नदी में स्नान करके, उन्होंने पयोष्णा नदी के जल में स्नान किया और फिर माधवादि ऋषिगण सुभानवती नदी में स्नान करने के लिए गये।

ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिविम्बमथात्मनः।

अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारणम्॥८॥

हे द्विजश्रेष्ठ! वहाँ जल में डूबकी लगाते समय अपने स्वयं का प्रतिबिम्ब देखकर वे सभी आश्चर्यचकित हुए।

उन्मज्जन्तश्च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः।

ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि॥९॥

पुष्कराक्षमयोगन्धिं ब्रह्माणं चाप्यपूजयत्।

फिर बाहर निकलकर पुनः उन्होंने अपना वैसा ही प्रतिबिम्ब देखा और पुनः आश्चर्य में पड़ गए। वहाँ स्नान करके सभी ऋषिगणों ने उस नदी के समीप जाकर पुष्कराक्ष अयोगंधि ब्रह्माजी की स्तुति की।

ततो भूयः सरस्वत्यास्तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते।

कोटितीर्थे रुद्रकोटिं ददर्श वृषभध्वजम्॥१०॥

तदनन्तर पुनः सरस्वती के लोकप्रसिद्ध तीर्थ कोटितीर्थ में उन्होंने भगवान् वृषभध्वज रुद्रकोटि का दर्शन किया।

नैमिषेया द्विजवरा मागधेयाः ससैन्धवाः।

धर्मारण्याः पौष्करेया दण्डकारण्यकास्तथा॥११॥

चाम्पेया भारुकच्छेया देविकातीरगाश्च ये।

ते तत्र शङ्करं द्रष्टुं समायाता द्विजातयः॥१२॥

नैमिषारण्य, मगध, सिन्धुप्रदेश, धर्मारण्य, पुष्कर एवं दण्डकारण्य के ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा चम्पा, भारुकच्छ एवं देविका के किनारे रहने वाले ब्राह्मण शिव का दर्शन करने के लिए वहाँ आए।

कोटिसंख्यास्तपः सिद्धा हरदर्शनलालसाः।

अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं वादिनो मुने॥१३॥

तान् संक्षुब्धान् हरो दृष्ट्वा महर्षीन् दग्धकिल्बिषान्।

तेषामेवानुकम्पार्थं कोटिमूर्त्तिरभूद् भवः॥१४॥

''मैं पहले, मैं पहले'' कहते हुए शिव के दर्शनों के लिये लालायित करोड़ों तपःसिद्ध निष्पाप महर्षियों को संक्षुब्ध देखकर उन पर कृपा करके शिव कोटि रूप में प्रकट हो गए।

ततस्ते मुनयः प्रीताः सर्व एव महेश्वरम्।

संपूजयन्तस्तस्थुर्वै तीर्थं कृत्वा पृथक् पृथक्।

इत्येवं रुद्रकोटीति नाम्ना शंभुरजायत॥१५॥

तदनन्तर समस्त प्रसन्न मुनियों ने महेश्वर की पूजा करते हुए पृथक्-पृथक् तीर्थों के रूप में उनकी प्रतिष्ठा की। इस प्रकार शिव रुद्रकोटि के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

तं ददर्श महातेजाः प्रह्लादो भक्तिमान् वशी।

कोटितीर्थे ततः स्नात्वा तर्पयित्वा वसून् पितॄन्।

रुद्रकोटिं समभ्यर्च्य जगाम कुरुजाङ्गलम्॥१६॥

महातेजस्वी भक्तियुक्त तथा वशी प्रह्लाद ने उन रुद्रकोटि का दर्शन किया। तदनन्तर कोटितीर्थों में स्नान, वसुओं एवं पितरों का तर्पण तथा रुद्रकोटि की समभ्यर्चना करके वे कुरुजाङ्गल की ओर चले गए।

तत्र देववरं स्थाणुं शङ्करं पार्वतीप्रियम्।

सरस्वतीजले मग्नं ददर्श सुरपूजितम्॥१७॥

वहाँ उन्होंने सरस्वती के जल में निमग्न देवताओं के द्वारा पूजित पार्वती प्रिय शिव देववर स्थाणु का दर्शन किया।

सारस्वतेऽम्भसि स्नात्वा स्थाणुं संपूज्य भक्तितः।

स्नात्वा दशाश्वमेधे च संपूज्य च सुरान् पितॄन्॥१८॥

सहस्रलिङ्गं संपूज्य स्नात्वा कन्याहृदे शुचिः।

अभिवाद्य गुरुं शुक्रं सोमतीर्थं जगाम ह॥१९॥

सरस्वती के जल में स्नान, भक्तिपूर्वक स्थाणु की पूजा, दशाश्वमेध में स्नान, देवों व पितरों का संपूजन, कन्याहृद में स्नान, सहस्रलिंग की पूजा तथा गुरु शुक्र की अभिवन्दना करके वे सोमतीर्थ को चले गए।

तत्र स्नात्वाऽर्च्य च पितॄन् सोमं संपूज्य भक्तितः।

क्षीरिकावासमभ्येत्य स्नानं चक्रे महायशाः॥२०॥

वहाँ स्नान एवं पितरों की अर्चना तथा सोमदेव का भक्तिपूर्वक पूजन करके वे महायशस्वी क्षीरिकावास के पास पहुँचे और उसमें स्नान किया।

प्रदक्षिणीकृत्य तरुं वरुणं चार्च्य बुद्धिमान्।
भूयः कुरुध्वजं दृष्ट्वा पद्माख्यां नगरीं गतः॥ २१॥

बुद्धिमान् प्रह्लाद ने वरुण तरु की प्रदक्षिणा की तथा कुरुध्वज का पुनः दर्शन करके वे पद्म नामक नगरी को चले गए।

तत्रार्च्य मित्रावरुणौ भास्करौ लोकपूजितौ।
कुमारधारामभ्येत्य ददर्श स्वामिनं वशी॥ २२॥

वहाँ उन जितेन्द्रिय ने मित्र व वरुण और लोकाभिवन्दित भास्करों की अर्चना की तथा कुमारधारा के पास पहुँचकर स्वामी कार्तिकेय के दर्शन किए।

स्नात्वा कपिलधारायां संतर्प्यार्च्य पितॄन् सुरान्।
दृष्ट्वा स्कन्दं समभ्यर्च्य नर्मदायां जगाम ह॥ २३॥

तब कपिलधारा में स्नान, पितरों का तर्पण, देवों की अर्चना, स्कन्द का दर्शन और पूजन करके वह नर्मदा की ओर चले गए।

तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य वासुदेवं श्रियः पतिम्।
जगाम भूधरं द्रष्टुं वाराहं चक्रधारिणम्॥ २४॥

उसमें स्नान तथा श्रीपति वासुदेव की अभ्यर्चना करके वह भूधर चक्रधारी वाराह देव का दर्शन करने के लिए चले गए।

स्नात्वा कोकामुखे तीर्थे संपूज्य धरणीधरम्।
त्रिसौवर्णं महादेवमर्बुदेशं जगाम ह॥ २५॥

वहाँ कोकामुख तीर्थ में स्नान करके तथा धरणीधर की पूजा करके वे त्रिसौवर्ण महादेव अर्बुदेश चले गए।

तत्र नारीह्रदे स्नात्वा पूजयित्वा च शङ्करम्।
कालिञ्जरं समभ्येत्य नीलकण्ठं ददर्श सः॥ २६॥

वहाँ उन्होंने नारीह्रद में स्नान तथा शङ्कर की पूजा की, और कालिञ्जर के समीप आकर नीलकण्ठ का दर्शन किया।

नीलतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा ततः शिवम्।
जगाम सागरानूपे प्रभासे द्रष्टुमीश्वरम्॥ २७॥

नीलतीर्थ के जल में तथा तदनन्तर शिव की पूजा करके वह सागर के समीप प्रभास (नगर) में शिव का दर्शन करने जा पहुँचे।

स्नात्वा च संगमे नद्याः सरस्वत्यार्णवस्य च।
सोमेश्वरं लोकपतिं ददर्श स कपर्दिनम्॥ २८॥

वहाँ सरस्वती नदी और सागर के संगम में स्नान करके उन्होंने लोकपति सोमेश्वर शिव का दर्शन किया।

यो दक्षशापनिर्दग्धः क्षयी ताराधिपः शशी।
आप्यायितः शङ्करेण विष्णुना सकपर्दिना॥ २९॥
तावर्च्य देवप्रवरौ प्रजगाम महालयम्।
तत्र रुद्रं समभ्यर्च्य प्रजगामोत्तरान्कुरून्॥ ३०॥

ताराधिपति चन्द्रमा, जो दक्ष के शाप से निर्दग्ध एवं क्षीण हो गया था, जटाधारी शिव और विष्णु के द्वारा संपुष्ट किया गया। उन दोनों देवप्रवरों की अभ्यर्चना करके वह महालय की ओर चले गए तथा वहाँ रुद्र की पूजा करके वह उत्तर कुरु की ओर चले गए।

पद्मनाभं स तत्रार्च्य सप्तगोदावरं ययौ।
तत्र स्नात्वाऽऽर्च्य विश्वेशं भीमं त्रैलोक्यवन्दितम्॥ ३१

वहाँ पद्मनाभ की अर्चना करके वह सप्तगोदावरी की ओर गए। वहाँ स्नान करके उन्होंने त्रिलोकाभिनन्दित विश्वेश भीम की अर्चना की।

गत्वा दारुवने श्रीमाञ्श्रीलिङ्गं प्रददर्श ह।
तमार्च्य ब्राह्मणीं गत्वा स्नात्वाऽऽर्च्य त्रिदशेश्वरम्॥ ३२
प्लक्षावतरणं गत्वा श्रीनिवासमपूजयत्।
ततश्च कुण्डिनं गत्वा संपूज्य प्राणतृप्तिदम्॥ ३३॥
शूर्पारके चतुर्बाहुं पूजयित्वा विधानतः।
मागधारण्यमासाद्य ददर्श वसुधाधिपम्॥ ३४॥

दारुवन में जाकर उन श्रीमान् ने लिंग का दर्शन किया। उसकी अर्चना करके ब्राह्मणी में जाकर स्नान किया और त्रिदशेश्वर की अर्चना की। प्लक्षावतरण में जाकर उन्होंने श्रीनिवास की पूजा की। तदनन्तर कुण्डिन जाकर प्राणतृप्तिदायक का संपूजन तथा शूर्पारक में चतुर्भुज की विधिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर मागधारण्य में आकर उन्होंने वसुधाधिपति के दर्शन किए।

तमर्चयित्वा विश्वेशं स जगाम प्रजामुखम्।
महीतीर्थे ततः स्नात्वा वासुदेवं प्रणम्य च॥ ३५॥
शोणं संप्राप्य संपूज्य रुक्मवर्माणमीश्वरम्।
महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानथ॥ ३६॥
पूजयित्वा जगामाथ सैन्धवारण्यमुत्तमम्।
तत्रेश्वरं सुनेत्राख्यं शङ्खशूलधरं गुरुम्॥
पूजयित्वा महाबाहुः प्रजगाम त्रिविष्टपम्॥ ३७॥

विश्वेश की अर्चना करके वे प्रजामुख की ओर चले गए। तदनन्तर उन्होंने महातीर्थ में स्नान और वासुदेव को प्रणाम किया; शोण में पहुँचकर रुक्मवर्मा शिव की पूजा की; और महाकोशी में हंसाख्य महादेव की भक्तिपूर्वक पूजा की। फिर वे उत्तम सिन्धु-अरण्य की ओर चले गए। वहाँ शङ्ख और त्रिशूलधारी सुनेत्राख्य शिव की पूजा करके वह महाबाहु त्रिविष्टप की ओर चले गए।

तत्र देवं महेशानं जटाधरमिति श्रुतम्।
तं दृष्ट्वाऽऽर्च्य हरिं चासौ तीर्थं कनखलं ययौ॥ ३८॥

वहाँ देव शिव 'जटाधर' नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने उस जटाधर का दर्शन किया तथा हरि की अर्चना करके कनखल तीर्थ की ओर चले गए।

तत्रार्च्य भद्रकालीशं वीरभद्रं च दानवः।
धनाधिपं च मेघाङ्कं ययावथ गिरिव्रजम्॥ ३९॥

दानव प्रह्लाद भद्रकालीश, वीरभद्र, कुबेर तथा मेघांक का पूजन कर वहाँ से गिरिव्रज की ओर चले गए।

तत्र देवं पशुपतिं लोकनाथं महेश्वरम्।
संपूजयित्वा विधिवत्कामरूपं जगाम ह॥ ४०॥

वहाँ लोकनाथ महेश्वर पशुपति शिव की विधिवत् पूजा करके वे कामरूप की ओर चले गए।

शशिप्रभं देववरं त्रिनेत्रं
संपूजयित्वा सह वै मृडान्या।
जगाम तीर्थं प्रवरं महाख्यं
तस्मिन् महादेवमपूजयत् सः॥ ४१॥

शशिभूषण देववर त्रिनेत्र शिव की मृडानी सहित पूजा करके वह महनामक तीर्थश्रेष्ठ को गये, जहाँ उन्होंने महादेव की पूजा की।

ततस्त्रिकूटं गिरिमद्रिपुत्रं
जगाम द्रष्टुं स हि चक्रपाणिनम्।
तमीड्य भक्त्या तु गजेन्द्रमोक्षणं
जजाप जप्यं परमं पवित्रम्॥ ४२॥

वहाँ से वह चक्रपाणि का दर्शन करने के लिए अत्रिपुत्र-त्रिकूट पर्वत पर गए। उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करके उन्होंने परम पवित्र गजेन्द्रमोक्षणजप का जाप किया।

तत्रोष्य दैत्येश्वरसूनुरादरा-
न्मासत्रयं मूलफलाम्बुभक्षी।
निवेद्य विप्रप्रवरेषु काञ्चनं
जगाम घोरं स हि दण्डकं वनम्॥ ४३॥

दैत्येश्वर पुत्र प्रह्लाद ने वहाँ केवल कंदमूल का भक्षण करते हुए तीन मास अत्यंत आदरपूर्वक रहे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को स्वर्णदान करके वह अत्यंत घने दण्डक वन की ओर चले गए।

तत्र दिव्यं महाशाखं वनस्पतिवपुर्धरम्।
ददर्श पुण्डरीकाक्षं महास्वापदवारणम्॥ ४४॥

वहाँ उन्होंने भगवान् पुण्डरीकाक्ष का दर्शन किया जो भयंकर जंगली जानवरों को रोकने वाले विशाल शाखाओं वाले एक दिव्य वृक्ष का रूप धारण किए हुए स्थित थे।

तस्याधस्थात् त्रिरात्रं स महाभागवतोऽसुरः।
स्थितः स्थण्डिलशायी तु पठन्सारस्वतं स्तवम्॥ ४५॥

महाभाग्यवान् असुर उस वृक्ष के नीचे तीन रात्रि तक जमीन पर सोकर एवं सास्वत स्तव का पाठ करते हुए स्थित रहे।

तस्मात्तीर्थवरं विद्वान्सर्वपापप्रमोचनम्।
जगाम दानवो द्रष्टुं सर्वपापहरं हरिम्॥ ४६॥

वहाँ से वह विद्वान् सर्वपापप्रमोचन नामक श्रेष्ठ तीर्थ पर सर्वपापनाशक विष्णु का दर्शन करने के लिए पहुँचे।

तस्याग्रतो जजापासौ स्तवौ पापप्रणाशनौ।
यौ पुरा भगवान्प्राह क्रोडरूपी जनार्दनः॥ ४७॥

उसके सम्मुख इन्होंने दो पापनाशक स्तुतियों का जाप किया जो प्राचीन काल में काकरूपधारी भगवान् जनार्दन ने कही थीं।

तस्मादथागाद्दैत्येन्द्रः शालग्रामं महाफलम्।
यत्र संनिहितो विष्णुश्चरेषु स्थावरेषु च॥४८॥

वहाँ से वह दैत्येन्द्र महाफलदायक शालग्राम की ओर गए जहाँ विष्णु समस्त चर और अचर में प्रतिष्ठित हैं।

तत्र सर्वगतं विष्णुं मत्वा चक्रे रतिं बली।
पूजयन्भगवत्पादौ महाभागवतो मुने॥४९॥

हे मुनि! वहाँ विष्णु को सर्वव्यापी मानकर महाभाग्यवान् बलशाली दानव ने उनके चरणों में प्रेम करते हुए उनकी पूजा की।

इयं तवोक्ता मुनिसंघजुष्टा
प्रह्लादतीर्थानुगतिः सुपुण्या।
यत्कीर्तनाच्छ्रवणात्स्पर्शनाच्च
विमुक्तपापा मनुजा भवन्ति॥५०॥

मुनि-समूह के द्वारा कथित प्रह्लाद की यह अत्यधिक पुण्यशाली तीर्थयात्रा तुम्हें सुनाई गई। इसके कीर्तन, श्रवण तथा अनुभव से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे प्रह्लादतीर्थयात्रा नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद की तीर्थयात्रा)

नारद उवाच–

याञ्जप्यान्भगवद्भक्त्या प्रह्लादो दानवोऽजपत्।
गजेन्द्रमोक्षणादींस्त्वं चतुरस्तान्वदस्व मे॥१॥

नारद ने कहा—

दानव प्रह्लाद ने भगवद्भक्तिपूर्वक जो गजेन्द्रमोक्षण आदि जप किये थे, उन चारों जपों के विषय में मुझे बताइये।

पुलस्त्य उवाच–

शृणुष्व कथयिष्यामि जप्यानेतांस्तपोधन।
दुःस्वप्ननाशो भवति यैरुक्तैः संस्मृतैः श्रुतैः॥२॥

पुलस्त्य ने कहा— हे तपोधन! सुनो इन जपों के विषय में तुम्हें बताता हूँ जिनके कहने, सुनने और स्मरण करने से ही दुःस्वप्न का नाश होता है।

गजेन्द्रमोक्षणं त्वादौ शृणु त्वं तदनन्तरम्।
सारस्वतौ ततः पुण्यौ पापप्रशमनौ स्तवौ॥३॥

सबसे प्रथम गजेन्द्रमोक्षण और फिर सारस्वत— इन दो पापप्रशमन स्तुतियों के विषय में सुनो—

सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः।
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः॥४॥
क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः।
उत्थितः सागरं भित्त्वा देवर्षिगणसेवितः॥५॥
अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान्प्रस्रवणाकुलः।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणगुह्यकैः॥६॥
विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः।
वृकद्वीपगजेन्द्रैश्च वृतगात्रो विराजते॥७॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बिल्वामलकपाटलैः।
चूतनीपकदम्बैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः॥८॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च सरलार्जुनपर्पटैः।
तथाऽन्यैर्विविधैर्वृक्षैः सर्वतः समलंकृतः॥९॥
नानाधात्वङ्कितैः शृङ्गैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः।
शोभितो रुचिरप्रख्यैस्त्रिभिर्विस्तीर्णसानुभिः॥१०॥
मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातङ्गैश्च सदामदैः।
जीवञ्जीवकसंघुष्टैश्चकोरशिखिनादितैः॥११॥
तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यद्दिवाकरः।
नानापुण्यसमाकीर्णं नानागन्धादिवासितम्॥१२॥
द्वितीयं राजतं शृङ्गं सेवते यन्निशाकरः।
पाण्डुराम्बुदसङ्काशं तुषारचयसन्निभम्॥१३॥
वज्रेन्द्रनीवैडूर्यतेजोभिर्भासयन्दिशः।
तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं शृङ्गमुत्तमम्॥१४॥

सूर्य के समान द्युतिमान पर्वतराज सुमेरु का पुत्र श्रीमान् त्रिकूट नामक पर्वत है जो समस्त रत्नों से युक्त है। सागर को भेदकर उठा हुआ यह पर्वत देवर्षिगण से सेवित है। यह अप्सराओं से परिप्लुत और श्रीमान् अनेकों झरनों से युक्त है। गंधर्व, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, चारण, पन्नग, सपत्नीक विद्याधर, संयमी तपस्वी तथा वृकद्वीपी गजेन्द्र इस पर निवास करते हैं। पुन्नाग, कर्णिकार,[३१]

31. Nearium Oderum

बिल्व,[३२] आमलक, पाटल,[३३] धूत, नीप, कदम्ब, चन्दन, अगरु, चम्पक, शाल, ताल, तमाल, सरल, अर्जुन,[३४] पर्पट[३५] और अन्य भी अनेक प्रकार के वृक्षों से चारों ओर से सुशोभित है, इसकी चोटियाँ विभिन्न प्रकार की धातुओं से परिपूर्ण हैं तथा उनसे चारों ओर झरने फूट रहे हैं। तीन चमकती हुई विस्तीर्ण पर्वतमालाएँ इसकी शोभा बढ़ा रही हैं। विविध प्रकार के पशु, सिंह, शाखामृग, मृग, मदान्वित गज इस पर निवास करते हैं। यह चकोर, मोर, तीतर, की ध्वनियों से ध्वनित है। उसकी स्वर्णिम चोटी पर सूर्य शोभायमान रहता है। उस पर विभिन्न प्रकार के पुष्प बिखरे हुए रहते हैं और विभिन्न प्रकार की सुगंधियों से सुगंधित है। शिखर में यह चन्द्रमा के द्वारा अधिवसित है। यह उज्ज्वल मेघ तथा तुषारसमूह के सदृश है। हीरे जवाहरात की आभा से दिशाओं को प्रभासित करने वाले उसकी तीसरी चोटी पर ब्रह्मा का वासस्थान हैं।

न तत्कृतघ्ना: पश्यन्ति नृशंसा नैव राक्षसा:।
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो जना:॥ १५॥

कृतघ्न, दुष्ट, नास्तिक, तपस्या न करने वाले तथा पापी मनुष्य यह सब नहीं देख पाते।

तस्य सानुमत: पृष्ठे सर: काञ्चनपङ्कजम्।
कारण्डवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम्॥ १६॥
कुमुदोत्पलकह्लारै: पुण्डरीकैश्च मण्डितम्।
कमलै: शतपत्रैश्च काञ्चनै: समलंकृतम्॥ १७॥
पत्रैर्मरकतप्रख्यै: पुष्पै: काञ्चनसन्निभै:।
गुल्मै: कीचकरेणूनां समन्तात्परिवेष्टितम्॥ १८॥

उस पर्वत के तल पर एक सरोवर है जो स्वर्ण कमलों से सुशोभित, कारण्डवों से युक्त तथा राजहंसों से सुशोभित है। यह कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि नानाजातीय कमलों से मण्डित, शतपत्रों वाले सुवर्णकमलों से अलंकृत तथा मरकत के सदृश पत्रों वाले काञ्चन के समान पुष्पों एवं कीचक नामक बाँस के गुल्मों से चारों ओर से परिवेष्टित एक सरोवर है।

तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलेशय:।
आसीद्ग्राहो गजेन्द्राणां रिपुराकेकरेक्षण:॥ १९॥

उस तालाब में एक ग्राह रहता था। दुष्टात्मा, कुरूप, जल के नीचे रहने वाला, अधखुली आँखों से देखने वाला तथा हाथियों का शत्रु था।

अथ दन्तोज्ज्वलमखु: कदाचिद्गजयूथप:।
मदस्रावी जलाकाङ्क्षी पादचारीव पर्वत:॥ २०॥
वासयन्मदगन्धेन गिरिमैरावतोपम:।
गजो ह्यञ्जनसंकाशो मदाचलितलोचन:॥ २१॥
तृषित: पातुकामोऽसाववतीर्णश्च तज्जलम्।
सलील: पङ्कजवने यूथमध्यगतश्चरन्॥ २२॥
गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना।
पश्यन्तीनां करेणूनां क्रोशन्तीनां च दारुणम्॥ २३॥

एक बार गजसमूह का एक स्वामी जिसका मुख गजदन्तों से एक शोभायमान था, जो मद स्रावकर रहा था, प्यासा पर्वत के समान चलने वाला, ऐरावत के समान, अपने मद की सुगंध से संपूर्ण पर्वत को सुगंधित करता हुआ, मद से चंचल नेत्रों वाला, अंजन के सदृश प्यास लगने पर जल पीने की इच्छा से उस जल में उतरा। गजसमूह के मध्य चलता हुआ उस पंकजवन में क्रीडा करता हुआ वह छिपे हुए उस भयंकर ग्राह के द्वारा पकड़ लिया गया। विलाप करती हुई हथिनियाँ उस भयंकर (दृश्य) को देखती रहीं।

ह्रियते पङ्कजवने ग्राहेणातिबलीयसा।
वारुणै: संयत: पाशैर्निष्प्रयत्नगति: कृत:॥ २४॥

अत्यंत शक्तिशाली ग्राह के द्वारा पंकजवन में खींचे जाने पर वरुण के बलशाली पाशों से बंधा हुआ वह गज पूर्णतया मृतप्राय कर दिया गया।

वेष्ट्यमान: सुघोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा।
विस्फूर्य च यथाशक्ति विक्रोशंश्च महारवान्॥ २५॥
व्यथित: स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा।
परमामापमापन्नो मनसाऽचिन्तयद्धरिम्॥ २६॥

अत्यंत भयंकर एवं शक्तिशाली पाशों से लपेटा गया

32 Aegle Marmelos.
33 Banduknut (Cocsalpinia Banduealla)
34. Terminelia Arjuna
३५. पर्पटी रंजना कृष्णा जतुका जननी जनी(भा०नि०)

वह गज अपनी पूरी शक्ति से चिंघाड़ा और चिल्लाया। भयानक ग्राह से गृहीत और घोर संकट में फंसे उस गज ने पूर्णतया निराश और अत्यंत दुःखी होकर अपने मन में हरि का चिंतन किया।

स तु नागवरः श्रीमान्नारायणपरायणः।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा॥ २७॥

वह श्रीमान् नारायण का परम भक्त गजश्रेष्ठ उस समय संपूर्ण रूप से उन परम शरण्य देव की ही शरण हो गया था।

एकात्मा निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना।
जन्मजन्मान्तराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे॥ २८॥
नान्यं देवं महादेवात् पूजयामास केशवात्।
मथितामृतफेनाभं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ २९॥
सहस्रशुभनामानमादिदेवमजं विभुम्।

अत्यंत सावधानीपूर्वक जितेन्द्रिय, मन से पवित्र, जन्म जन्मान्तरों के अभ्यासवश गरुड़ध्वज में भक्तियुक्त उसने महादेव केशव के अतिरिक्त अन्य किसी भी देव की आराधना नहीं की थी– ऐसा वह गज उस भयानक विपत्ति से छूटने की इच्छा से नारायण की स्तुति करने लगा– जो मंथन किए जाते हुए अमृत के फेन के समान वाले थे, जिन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण की हुई थी, जो सहस्रों पवित्र नामों से पुकारे जाने वाले, आदि देव, अज और सर्वसमर्थ थे।

प्रगृह्य पुष्कराग्रेण काञ्चनं कमलोत्तमम्।
आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदैरयत्॥ ३०॥

गजेन्द्र उवाच–

ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने।
अनाश्रिताय देवाय निःस्पृहाय नमोऽस्तु ते॥ ३१॥

गजेन्द्र ने कहा– ॐ मूलप्रकृति स्वरूप महात्मा अजित को नमस्कार है। आप अनाश्रित एवं निःस्पृह देव को नमस्कार है।

नम आद्याय वामाय आर्षेयाय प्रवर्तिने।
अनन्तराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः॥ ३२॥

आद्यबीजस्वरूप एवं गुणवर्ती को नमस्कार है। अन्तररहित, एक मात्र अव्यक्त को नमस्कार है।

नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवार्तिने।
अतर्क्यायाप्रमेयाय अतुलाय नमो नमः॥ ३३॥
नमः शिवाय शान्ताय निश्चिन्ताय यशस्विने।
सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमो नमः॥ ३४॥

गुह्य, गूढ़, गुणस्वरूप, अतर्कातीत,अप्रमेय, अतुल, मंगलमय, शान्त, निश्चिन्त, यशस्वी, सनातन, पूर्व और पुराणपुरुष को बार-बार नमस्कार है।

नमो देवाधिदेवाय स्वभावाय नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ३५॥

देवाधिदेव को नमस्कार है। स्वभावात्मक को बार-बार नमस्कार है। जगत्-प्रतिष्ठापक को नमस्कार है। गोविन्द को बार-बार नमस्कार है।

नमोऽस्तु पद्मनाभाय नमो योगोद्भवाय च।
विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः॥ ३६॥

पद्मनाभ, योगोद्भव को नमस्कार है। विश्वेश्वर, देव, शिव, हरि को नमस्कार है।

नमोऽस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने।
नारायणाय विश्वाय देवाय परमात्मने॥ ३७॥

निर्गुण और गुणात्मा उन देव को नमस्कार है। विश्वात्मा नारायण एवं देवों के परमात्मा को नमस्कार है।

नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥ ३८

कारणवश वामन रूपधारी, अमित विक्रम वाले नारायण को नमस्कार है। श्री, शार्ङ्ग, चक्र, असि, एवं गदाधारण करने वाले उन पुरुषोत्तम को नमस्कार है।

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय
सिंहाय दैत्यनिधनाय चतुर्भुजाय।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय
देवोत्तमाय सकलाय नमोऽच्युताय॥ ३९॥

गुह्य, वेदनिलय, महोदर, दैत्य के निधन के लिए सिंहरूपधारी, चार भुजाओं वाले, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मुनि, चारणों से संस्तुत वरदाता देवोत्तम अच्युत को नमस्कार है।

नागेन्द्रभोगशयनासनसुप्रियाय
गोक्षीरहेमशुकनीलघनोपमाय।
पीताम्बराय मधुकैटभनाशनाय
विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽजराय॥ ४०॥

नागेन्द्र की देह पर प्रसन्तापूर्वक शयन करने वाले, गोदुग्ध, स्वर्ण,शुक एवं नीलघन की उपमा से युक्त, पीताम्बरधारी, मधु कैटभ के नाशक, सुन्दर मुकुट धाररण करने वाले जरारहित विश्वात्मक देव को नमस्कार है।

नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय
क्षीरोदकार्णवनिकेतयशोधराय।
नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय
सर्वेश्वराय वरदाय नमो वराय॥ ४१॥

नाभि से उत्पन्न कमल पर स्थित ब्रह्मा से युक्त, क्षीर समुद्र को अपना निवास बनाने वाले, यशस्वी, अनेक प्रकार के विचित्र मुकुट एवं अङ्गदादि आभूषणों वाले, वरदाता एवं वरस्वरूप सर्वेश्वर को नमस्कार है।

भक्तिप्रियाय वरदीप्तसुदर्शनाय
देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यपौरुषाय।
फुल्लारविन्दविमलायतलोचनाय
योगेश्वराय विरजाय नमो वराय॥ ४२॥

भक्तिप्रिय, श्रेष्ठ-दीप्त से सम्पन्न, सुन्दर दिखलाई देने वाले, विकसित कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, देवन्द्र के विघ्नों का नाश करने के लिये पुरुषार्थ करने को उद्यत वरस्वरूप विरज योगेश्वर को नमस्कार है।

ब्रह्मायनाय त्रिदशायनाय
लोकाधिनाथ भवापनाय।
नारायणायात्मविकाशनाय
महावराहाय नमस्करोमि॥ ४३॥

ब्रह्मा एवं अन्य देवों के आश्रय स्वरूप लोकाधिनाथ, भवहर्त्ता, नारायण, आत्महित के आश्रयस्थान महावराह को नमस्कार है।

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
नारायणं कारणमादिदेवम्।
युगान्तशेषं पुरुषं पुराण
तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये॥ ४४॥

मैं कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूप वाले, कारणस्वरूप, आदिदेव नारायण, युगान्त में शेष रहने वाले पुराण पुरुष, देवाधिदेव की शरण ग्रहण करता हूँ।

योगेश्वरं चारुविचित्रमौलि-
मज्ञेयमग्र्यं प्रकृतेः परस्थम्।
क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं
तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥ ४५॥

मैं योगेश्वर, सुन्दर विचित्र वर्णयुक्त मुकुटधारी, अज्ञेय, सर्वश्रेष्ठ, प्रकृति के परे अवस्थित, क्षेत्रज्ञ, आत्मप्रभव, वरेण्य उन वासुदेव की शरण ग्रहण करता हूँ।

अदृश्यमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम्।
वदन्ति यं वै पुरुषं सनातनं
तं देवगुह्यं शरणं प्रपद्ये॥ ४६॥

ब्रह्मर्षि लोग जिसे अदृश्य, अव्यक्त, अचिन्त्यनीय, अव्यय, ब्रह्ममय और सनातन पुरुष कहते हैं, उन देव गुह्य की शरण ग्रहण करता हूँ।

यदक्षरं ब्रह्म वदन्ति सर्वगं
निशम्य यं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।
तमीश्वरं तृप्तमनुत्तमैर्गुणैः
परायणं विष्णुमुपैमि शाश्वतम्॥ ४७॥

(ब्रह्मवेत्ता) जिसे अक्षर एवं सर्वव्यापी ब्रह्म कहते हैं तथा जिसके श्रवण से मृत्यु के मुख से मुक्ति प्राप्त होती है मैं उसी श्रेष्ठ गुणौ से युक्त, आत्मतृप्त, शाश्वत आश्रयस्वरूप ईश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ।

कार्यं क्रियाकारणमप्रमेयं
हिरण्यनाभं वरपद्मनाभम्।
महाबलं देवनिधिं सुरेशं
व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम्॥ ४८॥

मैं कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप, प्रमाण से अगम्य, हिरण्यबाहु, नाभि में श्रेष्ठ कमल धारण करने वाले, महाबलशाली, वेदनिधि, सुरेश्वर जनार्दन विष्णु की शरण में जाता हूँ।

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
मर्ण्युत्तमालंकृतसर्वगात्रम्।
पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं
मालाधरं केशवमभ्युपैमि॥४९॥

मैं किरीट, केयूर एवं अतिमूल्यवान् श्रेष्ठ मणियों से अलंकृत समस्त शरीर वाले पीताम्बरधारी, स्वर्णिम पत्र रचना से सुशोभित, माला धारण करने वाले केशव की शरण में जाता हूँ।

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठं
योगात्मनां सांख्यविदां वरिष्ठम्।
आदित्यरुद्राश्विवसुप्रभावं
प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमादिभूतम्॥५०॥

मैं संसार के उत्पादक, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, योगात्माओं तथा सांख्यों में श्रेष्ठ, आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार एवं वसुओं के प्रभाव से युक्त, अच्युत, आत्मस्वरूप प्रभु की शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीवत्साङ्कं महादेवं देवगुह्यमनौपमम्।
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम्॥५१॥
प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम्।
प्रपद्ये मुक्तसङ्गानां यतीनां परमां गतिम्॥५२॥

मैं श्रीवत्स-चिह्न धारण करने वाले, महान् देव देवताओं में गुह्य, उपमा रहित, सूक्ष्म, अचल तथा अभय देनेवाले वरेण्य देव की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं समस्त प्राणियों के उत्पादक, निर्गुण, निसङ्ग यतियों की परम गति स्वरूप परमेश्वर की शरण मे जाता हूँ।

भगवन्तं गुणाध्यक्षमक्षरं पुष्करेक्षणम्।
शरण्यं शरणं भक्त्या प्रपद्ये भक्तवत्सलम्॥५३॥
त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम्।
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम्॥५४॥

मैं गुणाध्यक्ष, अक्षर, पद्मलोचन, आश्रय करने योग्य, शरण देने वाले भक्तवत्सल भगवान् की भक्तिपूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ। मैं त्रिविक्रम, त्रिलोकेश्वर, सभी के प्रपितामह, योगात्मा, महात्मा जनार्दन की शरण ग्रहण करता हूँ।

आदिदेवमजं शंभुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम्॥५५॥

मैं आदिदेव अजन्मा, शंभु, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, सनातन, परम सूक्ष्म ब्राह्मणप्रिय नारायण की शरण ग्रहण करता हूँ।

नमो वराय देवाय नमः सर्वसहाय च।
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांमणोः सदा॥५६॥

श्रेष्ठ देव को नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है। मैं सदा सूक्ष्म से सूक्ष्म देवदेवेश का शरणागत हूँ।

एकाय लोकतत्त्वाय परतः परमात्मने।
नमः सरस्त्रशिरसे अनन्ताय महात्मने॥५७॥

लोकतत्त्व स्वरूप, एकमात्र परमात्मा, सरस्त्रशीर्ष महात्मा अनन्त को नमस्कार है।

त्वमेव शरणं देवमृषयो वेदपारगाः।
कीर्तयन्ति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम्॥५८॥

वेदपारगामी ऋषिगण आपको ही परम देव एवं ब्रह्मादि देवों का आश्रयस्थान कहते हैं।

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्॥५९॥

हे पुण्डरीकाक्ष! हे भक्तों के अभयदाता! आपको नमस्कार है। हे सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागत की रक्षा करें।

पुलस्त्य उवाच–

भक्तिं तस्यानुसंचिन्त्य नागस्यामोघसंभवः।
प्रीतिमानभवद्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः॥६०॥

पुलस्त्य ने कहा— उस गज की भक्ति को देखकर अमोघसंभव, शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान् विष्णु अत्यंत प्रसन्न हो गए।

सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन्सरसि केशवः।
गरुडस्थो जगत्स्वामी लोकाधारस्तपोधनः॥६१॥

तदनन्तर जगत् के स्वामी, तपोधनी, समस्त लोकों के आधार भगवान् केशव गरुड़ पर आसीन होकर उस सरोवर में उपस्थित हो गए।

ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं तं तं च ग्राहं जलाशयात्।
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः॥६२॥

अप्रमेयात्मा मधुसूदन ने ग्राहग्रस्त गजेन्द्र और ग्राह दोनों को उस जलाशय से बाहर खींच लिया।

जलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः।
मोक्षयामास नागेन्द्रं पाशेभ्यः शरणागतम्॥६३॥

माधव ने उस पृथ्वी पर स्थित ग्राह को चक्र से काट डाला तथा अपनी शरण में आए हुए उस गजेन्द्र को पाशों से छुड़ा लिया।

एवं हि देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः।
ग्राहत्वमगमत्कृष्णाद् वधं प्राप्य दिवं गतः॥६४॥

वह हूहू नामक गंधर्वश्रेष्ठ था जो देवल ऋषि के शाप के कारण ग्राह बन गया था। अब वह कृष्ण के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक में चला गया है।

गजोऽपि विष्णुना पृष्टो जातो दिव्यवपुः पुमान्।
आपद्विमुक्तौ युगपद्गजगन्धर्वसत्तमौ॥६५॥

वह गज भी विष्णु का स्पर्श पाते ही दिव्य शरीर वाला हो गया। इस प्रकार गज और गंधर्व दोनों एक साथ विपत्तिमुक्त हो गए।

प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः।
अभवत्त्वथ देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः॥६६॥

तदनन्तर उन दोनों के द्वारा पुनः पुनः पूजित होकर देवेश पुण्डरीकाक्ष शरणागतवत्सल प्रसन्न हो गए।

इदं च भगवान्योगी गजेन्द्रं शरणागतम्।
प्रोवाच मुनिशार्दूल मधुरं मधुसूदनः॥६७॥

हे मुनिशार्दूल! योगी भगवान् मधुसूदन ने शरणागत गजेन्द्र को इस प्रकार मधुर वचन कहे—

श्रीभगवानुवाच–

योमां त्वां च सरश्चेदं ग्राहस्य च विदारणम्।
गुल्मकीचकरेणूनां रूपं मेरोः सुतस्य च॥६८॥
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिषारण्यमेव च।
संस्मरिष्यन्ति मनुजाः प्रयाताः स्थिरबुद्धयः॥६९॥
कीर्तयिष्यन्ति भक्त्या च श्रोष्यन्ति च शुचिव्रताः।
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति॥७०॥

श्रीभगवान् ने कहा— जो पवित्र व्रती मेरा, तुम्हारा, सरोवर का, ग्राह के विदारण का, गुल्म कीचक और रेणु के स्वरूप का, मेरु के पुत्र के स्वरूप का, पीपलवृक्ष, सूर्य, गंगा, नैमिषारण्य का स्थिरबुद्धि और संयमी होकर संस्मरण, कीर्तन अथवा भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा उसके समस्त दुःस्वप्न नष्ट हो जाएँगे तथा वह सुस्वप्न का लाभ प्राप्त करेगा।

मात्स्यं कौर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिप्रलयकारकम्॥७१॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते पुण्याँल्लोकानवाप्नुयुः॥७२॥

जो मनुष्य प्रातः काल उठकर मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, गरुड़, नृसिंह और नगेन्द्र जो सृष्टि और प्रलयकर्त्ता के रूपों का स्मरण करेंगे वे समस्त पापों से मुक्त हो जाएँगे तथा पुण्यलोक को प्राप्त करेंगें।

पुलस्त्य उवाच–

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गजेन्द्रं गरुडध्वजः।
स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च॥७३॥

पुलस्त्य ने कहा— यह कहकर हृषीकेश गरुड़ध्वज ने अपने हाथ से गंधर्व और गज का स्पर्श किया।

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा गजेन्द्रो मधुसूदनम्।
जगाम विष्णुं शरणं नारायणपरायणः॥७४॥

हे विप्र! तब दिव्याकृति होकर वह नारायणपरायण गजेन्द्र मधुसूदन की शरण में चला गया।

ततो नारायणः श्रीमान् मोक्षयित्वा गजोत्तमम्।
पापबन्धाच्च शापाच्च ग्राहं चाद्भुतकर्मकृत्॥७५॥
ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगुह्यपरायणैः।
गतः स भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः॥७६॥

तदनन्तर वह श्रीमान् नारायण उस गजश्रेष्ठ को और ग्राह को समस्त पाप-बंधनों और शाप से मुक्त करने तथा चमत्कार करने वाले वह दुर्विज्ञेय स्वरूप वाले विष्णु देवगुह्यपरायण ऋषियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए (अपने लोक को) चले गए।

गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ववन्दिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं हरिम्॥७७॥

गजेन्द्र के मोक्ष को देखकर इन्द्र के अनुयायी समस्त देवतागण महात्मा प्रभु नारायण हरि की वन्दना करने लगे।

महर्षयश्चारणाश्च दृष्ट्वा गजविमोक्षणम्।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः संस्तुवन्ति जनार्दनम्॥७८॥

गजविमोक्षण को देखकर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले महर्षि और चारणगण जनार्दन की स्तुति करने लगे।

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा चक्रपाणेर्विचेष्टितम्।
गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत्॥७९॥

चक्रपाणि विष्णु के द्वारा किए गए गजेन्द्रमोक्ष को देखकर प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा बोले—

य इदं श्रृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः।
प्राप्नुयात्परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति॥८०॥

जो मनुष्य प्रातः उठकर इस गजेन्द्रमोक्ष को सुनेगा, वह परमसिद्धि को प्राप्त करेगा तथा उसके दुःस्वप्न नष्ट हो जाएँगे।

गजेन्द्रमोक्षणं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्।
कथितेन स्मृतेनाथ श्रुतेन च तपोधन॥
गजेन्द्रमोक्षणेह सद्यः पापात् प्रमुच्यते॥८१॥

यह गजेन्द्रमोक्ष पुण्यशाली तथा समस्त पापों का नाशक है। हे तपोधनी! इस गजेन्द्रमोक्षण के कथन करने, स्मरण करने तथा श्रवण करने से व्यक्ति सब पापों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

एतत्पवित्रं परमं सुपुण्यं
संकीर्तनीयं चरितं मुरारेः।
यस्मिन्किलोक्ते वहुपापबन्धनात्
लभ्येत मोक्षो द्विरदेन यद्वत्॥८२॥

यह परम पवित्र, पुण्यशाली और कीर्तनीय मुरारि की कथा है जिसके कथन से निश्चय ही समस्त पाप बंधनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, जिस प्रकार गजेन्द्र ने मुक्ति प्राप्त की थी ।

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं
नारायणं व्रह्मनिधिं सुरेशम्।
तं देवगुह्यं पुरुषं पुराणं
वन्दाम्यहं लोकपतिं वरेण्यम्॥८३॥

श्रेष्ठकमल जिनकी नाभि में स्थित है ऐसे अजन्मा, वरेण्य, नारायण, ब्रह्मनिधि, सुरेश, परमगुह्य, पुराणपुरुष लोकपति, शरण्य की मैं वंदना करता हूँ।

पुलस्त्य उवाच

एतत् तवोक्तं प्रवरं स्तवानां
स्तवं मुरारेर्वरनागकीर्तनम्।
यं कीर्त्य संश्रुत्य तथा विचिन्त्य
पापापनोदं पुरुषो लभेत॥८४॥

पुलस्त्य ने कहा— गजेन्द्र के द्वारा कही गई स्तुतियों में श्रेष्ठ मुरारि की यह स्तुति तुम्हें सुनाई गई जिसका चिंतन, श्रवण तथा कीर्तन करके व्यक्ति पापसमूह से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे गजेन्द्रमोक्षणं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

(सारस्वत स्तोत्र वर्णन)

पुलस्त्य उवाच

कश्चिदासीद् द्विजद्रोग्धा पिशुनः क्षत्रियाधमः।
परपीडारुचिः क्षुद्रः स्वभावादपि निर्घृणः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— एक दुष्ट क्षत्रिय था। वह ब्राह्मणद्रोही, नीच, दूसरों को पीड़ा देने में रुचि रखने वाला, क्षुद्र तथा स्वभाव से अत्यंत क्रूर था।

पर्यासिताः सदा तेन पितृदेवद्विजातयः।
स त्वायुषि परिक्षीणे जज्ञे घोरो निशाचरः॥२॥
तेनैव कर्मदोषेण स्वेन पापकृतां वरः।
क्रूरैश्चक्रे ततो वृत्तिं राक्षसत्वाद्विशेषतः॥३॥

उसने सदैव पितरों, देवों और ब्राह्मणों को त्रास दिया। अपनी आयु के समाप्त होने के बाद वह घोर निशाचर बन गया। अपने दुष्ट कर्मों के कारण वह पापियों में भी अग्रगण्य होकर क्रूर स्वभाव से विशेषतः राक्षसत्व वृत्ति से जीवन व्यतीत करने लगा।

तस्य पापरतस्यैवं जग्मुर्वर्षशतानि तु।
तेनैव कर्मदोषेण नान्या वृत्तिमरोचयत्॥४॥
यं यं पश्यति सत्त्वं स तं तमादाय राक्षसः।
चखाद रौद्रकर्माऽसौ बाहुगोचरमागतम्॥५॥

उस प्रकार पापवृत्ति में रत उसके जीवन के सौ वर्ष व्यतीत हो गए; परंतु उस कर्मदोष के कारण पाप-वृत्ति के अतिरिक्त उसे कोई अन्य वृत्ति में रुचि नहीं हुई। वह भयानक कर्म वाला राक्षस जिस-जिस जीवित को देखता था उस-उस को अपनी भुजाओं की परिधि में लेकर खा जाता था।

एवं तस्यातिदुष्टस्य कुर्वतः प्राणिनां वधम्।
जगाम च महान्कालः परिणामं तथा वयः॥६॥
स कदाचित्तपस्यन्तं ददर्श सरितस्तटे।
महाभागमूर्ध्वभुजं यथावत्संयतेन्द्रियम्॥७॥
अनया रक्षया ब्रह्मन्कृतरक्षं तपोनिधिम्।
योगाचार्यां शुचिं दक्षं वासुदेवपरायणम्॥८॥

इस प्रकार प्राणियों का वध करते हुए उस दुष्ट का बहुत समय तथा आयु व्यतीत हो गयी। एक बार उसने नदी के किनारे तपस्या करते हुए एक महातेजस्वी तपस्वी को देखा। वह तपस्वी अत्यंत संयतेन्द्रिय, भुजाएँ ऊपर उठाए हुए, योगाचार्य, पवित्र तथा कुशल था, वह वासुदेव का भक्त था तथा हे ब्राह्मण! इस रक्षा से परिरक्षित था।

विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्विष्णुः खड्गी ममोत्तरे॥९॥

चक्रधारी विष्णु मेरे पूर्व में, गदाधारी विष्णु दक्षिण में, पश्चिम में धनुषधारी विष्णु तथा खड्गधारी विष्णु उत्तर में स्थित हैं।

हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नारसिंहोऽम्बरे मम॥१०॥
क्षुरान्तममलं चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम्।
अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान्॥११॥

हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी) विष्णु कोनों में स्थित हैं तथा जनार्दन विष्णु छिद्रों में, शूकररूप विष्णु भूमि पर तथा नृसिंह विष्णु मेरे आकाश में स्थित हैं। तेज छुरे के समान चक्रों वाला यह सुदर्शन जिसका प्रभामण्डल पूर्णतः दुष्प्रेक्ष्य है— प्रेतनिशाचरों के वध के लिये यहाँ घूमता रहता है।

गदा चेयं सहस्रार्चिरुद्वमन् पावको यथा।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च शातनी॥१२॥
शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून्।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन्हन्त्वशेषतः॥१३॥

और अग्नि के समान सहस्रों किरणों का उद्वमन करती हुई यह गदा राक्षस, भूत, पिशाच तथा डाकिनीयों का नाश करने वाली है और वासुदेव का यह शक्तिशाली धनुष पशु, पक्षी, मनुष्य, भूत, पिशाच प्रेतादि मेरे समस्त शत्रुओं का सर्वथा नाश कर डाले।

खड्गधाराज्वलज्ज्योत्स्नानिर्धूता ये ममाहिताः।
ते यान्तु सौम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः॥१४॥

खड्गधारा के समान उज्ज्वल किरणों का उद्वमन करने वाले मेरे शत्रु भी तुरन्त सौम्य हो जाएँ; जिस प्रकार गरुड़ को देखकर सर्प दशहीन हो जाते हैं।

ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा दैत्या ये च निशाचराः।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जृम्भकाः खगाः॥१५॥
सिंहादयो ये पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः।
सर्वे भवन्तु ते सौम्याविष्णुचक्ररवाहताः॥१६॥

जो भी पिशाच, यक्ष, दैत्य और निशाचर प्रेत-विनायक, क्रूर मनुष्य, अथवा जृम्भक हैं, पक्षी अथवा सिंहादि पशु हैं, तथा दंशदायक सर्प हैं वह सब विष्णु के चक्र की ध्वनि से आहत होकर शान्त (प्रभावहीन) हो जाएँ।

चित्तवृत्तिहरा ये च ये जनाः स्मृतिहारकाः।
बलौजसां च हर्तारश्छायाविध्वंसकाश्च ये॥१७॥
ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः।
कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः॥१८॥

जो चित्तवृत्ति का अपहरण करने वाले हैं, जो स्मृति का अपहरण करने वाले हैं; जो बल और पराक्रम के नाशक हैं, जो छाया के विध्वसंक हैं, जो भोगोपभोगों के नाशक हैं तथा जो शुभलक्षणों को नष्ट करने वाले हैं—

ऐसे सब पिशाच विष्णु के चक्र की ध्वनि से आहत होकर नष्ट हो जाएँ।

बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात्॥ १९॥

देवाधिदेव विष्णु के संकीर्तन से मेरी बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ स्वस्थ हों।

पृष्ठे पुरस्तादथ दक्षिणोत्तरे
विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं
जनार्दनं प्राणपतितो न सीदति॥ २०॥

जनार्दन हरि मेरे पीछे, आगे, दक्षिण, उत्तर तथा समस्त कोनों में रहें (सब ओर से मेरी रक्षा करें)। उन प्रशंसनीय, सर्वसमर्थ, अनन्त, अच्युत जनार्दन की शरण में जाकर कोई भी दुःखी नहीं होता।

यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परं
जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः।
ऋतेन तेनाच्युतनामकीर्तना-
त्प्रणाशमेतु त्रिविधं ममाशुभम्॥ २१॥

जिस प्रकार विष्णु परब्रह्म हैं उसी प्रकार वे केशव इस जगत् का स्वरूप हैं। उन अच्युत के नाम के कीर्तन की सहायता से ही मेरे त्रिविध अशुभों का नाश हो जाए।

इत्येवसावात्मरक्षार्थं कृत्वा वै विष्णुपञ्जरम्।
संस्थितोऽसावपि वली राक्षसः समुपाद्रवत्॥ २२॥
ततो द्विजनियुक्तयां रक्षया रजनीचरः।
निर्धूतवेगः सहसा तस्थौ मासचतुष्टयम्॥ २३॥

इस प्रकार आत्मरक्षा के लिये विष्णु की स्तुति करके वह (तपस्वी) स्थित हो गया। वह बलशाली राक्षस जब उसकी ओर दौड़ा तो तपस्वी के द्वारा नियोजित रक्षणव्यवस्था के कारण वह राक्षस अकस्मात् वेगरहित होकर चार-मास तक उसी प्रकार खड़ा रह गया।

यावद्द्विजस्य देवर्षे समाप्तिर्वै समाधितः।
ततो जप्यावसानेऽसौ तं ददर्श निशाचरम्॥ २४॥
दीनं हतवलोत्साहं कान्दिशीकं हतौजसम्।
तं दृष्ट्वा कृपयाऽऽविष्टः समाश्वास्य निशाचरम्॥ २५॥
पप्रच्छागमने हेतुं स चाचष्टे यथागतम्।
स्वभावमात्मनो द्रष्टुं रक्षया तेजसः क्षितिम्॥ २६॥

हे देवर्षि! जब ब्राह्मण की समाधि खुली और जप की समाप्ति हुई तब उसने उस निशाचर को देखा जो दीन, बल और उत्साह से रहित, तथा भयभीत होने के कारण तेजरहित हो गया था। उसकी दयनीय दशा को देखकर दयायुक्त हुये उस तपस्वी ने उस निशाचर को आश्वासन देकर उसके आने का कारण पूछा। उसने अपने यथार्थ स्वभाव को देखने के लिये आने पर तेज का नाश होना बताया।

कथयित्वा च तद्रक्षः कारणं विविधं ततः।
प्रसीदेत्यब्रवीद्विप्रं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा॥ २७॥

इस प्रकार वह राक्षस अनेक कारण बताकर अपने ही दुष्कर्मों से दुःखी होता हुआ उस तपस्वी से बोला— 'कृपया प्रसन्न हो जाइये'।

बहूनि पापानि मया कृतानि बहवो हताः।
कृताः स्त्रियो मया बह्व्यो विधवाः पुत्रवर्जिताः।
अनागसां च सत्त्वानामल्पकानां क्षयः कृतः॥ २८॥

मैंने बहुत से पाप किए हैं, बहुत से व्यक्तियों का वध किया है, बहुत सी स्त्रियों को पुत्र-रहित और पति-रहित बनाया है तथा अनेक बालकों, साधुओं और निष्पाप व्यक्तियों का नाश किया है।

तस्मात्पापादहं मोक्षमिच्छामि त्वत्प्रसादतः।
पापप्रशमायालं कुरु मे धर्मदेशनम्॥ २९॥

इसलिए मैं आपकी कृपा प्राप्त करके अपने उस पाप से मुक्त होना चाहता हूँ। कृपया मेरे पापों की समाप्ति के लिए आप मुझे उपदेश दें।

पापस्यास्य क्षयकरमुपदेशं प्रयच्छ मे।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसस्य द्विजोत्तमः॥ ३०॥
वचनं प्राह धर्मात्मा हेतुमद्य सुभाषितम्।
कथं क्रूरस्वभावस्य सततस्तव निशाचर।
सहसैव समायाता जिज्ञासा धर्मवर्त्मनि॥ ३१॥

मुझे आप इस पाप को नष्ट करने वाला उपदेश प्रदान करें। राक्षस के वचन को सुनकर वह द्विजश्रेष्ठ धर्मात्मा हेतुयुक्त तथा सुन्दर वचन का प्रयोग कर बोला— हे

निशाचर! क्रूर स्वभाव के होते हुए भी तुम्हें धर्म के मार्ग में जिज्ञासा किस प्रकार हुई?

राक्षस उवाच

त्वां वै समागतोऽस्म्यद्य क्षिप्तोऽहं रक्षया बलात्।
तव संसर्गतो ब्रह्मन् जातो निर्वेद उत्तमः॥ ३२॥

राक्षस ने कहा— हे ब्राह्मण! मैं आपके पास आया था; किन्तु आपके रक्षाकवच ने मुझे बलपूर्वक निष्फल कर दिया। आपके सम्पर्क से मुझमें (सांसारिक पदार्थों के लिए) एक उत्तम वैराग्य उत्पन्न हो गया है।

का सा रक्षा न तां वेद्मि वेद्मि नास्याः परायणम्।
यस्याः संसर्गमासाद्य निर्वेदं प्रापितं परम्॥ ३३॥

मैं नहीं जानता कि वह रक्षास्तोत्र क्या है; और न ही मैं उसका परायण जानता हूँ जिसके संपर्क में आकर मैं इस परम वैराग्य को प्राप्त हुआ हूँ।

त्वं कृपां कुरु धर्मज्ञ मय्यनुक्रोशमावह।
यथा पापापनोदो मे भवत्यार्य तथा कुरु॥ ३४॥

हे धर्मज्ञ! आप कृपा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए। जिससे मेरे पापों का नाश हो, आप वैसा कीजिए।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तदा वै तेन राक्षसा।
प्रत्युवाच महाभागो विमृश्य सुचिरं मुनिः॥ ३५॥

पुलस्त्य ने कहा— उस राक्षस के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस महातेजस्वी तपस्वी ने चिरकाल तक सोचकर कहा—

ऋषिरुवाच

यन्मामाहोपदेशार्थं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा।
युक्तमेतद्धि पापानां निवृत्तिरुपकारिका॥ ३६॥
करिष्ये यातुधानानां नत्वहं धर्मदेशनम्।
तान्संपृच्छ द्विजान्सौम्य ये वै प्रवचने रताः॥ ३७॥

ऋषि ने कहा— अपने पापकर्म से दुःखी होकर तुमने मुझसे उपदेश करने के लिए जो कहा है वह उचित ही है; क्योंकि पापकर्म से निःवृत्ति निश्चय ही कल्याणकारी होती है। किंतु मैं राक्षसों को धर्म का उपदेश नहीं दूँगा। अतः हे सौम्य! उन ब्राह्मणों से धर्मोपदेश के विषय में पूछो जो प्रवचन में रत रहते हैं।

एवमुक्त्वा ययौ विप्रश्चिन्तामाप स राक्षसः।
कथं पापापनोदः स्यादिति चिन्ताकुलेन्द्रियः॥ ३८॥

यह कहकर वह ब्राह्मण चले गए। परंतु वह राक्षस 'मेरी पापों से निवृत्ति किस प्रकार होगी', यह सोचकर चिंता से व्याकुल हो गया।

न चखाद स सत्त्वानि क्षुधा संबाधितोऽपि सन्।
षष्ठे षष्ठे तदा काले जन्तुमेकमभक्षयत्॥ ३९॥

क्षुधा से व्याकुल होने पर भी उसने प्राणियों को नहीं खाया। वह प्रत्येक छठवें समय एक जन्तु का आहार करने लगा।

स कदाचित्क्षुधाविष्टः पर्यटन्विपुले वने।
ददर्शाथ फलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम्॥ ४०॥

एक बार वह भूख से व्याकुल होकर घने जंगल में घूम रहा था तो उसने फलाहार के लिए आए हुये एक ब्राह्मण को देखा।

गृहीतो रक्षसा तेन स तदा मुनिदारकः।
निराशो जीविते प्राह सामपूर्वं निशाचरम्॥ ४१॥

उस राक्षस ने उस मुनिपुत्र को पकड़ लिया। जीवन से निराश उसने राक्षस से शांतिपूर्वक कहा—

ब्राह्मण उवाच

भो भद्र ब्रूहि यत् कार्यं गृहीतो येन हेतुना।
तदनुब्रूहि भद्रं ते अयमस्म्यनुशाधि माम्॥ ४२॥

ब्राह्मण ने कहा— हे भद्रपुरुष! बताइये, क्या काम है तथा किस कारण से आपने मुझे पकड़ा है, मुझे आदेश दीजिए— आपका कल्याण हो!

राक्षस उवाच

षष्ठे काले त्वमाहारः क्षुधितस्य समागतः।
निःश्रीकस्यातिपापस्य निर्घृणस्य द्विजद्रुहः॥ ४३॥

राक्षस ने कहा— श्रीहीन अतिपापी, दुःखी तथा द्विजद्रोही मुझ भूखे के लिए तुम छठवें समय आहार के रूप में आए हो।

ब्राह्मण उवाच

यद्यवश्यं त्वया चाहं भक्षितव्यो निशाचर।
आयास्यामि तवाद्यैव निवेद्य गुरवे फलम्॥४४॥
गुर्वर्थमेतदागत्य यत्फलग्रहणं कृतम्।
ममात्र निष्ठाप्राप्तस्य फलानि विनिवेदितुम्॥४५॥

ब्राह्मण ने कहा— हे निशाचर! यदि आप मुझे खाना चाहते हैं तो अवश्य खाइये! किन्तु पहले मैं अपने गुरु को यह फल देकर लौट आऊँ। मैंने यहाँ आकर जो फल एकत्रित किए हैं उन्हें गुरु के समक्ष निवेदन करना मेरा परम कर्तव्य है।

स त्वं मुहूर्तमात्रं मामत्रैवं प्रतिपालय।
निवेद्य गुरवे यावदिहागच्छाम्यहं फलम्॥४६॥

कृपया यहीं पर मेरी क्षण भर प्रतीक्षा कीजिए। गुरु को फल देकर मैं यहाँ आता हूँ।

राक्षस उवाच

षष्ठे काले न मे ब्रह्मन्कश्चिद् ग्रहणमागतः।
प्रतिमुच्येत देवोऽपि इति मे पापजीविका॥४७॥
एक एवात्र मोक्षस्य तव हेतुः शृणुष्व तत्।
मुञ्चाम्यहमसंदिग्धं यदि तत्कुरुते भवान्॥४८॥

राक्षस ने कहा— हे ब्राह्मण! छठे काल में (भोजन के लिये) आया हुआ कोई देव भी मुझसे छूट नहीं सकता। यही मेरी पापयुक्त जीविका है। तुम्हारे छूटने का एकमात्र उपाय है, वह सुनो। यदि तुम वह उपाय करोगे तो मैं निश्चय ही तुम्हें छोड़ दूँगा।

ब्राह्मण उवाच

गुरोर्यत्र विरोद्धाय यत्र धर्मोपरोधकम्।
तत्करिष्याम्यहं रक्षो यत्र व्रतहरं मम॥४९॥

ब्राह्मण ने कहा— हे राक्षस! जो कार्य गुरु का विरोधी न हो, जो धर्म का अवरोधक न हो तथा जो मेरे व्रत को भंग न करने वाला हो, वह कार्य मैं अवश्य करूंगा।

राक्षस उवाच

मया निसर्गतो ब्रह्मन् जातिदोषाद्विशेषतः।
निर्विवेकेन चित्तेन पापकर्म सदा कृतम्॥५०॥
आबाल्यान्मम पापेषु न धर्मेषु रतं मनः।
तत्पापसंक्षयान्मोक्षं प्राप्नुयां येन तद् वद॥५१॥

राक्षस ने कहा— मैंने विवेकहीन चित्त से स्वभावतः ही और विशेषरूप से जातिदोष के कारण सदैव पापकर्म ही किये हैं। मेरा मन बाल्यकाल से ही सदैव पाप में ही रत रहता था, धर्म में नहीं। अतः वह उपाय बताओ जिससे पाप का क्षय होकर मेरा मोक्ष हो जाए।

यानि पापानि कर्माणि बालत्वाच्चरितानि च।
दुष्टां योनिमिमां प्राप्य तन्मुक्तिं कथय द्विज॥५२॥

हे ब्राह्मण! इस दुष्ट राक्षसयोनि को प्राप्त करके अपनी मूढ़ता के कारण मैंने जो पापकर्म किए हैं उससे मुक्ति किस प्रकार हो, कृपया यह बताओ!

यद्येतद्द्विजपुत्र त्वं समाख्यास्यस्यशेषतः।
ततः क्षुधार्तान्मत्तस्त्वं नियतं मोक्षमाप्स्यसि॥५३॥
न चेत् तत्पापशीलोऽहमत्यर्थं क्षुत्पिपासितः।
षष्ठे काले नृशंसात्मा भक्षयिष्यामि निर्घृणः॥५४॥

हे द्विजपुत्र! यदि तुम मुझे यह संपूर्ण रूप से बताओगे तो क्षुधा से व्याकुल मुझसे तुम निश्चय ही मुक्ति प्राप्त कर सकोगे! और यदि तुम नहीं बताओगे तो इस छठे काल में भूख-प्यास से अत्यंत व्याकुल, पापाचारी, क्रूरात्मा तथा दुःखी मैं तुम्हें खा जाऊँगा!

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्तो मुनिसुतस्तेन घोरेण रक्षसा।
चिन्तामवाप महतीमशक्तस्तदुदीरणे॥५५॥

पुलस्त्य ने कहा— भयंकर राक्षस के इस प्रकार कहने पर उपाय बताने में असमर्थ होने के कारण वह मुनि-पुत्र घोर चिंता में पड़ गया।

विमृश्य चिरं विप्रः शरणं जातवेदसम्।
जगाम ज्ञानदानाय संशयं परमं गतः॥५६॥

अत्यंत चिंतित वह चिरंकाल तक विचार करने के पश्चात् ज्ञान-दान के लिए अग्नि की शरण में गया।

यदि शुश्रूषितो वह्निर्गुरुशुश्रूषणादनु।
व्रतानि वा सुचीर्णानि सप्तार्चिः पातु मां ततः॥५७॥
न मातरं न पितरं गौरवेण यथा गुरुम्।
सर्वदैवावगच्छामि तथा मां पातु पावकः॥५८॥

यदि गुरु-सेवा के पश्चात् मैंने अग्नि की सेवा की है तथा अपने व्रतों का पालन किया है तो सात ज्वालाओं वाली अग्नि मेरी रक्षा करो! मैंने गुरु को सदैव माता और पिता से भी अधिक आदरणीय समझा है; इसलिए अग्नि मेरी रक्षा करे।

यथा गुरुं न मनसा कर्मणा वचसाऽपि च।
अवजानाम्यहं तेन पातु सत्येन पावक:॥५९॥

मैंने कभी मन, कर्म अथवा वचन से भी गुरु की अवमानना नहीं की; इसलिए उस सत्य के कारण अग्नि मेरी रक्षा करे!

इत्येवं मनसा सत्यान् कुर्वत: शपथान् मुने।
सप्तार्चिषा समादिष्टा प्रादुरासीत् सरस्वती॥६०॥
सा प्रोवाच द्विजसुतं राक्षसग्रहणाकुलम्।
मा भैर्द्विजसुताहं त्वां मोक्षयिष्यामि संकटात्॥६१॥

इस प्रकार वह मन से सत्य शपथ कर रहा था कि उसके सम्मुख अग्नि के द्वारा समादिष्ट सरस्वती प्रकट हुई। राक्षस के द्वारा पकड़े जाने से व्याकुल उस ब्राह्मणपुत्र से सरस्वती ने कहा— हे ब्राह्मणपुत्र! डरो मत! मैं तुम्हें इस संकट से अवश्य ही मुक्त करूँगी।

यदस्य रक्षस: श्रेयो जिह्वाग्रे संस्थिता तव।
तत्सर्वं कथयिष्यामि ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥६२॥

इस राक्षस के कल्याण का जो कुछ उपाय हो सकता है, वह सब मैं तुम्हारे जिह्वाग्र पर बैठकर पूर्णत: बताऊँगी, जिससे तुम मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।

अदृश्या रक्षसा तेन प्रोक्त्वेत्थं सा सरस्वती।
अदर्शनं गता सोऽपि द्विज: प्राह निशाचरम्॥६३॥

राक्षस के लिए पहले से ही अदृश्य वह सरस्वती यह कहकर अदृश्य हो गई। उस ब्राह्मण ने भी राक्षस से कहा—

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तथाऽन्येषां च पापिनाम्।
समस्तपापशुद्ध्यर्थं पुण्योपचयदं च यत्॥६४॥

ब्राह्मण ने कहा— तुम्हारे लिए तथा अन्य भी पापाचरण करने वाले मनुष्यों के लिए जो कल्याणकारी है, जो समस्त पापों की शुद्धि करने वाला है तथा जो पुण्यसमूह का संचय करने वाला है, वह सुनो—

प्रातरुत्थाय जप्तव्यं मध्याह्नेऽह्न:क्षयेऽपि वा।
असंशयं सदा जाप्यो जपतां पुष्टिशान्तिद:॥६५॥

प्रात: उठकर मध्याह्न में अथवा रात्रि में इसका जाप करना चाहिये। सदैव जपने योग्य यह जप, करने वालों को निश्चित ही पुष्टि और शान्ति प्रदान करता है।

ॐ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु॥६६॥

ओम् हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन, जगन्नाथ को मैं नमस्कार करता हूँ। वह मेरे पापों का नाश करें।

चराचरगुरुं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम्।
प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु॥६७॥

चराचर के गुरु, स्वामी, गोविन्द, शेषशायी, परमदेव को मैं नमस्कार करता हूँ। वह मेरे पापों का नाश करें!

शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम्।
प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्या: स मे पापं व्यपोहतु॥६८॥

शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले, (वैजयन्ती) माला धारण करने वाले लक्ष्मीपति को मैं नमस्कार करता हूँ। वह मेरे पापों का नाश करें।

दामोदरमुदाराक्षं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यै: स मे पापं व्यपोहतु॥६९॥

दामोदर, विशाल नेत्रों वाले, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, स्तुतियों के द्वारा पूजनीय विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ। वह मेरे पापों का नाश करें।

नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम्।
प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु॥७०॥

नारायण, नर, शौरि, माधव तथा मधुसूदन उस पृथ्वी के आधार को मैं नमस्कार करता हूँ! वह मेरे पापों का नाश करें!

केशवं चन्द्रसूर्याक्षं कंसकेशिनिषूदनम्।
प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु॥७१॥

केशव, चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्र वाले, कंस और केशि का नाश करने वाले, विशाल भुजाओं वाले विष्णु को नमस्कार करता हूँ। वह मेरे पापों का नाश करे!

श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम्।
प्रणतोऽस्मि श्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु॥७२॥

श्रीवत्स वक्षस्थल, श्रीश, श्रीधर, श्रीनिकेतन, श्रीकान्त को मेरा नमस्कार है। वह मेरे पापों का नाश करें!

यमीशं सर्वभूतानां ध्यायन्ति यतयोऽक्षरम्।
वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः॥७३॥

समस्त प्राणियों के स्वामी जिन अक्षर ईश का तपस्वी जन ध्यान करते हैं, उन अनिर्देश्य वासुदेव की मैं शरण में हूँ!

समस्तालम्बनेभ्यो यं व्यावृत्त्य मनसो गतिम्।
ध्यायन्ति वासुदेवाख्यं तमस्मि शरणं गतः॥७४॥

समस्त आलम्बनों से मन की वृत्ति को हटाकर योगी जन जिन वासुदेव नामक विष्णु का ध्यान करते हैं, मैं उनकी शरण में हूँ!

सर्वगं सर्वभूतं च सर्वस्याधारमीश्वरम्।
वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणं गतः॥७५॥

सर्वत्र, सर्वव्यापक, सर्वाधार ईश्वर, वासुदेव, परम ब्रह्म की मैं शरण में हूँ।

परमात्मानमव्यक्तं यं प्रयान्ति सुमेधसः।
कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः॥७६॥

परम बुद्धिमान् जन कर्मों का नाश होने पर जिन अक्षय, परमात्मा, अव्यक्त देव की शरण लेते हैं, मैं उनकी शरण में हूँ!

पुण्यपापविनिर्मुक्ता यं प्रविश्य पुनर्भवम्।
न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरणं गतः॥७७॥

पुण्य और पाप से विमुक्त योगिजन जिनमें प्रवेश करके पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करते, मैं उनकी शरण में हूँ!

ब्रह्म भूत्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
यः सृजत्यच्युतो देवस्तमस्मि शरणं गतः॥७८॥

जो अच्युत देव ब्रह्मा के रूप में देव, असुर और मनुष्यों सहित इस समस्त जगत् की सृष्टि करते हैं मैं उनकी शरण में हूँ!

ब्रह्मत्वे यस्य वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयं वपुः।
प्रभुः पुरातनो जज्ञे तमस्मि शरणं गतः॥७९॥

ब्रह्मा के रूप में जिनके मुख से प्रभावशाली पुरातन चारों वेद सशरीर प्रकट हुए हैं, मैं ऐसे प्रभु की शरण हूँ!

ब्रह्मरूपधरं देवं जगद्योनिं जनार्दनम्।
स्रष्टृत्वे संस्थितं सृष्टौ प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८०॥

मैं सृष्टि के लिये स्रष्टा रूप से स्थित ब्रह्मरूपधारी सनानत जगद्योनि जनार्दन को प्रणाम करता हूँ।

स्रष्टा भूत्वा स्थितो योगी स्थितावसुरसूदनः।
तमादिपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८१॥

सृजनकर्ता होकर योगी के रूप में स्थित, असुरों के नाशक उन आदि पुरुष जनार्दन विष्णु के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ!

धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथा सुराः।
येनं तं विष्णुमाद्येशं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८२॥

जिन्होंने पृथ्वी को धारण किया, दैत्यों का नाश किया तथा देवों की रक्षा की। ऐसे आदि ईश, जनार्दन विष्णु के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

यज्ञैर्यजन्ति यं विप्रा यज्ञेशं यज्ञभावनम्।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८३॥

ब्राह्मणगण यज्ञों से जिन यज्ञेश एवं यज्ञस्वरूप का यजन करते हैं, उन यज्ञपुरुष सनातन विष्णु के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

पातालवीथीभूतानि तथा लोकान्निहन्ति यः।
तमन्तपुरुषं रुद्रं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८४॥

जो पाताल, वीथी, समस्त भूतों और समस्त लोकों का नाश करने वाले हैं ऐसे संहारकर्त्ता सनातन रुद्र के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

संभक्षयित्वा सकलं यथासृष्टमिदं जगत्।
यो वै नृत्यति रुद्रात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८५॥

जो जनार्दन इस सृष्ट जगत् का यथावत् संभक्षण करके रुद्र के रूप में नृत्य करते हैं ऐसे जनार्दन के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

सुरासुराः पितृगणा यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
संभूता यस्य देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८६॥

सुर और असुर, पितृगण, यक्ष, गंधर्व एवं राक्षस जिससे उत्पन्न होते हैं ऐसे सर्वगत विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

समस्तदेवाः सकला मनुष्याणां च जातयः।
यस्यांशभूता देवस्य सर्वगं तं नतोऽस्म्यहम्॥ ८७॥

समस्त देवगण तथा मनुष्यों की समस्त जातियाँ जिस देव के अंशभूत हैं ऐसे सर्वगत के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

वृक्षगुल्मादयो यस्य तथा पशुमृगादयः।
एकांशभूता देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८८॥

वृक्षगुल्मादि तथा पशु, पक्षी आदि जिस देव के एक अंशमात्र से उत्पन्न हैं ऐसे सर्वगत देव के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

यस्मान्नान्यत्परं किंचिद्यस्मिन्सर्वं महात्मनि।
यः सर्वमध्यगोऽनन्तः सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८९॥

जिससे परे और कुछ नहीं है, जिस महात्मा में सब कुछ प्रतिष्ठित है, जो सबके भीतर प्रतिष्ठित है और जो अनन्त है ऐसे सर्वगत को मैं नमस्कार करता हूँ।

यथा सर्वेषु भूतेषु गूढोऽग्निरिह दारुषु।
विष्णुरेवं तथा पापं ममाशेषं प्रणश्यतु॥ ९०॥

लकड़ियों में अग्नि की भाँति जो समस्त प्राणियों में छिपे हुए हैं, ऐसे विष्णु मेरे समस्त पापों का नाश करें!

यथा विष्णुमयं सर्वं ब्रह्मादि सचराचरम्।
यच्च ज्ञानपरिच्छेद्यं पापं नश्यतु मे तथा॥ ९१॥

ब्रह्मा से लेकर यह समस्त चराचर और जो भी ज्ञान से जानने योग्य है, वह सब विष्णुमय है। वह विष्णु मेरे समस्त पापों का नाश करें।

शुभाशुभानि कर्माणि रजःसत्त्वतमांसि च।
अनेकजन्मकर्मोत्थं पापं नश्यतु मे तथा॥ ९२॥

मेरे समस्त शुभ एवं अशुभ कर्म, सत्त्व, रजस और तमोगुण तथा अनेक जन्मों में किए गए मेरे पाप विष्णु कृपा से नष्ट हो जाएँ!

यन्निशायां च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्नयोः।
संध्ययोश्च कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा॥ ९३॥

यत्तिष्ठता यद्व्रजता यच्च शय्यागतेन मे।
कृतं यदशुभं कर्म कायेन मनसा गिरा॥ ९४॥

अज्ञानतो ज्ञानतो वा मदाच्चलितमानसैः।
तत्क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात्॥ ९५॥

मैंने मन, वचन और कर्म से रात्रि में, प्रातःकाल, मध्याह्न और अपराह्न में, दोनों संध्याकालों में, बैठे हुए, चलते हुए अथवा सोते हुए, जानकर, अनजान में अथवा प्रमाद तथा विचलित चित्त से जो-जो भी पापकर्म किए हैं वे सब शीघ्र ही वासुदेव के कीर्तन से नष्ट हो जाएँ!

परदारपरद्रव्यवाञ्छाद्रोहोद्भवं च यत्।
परपीडोद्भवां निन्दां कुर्वता यन्महात्मनाम्॥ ९६॥

यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने।
तद्यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम्॥ ९७॥

वह समस्त पाप जो परस्त्री और परद्रव्य की इच्छा से अथवा दूसरों के प्रति द्रोह से उत्पन्न हुए हों, जो दूसरों को पीड़ा देने से उत्पन्न हुए हों अथवा जो महापुरुषों की निन्दा करने से उत्पन्न हुए हों अथवा भोगोपभोगों से, पेय पदार्थों से, भोजन से, चूसने से अथवा चाटने से उत्पन्न हुए हैं वे समस्त पाप उसी प्रकार विलय हो जाएँ जैसे लवण का पात्र जल में विलीन हो जाता है।

यद्बाल्ये यच्च कौमारे यत्पापं यौवने मम।
वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम्॥ ९८॥

तन्नारायण गोविन्द हरेकृष्णेश कीर्तनात्।
प्रयातु विलयं तोयें यथा लवणभाजनम्॥ ९९॥

वह समस्त पाप जो बाल्यकाल में, कुमारावस्था में, युवावस्था में वयःपरिणति पर अथवा जन्मजन्मान्तरों में किए गए हैं, वह सभी नारायण गोविन्द, हरिकृष्णेश! इस कीर्तन से उसी प्रकार विलय हो जाएँ जैसे नमक का पात्र जल में (विलीन हो जाता है।)

विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च।
जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नमः॥ १००॥

विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव जनार्दन, कृष्ण को नमस्कार है; बार-बार नमस्कार है।

भविष्यन्नरकघ्नाय नमः कंसविघातिने।
अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणे नमः॥ १०१॥
कोऽन्यो बलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति।
कोऽन्यो नाशयति बलाद् दर्पं हैहयभूपतेः॥ १०२॥
कः करिष्यत्यथाऽन्यौ वै सागरे सेतुबन्धनम्।
वधिष्यति दशग्रीवं कः सामात्यपुरःसरम्॥ १०३॥

भावी नरक के घातक, कंस का नाश करने वाले को नमस्कार है। अरिष्ट, केशी, चाणूर आदि देवशत्रु दानवों का नाश करने वालों को नमस्कार है। बलि को ठग सकने वाला आपके अतिरिक्त और कौन होगा? अन्य कौन है जो राजा के दर्प का बलपूर्वक नाश कर सकता है? आप से अतिरिक्त अन्य कौन है जो सागर पर सेतुबंधन करेगा? और कौन हो सकता है जो दशशीर्ष वाले रावण का उसके मंत्रियों और नगरी सहित वध करेगा?

कस्त्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रतिमेष्यति।
प्रलम्बपूतनादीनां त्वामृते मधुसूदन।
नियन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति॥ १०४॥

हे मधुसूदन! आपके अतिरिक्त और कौन नंद के गोकुल में क्रीडा करेगा? आपके अतिरिक्त और कौन प्रलम्ब और पूतना आदि का वध करने वाला तथा उन्हें दण्ड देने वाला देवाधिदेव होगा?

जपन्नेव नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम्।
इष्टानिष्टप्रसङ्गेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा॥ १०५॥
कृतं तेन तु तत् पापं सप्तजन्मान्तराणि वै।
महापातकसंज्ञं वा तथा चैवोपपातकम्॥ १०६॥

इस प्रकार जानते हुए अथवा अनजाने में तथा इच्छित और अनिच्छित प्रसंगों में विष्णु के इस पुण्य जप का जाप करते हुए अपने सात जन्मों में किए हुए महान् पापों अथवा अल्पपापों का नाश कर सकता है।

यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च।
नाशयेद्योगिनां सर्वमामपात्रमिवाम्भसि॥ १०७॥
नरः संवत्सरं पूर्णं तिलपात्राणि षोडश।
अहन्यहनि यो दद्यात्पठत्येतच्च तत्समम्॥ १०८॥

योगिजन अपने पापों के साथ-साथ अपने यज्ञादि पुण्यकर्म तथा जप, यज्ञ और व्रत के पुण्यों को भी उसी प्रकार नष्ट कर सकते हैं जिस प्रकार बिना पका हुआ पात्र जल में नष्ट हो जाता है। व्यक्ति वर्षपर्यन्त प्रतिदिन सोलह तिलपात्रों का दान करे अथवा इस विष्णु स्तुति का पाठ करे—दोनों समान हैं।

अविप्लुतब्रह्मचर्यं संप्राप्य स्मरणं हरेः।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम्॥ १०९॥

व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए यदि विष्णु का स्मरण करे तो वह निश्चय ही विष्णुलोक को प्राप्त करता है, यह मैंने सत्य कहा है।

यथैतत् सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि मे मृषा।
राक्षसग्रस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु॥ ११०॥

यदि मैंने यह पूर्णतया सत्य कहा है, इसमें कुछ भी असत्य नहीं है तो यह राक्षस काँपते हुए समस्त अङ्गों वाले मुझको छोड़ दे!

पुलस्त्य उवाच

एवमुच्चारिते तेन मुक्तो विप्रस्तु रक्षसा।
अकामेन द्विजो भूयस्तमाह रजनीचरम्॥ १११॥

पुलस्त्य ने कहा— उसके द्वारा इस प्रकार (स्तुति का) उच्चारण करने पर राक्षस ने उस ब्राह्मण को छोड़ दिया। तब उस ब्राह्मण ने निष्कामभाव से राक्षस से कहा—

ब्राह्मण उवाच

एतद्भद्र मया ख्यातं तव पातकनाशनम्।
विष्णोः सारस्वतं स्तोत्रं यज्जगाद सरस्वती॥ ११२॥
हुताशनेन प्रहिता मम जिह्वाग्रसंस्थिता।
जगादैनं स्तवं विष्णोः सर्वेषां चोपशान्तिदम्॥ ११३॥

ब्राह्मण ने कहा— हे भद्र! यह विष्णु का सारस्वत स्तोत्र जो समस्त पापों का नाशक है, मैंने तुम्हें बताया। इसको सरस्वती ने कहा है। अग्नि के द्वारा प्रेरित और मेरे जिह्वाग्र पर प्रतिष्ठित सरस्वती ने यह शांतिदायक समस्त प्राणियों के लिए विष्णुस्तोत्र बताया।

अनेनैव जगन्नाथं त्वमाराधय केशवम्।
ततः शापापनोदं तु स्तुते लप्स्यसि केशवे॥ ११४॥

इस स्तोत्र के द्वारा ही तुम जगन्नाथ केशव की आराधना करो! केशव की स्तुति करने पर ही, तुम शाप से मुक्ति प्राप्त करोगे!

अहर्निशं हृषीकेश स्तवेनानेन राक्षस।
स्तुहि भक्तिं दृढां कृत्वा ततः पापाद् विमोक्ष्यसे॥ ११५

हे राक्षस! दिन-रात इस स्तोत्र के द्वारा दृढ़ भक्ति करके हृषीकेश की स्तुति करो तभी तुम पाप से मुक्त हो सकते हो!

स्तुतो हि सर्वपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम्।
स्तुतो हि भक्त्या नृणां स सर्वपापहरो हरिः॥ ११६॥

इस प्रकार से संस्तुत विष्णु समस्त पापों को निश्चय ही नष्ट कर देंगे। क्योंकि भक्तिपूर्वक स्तुति किये जाने पर हरि व्यक्तियों के समस्त पापों का हरण कर लेते हैं।

पुलस्त्य उवाच

ततः प्रणम्य तं विप्रं प्रसाद्य च निशाचरः।
तदैव तपसे श्रीमान् शालग्राममगाद् वशी॥ ११७॥

पुलस्त्य ने कहा— तदनन्तर ब्राह्मण को प्रणाम एवं प्रसन्न करके वह श्रीमान् और जितेन्द्रिय निशाचर तुरन्त ही तपस्या के लिये शालिग्राम चला गया।

अहर्निशं स एवैनं जपन्सारस्वतं स्तवम्।
देवक्रियारतिर्भूत्वा तपस्तेपे निशाचरः॥ ११८॥

उस निशाचर ने दिन-रात इस सारस्वत स्तोत्र का जाप करते हुए तथा भगवत्पूजा में अभिरुचि करते हुए तपस्या की।

समाराध्य जगन्नाथं स तत्र पुरुषोत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्तवाहन्॥ ११९॥

वहाँ उसने पुरुषोत्तम जगन्नाथ की आराधना करके समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त किया।

एतत्ते कथितं ब्रह्मन्विष्णोः सारस्वतं स्तवम्।
विप्रवक्त्रस्थया सम्यक्सरस्वत्या समीरितम्॥ १२०॥

हे ब्राह्मण! विप्र के मुख में प्रतिष्ठित सरस्वती के द्वारा कथित यह विष्णु का सारस्वत स्तोत्र तुम्हें सुनाया गया।

य एतत्परमं स्तोत्रं वासुदेवस्य मानवः।
पठिष्यति स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मोक्षमाप्स्यति॥ १२१॥

जो मनुष्य वासुदेव विष्णु के इस परम स्तोत्र का पाठ करेगा वह समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त करेगा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे सारस्वतस्तोत्रं नाम षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

(पापनाशक स्तोत्र)

पुलस्त्य उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ देवदेव नमोऽस्तु ते।
वासुदेव नमस्तेऽस्तु बहुरूप नमोऽस्तु ते॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। हे देवदेव! आपको नमस्कार है। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे बहुरूपी! आपको नमस्कार है।

एकशृङ्ग नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं वृषाकपे।
श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु नमस्ते भूतभावन॥ २॥

हे एकशृङ्ग! आपको नमस्कार है। हे वृषाकपि! आपको नमस्कार है। हे श्रीनिवास! आपको नमस्कार है। हे भूतभावन! आपको नमस्कार है।

विष्वक्सेन नमस्तुभ्यं नारायण नमोऽस्तु ते।
ध्रुवध्वज नमस्तेऽस्तु सत्यध्वज नमोऽस्तु ते॥ ३॥

हे विष्वक्सेन! आपको नमस्कार है। हे नारायण! आपको नमस्कार है। हे ध्रुवध्वज! आपको नमस्कार है। हे सत्यध्वज! आपको नमस्कार है।

यज्ञध्वज नमस्तुभ्यं धर्मध्वज नमोऽस्तु ते।
तालध्वज नमस्तेऽस्तु नमस्ते गरुडध्वज॥ ४॥

हे यज्ञध्वज! आपको नमस्कार है। हे धर्मध्वज! आपको नमस्कार है। हे तालध्वज! आपको नमस्कार है। हे गरुड़ध्वज! आपको नमस्कार है।

वरेण्य विष्णो वैकुण्ठ नमस्ते पुरुषोत्तम।
नमो जयन्त विजय जयानन्त पराजित॥ ५॥

कृतावर्त महावर्त महादेव नमोऽस्तु ते।
अनाद्याद्यन्त मध्यान्त नमस्ते पद्मजप्रिय॥ ६॥

हे वरेण्य! हे विष्णु! हे वैकुण्ठ! हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे जयन्त! हे विजय! हे जय! हे अनन्त! हे

पराजित! आपको नमस्कार है। हे कृतावर्त! हे महावर्त! हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे अनादि! हे अनन्त! हे मध्यान्त! हे पद्मजप्रिय! आपको नमस्कार है।

पुरञ्जय नमस्तुभ्यं शत्रुञ्जय नमोऽस्तु ते।
शुभञ्जय नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु धनञ्जय ॥७॥
सृष्टिगर्भ नमस्तुभ्यं शुचिश्रवः पृथुश्रवः।
नमो हिरण्यगर्भाय पद्मगर्भाय ते नमः॥८॥

हे पुरञ्जय! आपको नमस्कार है। हे शुत्रञ्जय! आपको नमस्कार है। हे शुभञ्जय! आपको नमस्कार है। हे धनञ्जय! आपको नमस्कार है। हे सृष्टिगर्भ! हे शुचिश्रव! हे पृथुश्रव! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ को नमस्कार है। पद्मगर्भ को नमस्कार है।

नमः कमलनेत्राय कालनेत्राय ते नमः।
कालनाभ नमस्तुभ्यं महानाभ नमोऽस्तु ते॥९॥
वृष्णिमूल महामूल मूलावास नमोऽस्तु ते।
धर्मावास जलावास श्रीनिवास नमोऽस्तु ते॥१०॥

कमलनेत्र आप को प्रणाम है! कालनेत्र आप को प्रणाम है! हे कालनाभ! आपको प्रणाम है! हे महानाभ! आपको नमस्कार है। हे वृष्टिमूल! हे मूहामूल! हे मूलावास! आपको प्रणाम है! हे धर्मावास! हे जलावास! हे श्रीनिवास! आपको नमस्कार है।

धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष लोकाध्यक्ष नमोऽस्तु ते।
सेनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं कालाध्यक्ष नमोऽस्तु ते॥११॥
गदाधर श्रुतिधर चक्रधारिन् श्रियो धर।
वनमालाधर हरे नमस्ते धरणीधर॥१२॥

हे धर्माध्यक्ष! हे प्रजाध्यक्ष! हे लोकाध्यक्ष! आपको नमस्कार है। हे सेनाध्यक्ष! आपको प्रणाम है। हे कालाध्यक्ष! आपको प्रणाम है! हे गदाधर! हे श्रुतिधर! हे चक्रधर! हे श्रीधर! हे वनमालाधर! हे धरणीधर हरि! आपको प्रणाम है!

आर्चिषेण महासेन नमस्तेऽस्तु पुरुष्टुत।
वहुकल्प महाकल्प नमस्ते कल्पनामुख॥१३॥
सर्वात्मन्सर्वग विभो विरिञ्चे श्वेत केशव।
नील रक्त महानील अनिरुद्ध नमोऽस्तु ते॥१४॥

हे आर्चिषेण! हे महासेन! हे पुरुष्टुत! आपको नमस्कार है। हे बहुकल्प! हे महाकल्प! हे कल्पनामुख! आपको नमस्कार है। हे सर्वात्मन्! हे सर्वग! हे विभु! हे विरिञ्चि! हे श्वेत! हे केशव! हे नील! हे रक्त! हे महानील! हे अनिरुद्ध! आपको नमस्कार है।

द्वादशात्मक कालात्मन् सामात्मन्परमात्मक।
व्योमकात्मक सुब्रह्मन् भूतात्मक नमोऽस्तु ते॥१५॥
हरिकेश महाकेश गुडाकेश नमोऽस्तु ते।
मुञ्जकेश हृषीकेश सर्वनाथ नमोऽस्तु ते॥१६॥

हे द्वादशात्मक! हे कालात्मन्! हे सामात्मन्! हे परमात्मक! हे व्योमकात्मक! हे सुबह्मन्! हे भूतात्मक! आपको नमस्कार है। हे हरकेश! हे महाकेश! हे गुडाकेश! आपको नमस्कार है। हे मुञ्जकेश! हे हृषीकेश! हे सर्वनाथ! आपको नमस्कार है।

सूक्ष्म स्थूल महास्थूल महासूक्ष्म शुभंकर।
श्वेतपीताम्बरधर नीलवास नमोऽस्तु ते॥१७॥
कुशेशय नमस्तेऽस्तु पद्मेशय जलेशय।
गोविन्द प्रीतिकर्ता च हंस पीताम्बरप्रिय॥१८॥

हे सूक्ष्म! हे स्थूल! हे महास्थूल! हे महासूक्ष्म! हे शुभंकर! हे श्वेतपीताम्बरधर! हे नीलावास! आपको नमस्कार है। हे कुशेशय! हे पद्मेशय! हे जलेशय! हे गोविन्द! हे प्रीतिकर्त्ता! हे हंस! हे पीताम्बरप्रिय! आपको नमस्कार है।

अधोक्षज नमस्तुभ्यं सीरध्वज जनार्दन।
वामनाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते मधुसूदन॥१९॥
सहस्रशीर्षाय नमो ब्रह्मशीर्षाय ते नमः।
नमः सहस्रनेत्राय सोमसूर्यानलेक्षण॥२०॥

हे अधोक्षज! हे सीरध्वज! हे जनार्दन! आपको प्रणाम है! हे वामन! आपको प्रणाम है! हे मधुसूदन! आपको नमस्कार है। सहस्रशीर्ष को नमस्कार है। ब्रह्मशीर्ष को नमस्कार है। सहस्रनेत्र और चन्द्रसूर्यानलेक्षण को प्रणाम है!

नमश्चाथर्वशिरसे महाशीर्षाय ते नमः।
नमस्ते धर्मनेत्राय महानेत्राय ते नमः॥२१॥

नमः सहस्त्रपादाय सहस्त्रभुजमन्यवे।
नमो यज्ञवराहाय महारूपाय ते नमः॥ २२॥

अथर्वशिरा को नमस्कार है। महाशीर्ष को प्रणाम है! धर्मनेत्र को नमस्कार है। महानेत्र को नमस्कार है। सहस्त्रपाद को नमस्कार है। सहस्त्र भुजाओं एवं सहस्त्र यज्ञों वाले को नमस्कार है। यज्ञवराह को नमस्कार है। आप महारूप को नमस्कार है।

नमस्ते विश्वदेवाय विश्वात्मन्विश्वसंभव।
विश्वरूप नमस्तेऽस्तु त्वत्तो विश्वमभूदिदम्॥ २३॥
न्यग्रोधस्त्वं महाशाखस्त्वं मूलकुसुमार्चितः।
स्कन्धपत्राङ्कुरलतापल्लवाय नमोऽस्तु ते॥ २४॥

विश्वदेव को नमस्कार है। हे विश्वात्मन्! हे विश्वसम्भव! हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है। आप से यह विश्व उत्पन्न हुआ है। आप न्यग्रोध हैं, आप महाशास्त्र हैं। आप ही मूलकुसुमार्चित हैं। आप ही स्कन्ध हैं। पत्र-अङ्कुर, लता एवं पल्लव स्वरूप आपको नमस्कार है।

मूलं ते ब्राह्मणाः ब्रह्मान् स्कन्धस्ते क्षत्रियाः प्रभो।
वैश्याः शाखा दलं शूद्रा वनस्पते नमोऽस्तु ते॥ २५॥
ब्राह्मणाः साग्नयो वक्त्रा दोर्दण्डाः सायुधा नृपाः।
पार्श्वाद्विशश्चोरुयुगाज्जाताः शूद्राश्च पादतः॥ २६॥

हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण आपके मूल हैं। हे प्रभु! क्षत्रिय आपके स्कन्ध, वैश्य शाखा एवं शूद्र पत्र हैं। हे वनस्पति आपको नमस्कार है। अग्निसहित ब्राह्मण आपके मुख एवं शस्त्रसहित क्षत्रिय आपकी भुजाएँ हैं। वैश्य आपके ऊरूद्वय के पार्श्वभाग से तथा शूद्र आपके चरण से उत्पन्न हुए हैं।

नेत्राद्भानुरभूत्त् तुभ्यं पद्भ्यां भूः श्रोत्रयोर्दिशः।
नाभ्या ह्यभूदन्तरिक्षं शशाङ्को मनसस्तव॥ २७॥
प्राणाद्वायुः समभवत्कामाद्ब्रह्मा पितामहः।
क्रोधात् त्रिनयनो रुद्रः शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत॥ २८॥

आपके नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ। आपके पैरों से पृथ्वी, कानों के दिशाएँ, नाभि से अन्तरिक्ष तथा मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं। आपको प्राण से वायु, काम के पितामह ब्रह्मा, क्रोध से त्रिनेत्र रुद्र एवं शिर से द्युलोक आविर्भूत हुआ।

इन्द्राग्नी वदनात् तुभ्यं पशवो मलसंभवाः।
ओषध्यो रोमसंभूता विरजास्त्वं नमोऽस्तु ते॥ २९॥
पुष्पहास नमस्तेऽस्तु महाहास नमोऽस्तु ते।
ॐकारस्त्वं वषट्कारो वौषट् त्वं च स्वधा सुधा॥ ३०

आपके मुख से इन्द्र और अग्नि, मल से पशु तथा रोम से औषधियाँ उत्पन्न हुईं। आप विराज हैं। आपको नमस्कार है। हे पुष्पहास! आपको नमस्कार है। हे महाहास! आपको नमस्कार है। आप ओंकार, वषट्कार और वौषट् हैं । आप स्वधा और सुधा है।

स्वाहाकार नमस्तुभ्यं हन्तकार नमोऽस्तु ते।
सर्वाकार निराकार वेदाकार नमोऽस्तु ते॥ ३१॥
त्वं हि वेदमयो देवः सर्वदेवमयस्तथा।
सर्वतीर्थमयश्चैव सर्वयज्ञमयस्तथा॥ ३२॥

हे स्वाहाकार! आपको नमस्कार है। हे हन्तकार! आपको नमस्कार है। हे सर्वाकार! हे निराकार! हे वेदाकार! आपको नमस्कार है। आप वेदमय देव तथा सर्वदेवमय हैं। आप सर्वतीर्थमय और सर्वयज्ञमय हैं।

नमस्ते यज्ञपुरुष यज्ञभागभुजे नमः।
नमः सहस्त्रधाराय शतधाराय ते नमः॥ ३३॥
भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय गोदायामृतदायिने।
सुवर्णब्रह्मदात्रे च सर्वदात्रे च ते नमः॥ ३४॥

हे यज्ञपुरुष! आपको नमस्कार है। आप यज्ञभागभोगी को नमस्कार है। सहस्त्रधार और शतधार आप को नमस्कार है। भूः, भुवः तथा स्वः स्वरूप, गोदाता, अमृतदाता, सुवर्णब्रह्म-दाता तथा सर्वदाता आपको नमस्कार है।

ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मादे ब्रह्मरूपधृक्।
परब्रह्म नमस्तेऽस्तु शब्दब्रह्म नमोऽस्तु ते॥ ३५॥
विद्यास्त्वं वेद्यरूपस्त्वं वन्दनीयस्त्वमेव च।
बुद्धिस्त्वमपि बोध्यश्च बोद्धास्त्वं च नमोऽस्तु ते॥ ३६॥

आप ब्रह्मेश को नमस्कार है। हे ब्रह्मादि! हे ब्रह्मरूपधारी! हे परमब्रह्म! आपको नमस्कार है। हे

शब्दब्रह्म! आपको नमस्कार है। आप ही विद्या, आप ही वेद्यरूप तथा आप ही वेदनीय हैं। आप ही बुद्धि, बोध्य और बोधरूप हैं। आपको नमस्कार है।

होता होमश्च हव्यं च हूयमानश्च हव्यवाट्।
पाता पोता च पूतश्च पावनीयश्च ॐ नमः॥ ३७॥
हन्ता च हन्यमानश्च ह्रियमाणस्त्वमेव च।
हर्ता नेता च नीतिश्च पूज्योऽग्र्यो विश्वधार्यसि॥ ३८॥

आप होता, होम, हव्य, हूयमान, हव्यवाट्, पाता, पोता, पूत तथा पावनीय ओंकार हैं। आपको नमस्कार है। आप हन्ता, हन्यमान, ह्रियमाण, हर्ता, नेता, नीति, पूज्य, श्रेष्ठ तथा विश्वधारी हैं।

स्रुक्स्रुवौ परधामासि कपालोलूखलोऽरणिः।
यज्ञपात्रारणेयस्त्वमेकधा बहुधा त्रिधा॥ ३९॥
यज्ञस्त्वं यजमानस्त्वमीड्यस्त्वमसि याजकः।
ज्ञाता ज्ञेयस्तथा ज्ञानं ध्येयो ध्याताऽसि चेश्वर॥ ४०॥

आप स्रुक्, स्रुव, परधाम, कपाल, उलूखल, अरणि यज्ञपात्र, आरणेय, एकधा, त्रिधा और बहुधा हैं। आप यज्ञ और यजमान हैं। आप ईड्य और याजक हैं। आप ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, ध्येय, ध्याता तथा ईश्वर हैं।

ध्यानयोगश्च योगी च गतिर्मोक्षो धृतिः सुखम्।
योगाङ्गानि त्वमीशानः सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ ४१॥
ब्रह्मा होता तथोग्रता साम यूपोऽथ दक्षिणा।
दीक्षा त्वं त्वं पुरोडाशस्त्वं पशुः पशुवाह्यसि॥ ४२॥

आप ध्यानयोग, योगी, गति, मोक्ष, धृति, सुख, योगाङ्ग, ईशान एवं सर्वग है। आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, होता, उद्गाता, साम, यूप, दक्षिणा तथा दीक्षा हैं। आप पुरोडाश हैं। आप ही पशु तथा पशुवाही हैं।

गुह्यो धाता च परमः नारायणस्तथा।
महाजनो निरयनः सहस्रार्केन्दुरूपवान्॥ ४३॥
द्वादशारोऽथ षण्णाभिस्त्रिव्यूहो द्वियुगस्तथा।
कालचक्रो भवानीशो नमस्ते पुरुषोत्तमः॥ ४४॥

आप गुह्य, धाता, परम, शिव, नारायण, महाजन, निराश्रय तथा सहस्र सूर्य चन्द्र तुल्य रूपवान् हैं। आप द्वादश अरों, छः नाभियों, तीन व्यूहों एवं दो युगों वाले कालचक्र, तथा ईश एवं पुरुषोत्तम हैं। आपको नमस्कार है।

पराक्रमो विक्रमस्त्वं हयग्रीवो हरीश्वरः।
नरेश्वरोऽथ ब्रह्मेशः सूर्येशस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ ४५॥
अश्ववक्त्रो महामेधाः शंभुः शक्रः प्रभञ्जनः।
मित्रावरुणमूर्तिस्त्वममूर्तिरनघः परः॥ ४६॥

आपका पराक्रम, विक्रम, हयग्रीव, हरीश्वर, नरेश्वर, ब्रह्मेश और सूर्येश हैं। आपको नमस्कार है। आप अश्ववक्त्र, महामेधा, शम्भु, प्रभञ्जन मित्रावरुणमूर्ति, अमूर्ति, अनघ और श्रेष्ठ हैं।

प्राग्वंशकायो भूतादिर्महाभूतोऽच्युतो द्विजः।
त्वमूर्ध्वकर्ता ऊर्ध्वश्च ऊर्ध्वरिता नमोऽस्तु ते॥ ४७॥
महापातकहा त्वं च उपपातकहा तथा।
अनीशः सर्वपापेभ्यस्त्वामहं शरणं गतः॥ ४८॥

आप प्राग्वंशकाय, भूतादि, महाभूत, अच्युत और द्विज हैं। आप ऊर्ध्वकर्त्ता, ऊर्ध्व और ऊर्ध्वरिता हैं। आपको नमस्कार है। आप महापातकों के विनाशक तथा उपपातकों के नाशक हैं। आप सर्वपापों से निर्लिप्त हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ।

इत्येतत् परमं स्तोत्रं सर्वपापप्रमोचनम्।
महेश्वरेण कथितं वाराणस्यां पुना मुने॥ ४९॥

हे मुने! प्राचीन काल में महेश्वर ने इस समस्त पापों से मुक्ति देने वालेस्तोत्र को वाराणसी में कहा था।

केशवस्याग्रतो गत्वा स्नात्वा तीर्थे सितोदके।
उपशान्तस्तथा जातो रुद्रः पापवशात् ततः॥ ५०॥

तीर्थ के स्वच्छ जल में स्नानकर केशव का दर्शन करने से रुद्र पाप के प्रभाव से मुक्त एवं शान्त हुए थे।

एततपवित्रं त्रिपुरघ्नभाषितं
पठन्नरो विष्णुपरो महर्षे।
विमुक्तपापो ह्युपशान्तमूर्तिः
संपूज्यते देववरैः प्रसिद्धैः॥ ५१॥

हे महर्षि! त्रिपुरारि के द्वारा कहे गये इस स्तोत्र का पाठ करने से विष्णुभक्त मनुष्य पापमुक्त और सौम्य होकर प्रसिद्ध श्रेष्ठ देवताओं से पूजित होता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे पापप्रशमनस्तवो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्याय

(पापनाशक स्तोत्र)

पुलस्त्य उवाच

द्वितीयं पापशमनं स्तवं वक्ष्यामि ते मुने।
येन सम्यगधीतेन पापं नाशं तु गच्छति॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— हे मुनि! मैं आपसे पापों का शमन करने वाले दूसरे स्तोत्र के विषय में कहता हूँ। इसका भलीभाँति अध्ययन करने से पाप नष्ट हो जाता है।

मत्स्यं नमस्ये देवेशं कूर्मं गोविन्दमेव च।
हयशीर्षं नमस्येऽहं भवं विष्णुं त्रिविक्रमम्॥ २॥

मैं देवेश मत्स्य एवं कूर्मरूपधारी गोविन्द को नमस्कार करता हूँ। मैं हयशीर्ष, भव एवं त्रिविक्रम विष्णु को नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये माधवेशानौ हृषीकेशकुमारिणौ।
नारायणं नमस्येऽहं नमस्ते गरुडासनम्॥ ३॥

मै माधव, ईशान, हृषीकेश और कुमार को नमस्कार करता हूँ। मै नारायण को नमस्कार करता हूँ। मैं गरुड़ासन को नमस्कार करता हूँ।

ऊर्ध्वकेश नृसिंहं च रूपधारं कुरुध्वजम्।
कामपालमखण्डं च नमस्ये ब्राह्मणप्रियम्॥ ४॥

मैं ऊर्ध्वकेश, नरसिंह रूप धारण करने वाले, कुरुध्वज, कामपाल, अखण्ड और ब्राह्मणप्रिय देव को नमस्कार करता हूँ।

अजितं विश्वकर्माणं पुण्डरीकं द्विजप्रियम्।
हरिं शंभुं नमस्ये च ब्रह्माणं सप्रजापतिम्॥ ५॥

मैं अजित विश्वकर्मा, पुण्डरीक, द्विजप्रिय, हंस, शम्भु तथा प्रजापति सहित ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये शूलबाहुं च देवं चक्रधरं तथा।
शिवं विष्णुं सुवर्णाक्षं गोपतिं पीतवाससम्॥ ६॥

मैं शूलबाहु, चक्रधर, देव, शिव, विष्णु, सुवर्णाक्ष गोपति एवं पीतवासा को नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये च गदापाणिं नमस्ये च कुशेशयम्।
अर्धनारीश्वरं देवं नमस्ये पापनाशनम्॥ ७॥

मैं गदाधारी को नमस्कार करता हूँ। मैं कुशेशय को नमस्कार करता हूँ। मैं अर्धनारीश्वर तथा पापनाशक देव को नमस्कार करता हूँ।

गोपालं च सवैकुण्ठं नमस्ये चापराजितम्।
नमस्ये विष्णुरूपं च सौगन्धिं सर्वदाशिवम्॥ ८॥

मैं वैकुण्ठ सहित गोपाल तथा अपराजित को नमस्कार करता हूँ। मैं विश्वरूप, सौगन्धि, सदाशिव को नमस्कार करता हूँ।

पाञ्चालिकं हयग्रीवं स्वयम्भुवममरेश्वरम्।
नमस्ये पुष्कराक्षं च पयोगन्धिं च केशवम्॥ ९॥
अविमुक्तं च लोलं च ज्येष्ठेशं मध्यमं तथा।
उपशान्तं नमस्येऽहं मार्कण्डेयं सजम्बुकम्॥ १०
नमस्ये पद्मकिरणं नमस्ये वडवामुखम्।
कार्त्तिकेयं नमस्येऽहं बाह्लीकं शिखिनं तथा॥ ११॥

मैं पाञ्चालिक, हयग्रीव, स्वायम्भुव, अमरेश्वर, पुष्कराक्ष, पयोगन्धि और केशव को नमस्कार करता हूँ। मैं अविमुक्त, लोल, ज्येष्ठेश, मध्यम, उपशान्त तथा जम्बुक सहित मार्कण्डेय को नमस्कार करता हूँ। मैं पद्मकरिण को नमस्कार करता हूँ। मैं वडवामुख को नमस्कार करता हूँ। मैं कार्तिकेय वाह्लीक तथा शिखी को नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये स्थाणुमनघं नमस्ये वनमालिनम्।
नमस्ये लाङ्गलीशं च नमस्येऽहं श्रियः पतिम्॥ १२॥
नमस्ये च त्रिनयनं नमस्येहंव्यवाहनम्।
नमस्ये च त्रिसौवर्णं नमस्ये धरणीधरम्॥ १३॥

मैं स्थाणु एवं अनघ को नमस्कार करता हूँ। मैं वनमाली को नमस्कार करता हूँ। मैं लाङ्गलीश तथा लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिनेत्र को नमस्कार करता हूँ। मैं हव्यवाहन को नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिसौवर्ण को नमस्कार करता हूँ। तथा धरणीधर को नमस्कार करता हूँ।

त्रिणाचिकेतं ब्रह्मेशं नमस्ये शशिभूषणम्।
कपर्दिनं नमस्ये च सर्वामयविनाशनम्॥ १४॥
नमस्ये शशिनं सूर्यं ध्रुवं रुद्रं महौजसम्।
पद्मनाभं हिरण्याक्षं नमस्ये स्कन्दमव्ययम्॥ १५॥

मैं त्रिणाचिकेत, ब्रह्मेश तथा शशिभूषण को नमस्कार करता हूँ। मैं सर्वरोगविनाशक कपर्दी को नमस्कार करता हूँ। मैं चन्द्र, सूर्य ध्रुव तथा महान् ओजस्वी रुद्र को नमस्कार करता हूँ। मैं पद्मनाभ, हिरण्याक्ष तथा अव्यय स्कन्द को नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये भीमहंसौ च नमस्ये हाटकेश्वरम्।
सदाहंसं नमस्ये च नमस्ये प्राणतर्पणम्॥ १६॥
नमस्ये रुक्मकवचं महायोगिनमीश्वरम्।
नमस्ये श्रीनिवासं च नमस्ये पुरुषोत्तमम्॥ १७॥
नमस्ये च चंतुर्बाहुं नमस्ये वसुधाधिपम्।
वनस्पतिं पशुपतिं नमस्ये प्रभुमव्ययम्॥ १८॥

मैं भीम और हंस को नमस्कार करता हूँ। मैं हाटकेश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं सदाहंस को नमस्कार करता हूँ। तथा प्राणतर्पण को नमस्कार करता हूँ। मैं रुक्मकवच, महायोगी एवं ईश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं श्रीनिवास को नमस्कार करता हूँ तथा पुरुषोत्तम को नमस्कार करता हूँ। मैं चतुर्भुज देव को नमस्कार करता हूँ। मैं वसुधाधिप को नमस्कार करता हूँ। मैं वनस्पति, पशुपति और अव्यय प्रभु को नमस्कार करता हूँ।

श्रीकण्ठं वासुदेवं नीलकण्ठं सदण्डिनम्।
नमस्ये सर्वमनघं गौरीशं नकुलीश्वरम्॥ १९॥
मनोहरं कृष्णकेशं नमस्ये चक्रपाणिनम्।
यशोधनं महावाहुं नमस्ये च कुशप्रियम्॥ २०॥

मैं श्रीकण्ठ, वासुदेव, दण्डी सहित नीलकण्ठ सर्व, अनघ गौरीश तथा नकुलीश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं मनोहर कृष्णकेश तथा चक्रपाणि को नमस्कार करता हूँ। मैं यशोधर, महाबाहु और कुशप्रिय को नमस्कार करता हूँ।

भूधरं छादितगदं सुनेत्रं शूलशङ्खिनम्।
भद्राक्षं वीरभद्रं च नमस्ये शङ्कुकर्णिनम्॥ २१॥
वृषध्वजं महेशं च विश्वमित्रं शशिप्रभम्।
उपेन्द्रं चैव गोविन्दं नमस्ये पङ्कजप्रियम्॥ २२॥

मैं भूधर, छादितगद, सुनेत्र शूलशङ्खी, भद्राक्ष, वीरभद्र तथा शंकुकर्णिक को नमस्कार करतां हूँ। मैं वृषध्वज, महेश, विश्वामित्र, शशिप्रभ, उपेन्द्र गोविन्द तथा पंकजप्रिय को नमस्कार करता हूँ।

सहस्रशिरसं देवं नमस्ये कुन्दमालिनम्।
कालाग्निं रुद्रदेवेशं नमस्ये कृत्तिवाससम्॥ २३॥
नमस्ये छागलेशं च नमस्ये पङ्कजासनम्।
सहस्राक्षं कोकनदं नमस्ये हरिशङ्करम्॥ २४॥

मैं सहस्रशीर्ष तथा कुन्दमाली देव को नमस्कार करता हूँ। मैं कालाग्नि, रुद्रदेवेश तथा कृत्तिवासा को नमस्कार करता हूँ। मैं छागलेश को नमस्कार करता हूँ। मैं पंकजासन को नमस्कार करता हूँ। मैं सहस्राक्ष, कोकन्द तथा हरिशङ्कर को नमस्कार करता हूँ।

अगस्त्यं गरुडं विष्णुं कपिलं ब्रह्मवाङ्मयम्।
सनातनं च ब्रह्माणं नमस्ये ब्रह्मतत्परम्॥ २५॥
अप्रतर्क्यं चतुर्बाहुं सहस्रांशुं तपोमयम्।
नमस्ये धर्मराजानं देवं गरूडवाहनम्॥ २६॥

मैं अगस्त्य, गरुड़, विष्णु, कपिल, ब्रह्मवाङ्मय, सनातन ब्रह्मा तथा उस ब्रह्म तत्पर को नमस्कार करता हूँ। मैं अप्रतर्क्य, चतुर्भुज, सहस्रांशु, तपोमय, धर्मराज एवं गरुड़वाहन देव को नमस्कार करता हूँ।

सर्वभूतगतं शान्तं निर्मलं सर्वलक्षणम्।
महायोगिनमव्यक्तं नमस्ये पापनाशनम्॥ २६॥
निरञ्जनं निराकारं निर्गुणं निर्मलं पदम्।
नमस्ये पापहन्तारं शरण्यं शरणं व्रजे॥ २७॥

मैं समस्त भूतों में व्याप्त रहने वाले, शान्त, निर्मल, सर्वलक्षणसम्पन्न, महायोगी, अव्यक्त, पापनाशक, को नमस्कार करता हूँ। मैं निरंजन, निराकार, निर्गुण, निर्मलपदस्वरूप पापहारक को नमस्कार करता हूँ तथा शरण्य की शरण मे जाता हूँ।

एतत्पवित्रं परमं पुराणं
प्रोक्तं त्वगस्त्येन महर्षिणा च।
धन्यं यशस्यं बहुपापनाशनं
संकीर्तनात् स्मरणात् संश्रवाच्च॥ २९॥

महर्षि अगस्त्य ने इस परम पवित्र पुरातन स्तोत्र को कहा था। इसके कथन, स्मरण तथा श्रवण करने से

अनेक पापों का नाश होता है और मनुष्य धन्य एवं यशस्वी होता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे प्रह्लादतीर्थयात्रायां द्वितीयः पापनाशनस्तवो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

(भगवान वामन का जन्म)

पुलस्त्य उवाच–

गतेऽथ तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे।
कुरुक्षेत्रं समभ्यागादद्रष्टुं वैरोचनो बलिः॥१॥

पुलस्त्य ने कहा—दानवेश्वर प्रह्लाद के तीर्थयात्रा पर चले जाने पर विरोचन-पुत्र बलि यज्ञ करने के लिए कुरुक्षेत्र में आ गया।

तस्मिन् महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुगवः।
शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवान्॥२॥

उस महान् धार्मिक तीर्थ में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्र ने भार्गव परिवार के श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आमंत्रित किया।

भृगूनामन्त्र्यमाणान् वै श्रुत्वात्रेयाः सगौतमाः।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्यजुः कुरुजाङ्गलान्॥३॥

यह सुनकर कि भृगुओं को वहाँ आमन्त्रित किया गया है, गौतम सहित आत्रेयों ने तथा कौशिक व अंगिरा ऋषि ने कुरुजांगलों का त्याग कर दिया।

उत्तराशां प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रुकाम्।
शातद्रवे जले स्नात्वा विपाशां प्रययुस्ततः॥४॥

वे सब उत्तर दिशा में शतदुका नदी की ओर चले गए। वे शतदु के जल में स्नान करके पुनः विपाशा की ओर चले गए।

विज्ञाय तत्राप्यरतिं स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः।
प्रजग्मुः किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम्॥५॥

वहाँ भी संतुष्टि प्राप्त न करने के कारण वह स्नान और पितृदेवताओं का अर्चन करके, सूर्य की किरणों से निःसृष्ट पुण्य किरणा नदी की ओर चले गए।

तस्यां स्नात्वाऽर्च्य देवर्षे सर्व एव महर्षयः।
ऐरावतीं सुपुण्योदां स्नात्वा जग्मुरथेश्वरीम्॥६॥

उसमें स्नान, देवों की अर्चना के पश्चात् पुण्यसलिला ऐरावती में स्नान करके वे ईश्वरी नदी की ओर चले गए।

देविकाया जले स्नात्वा पयोष्ण्यां चैव तापसाः।
अवतीर्णा मुने स्नातुमात्रेयाद्याः शुभां नदीम्॥७॥

हे मुनि! देविका के जल में स्नान करके, आत्रेय आदि तपस्वीजन स्नान करने के लिये पवित्र पयोष्णी नदी में उतर गए।

ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिबिम्वमथात्मनः।
अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारकम्॥८॥
उन्मज्जने च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः।
ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि॥९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जल में निमग्न होने पर उन्होंने अपने अत्यंत आश्चर्यजनक प्रतिबिम्ब को देखा। जल से उन्मज्जन करने के पश्चात् पुनः प्रतिबिम्ब को देखा जिससे वह अत्यंत आश्चर्यचकित हो गए।

जग्मुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन् कथयन्तः परस्परम्।
चिन्तयन्तश्च सततं किमेतदिति विस्मिताः॥१०॥

हे ब्राह्मण! तदनन्तर स्नान करके बाहर आए वे सब महर्षिगण परस्पर वार्तालाप करते हुए और 'यह क्या है' ऐसा विचार करते हुये विस्मत होकर वहाँ से चले गये।

ततो दूरादपश्यन्त वनषण्डं सुविस्तृतम्।
वनं हरदगश्यामं खगध्वनिनिनादितम्॥११॥
अतितुङ्गतया व्योम आवृण्वानं नरोत्तमम्।
विस्तृताभिर्जटाभिस्तु अन्तर्भूमिं च नारद॥१२॥

हे नारद! तदनन्तर दूर से ही उन्होंने एक अत्यंत विशाल जंगल को देखा जो घने वृक्षों से परिपूर्ण होने के कारण शिव के गले के समान श्यामवर्ण का था; पक्षियों की ध्वनि से निनादित था, अत्यंत ऊँचा (वृक्षों के कारण) होने के कारण जिसने एक विशाल श्रेष्ठ पर्वत की भाँति आकाश को ढका हुआ था तथा विस्तृत जटाओं के कारण जो भूमि के भीतर प्रतीत हो रहा था।

काननं पुष्पितैर्वृक्षैरतिभाति समन्ततः।
दशार्द्धवर्णैः सुखदैर्नभस्तारागणैरिव॥१३॥

चारों ओर सुखदायी पंचवर्णीय पुष्पों से तथा सुखदायी वृक्षों से युक्त वह वन उसी प्रकार प्रतिभासित

हो रहा था जिस प्रकार तारागणों से युक्त नभमण्डल प्रतीत होता है।

तं दृष्ट्वा कमलैर्व्याप्तं पुण्डरीकैश्च शोभितम्।
तद्वत्कोकनदैर्व्याप्तं वनं पद्मवनं यथा॥ १४॥
प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलां ते ह्लादं परमं ययुः।
विविशुः प्रीतमनसो हंसा इव महासरः॥ १५॥

कमलों से व्याप्त पुण्डरीकों से सुशोभित तथा पद्मवन की भाँति रक्तकमलों से परिपूर्ण उस वन को देखकर उन्हें अत्यधिक परितुष्टि प्राप्त हुई और वे उस वन में उसी प्रकार प्रविष्ट हो गए जिस प्रकार हँस महासरोवर में प्रवेश कर जाते हैं ।

तन्मध्ये ददृशुः पुण्यमाश्रमं लोकपूजितम्।
चतुर्णां लोकपालानां वर्गाणां मुनिसत्तम॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस वन के मध्य में उन्होंने चारों वर्णों के लोकपालकों के लोकपूजित पवित्र आश्रम को देखा।

धर्माश्रमं प्राङ्मुखं तु पलाशविटपावृतम्।
प्रतीच्यभिमुखं ब्रह्मन् अर्थस्येक्षुवनावृतम्॥ १७॥
दक्षिणाभिमुखं काम्यं रम्भाशोकवनावृतम्।
उदङ्मुखं च मोक्षस्य शुद्धस्फटिकवर्चसम्॥ १८॥

हे ब्रह्मन्! पूर्व दिशा की ओर मुख वाला पलाश वृक्ष से आवृत धर्माश्रम, पश्चिमाभिमुख इक्षुवन से घिरा अर्थाश्रम, दक्षिणाभिमुख कदली एवं अशोक के वन से आवृत कामाश्रम तथा उत्तराभिमुख शुद्ध स्फुटिकतुल्य तेजस्वी मोक्षाश्रम स्थित था।

कृतान्ते त्वाश्रमी मोक्षः कामस्त्रेतान्तरे श्रमी।
आश्रम्यर्थो द्वापरान्ते तिष्यादौ धर्म आश्रमी॥ १९॥

सत्ययुग में आश्रम पर मोक्ष का अधिकार था; त्रेतायुग में काम का अधिकार था; द्वापर युग में अर्थ का अधिकार था तथा कलियुग में धर्म ने आश्रम पर अधिकार किया हुआ था।

तान्याश्रमाणि मुनयो दृष्ट्वात्रेयास्ततोऽव्ययाः।
तत्रैव च रतिं चक्रुरखण्डे सलिलाप्लुते॥ २०॥
धर्माद्यैर्भगवान् विष्णुरखण्ड इति विश्रुतः।
चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथः पूर्वमेव प्रतिष्ठितः॥ २१॥

आत्रेयादि अव्यय मुनियों ने उन आश्रमों को देखकर उस अखण्ड पर्वत पर आश्रय किया। इन धर्मादि के कारण ही भगवान् विष्णु अखण्ड माने जाते हैं-चार रूप वाले जगन्नाथ पहले ही प्रतिष्ठित हैं।

तमर्चयन्ति ऋषयो योगात्मानो बहुश्रुताः।
शुश्रूषयाऽथ तपसा ब्रह्मचर्येण नारद॥ २२॥

हे नारद! महाज्ञानी योगस्थ ऋषिगण शुश्रूषा, तपस्या और ब्रह्मचर्य से उनकी अर्चना करते हैं।

एवं ते न्यवसंस्तत्र समेता मुनयो वने।
असुरेभ्यस्तदा भीताः स्वाश्रितयाखण्डपर्वतम्॥ २३॥
तथाऽन्ये ब्राह्मणा ब्रह्मन् अश्मकुट्टा मरीचिपाः।
स्नात्वा जले हि कालिन्द्याः प्रजग्मुर्दक्षिणामुखाः॥ २४

असुरों से भयभीत वे मुनिगण सम्मिलित रूप से उस अखण्ड पर्वत का भलीभाँति आश्रयण कर रहने लगे। हे ब्राह्मण! अन्य अश्मकुट्ट और मरीचिप ब्राह्मण यमुना कालिन्दी के जल में स्नान करके दक्षिण की ओर चले गए।

अवन्तीविषयं प्राप्य विष्णुमासाद्य संस्थिताः।
विष्णोरपि प्रसादेन दुष्प्रवेशं महासुरैः॥ २५॥

वे अवन्ती नगरी पहुँचकर वहाँ विष्णु का आश्रय लेकर रहने लगे थे। क्योंकि विष्णु की कृपा से वह नगरी महासुरों के लिये दुर्गम (वह उसमें प्रवेश नहीं कर सकते थे) थी।

बालखिल्यादयो जग्मुरवशा दानवाद्भयात्।
रुद्रकोटिं समाश्रित्य स्थितास्ते ब्रह्मचारिणः॥ २६॥

बेचारे बालखिल्यादि ब्रह्मचारी दानव के भय से रुद्रकोटि का आश्रय लेकर रहने लगे।

एवं गतेषु विप्रेषु गौतमाङ्गिरसादिषु।
शुक्रस्तु भार्गवान् सर्वान् निन्ये यज्ञविधौ मुने॥ २७॥

हे मुनि! इस प्रकार गौतम एवं अंगिरा इत्यादि ब्राह्मणों के चले जाने पर शुक्र समस्त भार्गवों को यज्ञविधि के सम्पादन के लिए ले आए।

अधिष्ठिते भार्गवैस्तु महायज्ञेऽमितद्युते।
यज्ञदीक्षां बलेः शुक्रश्चकार विधिना स्वयम्॥ २८॥

उस अत्यंत तेजस्वी यज्ञ में समस्त भार्गवों के आसीन होने पर शुक्र ने स्वयं विधिपूर्वक बलि को यज्ञदीक्षा दी।

श्वेताम्बरधरो दैत्यः श्वेतमाल्यानुलेपनः।
मृगाजिनावृतः पृष्ठे बर्हिपत्रविचित्रितः॥ २९॥
समास्ते वितते यज्ञे सदस्यैरभिसंवृतः।
हयग्रीवप्रलम्बाद्यैर्मयबाणपुरोगमैः॥ ३०॥

दैत्य बलि श्वेताम्बर धारण किये हुए था; श्वेतमाला और अनुलेपन से युक्त था; मृगचर्म से आवृत था, तथा पीठ पर कुशाघास लगाए हुए सुशोभित हो रहा था। हयग्रीव, प्रलम्बादि मय और बाण के अनुयायियों से घिरा हुआ वह उस विशाल यज्ञ में बैठ गया।

पत्नी विन्ध्यावली तस्य दीक्षिता यज्ञकर्मणि।
ललनानां सहस्रस्य प्रधाना ऋषिकन्यका॥ ३१॥

उसकी पत्नी विन्ध्यावली जो ऋषिकन्या थी तथा एक सहस्र पत्नियों में मुख्य थी, यज्ञकर्म के लिये दीक्षित हुई।

शुक्रेणाश्वः श्वेतवर्णो मधुमासे सुलक्षणः।
महीं विहर्तुमुत्सृष्टस्तारकाक्षोऽन्वगाच्च तम्॥ ३२॥

शुक्र ने एक श्वेतवर्णीय शुभलक्षणों से युक्त अश्व को चैत्रमास में संपूर्ण पृथ्वी का विहरण करने के लिये छोड़ा। तारकाक्ष उस अश्व के पीछे चलने लगा।

एवमश्वे समुत्सृष्टे वितते यज्ञकर्मणि।
गते च मासत्रितये हूयमाने च पावके॥ ३३॥
पूज्यमानेषु दैत्येषु मिथुनस्थे दिवाकरे।
सुषुवे देवजननी माधवं वामनाकृतिम्॥ ३४॥

इस प्रकार अश्व को छोड़ने पर यज्ञकर्म के संपादित होते हुए तथा अग्नि में आहुति डालते हुए तीन मास व्यतीत हो गए। दैत्यों के इस प्रकार पूजे जाते हुए होने पर तथा सूर्य के मिथुन राशि में स्थित होने पर देवजननी ने वामनाकृति वाले माधव को जन्म दिया।

तं जातमात्रं भगवन्तमीशं
नारायणं लोकपतिं पुराणम्।
ब्रह्मा समभ्येत्य समं महर्षिभिः
स्तोत्रं जगादाथ विभोर्महर्षे॥ ३५॥

हे महर्षि! उन आदि, नारायण, लोकपति, भगवान् ईश के उत्पन्न होते ही महर्षियों सहित ब्रह्मा वहाँ पहुँचकर उन स्वामी की स्तुति करने लगे।

नमोऽस्तु ते माधव सत्त्वमूर्ते
नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वरूप।
नमोऽस्तु ते शत्रुवनेन्धनाग्ने
नमोऽस्तु वै पापमहादवाग्ने॥ ३६॥

हे सत्वमूर्ति माधव! आपको नमस्कार है। हे विश्वरूप! हे शाश्वत! आपको नमस्कार है। शत्रु वन को जलाने के लिए इंधनरूप अग्नि! आपको नमस्कार है। पापसमूह के लिये दावाग्नि! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्ते जगदाधार नमस्ते पुरुषोत्तम॥ ३७॥
नारायण जगन्मूर्ते जगन्नाथ गदाधर।
पीतवासः श्रियःकान्त जनार्दन नमोऽस्तु ते॥ ३८॥

हे पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है। हे जगदाधार! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे नारायण! हे जगत्मूर्ति! हे जगन्नाथ! हे गदाधर! हे पीतवस्त्रधारी! हे श्रीकान्त! हे जनार्दन! आपको नमस्कार है।

भवांस्त्राता च गोप्ता च विश्वात्मा सर्वगोऽव्ययः।
सर्वधारी धराधारी रूपधारी नमोऽस्तु ते॥ ३९॥

आप त्राता, गोप्ता, विश्वात्मा, सर्वगामी, अव्यय, सर्वाधार, धराधार और रूपधार हैं। आपको नमस्कार है।

वर्धस्व वर्द्धिताशेषत्रैलोक्य सुरपूजित।
कुरुष्व दैवतपते मघोनोऽश्रुप्रमार्जनम्॥ ४०॥

हे समस्त तीनों लोकों की वृद्धि करने वाले! हे देवताओं के द्वारा! पूजित आपकी वृद्धि हो। हे देवताओं के स्वामी! इन्द्र का अश्रुमार्जन कीजिए।

त्वं धाता च विधाता च संहर्ता त्वं महेश्वर।
महालय महायोगी योगशायिन् नमोऽस्तु ते॥ ४१॥

आप धाता हैं, आप विधाता हैं आप संहारकर्ता हैं, आप महेश्वर हैं। हे महालय! हे महायोगी! हे योगशायी! आपको नमस्कार है।

इत्थं स्तुतो जगन्नाथः सर्वात्मा सर्वगो हरिः।
प्रोवाच भगवान्मह्यं कुरूपनयनं विभो॥ ४२॥

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर जगन्नाथ, सर्वात्मा, सर्वगत हरि ने कहा— हे समर्थ! हे स्वामी! मेरा उपनयन कीजिए।

ततश्चकार देवस्य जातकर्मादिकाः क्रियाः।
भारद्वाजो महातेजा बार्हस्पत्यस्तपोधनः॥४३॥

तदनन्तर बृहस्पति के अवतार महातेजस्वी भरद्वाज मुनि ने देव की जातकर्मादि क्रियाएँ कीं।

व्रतबन्धं तथेशस्य कृतवान् सर्वशास्त्रवित्।
ततो ददुः प्रीतियुताः सर्व एव वरान् क्रमात्॥४४॥

सर्वशास्त्रज्ञाता मुनि ने उन ईश का व्रतवन्धन किया। तदनन्तर सबने प्रीतियुक्त होकर क्रमशः वर दिए।

यज्ञोपवीतं पुलहस्त्वहं च सितवाससी।
मृगाजिनं कुम्भयोनिर्भरद्वाजस्तु मेखलाम्॥४५॥

पुलह ने यज्ञोपवीत, मैंनें (पुलस्त्य ने) दो श्वेत वस्त्र, कुम्भयोनि (अगत्स्य) ने मृगचर्म तथा भरद्वाज ने मेखला दी।

पालाशमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
अक्षसूत्रं वारुणिस्तु कौश्यं वेदमथाङ्गिराः॥४६॥

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ने पलाश का दण्ड दिया; वरुण के पुत्र वसिष्ठ ने अक्षसूत्र तथा अंगिरा ने कौशेय प्रदान किया।

छत्रं प्रादाद् रघू राजा उपानद्युगलं नृगः।
कमण्डलुं बृहत्तेजाः प्रादाद्विष्णोर्बृहस्पतिः॥४७॥

राजा रघु ने छत्र प्रदान किया। भृगु ने जूते का जोड़ा प्रदान किया, महातेजस्वी बृहस्पति ने विष्णु के लिये कमण्डल प्रदान किया।

एवं कृतोपनयनो भगवान्भूतभावनः।
संस्तूयमानो ऋषिभिः साङ्गं वेदमधीयत॥४८॥

इस प्रकार उपनयन संस्कार के पश्चात् ऋषियों के द्वारा संस्तूयमान भगवान् भूतभावन ने समस्त वेदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर लिया।

भरद्वाजादाङ्गिरसात् सामवेदं महाध्वनिम्।
महदाख्यानसंयुक्तं गन्धर्वसहितं मुने॥४९॥

हे मुनि! अंगिरसवंशीय भरद्वाज से महद् आख्यानयुक्त गन्धर्ववेद सहित महाध्वनियों वाले सामवेद का अध्ययन किया।

मासेनैकेन भगवान् ज्ञातश्रुतिमहार्णवः।
लोकाचारप्रवृत्त्यर्थमभूच्छ्रुतिविशारदः॥५०॥

ज्ञान और वेदों के महासमुद्र भगवान् लोकचारप्रवृत्ति के लिए एक मास में ही विशारद हो गए।

सर्वशास्त्रेषु नैपुण्यं गत्वा देवोऽक्षयोऽव्ययः।
प्रोवाच ब्राह्मणश्रेष्ठं भरद्वाजमिदं वचः॥५१॥

समस्त शास्त्रों में निपुणता को प्राप्त अक्षय अव्यय देव ने ब्राह्मणश्रेष्ठ भरद्वाज से इस प्रकार के वचन कहे—

श्रीवामन उवाच

ब्रह्मन् व्रजामि देह्याज्ञां कुरुक्षेत्रं महोदयम्।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्त्तते॥५२॥

श्रीवामन ने कहा— हे ब्राह्मण! आज्ञा दीजिए! मैं महासमृद्धिशाली कुरुक्षेत्र की ओर जाता हूँ जहाँ दैत्यपति का अश्वमेध यज्ञ संपादित हो रहा है।

समाविष्टानि पश्यस्व तेजांसि पृथिवीतले।
ये संनिधानाः सततं मदंशाः पुण्यवर्धनाः।
तेनाहं प्रतिजानामि कुरुक्षेत्रं गतो बलिः॥५३॥

देखिये, पृथ्वीतल पर जो पुण्यवर्धक मेरे स्थान हैं उनमें तेजों का समावेश हो रहा है। अतः मुझे यह ज्ञात हो रहा है कि बलि कुरुक्षेत्र में स्थित है।

भारद्वाज उवाच

स्वेच्छया तिष्ठ वा गच्छ नाहमाज्ञापयामि ते।
गमिष्यामो वयं विष्णो बलेरध्वरं मा खिद॥५४॥

भारद्वाज बोले—हे विष्णु! आप स्वेच्छा से ठहरिये या जाइये, मैं आपको आज्ञा नहीं दे सकता। हम सब बली के यज्ञ में जाते हैं; आप खिन्न मत होइये!

यद्भवन्तमहं देव परिपृच्छामि तद् वद।
केषु केषु विभो नित्यं स्थानेषु पुरुषोत्तम।
सान्निध्यं भवतो ब्रूहि ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः॥५५॥

हे देव! हे पुरुषोत्तम! मैं आपसे पूछता हूँ; कृपया बताइये! हे स्वामी! किन-किन स्थानों पर आपका नित्य सान्निध्य प्राप्त होता है? मैं वस्तुतः जानना चाहता हूँ!

वामन उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि येषु येषु गुरो अहम्।
निवसामि सुपुण्येषु स्थानेषु बहुरूपवान्॥५६॥

विष्णु ने कहा— हे गुरु! सुनो! मैं बताता हूँ कि बहुरूपधारी मैं किन-किन पुण्य स्थानों पर नित्य निवास करता हूँ।

ममावतारैर्वसुधा नभस्तलं
पातालमम्भोनिधयो दिवञ्च।
दिशः समस्ता गिरयोऽम्बुदाश्च
व्याप्ता भरद्वाज ममानुरूपैः॥५७॥

हे भरद्वाज! विविध रूप वाले मेरे अवतारों से यह पृथ्वी, नभ, पाताल, समुद्र, द्युलोक, समस्त दिशाएँ, पर्वत तथा मेघ सभी व्याप्त हैं।

ये दिव्या ये च भौमा जलगगनचराः स्थावरा जङ्गमाश्च
सेन्द्राः सार्काः सचन्द्रा यमवसुवरुणा ह्यग्नयः सर्वपालाः।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्तां द्विजखगसहिता मूर्तिमन्तो ह्यमूर्ते
ते सर्वे मत्प्रसूता बहुविविधगुणाः पूरणार्थं पृथिव्याः॥५८

जो भी दिव्य, भूमि पर रहने वाले, जल और नभ में विचरण करने वाले, स्थान पर जंगम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वसु, वरुण अथवा अमूर्तिमान् उन विविधगुणों संयुक्त को मैंने इसी पृथ्वी को परिपूर्ण करने के लिए उत्पन्न किया है।

एते हि मुख्याः सुरसिद्धदानवैः
पूज्यास्तथा संनिहिता महीतले।
यैर्दृष्टमात्रैः सहसैव नाशं
प्रयाति पापं द्विजवर्य कीर्तनैः॥५९॥

पृथ्वी पर स्थित ये सभी मुख्य पदार्थ देवों, सिद्धों एवं दानवों से पूजनीय हैं। हे द्विजवर्य! इनके कीर्तन एवं दर्शन मात्र से पाप सहसा नष्ट हो जाता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारसंवादे प्रह्लादतीर्थयात्रायां वामनप्रादुर्भावे वामनजन्म नाम नवाशीतितमोऽध्यायः॥८९॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

(वामन द्वारा कहे गए स्वस्थानों का वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

आद्यं मात्स्यं महद्रूपं संस्थितं मानसे ह्रदे।
सर्वपापक्षयकरं कीर्तनस्पर्शनादिभिः॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा— प्रथम महान् रूप मत्स्य है जो मानस सरोवर में प्रतिष्ठित है तथा जो पूजन और स्पर्शन से समस्त पापों को नष्ट करने वाला है।

कौर्ममन्यत्सन्निधानं कौशिक्यां पापनाशनम्।
हयशीर्षं च कृष्णांशे गोविन्दं हस्तिनापुरे॥२॥

'कूर्म' रूप कौशिकी नदी में सन्निहित है जो पापों का नाशक है। हयशीर्ष रूप कृष्णांश में तथा गोविन्द रूप हस्तिनापुर में है।

त्रिविक्रमं च कालिन्द्यां लिङ्गभेदे भवं विभुम्।
केदारे माधवं शौरिं कुब्जाम्रे हृष्टमूर्धजम्॥३॥

त्रिविक्रम रूप कालिन्दी नदी में, सर्वशक्तिशाली 'भव' रूप लिंगभेद में, माधव शौरी केदार में तथा हृष्टमूर्धज कुब्जाम्र में है।

नारायणं बदर्यां च वाराहे गरुडासनम्।
जयेशं भद्रकर्णे च विपाशायां द्विजप्रियम्॥४॥

नारायण रूप बद्रिकाश्रम में, गरुड़ासन रूप वाराह में, जयंश भद्रकर्ण में तथा द्विजप्रिय विपाशा में है।

रूपधारमिरावत्यां कुरुक्षेत्र कुरुध्वजम्।
कृतशौचे नृसिंहं च गोकर्णे विश्वकर्मिणम्॥५॥

रूपधार रूप इरावती में तथा कुरुध्वज रूप कुरुक्षेत्र में है। नृसिंह रूप कृतशौच में तथाँ विश्वकर्मी रूप गोकर्ण में है।

प्राचीने कामपालं च पुण्डरीकं महाम्भसि।
विशाखयूपे ह्यजितं हंसं हंसपदे तथा॥६॥

कामपाल रूप प्राचीन में तथा पुण्डरीक रूप महाम्भस में है। अजित रूप विशाखयूप तथा 'हंसरूप' हंसपद में है।

पयोष्णायामखण्डं च वितस्तायां कुमारिलम्।
मणिमत्पर्वते शंभुं ब्रह्मण्ये च प्रजापतिम्॥७॥

अखण्ड रूप पयोष्णी नदी में, कुमारिल रूप विवस्ता नदी में, शंभु रूप मणिमान् पर्वत में तथा प्रजापति रूप ब्रह्मण्य में है।

मधुनद्यां चक्रधरं शूलबाहुं हिमालये।
विद्धि विष्णुं मुनिश्रेष्ठ स्थितमोषधिसानुनि॥ ८॥

चक्रधर रूप मधुनदी में, शूलबाहु हिमालय में, तथा हे मुनिश्रेष्ठ! विष्णु को आप औषधिसानु में प्रतिष्ठित जानिये।

भृगुतुङ्गे सुवर्णाक्षं नैमिषे पीतवाससम्।
गयायां गोपतिं देवं गदापाणिनमीश्वरम्॥ ९॥

सुवर्णाक्ष को भृगुतुंग में, पीतवासा रूप को नैमिष में तथा गदापाणि ईश्वर गोपति देव को गया में जानिये।

त्रैलोक्यनाथं वरदं गोप्रतारे कुशेशयम्।
अर्द्धनारीश्वरं पुण्ये माहेन्द्रे दक्षिणे गिरौ॥ १०॥

त्रैलोक्यनाथ वरदायक कुशेशय रूप गोप्रचार में तथा अर्द्धनारीश्वर रूप पुण्यशाली महेन्द्र दक्षिण पर्वत पर है।

गोपालमुत्तरे नित्यं महेन्द्रे सोमपीथिनम्।
वैकुण्ठमपि सह्याद्रौ पारियात्रेऽपराजितम्॥ ११॥

गोपाल रूप उत्तर में तथा सोमपीथी रूप नित्य महेन्द्र पर हैं। वैकुण्ठ रूप सह्याद्रि पर तथा अपराजित रूप पारियात्र पर है।

कशेरुदेशे देवेशं विश्वरूपं तपोधनम्।
मलयाद्रौ च सौगन्धिं विन्ध्यपादे सदाशिवम्॥ १२॥

तपोधनी देवेश विश्वरूप को कशेरुदेश में, सौगंधी को मलयपर्वत पर तथा सदाशिव रूप को विन्ध्यपाद में (जानिये)

अवन्तिविषये विष्णु निषधेष्वमरेश्वरम्।
पाञ्चालिकं च ब्रह्मर्षे पाञ्चालेषु व्यवस्थितम्॥ १३॥

हे ब्रह्मर्षि! विष्णुरूप अवन्तिविषय में, अमेरश्वर रूप निषध में तथा पाञ्चालिक रूप पाञ्चाल में अवस्थित है।

महोदये हयग्रीवं प्रयागे योगशायिनम्।
स्वयंभुवं मधुवने अयोगन्धिं च पुष्करे॥ १४॥

हयग्रीव रूप महोदय में, योगशायी रूप प्रयाग में, स्वयंभू रूप मधुवन में तथा अयोगन्धि रूप पुष्कर में है।

तथैव विप्रप्रवरं वाराणस्यां च केशवम्।
अविमुक्तकमत्रैव लोलश्चात्रैव गीयते॥ १५॥

हे विप्रश्रेष्ठ! उसी प्रकार केशव रूप वाराणसी में है, अविमुक्तक एवं लोकरूप भी यहीं माने जाते, हैं।

पद्मायां पद्मकिरणं समुद्रे वडवामुखम्।
कुमारधारे बाह्लीशं कार्त्तिकेयं च बर्हिणम्१६॥

पद्मकिरण पद्मा में और वडवामुख समुद्र में, वाह्लीश, कार्तिकिय तथा बर्हिन् कुमारधार में हैं।

अजेशे शम्भुमनघं स्थाणुं च कुरुजाङ्गले।
वनमालिनमाहुर्मां किष्किन्धावासिनो जनाः॥ १७॥

अनघ एवं शंभु ओजस् में, स्थाणु कुरुजांगल में तथा किंष्किन्धावासी मुझे वनमाली कहते हैं।

वीरं कुवलयारूढं शङ्खचक्रगदाधरम्।
श्रीवत्साङ्कमुदाराङ्गं नर्मदायां श्रियः पतिम्॥ १८॥

वीर कुवलयारूढ़ शङ्खचक्र गदाधर श्री वत्सांक, उदारांग तथा श्रीपति नर्मदा में हैं।

माहिष्मत्यां त्रिनयनं तत्रैव च हुताशनम्।
अर्बुदे च त्रिसौपर्णं क्ष्माधरं सूकारचले॥ १९॥

त्रियनयन तथा हुताशन रूप माहिष्मती में, त्रिसौपर्ण अर्बुदा में तथा क्षमाधर सूकराचल में है।

त्रिणाचिकेतं ब्रह्मर्षे प्रभासे च कपर्दिनम्।
तत्रैवात्रापि विख्यातं तृतीयं शशिशेखरम्॥ २०॥

हे बह्मर्षि! त्रिनाचिकेत, कपर्दी, तथा विख्यात तृतीय शशिशेखर प्रभास में हैं।

उदये शशिनं सूर्यं ध्रुवं च त्रितयं स्थितम्।
हेमकूटे हिरण्याक्षं स्कन्दं शरवणे मुने॥ २१॥

हे मुनि! शशिरूप, सूर्यरूप तथा ध्रुवरूप ये तीनों उदय गिरि पर हैं। हिरण्याक्ष हेमकूट पर है तथा स्कन्द शरवन में है।

महालये स्मृतं रुद्रमुत्तरेषु कुरुष्वथ।
पद्मनाभं मुनिश्रेष्ठ सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ २२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! रुद्र रूप महालय में तथा समस्त सुखों को देने वाला पद्मनाभ रूप उत्तरकुरुओं में है।

सप्तगोदावरे ब्रह्मन्विख्यातं हाटकेश्वरम्।
तत्रैव च महाहंसं प्रयागेऽपि वटेश्वरम्॥ २३॥

हे ब्राह्मण! प्रख्यात हाटकेश्वर सप्तगोदावरी में है। प्रयाग में ही महाहंस और वहेश्वर रूप हैं।

शोणे च रुक्मकवचं कुण्डिने घ्राणतर्पणम्।
भिल्लीवने महायोगं माद्रेषु पुरुषोत्तमम्॥ २४॥

रुक्मकवच रूप शोण में, घ्राणतर्पण रूप कुण्डिन में, महायोग रूप भिल्लीवन में तथा पुरुषोतम रूप माद्र प्रदेश में है।

प्लक्षावतरणे विश्वं श्रीनिवासं द्विजोत्तम।
शूर्पारके चतुर्बाहुं मगधायां सुधापतिम्॥ २५॥

हे द्विजोत्तम! विश्वरूप एवं श्रीनिवासरूप प्लक्षावतरण में, चतुर्बाहुरूप शूर्पासा में तथा सुधापतिरूप मगधा में है।

गिरिव्रिजे पशुपतिं श्रीकण्ठं यमुनातटे।
वनस्पतिं समाख्यातं दण्डकारण्यवासिनम्॥ २६॥

पशुपति रूप गिरिवज्र में, श्रीकण्ठ रूप यमुनातट में तथा वनस्पति रूप दण्डकारण्यवासियों में अत्यंत प्रसिद्ध है।

कालिञ्जरे नीलकण्ठं सरय्वां शंभुमुत्तमम्।
हंसयुक्तं महाकोश्यां सर्वपापप्रणाशनम्॥ २७॥

नीलकण्ठ रूप कलिञ्जर में, उत्तमशंभु रूप सरयू में तथा सर्वपापनाशक हंसयुक्त रूप महाकोशी में है।

गोकर्णे दक्षिणे शर्वं वासुदेवं प्रजामुखे।
विन्ध्यशृङ्गे महाशौरिं कन्यायां मधुसूदनम्॥ २८॥

दक्षिण गोकर्ण में शर्प रूप, प्रजामुख में वासुदेव, विन्ध्यश्रृंग में महाशौरी तथा मधुसूदन रूप कन्या में है।

त्रिकूटशिखरे ब्रह्मन् चक्रपाणिनमीश्वरम्।
लौहदण्डे हृषीकेशं कोसलायां मनोहरम्॥ २९॥

हे ब्राह्मण! त्रिकूटशिखर पर ईश्वर चक्रपाणि रूप, हृषीकेश रूप लौहदण्ड में तथा मनोहर रूप कोसला में है।

महाबाहुं सुराष्ट्रे च नवराष्ट्रे यशोधरम्।
भूधरं देविकानद्यां महोदायां कुशप्रियम्॥ ३०॥

सुराष्ट्र में महाबाहु रूप, नवराष्ट्र में यशोधर रूप, देविकानदी में भूधर रूप तथा महोदा में कुशप्रिय रूप है।

गोमत्यां छादितगदं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम्।
सुनेत्रं सैन्धवारण्ये शूरं शूरपुरे स्थितम्॥ ३१॥

छादितगत रूप गोमती में, शङ्खीरूप शङ्खोद्धार में, सुनेत्र रूप सैंधवाण्य में तथा शूर रूप शुरपुर में स्थित है।

रुद्राख्यं च हिरण्वत्यां वीरभद्रं त्रिविष्टपे।
शङ्कुकर्णं च भीमायां भीमं शालवने विदुः॥ ३२॥
विश्वामित्रं च गदितं कैलासे वृषभध्वजम्।
महेशं महिलाशैले कामरूपे शशिप्रभम्॥ ३३॥

रुद्रनामक रूप हिरण्वती में, वीरभद्र रूप त्रिविष्टप में, शंकुकर्ण रूप भीमा में, भीमरूप शालवन में तथा विश्वामित्र रूप भी वहीं माना जाता है। वृषभध्वज रूप कैलाश पर, महेश रूप महिला पर्वत पर तथा शशिप्रभा रूप कामरूप में है।

बलभ्यामपि गोमित्रं कटाहे पङ्खजप्रियम्।
उपेन्द्रं सिंहलद्वीपे शक्राह्वे कुन्दमालिनम्॥ ३४॥

गोभित्ररूप बलभी में तथा पंखजप्रिय रूप कटाह में है। उपेन्द्र रूप सिंहलद्वीप में तथा कुन्दमाली रूप शक्रद्वीप में है।

रसातले च विख्यातं सहस्रशिरसं मुने।
कालाग्निरुद्रं तत्रैव तथाऽन्यं कृत्तिवाससम्॥ ३५॥

हे मुनि! सुविख्यात सहस्रशिर रूप रसातल में तथा कालागि रुद्र एवं अन्य कृत्तिवासस् रूप भी वहीं है।

सुतले कूर्ममचलं वितले पङ्कजासनम्।
महातले गुरो ख्यातं देवेशं छागलेश्वरम्॥ ३६॥

हे गुरु! कूर्म और अचल रूप सुतल में तथा पंकजासन रूप वितल में है। प्रख्यात देवेश रूप एवं छागलेश्वर रूप महातल में है।

तले सहस्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम्।
सहस्राक्षं परिख्यातं मुसलाकृष्टदानवम्॥ ३७॥

सहस्रचरण रूप, सहस्रभुजरूप, ईश्वररूप विख्यात सहस्राक्षरूप तथा मुसलाकृष्टदानव रूप तल पर स्थित हैं।

पाताले योगिनामीशं स्थितञ्च हरिशङ्करम्।
धरातले कोकनदं मेदिन्यां चक्रपाणिनम्॥ ३८॥

योगीश रूप तथा हरिशङ्कररूप पाताल में स्थित हैं। कोकनदरूप धरातल पर तथा चक्रपाणि रूप धरती पर है।

भुवर्लोके च गरुडं स्वर्लोके विष्णुमव्ययम्।
महर्ल्लोके तथाऽगस्त्यं कपिलं च जने स्थितम्॥ ३९॥

गरुड़ रूप भुवःलोक में, अव्यय विष्णुरूप स्वःलोक में, अगस्त्य रूप महल्लोक में तथा कपिल रूप जन लोक में स्थित है।

तपोलोकेऽखिलं ब्रह्मन्वाङ्मयं सत्यसंयुतम्।
ब्रह्माणं ब्रह्मलोके च सप्तमे वै प्रतिष्ठितम्॥ ४०॥

हे ब्राह्मण! अखिलरूप, वाङ्मय रूप तथा सत्यसंयुत रूप तपःलोक में तथा ब्रह्मा रूप सप्तम ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है।

सनातनं तथा शैवे परं ब्रह्म च वैष्णवे।
अप्रतर्क्यं निरालम्बे निराकाशे तपोमयम्॥ ४१॥

सनातन रूप शैवलोक में, परब्रह्म रूप वैष्णव लोक में, अप्रतर्क्य रूप निरालम्ब में तथा तपोमय रूप निराकाश में है।

जम्बूद्वीपे चतुर्बाहुं कुशद्वीपे कुशेशयम्।
प्लक्षद्वीपे मुनिश्रेष्ठ ख्यातं गरुडवाहनम्॥ ४२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! चतुर्बाहु रूप जम्बूद्वीप में, कुशेशयरूप कुशद्वीप में तथा प्रख्यात गरुड़वाहन रूप प्लक्षद्वीप में है।

पद्मनाभं तथा क्रौञ्चे शाल्मले वृषभध्वजम्।
सहस्रांशुः स्थितः शाके धर्मराट् पुष्करे स्थितः॥ ४३॥

पद्मनाभ रूप क्रौञ्च में, वृषभध्वज रूप शाल्मल में, सहस्रांशु रूप शाक में तथा धर्मराजरूप पुष्कर में स्थित हैं।

तथा पृथिव्यां ब्रह्मर्षे शालग्रामे स्थितोऽस्म्यहम्।
सजलस्थलपर्यन्तं चरेषु स्थावरेषु च॥ ४४॥

हे ब्रह्मर्षि! इसी प्रकार पृथ्वी पर मैं शालग्राम में तथा जल और स्थल पर्यन्त समस्त स्थावरों और जंगमों में स्थित हूँ।

एतानि पुण्यानि ममालयानि
ब्रह्मन् पुराणानि सनातनानि।
धर्मप्रदानीह महौजसानि
संकीर्तनीयान्यघनाशनानि॥ ४५॥

हे ब्राह्मण! ये सब मेरे निवास हैं। ये पुण्यशाली हैं, पुरातन हैं, सनातन हैं, धर्मप्रदायक हैं, महाशक्तिशाली हैं, संकीर्तनीय तथा पापों का नाश करने वाले हैं।

सकीर्तनात् स्मरणाद् दर्शनाच्च
संस्पर्शनादेव च देवतायाः।
धर्मोऽर्थकामाद्यपवर्गमेव
लभन्ति देवा मनुजाःससाध्याः॥ ४६॥

देवता, मनुष्य तथा साध्यगण देवता के संकीर्तन, स्मरण, दर्शन और संस्पर्शन से धर्म अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

एतानि तुभ्यं विनिवेदितानि
ममालयानीह तपोमयानि।
उत्तिष्ठ गच्छामि महासुरस्य
यज्ञं सुराणां हि हिताय विप्र॥ ४७॥

यह सब यहाँ मैंने अपन तपोमय निवासों के विषय में तुम्हें बताया। हे विप्र! उठो! मैं देवताओं के हित के लिए महासुर (बलि) के यज्ञ में जाता हूँ!

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं महर्षे
विष्णुर्भरद्वाजमृषिं महात्मा।
विलासलीलागमनो गिरीन्द्रात्
स चाभ्यगच्छत् कुरुजाङ्गलं हि॥ ४८॥

पुलस्त्य ने कहा— हे महर्षि! भरद्वाज ऋषि से यह कहकर वह महात्मा विष्णु विलास एवं लीला के हेतु उस पर्वत से कुरुजांगल की ओर चले गए।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे स्वस्थानकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

(शुक्राचार्य और बलि का संवाद)

पुलस्त्य उवाच

ततः समागच्छति वासुदेवे
मही चकम्पे गिरयश्च चेलुः।

क्षुब्धाः समुद्रा दिवि ऋक्षमण्डलो
वभौ विपर्यस्तगतिर्महर्षे॥ १॥

पुलस्त्य ने कहा— वासुदेव जब कुरुजांगल की ओर आ रहे थे तब पृथ्वी कंपायमान हो गई, पर्वत चलायमान हो गए, समुद्र विक्षुब्ध हो गए तथा आकाश में नक्षत्रमण्डल विपरीत गति से चमकने लगा।

यज्ञः समागात् परमाकुलत्वं
न वेद्मि किं मे मधुहा करिष्यति।
यथा प्रदग्धोऽस्मि महेश्वरेण
किं मां न संधक्ष्यति वासुदेवः॥ २॥

यज्ञ यह सोचते हुए परम व्याकुल हो गया कि मैं नहीं जानता कि मधुसूदन मेरे साथ क्या व्यवहार करेंगें! क्या वासुदेव मुझे उसी प्रकार भस्मीभूत न ही कर दें जिस प्रकार महेश्वर ने मुझे जला डाला था!

ऋक्सामन्त्राहुतिभिर्हुताभि-
र्वितानकीयान् ज्वलनास्तु भागान्।
भक्त्या द्विजेन्द्रैरपि संप्रदत्तानैव
नैव प्रतीच्छन्ति विभोर्भयेन॥ ३॥

सर्वशक्तिशाली विष्णु के भय से अग्नि की ज्वालाओं ने ऋक् और साम के मंत्रों की आहुतियों से आहूत एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा भक्तिपूर्वक संप्रतिपादित आहूतियों को स्वीकार नहीं किया।

तान् दृष्ट्वा घोररूपांस्तु उत्पातान् दानवेश्वरः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ ४॥

उन भयानक उत्पातों को देखकर दानवेश्वर बलि ने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर दैत्यगुरु शुक्र से पूछा—

किमर्थमाचार्य मही सशैला
रम्भेव वाताभिहता चचाल।
किमासुरीयान् सुहुतानपीह
भागान् न गृह्णन्ति हुताशनाश्च॥ ५॥

हे आचार्य! पर्वतों सहित पृथ्वीवायु के द्वारा अभिहत वृक्ष की भाँति क्यों चलायमान हो रही है। और अग्नि की ज्वालाएँ भली-भाँति आहूत असुरों की आहुतियों को भी स्वीकार क्यों नहीं कर रहीं?

क्षुब्धाः किमर्थं मकरालयाश्च भो
ऋक्षा न खे किं प्रचरन्ति पूर्ववत्।
दिशः किमर्थं तमसा परिप्लुता
दोषेण कस्याद्य वदस्व मे गुरो॥ ६॥

समुद्र किस कारण से क्षुब्ध हो रहे हैं? आकाश में नक्षत्रमण्डल पूर्ववत् गतिमान क्यों नहीं हैं? दिशाएँ अंधकारावृत्त क्यों हो रही हैं? हे गुरु! मेरे किस अपराध से यह सब हो रहा है, कृपया मुझे बताइये!

पुलस्त्य उवाच

शुक्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य विरोचनसुतेरितम्।
अथ ज्ञात्वा कारणं च बलिं वचनमब्रवीत्॥ ७॥

पुलस्त्य ने कहा— शुक्र ने विरोचनपुत्र बलि के द्वारा कहे गए वाक्यों को सुना और उसके कारण को जानकर बलि से कहा—

शुक्र उवाच

शृण्वद्य दैत्येश्वर येन भागान्
नामी प्रतीच्छन्ति हि आसुरीयान्।
हुताशना मन्त्रहुतानपीह
नूनं समागच्छति वासुदेवः॥ ८॥
तदङ्घ्रिविक्षेपमपारयन्ती
मही सशैला चलिता दितीश।
तस्यां चलत्यां मकरालयामी
उद्वृत्तवेला दितिजाद्य जाताः॥ ९॥

शुक्र ने कहा— हे दैत्येश्वर! निश्चय ही वासुदेव यहाँ आ रहे हैं। सुनो जिस कारण से यज्ञाग्नि मन्त्राहूत होने पर भी असुर की आहुतियों को ग्रहण नहीं कर रही हैं- हे दितीश! उनके पाद-प्रक्षेप को सहन न करती हुई पृथ्वी पर्वतों सहित चलायमान हो रही है। हे असुर! पृथ्वी के चलायमान होने पर समुद्र भी उद्वेलित हो (सीमा पार कर गए हैं) गए हैं।

पुलस्त्य उवाच

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्गवमब्रवीत।
धर्मं सत्यं च पथ्यं च सर्वोत्साहसमीरितम्॥ १०॥

पुलस्त्य ने कहा— शुक्र के वचन को सुनकर बलि ने

भार्गव से निम्न धर्मयुक्त, सत्ययुक्त तथा साहसयुक्त वचन कहे—

बलिरुवाच

आयाते वासुदेवे वद मम भगवन् धर्मकामार्थतत्त्वं
किं कार्यं किं च देयं मणिकनकमथो भूगजाश्वादिकं वा।
किं वा वाच्यं मुरारेर्निजहितमथवा तद्धितं वा प्रयुञ्जे
तथ्यं पथ्यं प्रियं भो मम वद शुभदं तत्करिष्ये न चान्यत्॥

बलि ने कहा— हे भगवन्! वासुदेव के आने पर मेरे करने योग्य धर्म, काम एएवं अर्थ के तत्त्व को बतलाएँ। मैं उन्हें ममि, स्वर्ण, पृथ्वी, हाथी अथवा अश्व में से क्या दान करूँ? मैं मुरारि से क्या कहूँ? अपना अथवा उनका क्या हितसाधन करूँ? आप मुझे हितकारी, शुभ तथा प्रिय तथ्य बतलाएँ। मैं वही करूँगा, कुछ अन्य नहीं करूँगा।

पुलस्त्य उवाच

तद्वाक्यं भार्गवः श्रुत्वा दैत्यनाथेरितं महत्।
विचिन्त्य नारद प्राह भूतभव्यविदीश्वरः॥ १२॥

त्वया कृता यज्ञभुजोऽसुरेन्द्रा
बहिष्कृता ये श्रुतिदृष्टमार्गाः।
श्रुतिप्रमाणं मखभोजिनो बहिः
सुरास्तदर्थं हरिरभ्युपैति॥ १३॥

पुलस्त्य ने कहा— हे नारद! दैत्य के द्वारा कहे गए उस श्रेष्ठ वचन को सुनकर भूत और भविष्य को भली-भाँति जानने वाले भार्गव ने सोच विचार कर कहा। हे बलि! जो वेद-प्रतिपादित मार्ग से (यज्ञभाग से) बहिष्कृत थे वे असुरेन्द्र आपके द्वारा यज्ञभाग भोक्ता बना दिए गए हैं; तथा श्रुतिप्रमाण के अनुसार वह देवता जो यज्ञभाग के भोक्ता थे बहिष्कृत कर दिए गए हैं। इसीलिए विष्णु यहाँ आ रहे हैं।

तस्याध्वरं दैत्यसमागतस्य
कार्यं शृणु त्वं परिपृच्छसे यत्।
कार्यं न देयं हि विभो तृणाग्रं
यदध्वरे भूकनकादिकं वा॥ १४॥

हे दैत्य! हे सर्वसमर्थ! यदि तुम विष्णु के यज्ञ में आने पर क्या करना चाहिये यह पूछते हो तो, मेरा मानना है कि भूमि और स्वर्णादि की तो बात ही क्या, उन्हें प्रमाण भी नहीं देना चाहिये!

वाच्यं तथा साम निरर्थकं विभो
कस्ते वरं दातुमलं हि शक्नुयात्।
यस्योदरे भूर्भुवनाकपाल-
रसातलेशा निवसन्ति नित्यशः॥ १५॥

तुम्हें उनसे इस प्रकार के शान्त और निरर्थक वचन बोलने चाहिये— हे सर्वसमर्थ! आप को कौन कुछ भी दे सकता है जिसके उदर में भूः भुवः और स्वर्ग के अधिपति तथा रसातल के स्वामी नित्य निवास करते हैं।

बलिरुवाच

मया न चोक्तं वचनं हि भार्गव
न चास्ति मह्यं न च दातुमुत्सहे।
समागतेऽप्यर्थिनि हीनवृत्ते
जनार्दने लोकपतौ कथं तु॥ १६॥

बलि ने कहा— हे भार्गव! किसी हीनवृत्ति याचक के आने पर भी मैंने ऐसा कभी नहीं कहा कि मेरे पास ऐसा भी कुछ है जिसे मैं दान नहीं कर सकता। तो फिर लोकपति विष्णु के आने पर मैं ऐसा कैसे कह सकता हूँ।

एवं च श्रूयते श्लोकः सतां कथयतां विभो।
सद्भावो ब्राह्मणेष्वेव कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता।
दृश्यते हि तथा तच्च सत्यं ब्राह्मणसत्तम॥ १७॥

हे विभु! सज्जनों के मुख से यह श्लोक सुना जाता है कि समृद्धि तथा कल्याण के इच्छुक व्यक्तियों को ब्राह्मणों का आदर करना चाहिये। हे ब्राह्मण! और यही सत्य भी प्रतीत होता है।

पूर्वाभ्यासेन कर्माणि संभवन्ति नृणां स्फुटम्।
वाक्कायमानसानीह योन्यन्तरगतान्यपि॥ १८॥

मनुष्यों के मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म पूर्व जन्म के अभ्यासों से प्रभावित होते हैं; चाहे वे मनुष्य अन्यान्य जन्मों में भी चले जाएँ—

किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ पौराणी न श्रुता कथा।
या वृत्ता मलये पूर्वं कोशकारसुतस्य तु॥ १९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! क्या आपने वह प्राचीन कथा नहीं सुनी जो प्राचीन काल में कोशकार के पुत्र के साथ मलयपर्वत पर घटी थी।

शुक्र उवाच

कथयस्व महाबाहो कोशकारसुताश्रयाम्।
कथां पौराणिकीं पुण्यां महाकौतूहलं हि मे॥ २०॥

शुक्र ने कहा— हे महाबाहु! कोशकार के पुत्र से संबंधित वह प्राचीन पुण्य कथा सुनाइये; मुझे अत्यंत कौतूहल हो रहा है।

बलिरुवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि कथामेतां मखान्तरे।
पूर्वाभ्यासनिबद्धां हि सत्यां भृगुकुलोद्वह॥ २१॥

बलि ने कहा— हे भार्गवश्रेष्ठ! सुनिये, मैं यज्ञ के मध्य में ही यह पूर्व जन्मों के अभ्यास से संबंधित सत्य कथा आपको सुनाता हूँ!

मुद्गलस्य मुनेः पुत्रो ज्ञानविज्ञानपारगः।
कोशकार इति ख्यात आसीद्ब्रह्मंस्तपोरतः॥ २२॥

हे ब्राह्मण! मुद्गल मुनि का ज्ञान और विज्ञान में पारंगत एक पुत्र था। वह कोशकार के नाम से प्रसिद्ध था।

तस्यासीद्दयिता साध्वी धर्मिष्ठा नामतः श्रुता।
सती वात्स्यायनसुता धर्मशीला पतिव्रता॥ २३॥

उसकी धर्मिष्ठा नाम से जानी जाने वाली साध्वी पत्नी थी। वह सती धर्मशीला और पतिव्रता थी। वह वात्स्यायन की पुत्री थी।

तस्यामस्य सुतो जातः प्रकृत्या वै जडाकृतिः।
मूकवन्नालपति स न च पश्यति चान्धवत्॥ २४॥

उससे उस कोशकार का जडाकृति पुत्र उत्पन्न हुआ। वह गूँगे की भाँति बोल नहीं पाता था और अंधे की भाँति देख नहीं पाता था।

तं जातं ब्राह्मणी पुत्रं जडं मूकं त्वचक्षुषम्।
मन्यमाना गृहद्वारि षष्ठेऽहनि समुत्सृजत्॥ २५॥

वह ब्राह्मणी उस उत्पन्न पुत्र को जड़, वाग्विहीन तथा नेत्रहीन मानकर छठे दिन घर के द्वार पर छोड़ आई।

ततोऽभ्यागाद् दुराचारा राक्षसी जातहारिणी।
स्वं शिशुं कृशमादाय सूर्पाक्षी नाम नामतः॥ २६॥

तभी वहाँ सूर्पाक्षी नामक एक दुराचारिणी राक्षसी अपने कृश शिशु को लेकर आ पहुँची।

तत्रोत्सृज्य स्वपुत्रं सा जग्राह द्विजनन्दनम्।
तमादाय जगामाथ भोक्तुं शालोदरे गिरौ॥ २७॥

अपने पुत्र को वहाँ छोड़कर उसने उस ब्राह्मणपुत्र को पकड़ लिया। उसको लेकर खाने के लिए वह शालोदर पर्वत पर चली गई।

ततस्तामागतां वीक्ष्य तस्या भर्ता घटोदरः।
नेत्रहीनः प्रत्युवाच किमानीतस्त्वया प्रिये॥ २८॥

उसको आई हुई देखकर उसका नेत्रहीन पति घटोदर बोला–हे प्रिये! तुम क्या लाई हो?

साऽब्रवीत् राक्षसपते मया स्थाप्य निजं शिशुम्।
कोशकारद्विजगृहे तस्यानीतः प्रभो सुतः॥ २९॥

वह उस निशाचर से बोली— हे स्वामी! हे राक्षसपति! अपने पुत्र को कोशकार ब्राह्मण के घर में रखकर उसके पुत्र ले आई हूँ।

स प्राह न त्वया भद्रे भद्रमाचरितं त्विति।
महाज्ञानी द्विजेन्द्रोऽसौ ततः शप्स्यति कोपितः॥ ३०॥

उस निशाचर ने कहा— हे भद्रे! यह तुमने उचित नहीं किया! वह महाज्ञानी ब्राह्मणश्रेष्ठ क्रोधित होकर शाप दे देगा।

तस्माच्छीघ्रमिमं त्यक्त्वा मनुजं घोररूपिणम्।
अन्यस्य कस्यचित् पुत्रं शीघ्रमानय सुन्दरि॥ ३१॥

इसलिए, हे सुन्दरी! इस विकृत रूप वाले मनुष्य को छोड़कर शीघ्र किसी अन्य के पुत्र को ले आओ।

इत्येवमुक्ता सा रौद्रा राक्षसी कामचारिणी।
समाजगाम त्वरिता समुत्पत्य विहायसम्॥ ३२॥

इस प्रकार कहे जाने पर वह भयानक तथा स्वेच्छाचारिणी राक्षसी आकाश में उड़कर शीघ्र ही वहाँ आ पहुँची।

स चापि राक्षससुतो निसृष्टो गृहबाह्यतः।
रुरोद सुस्वरं ब्रह्मन् प्रक्षिप्याङ्गुष्ठमानने॥ ३३॥

हे ब्राह्मण! घर से बाहर फेंका हुआ वह राक्षसपुत्र भी

मुँह में अङ्गूठा रखकर अत्यंत ऊँचे स्वर से रुदन करने लगा।

सा क्रन्दितं चिराच्छ्रुत्वा धर्मिष्ठ पतिमब्रवीत्।
पश्य स्वयं मुनिश्रेष्ठ सशब्दस्तनयस्तव॥३४॥

देर तक उस क्रन्दन को सुनकर धर्मिष्ठा अपने पति से बोली-हे मुनिश्रेष्ठ! देखिये, आपका पुत्र बोल सकता है।

त्रस्ता सा निर्जगामाथ गृहमध्यात्तपस्विनी।
स चापि ब्राह्मणश्रेष्ठः समपश्यत तं शिशुम्॥३५॥
वर्णरूपादिसंयुक्तं यथा स्वतनयं तथा।
ततो विहस्य प्रोवाच कोशकारो निजां प्रियाम्॥३६॥

तदनन्तर भयभीत वह तपस्विनी घर के भीतर से बाहर आई। उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी उस शिशु को देखा जो वर्ण रूप आदि में उसके अपनें पुत्र के समान था। तब कोशकार ने हँसकर अपनी पत्नी से कहा—

एतेनाविश्य धर्मिष्ठे भाव्यं भूतेन साम्प्रतम्।
कोऽप्यस्माकं छलयितुं सुरूपी भूवि संस्थितः॥३७॥

हे धर्मिष्ठा! निश्चय ही किसी भूत ने इस बालक के शरीर को अविष्ट कर लिया है तथा कोई सुंदर रूप धारण करके हमें छलने के लिए ही भूमि पर बैठा हुआ है।

इत्युक्त्वा वचनं मन्त्री मन्त्रैस्तं राक्षसात्मजम्।
बबन्धोल्लिख्य वसुधां सकुशेनाथ पाणिना॥३८॥

ऐसा कहकर उस मन्त्रज्ञाता कोशकार ने हाथ में कुशाग्रास लेकर भूमि पर लकीर खींचते हुए मंत्रों से उस राक्षसपुत्र को बांध दिया।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता सूर्पाक्षी विप्रबालकम्।
अन्तर्धानगतां भूमौ गृहे चिक्षेप गृहदूरतः॥३९॥

इसी समय वह अदृश्य सूर्पाक्षी वहाँ आ पहुँची और उसने ब्राह्मण के पुत्र को दूर से ही भूमि पर फेंक दिया।

तं क्षिप्तमात्रं जग्राह कोशकारः स्वकं सुतम्।
सा चाभ्येत्य ग्रहीतुं स्वं नाशकद्राक्षसी सुतम्॥४०॥

जैसे ही उसने उसे फेंका कोशकार ने अपने पुत्र को उठा लिया। परंतु वह राक्षसी समीप जाकर अपने पुत्र को नहीं उठा पाई।

इतश्चेतश्च विभ्रष्टा सा भर्तारमुपागमत्।
कथयामास यद्वृत्तं स्वद्विजात्मजहारिणम्॥४१॥

इधर-उधर गिरती पड़ती वह अपने पति के पास आई और उसे सब वृत्तांत सुनाते हुये और अपने पुत्र की अप्राप्ति तथा ब्राह्मणपुत्र के विषय में बताया।

एवं गतायां राक्षस्यां ब्राह्मणेन महात्मना।
स राक्षसशिशुर्ब्रह्मन् भार्यायै विनिवेदितः॥४२॥

हे ब्राह्मण! राक्षसी के चले जाने के पश्चात् उस महानुभाव ब्राह्मण ने राक्षसपुत्र को अपनी पत्नी को सौंप दिया।

स चात्मतनयः पित्रा कपिलायाः सवत्सयाः।
दध्ना संयोजितोऽत्यर्थं क्षीरेणेक्षुरसेन च॥४३॥

और पिता ने अपने पुत्र को सवत्सा कपिला गाय के दूध, दधि एवं ईख के रस से पाला पोसा।

द्वावेव वर्द्धितौ बालौ संजातौ सप्तवार्षिकौ।
पित्रा च कृतनामानौ निशाकरदिवाकरौ॥४४॥

दोनों पोषित बालक सात वर्ष के हो गए तो पिता ने उनका नाम निशाकर और दिवाकर रख दिया।

नैशाचरिर्दिवाकीर्तिर्निशाकीर्तिः स्वपुत्रकः।
तयोश्चकार विप्रोऽसौ व्रतबन्धक्रियां क्रमात्॥४५॥

उसमें निशाचरी का पुत्र दिवाकर तथा उसका अपना पुत्र निशाकर था। ब्राह्मण ने क्रमशः दोनों का उपनयन संस्कार किया।

व्रतबन्धे कृते वेदं पपाठासौ दिवाकरः।
निशाकरो जडतया न पपाठेति नः श्रुतम्॥४६॥

उपनयन संस्कार के पश्चात् दिवाकर ने वेदों का अध्ययन किया। परंतु निशाकर अपनी जडता के कारण पढ़ नहीं पाया। ऐसा हमनें सुना है।

तं बान्धवाश्च पितरौ माता भ्राता गुरुस्तथा।
पर्यनिन्दंस्तथा ये च जना मलयवासिनः॥४७॥

बन्धु-बांधव, माता-पिता, गुरु और जो भी मलय निवासी थे सब उसकी निन्दा करने लगे।

ततः स पित्रा क्रुद्धेन क्षिप्तः कूपे निरूदके।
महाशिलां चोपरि वै पिधानमवरोपयत्॥४८॥

पिता ने क्रोधित होकर उसे एक जलरहित कुए में फेंक दिया और उसके ऊपर से एक विशाल पत्थर ढक्कन की तरह रख दिया।

एवं क्षिप्तस्तदा कूपे बहुवर्षगणान्स्थितः।
तत्रास्त्यामलकीगुल्मः पोषाय फलितोऽभवत्॥४९॥

इस प्रकार फेंके जाने के पश्चात् वह बहुत वर्षों तक कुएँ में रहा। वहाँ एक आँवले का पेड़ था जिस के फलों ने उसका पालन-पोषण किया।

ततो दशसु वर्षेपु समतीतेषु भार्गव।
तस्य माताऽगमत्कूपं तमन्धं शिलयाचितम्॥५०॥

हे भार्गव! इस प्रकार दस वर्ष व्यतीत हो गये। तब उसकी माता एक दिन पत्थर से ढके हुए उस अंधे कुएँ में आई।

सा दृष्ट्वा निचितं कूपं शिला गिरिकल्पया।
उच्चैः प्रोवाच केनेयं कूपोपरि शिला कृता॥५१॥

पत्थर से ढका हुआ और इस कारण एक पर्वत के समान प्रतीत हो रहे उस कुए को देखकर वह ऊँचे स्वर में बोली— कुएँ के ऊपर यह पत्थर किसने रखा है?

कूपान्तस्थः स तां वाणीं श्रुत्वा मातुर्निशाकरः।
प्राह प्रदत्ता पित्रा मे कूपोपरि शिला त्वियम्॥५२॥

माता की इस प्रकार की वाणी सुनकर कुएँ के अन्दर स्थित निशाकर ने कहा— यह शिला मेरे पिता ने कुएँ के ऊपर रखी है।

साऽतिभीताऽब्रवीत्कोऽसि कूपान्तस्थोऽद्भुतस्वरः।
सोऽप्याह तव पुत्रोऽस्मि निशाकरेति विश्रुतः॥५३॥

उसने अत्यंत भयभीत होकर कहा— कुए के भीतर विचित्र स्वर वाला यह कौन है? उसने भी कहा— मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और मेरा नाम निशाकर है।

साऽब्रवीत्तनयो मह्यं नाम्ना ख्यातो दिवाकरः।
निशाकरेति नाम्नाऽहो न कश्चित्तनयोऽस्ति मे॥५४॥

उसने कहा— मेरे पुत्र का नाम तो दिवाकर है। निशाकर नाम का तो मेरा कोई पुत्र नहीं है।

स चाह पूर्वचरितं मातुर्निरवशेषतः।
सा श्रुत्वा तां शिलां सुभ्रूः समुत्क्षिप्यान्यतोऽक्षिपत्॥

उसने अपनी माता को समस्त वृत्तांत कह सुनाया जिसे सुनकर सुन्दर भौओं वाली उस (धर्मिष्ठा) ने वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

सोत्तीर्य कूपात् भगवन् मातुः पादाववन्दत।
सा स्वानुरूपं तनयं दृष्ट्वा स्वजनमग्रतः॥५६॥
ततस्तमादाय सुतं धर्मिष्ठा पतिमेत्य च।
कथयामास तत्सर्वं चेष्टितं स्वसुतस्य च॥५७॥

हे भगवन्! तब उसने बाहर निकलकर अपनी माता के चरणों में वंदना की। अपने अनुरूप स्वपुत्र को देखकर वह धर्मिष्ठा उस पुत्र को लेकर अपने पति के पास पहुँची और उसे अपने पुत्र का समस्त वृत्तांत कह सुनाया।

ततोऽन्वपृच्छद्विप्रोऽसौ किमिदं तात कारणम्।
नोक्त्वान् यद्भवान् पूर्वं महत्कौतूहलं मम॥५८॥

तब ब्राह्मण ने कहा— हे पुत्र! क्या कारण है जो तुमने यह मुझे पहले नहीं बताया, मुझे अत्यंत कौतूहल हो रहा है।

तच्छ्रुत्वा वचनं धीमान् कोशकारं द्विजोत्तमम्।
प्राह पुत्रोऽद्भुतं वाक्यं मातरं पितरं तथा॥५९॥

यह सुनकर उस बुद्धिमान् ने अपने पिता ब्राह्मणश्रेष्ठ कोशकार तथा माता से इस प्रकार के अद्भुत वचन कहे।

निशाकर उवाच

श्रूयतां कारणं तात येन मूकत्वमाश्रितम्।
मया जडत्वमनघ तथाऽन्धत्वं स्वचक्षुषः॥६०॥

निशाकर ने कहा— हे निष्पाप! हे तात! आप वह कारण सुनिये जिस कारण से मैंने जड़ता, मूकत्व तथा आंखों के अन्धत्व का आश्रय लिया।

पूर्वमासमहं विप्र कुले वृन्दारकस्य तु।
वृषाकपेश्च तनयो मालागर्भसमुद्भवः॥६१॥

हे ब्राह्मण! पहले मैं वृन्दारक के कुल में था। मेरे पिता वृषाकपि तथा माता माला थी।

ततः पिता पाठयन्मां शास्त्रं धर्मार्थकामदम्।
मोक्षशास्त्रं परं तात सेतिहासश्रुतिं तथा॥६२॥

हे तात! मेरे पिता ने मुझे धर्म, अर्थ और काम को प्रदान करने वाले शास्त्र मोक्षशास्त्र, इतिहास और वेद पढ़ाए।

सोऽहं तात महाज्ञानी परावरविशारदः।
जातो मदान्धस्तेनाहं दुष्कर्माभिरतोऽभवम्॥६३॥

हे तात! मैं महाज्ञानी समस्त शास्त्रों में पारंगत होकर दर्प से अंधा हो गया और दुष्कर्मो में लग गया।

मदात्समभवल्लोभस्तेन नष्टा प्रगल्भता।
विवेको नाशमगमत् मूर्खभावमुपागतः॥६४॥

दर्प से लोभ उत्पन्न हुआ जिससे मेरा समस्त ज्ञान नष्ट हो गया। विवेक का नाश हो जाने से मैं मूर्ख बन गया।

मूढभावतया चाथ जातः पापरतोऽस्म्यहम्।
परदारपरार्थेषु मतिर्मे च सदाऽभवत्॥६५॥

मूर्खता आ जाने से मैं पापकर्म में लग गया। मेरी सदैव दूसरों के धन और दूसरों की स्त्री में ही अभिरति रहने लगी।

परदाराभिमर्शित्वात् परार्थहरणादपि।
मृतोऽस्म्युद्वन्धनेनाहं नरकं रौरवं गतः॥६६॥

दूसरों की स्त्रियों से संपर्क करने तथा दूसरों की संपत्ति के हरण के कारण मैं उद्बंधन के द्वारा मारा गया और रौरव नरक में गया।

तस्माद् वर्षसहस्रान्ते भुक्तशिष्टे तदागसि।
अरण्ये मृगहा पापः संजातोऽहं मृगाधिपः॥६७॥

इस कारण एक हजार वर्षों के पश्चात् भी मेरे पाप पूर्णतया नष्ट नहीं हो पाए। तब मैं जंगल में पशुओं को मारने वाले पापी व्याघ्र के रूप में उत्पन्न हुआ।

व्याघ्रत्वे संस्थितस्तात बद्धः पञ्जरगः कृतः।
नराधिपेन विभुना नीतश्च नगरं निजम्॥६८॥

हे तात! एक प्रभाव युक्त राजा ने व्याघ्र योनि मेंस्थित मुझे बाँधकर पिंजड़े में डाल दिया एवं अपने नगर में ले गया।

वद्धस्य पिञ्जरस्थस्य व्याघ्रत्वेऽधिष्ठितस्य ह।
धर्मार्थकामशास्त्रणि प्रत्यभासन्त सर्वशः॥६९॥

जब मैं पिंजरें में व्याघ्ररूप में बंधा हुआ था तब मुझे धर्म, अर्थ, काम और समस्त शास्त्र पूर्णतः प्रकाशित थे।

ततो नृपतिशार्दूलो गदापाणिः कदाचन।
एकवस्त्रपरीधानो नगरान्निर्ययौ वहिः॥७०॥

एक बार वह नृपश्रेष्ठ हाथ में गदा लेकर केवल एक वस्त्र धारण करके नगर से बाहर गया।

तस्य भार्या जिता नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि।
सा निर्गते तु रमणे ममान्तिकमुपागता॥७१॥

उसकी 'जिता' नामक पत्नी थी जो पृथ्वी पर अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी थी। पति के बाहर जाने पर वह मेरे समीप आई।

तां दृष्ट्वा ववृधे चित्ते पूर्वाभ्यासान्मनोभवः।
यथैव धर्मशास्त्राणि तथाहमवदं च ताम्॥७२॥

उसको देखकर मेरी मन की लालसा पूर्वाभ्यास के कारण धर्माशास्त्र के समान जाग उठी। इसलिए मैंने उससे कहा।

राजपुत्रि सुकल्याणि नवयौवनशालिनि।
चित्तं हरसि मे भीरु कोकिला ध्वनिना यथा॥७३॥

हे नवयौवनायुक्ता! हे सुकल्याणी! हे राजकुमारी! तुम उसी प्रकार मेरा मन आकृष्ट कर रही हो जैसे कोकिला ध्वनि के द्वारा आकृष्ट होती है।

सा मद्वचनमाकर्ण्य प्रोवाच तनुमध्यमा।
कथमेजावयोर्व्याघ्र रतियोगमुपेष्यति॥७४॥

मेरे वचन को सुनकर वह कृशमध्यमा बोली–हे व्याघ्र! हम दोनों का रतियोग किस प्रकार होगा?

ततोऽहमब्रवं तात राजपुत्रीं सुमध्यमाम्।
द्वारमुद्घाटयाद्य त्वं निर्गमिष्यामि सत्वरम्॥७५॥

हे तात! तब मैंने उस सुमध्यमा राजपुत्री से कहा– तुम अभी द्वार खोल दो; मैं शीघ्र बाहर आ जाऊँगा!

साऽप्यब्रवी दिवा व्याघ्र लोकोऽयं परिपश्यति।
रात्रावुद्धाटयिष्यामि ततो रंस्याव स्वेच्छया॥७६॥

उसने भी कहा– हे व्याघ्र! दिन में यह संसार देख लेगा; अतः रात्रि में द्वार खोलूँगी। तब हम दोनों स्वेच्छा से रमण करेंगें!

तामेवाहमवोचं वै कालक्षेपेऽहमक्षमः।
तस्मादुद्घाटय द्वारं मां बन्धाद्य विमोचय॥७७॥

मैंने उससे कहा– मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता; इसलिए द्वार खोल दो और मुझे बंधनमुक्त कर दो!

ततः सा पीवरश्रोणी द्वारमुद्धाटयन्मुने।
उद्घाटिते ततो द्वारे निर्गतोऽहं बहिः क्षणात्॥७८॥

हे मुनि! तब उस विशालश्रोणी वाली ने द्वार खोल दिये। द्वार खोलते ही मैं क्षणभर में ही बाहर निकल आया।

पाशानि निगडादीनि छिन्नानि हि बलान्मया।
सा गृहीता च नृपतेर्भार्या रमितुमिच्छता॥७९॥

मैंने बेड़ियों और रस्सियों को बलपूर्वक तोड़ डाला और रमण करने की इच्छा से उस राजा की पत्नी को बलपूर्वक पकड़ लिया।

ततो दृष्टोऽस्मि नृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः।
शस्त्रहस्तैः सर्वतश्च तैरहं परिवेष्टितः॥८०॥

अत्यंत शक्तिशाली राजसेवकों ने मुझे देख लिया और हाथों में शस्त्र लिए हुए उन्होंने मुझे चारों ओर से बांध दिया।

महापाशैः शृङ्खलाभिः समाहत्य च मुद्गरैः।
वध्यमानोऽब्रुवमहं मा मा हिंसध्वमाकुलाः ॥८१॥

बेड़ियों और रस्सियों से बांधने के बाद उन्होंने मुझे गदाओं से मारा। उनके द्वारा मारे जाते हुए मैंने उनसे कहा— मुझे मत मारिये!

ते मद्वचनमाकर्ण्य मत्वैव रजनीचरम्।
दृढं वृक्षे समुद्बध्य घातयन्त तपोधन॥८२॥

हे तपस्वी! मेरे वचन को सुनकर उन्होंने मुझे एक राक्षस माना और एक वृक्ष से कसकर बाँधकर मुझे मार डाला।

भूयो गतश्च नरकं परदारनिषेवणात्।
मुक्तो वर्षसहस्रान्ते जातोऽहं श्वेतगर्दभः॥८३॥
ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गृहे बहुकलत्रिणः।
तत्रापि सर्वविज्ञानं प्रत्यभासत् ततो मम॥८४॥

परस्त्रीगमन के कारण मैं पुनः नरक में गया। एक हजार वर्ष समाप्ति के पश्चात् मुक्त होने पर मैं श्वेतगर्दभ बनकर बहुपत्नी वाले अग्निवेश नामक एक ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ। मेरा समस्त विज्ञान वहाँ भी प्रतिभासित हो गया।

उपवाह्यः कृतश्चास्मि द्विजयोषिद्भिरादरात्।
एकदा नवराष्ट्रीया भार्या तस्याग्रजन्मनः॥८५॥
विमतिर्नामतः ख्याता गन्तुमैच्छद् गृहं पितुः।
तामुवाच पतिर्गच्छ आरुह्य श्वेतगर्दभम्॥८६॥

ब्राह्मण की पत्नियाँ मुझ गर्दभ पर चढ़ कर प्रसन्नता से घूमती थीं। एक बार उस ब्राह्मण की नवराष्ट्रीय पत्नी जिसका नाम विमति था, अपने पिता के घर जाने के लिये तैयार हुई। पति ने उसे कहा— श्वेतगर्दभ पर चढ़कर चली जाओ!

मासेनागमनं कार्यं न स्थेयं परतस्ततः।
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा तन्वी मामधिरुह्य च ॥८७॥
बन्धनादवमुच्याथ जगाम त्वरिता मुने।
ततोऽर्द्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरुह्य वै॥८८॥
अवतीर्णा नदीं स्नातुं स्वरूपा चार्द्रवाससा।
साङ्गोपाङ्ग रूपवतीं दृष्ट्वा तामहमाद्रवम्॥८९॥

एक मास में ही लौट आना! इससे अधिक वहाँ न ठहरना। पति के द्वारा ऐसा कहने पर वह तन्वी मुझे रस्सी से छुड़ाकर मुझ पर सवार होकर तेजी से चल दी। हे मुनि! आधे रास्तें में वह तन्वंगी मुझसे उतरकर नदी में स्नान करने के लिये उतर गई जिससे उस सुन्दरी के वस्त्र गीले हो गए। इस अवस्था में उस रूपवती को साङ्गोपाङ्ग देखकर मैं उसकी ओर दौड़ पड़ा।

मया चाभिद्रुता तूर्णं पतिता पृथिवीतले।
तस्यामुपरि भो तात पतितोऽहं भृशातुरः॥९०॥

जब मैं उसकी ओर दौड़ा तो वह तीव्रता से पृथ्वी पर गिर पड़ीं हे तात! मैं भी अत्यधिक कामातुर होकर उसके ऊपर गिर पड़ा।

दृष्टो भर्त्रानुसृष्टेन नृणा तदनुसारिणा।
प्रोक्षिप्य यष्टिं मां ब्रह्मन् समधावत् त्वरान्वितः॥९१॥

हे ब्राह्मण! उसका अनुसरण करने वाले सेवक ने मुझे देख लिया। तब अपना डण्डा उठाकर वह शीघ्रता से मेरी ओर दौड़ा।

तद् भयात् तां परित्यज्य प्रद्रुतो दक्षिणामुखः।
ततोऽभिद्रवतस्तूर्णं खलीनरशना मुने॥९२॥
ममासक्ता वंशगुल्मे दुर्मोक्षे प्राणनाशने।
तत्रासक्तस्य षड्रात्रान्ममाभूज्जीवितक्षयः॥९३॥

हे मुनि! उससे डरकर मैं उस (तन्वंगी) को छोड़कर दक्षिण की ओर दौड़ा। जब मैं तेजी से दौड़ रहा था तो मेरी बांधने की रस्सी बांसों के झुण्ड में अटक गई जिससे छूटना असंभव था, अतएव वह प्राणनाशक हो गया। उसमें छः रात अटके रहने के पश्चात् मेरा प्राणान्त हो गया।

गतोऽस्मि नरकं भूयस्तस्मान्मुक्तोऽभवं शुकः।
महारण्ये तथा बद्धः शबरेण दुरात्मना॥ ९४॥

मैं पुनः नरक में गया। वहाँ से मुक्त होकर मैं तोता बन गया। तब एक घने वन में एक दुष्टात्मा शिकारी ने मुझे पकड़ लिया।

पञ्जरे क्षिप्य विक्रीतो वणिक्पुत्राय शालिने।
तेनाप्यन्तःपुरवरे युवतीनां समीपतः॥ ९५॥
शब्दशास्त्रविदित्येव दोषघ्नश्चेत्यवस्थितः।
तत्रासतस्तरुण्यस्ता ओदनाम्बुफलादिभिः॥ ९६॥
भक्ष्यैश्च दाडिमफलैः पुष्णन्त्यहरहः पितः
कदाचित् पद्मपत्राक्षी श्यामा पीनपयोधरा॥ ९७॥
सुश्रोणी तनुमध्या च वणिक्पुत्री प्रिया शुभा।
नाम्ना चन्द्रावली नाम समुद्घाट्याथ पञ्जरम्॥ ९८॥
मां जग्राह सुचार्वङ्गी कराभ्यां चारुहासिनी।
चकारोपरि पीनाभ्यां स्तनाभ्यां सा हि मा ततः॥ ९९॥

उसने मुझे पिंजरे में रखकर एक शालीन वणिक्पुत्र को बेच दिया। उसने मुझे शब्दशास्त्र का ज्ञाता तथा दोषों का नाशक जाना तो मुझे अपने उत्तम अन्तःपुर में युवतियों के समीप रख दिया। जब मैं वहाँ था तो वे युवतियाँ प्रतिदिन भात, जल, फल तथा अन्य एवं अनार के फलों से मेरा पोषण करने लगीं। एक बार वणिक्पुत्र की प्रिय पत्नी जिसका नाम चन्द्रावली था तथा जो पद्मपत्रों के समान नेत्रों वाली थी। जो श्याम और पीन पयोधरों वाली, सुश्रोणी, तनुमध्या तथा शुभा थी उस चारु अङ्गों वाली सुहासिनी ने पिंजरे को खोलकर दोनों हाथों से मुझे पकड़ लिया और अपने सुडौल वक्षस्थल पर मुझे बैठा लिया।

ततोऽहं कृतवान्भावं तस्यां विलसितुं प्लवन्।
ततोऽनुप्लवतस्तत्र हारे मर्कटवन्धनम्॥ १००॥
बद्धोऽहं पापसंयुक्तो मृतश्च तदनन्तरम्।
भूयोऽपि नरकं घोरं प्रपन्नोऽस्मि सुदुर्मतिः॥ १०१॥

उसके बाद मैंने चन्द्रवती के साथ विराह करने का भाव प्रकट किया। तब पापासक्त मैं घूमता हुआ उसके हार में मर्कट बन्धन की भाँति बँधकर मर गया। मैं पुनः अत्यन्त पापबुद्धि होने के कारण घोर नरक में गया।

तस्माच्चाहं वृषत्वं वै गतश्चाण्डालपक्कणे।
स चैकदा मां शकटे नियोज्य स्वां विलासिनीम्॥
समारोप्य महातेजा गन्तुं कृतमतिर्वनम्।
ततोऽग्रतः स चण्डालो गतस्त्वेवास्य पृष्ठतः॥ १०३॥
गायन्ती याति तच्छ्रुत्वा जातोऽहं व्यथितेन्द्रियः।
पृष्ठस्तु समालोक्य विपर्यस्तस्तथोत्प्लुतः॥ १०४॥

वहाँ से मैं एक चाण्डाल के घर में बैल बन कर उत्पन्न हुआ। एक बार उस बलशाली ने मुझे गाड़ी में जोतकर तथा अपनी पत्नी को उस पर बैठाकर वन में ले जाने का विचार किया। तब चाण्डाल आगे-आगे और उसकी पत्नी गाती हुई उसके पीछे-पीछे चली। उस गाने को सुनकर मैं व्यथितेन्द्रिय हो गया और पीछे देखते हुए मैंने विपरीत दिशा में छलाँग लगाई।

पतितो भूमिमगमम् तदक्षे क्षणविक्रमात्।
योक्त्रे सुबद्ध एवास्मि पञ्चत्वमगमं ततः॥ १०५॥

उस क्षणिक दुस्साहस के कारण मैं नीचे भूमि पर गिर पड़ा और रस्सी से कस कर बंधा होने के कारण वहीं मर गया।

भूयो निमग्नो नरके दशवर्षशतान्यपि।
अतस्तव गृहे जातस्त्वहं जातिमनुस्मरन्॥ १०६॥

फिर मैं एक सहस्र वर्षों तक नरक में पड़ा रहा और तदनन्तर अब यहाँ आपके घर में अपने पूर्व जन्मों को याद करते हुए उत्पन्न हुआ!

तावन्त्येवाद्य जन्मानि स्मरामि चानुपूर्वशः।
पूर्वाभ्यासाद्य शास्त्राणि बन्धनं चागतं मम॥ १०७॥
तदहं जातविज्ञानो नाचरिष्ये कथंचन।
पापानि घोररूपाणि मनसा कर्मणा गिरा॥ १०८॥

मैं अपने समस्त पूर्वजन्मों का क्रमशः स्मरण करता हूँ। इस पूर्वाभ्यास के कारण ही मेरा शास्त्र बंधन हुआ

है। अब्र मुझमें ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो गया है; अतएव मैं मन, वचन अथवा धर्म से कोई भी पापकर्म नहीं करूँगा!

शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि स्वाध्यायः शास्त्रजीविका।
बन्धनं वा वधो वाऽपि पूर्वाभ्यासेन जायते॥ १०९॥

शुभ अथवा अशुभ कर्म, स्वाध्याय, शास्त्राध्ययन अथवा उनका बंधन एवं मृत्यु, सब पूर्वजन्मों के संस्कारों के अनुसार ही होते हैं।

जातिं यदा पौर्विकीं तु स्मरते तात मानवः।
तदा स तेभ्यः पापेभ्यो निवृत्तिं हि करिष्यति॥ ११०॥

हे तात! यदि मनुष्य अपने पूर्वजन्म का स्मरण कर सकता है तो वह निश्चय ही पापों से निवृत्ति पा सकता है।

तस्माद् गमिष्ये शुभवर्धनाय
पापक्षयायाथ मुने ह्यरण्यम्।
भवान्दिवाकीर्तिमिमं सुपुत्रं
गार्हस्थधर्मे विनियोजयस्व॥ १११॥

हे मुनि! इसलिए मैं पुण्य के वर्धन तथा पाप के नाश के लिये वन में जाता हूँ। आप अपने सुपुत्र दिवाकर को गृहस्थ धर्म में विनियोजित करें।

बलिरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स निशाकरस्तदा
प्रणम्य मातापितरौ महर्षे।
जगाम पुण्यं सदनं मुरारेः
ख्यातं बदर्याश्रममाद्यमीड्यम्॥ ११२॥

बलि ने कहा— हे महर्षि! ऐसा कहकर उस निशाकर ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और विष्णु के पवित्र, प्रख्यात और पूजनीय निवास बदरी-आश्रम को चला गया।

एवं पुराऽभ्यासरतस्य पुंसो
भवन्ति दानाध्ययनादिकानि।
तस्माच्च पूर्वं द्विजवर्य वै मया
अभ्यस्तमासीत्रनु ते ब्रवीमि॥ ११३॥

इस प्रकार पूर्वसंस्कारों के कारण ही व्यक्ति के दान एवं अध्ययनादि क्रियाएँ होती हैं। इसलिये, हे द्विजश्रेष्ठ! मैं इन संस्कारों का अभ्यस्त हूँ, ऐसा मैं आपको कहता हूँ।

दानं तपो वाऽध्ययनं महर्षे
स्तेयं महापातकमग्निदाहम्।
ज्ञानानि चैवाभ्यम्तां हि पूर्वं
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ॥ ११४॥

हे महर्षि! दान, तप, अध्ययन, चोरी, डकैती इत्यादि महापातक अथवा ज्ञान, धर्म, समृद्धि और यश-यह सब व्यक्तियों के पूर्व संस्कारों के अनुरूप ही होते हैं।

इत्येवमुक्त्वा बलवान्स शुक्रं
दैत्येश्वरः स्वं गुरुमीशितारम्।
ध्यायंस्तदास्ते मधुकैटभघ्नं
नारायणं चक्रगदासिपाणिम्॥ ११५॥

पुलस्त्य ने कहा— अपने पूजनीय गुरु शुक्र से ऐसा कहकर वह बलवान् दैत्येश्वर बलि मधु और कैटभ के नाशक हाथ में चक्र, गदा और खड्गधारण करने वाले विष्णु के विषय में सोचता हुआ बैठा रहा।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे शुक्रबलिसंवादो नामैकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

(बलि बंधन वर्णन)

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते भगवान्वामनाकृतिः।
यज्ञवाटमुपागम्य उच्चैर्वचनमब्रवीत्॥ १॥
ॐकारपूर्वाः श्रुतयो मखेऽस्मिन्
तिष्ठन्ति रूपेण तपोधनानाम्।
यज्ञोऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
मुख्यस्तथा सत्रिषु दैत्यनाथः॥ २॥

पुलस्त्य ने कहा— इतने में ही वामनाकृति वाले भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। यज्ञशाला में पहुँचकर उन्होंने ऊँचे स्वर से कहा— इस यज्ञ में ओंकारपूर्वक समस्त वेद तपस्वियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं, समस्त यज्ञों

में अश्वमेध यज्ञ श्रेष्ठ है तथा यजमानों में दैत्येश्वर बलि मुख्य है।

इत्थं वचनमाकर्ण्य दानवाधिपतिर्वशी।

सार्घ्यपात्रः समभ्यागाद्यत्र देवः स्थितोऽभवत्॥ ३॥

इस प्रकार के वचन सुनकर वह जितेन्द्रिय दानवाधिपति अर्घ्यपात्र लेकर वहाँ आ गया जहाँ देव खड़े थे।

ततोऽर्च्य देवदेवेशमर्च्यमर्घादिनासुरः।

भरद्वाजर्षिणा सार्धं यज्ञवाटं प्रवेशयत्॥ ४॥

तदनन्तर उस असुर ने अर्घ्यादि के द्वारा पूजनीय देव-देवेश की अर्चना की और भरद्वाज ऋषि के साथ उन्हें यज्ञशाला में प्रवेश कराया।

प्रविष्टमात्रं देवेशं प्रतिपूज्य विधानतः।

प्रोवाच भगवन्ब्रूहि किं दद्मि तव मानद॥ ५॥

प्रविष्टमात्र देवेश की विधिपूर्वक पूजा करके उसने कहा— हे भगवन्! हे माननीय! कहिये! मैं आपको क्या दूँ?

ततोऽब्रवीत् सुरश्रेष्ठो दैत्यराजानमव्ययः।

विहस्य सुचिरं कालं भरद्वाजमवेक्ष्य च॥ ६॥

तदनन्तर अव्यय श्रेष्ठदेव ने हंसकर तथा चिरकाल तक भरद्वाज की ओर देखकर दैत्यराज बलि से कहा।

गुरोर्मदीयस्य गुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः।

न स धारयते भूम्यां पारक्यां च जातवेदसम्॥ ७॥

मेरे गुरु के गुरु अग्निहोत्री हैं। वे दूसरे की भूमि में अग्निस्थापन नहीं करते।

तदर्थमभियाचेऽहं मम दानवपार्थिव।

मच्छरीरप्रमाणेन देहि राजन् पदत्रयम्॥ ८॥

हे दानवराज! उनके लिए मैं याचना करता हूँ। इसलिए हे राजन्! मेरे शरीर के प्रमाण के अनुसार तीन पग (भूमि) दीजिए।

मुरारिर्वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्यामवेक्ष्य च।

बाणं च तनयं वीक्ष्य इदं वचनमब्रवीत्॥ ९॥

मुरारि के वचन को सुनकर बलि ने अपनी पत्नी तथा अपने पुत्र बाण की ओर देखकर कहा

न केवलं प्रमाणेन वामनोऽयं लघुः प्रिये।

येन क्रमत्रयं मौर्ख्याद् याचते बुद्धितोऽपि च॥ १०॥

हे प्रिये! यह केवल आकार से ही वामन नहीं है अपितु बुद्धि से भी वामन है जो मूर्खतावश केवल तीन पग भूमि मांग रहा है।

प्रायो विधाताऽल्पधियां नराणां

बहिष्कृतानां च महानुभाग्यैः।

धनादिकं भूरि न वै ददाति

यथेह विष्णुर्न बहुप्रयासः॥ ११॥

प्रायः विधाता अल्पबुद्धि मनुष्यों को और भाग्य के द्वारा अस्वीकृत व्यक्तियों को धन इत्यादि अधिक मात्रा में नहीं देता। इसलिए यहाँ आकर भी यह विष्णु अल्प के लिए ही याचना कर रहा है।

न ददाति विधिस्तस्य यस्य भाग्यविपर्ययः।

मयि दातरि यश्चायमद्य याचेत् पदत्रयम्॥ १२॥

जिसका भाग्य विपरीत हो उसको भाग्य अधिक नहीं देता। मेरे जैसा दाता के होने पर भी यह केवल तीन पग भूमि की ही याचना कर रहा है।

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा

भूयोऽप्युवाचाथ हरिं दनुजः।

याचस्व विष्णो गजवाजिभूमिं

दासीर्हिरण्यं यदभीप्सितं च॥ १३॥

उस महात्मा दानव ने ऐसा कहकर पुनः हरि से कहा— हे विष्णु! हाथी, घोड़ा और भूमि माँगो और यदि अभीप्सित हो तो दासी और सोना माँगो।

भवान् याचयिता विष्णो अहं दाता जगत्पतिः।

दातुर्याचयितुर्लज्जा कथं न स्यात् पदत्रये॥ १४॥

हे विष्णु! आप याचक हैं और मैं जगत् का स्वामी दाता हूँ। क्या यह दाता और याचक दोनों के लिए लज्जास्पद नहीं है कि याचना केवल तीन पगों से सम्बन्धित ही हो!

रसातलं वा पृथिवीं भुवं नाकमथापि वा।

एतेभ्यः कतमं दद्यां स्थानं याचस्व वामन॥ १५॥

हे वामन! रसातल, पृथिवी, भुव अथवा स्वर्ग इनमें से कोई भी स्थान मांगों, मैं दे दूँगा।

वामन उवाच–

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्।
एतावता त्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥ १६॥

वामन ने कहा— हे राजन्! गज, अश्व, भूमि, स्वर्ग इत्यादि सब इन वस्तुओं के याचकों को दीजिए। मैं तो इतने का ही अभ्यर्थी हूँ, मुझे केवल तीन पग भूमि दीजिए।

इत्येवमुक्ते वचने वामनेन महासुरः।
वलिर्भृङ्गारमादाय ददौ विष्णोः क्रमत्रयम्॥ १७॥

वामन के द्वारा इस प्रकार कहने पर महासुर बलि जल का पात्र लाये और विष्णु को तीन पद का दान कर दिया।

वामन उवाच

पाणौ तु पतिते तोये दिव्यं रूप चकार ह।
त्रैलोक्यक्रमणार्थाय बहुरूपं जगन्मयम्॥ १८॥

हाथ पर जल के गिरते ही विष्णु ने तीनों लोकों का अतिक्रमण करने के लिये दिव्य एवं विविध जगन्मय स्वरूप धारण कर लिया।

पद्भ्यां भूमिस्तथा जङ्घे नभस्त्रैलोक्यवन्दितः।
सत्यं तपो जानुयुग्मे ऊरुभ्यां मेरुमन्दरौ॥ १९॥

त्रैलोक्यवन्दित प्रभु ने पैरों से भूमि का अतिक्रमण कर लिया। उसकी जंघाओं में नभ, दोनों घुटनों में सत्य और तप, उरु युगल में मेरु और मन्दर पर्वत थे।

विश्वेदेवा कटीभागे मरुतो वस्तिशीर्षगाः।
लिङ्गे स्थितो मन्मथश्च वृषणाभ्यां प्रजापतिः॥ २०॥

कटिप्रदेश में विश्वेदेवा, वस्ति प्रदेश के शीर्ष स्थान पर मरुद्गण, लिंग में कामदेव तथा अण्डकोष में प्रजापति थे।

कुक्षिभ्यामर्णवाः सप्त जठरे भुवनानि च।
वलिषु त्रिषु नद्यश्च यज्ञास्तु जठरे स्थिताः॥ २१॥
इष्टापूर्तादयः सर्वाः क्रियास्तत्र तु संस्थिताः।
पृष्ठस्था वसवो देवाः स्कन्धौ रुद्रैरधिष्ठितौ॥ २२॥

दोनों कुक्षियों में सातों महासागर, जठर में समस्त भुवन, त्रिवली में नदियाँ, जठर में यज्ञ स्थित था। समस्त इष्टापूर्ति करने वाली क्रियाएँ भी जठर में ही प्रतिष्ठित थीं। पीठ पर वसु देवता तथा स्कन्धों में रुद्र प्रतिष्ठित थे।

वाहवश्च दिशः सर्वा वसवोऽष्टौ करे स्मृताः।
हृदये संस्थितो ब्रह्मा कुलिशो हृदयास्थिषु॥ २३॥

भुजाओं में समस्त दिशाएँ तथा हाथ में आठों वसु थे। ब्रह्मा हृदय में स्थित थे जबकि वज्र उनकी हृदय-अस्थियों में स्थित था।

श्रीसमुद्रा उरोमध्ये चन्द्रमा मनसि स्थितः।
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्थिताः॥ २४॥

गौरवशाली समुद्र वक्षस्थल के मध्य में तथा चन्द्रमा मन में स्थित था। देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा थी तथा समस्त विद्याएँ उनके वलय में स्थित थीं।

मुखे तु साग्नयो विप्राः संस्कारा दशनच्छदाः।
धर्मकामार्थमोक्षीयाः शास्त्राः शौचसमन्विताः॥ २५॥
लक्ष्म्या सह ललाटस्थाः श्रवणाभ्यामथाश्विनौ।
श्वासस्थो मातरिश्वा च मरुतः सर्वसंधिषु॥ २६॥

अग्निसहित ब्राह्मण मुख में तथा समस्त संस्कार उनके ओष्ठों पर थे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविषयक परमपवित्र शास्त्र लक्ष्मी सहित उनके ललाट पर स्थित थे। दोनों श्रवणों में अश्विनी, श्वास में मातरिश्वा तथा मरुत् समस्त संधियों में स्थित थे।

सर्वसूक्तानि दशना जिह्वा देवी सरस्वती।
चन्द्रादित्यौ च नयने पक्ष्मस्थाः कृत्तिकादयः॥ २७॥

समस्त सूक्त दाँतों में, देवी सरस्वती जिह्वा पर, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्रों में तथा कृतिकादि उनकी पलकों में स्थित थे।

शिखायां देवदेवस्य ध्रुवो राजा न्यषीदत।
तारका रोमकूपेभ्यो रोमाणि च महर्षयः॥ २८॥

उनकी शिखा पर देवाधिदेव राजा ध्रुव विराजमान थे। उनके रोमछिद्रों में समस्त सितारे तथा रोमों में महर्षिगण थे।

गुणैः सर्वमयो भूत्वा भगवान्भूतभावनः।
क्रमेणैकेन जगतीं जहार सचराचराम्॥ २९॥

इस प्रकार भूतभावन भगवान् विष्णु ने अपने गुणों से

सर्वमय होकर एक पग से समस्त चराचर जगत् का अतिक्रमण कर लिया।

भूमिं विक्रममाणस्य महारूपस्य तस्य वै।
दक्षिणोऽभूत् स्तनश्चन्द्रः सूर्योभूदथ चोत्तरः।
नभश्चाक्रमतो नाभिं सूर्येन्दू सव्यदक्षिणौ॥३०॥

भूमि को नापते समय उन विशाल रूपधारी के चन्द्रमा एवं सूर्य दक्षिण तथा उत्तर स्त्न हो गये। उसी समय आकाश का अतिक्रमण करते समय सूर्य एवं चन्द्रमा उनका नाभि के वाम तथा दक्षिणा भाग में अवस्थित हुए।

द्वितीयेन क्रमणेथ स्वर्महर्जनताप साः।
क्रान्तार्धर्धेन वैराजं मध्येनापूर्यताम्बरम्॥३१॥

अब अपने दूसरे पग के आधे भाग से उन्होंने स्वः मह, जन और तप लोकों का तथा दूसरे आधे भाग से 'वैराज' लोक का अतिक्रमण कर लिया। संपूर्ण अम्बरलोक दोनों के मध्यभाग से अतिक्रान्त हो गया।

ततः प्रतापिना ब्रह्मन् बृहद्विष्णुविङ्घ्रणाम्बरे।
ब्रह्माण्डोदरमाहत्य निरालोकं जगाम ह॥३२॥

हे ब्राह्मण! तदनन्तर अपने अत्यंत शक्तिशाली एवं प्रतापी चरणों से ब्रह्माण्ड के भीतरी भाग को भेद कर वे प्रकाशरहित लोक में जा पहुँचे।

विश्वाङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहो भेदितो बलात्।
कुटिला विष्णुपादे तु समेत्य कुटिला ततः॥३३॥

संपूर्ण ब्रह्माण्ड में फैलते हुए उनके पग ने बलपूर्वक कटाह को भेद डाला जिससे विष्णु के चरण के समीप एक टेढ़ी-मेढी नदी प्रकट हुई जो कुटिला नाम से विख्यात हुई।

तथा सुरनदीत्येव तामसेवन्त तापसाः।
भगवानप्यसंपूर्णे तृतीये तु क्रमे विभुः॥३४॥
समभ्येत्य वलिं प्राह ईषत्प्रस्फुरिताधरः।
ऋणाद् भवति दैत्येन्द्र बन्धनं घोरदर्शनम्।
त्वं पूरय पदं तन्मे नो चेद्बन्धं प्रतीच्छ भो॥३५॥

हे मुनि! उसका 'विष्णुपदी' नाम प्रसिद्ध हुआ। तपस्वियों ने सुरनदी के रूप में उसका पूजन किया। किंतु अभी भी तृतीय चरण के पूरा न होने पर वह सर्वसमर्थ प्रभु बलि के समीप जाकर अपने होंठ धीरे से स्फुरित करके बोले— हे दैत्येन्द्र! ऋण के कारण अत्यन्त घोर बंधन होता है; इसलिए तुम या तो मेरा बचा हुआ चरण पूरा करो या बंधन स्वीकार करो।

तन्मुरारिवचः श्रुत्वा विहस्याथ बलेः सुतः।
बाणः प्राहामरपतिं वचनं हेतुसंयुतम्॥३६॥

मुरारि के वचन को सुनकर बलि के पुत्र बाण ने हँसकर देवपति विष्णु से निम्न सार्थक वचन कहे—

बाणासुर उवाच

कृत्वा महीमल्पतरां जगत्पते
स्वायंभुवादिभुवनानि वैराट्।
कथं बलिं प्रार्थयसे सुविस्तृतां
यां प्राग्भवान्नो विपुलामथाकरोत्॥३७॥

बाण ने कहा— हे जगत्पति! आपने स्वायम्भुवादि छः भुवनों का ही निर्माण कर पृथ्वी को छोटा बनाया है। आपने पहले ही भूमि को विपुल नहीं बनाया। अतः आप बलि से अधिक विस्तृत भूमि कैसे माँगते हैं?

विभो मही यावतीयं त्वयाऽद्य
सृष्टा समेता भुवनान्तरालैः।
दत्ता च तातेन हि तावतीयं
किं वाक्छलेनैष निबध्यतेऽद्य॥३८॥

हे सर्वसमर्थ! समस्त भुवन और उनके अन्तरालों सहित जितनी पृथ्वी आपने अब तक बनाई है उतनी मेरे पिता ने आपको दे दी; फिर वाक्छल से आप उन्हें क्यों बांधते हैं?

या नैव शक्त्या भवता हि पूरितुं
कथं वितन्याद् दितिजेश्वरोऽसौ।
शक्तस्तु सम्पूजयितुं मुरारे
प्रसीद मा बन्धनमादिशस्व॥३९॥

जो ब्रह्माण्ड का विस्तार आप बना नहीं सके वह यह दानवेश्वर कैसे दे सकता है? हे मुरारि! ये आपकी पूजा अवश्य कर सकते हैं! आप प्रसन्न होइये और इन्हें बांधने का आदेश मत दीजिए!

प्रोक्तं श्रुतौ भवतापीश वाक्यं
दानं पात्रे भवते सौख्यदायि।
देशे सुपुण्ये वरदे यच्च काले
तच्चाशेषं दृश्यते चक्रपाणे॥४०॥

हे ईश! हे चक्रपाणि! आपने ही श्रुति में कहा है कि सुपात्र को दिया गया दान ही सुखदायक होता है तथा पुण्यप्रदेश में एवं वरदायक काल में प्रदत्त दान ही अक्षय होता है।

दानं भूमिः सर्वकामप्रदेयं
भवान्पात्रं देवदेवो जितात्मा।
कालो ज्येष्ठामूलयोगे मृगाङ्कः
कुरुक्षेत्रं पुण्यदेशं प्रसिद्धम्॥४१॥

सर्वकामप्रदा भूमि का दान हो रहा है, देवाधिदेव, जितात्मा आप पात्र हैं, ज्येष्ठा एवं मूल के योग में स्थित चन्द्रमा से युक्त काल है तथा प्रसिद्ध पवित्र कुरुक्षेत्र का देश है।

किं वा देवोऽस्मद्विधैर्बुद्धिहीनैः
शिक्षापनीयः साधु वाऽसाधु चैव।
स्वयं श्रुतीनामपि चादिकर्त्ता
व्याप्य स्थितः सदसद्यो जगद्वै॥४२॥

हम जैसे बुद्धिहीन आप जैसे स्वामी को यह कैसे पढ़ा सकते हैं कि क्या उचित है अथवा अनुचित! आपको जो वेदों के प्रथम रचयिता हैं तथा इस जगत् के समस्त सत् और असत् को व्याप्त कर स्थित हैं।

कृत्वा प्रमाणं स्वयमेव हीनं
पदत्रयं याचितवान् भुवश्च।
किं त्वं हि गृह्णासि जगत्त्रयं भो
रूपेण लोकत्रतवन्दितेन॥४३॥

अपनी आकृति को स्वयं ही लघु बनाकर आपने भूमि के तीन पगों की याचना की? परंतु क्या आप अपने इस त्रैलोक्यवंदनीय विशाल रूप से स्वयं ही तीनों लोकों का ग्रहण नहीं करते।

नात्राश्चर्यं यज्जगद्वै समग्रं
क्रमत्रयं नैव पूर्णं तवाद्य।
क्रमेण त्व लङ्घयितुं समर्थो
लीलामेतां कृतवान् लोकनाथ॥४४॥

हे लोकनाथ! इसमें आश्चर्य नहीं है कि इस संपूर्ण जगत् में भी आपके तीन पद पूरे नहीं हुए। आप अपने केवल एक पद से ही इस समस्त जगत् का अतिक्रमण करने में समर्थ हैं। यह तो आपने केवल लीला की है।

प्रमाणहीनां स्वयमेव कृत्वा
वसुंधरां माधव पद्मनाभ।
विष्णो न बध्नासि बलिं न दूरे
प्रभुर्यदेवेच्छति तत्करोति॥४५॥

हे माधव! हे पद्मनाभ! हे विष्णु! पृथ्वी को प्रमाणहीन (अल्प) बनाकर क्या आप पीछे बलि का बंधन नहीं कर रहे? प्रभु समर्थ हैं; जैसी इच्छा होती है वैसा ही करते हैं।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने बाणेन बलिसूनुना।
प्रोवाच भगवान् वाक्यमादिकर्त्ता जनार्दनः॥४६॥

पुलस्त्य ने कहा— बलिपुत्र बाण के द्वारा इस प्रकार कहने पर आदिकर्त्ता जनार्दन भगवान् ने इस प्रकार कहा।

त्रिविक्रम उवाच

यान्युक्तानि वचांसीत्थं त्वया बालेय साम्प्रतम्।
तेषां वै हेतुसंयुक्तं शृणु प्रत्युत्तरं मम॥४७॥

त्रिविक्रम ने कहा— हे बलिपुत्र! अभी तुमने जो इस प्रकार के वचन कहे उनका सार्थक उत्तर मुझसे सुनो!

पूर्वमुक्तस्तव पिता मया राजन् पदत्रयम्।
देहि मह्यं प्रमाणेन तदेतत् समनुष्ठितम्॥४८॥

मैंने पहले तुम्हारे पिता से कहा— हे राजन्! मुझे मेरे प्रमाण के अनुसार तीन पद (भूमि) दीजिए। सो, यह उसी का अनुसरण किया गया है।

किं न वेत्ति प्रमाणं मे बलिस्तव पितासुर।
प्रायच्छद्येन निःशङ्कं ममानन्तं क्रमत्रयम्॥४९॥

हे असुर! तुम्हारे पिता बलि क्या मेरा प्रमाण नहीं जानते थे जो निःशंक मुझे अनन्त तीन पद दे दिये!

सत्यं क्रमेण चैकेन क्रमेयं भूर्भुवादिकम्।
बलेरपि हितार्थाय कृतमेतत्क्रमत्रयम्॥५०॥

यह सत्य है कि मैं केवल एक पद से ही भूः भुवः आदि समस्त लोकों का अतिक्रमण कर सकता हूँ। बलि के हित के लिए भी यह तीन पद लिए गए।

तस्माद्यन्मम बालेय त्वत्पित्राऽम्बुकरे महत्।
दत्तं तेनायुरेतस्य कल्पं यावद्भविष्यति॥५१॥

हे बलिपुत्र! तुम्हारे पिता ने महान् जल मेरे हाथ पर छिड़का है; इसलिए उनकी आयु कल्प तक होगी।

गते मन्वन्तरे बाण श्राद्धदेवस्य साम्प्रतम्।
सावर्णिके च संप्राप्ते बलिरिन्द्रो भविष्यति॥५२॥

हे बाण! वर्तमान श्राद्धदेव मनु के पश्चात् सावर्णिक मन्वन्तर प्रारम्भ होने पर बलि इन्द्र बन जाएगा।

इत्थं प्रोक्त्वा बलिसुतं बाणं देवस्त्रिविक्रमः।
प्रोवाच बलिमभ्येत्य वचनं मधुराक्षरम्॥५३॥

त्रिविक्रम देव ने बलिपुत्र बाण से ऐसा कहकर बलि के पास पहुँचकर निम्न मधुर अक्षरों वाले वचन कहे—

श्रीभगवानुवाच

आपूरणाद्दक्षिणाया गच्छ राजन् महाफलम्।
सुतलं नाम पातालं वस तत्र निरामयः॥५४॥

श्री भगवान् ने कहा— हे राजन्! मेरी दक्षिणा के पूरे होने तक तुम महान् फलदायक सुतल नामक पाताल में निरामय होकर निवास करो!

बलिरुवाच

सुतले वसतो नाथ मम भोगाः कुतोऽव्ययाः।
भविष्यन्ति तु येनाहं निवत्स्यामि निरामयः॥५५॥

बलि ने कहा— हे नाथ! सुतल में निवास करते हुए मुझे अक्षय भोग कहाँ से प्राप्त होंगे जिससे मैं निरामय होकर निवास कर सकूँगा?

त्रिविक्रम उवाच

सुतलस्थस्य दैत्येन्द्र यानि भोगानि तेऽधुना।
भविष्यन्ति महार्हाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः॥५६॥

त्रिविक्रम ने कहा— हे दैत्येन्द्र! मैं इस समय तुम्हारे सम्मुख उन समस्त बहुमूल्य भोगों का वर्णन करता हूँ जो सुतल में निवास करते समय तुम्हें उपलब्ध होंगे।

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
तथाधीतान्यव्रतिभिर्दास्यन्ति भवतः फलम्॥५७॥

अविधिपूर्वक प्रदत्त दान भी, श्रोत्रिय ब्राह्मणों के बिना भी कृत श्राद्धकर्म, अव्रती (ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले) व्यक्तियों के द्वारा किये गए अध्ययन भी तुम्हारे लिए फलदायक होंगें।

तथान्यमुत्सवं पुण्यं वृत्ते शक्रमहोत्सवे।
द्वारप्रतिपदा नाम तव भावी महोत्सवः॥५८॥

एक अन्य पुण्यशाली द्वारप्रतिपदा नामक महोत्सव शक्रमहोत्सव के उपरान्त तुम्हारे लिए होगा।

तत्र त्वां नरशार्दूला हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः।
पुष्पदीपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः॥५९॥

उस महोत्सव में हृष्ट-पुष्ट एवं अलंकरण से युक्त समृद्ध पुरुष श्रेष्ठ पुष्प और दीप प्रदान द्वारा यत्नपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे।

तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति
दिवानिशं हृष्टजनाभिरामम्।
यथैव राज्ये भवतस्तु साम्प्रतं
तथैव सा भाव्यथ कौमुदी च॥६०॥

आपके राज्य में इस समय जिस प्रकार अहोरात्र प्रसन्न जनसमुदाय के कारण रमणीक महोत्सव बनता रहता है उसी प्रकार उत्सवों में श्रेष्ठ वह कौमुदी नामक का उत्सव होगा।

इत्येवमुक्त्वा मधुहा दितीश्वरं
विसर्जयित्वा सुतलं सभार्यम्।
यज्ञं समादाय जगाम तूर्णं
स शक्रसद्मामरसंघजुष्टम्॥६१॥

मधुनाशक विष्णु ऐसा कहकर दितीश्वर बलि को उनकी पत्नी के साथ सुतल में छोड़कर यज्ञ को लेकर देवसमूह से युक्त होकर इन्द्र के धाम में चले गए।

दत्त्वा मघोने च विभुस्त्रिविष्टपं
कृत्वा च देवान् मखभागभोक्तॄन्।
अन्तर्दधे विश्वपतिर्महर्षे
संपश्यतामेव सुराधिपानाम्॥६२॥

हे महर्षि! इन्द्र को स्वर्ग सौंपकर और देवताओं को यज्ञभाग का भोक्ता बनाकर वह सर्वसमर्थ विश्वपति देवताओं के देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गए।

स्वर्गं गते धातरि वासुदेवे
शाल्वोऽसुराणां महता बलेन।
कृत्वा पुरं सौभमिति प्रसिद्धं
तदान्तरिक्षे विचचार कामात्॥ ६३॥

धाता वासुदेव के स्वर्ग चले जाने पर शाल्व ने असुरों के महान् बल की सहायता से 'सौम' नामक प्रसिद्ध नगर बनाकर इच्छावश अन्तरिक्ष में विचरण किया।

मयस्तु कृत्वा त्रिपुरं महात्मा
सुवर्णताम्रायसमग्र्यसौख्यम्।
सतारकाक्षः सह वैद्युतेन
संतिष्ठते भृत्यकलत्रवान् सः॥ ६४॥

महात्मा मय ने त्रिपुर का निर्माण किया जो स्वर्ण ताम्र और लोहे से बनाया गया था तथा समस्त सुख-सुविधाओं से युक्त था। वहाँ उसने अपनी पत्नी, सेवकों, तारकाक्ष तथा वैद्युत् के साथ निवास किया।

वाणोऽपि देवेन हते त्रिविष्टपे
बद्धे बलौ चापि रसातलस्थे।
कृत्वा सुगुप्तं भुवि शोणिताख्यं
पुरं स चास्ते सह दानवेन्द्रैः॥ ६५॥

देवताओं के द्वारा स्वर्गलोक ले लेने पर तथा बद्ध बलि के रसातल में निवास करने पर बाण ने भी भूमि पर अत्यंत सुरक्षित 'शोणित' नामक एक नगर बनाया जिसमें उसने अनेक प्रमुख दानवों के साथ निवास किया।

एवं पुरा चक्रधरेण विष्णुना
बद्धो बलिर्वामनरूपधारिणा।
शक्रप्रियार्थं सुरकार्यसिद्धये
हिताय विप्रर्षभगोद्विजानाम्॥ ६६॥

इस प्रकार इन्द्र की प्रसन्नता के लिये, देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए तथा गौ और ब्राह्मणों की उद्देश्यसिद्धि व उत्कर्ष के लिए प्राचीनकाल में चक्रधारी विष्णु ने वामन रूप धारण कर बलि को बांधा था।

प्रादुर्भवस्ते कथितो महर्षे
पुण्यः शुचिर्वामनस्याघहारी।
श्रुते यस्मिन् संस्मृते कीर्तिते च
पापं याति प्रक्षयं पुण्यमेति॥ ६७॥

हे महर्षि! वामन के इस पापनाशक, पुण्य एवं पवित्र प्रादुर्भाव के विषय में तुम्हें बताया गया जिसके सुनने, संस्मरण करने तथा कीर्तन करने से पापों का नाश तथा पुण्यों का उदय होता है।

एतत्प्रोक्तं भवतः पुण्यकीर्त्तेः
प्रादुर्भावो बलिबन्धोऽव्ययस्य।
यच्चाप्यन्यत् श्रोतुकामोऽसि विप्र
तत्प्रोच्यतां कथयिष्याम्यशेषम्॥ ६८

तुम्हें यह अव्यय पुण्यकीर्ति विष्णु का प्रादुर्भाव तथा बलि के विषय में बंधन बताया गया। हे विप्र! यदि कुछ और सुनना चाहते हो तो कहो, मैं तुम्हें संपूर्णतः बताऊँगा!

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे बलिबन्धनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

(वामन स्तुति)

नारद उवाच

श्रुतं यथा भगवता बलिर्बद्धो महात्मना।
किंत्वस्त्यन्यत्तु प्रष्टव्यं तच्छ्रुत्वा कथयाद्य मे॥ १॥

नारद ने कहा— जिस प्रकार सर्वशक्तिशाली महात्मा विष्णु ने बलि को बांधा वह मैंने सुना। किंतु मैं और भी पूछना चाहता हूँ। वह सुनकर अब मुझे बताइये।

भगवान् देवराजाय दत्त्वा विष्णुस्त्रिविष्टपम्।
अन्तर्धानं गतः क्वासौ सर्वात्मा तात कथ्यताम्॥ २॥
सुतलस्थश्च दैत्येन्द्रः किमकार्षीत् तथा वद।
का चेष्टा तस्य विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३॥

हे तात! मुझे बताइये देवराज इन्द्र को स्वर्गलोक प्रदान करने के पश्चात् सर्वात्मा भगवान् विष्णु कहाँ अन्तर्ध्यान हो गए तथा सुतल स्थित दैत्येन्द्र बलि ने क्या

किया? हे विप्रर्षि! उसकी क्रियाएँ कौन सी थी, कृपया मुझे बताएँ।

पुलस्त्य उवाच

अन्तर्धाय सुरावासं वामनोऽभूदवामनः।
जगाम ब्रह्मसदनमधिरुह्योरगाशनम्॥४॥

पुलस्त्य ने कहा— वामन ने अन्तर्ध्यान होकर अपने वामन रूप का त्याग कर दिया और गरुड़ पर सवार होकर देवों के निवास ब्रह्मलोक में जा पहुँचे।

वासुदेवं समायान्तं ज्ञात्वा ब्रह्माऽव्ययात्मकः।
समुत्थायाथ सौहार्दात् सस्वजे कमलासनः॥५॥

वासुदेव को समागत जानकर अव्ययस्वरूप कमल आसन पर स्थित ब्रह्मा ने उठकर सौहार्दपूर्वक उनका आलिङ्गन किया।

परिष्वज्यार्च्य विधिना वेधाः पूजादिना हरिम्।
पप्रच्छ किं चिरेणेह भवतागमनं कृतम्॥६॥

आलिङ्गन तथा पूजादि से हरि की अर्चना करके ब्रह्मा ने पूछा कि आप किस कारण से इतनी देर बाद यहाँ आए हैं?

अथोवाच जगत्स्वामी मया कार्यं महत्कृतम्।
सुराणां ऋतुभागार्थं स्वयं भो बलिबन्धनम्॥७॥

तब जगत् के स्वामी ने कहा— देवों के यज्ञभाग के उद्देश्य से मैंने बलि को बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

पितामहस्तद्वचनं श्रुत्वा मुदितमानसः।
कथं कथमिति प्राह त्वं मां दर्शितुमर्हसि॥८॥

यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त पितामह ब्रह्मा ने कहा— किस प्रकार; कृपया मुझे बताइये।

इत्येवमुक्ते वचने भगवान् गरुडध्वजः।
दर्शयामास तद्रूपं सर्वदेवमयं लघु॥९॥

इस प्रकार कहने पर भगवान् गरुड़ध्वज ने अपने सर्वदेवमय और साथ ही अत्यंत लघु रूप को दिखाया।

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं योजनायुतविस्तृतम्।
तावानेवोर्ध्वमानेन ततोऽजः प्रणतोऽभवत्॥१०॥

पुण्डरीकाक्ष के उस रूप को देखकर जो योजनपर्यन्त विस्तृत था तथा ऊँचाई में भी उतने ही प्रमाण का था (ऊँचाई में भी योजनपर्यन्त था) ब्रह्मा नतमस्तक हो गये।

ततः प्रणम्य सुचिरं साधु साध्वित्युदीर्य च।
भक्तिनम्रो महादेवे पद्मजः स्तोत्रमीरयत्॥११॥

तदनन्तर प्रणाम करके तथा चिरकाल तक 'साधु-साधु' कहकर भक्तिपूर्वक नतमस्तक होकर ब्रह्मा महादेव की स्तुति करने लगे—

ॐनमस्ते देवाधिदेव वासुदेव एकशृङ्ग बहुरूप वृषाकपे भूतभावन सुरासुरवृष सुरासुरमथन पीतवासः श्रीनिवास असुरनिर्मितान्त अमितनिर्मित कपिल महाकपिल विष्वक्सेन नारायण ध्रुवध्वज सत्यध्वज खड्गध्वज तालध्वज वैकुण्ठ पुरुषोत्तम वरेण्य विष्णो अपराजित जय जयन्त विजय कृतावर्त महादेव अनादे अनन्त आद्यन्तमध्यनिधन पुरंजय धनंजय शुचिश्रव पृश्निगर्भ कमलगर्भ कमलायताक्ष श्रीपते विष्णुमूल मूलाधिवास प्रजाध्यक्ष गदाधर श्रीधर श्रुतिधर वनमालाधर लक्ष्मीधर धरणीधर पद्मनाभ विरिञ्चे आर्ष्टिषेण महासेन सेनाध्यक्ष परिष्टुत बहुकल्प महाकल्प कल्पनामुख अनिरुद्ध सर्वग सर्वात्मन् द्वादशात्मक सूर्यात्मक सोमात्मक कलात्मक व्योमात्मक भूतात्मक रसात्मक परमात्मन् सनातन मुञ्जकेश हरिकेश गुडाकेश केशव नील सूक्ष्म स्थूल पीत रक्त श्वेत श्वेताधिवास रक्ताम्बरप्रिय प्रीतिकर प्रीतिवास हंस सीरध्वज नीलवास सर्वलोकाधिवास कुशेशय अधोक्षज गोविन्द जनार्दन मधुसूदन वामन नमस्तेऽस्तु॥

हे देवाधिदेव! वासुदेव! एकशृङ्ग! बहुरूप! वृषाकपि! भूतभावन! सुरासुरश्रेष्ठ! सुरासुरमथन! पीतवास! श्रीनिवास! असुरनिर्मितान्त! अमितनिर्मित! कपिल! महाकपिल! विष्वक्सेन! नारायण! ध्रुवध्वज! सत्यध्वज! खड्गध्वज! तालध्वज! वैकुण्ठ! पुरुषोत्तम! वरेण्य! विष्णु! अपराजित! जय! जयन्त! विजय! कृतावर्त! महादेव! अनादि! अनन्त! आद्यन्त! मध्यनिधन! पुरंजय! धनंजय! शुचिश्रव! पृश्निगर्भ! कमलगर्भ! कमलायताक्ष! श्रीपति! विष्णुमूल!

मूलाधिवास! धर्माधिवास! धर्मवास! धर्माध्यक्ष! प्रजाध्यक्ष! गदाधर! श्रीधर! श्रुतिधर! वनमालाधर! लक्ष्मीधर! धरणीधर! पद्मनाभ! विरिञ्चि! आर्ष्टिषेण! महासेन! सेनाध्यक्ष! पुरुष्टुत! बहुकल्प! महाकल्प! कल्पनामुख! अनिरुद्ध! सर्वग! सर्वात्मन्! द्वादशात्मक! सूर्यात्मक! सोमात्मक! कलात्मक! व्योमात्मक! भूतात्मक! हे रसात्मक! परमात्मन्! सनातन! मुञ्जकेश! हरिकेश! गुडाकेश! केशव! नील! सूक्ष्म! स्थूल! पीत! रक्त! श्वेत! श्वेताधिवास! रक्ताम्बरप्रिय! प्रीतिकर! प्रीतिवास! हंस! सीरध्वज! नीलवास! सर्वलोकाधिवास! कुशेशय! अधोक्षज! गोविन्द! जनार्दन! मधुसूदन! वामन! आपको नमस्कार है।

ॐ सहस्रशीर्षाऽसि सहस्रदृगसि सहस्रपादोऽसि त्वं कमलोऽसि महापुरुषोऽसि सहस्रबाहुरसि सहस्रमूर्तिरसि त्वां वेदा: प्राहु: सहस्रवदनं ते नमस्ते॥

आप सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद, कमल, महापुरुप, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति हैं। आपको देवगण सहस्रवदन करते हैं।

ॐ नमस्ते विश्वदेवेश विश्वभू: विश्वात्मक विश्वरूप विश्वसंभव त्वत्तो विश्वमिदमभवद् ब्राह्मणस्त्वन्मुखेभ्यो-ऽभवन् क्षत्रिया दो: संभूता: ऊरुयुग्माद् विशोऽभवन् शूद्राश्चरणकमलेभ्य:।

ॐ विश्वदेवेश! विश्वभू! विश्वात्मक! विश्वरूप! विश्वसंभव! आपको नमस्कार है। आपसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है। आपके मुख से ब्राह्मण,. बाहु से क्षत्रिय, ऊरुयुगल से वैश्य एवं चरणकमलों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

नाभ्या भवतोऽन्तरिक्षमजायत इन्द्राग्नी वक्त्रतो नेत्राद् भानुरभून्मनस: शशाङ्क: अहं प्रसादजस्तव क्रोधात् त्र्यम्बक: प्राणाज्जातो भवतो मातरिश्वा शिरसो द्यौरजायत श्रोत्राद्दिशो भूरियं चरणादभूत श्रोत्रोद्भवादिशोभिवत: स्वयंभोनक्षत्रास्तो-जोद्भवा: मूर्त्तयश्चामूर्तयश्च सर्वे त्वत्त: समुद्भूता:।

हे स्वयम्भू! आपकी नाभि से अन्तरिक्ष, मुख से इन्द्र एवं अग्नि, नेत्र से सूर्य, मन से चन्द्र एवं आपके प्रसाद से मैं हुआ हूँ। आपके क्रोध से त्र्यम्बक, प्राण से मातरिश्वा, शिर से द्युलोक, कर्ण से दिशाएँ चरणों से यह पृथ्वी, श्रवण से दिशाएँ एवं तेज से नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं। समस्त मूर्त एवं अमूर्त पदार्थ आपसे समुद्भूत हुए हैं।

अतो विश्वात्मकोऽसि ॐ नमस्ते पुष्पहासोऽसि महाहासोऽसि परमोऽसि ॐकारोऽसि वषट्कारोऽसि स्वाहाकारोऽसि वौषट्कारोऽसि स्वधाकारोऽसि वेदमयोऽसि तीर्थमयोऽसि यजमानमयोऽसि। यज्ञमयोऽसि सर्वधाताऽसि यज्ञभोक्ताऽसि शुक्रधाताऽसि भूर्द भुवर्द स्वर्द स्वर्णद गोद अमृतदोऽसीति। ॐ ब्रह्मादिरसि ब्रह्ममयोऽसि यज्ञोऽसि वेदकामोऽसि वेद्योऽसि यज्ञधारोऽसि महामीनोऽसि महासेनोऽसि महाशिरा असि। नृकेसर्यसि होताऽसि होमयोऽसि हव्योऽसि हूयमानोऽसि हयमेधोऽसि पोताऽसि पावयिताऽसि पूतोऽसि पूज्योऽसि दाताऽसि हन्यमानोऽसि ह्रियमाणोऽसि हर्त्तासीति। नीतिरसि नेताऽसि अग्र्योऽसि विश्वधामाऽसि शुभाण्डोऽसि ध्रुवोऽसि आरणेयोऽसि ध्यानोऽसि ध्येयोमसि ज्ञेयोऽसि ज्ञानोऽसि यष्टाऽसि दानोऽसि भूमाऽसि ईक्ष्योऽसि ब्रह्माऽसि होताऽसि उद्गाताऽसि गतिमतां गतिरसि ज्ञानिनां ज्ञानमसि योगिनां योगोऽसि मोक्षगामिनां मोक्षोऽसि श्रीमतां श्रीरसि गृह्योऽसि पाताऽसि परमसि सोमोऽसि सूर्योऽसि दक्षिणाऽसि दीक्षिणाऽसि नरोऽसि त्रिनयनोऽसि महानयनोऽसि आदित्यप्रभवोऽसि सुरोत्तमोऽसि शुचिरसि शुक्रोऽसि नभोऽसि नभस्योऽसि इषोऽसि ऊर्जोऽसि सहोऽसि सहस्योऽसि तपोऽसि तपस्योऽसि मधुरसि माधवोऽसि कालोऽसि संक्रमोऽसि विक्रमोऽसि पराक्रमोऽसि अश्वग्रीवोऽसि महामेधोऽसि शङ्करोऽसि ब्रह्मेशोऽसि सूर्योऽसि मित्रावरुणोऽसि प्राग्वंशकाशोऽसि भूतादिरसि महाभूतोऽसि ऊर्ध्वकर्माऽसि कर्त्ताऽसि सर्वपापविमोचनोऽसि त्रिविक्रमोऽसि ॐ नमस्ते।

अत: आप विश्वात्मक हैं ॐआपको नमस्कार है। आप पुष्पहास, महाहास, परम, ॐकार, वपट्कार,

स्वाहाकार, वौषट्कार, स्वधाकार, वेदमय, तीर्थमय, यजमानमय, यज्ञमय, सर्वधाता, यज्ञभोक्ता, शुक्रधाता, भूर्द, भुवर्द, स्वर्द, स्वर्णद, गोद, अमृतद, ब्रह्मादि, ब्रह्ममय, यज्ञ, वेदकाम, वेद्य, यज्ञधार, महामीन, महासेन, महाशिरा, नृकेसरी, होता, होम्य, हव्य, हूयमान, हयमेध, पोता, पावयिता, पूत, पूज्य, दाता, हन्यमान, ह्रियमाण, हर्त्ता, नीति, नेता, अग्र्य, विश्वधाम, शुभाण्ड, ध्रुव, आरणेय, ध्यान, ध्येय, ज्ञेय, ज्ञान, यष्टा, दान, भूमा, ईक्ष्य, ब्रह्मा, होता, उद्गाता, गतिमानों की गति, ज्ञानियों के ज्ञान, योगियों के योग, मोक्षार्थियों के मोक्ष, श्रीमानों की श्री, गृह्य, पाता, एवं परम हैं। आप सोम, सूर्य, दीक्षा, दक्षिणा, नर, त्रिनयन, महानयन, आदित्यप्रभव, सुरोत्तम, शुचि, शुक्र, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य, मधु, माधव, काल, संक्रम, विक्रम, पराक्रम, अश्वग्रीव, महामेध, शङ्कर, हरीश्वर, शम्भु, ब्रह्मेश, सूर्य, मित्रावरुण, प्राग्वंशकाश, भूतादि, महाभूत, ऊर्ध्वकर्मा, कर्त्ता, सर्वपापविमोचन एवं त्रिविक्रम हैं। आपको नमस्कार है।

पुलस्त्य उवाच

इत्थं स्तुतः पद्मभवेन विष्णु-
स्तपस्विभिश्चाद्भुतकर्मकारी
प्रोवाच देवं प्रपितामहं तु
वरं वृणीष्वामलसत्त्ववृत्ते॥ १२॥

पुलस्त्य ने कहा— पद्मभव ब्रह्मा तथा तपस्वियों के द्वारा इस प्रकार स्तुत अद्भुत कर्म करने वाले विष्णु ने प्रपितामह देव से कहा— हे निर्मल और सात्विकवृत्ति वाले! वर मांगिये!

तमब्रवीत्प्रीतियुतः पितामहो
वरं ममेहाद्य विभो प्रयच्छ।
रूपेण पुण्येन विभो ह्यनेन
संस्थीयतां मद्भवने मुरारे॥ १३॥

पितामह ने प्रसन्न होकर उनसे कहा— हे विभु! हे मुरारि! मुझे आज यह वर दीजिए कि आप अपने इस स्वरूप के साथ ही मेरे भवन में प्रतिष्ठित हों।

इत्थं वृते देववरेण प्रादात्
प्रभुस्तथास्त्विति तमव्ययात्मा।
तस्थौ हि रूपेण हि वामनेन
संपूज्यमानः सदने स्वयंभोः॥ १४॥

देववर ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार वर मांगने पर अव्ययस्वरूप प्रभु ने 'तथाऽस्तु' कहकर वर दे दिया और संपूजित होते हुए विष्णु अपने वामन रूप सहित ब्रह्मा के सदन में ही प्रतिष्ठित हो गए।

नृत्यन्ति तत्राप्सरसां समूहा
गायन्ति गीतानि सुरेन्द्रनायनाः।
विद्याधरास्तूर्यवरांश्च वादयन्
स्तुवन्ति देवासुरसिद्धसंघाः॥ १५॥

वहाँ अप्सराओं के समूह नृत्य कर रहे थे, गंधर्व गीत गा रहे थे, विद्याधर श्रेष्ठ वाद्य बजा रहे थे तथा देव, असुर और सिद्धों के समूह स्तुति कर रहे थे।

ततः समाराध्य विभुं सुराधिपः
पितामहो धौतमलः स शुद्धः।
स्वर्गं विरिञ्चिः सदनात् सुपुष्पा-
ण्यानीय पूजां प्रचकार विष्णोः॥ १६॥

विभु की समाराधना के उपरान्त पितामह ब्रह्मा निष्पाप एवं शुद्ध हो गये। स्वर्ग में ब्रह्मा ने घर में सुन्दर पुष्पों को लाकर उनसे विष्णु का पूजन किया।

स्वर्गे सहस्रं स तु योजनानां
विष्णुः प्रमाणेन हि वामनोऽभूत्।
तत्रास्य शक्रः प्रचकार पूजां
स्वयंभुवस्तुल्यगुणां महर्षे॥ १७॥

हे महर्षि! स्वर्ग में विष्णु का वामन रूप सहस्रयोजन प्रमाण वाला था। वहाँ इन्द्र ने विष्णु की पूजा की। वह पूजा ब्रह्मा की पूजा के समान ही भव्य थी।

एतत्तवोक्तं भगवांस्त्रिविक्रम-
श्चकार यद्देवहितं महात्मा।
रसातलस्थो दितिजश्चकार
यत्तच्छृणुष्वाद्य वदामि विप्र॥ १८॥

हे विप्र! भगवान् त्रिविक्रम महात्मा ने देवताओं के हित के लिये जो किया वह मैंनेन तुम्हें सुनाया।

रसातलस्थ दानव ने जो किया; अब मैं वह कहता हूँ; सुनो—

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे वामनप्रादुर्भावे ब्रह्मोक्तस्तवो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

(प्रह्लाद द्वारा भगवत्प्रशंसा)

पुलस्त्य उवाच

गत्वा रसातलं दैत्यो महार्हमणिविचित्रितम्।
शुद्धस्फटिकसोपानं कारयामास वै पुरम्॥१॥

पुलस्त्य ने कहा— रसातल में जाकर दैत्य (बलि) ने उसे महान् बहुमूल्य मणियों से चित्रित कराया तथा शुद्धस्फटिक के सोपानों से सजाया।

तत्र मध्ये सुविस्तीर्णः प्रासादो वज्रवेदिकः।
मुक्तजालान्तरद्वारो निर्मितो विश्वकर्मणा॥२॥

उसके बीच में विश्वकर्मा ने एक अत्यंत विस्तृत प्रासाद बनाया जिसमें हीरे के छज्जे थे तथा मुक्ताजालों के हार से निर्मित द्वार थे।

तत्रास्ते विविधान् भोगान् भुञ्जन्दिव्यान्स मानुषान्।
नाम्ना विन्ध्यावलीत्येवं भार्याऽस्य दयिताऽभवत्॥३॥

वहाँ उसने विविध मानुषी और दिव्य भोगों का भोग करते हुए निवास किया। विन्ध्यावली नामक उसकी एक पत्नी थी।

युवतीनां सहस्रस्य प्रधाना शीलमण्डिता।
तया सह महातेजा रेमे वैरोचनिर्मुने॥४॥

हे मुनि! शीलगुणाभिमण्डित वह एक हजार युवतियों में प्रमुख थी। महातेजस्वी विरोचनपुत्र ने उसके साथ वहाँ रमण किया।

भोगासक्तस्य दैत्यस्य वसतः सुतले तदा।
दैत्यतेजोहरः प्राप्तः पाताले वै सुदर्शनः॥५॥

भोगासक्त दैत्य जब सुतल में निवास कर रहे थे तब वहाँ दैत्यों के तेज का अपहरण करने वाला 'सुदर्शन' पाताल में आ पहुँचा।

चक्रे प्रविष्टे पातालं दानवानां पुरे महान्।
बभौ हलहलाशब्दः क्षुभितार्णवसंनिभः॥६॥

दानवों के महान् नगर पाताल में चक्र के प्रविष्ट होने पर क्षुब्ध महासागर के शब्द के समान हलाहलशब्द हुआ।

तं च श्रुत्वा महाशब्दं बलिः खड्गं समाददे।
आः किमेतदितीत्थञ्च पप्रच्छासुरपुंगवः॥७॥

उस महान् कोलाहल को सुनकर बलि ने तलवार निकाल ली। उस असुरश्रेष्ठ ने पूछा 'यह क्या है'।

ततो विन्ध्यावली प्राह सान्त्वयन्ती निजं पतिम्।
कोशे खड्गं समावेश्य धर्मपत्नी शुचिव्रता॥८॥

तब शुचिव्रता धर्मपत्नी विन्ध्यावली ने तलवार को कोश में रखकर अपने पति को शान्त करते हुए कहा—

एतद्भगवतश्चक्रं दैत्यचक्रक्षयंकरम्।
संपूजनीयं दैत्येन्द्र वामनस्य महात्मनः।
इत्येवमुक्त्वा चार्वङ्गी सार्घपात्रा विनिर्ययौ॥९॥

हे दैत्येन्द्र! यह महात्मा वामन भगवान् का दैत्यजाति को नष्ट करने वाला चक्र (सुदर्शन) है जो सर्वथा पूजनीय है। यह कहकर वह सुन्दरी अर्घ्यपात्र के साथ बाहर चली गई।

अथाभ्यागात्सहस्रारं विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
ततोऽसुरपतिः प्रह्वः कृताञ्जलिपुटो मुने।
संपूज्य विधिवच्चक्रमिदं स्तोत्रमुदीरयत्॥१०॥

हे मुनि! तत्पश्चात् विष्णु का सहस्र अरों वाला सुदर्शन चक्र वहाँ आ पहुँचा। तब असुरपति ने नतमस्तक होकर हाथ जोड़ते चक्र की विधिवत् पूजा करके यह स्तोत्र पढ़ा—

बलिरुवाच-

नमस्यामि हरेश्चक्रं दैत्यचक्रविदारणम्।
सहस्रांशुं सहस्राभं सहस्रारं सुनिर्मलल्॥११॥

बलि ने कहा— मैं विष्णु के चक्र को नमस्कार करता हूँ, जो सहस्र किरणों वाला है, सहस्र वर्ण वाला है, सहस्र अरों वाला है, अत्यंत निर्मल है तथा दैत्यजाति का नाश करने वाला है।

नमस्यामि हरेश्चक्रं यस्य नाभ्यां पितामहः।
तुण्डे त्रिशूलधृक्शर्व अरामूले महाद्रयः॥१२॥

मैं उन विष्णु के चक्र को नमस्कार करता हूँ जिनकी नाभि में पितामह हैं, मुख में त्रिशूलधारी शिव हैं तथा अरों के मूल में विशाल पर्वत हैं।

आरेषु संस्थिता देवाः सेन्द्राः सार्काः सपावकाः।
जवे यस्य स्थितो वायुरापोऽग्निः पृथिवी नभः॥ १३॥

इनके अरों में इन्द्र, सूर्य और अग्नि निवास करते हैं तथा इसके वेग में वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश स्थित हैं।

आरप्रान्तेषु जीमूताः सौदामिन्यृक्षतारकाः।
बाह्यतो मुनयो यस्य बालखिल्यादयस्तथा॥ १४॥

अरों के प्रान्तों पर मेघ, बिजली, तारागण एवं नक्षत्र हैं तथा इसके किनारों पर बालखिल्यादि तथा अन्य मुनिगण प्रतिष्ठित हैं।

तमायुधवरं वन्दे वासुदेवस्य भक्तितः।
यन्मे पापं शरीरोत्थं वाग्जं मानसमेव च॥ १५॥
तन्मे दहस्व दीप्तांशो विष्णोश्चक्र सुदर्शन।
यन्मे कुलोद्भवं पापं पैतृकं मातृकं तथा॥ १६॥

मैं भक्तिपूर्वक वासुदेव के उस श्रेष्ठ आयुध को नमस्कार करता हूँ। हे विष्णु के दीप्तांशु सुदर्शन चक्र! आप मेरे शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक पापों का नाश करें। हे अच्युतायुध! मेरे कुल में हुए पैतृक एवं मातृक पापों का वेग से आप हरण करें। आपको नमस्कार है, मेरी समस्त आधि-व्याधियों का नाश हो जाय। हे चक्र! आपके नाम का कीर्तन करने से पापों का नाश हो जाय।

तन्मे हरस्व तरसा नमस्ते अच्युतायुध।
आधयो मम नश्यन्तु व्याधयो यान्तु संक्षयम्।
त्वन्नामकीर्तनाच्चक्र दुरितं यातु संक्षयम्॥ १७॥

हे अच्युत के आयुध! आपको नमस्कार है। मेरे (पापों) का शीघ्रता सेँ हरण करो। मेरी आधियाँ (मानसिक क्लेश) नष्ट हो जाएँ। मेरी व्याधियाँ (शारीरिक क्लेश) शान्त हो जाएँ! हे चक्र! तुम्हारे नाम के संकीर्तन से समस्त उपाधियाँ (प्राकृतिक आपदाएँ) शान्त हो जाएँ!

इत्येवमुक्त्वा मतिमान्समभ्यच्यार्थ भक्तितः।
संस्मरन्पुण्डरीकाक्षं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १८॥
पूजितं बलिना चक्रं कृत्वा निस्तेजसोऽसुरान्।
निश्चक्रामाथ पातालाद्विषुवे दक्षिणे मुने॥ १९॥

यह कहकर उस बुद्धिमान् ने भक्तिपूर्वक उस चक्र की अभ्यर्चना की तथा समस्त पापों के नाशक पुण्डरीकाक्ष का स्मरण किया। हे मुने! बलि के द्वारा पूजित चक्र असुरों को निस्तेज करता हुआ पाताल से निकलकर दक्षिण की ओर गया।

सुदर्शने निर्गते तु बलिर्विक्लवतां गतः।
परमामापदं प्राप्य सस्मार स्वपितामहम्॥ २०॥

सुदर्शन के निकल जाने के बाद बलि अत्यंत व्याकुल हो गया। परम विपत्ति की आशंका से उसने अपने पितामह का स्मरण किया।

स चापि संस्मृतः प्राप्तः सुतलं दानवेश्वरः।
दृष्ट्वा तस्थौ महातेजाः सार्घपात्रो बलिस्तदा॥ २१॥

बलि के द्वारा संस्मृत दानवेश्वर भी सुतल में आ पहुँचा। उसको देखकर महातेजस्वी बलि अर्घ्यपात्र के सहित खड़ा हो गया।

तमर्च्य विधिना ब्रह्मन् पितुः पितरमीश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ २२॥

हे ब्राह्मण! उन ईश्वर पितामह (प्रह्लाद) की विधिपूर्वक अर्चना करके वह हाथ जोड़कर बोला—

संस्मृतोऽपि मया तात सुविषण्णेन चेतसा।
तन्मे हितं च पथ्यं च श्रेयोग्र्यं वद तात मे॥ २३॥

हे तात! मैंने अत्यंत निराश एवं दुःखी मन से आपका स्मरण किया है। इसलिए, हे तात! मेरे लिए जो हितकारक, उचित एवं सर्वाधिक कल्याणकारी है, वह मुझे बताइये!

किं कार्यं तात संसारे वसता पुरुषेण हि।
कृतेन येन वै नास्य बन्धः समुपजायते॥ २४॥

हे तात! संसार में निवास करते हुए पुरुष को क्या करना चाहिये कि उसका बन्धन न हो?

संसारार्णवमग्नानां नराणामल्पचेतसाम्।
तरणे यो भवेत् पोतस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २५॥

इस संसार रूपी समुद्र को पार करने हेतु अल्पबुद्धि

मनुष्यों के लिए जो जहाज के समान हो, कृपया वह उपाय मुझे बताएँ!

पुलस्त्य उवाच

एतद्वचनमाकर्ण्य तत्पौत्राद्दानवेश्वरः।
विचिन्त्य प्राह वचनं संसारे यद्धितं परम्॥ २६॥

पुलस्त्य ने कहा— अपने पौत्र से यह वचन सुनकर उस दानवेश्वर ने विचार कर संसार के परमहितकारक श्रेष्ठ वचन कहे—

प्रह्लाद उवाच

साधु दानवशार्दूल यत्ते जाता मतिस्त्वियम्।
प्रवक्ष्यामि हितां तेऽद्य तथाऽन्येषां हितं बले॥ २७॥

प्रह्लाद ने कहा— हे दानवश्रेष्ठ! यह बहुत अच्छी बात है कि तुम्हें ऐसा विचार आया। हे बलि! जो तुम्हारे और अन्य मनुष्यों के लिये हितकारक है मैं तुमसे वह कहता हूँ।

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥ २८॥

समस्त मनुष्य जो भवसागर में गिरे हुए हैं। वे प्रतिकूल परिस्थितियों की वायु से आहत हैं, पुत्र-पुत्री एवं पत्नी के पोषण के भार से झुके हुए हैं तथा विषयभोगों के (तेज बहाव वाले) विषम जल में गोते लगा रहे हैं उनके लिए विष्णुनामक जहाज एकमात्र शरण है।

ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं
नारायणं सुरगुरुं शुभदं वरेण्यम्।
शुद्धं खगेन्द्रगमनं कमलालयेशं
ते धर्मराजशरणं न विशन्ति धीराः॥ २९॥

आदि, मध्य एवं अन्त रहित, शुभदाता, वरेण्य, गरुडवाहन, लक्ष्मीपति, शुद्ध, सुरगुरु, नारायण हरि का आश्रय ग्रहण करने वाले धीर मनुष्य यमराज के शरण में नहीं पड़ते।

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रसन्नान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥ ३०॥

हाथों में पाश लिए हुए अपने सेवक को देखकर यम उसके कान में कहता है— 'मधुसूदन का आश्रय लेने वालों को छोड़ दो! मैं अन्य सभी मनुष्यों का शासक हूँ परन्तु वैष्णवों (विष्णु का आश्रय लेने वालों) का नहीं'।

तथाऽन्यदुक्तं नरसत्तमेन
इक्ष्वाकुणा भक्तियुतेन नूनम्।
ये विष्णुभक्ताः पुरुषाः पृथिव्यां
यमस्य ते निर्विषया भवन्ति॥ ३१॥

भक्तियुक्त पुरुषश्रेष्ठ ईक्ष्वाकु ने कहा है कि पृथ्वी पर जो भी विष्णु के भक्त हैं सब यम के विषय नहीं हैं (यम के न्याय से बाहर हैं)!

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥ ३२॥

वही जिह्वा वस्तुतः जिह्वा है जो हरि की स्तुति करती है; वही चित्त वस्तुतः चित्त है जो उन (हरि) को समर्पित है, वे दोनों हाथ ही वस्तुतः प्रशंसनीय हैं जो उनकी पूजा में रत हैं।

नूनं न तौ करौ प्रोक्तौ वृक्षशाखाग्रपल्लवौ।
न यौ पूजयितुं शक्तौ हरिपादाम्बुजद्वयम्॥ ३३॥

जो हरि के चरणकमल युगल की पूजा नहीं कर सकते। वे हाथ निश्चय ही हाथ नहीं हैं अपितु वृक्ष की शाखा के अग्रभाग में उगे हुए पत्ते हैं।

नूनं तत्कण्ठशालूकमथवा प्रतिजिह्विका।
रोगो वाऽन्यो न सा जिह्वा या न वक्ति हरेर्गुणान्॥ ३४

निश्चय ही वह कण्ठ मेंढक है, अथवा सूक्ष्मतालु वाला है अथवा रोगयुक्त है जिसकी जिह्वा हरि के गुणों का वर्णन नहीं करती।

शोचनीयः स बन्धूनां जीवन्नपि मृतो नरः।
यः पादपङ्कजं विष्णोर्न पूजयति भक्तितः॥ ३५॥

वह व्यक्ति निश्चय ही अपने बंधुओं के लिये शोचनीय है, जीवित होते हुये भी मरा हुआ ही है, जो भक्तिपूर्वक विष्णु के चरणकमलों की वंदना नहीं करता।

ये नरा वासुदेवस्य सततं पूजने रताः।
मृता अपि न शोच्यास्ते सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ३६॥

जो मनुष्य निरन्तर वासुदेव के पूजन में लगे हुए हैं वे निश्चय ही मरकर भी शोचनीय नहीं हैं। यह मैंने पूर्णतः सत्य कहा है।

शारीरं मानसं वाग्जं मूर्तामूर्तं चराचरम्।
दृश्यं स्पृश्यमदृश्यं तत्सर्वं केशवात्मकम्॥ ३७॥

शरीर, मन तथा वाणी से संबंधित, मूर्त, अमूर्त, चर, अचर, दृश्य, अदृश्य तथा स्पृश्य जो कुछ भी है वह सब केशवात्मक है।

येनार्चितो हि भगवान् चतुर्धा वै त्रिविक्रमः।
तेनार्चिता न संदेहो लोकाः सामरदानवाः॥ ३८॥

जिन्होंने भगवान् त्रिविक्रम की चार प्रकार से अभ्यर्चना की है उन्होंने निश्चय ही देवों और दानवों सहित समस्त लोकों की अर्चना की है।

यथा रत्नानि जलधेरसंख्येयानि पुत्रक।
तथा गुणा हि देवस्य त्वसंख्यातास्तु चक्रिणः॥ ३९॥

हे पुत्र! जिस प्रकार महासागर के रत्न असंख्य होते हैं उसी प्रकार चक्रधारी भगवान् विष्णु के गुण असंख्य हैं।

ये शङ्खचक्राब्जकरं च सशार्ङ्गिणं
खगेन्द्रकेतुं वरदं श्रियः पतिम्।
समाश्रयन्ते भवभीतिनाशनं
संसारगर्ते न पतन्ति ते पुनः॥ ४०॥

जो व्यक्ति शङ्ख, चक्र और कमल को हाथ में धारण करने वाले, शार्ङ्गधनुषधारी, गरुड़ध्वज, वरदायक, लक्ष्मीपति तथा भवभयनाशक विष्णु का आश्रय लेते हैं वे पुनः संसारगर्त में नहीं पड़ते।

येषां मनसि गोविन्दो निवासी सततं बले।
न ते परिभवं यान्ति न मृत्योरुद्विजन्ति च॥ ४१॥

हे बलि! जिनके चित्त में गोविन्द सदैव निवास करते हैं उनका पराभव नहीं होता। उन्हें मृत्यु से भय भी नहीं होता।

देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणम्।
न तेषां यमसालोक्यं न च ते नरकौकसः॥ ४२॥

जो व्यक्ति परमशरण्य देव शार्ङ्गधारी विष्णु की शरण लेते हैं उनका यम से सामना नहीं होता। न ही उन्हें नरक में जाना पड़ता है।

न तां गतिं प्राप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविशारदाः।
विप्रा दानवशार्दूल विष्णुभक्ता व्रजन्ति याम्॥ ४३॥

हे दानवश्रेष्ठ! श्रुतिशास्त्रविशारद ब्राह्मण भी उस गति को प्राप्त नहीं करते जिस गति को विष्णुभक्त प्राप्त कर लेते हैं।

या गतिर्दैत्यशार्दूल हतानां तु महाहवे।
ततोऽधिकां गतिं यान्ति विष्णुभक्ता नरोत्तमाः॥ ४४॥

हे दानवश्रेष्ठ! महायुद्ध में मारे गये व्यक्तियों (वीरगति को प्राप्त) की जो गति होती है पुरुषश्रेष्ठ विष्णुभक्त उससे भी अधिक उत्तम गति को प्राप्त करते हैं।

या गतिर्धर्मशीलानां सात्त्विकानां महात्मनाम्।
सा गतिर्गदिता दैत्य भगवत्सेविनामपि॥ ४५॥

हे दैत्य! धर्मपरायण सात्विक महात्माओं की जो गति कही गई है वही विष्णु भक्तों को भी प्राप्त होती है।

सर्वावासं वासुदेवं सूक्ष्ममव्यक्तविग्रहम्।
प्रविश्यन्ति महात्मानस्तद्भक्ता नान्यचेतसः॥ ४६॥

अनन्य चित्त वाले विष्णुभक्त महात्मागण उन वासुदेव में जो सूक्ष्म अव्यक्तरूप तथा समस्त जगत् का आवास हैं, प्रवेश करते हैं।

अनन्यमनसो भक्त्या ये नमस्यन्ति केशवम्।
शुचयस्ते महात्मानस्तीर्थभूता भवन्ति ते॥ ४७॥

जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर भक्तिपूर्वक केशव को नमस्कार करते हैं, वे पवित्र महात्मा बनकर स्वयं तीर्थस्वरूप हो जाते हैं।

गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् जाग्रत् पिबन्नश्नन्नभीक्ष्णशः।
ध्यायन् नारायणं यस्तु न ततोऽन्योऽस्ति पुण्यभाक्।

जो व्यक्ति चलते हुए, खड़े हुए, सोते हुए, जागते हुए, पीते हुए तथा खाते हुए निरन्तर नारायण का ही चिंतन करता है उसके अतिरिक्त अन्य कोई पुण्यशाली नहीं है।

वैकुण्ठं खड्गपरशुं भवबन्धसमुच्छिदम्॥ ४८॥
प्रणिपत्य यथान्यायं संसारे न पुनर्भवेत्।

वैंकुण्ठनिवासी, खड्ग और परशु धारण करने वाले, भवबंधनों को काटने वाले विष्णु को नमस्कार करके (व्यक्ति) विधान के अनुसार (होने पर भी) पुनः इस संसार में नहीं आता।

क्षेत्रेषु वसते नित्यं क्रीडन्नास्तेऽमितद्युतिः॥४९॥
आसीनः सर्वदेहेषु कर्मभिर्न स बध्यते।
येषां विष्णुः प्रियो नित्यं ते विष्णोः सततं प्रियाः॥५०

विष्णुप्रिय व्यक्ति नित्य तीर्थों में निवास करता है, सदैव प्रसन्न रहता है, अपरिमित आभा वाला होता है तथा समस्त प्राणियों में प्रतिष्ठित होकर धर्मबंधन में नहीं पड़ता। विष्णु जिन्हें प्रिय होते हैं वे भी विष्णु के निरन्तर प्रिय होते हैं।

न ते पुनः संभवन्ति तद्भक्तास्तत्परायणाः।
ध्यायेद्दामोदरं यस्तु भक्तिनम्रोऽर्चयेत वा॥
न स संसारपङ्केऽस्मिन् मज्जते दानवेश्वर॥५१॥

जो उनके भक्त होते हैं तथा उनके परायण (शरण) होते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता। हे दानवेश्वर! जो व्यक्ति दामोदर का ध्यान तथा विनम्र होकर भक्तिपूर्वक उनका अर्चन करता है वह इस संसारपङ्क में नहीं डूबता।

कल्यमुत्थाय ये भक्त्या स्मरन्ति मधुसूदनम्।
स्तुवन्त्यप्यभिश‍ृण्वन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥५२॥

जो प्रातः उठकर भक्तिपूर्वक मधुसूदन का स्मरण, स्तवन तथा अभिश्रवण करते हैं, वे बड़ी-बड़ी बाधाओं को भी पार कर जाते हैं।

हरिवाक्यामृतं पीत्वा विमलैः श्रोत्रभाजनैः।
प्रहष्यति मनो येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥५३॥

जिनका मन निर्मल कानों से हरि-वाक्यों का अमृत पीकर प्रसन्न होता है, वे समस्त बाधाओं को पार कर जाते हैं।

येषां चक्रगदापाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी।
ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः॥५४॥

चक्र और गदा हाथ में धारण करने वाले विष्णु में जिनकी अविचल भक्ति होती है वे उस स्थान को प्राप्त करते हैं जहाँ योगेश्वर हरि नित्य निवास करते हैं।

विष्णुकर्मप्रसक्तानां भक्तानां या परा गतिः।
सा तु जन्मसहस्रेण न तपोभिरवाप्यते॥५५॥

विष्णुकर्म में संलग्न भक्तों की जो श्रेष्ठ गति होती है वह सहस्र जन्मों की तपस्या से भी प्राप्त नहीं होती।

किं जप्यैस्तस्य मन्त्रैर्वा किं तपोभिः किमाश्रमैः।
यस्य नास्ति परा भक्तिः सततं मधुसूदने॥५६॥

उस व्यक्ति के जापों से, मन्त्रोच्चारणों से अथवा आश्रम-निवास से क्या लाभ, जिसकी मधुसूदन में निरन्तर दृढ़ भक्ति नहीं है?

वृथा यज्ञा वृथा वेदा वृथा दानं वृथा श्रुतम्।
वृथा तपश्च कीर्तिश्च यो द्वेष्टि मधुसूदनम्॥५७॥

उस व्यक्ति के यज्ञ व्यर्थ हैं। वेद व्यर्थ हैं, दान व्यर्थ है, ज्ञान व्यर्थ है, तपस्या व्यर्थ है तथा यश व्यर्थ है जो मधुसूदन से द्वेष करता है।

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥५८॥

उसे बहुत से मन्त्रों से क्या प्रयोजन जिसकी जनार्दन में भक्ति है! 'नमो नारायणाय' यह मन्त्र समस्त उद्देश्यों को सिद्ध करने वाला है।

विष्णुरेव गतिर्येषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥५९॥

जिनकी एकमात्र गति विष्णु ही हैं, नीलकमल के समान श्यामवर्ण वाले जनार्दन जिनके हृदय में प्रतिष्ठित हैं उनकी पराजय कहाँ होती है?

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं वरेण्यं वरदं प्रभुम्।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्॥६०॥

समस्त मंगलों के मंगल, परम पूजनीय, वरदायक प्रभु नारायण को नमस्कार कर समस्त कार्य करने चाहिये।

विष्टयो व्यतिपाताश्च येऽन्ये दुर्नीतिसंभवाः।
ते नामस्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महासुर॥६१॥

हे महासुर! विष्टि व व्यतिपात जैसे भयानक दुःख और दुर्व्यवहार से उत्पन्न अन्य सभी दुःख विष्णु के नामस्मरण से ही नष्ट हो जाते हैं।

तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६२॥

सहस्रकोटि अथवा शतकोटि तीर्थ भी नारायण को प्रणाम करने की तुलना में उसकी सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥६३॥

पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ तथा पुण्य स्थान हैं, विष्णु नाम के अनुकीर्तन से मनुष्य उन सबको प्राप्त कर लेता है।

प्राप्नुवन्ति न तांल्लोकान् व्रतिनो वा तपस्विनः।
प्राप्यन्ते ये तु कृष्णस्य नमस्कारपरैर्नरैः॥६४॥

कठोरव्रतधारी तपस्वी भी उन लोकों को प्राप्त नहीं करते जो कृष्ण को नमस्कार करने में निरन्तर अभिरत व्यक्तियों द्वारा प्राप्त कर लिये जाते हैं।

योऽप्यन्यदेवताभक्तो मिथ्याऽर्चयति केशवम्।
सोऽपि गच्छति साधूनां स्थानं पुण्यकृतां महत्॥६५॥

किसी भी अन्य देवता का भक्त यदि भूल से और छल से भी केशव की अर्चना कर लेता है तो वह भी महान् पुण्य करने वाले साधुओं के परमपद को प्राप्त कर लेता है।

सातत्येन हृषीकेशं पूजयित्वा तु यत्फलम्।
सुचीर्णेतपसा नृणां तत्फलं न कदाचन॥६६॥

हृषीकेश की निरन्तर पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है वह भली-भाँति तपस्या करने वाले व्यक्तियों को भी प्राप्त नहीं होता।

त्रिसंध्यं पद्मनाभं तु ये स्मरन्ति सुमेधसः।
ते लभन्त्युपवासस्य फलं नास्त्यत्र संशयः॥६७॥

जो परम बुद्धिमान् व्यक्ति तीनों संध्याओं के समय पद्मनाभ का स्मरण करते हैं वे उपवास के फल को प्राप्त करते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

सततं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा हरिमर्चय।
तत्प्रसादात्परां सिद्धिं वले प्राप्स्यसि शाश्वतीम्॥६८॥

हे बलि! शास्त्रों के निर्दिष्ट कर्म के द्वारा निरन्तर हरि की अर्चना करो! उनकी कृपा से तुम परम और शाश्वत सिद्धि को प्राप्त करोगे।

तन्मना भव तद्भक्तस्तद्याजी तं नमस्कुरु।
तमेवाश्रित्य देवेशं सुखं प्राप्स्यसि पुत्रक॥६९॥

हे पुत्र! उन विष्णु में मन लगाओ, उनके भक्त बनो, उनका यजन करो तथा उनको नमस्कार करो। उन देवेश का आश्रय लेकर ही तुम सुख प्राप्त करोगे।

आद्यं ह्यनन्तमजरं हरिमव्ययं च
ये वै स्मरन्त्यहरहर्नवरा भुविस्थाः।
सर्वत्रगं शुभदं ब्रह्ममयं पुराणम्
ते यान्ति वैष्णवपदं ध्रुवमक्षयञ्च॥७०॥

पृथ्वी पर रहने वाले जो श्रेष्ठ पुरुष आद्य, अनन्त, अजर, अव्यय, सर्वत्रव्यापक, शुभदायक, ब्रह्ममय तथा पुरातन हरि का स्मरण करते हैं वे ध्रुव और अक्षय वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं।

ये मानवा विगतरागपरापरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ते धौतपाण्डुरपुटा इव राजहंसाः।
संसारसागरजलस्य तरन्ति पारं॥७१॥

जो मनुष्य वीतराग एवं पर-अपर के ज्ञाता हैं, जो निरंतर सुरगुरु नारायण का स्मरण करते हैं, वे धुले हुए श्वेत पंखों वाले राजहंसों की भांति संसाररूपी सागर के जल को पार कर जाते हैं।

ध्यायन्ति ये सततमच्युतमीशितारं
निष्कल्मषं प्रवरपद्मदलायताक्षम्
ध्यानेन तेन हतकिल्बिष्वेदनास्ते।
मातुःपयोधररसं न पुनः पिबन्ति॥७२॥

जो श्रेष्ठ एवं कमलदल के समान विशाल नेत्रों वाले अच्युत स्वामी (हरि) का निरन्तर ध्यान करते हैं तथा उस ध्यान से जिनकी समस्त पापजनित वेदनाएँ समाप्त हो गईं हैं, ऐसे मानव पुनः माता के पयोधररस का पान नहीं करते।

ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभम्
शङ्खाब्जचक्रवरचापगदासिहस्तम्।
पद्मालयावदनपङ्कजपट्पदाख्यम्
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते॥७३॥

जो मनुष्य ऐसे विष्णु जो— वरदायक हैं, पद्मनाभ हैं, शङ्ख, कमल, चक्र, श्रेष्ठ धनुष, गदा तथा खड्ग हाथ में धारण किये हुए हैं, लक्ष्मी के मुखकमल के लिए जो भौरें के समान हैं, का कीर्तन करते हैं वे निश्चय ही मधुघाती (विष्णु) के लोक को प्राप्त कर लेते हैं।

शृण्वन्ति ये भक्तिपरा मनुष्याः
संकीर्त्यमानं भगवन्तमाद्यमाजन्म्।
ते मुक्तपापाः सुखिनो भवन्ति
यथाऽमृतप्राशनतर्पितास्तु॥७४॥

जो भक्तिपरायण मनुष्य परम भगवान् के संकीर्तन का श्रवण करते हैं वे पापों से मुक्त होकर उसी प्रकार सुखी हो जाते हैं जिस प्रकार अमृतपान से संतृप्त व्यक्ति सुखी होते हैं।

तस्माद्ध्यानं स्मरणं कीर्तनं वा
नाम्नां श्रवणं पठतां सज्जनानाम्।
कार्यं विष्णोः श्रद्धधानैर्मनुष्यैः
पूजातुल्यं तत्प्रशंसन्ति देवाः॥७५॥

इसलिए श्रद्धायुक्त मनुष्यों को निरन्तर विष्णुनाम के पाठ में लगे हुए सज्जनों का श्रवण, स्मरण कीर्तन और ध्यान करना चाहिये। क्योंकि देवता उसकी पूजा के समान ही प्रशंसा करते हैं।

बाह्यैस्तथाऽन्तःकरणैरविक्लवै-
र्यो नार्चयेत् केशवमीशितारम्।
पुष्पैश्च पत्रैर्जलपल्लवादिभि
र्नूनं स मुष्टो विधितस्करेण॥७६॥

जो पुष्प, पत्र, जल और पल्लवादि से तथा अन्तः और बाह्य उपकरणों से निर्भय होकर परम पूजनीय केशव की अर्चना नहीं करते, वे निश्चय ही भाग्यरूपी तस्कर के द्वारा लूट लिये जाते हैं।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे भगवत्प्रशंसा नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोध्यायः
(उपसंहार)

बलिरुवाच

भवता कथितं सर्वं समाराध्य जनार्दनम्।
या गतिः प्राप्यते लोके तां मे वक्तुमिहार्हसि॥१॥

बलि ने कहा— आप ने सब कुछ बताया। इस लोक में जनार्दन की आराधना करके जो गति प्राप्त होती है वह कृपा करके मुझे बताइये।

केनार्चनेन देवस्य प्रीतिः समुपजायते।
कानि दानानि शस्तानि प्रीणनाय जगद्गुरोः॥२॥

किस प्रकार की पूजा से देव प्रसन्न होते हैं तथा जगद्गुरु को प्रसन्न करने के लिये किन दानों का वर्णन किया गया है?

उपवासादिकं कार्यं कस्यां तिथ्यां महोदयम्।
कानि पुण्यानि शस्तानि विष्णोस्तुष्टिप्रदानि वै॥३॥

किस तिथि को किए गए उपवास आदि कार्य महान् फलदायक होते हैं तथा कौन से पुण्यकार्य विष्णु को प्रसन्न करने वाले कहे गए हैं?

यद्यान्यदपि कर्त्तव्यं हृष्टरूपैरनालसैः।
तदप्यशेषं दैत्येन्द्र ममाख्यातुमिहार्हसि॥४॥

हे दैत्येन्द्र! प्रसन्नवदन और आलस्यरहित व्यक्तियों के द्वारा और भी जो कुछ किया जाना चाहिये वह सब मुझे संपूर्ण रूप से बताने की कृपा कीजिए।

प्रह्लाद उवाच

श्रद्धानैर्भक्तिपरैर्यान्युद्दिश्य जनार्दनम्।
बले दानानि दीयन्ते तानूचुर्मनयोऽक्षयान्॥५॥

प्रह्लाद ने कहा— हे बलि! जनार्दन को उद्देश्य करके श्रद्धावान् और भक्तियुक्त व्यक्ति जो दान देते हैं उन्हें ही मुनिगण अक्षय कहते हैं।

ता एव तिथयः शस्ता यास्वभ्यर्च्य जगत्पतिम्।
तच्चित्तस्तन्मयो भूत्वा उपवासी नरो भवेत्॥६॥

उन्हीं तिथियों को पुण्यशाली कहा गया है जिनमें मनुष्य जगत्पति की अभ्यर्चना करके उनमें समर्पित चित्त और मन वाला होकर उपवास करता है।

पूजितेषु द्विजेन्द्रेषु पूजितः स्याज्जनार्दनः।
एतान् द्विषन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥७॥

ब्राह्मणों की पूजा करने से जनार्दन पूजित हो जाते हैं। उनसे जो द्वेष करते हैं वह शाश्वत नरक में जाते हैं।

तानर्चयेन्नरो भक्त्या ब्राह्मणान्विष्णुतत्परः।
एवमाह हरिः पूर्वं ब्राह्मणा मामकी तनुः॥८॥

विष्णु को समर्पित व्यक्ति को भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि विष्णु ने स्वयं कहा है— ब्राह्मण मेरा शरीर है।

ब्राह्मणो नावमन्तव्यो बुधो वाऽप्यबुधोऽपि वा।
सोऽपि दिव्या तनुर्विष्णोस्तस्मात्तामर्चयेन्नरः॥९॥

ब्राह्मण ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी किसी भी रूप में उसकी अवमानना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह विष्णु का दिव्य शरीर है। इसलिये मनुष्य को उसकी पूजा करनी चाहिये।

तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि महासुर।
यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च॥१०॥

हे महासुर! वे ही पुष्प विशेष रूप से प्रशंसनीय है जो सुंदरवर्ण से, सुंदर रस से, तथा सुंदर गंध से युक्त है।

विशेषतः प्रवक्ष्यामि पुण्यानि तिथयस्तथा।
दानानि तु प्रशस्तानि माधवप्रीणनाय तु॥११॥

उन पुष्पों, तिथियों तथा दानों के विशाष में विशेष रूप से बताता हूँ जिन्हें माधव को प्रसन्न करने वाला कहा गया है।

जाती शताह्वा सुमनाः कुन्दं बहुपुटं तथा।
वाणश्च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका॥१२॥
पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी।
तिलकं च जपाकुसुमं पीतकं नागरं त्वपि॥१३॥
एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने।
सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम्॥१४॥

चमेली, शतपत्र कमल, सुमना, कुन्द, बहुपुट, बाण, चम्पक, अशोक, करवीर, यूथिका, परिभद्र, पाटल, बकुल, गिरशालिनी, तिलक, जपाकुसुम, पीतक, नागर, इत्यादि पुष्प तथा केतकी के अतिरिक्त अन्य सुगंधित पुष्प अच्युत की पूजा के लिए उत्तम माने गए हैं।

बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गमृगाङ्कयोः।
तमालमालकीपत्रं शस्तं केशवपूजने॥१५॥

बिलपत्र, शमीपत्र, भृङ्गपत्र, मृंगाकपत्र, तमालपत्र तथा अमलकीपत्र केशवपूजन के लिए उत्तम माने गए हैं।

येषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यच्युतार्चने।
पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरेः॥१६॥

जो पुष्प और पल्लव अच्युत की पूजा के लिए उचित माने गए हैं उनके पत्ते भी केशवपूजन के लिये हो सकते हैं।

वीरुध्यां च प्रवालेन बर्हिषां चार्चयेत्तथा।
नानारूपैश्चाम्बुभवैः कमलेन्दीवरादिभिः॥१७॥

बेलों के नए पत्ते, कुशाग्रास, और कमल इन्दीवर इत्यादि जलोत्पन्न पुष्प से पूजन करना चाहिये।

प्रवालैः शुचिभिः श्लक्ष्णैर्जलप्रक्षालितैर्बले।
वनस्पतीनामर्च्येत तथा दूर्वाग्रपल्लवैः॥१८॥

हे बलि! वनस्पतियों के चिकने, पवित्र एवं जल से प्रक्षालित कोपलों तथा दूर्वाग्रपल्लवों से विष्णु का पूजन करना चाहिये।

चन्दनेनानुलिम्पेत कुङ्कुमेन प्रयत्नतः।
उशीरपद्मकाभ्यां स तथा कालीयकादिना॥१९॥

चंदन, कुंकुम, उशीर, कमल तथा चंदन की लकड़ी से प्रयत्नपूर्वक अनुलेपन करना चाहिये।

महिषाख्यं कणं दारु सिह्लकं सागुरुं सिता।
शङ्खं जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै॥२०॥

महिषा नामक धूल के करण, सिह्लक,[३६] अगरु, सिवा, शङ्ख तथा जातीफल[३७] विष्णु के धूपन के लिए श्रेष्ठ माने गए हैं।

हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः।
तिलमुद्गदयो माषा व्रीहयश्च प्रिया हरेः॥२१॥

घी में पके हुए जौ, गेहूं और चावल, तिल, मुद्ग, माष तथा व्रीहि हरि को प्रिय हैं।

---

36. Liquid Amber
37. Nutmeg (Myristica Officinalis)

गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि चानघ।
वस्त्रान्नस्वर्णदानानि प्रीतये मधुघातिनः॥ २२॥

हे निष्पाप! गोदान और भूमिदान पवित्र होते हैं; तथा वस्त्र, स्वर्ग और अन्न का दान मधुघाती को प्रसन्न करने वाला होता है।

माघमासे तिलाः देयास्तिलधेनुश्च दानव।
इन्धनादीनि च तथा माधवप्रीणनाय तु॥ २३॥

हे दानव! माधव को प्रसन्न करने के लिए माघ के मास में तिल, तिल, धेनु, तथा इन्धनादि का दान करना चाहिये।

फाल्गुने व्रीहयो मुद्गा वस्त्रकृष्णाजिनादिकम्।
गोविन्दप्रीणनार्थय दातव्यं पुरुषर्षभैः॥ २४॥

गोविन्द को प्रसन्न करने के लिए श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा फाल्गुन मास में व्रीहि, मुद्ग, वस्त्र तथा कृष्णमृगचर्म का दान किया जाना चाहिये।

चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि शयनान्यासनानि च।
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेष्वथ॥ २५॥

विष्णु को प्रसन्न करने के लिए चैत्र मास में चित्रात्मक वस्त्र, शय्या तथा आसन इत्यादि ब्राह्मणों को दान देना चाहिये।

गन्धमाल्यानि देयानि वैशाखे सुरभीणि च।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये॥ २६॥

मधुसूदन को प्रसन्न करने के लिए वैशाख मास में प्रमुख ब्राह्मणों को चंदन और सुगंधि माला का दान करना चाहिये।

उदकुम्भाम्बुधेनुं च तालवृन्तं सुचन्दनम्।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सदा॥ २७॥

त्रिविक्रम को प्रसन्न करने के लिए साधुपुरुषों को ज्येष्ठ मास में जलकुम्भ, अम्बुधेनु, तालवृन्त (पंखा) तथा सुगंधित चन्दन का दान करना चाहिये।

उपानद्युगलं छत्रं लवणामलकादिकम्।
आषाढे वामनप्रीत्यै दातव्यानि तु भक्तितः॥ २८॥

वामन की प्रसन्नता के लिये आषाढ़ मास में जूतों का जोड़ा, छत्र, लवण, आमला का भक्तिपूर्वक दान करना चाहिये।

घृतं च क्षीरकुम्भाश्च घृतधेनुफलानि च।
श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिता॥ २९॥

श्रीधर की प्रसन्नता के लिए बुद्धिमान् व्यक्तियों को श्रावण मास में घी, क्षीरकुम्भ, घृतधेनु तथा फल देने चाहिये।

मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषी।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम्॥ ३०॥

हृषीकेश को प्रसन्न करने के लिए भाद्रपद मास में खीर, शहद, घी एवं नमक तथा गुड़ मिले चावल दान करने चाहिये।

तिलास्तुरङ्गं वृषभं दधि ताम्रायसादिकम्।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाश्वयुजे नरैः॥ ३१॥

पद्मनाभ को प्रसन्न करने के लिए आश्विन मास में व्यक्तियों को तिल, तुरंग, वृषभ, दही, ताँबा तथा लोहे का दान करना चाहिये।

रजतं कनकं दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम्।
दामोदरस्य तुष्ट्यर्थं प्रदद्यात्कार्त्तिके नरः॥ ३२॥

दामोदर को प्रसन्न करने के लिए कार्तिक मास में व्यक्ति को चाँदी, सोना, दीपक, रत्न, मोती, फल इत्यादि का दान करना चाहिये।

खरोष्ट्राश्वतरान् नागान् यानयुग्यमजाविकम्।
दातव्यं केशवप्रीत्यै मासि मार्गशिरे नरैः॥ ३३॥

केशव को प्रसन्न करने के लिए मार्गशीर्ष मास में गधा, ऊँट, घोड़ा, हाथी, वाहन, बकरी, भेड़ इत्यादि का दान करना चाहिये।

प्रासादनगरादीनि गृहप्रावरणादिकम्।
वामनस्य च तुष्ट्यर्थं पौषे देयानि भक्तितः॥ ३४॥

नारायण की प्रसन्नता के लिए पौष मास में प्रासाद, नगर, घर और वस्त्रों का भक्तिपूर्वक दान करना चाहिये।

दासीदासमलंकारमन्नं षड्रससंयुतम्।
पुरुषोत्तमस्य तुष्ट्यर्थं प्रदेयं सार्वकामिकम्॥ ३५॥

पुरुषोत्तम को प्रसन्न करने के लिये सेवक, सेविकाओं, अलंकार और षड्रस युक्त भोजन का सर्वदा दान करना चाहिये।

यद्यदिष्टतमं किंचिद्यद्वाऽप्यस्ति शुचि गृहे।
तत्तद्धि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवाय चक्रिणे॥३६॥

घर में जो कुछ भी पवित्र और सर्वाधिक प्रिय हो वह चक्रधारी देवाधिदेव विष्णु को प्रसन्न करने के लिए अर्पित कर देना चाहिये।

यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य
पुण्यांल्लोकान् स जयेच्छाश्वतान् वै।
दत्त्वाऽऽरामान्पुष्पफलाभिपन्नान्
भोगान्स भुङ्क्ते कामतः श्लाघनीयान्॥३७॥

जो केशव का मन्दिर बनवाता है वह शाश्वत पुण्यलोकों को जीत लेता है। फूल और फलों से युक्त उपवनों को दान कर व्यक्ति प्रशंसनीय भोगों का इच्छापूर्वक भोग करता है।

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि च।
तारयेदात्मना सार्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः॥३८॥

विष्णु के मंदिर को बनवाने वाले अपने पितामह से आगे के अपने आठ कुलों का अपने सहित उद्धार कर लेता है।

इमाश्च पितरो दैत्य गाथा गायन्ति योगिनः।
पुरता यदुसिंहस्य ज्यामघस्य तपस्विनः॥३९॥

हे दैत्य! यदुश्रेष्ठ योगयुक्त तपस्वी ज्यामघ के सम्मुख पितरों ने इस गाथा को गान किया था।

अपि नः स कुले कश्चिद्विष्णुभक्तो भविष्यति।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः॥४०॥

क्या हमारे कुल में भी कोई विष्णु भक्त होगा जो शुचिव्रत विष्णुमन्दिर का निर्माता होगा?

अपि नः सन्ततौ जायेद्विष्णवालयविलेपनम्।
संमार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः॥४१॥

क्या हमारे कुल में कोई ऐसा धर्मात्मा होगा जो विष्णुमंदिर का भक्तिपूर्वक अनुलेपन और परिमार्जन करेगा?

अपि नः सन्ततौ जातो ध्वजं केशवमन्दिरे।
दास्यते देवदेवाय दीपं पुष्पानुलेपनम्॥४२॥

क्या हमारे कुल में कोई ऐसा उत्पन्न होगा जो केशवमंदिर पर ध्वजा और देवाधिदेव विष्णु के लिये दीप, पुष्प और अनुलेपन का दान करेगा।

महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी।
विमुक्तपापो भवति विष्ण्वायतनचित्रकृत्॥४३॥

घोर पाप करने वाला अथवा अल्प पाप करने वाला पापी मनुष्य भी विष्णु के मंदिर में चित्रकारी करके सर्वथा पापरहित हो जाता है।

इत्थं पितृणां वचनं श्रुत्वा नृपतिसत्तमः।
चकारायतनं भूम्यां स्वयं च लिम्पतासुर॥४४॥
विभूतिभिः केशवस्य केशवाराधने रतः।
नानाधातुविकारैश्च पञ्चवर्णैश्च चित्रकैः॥४५॥

हे असुर! पितरों के इस प्रकार के वचन को सुनकर नृपतिश्रेष्ठ ने भूमि पर केशव का मन्दिर बनवाया और स्वयं उसका लेपन किया। वह विभिन्न प्रकार की धातुओं से निकले द्रव्यों से तथा पाँच वर्णों वाले चित्रों से वहाँ केशव की विभूतियों का चित्रण कर केशव की आराधना में रत हो गया।

ददौ दीपानि विधिवद् वासुदेवालये बले।
सुगन्धितैलपूर्णानि घृतपूर्णानि च स्वयम्॥४६॥

हे बलि! उसने वासुदेव के मंदिर में स्वयं सुगंधित तेल से परिपूर्ण तथा घी से भरे हुए दीपक जलाए।

नानावर्णा वैजयन्त्यो महारजनरञ्जिताः।
मञ्जिष्ठा नवरङ्गीयाः श्वेतपाटलिका श्रिताः॥४७॥
आरामा विविधा हृद्याः पुष्पाढ्याः फलशालिनः।
लतापल्लवसंछन्ना देवदारुभिरावृताः॥४८॥
कारिताश्च महामञ्चधिष्ठिताः कुशलैर्जनैः।
पौरोगवविधानज्ञै रत्नसंस्कारिभिर्दृढैः॥४९॥

उसने फूलों तथा फलों से युक्त, लताओं और पल्लवों से ढके हुए, देवदारु[38] के वृक्षों से ढके हुए विविध उपवन बनवाए जिनमें कुशल कारीगरों के द्वार विशाल मंच बनाए गए जिन पर कुशल रत्नकारों के द्वारा संस्करण किया गया।

38. Cedrus Deodara

तेपु नित्यं प्रपूज्यन्ते यतयो ब्रह्मचारिणः।
श्रोत्रिया ज्ञानसंपन्ना दीनान्धविकलादयः॥५०॥

उन (मंदिरों) में संन्यासी ब्रह्मचारी, श्रोत्रिय, ज्ञानी, दीन, नेत्रहीन, तथा विकलांग व्यक्तियों का नित्य सम्मान किया जाता है।

इत्थं स नृपतिः कृत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
ज्यामघो विष्णुनिलयं गत इत्यनुशुश्रुम॥५१॥

वह श्रृद्धावान जितेन्द्रिय ज्यामध ऐसा करके विष्णुधाम को चला गया। ऐसा हम सुनते हैं।

तमेव चाद्यापि बले मार्गं ज्यामघकारितम्।
व्रजन्ति नरशार्दूला विष्णुलोकजिगीषवः॥५२॥

हे राजन् बलि! आज भी विष्णुलोक को जाने के इच्छुक व्यक्ति ज्यामध के द्वारा बनाए गए उसी मार्ग पर चलते हैं।

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र कारयस्वालयं हरेः।
तमर्चयस्व यत्नेन ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान्।
पौराणिकान्विशेषेण सदाचाररताञ्शुचीन्॥५३॥
वासोभिर्भूषणै रत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः।
विभवे सति देवस्य प्रीणनं कुरु चक्रिणः॥५४॥

हे राजन्! इस कारण तुम भी विष्णु का मंदिर बनवाओ और यत्नपूर्वक उनकी पूजा करो। जब तक तुम समृद्ध हो तब तक अति विद्वान् ब्राह्मणों और पुराण विशेषज्ञों जो विशेष रूप से पवित्र और सदाचारी हैं, को वस्त्रों, आभूषणों, रत्नों, गौओं, भूमि स्वर्गादि का दान कर चक्रधारी देव को प्रसन्न करो।

एवं क्रियायोगरतस्य तेऽद्य
नूनं मुरारिः शुभदो भविष्यति।
नरा न सीदन्ति बले समाश्रिता
विभुं जगन्नाथमनन्तमच्युतम्॥५५॥

इस प्रकार पूजाकार्य में रत तुम्हारे लिए मुरारि अवश्य ही शुभदायक होंगे। हे बलि! सर्वसमर्थ, अनन्त, अच्युत जगन्नाथ का आश्रय लेने वाले व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होते।

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं दितीश्वरो
वैरोचनं सत्यमनुत्तमं हि।
संपूजितस्तेन विमुक्तिमाययौ
संपूर्णकामो हरिपादभक्तः॥५६॥

पुलस्त्य ने कहा— दितीश्वर (प्रह्लाद) विरोचनपुत्र को इस प्रकार सत्य श्रेष्ठ वचन कहकर तथा उस (बलि) के द्वारा पूजित होकर वह हरिचरणभक्त संपूर्णकाम होकर विमुक्ति को चले गए।

गते हि तस्मिन्मुदिते पितामहे
बलेर्बभौ मन्दिरमिन्दुवर्णम्।
महेन्द्रशिल्पिप्रवरोऽथ केशवं
स कारयामास महामहीयान्॥५७॥

प्रसन्न पितामह के चले जाने पर बलि का प्रासाद चन्द्रमा की प्रभा के समान चमकने लगा। तदनन्तर इन्द्र के श्रेष्ठ शिल्पी ने महामहिम की प्रतिमा बनाई।

स्वयं स्वभार्यासहितश्चकार
देवालये मार्जनलेपनादिकाः।
क्रिया महात्मा यवशर्कराद्या
बलिं चकाराप्रतिमां मधुद्रुहः॥५८॥

देवालय में उसने अपनी पत्नी के साथ स्वयं मार्जन तथा लेपन किया। उस महात्मा ने मधुद्रोही विष्णु की प्रतिमा पर शर्करा आदि की पर्याप्त बलि चढ़ाई।

दीपप्रदानं स्वयमायताक्षी
विन्ध्यावली विष्णुगृहे चकार।
गेयं स धर्म्यश्रवणं च धीमान्
पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत्॥५९॥

आयताक्षी विन्ध्यावली ने स्वयं विष्णु के मंदिर में दीप-दान किया। उस बुद्धिमान् ने पुराणविशेषज्ञों ब्राह्मणश्रेष्ठों के द्वारा धार्मिक ग्रन्थों का कीर्तन करवाया।

तथाविधस्यासुरपुंगवस्य
धर्म्ये सुमार्गे प्रतिसंस्थितस्य।
जगत्पतिर्दिव्यपुर्जनार्दन
स्तस्थौ महात्मा बलिरक्षणाय॥६०॥

इस प्रकार से धर्ममार्ग में प्रतिष्ठित असुरश्रेष्ठ बलि की रक्षा के लिये दिव्य विग्रह वाले जगत्पति महात्मा जनार्दन स्वयं स्थित हो गए।

सूर्यायुताभं मुसलं प्रगृह्य
निघ्नन्स दुष्टाननरियूथपालान्।
द्वारि स्थितो न प्रददौ प्रवेशं
प्राकारगुप्तौ बलिनो गृहे तु॥ ६१॥

सूर्य के समान आभा वाले मूसल को पकड़कर वह स्वयं दुष्ट शत्रुसमूहनायकों का वध करते हुए द्वार पर खड़े हो गए और प्राकाररक्षित बलि के घर में उन्हें प्रवेश नहीं करने दिया।

द्वारि स्थिते धातरि रक्षपाले
नारायणे सर्वगुणाभिरामे।
प्रासादमध्ये हरिमीशितार
मभ्यर्चयामास सुरर्षिमुख्यम्॥ ६२॥

सर्वगुणाभिराम सर्वाधार नारायण के द्वारपाल के रूप में स्थित होने पर प्रासाद के मध्य (बलि) पूजनीय सुरर्षिमुख्य हरि की पूजा करने लगा।

स एवमास्तेऽसुरराड् बलिस्त
समर्चयन्वै हरिपादपङ्कजौ।
सस्मार नित्यं हरिभाषितानि
स तस्य जातो विनयाङ्कुशस्तु॥ ६३॥

असुरराज बलि इस प्रकार हरि के चरणकमलों की अर्चना करता हुआ रहने लगा और हरिवचनों का स्मरण करने लगा। वह नियम उसके लिए विनय-अंकुश बन गया।

इदं च वृत्तं स पपाठ दैत्यराट्
स्मरन्सुवाक्यानि गुरोः शुभानि।
तथ्यानि पथ्यानि परत्र चेह
पितामहस्येन्द्रसमस्य वीरः॥ ६४॥

इन्द्र के समान पितामह गुरु के इहलोक और परलोक में तथ्यात्मक एवं कल्याणकारी तथा शुभ वाक्यों का स्मरण करते हुए उस वीर दैत्यराज ने इस वृत्तांत का नित्य पाठ किया।

ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति
श्रुत्वा दुरुक्तान्यपि पूर्वतस्तु।
स्निग्धानि पश्चान्नवनीतशुद्धा
मोदन्ति ते नात्र विचारमस्ति॥ ६५॥

पहले दुर्वाक्यों के रूप में कथित होने पर भी परिणामतः शुद्ध नवनीत के समान स्निग्ध वृद्धवचनों का जो अच्छी तरह आचरण करते हैं वे प्रसन्न रहते हैं; इसमें संशय नहीं है।

आपद्भुजङ्गदष्टस्य मन्त्रहीनस्य सर्वदा।
वृद्धवाक्यौषधा नूनं कुर्वन्ति किल निर्विषम्॥ ६६॥

विपत्तिरूपी सर्प के दंश से आहत जो व्यक्ति मन्त्रहीन है (सेवक मंत्र को नहीं जानता) उसे वृद्धवाक्यरूपी औषधि निश्चय ही विषहीन कर देती है (बचा लेती है)।

वृद्धवाक्यामृतं पीत्वा तदुक्तान्यनुमन्य च।
या तृप्तिर्जायते पुंसां सोमपाने कुतस्तथा॥ ६७॥

(अनुभवी) वृद्ध व्यक्तियों के द्वारा कहे गए वाक्यों का अमृत पीकर तथा तदनुसार आचरण करके मनुष्यों की जो तृप्ति होती है वह सोमपान से कहाँ!

आपत्तौ पतितानां येषां वृद्धा न सन्ति शास्तारः।
ते शोच्या बन्धूनां जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः॥ ६८

आपत्ति में पड़े जिन मनुष्यों का शासन वृद्धजन नहीं करते वे बन्धुओं के लिये शोचनीय तथा जीवित ही मृतक तुल्य होते हैं।

आपद्ग्राहगृहीतानां वृद्धाः सन्ति न पण्डिताः।
येषां मोक्षयितारो वै तेषां शान्तिर्न विद्यते॥ ६९॥

आपत्तिरूपी ग्राह से गृहीत जिन व्यक्तियों को वृद्ध पण्डित मुक्त करने वाले नहीं होते उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

आपज्जलनिमग्नानां ह्रियतां व्यसनोर्मिभिः।
वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोत्तारं कथंचन॥ ७०॥

आपत्तिरूपी समुद्र में डूबे हुए तथा व्यसनों रूपी लहरों के द्वारा बहाए जाते हुए व्यक्तियों का निश्चय ही वृद्धवाक्यों के अतिरिक्त और कोई तारने वाला नहीं हो सकता।

पुलस्त्य उवाच

तस्माद्यो वृद्धवाक्यानि शृणुयाद्विदधाति वा।

स सद्यः सिद्धिमाप्नोति यथा वैरोचनो बलिः॥७१॥

इस कारण जो वृद्धवाक्यों को सुनकर उनके अनुसार आचरण करेगा वह शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त कर लेता है; जिस प्रकार विरोचन पुत्र बलि!

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उपसंहारे नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५॥

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

(उपसंहार)

पुलस्त्य उवाच

एनन्मया पुण्यतमं पुराणं

तुभ्यं तथा नारद कीर्तितं वै।

श्रुत्वा च कीर्त्या परया समेतो

भक्त्या च विष्णोः पदमभ्युपैति॥१॥

पुलस्त्य उवाच— हे नारद! यह परमपुण्यशाली पुराण मैंने तुम्हें सुनाया। मनुष्य परमभक्ति से युक्त होकर इसको सुने तो वह विष्णु के लोक को प्राप्त कर लेता है।

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात्।

तथा पुराणश्रवणाद्दुरितानां विनाशनम्॥२॥

जिस प्रकार गंगा के जल में अवगाहन से पाप पवित्र हो जाते हैं उसी प्रकार इस पुराण के श्रवण से दुष्कर्मों का विनाश होता है।

न तस्य रोगा जायन्ते न विषं चाभिचारिकम्।

शरीरे च कुले ब्रह्मन्यः शृणोतीह वामनम्॥३॥

हे ब्राह्मण! जो वामनपुराण का श्रवण करता है उसके शरीर और कुल में कोई रोग तथा विष और अभिचार (जादू-टोना) नहीं होते।

शृणोति नित्यं विधिवच्च भक्त्या

संपूजयन् यः प्रणतश्च विष्णुम्।

स चाश्वमेधस्य सदक्षिणस्य

फलं समग्रं परिहीनपापः॥४॥

प्राप्नोति दत्तस्य सुवर्णभूमे-

रश्वस्य गोनागरथस्य चैव।

नारी नरश्चापि च पादमेकं

शृण्वन् शुचिः पुण्यतमः पृथिव्याम्॥५॥

जो व्यक्ति विष्णु को नमस्कार करके उनका पूजन करता है तथा भक्तिपूर्वक विधिवत् इस पुराण का नित्य श्रवण करता है वह पापों से सर्वथा रहित स्वर्ण, भूमि, रथ, अश्व, गाय, हाथी और रथों के दान और दक्षिणा सहित अश्वमेध के समग्र फल को प्राप्त कर लेता है। पुरुष हो अथवा नारी वह (इस पुराण के) एक भी पाद का श्रवण करता हुआ इस पृथ्वी पर पवित्र और पुण्यशाली होता है।

स्नाने कृते तीर्थवरे सुपुण्ये

गङ्गाजले नैमिषपुष्करे वा।

कोकामुखे यत्प्रवदन्ति विप्राः

प्रयागमासाद्य च माघमासे॥६॥

स तत्फलं प्राप्य च वामनस्य

संकीर्तयन्नान्यमनाः पदं हि

गच्छेन्मया नारद तेऽद्य चोक्तं

यद् राजसूयस्य फलं प्रयच्छेत्॥७॥

पुण्यगंगाजल में अथवा श्रेष्ठ तीर्थ नैमिष पुष्कर अथवा कोकामुख में स्नान करने पर अथवा माघमास में प्रयाग में पहुँचकर जो (फल) विप्रगण बताते हैं, वही फल अनन्य मनसा होकर वामनपुराण का एक पद संकीर्तन करने का होता है। हे नारद! आज मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह संकीर्तन राजसूय यज्ञ को प्राप्त कराने वाला होता है।

यद्भूमिलोके सुरलोकलभ्ये

महत्सुखं प्राप्य नरः समग्रम्

प्राप्नोति चास्य श्रवणान्महर्षे

सौत्रामणेर्नास्ति च संशयो मे॥८॥

हे महर्षि! इसके श्रवण से मनुष्य भूलोक और देवलोक में प्राप्य जो महान सुख है उसको समग्र रूप में प्राप्त करके, सौत्रामणि के फल को प्राप्त करता है; इसमें मेरा सशय नहीं है।

रत्नस्य दानस्य च यत्फलं भवेद्

यत्सूर्यस्य चेन्दोर्ग्रहणे च राहो।

अन्नस्य दानेन फलं यथोक्तं
बुभुक्षिते विप्रवरे च साग्निके॥ ९॥
दुर्भिक्षसंपीडितपुत्रभार्ये
यामी सदा पोषणतत्परे च।
देवाग्निविप्रर्षिरते च पित्रोः
शुश्रूषके भ्रातरि ज्येष्ठसाम्ने।
यत्तत्फलं संप्रवदन्ति देवाः
स तत्फलं लभते चास्य पाठात्॥ १०॥

राहु के द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण पर रत्न के दान का जो फल होता है, भूखे अग्निहोत्री ब्राह्मण को किये गये अन्नदान का जो फल कहा गया है, जिनकी पत्नी और पुत्र (परिवार) अकाल से पीड़ित है उनके पोषण के लिये सदैव तत्पर रहने वाले तथा देवता, अग्नि, ब्राह्मण, ऋषिगण, पितर, ज्येष्ठ भ्राता की शुश्रूषा में रत रहने वालों को जो फल देवतागण कहते हैं वही फल इसके पाठ से प्राप्त होता है।

चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यं
श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम्।
प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे
महान्ति पापान्यपि नारदाशु॥ ११॥

चतुर्दश वामनपुराण को मुख्य पुराण कहा गया है— जिस के श्रवण से पापसमूह का नाश होता है। हे नारद! महान् पाप भी इससे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं; इसमें मुझे संशय नहीं है।

पाठात् संश्रवणाद् विप्र श्रावणादपि कस्यचित्।
सर्वपापानि नश्यन्ति वामनस्य सदा मुने॥ १२॥

हे विप्र! वामनपुराण के पाठ, श्रवण तथा श्रावण से किसी भी व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते हैं।

इदं रहस्यं परमं तवोक्तं
न वाच्यमेतद्धरिभक्तिवर्जिते।
द्विजस्य निन्दारतिहीनदक्षिणे
सहेतुवाक्यावृतपापसत्त्वे॥ १३॥

तुम्हें सुनाया गया यह परम रहस्य हरि-भक्ति से रहित, ब्राह्मण की निन्दा में रत, दक्षिणाहीन और पापाभिचार को तर्क से छुपाने वाले (चालाक) व्यक्ति को कभी नहीं सुनाना चाहिये।

नमो नमः कारण वामनाय नित्यं यो वदेन्नियतं द्विजः।
तस्य विणुः पदं मोक्षं ददाति सुरपूजितः॥ १४॥

जो ब्राह्मण नित्य निरन्तर वामन देव को नमस्कार है, नमस्कार है— इस प्रकार कहता है उसे सुरपूजित विष्णु मोक्षपद प्रदान करते हैं।

वाचकाय प्रदातव्य गोभूस्वर्णविभूषणम्।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कुर्वञ्छ्रवणनाशकम्॥ १५॥

इस पुराण के वाचक के लिये गाय, भूमि, स्वर्ण तथा आभूषण प्रदान करना चाहिये तथा कंजूसी नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करना श्रवणफल का नाशक होता है।

त्रिसंध्यं च पठन् शृण्वन्सर्वपापप्रणाशनम्।
असूयारहितं विप्र सर्वसम्पत्प्रदायकम्॥ १६॥

तीनों सन्ध्याकाल में इसका पाठ और श्रवण समस्त पापों का नाशक होता है। हे विप्र! असूयारहित व्यक्ति के लिए यह समस्त संपत्तियों को देने वाला होता है।

इति श्रीवामनपुराणे पुलस्त्यनारदसंवादे उपसंहारो नाम
षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

॥ॐ॥शुभमस्तु। श्रीकृष्णार्पितमस्तु।
इति वामनपुराणं संपूर्णम्

वामनपुराणस्य श्लोकानुक्रमणिका

घ

च

भ

परिमल पब्लिकेशन्स

२७/२८, शक्ति नगर दिल्ली ११०००७
दूरभाष - २७४४५४५६
E-mail : parimal@ndf.vsnl.net.in
Website: www.parimalpublication.com

